Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्यगुण हस्तामलक

स्वर्गीय-पद्मभूषण वैद्यरत्न पं. शिवशर्माजी के
पुण्यस्मरणार्थ उपहारस्वरूप प्राप्त

परमादरणीय, पूज्य श्रीयुत
वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा साब
की सेवामें सम्मति
के लिए
सादर समर्पित
विनीत
वै. बनवारीलाल

19.3.76

Vaidya Raj Zandu Bhatji
National Ayurvedic Library
Dhanwantri Bhawan, New Delhi
Call No. LX3 N76
Book No.
Acc No. 000064

लेखक :-
वैद्य बनवारी लाल मिश्रा
प्राध्यापक
राजकीय आयुर्वेदिक कालेज
जयपुर (राज०)

मुख्य वितरक :-
शरण बुक डिपो
गलता मार्ग, रामगंज चौपड़,
जयपुर-३०२००३

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वर्गीय-पद्मभूषण वैद्यरत्न पं. शिवशर्माजी के
संग्रहार्थ उपहारस्वरूप प्राप्त

द्रव्यगुण हस्तामलक

प्रथम खण्ड

द्रव्यगुणपरिचयविज्ञानीय

प्रथम परिच्छेद

द्रव्य गुण विज्ञान की परिभाषा—जिस शास्त्र या विज्ञान में वैज्ञानिकानुशीलन पद्धति से द्रव्यों [ओषधियों] की प्रकृति, गुण कर्म, प्रयोगों का प्रतिपादन हो उसे द्रव्य गुण विज्ञान या द्रव्य गुण शास्त्र (Materia medica आधुनिक प्रचलित संज्ञा Pharmacology) कहते हैं। विज्ञान शब्द का शास्त्र अर्थ में भी प्रयोग होता है। **विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः** [अमर कोष]। आयुर्वेद में द्रव्य शब्द से आहार एवं ओषध दोनों प्रकार के द्रव्यों का ग्रहण होता है, किन्तु द्रव्य गुण विज्ञान में द्रव्य शब्द से प्रधानतया ओषधियों का ही ग्रहण होता है। **द्रव्याणि पुनरोषधयः**। सु० सू० अ० १। महर्षि चरक ने भी इस विज्ञान के लिए द्रव्य गुण शब्द का प्रयोग किया है। **आयुष्याणि अनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि वेदयत्यतोऽपि आयुर्वेदः**। च० सू० अ० ३०। द्रव्यगुण शब्द में गुणशब्द द्रव्य धर्म में रूढ बन गया है अतः गुण शब्द से ही रस-विपाक-वीर्य-प्रभाव-कर्म का बोध होता है। **'गुण' शब्देनात्र धर्मवाचिना रस-विपाक-वीर्य-प्रभावाणि सर्वाण्येव द्रव्यधर्माण्यभिधीयन्ते**। द्र० गु०वि० यादवजी।

वैदिक समय में द्रव्यगुण विज्ञान की संज्ञा निघण्टु थी। वेद के निगम शब्द से निघण्टु संज्ञा प्रचलित हुई है। **निघण्टवः कस्मात् निगमा इमे भवन्ति**। [यास्काचार्य] एक ही पदार्थ के लिए एकार्थ बोधक अनेक पर्यायों का संघ जहाँ वर्णित किया जाता है उसे निघण्टु कहते हैं। **एकार्थवाचिनां पर्यायशब्दानां संघो यत्र प्रायेणोपदिश्यते तत्र निघण्टु-शब्दः प्रसिद्धः**। निगूढ़ अर्थ का विवेचन करने वाले साहित्य को निगम कहा जाता है। **निगूढमर्थं गमयन्ति ज्ञापयन्तीति निगमाः**। अतः निगन्तवः शब्द से ही निघण्टवः योगरूढ नामकरण हुआ है। निघण्टु में भी द्रव्यों के गुण कर्मों के गूढ़ अर्थों का विभिन्न पर्यायों के द्वारा विवेचन किया जाता है। निघण्टु काल में जितने भी निघण्टु ग्रन्थ लिखे गये हैं उनमें इसी शैली का पूर्णतः निर्वाह किया गया है। द्रव्यों के नाम, उत्पत्तिस्थान, परिचय, गुण, कर्म प्रभाव ज्ञापक पर्यायों का स्पष्ट वर्णन किया जाता है। अतः द्रव्यगुण शास्त्र एवं निघण्टु दोनों ही एकार्थबोधक शब्द हैं।

द्रव्यगुण विज्ञान को पाश्चात्त्य चिकित्सा विज्ञान में फार्माकोलॉजी (Pharmacology) कहते हैं जिसका शब्दार्थ यों है—Pharmakon यह ग्रीक शब्द है जिसका तात्पर्य Drug [ओषध] और

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Gnosis का अर्थ ज्ञान होता है। Pharmacology [भैषज्य विज्ञान] की पूर्ण परिभाषा निम्न प्रकार है।

Pharmacology is the science which treats of the action of drugs on the body both in health and disease.

Materia medica & pharmacology. A. H. Douthwaite.

द्रव्यगुण विज्ञान की विभिन्न विधायें—किसी भी विज्ञान के निरवशेष अध्ययन या ज्ञान के लिए विभिन्न विधियों किंवा विधाओं का अध्ययन या ज्ञान अत्यावश्यक है। महर्षि चरक ने भी एक द्रव्य (औषध) का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन का निर्देश दिया है। **इदमेवं प्रकृतिमेवं गुणमेवं प्रभावमेवमस्मिन् देशे जातमस्मिन्नृतावेवं ग्रहीतमेवं निहितमनया मात्रया प्रयुक्तमस्मिन् व्याधौ एवं विधस्य पुरुषस्य एतावन्तं दोषमपकर्षति वा।** चरक वि० अ० १।

इस प्रकार किसी भी द्रव्य (औषध) का चिकित्सार्थ (१) प्रकृति विज्ञान (२) गुण विज्ञान (३) प्रभाव विज्ञान (४) देश विज्ञान (५) संग्रह एवं संरक्षण विज्ञान (६) संस्कार विज्ञान (७) मात्रा विज्ञान (८) औषध प्रयोग विज्ञानानुसार ज्ञान कर प्रयोग करना चाहिये।

(१) भेषज द्रव्य ज्ञान (द्रव्य प्रकृतिज्ञान–Materia medica) इसमें द्रव्यों का नाम प्राकृतिक कुल, वास, स्वभाव, सामान्य रचना (Morphology) का वर्णन किया जाता है। इसी विज्ञान की एक विधा भैषज्य ज्ञान (Pharmacognosy) होती है जिसमें द्रव्यों की आन्तरिक रचना (Internal morphology) का विशेष वर्णन किया जाता है।

(२) भेषजकीय चिकित्सा (गुण कर्म, प्रभाव, औषध प्रयोग विज्ञान Pharmacological Therapeutics) में द्रव्यों का स्वस्थ पुरुष के विभिन्न शरीर संस्थानों पर उनके गुण कर्मों का प्रभाव ज्ञात किया जाता है। मानव शरीर पर प्रयोग के पूर्व औषध का जैविक प्रयोगशाला में विभिन्न स्वस्थ एवं रुग्ण प्राणियों के शरीर पर भी प्रयोग कर उसके गुण कर्म एवं प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार द्रव्यों का विभिन्न विधियों से व्याधिशामक कर्म, प्रभाव ज्ञात कर उनका आतुरालय में तत् तद् व्याधिग्रस्त पुरुषों पर व्याधिशमनार्थ प्रयोग किया जाता है।

(३) देश-भूमि काल विज्ञान (Ecology) में द्रव्य किस प्रकार के देश जाँगल, आनूप साधारण में प्राप्त होते हैं तथा कौन कौन सी जलवायु समशीतोष्ण, उष्ण, उपोष्ण, या शीत जलवायु में पाये जाते हैं का वर्णन किया जाता है।

(४) संग्रह एवं संरक्षण विज्ञान (Collection & Preservation) में द्रव्यों के विभिन्न प्रयोज्याङ्गों को विशेष ऋतु एवं विधि से संगृहीत करना, उन्हें विभिन्न भौतिक, रासायनिक विधियों द्वारा संरक्षित कर, कृमि, जन्तु, ऋतुओं के अतिशैत्योष्ण आर्द्र प्रभावों से मुक्त कर दीर्घ काल तक वीर्य सम्पन्न बनाये रखने, का वर्णन किया जाता है।

(५) विष विज्ञान (Toxicology) में विषाक्त द्रव्यों के मानव शरीर के विभिन्न शरीर संस्थानों पर विषाक्त प्रभाव, लक्षणों तथा उनके प्रतिषेध का एवं प्रतिविषद्रव्यों का वर्णन किया जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(६) संस्कार या भैषज्य कल्प विज्ञान (Pharmacy) में द्रव्यों में गुणवृद्धि, गुणान्तराधान, द्रव्यगत अशुद्धि के शोधनार्थ विभिन्न कल्पनाओं या संस्कारों (पञ्चकषाय, घृत, तैल, आसवारिष्ट आदि) का वर्णन किया जाता है।

द्रव्य गुण विज्ञान का प्रयोजन—आयुर्वेद विज्ञान के दो प्रयोजन हैं। प्रथम स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य की रक्षा करना द्वितीय प्रयोजन विकार ग्रस्त पुरुष के विकार का उपशमन करना है। **प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम् आतुरस्य विकारप्रशमनञ्च** । च० सू० अ० ३०। प्रथम प्रयोजन की सिद्धि के लिए शरीर में क्षण प्रतिक्षण होने वाली धातु चयापचय जन्य, विभिन्न रसायन. जैविक रसायन क्रियाओं से किंवा, जाठराग्नि, भौतिक एवं धात्वग्नियों द्वारा दोष, धातुओं के पुनः निर्माण के साथ साथ दोष धातुओं में अपचय, क्षय भी अनवरत होता रहता है। जिनकी पूर्ति या पोषण पाञ्चभौतिक, ड्रषस, विंशतिगुणयुक्त चतुर्विध आहार प्रयोग के होने से शरीर स्वस्थ बना रहता है। दोष-धातु-मलों की वैषम्यावस्था (क्षय या वृद्धिमूलक) ही पुरुष के रोग ग्रस्त होने की निमित्त होती है। वृद्ध या क्षीण दोष धातुओं को क्षीण या वर्धन करके साम्यावस्था में लाने का साधन भी द्रव्य ही है। इस कथन की पुष्टि में उपपत्ति यह है कि द्रव्य एवं शरीर में तात्त्विक साम्यता है। दोनों ही पञ्चभूतात्मक हैं। द्रव्य के गुरु लघु शीतोष्ण स्निग्ध, रूक्षादि जो बीस गुण हैं ये ही गुण शरीर के दोष धातु मलों में भी होते हैं। अतः शारीर गुणों की क्षय या वृद्धि की अवस्था में उनके वर्धन एवं क्षपणार्थ तत्समान या तत्समान गुण भूयिष्ठ एवं विपरीत गुण वाले द्रव्यों का प्रयोग करके साम्यावस्था में रखने का साधन भी सतत द्रव्य सेवन ही है।

(१) गुणा ये उक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा। स्थानवृद्धिक्षयास्तस्माद् देहिनो द्रव्य हेतुकाः॥ सु० सू० अ० ४२। **(२) समानगुणाभ्यासो हि धातूनां वृद्धिकारणमिति।** च० सू० अ० १२। **(३) रसदोषसन्निपाते तु ये रसा यैर्दोषैः समानगुणाः समानगुणभूयिष्ठा वा भवन्ति ते तानभिवर्धयन्ति विपरीतगुणा विपरीतगुणभूयिष्ठा वा शमयन्त्यभ्यस्यमानाः।** च० वि० अ० १। **(४) धातवः पुनः शारीराः समानगुणैः समानगुणभूयिष्ठैर्वाऽप्याहारविकारैरभ्यस्यमानैर्वृद्धिं प्राप्नुवन्ति ह्रासं तु विपरीतगुणैर्विपरीतगुणभूयिष्ठैर्वाऽप्यभ्यस्यमानैः।** च०शा०अ० ६। सारांश में कह सकते हैं कि द्रव्यों के सम योग से ही शारीरिक तत्त्वों की साम्यावस्था होती है और यह साम्यावस्था ही आरोग्य है। (धातुसाम्यं ह्यरोगता)।

द्रव्य गुण विज्ञान का प्राधान्य—**(१) नित्यत्वसिद्धि**—आयुर्वेद का नित्यत्व किंवा शाश्वतत्व भी द्रव्यों के स्वभाव की नित्यता के अनुसार प्रमाणित किया गया है। **सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते स्वभावसंसिद्धिलक्षणत्वात् स्वभावनित्यत्वाच्च।** च० सू० अ० ३०। (२) आयुर्वेद की निरुक्ति में द्रव्यगुण की इयत्ता—जिसके द्वारा आयुष्य एवं अनायुष्य द्रव्यों और उनके गुण कर्मों का बोध होने के कारण भी इसको आयुर्वेद कहते हैं। **यतश्चायुष्याण्यनायुष्याणि, च द्रव्यगुणकर्माणि वेदयत्यतोऽप्यायुर्वेदः।** च० सू० अ० ३०। (३) चिकित्सा के चतुष्पाद-भिषक्, द्रव्य उपस्थाता (परिचारक) रोगी के गुणवत् होने पर ही विकारोपशमन में कारण होते हैं। चतुष्पाद में भिषक् के पश्चात् द्रव्य का ही प्राधान्य होता है। चतुष्पाद में द्रव्य को करण भी माना गया है। **भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्। गुणवत् कारणं ज्ञेयं विकारव्युपशान्तये।** च०सू०अ० ९।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(४) भिषक् के लिए द्रव्य ज्ञान की अपरिहार्यता—ओषधियों के नाम रूप गुणज्ञान एवं युक्ति (योजना) के अभाव में अमृत तुल्य ओषधि भी विष, अग्नि, शस्त्र के तुल्य विविध अनर्थों–आपदों का हेतु या प्राणघातक हो सकती है।

यथा विषं यथा शस्त्रं यथाऽग्निरशनिर्यथा। तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा ॥
औषधं ह्यनभिज्ञातं नामरूपगुणैस्त्रिभिः। विज्ञातं चापि दुर्युक्तमनर्थायोपपद्यते ॥
च० सू० अ० १।

चिकित्सा में असंदिग्ध सफलता के लिए द्रव्यों का परिचय, गुण कर्म एवं उनका युक्ति-परक प्रयोग विज्ञान का ज्ञान परमावश्यक है। इसके अभाव में भिषक् व्याधिनिग्रह में समर्थ नहीं होता है। चिकित्सक की युक्तिपूर्वक विकारोपशमन सिद्धि किंवा लक्ष्य द्रव्य ज्ञानाधीन ही होता है।

मात्राकालाश्रया युक्तिः सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठिता। तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा ॥
च० सू० अ० २। प्रारम्भ में रोग की परीक्षा करके तदनन्तर ओषधि की परीक्षा कर ज्ञानपूर्वक वैद्य को उसका चिकित्सा में प्रयोग करना चाहिये।

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्। ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥
च० सू० अ० २०।

(५) उपमा से प्राधान्यसिद्धि—द्रव्यगुण विज्ञान के ज्ञान के प्राधान्य को प्रगट करने के लिए अन्त में राजनिघण्टुकार का कथन अपरिहार्यरूप से उद्धृत करना आवश्यक है। इसमें विविध उपमाओं के साथ द्रव्यगुण के ज्ञान का महत्त्व प्रतिपादित हुआ है।

निघण्टुना विना वैद्यो विद्वान् व्याकरणं विना। अनभ्यासेन धानुष्कस्त्रयो हास्यस्य भाजनम् ॥
व्याकरण के ज्ञान के बिना विद्वान्, धनुर्विद्या के सतत अभ्यास के अभाव में धनुर्धर तथा वैद्य निघण्टु (द्रव्य गुण) ज्ञान के अभाव में अपनी-अपनी सिद्धि के क्षेत्र में हास्य के पात्र होते हैं। अतः प्रत्येक भिषक् के लिए निघण्टु का युक्तिपूर्वक ज्ञान अपरिहार्य है। वैद्य द्रव्यगुण के ज्ञान एवं युक्ति (योजना) ज्ञान के साथ ही चिकित्सा में सफलता प्राप्तकर यशस्वी बन सकता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य विज्ञानीय द्वितीय परिच्छेद

द्रव्य का लक्षण (१) क्रियागुणवत् समवायिकारणं द्रव्यं— सु० सू० अ० ४० (२) यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत्। तद् द्रव्यं। च० सू० अ० १। यत्राश्रिता यत्र समवेताः (समवायसम्बन्धेन स्थिताः)। कर्म च गुणाश्च कर्मगुणाः। कारणं समवायि यदिति समवायि कारणं यत्, द्रव्यमेव हि द्रव्यगुण-कर्मणां समवायिकारणम्। समवायि कारणं च तद् यत् स्वसमवेतं कार्यं जनयति; गुणकर्मणी तु न स्वसमवेतं कार्यं जनयतः, अतो न ते समवायिकारणे [च० द०] जिसमें गुण और कर्म समवाय सम्बन्ध (नित्य सम्बन्ध) से स्थित-आश्रित हों तथा जो अपने कार्य द्रव्यों का समवायि कारण हो वह द्रव्य कहलाता है। द्रव्य में गुण, कर्म, द्रव्यत्व जाति समवाय सम्बन्ध से रहती है। जब तक द्रव्य का अस्तित्व या स्थिति बनी रहती है तब तक उसका अपने आश्रित गुणों एवं कर्मों के साथ नित्य या अविच्छिन्नात्मक आधाराधेय सम्बन्ध भी बना रहता है। द्रव्य के प्रस्तुत लक्षण से तथा वैशेषिक दर्शन के अनुसार भी द्रव्य शब्द से आकाश, वायु तेज, जल, पृथ्वी, आत्मा, मन, काल, दिक् इन ९ कारण द्रव्यों का भी ग्रहण होता है तथापि द्रव्यगुणाधिकारान्तर्गत पञ्च-महाभूतों से उत्पन्न मात्र कार्य द्रव्यों ओषध (हरीतकी, गुडूची, कस्तूरी, अभ्रक आदि) एवं आहार द्रव्यों (गोधूम, यव, घृत, दुग्ध, मांस आदि) का ही अर्थ ग्रहण अभीप्सित है। कारण द्रव्यों को इस परिभाषा से इसलिए भी पृथक् किया जा सकता है कि आत्मा, मन के समान काल एवं दिक् भी द्रव्य की उत्पत्ति में निमित्त कारण होते हैं, समवायी कारण नहीं होते हैं। जबकि कार्य द्रव्य समवायी कारण होते हैं। कारण द्रव्यों में रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभावादि स्थित नहीं होते हैं। ये सभी कार्य द्रव्यों (ओषधि) में रहते हैं। महर्षि चरक के द्रव्यों के पाञ्चभौतिकत्व प्रसङ्ग में प्रतिपादित विचारों से भी इस कथन की पुष्टि होती है। पाञ्चभौतिक चेतनाचेतन द्रव्य के शब्दादि, गुर्वादि गुण एवं वमनादि कर्म हैं। **सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिकमस्मिन्नर्थे तच्चेतनावदचेतनं च। तस्य गुणाः शब्दादयो गुर्वादयश्च द्रवान्ताः। कर्म पञ्चविधमुक्तं वमनादि।** च० सू० अ० २६।

श्री नागार्जुन ने रस, गुण, विपाक, वीर्य और कर्म इन पांचों के आश्रयभूत पदार्थ को द्रव्य माना है। **रसादीनां पञ्चानां भूतानां यदाश्रयभूतं तद् द्रव्यम्** [र० वै०] आचार्य भावमिश्र ने इसी अर्थ को यों व्यक्त किया है।

रसो गुणस्तथा वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च। पञ्चानां यत् समाहारस्तद् द्रव्यमिति कथ्यते। जिसमें रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव रहते हैं वह द्रव्य होता है। उदाहरणतया आमलकी पञ्चरस (लवण के अतिरिक्त) रूक्ष, लघु गुणों, मधुर विपाक, शीतवीर्य त्रिदोषहर प्रभाव, दीपन, दोषानुलोमन, विरेचनोपग, चक्षष्य, वयःस्थापन आदि कर्मों का आश्रय है, एवं च्यवनप्राश, ब्राह्मरसायन, धात्री-रसायन, धात्रीलौह, धात्र्यरिष्ट आदि ओषध कल्पनाओं का समवायी कारण है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पञ्च महाभूतों से कार्यद्रव्यों की निष्पत्ति——द्रव्यगुणविज्ञानाभिप्रेत यावन्मात्र द्रव्य पाञ्चभौतिक होते हैं। **सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिकमस्मिन्नर्थे।** च० सू० अ० २६।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पञ्चभूतों के समुदाय से कार्य द्रव्यों की उत्पत्ति होती है। अतः सभी द्रव्य पाञ्चभौतिक कहलाते हैं, किन्तु इनके पाँच भौतिक होने पर भी जिस महाभूत की (महाभूत के गुणाधिक्य से) जिस द्रव्य में प्रधानता या अधिकता होती है उसकी अभिव्यक्ति उस विशिष्ट महाभूत के अनुसार पार्थिव, आप्य, तैजस, वायव्य, नाभस द्रव्य नाम्ना होती है। (१) **तत्र पृथिव्यप्तेजो-वाय्वाकाशानां समुदायात् द्रव्याभिनिर्वृत्तिः, उत्कर्षस्त्वभिव्यञ्जको भवति-इदं पार्थिवम् इदमाप्यम्, इदं वायव्यम् इदमाकाशीयमिति।** सु० सू० अ० ४१।

(२) **पञ्चभूतात्मकं तत्तु क्ष्मामधिष्ठाय जायते। अम्बुयोन्यग्नि-पवन-नभसां समवायतः॥ तन्निर्वृत्तिर्विशेषश्च, व्यपदेशस्तु भूयसा।** अ० हृ० सू० अ० ९।

द्रव्योत्पत्ति में महाभूतों का विशिष्ट कर्तृत्व——द्रव्य निष्पत्ति में पृथिवी अधिष्ठानभूत (आधार) होता है। जल योनिरूप उसके अवयवों के विभिन्न अणुओं का संमिश्रण करता है। प्रायः योनि शब्द उत्पत्ति स्थान बोधक होता है किन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में 'यु' मिश्रणे इस धातु से योनि शब्द की निष्पत्ति हुई है। शेष तेज वायु आकाश के समवाय से ओषध एवं आहार द्रव्यों की स्वरूपोत्पत्ति तथा एक दूसरे से पार्थक्य होता है। द्रव्योत्पत्ति में पृथ्वी, जल भूतों के कार्यों का प्रसंगारम्भ में ही उल्लेख किया गया है। तेज महाभूत द्रव्य निष्पत्ति में काठिन्य, पाक, रूप वर्णोत्पत्ति, वायु से ऊर्ध्वाधः तिर्यक्, विकास क्रिया की गति तथा आकाश अवकाश रूप में–इस प्रकार पञ्चमहाभूत द्रव्यों की निष्पत्ति एवं द्रव्यों के एक दूसरे से भिन्न-भिन्न होने में कारणभूत होते हैं। **पृथिवी प्रधानकारणत्वमुपादानलक्षणं भजते, तदवयवानां मिश्रणं करोति जलम्, अग्निरूपादानं पचति, वायुरूर्ध्वाधस्तिर्यगवयवानुत्कर्षती, नभोऽवकाशं ददाति; सर्वत्रैवायं क्रमः। आग्नेये चित्रकादौ पृथिव्येन प्रधानकारणे, नाभसे वैण्वादौ, वायव्ये तुम्ब्यादौ च।** अ० हृ० सू० अ० ९–हृ० बो०।

द्रव्याभिनिवृत्ति के लिए पञ्चमहाभूत समुदाय रूप में अपने भिन्न-भिन्न कार्य भी **अन्योन्यानुप्रविष्ट से, परस्परानुग्रह एवं परस्परसंसर्ग से सम्पादन करते हैं। परस्पर संसर्गात् परस्परानुग्रहात् परस्परानुप्रवेशाच्च सर्वेषु सर्वेषां सान्निध्यमस्ति, उत्कर्षापकर्षात्तु ग्रहणम्।** सु० सू० अ० ४२।

द्रव्योत्पत्ति में पञ्चमहाभूतों का आनुपातिक योग——आयुर्वेद मनीषियों ने द्रव्य निष्पत्ति में महाभूतों का आनुपातिक दृष्टि से विचार नहीं किया है। यह एक विचारणीय बिन्दु है। जबकि वेदान्त दर्शन में एतदर्थ प्रस्फुटित विचार मिलता है। वेदान्ताचार्यों के अभिमतानुसार विशिष्ट महाभूत प्रधान द्रव्य में स्वमहाभूत का अर्धभाग तथा शेष अर्ध भाग में चारों महाभूतों के प्रत्येक का समानांश आठवाँ भाग होता है। महाभूतों की इस संयोगात्मक प्रक्रिया को पञ्चीकरण कहते हैं। उदाहरण के लिए पार्थिव द्रव्य में पृथिवी महाभूत अर्धांश तथा शेष अर्ध भाग में जल, अग्नि, वायु, आकाश के समानांश अर्थात् अष्टमांशतः रहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

महाभूत प्रधान द्रव्य	अन्योन्यानुप्रवेश या पञ्चीकृतमहाभूत				
	आकाश	वायु	तेज	जल	पृथिवी
नाभस द्रव्य में	५०%	१२½%	१२½%	१२½%	१२½%
वायव्य द्रव्य में	१२½%	५०%	१२½%	१२½%	१२½%
तैजस द्रव्य में	१२½%	१२½%	५०%	१२½%	१२½%
आप्य द्रव्य में	१२½%	१२½%	१२½%	५०%	१२½%
पार्थिव द्रव्य में	१२½%	१२½%	१२½%	१२½%	५०%

द्रव्य का वर्गीकरण

विश्व में द्रव्यों की संख्या असीमित एवं असंख्य है। सभी द्रव्यों का निर्देश एवं विवरण करना नितान्त दुष्कर है। अतः ज्ञात द्रव्यों के सुगम ज्ञान के लिए जो जो द्रव्य समान गुण धर्म या जाति वाले होते हैं उनके पृथक्-पृथक् वर्ग बनाकर वर्गानुसार सुव्यवस्थित अध्ययन विधि का शास्त्रकारों ने उल्लेख किया है। उस विधि या शैली (वर्गीकरण) के अनुसार द्रव्य का वर्णन किया जाता है।

(१) कार्यकारण वर्ग—कार्य कारण भेद से द्रव्य दो प्रकार के होते हैं (१) कारण द्रव्य (२) कार्य द्रव्य। कारण द्रव्य नौ होते हैं जो औषधाहार रूप सभी कार्य द्रव्यों की उत्पत्ति करते हैं। कारण द्रव्यों के बारे में परिच्छेद के आरम्भ में ही विचार किया गया है। द्रव्यगुण विज्ञान में कार्य द्रव्यों का ही वर्णन किया जाता है। अतः आगे यहाँ पर भी कार्य द्रव्यों का ही वर्गों की दृष्टि से विवरण दिया गया है।

(२) चेतनाचेतन वर्ग—सृष्टि में सभी द्रव्य चेतना भेद से चेतन और अचेतन दो प्रकार के होते हैं। **तच्चेतनावदचेतनञ्च**। च० सू० अ० २६। वैदिक साहित्य में यह वर्गीकरण साशन तथा अनशन भेद से किया गया है। **ततो विष्वङ् व्यक्रामत साशनानशने उभे**, पुरुष सूक्त मं० ४। इन्हीं साशन और अनशन द्रव्यों को क्रमशः सेन्द्रिय (सजीव) चेतन और निरिन्द्रिय (निर्जीव) अचेतन कहते हैं। जो द्रव्य सेन्द्रिय (इन्द्रिय युक्त) चेतना (आत्मा) अभिव्यक्ति युक्त हो वह सेन्द्रिय (Organic) कहलाता है जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्षादि। जो द्रव्य निरिन्द्रिय (इन्द्रिय रहित) चेतनारहित हो वह निरिन्द्रिय (Inorganic) अचेतन कहलाता है जैसे पार्थिव द्रव्य-स्वर्ण, ताम्रादि। **सेन्द्रियं चेतनं द्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम्**। च० सू० अ० १।

(३) **चेतन वर्ग**—चेतन द्रव्य भी बहिरन्तश्चेतन और अन्तश्चेतन भेद से दो प्रकार के होते हैं। बहिरन्तश्चेतन द्रव्यों की बाह्य आभ्यन्तर चेतनायें स्पष्ट ज्ञात होती हैं जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, समुद्रीय जन्तु, इन सब में मनुष्य जाति उत्कृष्ट होती है। अन्तश्चेतन (अन्तः संज्ञा) वर्ग औद्भिद (वनस्पति) में चेतना की अभिव्यक्ति अस्पष्ट एवं प्रच्छन्न रूप में होती है। आचार्य चक्रपाणि दत्त ने इन प्रच्छन्न पञ्चेन्द्रिय क्रियाओं को उदाहरण देकर इस प्रकार स्पष्ट किया है। **तथाहि-सूर्यभक्ताया यथा यथा सूर्यो भ्रमति तथा तथा भ्रमणात् दृगमनुमीयते; तथा लवलीमेघस्तनित श्रवणात् फलवती भवती, तेन श्रोत्रमनुमीयते; बीजपूरकमपि शृगालादिवसागन्धेनातीव फलवद्भवति, तेन घ्राणमनुमीयते; चूतानां च मत्स्यवसासेकात् फलाढ्यतया रसनमनुमीयते; लज्जालोश्च हस्तस्पर्शमात्रेण संकुचितपत्रायाः स्पर्शानुमानम्**। च० सू० अ० १—च० द०।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(४) योनि भेद से—**तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं जाङ्गममौद्भिद–पार्थिवम्** । च० सू० अ० १ । (१) **जङ्गम द्रव्य**–गच्छतीति जङ्गमः–जो एक स्थान से दूसरे स्थान में गमन करते हैं 'जङ्गम' कहलाते हैं । ऐसे प्राणियों से प्राप्त द्रव्य कस्तूरी, गोलोचन, मधु, मांस, घृत, दुग्ध मूत्रादि जाङ्गम द्रव्य कहे जाते हैं । (२) **औद्भिद द्रव्य**–'उद्भिद्य पृथिवीं जायत इति औद्भिदं' जो द्रव्य पृथ्वी से फूटकर बाहर आते हैं, औद्भिद कहलाते हैं । जैसे वृक्ष, गुल्म, लता प्रभृति । इनसे प्राप्त मूल, पत्र, पुष्प, फल, बीज, निर्यासादि औद्भिद द्रव्य कहे जाते हैं । (३) **पार्थिव द्रव्य**–पृथिवीविकारः पार्थिवमू–पृथ्वी के विकार रूप द्रव्यों जैसे सुवर्ण, पारद, गन्धक, हरिताल, सैन्धव लवणादि को पार्थिव (भौम) कहते हैं ।

(क) जङ्गम द्रव्यों के ४ भेद–(१) जरायुज (२) अण्डज (३) स्वेदज (४) उद्भिज्ज

(१) **जरायुज**–जो प्राणि गर्भाशय में जरायु से आवृत होकर उत्पन्न होते हैं जैसे मनुष्य, पशु, (२) **अण्डज**–जो प्राणि अण्डों से उत्पन्न होते हैं जैसे पक्षी सर्पादि । (३) **स्वेदज**–जो प्राणि मनुष्य, पशुओं के स्वेद एवं भूवाष्प से उत्पन्न होते हैं जैसे–कृमि, कीट, जूँ आदि (४) **उद्भिज्ज** जो प्राणि पृथिवी के अन्दर कुछ समय रहकर पुनः पृथिवी को भेद कर बाहर निकलते हैं जैसे इन्द्रगोप, गण्डूपद आदि । **जङ्गमाः खल्वपि चतुर्विधाः जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जाः । तत्र पशुमनुष्यव्यालादयो जरायुजाः खग–सर्प–सरीसृपप्रभृतयोऽण्डजाः, कृमिकीटपिपीलिकाप्रभृतयः स्वेदजाः, इन्द्रगोपमण्डूकप्रभृतयः उद्भिज्जाः** । सु० सू० अ० १ ।

(ख) औद्भिद् द्रव्यों के ४ भेद (१) वनस्पति (२) वानस्पत्य (३) ओषधि (४) वीरुध्

(१) **वनस्पति**–पुष्पों के बिना भी जिसमें फल आते हैं जैसे वट, अश्वत्थ, उदुम्बर । **विमर्श** वनस्पति भेद में वट, अश्वत्थ उदुम्बर वृक्षों के नाम दिये गये हैं । ये सभी वटकुल (Urticaceae Family) के हैं तथा यह कुल सपुष्प वर्ग में आता है । वस्तुतः इस कुल के पुष्पों में छोटे-छोटे स्त्री और पुँपुष्प होते हैं जो कर्णिकाओं के अन्दर होते हैं । इस विशेष प्रकार को हाइपेन्थोडियम कहते हैं । अतः वनस्पति में अपुष्पा शब्द का अर्थ निषेधार्थ में न करके इषर्थे नञ् अर्थात् अल्पार्थ में सूक्ष्म या गुह्य पुष्प ही करना चाहिए । मयूरशिखा-हंसपदी आदि औद्भिद पुष्प विहीन होते हैं । इस वर्ग को Cryptogamia कहते हैं ।

(२) **वानस्पत्य**–जिन पादपों के पुष्प फल दोनों स्पष्ट दृश्यमान होते हैं जैसे हरीतकी, आम्र जम्बू आदि । इस वर्ग को Phanerogamia कहते हैं ।

(३) **ओषधि**–फलों के पक्व होने पर जो औद्भिद् नष्ट हो जाता है जैसे गेहूँ, जौ आदि ।

(४) **वीरुध्**–गुल्म, लता-प्रसरी आरोही जातीय औद्भिद होते हैं जैसे लता-अमृता, जीवन्ती, गुल्म-करवीर, अर्कादि । **तासां स्थावराश्चतुर्विधाः-वनस्पतयः, वानस्पतयः (वृक्षाः), वीरुधः ओषधयरिति । तासु अपुष्पाः फलवन्तो वनस्पतयः पुष्पफलवन्तो वृक्षाः (वानस्पत्यः) प्रतानवत्यः स्तम्बिन्यश्च वीरुधः. फलपाकनिष्ठा ओषधयः इति** । सु० सू० अ० १।

(५) पाञ्चभौतिक वर्ग–द्रव्यों के पाँच भौतिक होने पर भी प्राधान्य-उत्कर्ष महाभूत के अनुसार (भूत वैशिष्ट्य गुण कर्मानुसार) (१) पार्थिव (२) आप्य (३) आग्नेय (४) वायव्य (५) आकाशीय द्रव्य होते हैं ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(१) **पार्थिव द्रव्य**—गुरु, खर, कठिन, मन्द, स्थिर, सान्द्र, स्थूल और गन्धगुणबहुल ईषत्कषाय, मधुर रस प्रधान होते हैं। उपचय, संघात, गौरव, स्थैर्य-अधोगमन पार्थिव द्रव्यों के कर्म हैं।

तत्र स्थूलसान्द्रमन्दस्थिरगुरुकठिनं गन्धबहुलमीषत्कषायं प्रायशो मधुरमिति पार्थिवम्; तत् स्थैर्यबलगौरवसंघातोपचयकरं विशेषतश्चाधोगतिस्वभावमिति। सु० सू० अ० ४१।

(२) **आप्यद्रव्य**—द्रव, स्निग्ध, शीत, मन्द, मृदु, पिच्छिल, स्तिमित, सर, रसगुण, एवं ईषत्कषाय-अम्ललवण, मधुर रस प्रधान होते हैं। क्लेदन, स्नेहन, बन्धन, विष्यन्द, मार्दव, प्रह्लादन आप्य द्रव्यों के कार्य हैं। **शीतस्तिमितस्निग्ध-मन्दगुरुसरसान्द्रमृदुपिच्छिलं रसबहुलमीषत्कषायाम्लवणंमधुर रसप्रायमाप्यम्; तत् स्नेहनह्लादनबन्धनविष्यन्दनकरमिति।** सु० सू० अ० ४१।

(३) **आग्नेय द्रव्य**—उष्ण, तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष, विशद, खर, और रूपगुण बहुल; ईषदम्ल लवण-कटु रस प्रधान होते हैं। दाह, पाक, प्रभा-प्रकाश-वर्णकर, ऊर्ध्वगमन आग्नेय द्रव्यों के कर्म हैं। **उष्णतीक्ष्णसूक्ष्मरूक्षखरलघुविशदरूपबहुलमीषदम्ललवणं कटुकरसप्रायं विशेषतश्चोर्ध्वगतिस्वभावमिति तैजसं, तद्दहनपचनदारणतापनप्रकाशनप्रभावर्णकरमिति।** सु० सू० अ० ४१।

(४) **वायव्य द्रव्य**—लघु, शीत, रूक्ष, खर, विशद, सूक्ष्म, विकाशि, व्यवायी और स्पर्शगुण, बहुल ईषत् तिक्त, कषाय रस प्रधान होते हैं। रौक्ष्य, वैशद्य, लाघवकर, ग्लानि-ग्लपन, कर्शन, आशुकारी वायव्य द्रव्यों के कर्म हैं। **सूक्ष्मरूक्षखरशिशिरलघुविशदं स्पर्शबहुलमीषत्तिक्तं विशेषतः कषायमिति वायवीयं, तद्वैशद्यलाघवग्लपनविरूक्षणविचारणकरमिति।** सु० सू०अ० ४१।

(५) **आकाशीय द्रव्य**—मृदु, लघु, सूक्ष्म,श्लक्ष्ण, व्यवायी, विशद, विविक्त और शब्दगुण बहुल अव्यक्त रस प्रधान होते हैं। मृदुता, सौषिर्य, लाघव, विवक्ति-पृथक्-संघात, विवरण आकाशीय द्रव्यों के कर्म हैं। **श्लक्ष्णसूक्ष्ममृदुव्यवायिविशदविविक्तमव्यक्तरसं शब्दबहुलमाकाशीयं तन्मार्दवसौषिर्यलाघव-करमिति।** सु० सू० अ० ४१।

(६) **औषधाहारवर्ग**—द्रव्यों के औषध एवं आहार दो मुख्य वर्ग होते हैं। **आहारद्रव्य** ये रस प्रधान होते हैं। इनके उपयोग से विशेषतः रसधातु तथा रस से पोषित रक्तादि धातुओं का पोषण होता है। शीतोष्ण आदि वीर्यवाची गुणों की उत्पत्ति अप्राधान्य रूप से होती है। जैसे शालि, गोधूम, यव मुद्ग, माष, चणकादि। **यद् द्रव्यमुपयुक्तं देहे रसधातुं तद् द्वारा रक्तादिधातूंश्च प्राधान्येन पुष्णाति, न त्वौषधद्रव्यवत् प्रधानतया देहे शीतोष्णादीन् वीर्यसंज्ञकान् गुणाञ्जनयति तद् रसप्रधानं, तदाहार-द्रव्यम्; यवगोधूमादि।** च० सू० अ० २। **औषधद्रव्य** ये वीर्य प्रधान होते हैं। इनके प्रयोग से शरीर में वीर्यसंज्ञक शीतोष्णादि गुणों की मुख्यतया उत्पत्ति होती है। आहार द्रव्यों के समान रसादि धातुओं का पोषण इनका मुख्य कार्य नहीं होता है, जैसे पिप्पली, शुण्ठी आदि। **वीर्यप्रधानमिति वीर्यं प्रधानं यस्मिन्निति। यद् द्रव्यमभ्यवहृतं देहे वीर्यसंज्ञकाञ्शीतोष्णादिगुणान्, प्राधान्येनोपजनयति, न त्वाहार-द्रव्यवत् प्रधानतया रसादिधातून् पुष्णाति तद्वीर्यप्रधानमौषधद्रव्यम् यथा शुण्ठी-पिप्पल्यादि।** च०सू०अ०२।

औषध के शीत-उष्णरूक्षादि वीर्यों के तारतम्य भेद से तीक्ष्णवीर्य (शुण्ठी) मध्यवीर्य (बिल्व-अग्निमन्थ) मृदुवीर्य (आमलकी) तीन अवान्तर भेद होते हैं। **तत्राप्यौषधद्रव्यं त्रिविधं वीर्य-भेदात्-तीक्ष्णवीर्यं यथा शुण्ठ्यादि, मध्यवीर्यं बिल्वाग्निमन्थादि, मृदुवीर्यञ्चामलकादि। सु० सू० अ० २। च० द०।**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(७) द्रव्यप्रभाव भेद से—द्रव्य तीन प्रकार के होते हैं (१) दोष प्रशमन (२) धातु प्रदूषण (३) स्वस्थहित। (क) **किंचिद्दोषप्रशमनं किंचिद्धातुप्रदूषणम्। स्वस्थवृत्तौ मतं किंचित् त्रिविधं द्रव्यमुच्यते। च० सू० अ० १।**

(ख) शमनं कोपनं स्वस्थहितं द्रव्यमिति त्रिधा। अ० हृ० सू० अ० १।

(१) दोषप्रशमन द्रव्य—कतिपय द्रव्य अपने प्रभाव से विकृत दोषों एवं विकृत दोषों से दूषित रसरक्तादि धातुओं का शमन या प्रकृतिस्थ करते हैं। जैसे आमलकी में स्थित अम्ल, कटुरस पित्त को दूषित न करके द्रव्यप्रभाव से पित्त एवं त्रिदोषशामक होता है। **किंचिदिति न सर्वम्। दोषस्य-दोषयोर्दोषाणाम् वा प्रशमनं दोषप्रशमनम्। दोषग्रहणेन दुष्टा रसादयोऽपि गृह्यन्ते। तेन द्रव्यमहिम्ना यद्दोषाणां दुष्टानां रसादीनां धातूनां वा शमनमामलक-दुरालभादि तद् गृह्यते।** सु० सू० अ० ४६।ड०।

(२) धातुप्रदूषण—कुछ द्रव्य अपने स्वभाव से समावस्थित धातुओं-दोष, धातु, मलों (समावस्था में ये सभी शारीरघटक शरीर का धारण करते हैं) को दूषित करते हैं जैसे विष, यवक। **धातुप्रदूषणमिति वातादीनां समत्वेन शरीरधारणत्मकानां तथा रसादीनां च दूषणं किंचित्, यथा यवक मन्दकविषादि।** सु० सू० अ० ४६।

(३) स्वस्थहित (एकान्ततः हित द्रव्य) कुछ द्रव्य अपने प्रभाव से दोषों का शमन या कोपन न करके केवल स्वस्थ (निरोग पुरुष) के लिए हितकर होते हैं जैसे गोधूम, शालि, यवादि। **सुष्ठु अवतिष्ठते नीरोगत्वेनेति स्वस्थः, तस्य वृत्तिः स्वस्थरूपतयाऽनुवर्तनं, तत्र स्वस्थवृत्तौ मतमभिमतं पूजितमिति यावत्।** सु० सू० अ० ४६।

विमर्श—उपर्युक्त तीनों वर्गों के द्रव्य प्रायः अपने २ प्रभावानुसार कार्य करते हैं किन्तु इनके अपवाद भी पाये जाते हैं। जैसे स्वस्थहित गोधूम, रक्तशालि षष्टिकशालि-यवादि द्रव्य दोषप्रशमनकर भी होते हैं जैसे ज्वर में रक्तशालि का प्रयोग होता है। इसी प्रकार अन्य स्वस्थहित द्रव्यों का भी प्रयोग रोग एवं दोषानुसार किया जाता है। दोषप्रशमन द्रव्य आमलकी का अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर अग्निमान्द्यादि विकार होते हैं। धातुप्रदूषण द्रव्य विष का युक्तिपूर्वक प्रयोग उदररोगादि में दोष प्रशमन के लिए किया जाता है। मन्द विष क्षीण दोष को वृद्ध करके साम्यावस्था में लाकर दोषप्रशामक होता है। दोषशमन, दोषप्रकोपण और स्वस्थहित द्रव्यों का विवरण नवम परिच्छेद में किया गया है।

(८) षड्रसवर्ग

महर्षि चरक ने मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय रस द्रव्यों का रसस्कन्ध नाम से तथा महर्षि सुश्रुत ने रसवर्ग नाम से वर्णन किया है।

मधुरद्रव्य—जीवक, ऋषभक, जीवन्ती, तामलकी (भुइं आंवला) काकोली, क्षीरकाकोली मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मेदा, महामेदा, कर्कटश्रृंगी, श्रृंगाटक, गोरखमुण्डी, महा-श्रावणी (बड़ी गोरखमुण्डी) सहदेई, बला, अतिबला नागबला विदारीकन्द, क्षीरविदारी, विधारा, अश्वगन्धा, मूर्वा, गोखरू, शतावरी, शतपुष्पा, मधूक, मधुयष्टि, द्राक्षा, खर्जूर, परुषक, आत्मगुप्ता (कौंच के बीज) कमलगट्टा, कशेरु, राजकशेरु (बड़ा कशेरु) राजादन (खिरणी) निर्मली गंभारी-फल, ताल, खर्जूरमस्तक (खजूर की ताड़ी) इक्षु, इक्षुविकार (गुड़, शर्करा) दर्भ, कुश, कास,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ऋष्यप्रोक्ता (पीतपुष्पा बला) अभीरु पत्री (शतावरी का भेद) क्षीरवल्ली (विदारीकन्द भेद) वंशलोचन, पद्मक, प्रियाल, नारिकेल, त्रपुष, कुष्माण्ड, शालि, षष्टिक, यव, गोधूम, मुद्ग, माष, क्षीर घृत, मधु, वसा, मज्जा, सुवर्ण, सुश्रुतोक्त काकोल्यादिगण के द्रव्य।

(१) च० वि० अ० ८। (२) सु० सू० अ० ४२।

अम्लद्रव्य—आम्र, कोशाम्र (क्षुद्राम) आम्रातक, लकुच, करमर्द (करौंदा) वृक्षाम्ल (कोकम) अम्लवेतस, कुवल (बड़ा वेर) दाडिम, मातुलुङ्ग (बीजौरा) आमलकी, तिन्तिडीक, दन्तशठ (जम्बीर) एरावतक (नारङ्गी) धन्वन (धामन) कपित्थ, वदर, भव्य (चाल्ता), निम्बूक, अम्लिका (इमली) सभी के फल तथा आम्रातक, चांगेरी, अम्लिका, कोल, बदर, सभी के पत्र, आसवारिष्ट, सुरा, सौवीर, तुषोदक, मदिरा, मधु (मद्यभेद) सीधु, शुक्त (सिरका) दधि, मस्तु, (दधिमण्ड) तक्र, धान्याम्ल (काञ्जी) रजत (१) च० वि० अ० ८ (२) सु० सू० अ० ४२।

लवणद्रव्य—सैन्धव, सौवर्चल लवण (सोंचरनमक) काललवण (काला नमक) विड्लवण (बिड नमक) उद्भिद नमक, सामुद्र लवण, पांशुज (पांगा) बालुक, औषर एवं सभी लवण भेद यवक्षार। (१) च० वि० अ० ८ (२) सु० सू० अ० ४२

कटुद्रव्य—पिप्पली, पिप्पलीमूल, गजपिप्पली, चव्य, चित्रक, शुण्ठी, मरिच, आर्द्रक, विडङ्ग, धान्यक, यवानी, अजमोदा, जीरक, पीलु, एला, कुष्ठ, भल्लातक, हिंगु, मूलक (मूली) सर्षप, रसोन, पलाण्डु, करञ्ज, शिग्रु, तुलसी, सुरस-कुठेरक-अर्जक सभी तुलसी भेद, पर्णास (पुदीना) क्षवक (नकछिकनी) तेजबल, कर्पूर, बाकुची, गुग्गुलु, देवदारु क्षार, मूत्र, पित्त और सुश्रुतोक्त सुरसादि, पिप्पल्यादि गण के द्रव्य। (१) च० वि० अ० ८ (२) सु० सू० अ० ४२।

तिक्तद्रव्य—चन्दन, आरग्वध, नक्तमाल (लताकरंज) निम्ब, कुटज, इन्द्रयव, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, मुस्तक, किराततिक्त (चिरायता) कुटकी, त्रायमाणा, करवीर, वासा, मण्डूकपर्णी, कर्कोटक (बांझककोड़ा) पटोल, कारवेल्लिका (छोटी करेली) कारवेल्लक (करेला) काकमाची, काकोदुम्बरिका (कठगूलर) अतीस, गिलोय, बकुल (मौलसरी) सोमवल्क (श्वेतखदिर) सप्तपर्ण, जाती, मन्दार, बाकुची, वचा, तगर, अगर, बालक, (सुगन्ध बाला), उशीर (खस), पुनर्नवा, कासमर्द, पाठा, करीर, वरुण, बृहतीद्वय, त्रिवृत्, कालमेघ, अपामार्ग, सुवर्चला ज्योतिष्मती, शंखपुष्पी, सुश्रुतोक्त गुडूच्यादि, आरग्वधादिगण के द्रव्य। (१) च० वि० अ० ८ (२) सु० सू० अ० ४२।

कषायद्रव्य—प्रियङ्गु, सारिवा (अनन्तमूल), आम्रास्थि (आम की गुठली) पाठा, श्योनाक, लोध्र, मोचरस, मंजिष्ठा, धातकीपुष्प, भार्ङ्गी, पद्मकेशर (कमल का केशर) जम्बू (जामुन) प्लक्ष (पाखर) वट, कपीतन (पारस पीपल) उदुम्बर, अश्वत्थ, भल्लातक, अश्मन्तक, शिरीष, शिंशिपा खदिर, सोमवल्क (श्वेत खदिर) तिन्दुक (तेंदू) बदर, सप्तपर्ण (छतिवन) स्यन्दन (तिनिश) असन, अर्जुन, इरिमेद, बीजक (विजयसार) परिपेलव (केवटीमोथा) कदम्ब, शल्लकी (सलई) जिङ्गिनी, कास, कट्फल, वंश, पद्माख, अशोक, शाल, धव, सर्ज, भूर्जपत्र (भोजपत्र) शणपुष्पी (घण्टारवा) गुग्गुलु, शमीवृक्ष, देवदारु, नागकेशर, पारिजात (हारश्रृंगार) विभीतक, पाटला, पुष्करबीज (कमलगट्टा) बिस (कमल का मूल) मृणाल (कमल नाल), ताल-खर्जूर के अङ्कुर, बकुल (मौलसरी) कतक (निर्मली) पाषाणभेद, मदनफल, कोविदार तथा सुश्रुतोक्त रोध्रादि,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

न्यग्रोधादि, अम्बष्ठादि, प्रियंग्वादि गण के द्रव्य।(१) च० वि० अ० ८ (२) सु० सू० अ० ४२।

(९) गुणभेद से—गुण विज्ञानीय तृतीय परिच्छेद में शीतोष्ण, गुरु, लघ्वादि २० गुणों के अनुसार वानस्पतिक, जाङ्गम, पार्थिव भेद से द्रव्यों का नामोल्लेख किया गया है।

(१०) विपाक भेद से—विपाक भेद से मधुरविपाकी, अम्लविपाकी, कटु विपाकी या गुरु, लघु विपाकी द्रव्य होते हैं। इस सम्बन्ध में विपाक विज्ञानीय पंचम परिच्छेद में विचार किया गया है।

(११) वीर्य भेद से—महर्षि चरक ने ज्वराधिकार में चन्दनाद्य तैल और अगुर्वाद्य तैल में शीतवीर्य उष्णवीर्य द्रव्यों का उल्लेख किया है।

उष्णवीर्य द्रव्य—अगरु, कुष्ठ, तगर, पत्रज (तेजपत्र) जटामांसी, शैलेय (छड़ीला) गन्धतृण, हरेणुका (रेणुका), एला, दारचीनी, गुग्गुलु, तमालपत्र, यवानी, रोहिष, सरल, शल्लकी, (सलई) देवदारु, अरणी, बिल्व, अरलु (सोनापाठा) गंभारी, पाटला, श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, बृहती, कण्टकारी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, एरण्ड, शिग्रु, वरुण, अर्क, चिरबिल्व, तिल्वक (लोध) शठी (कपूर कचरी) पुष्करमूल, उरुबूक, अक्षीव, अश्मन्तक, मूलक, मातुलुङ्ग (बिजौरा) पीलुपर्णी, मेषशृंगी, हिंस्रा, भल्लातक, पुत्रजीवक, आस्फोता (अपराजिता) निशोथ, धान्यक, अजमोदा, पृथ्वीका (मगरैला) तुलसी एवं तुलसी की विविध जातियां, क्षवक, भूस्तृण, शुण्ठी, आर्द्रक, पिप्पली, अश्वगन्धा, रास्ना, वचा, बला, अतिबला, गुडूची, शतपुष्पा, नाकुली, गन्धनाकुली, ज्योतिष्मती, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, चित्रक, चांगेरी, तिल, बदर, कुलत्थ आदि। च० चि० अ० ३।

शीतवीर्य द्रव्य—रक्तचन्दन, श्वेतचन्दन, कालानुसार्य, पद्मा (भारंगी) पद्मकाष्ठ, उशीर, सारिवा, मधुयष्टि, नागकेशर, प्रपौण्डरीक (पुण्डरीक) उदीच्य (सुगन्धवाला) उत्पल, नलिन, कुमुद, सौगन्धिक, वन्यपद्म, शालूक (कमलकन्द) मृणाल, (कमल नाल) विष (कमल का मूल) शतपत्र (गुलाब) शैवाल (सैवार) कशेरुक, नल–कुश–कास–इक्षु–शर–शालिमूल, जम्बू, वेतस, अर्जुन, असन, अश्वकर्ण, तिनिश (स्यन्दन) शाल, धव, तिनिश, खदिर, कदम्ब के पुष्प, गंभारीफल, ताल, सर्ज, प्लक्ष (पिलखन) उदुम्बर, पारीष, अश्वत्थ, वट, धातकीपुष्प, दूर्वा, शृंगाटक (सिंघाड़ा) मंजीठ, मालकांगनी, पुष्कर बीज (कमल गट्टा) क्षीरिणी, बदर, कोविदार, कदली, अरिष्ट, शतपर्वा शीतकुम्भिका, रोहिणी, बलामूल, अतिबलामूल, विदारी, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, मूर्वा, मोचरस, वासापत्र, कुटज, आत्मगुप्ता, मौलश्री, पटोल पत्र, निम्ब पत्र, शाल्मलीत्वक्-पुष्प, नारिकेल, खर्जूर, द्राक्षा, प्रियाल (चिरौंजी) प्रियङ्गु, मधूक आदि। च० चि० अ० ३।

(१२) कर्मभेद से द्रव्यों के वर्ग—चरक ने द्रव्यों का कर्मानुसार विस्तृत विवेचन किया है। चरक ने पंचकर्मोपयोगी, पंचकर्मोपग, व्याधिहर-हिक्का-श्वास-कासादि; कर्मानुसार दीपन-हृद्य,बल्य, जीवनीय; दोषसंशोधन, दोषशमनानुसार तथा आहारोपयोगी द्रव्यों का विशद विवेचन किया है। सुश्रुत ने भी कर्मानुसार इन वर्गों के अतिरिक्त समान गुणधर्मी द्रव्यों के पृथक् २ सेंतीस गण लिखें है तथा आदि द्रव्य के नाम पर ही उनका नामकरण किया है जैसे प्रियंग्वादि, रोध्रादि, पिप्पल्यादि। सुश्रुत ने शल्यचिकित्सोपयोगी विभिन्न कर्मानुसार द्रव्यों का वर्ग क्रम में भी उल्लेख किया है। कर्मानुसार विभिन्न वर्गीकृत द्रव्यों का नवम परिच्छेद में वर्णन किया गया है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(१३) आहारोपयोग भेद से——संहिता एवं निघण्टु शास्त्रों में आहारोपयोगी प्रधान ११ वर्गों–शूकधान्य, शमीधान्यवर्ग, मांसवर्ग, शाकवर्ग, फलवर्ग, हरितवर्ग, मद्यवर्ग, जलवर्ग, गोरसवर्ग, इक्षुवर्ग, कृतान्न वर्ग के द्रव्यों का नवम परिच्छेद में विवेचन किया गया है।

सभी द्रव्यों का औषधत्व निरूपण——जगत् के औद्भिद, जाङ्गम, भौम सभी द्रव्य विशेष योजना (युक्ति) से एवं प्रयोजन की दृष्टि से प्रयुक्त करने पर औषध रूप हैं। कोई भी द्रव्य अनौषध नहीं है। सभी द्रव्य चूर्ण, क्वाथ, स्वरस, फाण्ट, वटी, स्नेह, आसवारिष्ट, प्रलेपादि युक्ति से वमन विरेचन, लंघन, बृंहणादि के द्वारा व्याधिप्रशमन प्रयोजन सिद्धि में प्रयुक्त होते हैं। स्वभावतः विरुद्ध विषादि द्रव्यों का भी योजनापूर्वक प्रयोग चिकित्सा में होता है। जैसे दूष्योदर, जलोदर, उदररोगाधिकार में सर्प विष का प्रयोग होता है। अत्यन्त अपथ्य उड़द का अर्दित में मक्खन के साथ जलेबी एवं इमरती के रूप में प्रयोग होता है।

विविध प्राणियों के मल, मूत्र, नख, चर्म, अस्थि, शृंग जैसे हेय समझे जाने वाले द्रव्यों का विविध रोगों में प्रभूत प्रयोग किया जाता है।

जैसे अत्यन्त अनुपयुक्त खर, मेष पुरीषरस का श्वास कास में नस्य प्रयोग होता है।

विविध तृणों, बालुकादि मृत्तिका का भी औषध्यर्थ स्वेदन के लिए प्रयोग होता है। स्वर्ण, हीरक, माणिक्य, कस्तूरी जैसे बहुमूल्य द्रव्यों का भी चिकित्सा में युक्ति पूर्वक प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार युक्ति और अर्थ-प्रयोजनवशात् सभी द्रव्य औषध रूप में व्यवहृत होते हैं।

द्रव्य केवल गुणप्रभाव से ही कार्मुक नहीं होते हैं अपितु द्रव्य द्रव्यस्वभाव से, गुण प्रभाव से और द्रव्य प्रभाव और गुण प्रभाव दोनों से कार्य करते हैं। द्रव्य समुचित काल में, योग्य अधिकरणों में, तत्तत् प्रयोजन के लिए, योजना विशेष से लंघन बृंहण वमन विरेचनादि करते हैं वह द्रव्यों का कर्म है। द्रव्य जिस शक्ति से कार्य करते हैं वह वीर्य है। जिस षड्धात्वात्मक मनुष्य शरीर में कार्य करते हैं वह अधिकरण है। जिस संस्कार-प्रकार, कषाय-स्नेह, आसवारिष्टादि एवं वमन, विरेचन, बस्ति, नस्यादि से कर्म करते हैं वह उपाय कहलाता है और जो आरोग्य सिद्ध करते हैं वह फल है। **(१) अनेनोपदेशेन नानौषधिभूतं जगति किंचिद् द्रव्यमुपलभ्यते-तां तां युक्तिमर्थं च तं तमभिप्रेत्य। न तु केवलं गुण प्रभावादेव द्रव्याणि कार्मुकाणि भवन्ति; द्रव्याणि हि द्रव्यप्रभावाद्, गुणप्रभावाद्, द्रव्यगुण प्रभावाच्च तस्मिंस्तस्मिन् काले तत्तदधिकरणमासाद्य तां तां च युक्तिमर्थं च तं तमभिप्रेत्य यत् कुर्वन्ति तत् कर्म, येन कुर्वन्ति तद्वीर्यं, यत्र कुर्वन्ति तदधिकरणं यदा कुर्वन्ति स कालः, यथा कुर्वन्ति स उपायः, यत् साधयन्ति तत् फलम्।** च० सू० अ० २६। **(२) इत्थं च नानौषधभूतं जगति किंचिद् द्रव्यमस्ति विविधार्थं प्रयोगवशात्।** अ० सं० सू० अ० १७। **(३) जगत्येवमनौषधम्। न किंचिद्विद्यते द्रव्यं वशान्नानार्थयोगयोः।** अ० हृ० सू० अ० ९।

'एवमनेन पञ्चमहाभूतारब्धेन गुर्वादिगुणयोगेन द्रव्याणां जगत्यनौषधभूतं न किंचिद् द्रव्यमस्ति अपि तु सर्वमेव द्रव्यं यत् सिकतापांश्वादिकं तदौषधं चिकित्सितम्। ···· (अरुण दत्त)। यदेकस्मिन्नर्थे नोपयुज्यते तदेवान्यस्मिन्नुपयुज्यते, यदेकेन योगेन नोपयुज्यते तदेवान्येनोपयुज्यते। यथा-अत्यन्तानुपयुक्तो ऽपि खरमेषादि विड्सो बिन्दुशः श्वासकासादौ, अत्यन्तापथ्यो ऽपि माष इण्डुरीकृतः सनवनीतो ऽर्दितादौ। हे०।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य प्राधान्यवाद—सुश्रुत संहिता एवं रसवैशेषिक सूत्र में द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाक इनमें से प्रत्येक पदार्थ की एकीयमत से प्रधानता मिलती है। स्थूल दृष्टि से यह प्रसङ्ग परस्पर विरोधि प्रतीत होता है क्योंकि जिस संदर्भ में द्रव्य का प्राधान्य वर्णित किया गया है। दूसरे प्रसंग में रस, गुणादि पदार्थों का भी प्राधान्योल्लेख होने से द्रव्य गौण-अप्रधान हो जाता है। यदि एतदर्थ समन्वय की दृष्टि से विचार किया जावे तो वस्तुतः इन विभिन्न पदार्थों के प्राधान्य प्रसंग में वैमत्य या विरोधाभास नहीं है। द्रव्य एवं तदाश्रित रसादि पदार्थों का सापेक्ष प्राधान्य नहीं मानना चाहिए। द्रव्यगुण विज्ञान में सभी पदार्थों का अपना २ स्वतन्त्र महत्त्व है किंवा द्रव्यादि सभी साथ मिलकर परस्परानुग्रह रूप से कार्य करते हैं।

द्रव्य प्राधान्य में आचार्य सुश्रुत ने निम्न बिन्दु प्रतिपादित किये हैं।

(१) व्यवस्थितत्व—द्रव्य स्थिर (व्यवस्थित) एवं अपरिवर्तित होता है। जबकि तदाश्रित रस गुण कर्मादि अस्थिर तथा द्रव्य की स्थिति के अनुसार परिवर्तनशील होते हैं। जैसे आम्रफल प्रारम्भ में कषायाम्ल, मध्य में अम्ल, अन्त में मधुर हो जाता है। इस प्रकार रसों में परिवर्तन होने पर भी आम्र द्रव्य आम्र ही रहता है। **केचिदाचार्या ब्रुवते-द्रव्यं प्रधानं, कस्मात् ? व्यवस्थितत्वात्; इह खलु द्रव्यं व्यवस्थितं न रसादयः, यथा आमे फले ये रसादयस्ते पक्वे न सन्ति।** सु० सू० अ० ४०।

(२) नित्यत्व—जल, आतप, काल, वातादि के प्रभाव से द्रव्य सम्पन्न रस-गन्ध गुण युक्त या विकृतरसगन्धयुक्त होता है किन्तु नित्यस्वभाव से द्रव्य दोनों अवस्थाओं में द्रव्यत्वरूप से बोधित होता है। नित्य वस्तु अनित्य की अपेक्षा प्रधान होती है। **नित्यत्वाच्च, नित्यं हि द्रव्यमनित्यागुणाः; यथा कालादिप्रविभागात्तदेव सम्पन्नरसगन्धं व्यापन्नरसगन्धं वा भवति।** सु० सू० अ० ४०।

(३) **आश्रयत्व**—द्रव्य-रस गुण वीर्य विपाक प्रभाव पांच पदार्थों का आश्रयभूत होने से (द्रव्यमाश्रयलक्षणं पञ्चानाम्) तदाश्रित पदार्थ परतन्त्र तथा आश्रित होने से गौण होते हैं। **(१) आश्रयत्वाच्च, द्रव्यमाश्रिता रसादयः।** सु० सू० अ० ४०। **(२) द्रव्यमाश्रयः आश्रयिणो रसादयः इति। आश्रयभूतः प्रधानः स्वामी दृष्ट इति।** भाष्य।

(४) स्वजात्यवस्थान—द्रव्य- अपनी पार्थिव, आप्यादि विशिष्ट जातियों में रहता है जबकि रसादि परिवर्तित होने पर अपनी जाति को भी छोड़ देते हैं। जैसे दुग्ध में स्थित मधुर रस मधुरता का परित्याग कर अम्लता को भी प्राप्त होता है किन्तु दुग्ध का आप्य जाति वैशिष्ट्य बना रहता है। **स्वजात्यवस्थानाच्च, यथाहि—पार्थिवं द्रव्यमन्यथाभावं न गच्छत्येवं शेषाणि।** सु० सू० अ० ४०।

(५) पञ्चेन्द्रियग्रहण—द्रव्याश्रित रस और गंध आदि गुणों का रसना, घ्राणादि एक विशिष्ट इन्द्रिय से ग्रहण होता है जबकि द्रव्य का पाँचों इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होने से भी द्रव्य प्रधान है। **पञ्चेन्द्रियग्रहणाच्च, पञ्चभिरिन्द्रियैर्गृह्यते द्रव्यं न रसादयः।** सु० सू० अ० ४०।

(६) शास्त्र प्रमाण—शास्त्र में भी द्रव्य का ही प्रधानरूप से निर्देश मिलता है। उदाहरणार्थ वातिकशोथ में विम्लापन के लिए मातुलुङ्ग, अग्निमन्थादि द्रव्यों का प्रयोगोल्लेख मिलता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है। रसगुणादि पदार्थों का उल्लेख नहीं मिलता है। **शास्त्रप्रामाण्याच्च, शास्त्रे हि द्रव्यं प्रधानमुपदेशे हि योगानां, यथा मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च इत्यादौ न रसादयःउपदिश्यन्ते।** सु० सू० अ० ४०।

(७) आरम्भसामर्थ्य—चिकित्सा एवं भैषज्यकल्पना की दृष्टि से आहरण, कूटना, पीसना, छानना आदि विविध क्रियायें द्रव्यों पर ही हो सकती हैं, रसगुणादि में सम्भव नहीं हैं। अमुक गण की ओषधियों का चूर्ण कर क्वाथ या घृत, तैल बनावें इस वाक्यांश से उस गण के औषध द्रव्यों का ग्रहण किया जाता है। औषधि में स्थित रस एवं गुणादि का ग्रहण नहीं होता है। **आरम्भ सामर्थ्याच्च, द्रव्याश्रित आरम्भः, यथा 'विदारिगन्धादिमाहृत्य संक्षुद्य विपचेत्' इत्येवमादिषु न रसादिष्वारम्भ** सु० सू० अ० ४०।

(८) क्रमापेक्षितत्व—द्रव्य की स्थिति या क्रमानुसार रस,गुण, वीर्य विपाकादि की स्थिति में परिवर्तन हो जाता है। जैसे अपक्व फल (द्रव्य) में रस गुणादि भी अपक्व तथा पूर्ण पक्व फल में परिपक्व, प्रशस्तमात्रा में रसगुणादि विद्यमान रहते हैं। **क्रमापेक्षितत्वाच्च रसादीनां, रसादयो हि द्रव्यक्रममपेक्षन्ते-यथा तरुणे तरुणाः, संपूर्णे संपूर्णा इति।** सु० सू० अ० ४०।

(९) एकदेशसाध्यत्व—चिकित्सा में द्रव्यों के एक-एक अङ्गों (मूल, त्वक् काण्ड, पत्र, पुष्प, फल, बीज, तैल, निर्यासादि) का प्रयोग किया जाता है। जैसे स्नुही क्षीर का विविध रोगों में प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार से स्नुही के मूल, काण्ड, पत्रादि का भी उपयोग होता है, किन्तु रस एवं गुणादि अवयव रहित होने से उनके एक देश (अङ्ग) का चिकित्सार्थ प्रयोग संभव नही है। **एकदेशसाध्यत्वाच्च, द्रव्याणामेकदेशेनापि व्याधयः साध्यन्ते न रसादिभिः कस्मात् ? निरवयत्वात्, यथा महावृक्ष क्षीरेणेति।** सु० सू० अ० ४०।

अन्त में महर्षि सुश्रुत ने द्रव्य के प्राधान्य प्रसङ्ग का उपसंहार करते हुए लिखा है कि बिना वीर्य के विपाक नहीं, बिना रस के वीर्य नहीं और बिना द्रव्य के रस नहीं, इसलिए द्रव्य रस गुण वीर्य विपाक प्रभाव पदार्थों में द्रव्य ही सर्वश्रेष्ठ होता है। जैसे शरीर एवं आत्मा का आश्रयाश्रयिभाव सम्बन्ध या परस्परापेक्षी सम्बन्ध होता है उसी प्रकार का सम्बन्ध द्रव्य एवं तदाश्रित रसगुणादि का होता है। वीर्यसंज्ञक शीतोष्णादि अष्टगुण द्रव्य में रहते हैं, मधुराम्लादि रसों में नहीं क्योंकि ये रस स्वयं गुण होने से उनमें शीतोष्णादि गुण नहीं हो सकते हैं। रस, गुण, वीर्यादि गुण द्रव्य में ही आश्रित होकर रहते हैं। अतः द्रव्य ही सभी गुणों का आश्रयभूत होने से सर्वश्रेष्ठ है।

पाको नास्ति विना वीर्याद् वीर्यं नास्ति विना रसात्। रसो नास्ति विना द्रव्याद् द्रव्यं श्रेष्ठमतः स्मृतं॥

जन्म तु द्रव्यरसयोरन्योन्यापेक्षिकं स्मृतम्। अन्योन्यापेक्षिकं जन्म यथा स्याद्देह-देहिनोः॥
वीर्यसंज्ञा गुणा येऽष्टौ तेऽपि द्रव्याश्रयाः स्मृताः। रसेषु न भवन्त्येते निर्गुणास्तु गुणाः स्मृताः॥
द्रव्ये द्रव्याणि यस्माद्धि विपच्यन्ते न षड्रसाः श्रेष्ठं द्रव्यमतो ज्ञेयं शेषा भावास्तदाश्रयाः॥
सु० सू० अ० ४०।

□□

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण विज्ञानीय तृतीय परिच्छेद

गुण का लक्षण—जो समवाय सम्बन्ध से द्रव्याश्रित हो, निष्क्रिय-चेष्टादि कर्म रहित (किसी प्रकार का संयोग विभाग रूप कर्म न हो) किंवा स्वयं कर्म रूप न हो, निर्गुण (गुण से रहित) हो, कार्य के प्रति असमवायी कारण एवं स्वसमानगुणान्तर की उत्पत्ति में कारण हो, गुणत्वजातिवान् हो उसे गुण कहते हैं।

(१) समवायी तु निश्चेष्टः कारणं गुणः। च० सू० अ० १।

(२) द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोग–विभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्। वै०द०अ०१-१६

(३) अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निर्गुणा निष्क्रिया गुणाः। कारिकावली।

(४) गुणत्वजातिमत्वमिति गुणसामान्यलक्षणम्। प्रशस्तपाद।

(५) द्रव्याश्रितत्वात् निश्चेष्टकारणत्वात्तथैव च हेतुतोऽसमवायित्वाद् गौणत्वाद् गुणसंज्ञकाः।

गुण की परिभाषा के निरूपण में वर्णित प्रत्येक पद गुण के निर्दुष्ट और स्पष्ट लक्षण का बोध कराता है। द्रव्य में गुण समवाय सम्बन्ध-नित्य सम्बन्ध से रहता है या द्रव्य और गुण का जो परस्पर नित्य किंवा अपृथग्भाव अविच्छिन्नात्मक सम्बन्ध है उसे समवाय सम्बन्ध कहते हैं। **"समवायोऽपृथग्भावो भूम्यादीनां गुणैर्मतः।** च० सू० अ० १।

द्रव्य एवं गुण में आधाराधेय भाव से यह भी भेद है कि द्रव्य गुणकर्माश्रय होता है किन्तु गुण गुण-कर्मानाश्रय होता है। **द्रव्यं गुणकर्माश्रयः गुणस्तु गुणकर्मानाश्रयः इति द्रव्यतो भेदः।** यो०। **गुणास्तु निर्गुणाः स्मृताः।** गुणचेष्टादि कर्मरहित या कर्म से भिन्न होते हैं, क्योंकि कर्म भी द्रव्याश्रित होते हैं, गुणों में नहीं रहते हैं। **'क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्'।** द्रव्याश्रित एवं गुणकर्म रहित गुण का लक्षण सामान्य विशेष में घटित होता है क्योंकि ये दोनों ही द्रव्य में नित्यसम्बन्ध से रहते हैं एवं गुणकर्म रहित होते हैं। अतः गुण के लक्षण को अति व्याप्ति दोष से मुक्त रखने की दृष्टि से गुण को कार्य के प्रति असमवायी कारण या स्वसमान गुणान्तर की उत्पत्ति में कारण लिखा है। **द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारम्भन्ते गुणाश्च गुणान्तरम्।** वै० द० अ०–१–१०। जबकि सामान्य विशेष में असमवायि कारणत्व नहीं होता है। चरक के टीकाकार कविराज श्री गंगाधर ने गुण को समवायीकारण माना है। यदि हि गुणो गुणान्तरस्य समवायिकारणं न भवति कथं तर्हि "गुणाश्च गुणान्तरमारम्भन्ते" इति वचनं तत्रैव कणादेनोक्तं कथं संगच्छते। गुणाः द्रव्याश्रिता रूपरसादयः स्वस्वाश्रयापेक्षाः स्वाश्रयद्रव्यनिष्ठ-क्रियया परिणमन्तः क्वचित् साधारणभूताः पृथक्त्वगुणं समवायेनापद्यमानाः पृथग्भूय तेजोम्बुभूमिषु लोहितशुक्लकृष्णरूपेण मधुराम्लादिरूपेण गुणान्तरहीनाः सन्तो द्रव्याश्रयिणः सन्तश्च समवयन्ति कार्यं इति समवायिन्येव कारणानि गुणाः। गंगाधरः।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भदन्त नागार्जुन ने गुण की सार्थक और विशिष्टार्थावबोधी परिभाषा लिखी है। **'विश्वलक्षणाः गुणाः।** जिनका लक्षण विश्वरूप (विकीर्ण–भिन्न) में हो या अनेक विध लक्षणानुवृति वाले पदार्थ को गुण कहते हैं। द्रव्य, रस, वीर्य, विपाक, कर्म इन प्रत्येक पदार्थ का एक एक लक्षण में समावेश होता है। जैसे पञ्चाश्रय लक्षण द्रव्य, रसनाग्राह्य लक्षण रस, परिणाम लक्षण विपाक, कर्म लक्षण वीर्य इन एक एक लक्षणों से जिस प्रकार यावन्मात्र द्रव्य रस वीर्य विपाक के भेदों का ग्रहण हो जाता है उस प्रकार गुण किस एक लक्षण में आश्रित नहीं होता है। शीतोष्णादि गुण स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य हैं। स्निग्ध और रूक्ष गुण चक्षुग्राह्य एवं स्पर्शनेन्द्रिय ग्राह्य हैं। मन्द, विशदादि गुण कर्मानुमेय हैं। इस प्रकार समस्त गुणों का एक ही लक्षण नहीं बन सकता है। जिसमें सब गुणों का अन्तर्भाव हो जावे। अतः लक्षण पृथक् पृथक् लक्षण वाला होता है।

गुणों का वर्गीकरण एवं संख्या—आचार्य चरक के सार्थाः गुर्वादयो बुद्धिः प्रयत्नान्ताः परादयः। गुणाः प्रोक्ताः (च० सू० अ० १) के निर्देशानुसार गुण ४१ होते हैं।

चक्रपाणिदत्त ने इन ४१ गुणों को निम्न प्रकार से ३ वर्गों में वर्गीकृत और संख्याबद्ध किया है।

वर्ग नाम	वर्गान्तर्गत गुण का नाम	गुणों की संख्या
१—**वैशेषिक गुण**—	शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध महाभूतों एवं इन्द्रियों के विशिष्टगुण	५
२—**कर्मण्य सामान्य गुण**—	गुरु-लघु, शीत-उष्ण, स्निग्ध–रूक्ष, मन्द–तीक्ष्ण, स्थिर-सर, मृदु–कठिन, विशद–पिच्छिल, श्लक्ष्ण–खर, स्थूल–सूक्ष्म, सान्द्र–द्रव।	२०
	परादि सामान्य गुण—पर, अपरत्व, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिणाम, संस्कार, अभ्यास।	१०
३—**आत्मगुण या आध्यात्मिक गुण**—	इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न, बुद्धि	६
		४१

वैशेषिक या विशिष्ट गुण—पञ्चमहाभूतों के विशेष गुण होने से इनको वैशेषिकगुण कहते हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी महाभूतों के क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विशिष्ट गुण होते हैं। इनको गोचर और अर्थ भी कहते हैं। इन विशिष्ट गुणों का ग्रहण एक एक इन्द्रिय द्वारा होता है। इन ५ विशिष्ट गुणों में द्रव्य गुण शास्त्रोपयोगी गुण रस ही है जिसका चतुर्थ परिच्छेद में वर्णन किया गया है। अवशिष्ट गुणों का विवेचन क्षेत्र शारीरक्रिया विज्ञान और मनोविज्ञान विषयान्तर्गत है।

आत्मगुण या आध्यात्मिक गुण—बुद्धि, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और प्रयत्न ये गुण आत्मगुण या आध्यात्मिक गुण कहे जाते हैं। **इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतना धृतिः। बुद्धिः स्मृतिरहङ्कारो लिंगानि परमात्मनः।** च० शा० अ० १। चक्रपाणि ने स्मृति, चेतना, धृति, अहंकार आदि बुद्धिविशेष होने से उनको बुद्धिगुण में ही समाविष्ट किया है। मनोविज्ञान में इन गुणों का अध्ययन किया जाता है।

परादि सामान्यगुण—**परापरत्वे युक्तिश्च संख्या संयोग एव च। विभागश्च पृथक्त्वं च परिणामथापि च॥ संस्कारोऽभ्यास इत्येते गुणाः ज्ञेयाः परादयः।** च० सू० अ० २६। चिकित्सा में असंदिग्ध सफलता के लिए चिकित्सक को इन गुणों के ज्ञान की आवश्यकता चरक ने इस तरह प्रतिपादित की है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इति स्वलक्षणैरुक्ताः गुणाः सर्वे परादयः । चिकित्सा यैरविदितैर्न यथावत् प्रवर्त्तते च० सू० अ० २६ । परादि गुणों का वर्णन इसी परिच्छेद में आगे किया गया है ।

कर्मण्य सामान्यगुण (गुर्वादि-शारीरगुण)—कविराज गंगाधर ने गुर्वादि सामान्य गुणों की संज्ञा शारीर गुण लिखी है । जो यथार्थ परक है, क्योंकि इन गुणों का शारीर भावों के शीतोष्ण स्निग्ध, रूक्ष, गुरु, लघ्वादि गुणों की क्षय वृद्धि या समस्थिति के लिए प्रयोग किया जाता है । महर्षि चरक ने इन गुणों की संख्या बीस मानी है । **गुर्वादयस्तु-गुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षमन्दतीक्ष्णस्थिर-सरमृदुकठिनविशदपिच्छिलश्लक्ष्णखरस्थूलसूक्ष्मसान्द्रद्रवाः विंशतिः । एते च सामान्यगुणाः पृथिव्यादीनां साधारणत्वात् ।** च० सू० अ० २६—च० द० । सुश्रुत और अष्टाङ्गहृदयकार ने भी बीस ही गुण माने हैं तथा दो दो परस्पर विरोधिगुणों के दस युग्म लिखे हैं ।

गुरु-मन्द हिम-स्निग्ध-श्लक्ष्ण-सान्द्र-मृदु-स्थिराः । गुणाः ससूक्ष्म-विशदा विंशतिः सविपर्ययाः ।
अ० हृ० सू० अ० १ ।

आचार्य भदन्त नागार्जुन ने कर्मण्य गुणों की सं या १० ही मानी है । **शीतोष्णस्निग्ध-रूक्ष विशद-पिच्छिल-गुरु-लघु-मृदु-तीक्ष्णगुणाः कर्मण्याः ।** रस वैशेषिक अ० ३—सू० १११ । इन दस गुणों को चिकित्सा में विशेष उपयोगी माना गया है । किन्तु चरक एवं सुश्रुत के गुणों की संख्या में प्रतिपादित विचारों को दृष्टिगत करने पर केवल दस ही गुणों का मानना समुचित प्रतीत नहीं होता है । इन दस गुणों के अतिरिक्त अन्य गुणों का भी चिकित्सा में प्रयोग होता है ।

गुणसंख्या और गुणयुग्म भिन्न भिन्न आचार्यों के मत से—

क्र०सं०	चरक	अष्टाङ्गहृदय	सुश्रुत	नागार्जुन	भावमिश्र
१	गुरु	गुरु	गुरु	गुरु	गुरु
२	लघु	लघु	लघु	लघु	लघु
३	शीत	हिम	शीत	शीत	शीत
४	उष्ण	उष्ण	उष्ण	उष्ण	उष्ण
५	स्निग्ध	स्निग्ध	स्निग्ध	स्निग्ध	स्निग्ध
६	रूक्ष	रूक्ष	रूक्ष	रूक्ष	रूक्ष
७	मन्द	मन्द	मृदु	मृदु	मन्द
८	तीक्ष्ण	तीक्ष्ण	तीक्ष्ण	तीक्ष्ण	आशु
९	स्थिर	स्थिर	मन्द	—	स्थिर
१०	सर	सर	सर	—	सर
११	मृदु	मृदु	—	—	श्लक्ष्ण
१२	कठिन	कठिन	—	—	तीक्ष्ण
१३	विशद	विशद	विशद	विशद	विशद
१४	पिच्छिल	पिच्छिल	पिच्छिल	पिच्छिल	पिच्छिल
१५	श्लक्ष्ण	श्लक्ष्ण	श्लक्ष्ण	—	मृदु
१६	खर	खर	कर्कश	—	कर्कश

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्र०सं०	चरक	अष्टाङ्गहृदय	सुश्रुत	नागार्जुन	भावमिश्र
१७	सूक्ष्म	सूक्ष्म	सूक्ष्म	—	सूक्ष्म
१८	स्थूल	स्थूल	स्थूल	—	स्थूल
१९	सान्द्र	सान्द्र	सान्द्र	—	शुष्क
२०	द्रव	द्रव	द्रव	—	द्रव
			सुगन्ध		
			दुर्गन्ध		
			व्यवायी		
			विकासि		
			आशुकारी		

उपर्युक्त तालिका से विदित होता है कि चरक एवं अष्टाङ्गहृदयकार गुणों की संख्या एवं गुणयुग्म के बारे में एक मत हैं। नागार्जुन ने दस विशिष्ट शक्तिसम्पन्न गुणों का ही उल्लेख किया है। सुश्रुत ने बीस के स्थान पर तेइस गुण लिखे हैं तथा चरक की अपेक्षा कुछ नवीन गुणों का भी उल्लेख किया है। चरक की अपेक्षा सुश्रुत ने गुणयुग्मों में भिन्नता भी प्रदर्शित की है। भावमिश्र ने सुश्रुत के अनुसार ही गुण संख्या व युग्म के सम्बन्ध में वर्णन करने का उल्लेख तो किया है किन्तु भावमिश्र एवं सुश्रुत के गुण युग्मों में भी अन्तर प्रतीत होता है। गुण संख्या एवं युग्मों में विभिन्न आचार्यों में साम्य और वैषम्य के ज्ञान के लिए उपर्युक्त तालिका दृष्टव्य है। मतभिन्नता का कारण आचार्यों की विचार शैली तथा देश काल विशेष में प्रचलित या आविष्कृत गुणों का सामवेश भी है। अतः गुणों की सं या आधार रूप में बीस मानने पर भी अन्य नवीन गुणों का उल्लेख करना समुचित ही है। शिवदास सेन, चक्रपाणि दत्त, डल्हण ने भी २० गुणों के अतिरिक्त अन्य गुणों के ग्रहण का उल्लेख किया है। **अधिकायामपि गुणविंशतावुक्तायां गुणाः विंशतिरुक्ता; न चात्र नियमो विंशतिरेवेति विकासिव्यवायिआशुकारिणान्तु स्वतन्त्रे परतन्त्रे च दर्शनात् पाठो न्याय्य एव**। डल्हणः।

गुर्वादि गुणों का स्वरूप—आधुनिक आचार्यों में कतिपय ने गुणों को भौतिक गुण और किन्हीं ने औषधगुण कर्म (Pharmacological actions) माने हैं। ये दोनों ही मत सर्वथा दोष रहित नहीं है क्योंकि भौतिक गुण तो प्रत्यक्ष गम्य होते हैं जबकि द्रव्यगुण शास्त्र में गुणों को कर्मानुमेय माना है। **कर्मभिस्त्वनुमीयन्ते नानाद्रव्याश्रया गुणाः**। सु० सू० अ० ४६। गुणों को औषधकर्म स्वीकार कर लेने पर गुण एवं कर्म में कोई अन्तर नहीं रहेगा। अतः दोनों मतों के सामञ्जस्य की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि ये स्वरूपतः भौतिक एवं शरीर में प्रयुक्त करने पर जैविक रासायनिक परिणाम द्वारा अपने स्वसमान शारीर गुणों की वृद्धि का कारण उनका कार्मुक गुण भी है। स्मरणीय है कि द्रव्यगुण शास्त्र में गुणों के भौतिक स्वरूप पक्ष पर इतना बल नहीं दिया गया है जितना गुणों के अनुमेय कार्मुक पक्ष पर। आचार्यों को गुण के अस्तित्व का अनुमान तज्जनित वैद्यकीय गुणकर्मों (Therapeutic Properties) के आधार पर ही रुचिकर लगा है। अमुक द्रव्य गुरु है इसका अर्थ यह है कि वह द्रव्य शरीर की विभिन्न धातुओं में गौरव या गुरुता उत्पन्न करेगा। भौतिक गुण की दृष्टि से वह द्रव्य गुरु या भारी हो यह आवश्यक नहीं है। क्वचित् भौतिक एवं कार्मुक गुण से भी गुण का बोध होता है जैसे एरण्डस्नेह, स्नुहीक्षीर भौतिक तथा कार्मुक

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दृष्ट्या सरगुण युक्त होते हैं। जबकि द्राक्षा, आरग्वध के सर गुण का ज्ञान उनके सरकर्म से ही होता है।

शीतोष्ण, गुर्वादि गुणों के कर्मों के सम्बन्ध में यह जानना आवश्यक है जैसा कि गुण के लक्षण में स्पष्ट किया गया है कि गुण स्वयं गुण रहित एवं निष्क्रिय होता है। अतः गुण से कर्म-निष्पत्ति संभव नहीं है। इसलिए मधुररस और गुरु गुण के गौरव या गुरुता कर्म का अर्थ तदाश्रयभूत पार्थिव द्रव्य का ही मानना चाहिए। **गुणा गुणाश्रया नोक्तास्तस्माद्रसगुणान् भिषक्। विद्याद् द्रव्य-गुणान्।** च० सू० अ० २६। गुणों से कर्म की उत्पत्ति का अर्थ यह है कि वे शारीर धातुओं में जाकर स्वसमान गुणों की उत्पत्ति करते हैं और इस क्रम में क्रिया (कर्म) को प्रेरित करते हैं।

गुरु गुण—परिभाषा—जिस द्रव्य के सेवन से गुरुपाक हो, बृंहण, तर्पण, बलवृद्धि, साद, उपलेप उत्पन्न हो उसे गुरु कहते हैं। **१—सादोपलेपबलकृद् गुरुर्बृंहणस्तर्पणः।** सुश्रुत० सू० अ० ४६। **२—सादोऽङ्गग्लानिः उपलेपो मलवृद्धिः बलं श्लेष्मा, तर्पणः तृप्तिजनकः बृंहणो देहे वृद्धिकरः।** डल्हणः। **३—यस्य द्रव्यस्य बृंहणे शक्तिः स गुरुः।** हे०। सामान्यतया लोकभाषा में गुरुगुण को भारी या बजनदार (Heavy or Heaviness) कहते हैं।

भौतिक संगठन—महाभूतों में पृथ्वी और जल का गुरुत्व विशेष स्वाभाविक लक्षण है। अतः गुरु गुण पृथिवी जल महाभूत प्रधान होता है। **१—गौरवं पार्थिवमाप्यं च।** र०वै०अ० ३—११। **२—लघुर्गुरुस्तथास्निग्धो रूक्षस्तीक्ष्णइति क्रमात्। नभोभूवारिवातानां वह्नेरेते गुणाः स्मृताः।** भा० प्र०।

कार्मुक गुण—यह वातहर तथा कफहर होता है। इससे धातुओं का पोषण,वर्धन, बलवृद्धि, उपलेप (धातुपाकजन्य मलों की वृद्धि और स्निधतावृद्धि) स्थैर्य, गौरव, स्नेहन, तृप्ति, ह्लादन (मन में प्रसन्नता) उत्पन्न होता है। यह चिरपाकी एवं सृष्टविण्मूत्र (पुरीषमूत्रनिस्सरण) होता है। **गुरुर्वातहरः पुष्टिश्लेष्मकृच्चिरपाकि च।** भा० प्र०। शेष उद्धरण परिभाषा प्रसंग में दृष्टव्य हैं।

गुरु द्रव्य—आहार द्रव्य (वानस्पतिक) पक्वाम्र, पनस, लकुच, (अपक्व) तिन्दुक (पक्व) कोल, बदर, राजादन (खिरणी) शृंगाटक (सिंघाड़ा) तूद (शहतूत) वाताद (बादाम) तिल, गोधूम, माष, राजमाष, इक्षु, इक्षुविकृति (गुड़, शर्करा आदि)। **जाङ्गम द्रव्य**—गो-माहिष दुग्ध, दुग्धविकार, (दुग्ध से निर्मित पदार्थ) घृत, आनूपमांस, मस्त्यमाँस। **औषध द्रव्य (वानस्पतिक)** अष्टवर्ग, जीवनीय-गण, पंचक्षीरीद्रव्य, मधुयष्टि, रास्ना, रसोन, पलाण्डु, मंजिष्ठा, गंभारी, आरग्वध, कपिकच्छु, त्रपुष, एरण्डबीज, स्नुही, शतावरी, मूसली, विदारीकद, गाँगेरूकी आदि। **पार्थिव द्रव्य**-स्वर्ण, लौह, मनःशिला सामुद्रलवण आदि। **गुरु द्रव्य**-शीत, मृदु, स्निग्ध, स्थूल, पिच्छिल, मन्द, स्थिर, सूक्ष्म, सरगुण वाले द्रव्य प्रायः गुरु होते हैं।

लघु गुण—परिभाषा जो गुरु के विपरीत हो अर्थात् लघुपाकी, शरीर में लाघवता, कार्श्य, रोपण उत्पन्न करे वह लघु कहलाता है। **१—लघुस्तद्विपरीतत्वाल्लेखनो रोपणस्तथा।** सु० सू० अ० ४६। (२) **लंघने लघुः।** हेमाद्रि। लोकभाषा में लघु गुण को हल्का या हल्कापन (Light or Lightness कहते हैं।

भौतिक संगठन—लघु द्रव्य वायु अग्नि आकाश महाभूत गुण प्रधान होते हैं। **१—लघूनि हि द्रव्याणि वाय्वग्निगुण बहुलानि भवन्ति।** च० सू० अ० ५। **२—वायव्याकाशाग्नि लक्षणात् भवतीति तेषां त्रयाणां भूतानां लघुत्वादिति।** र० वै० अ० ३।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कार्मुक गुण—यह कफशामक और वातवर्धक है। लघुद्रव्य शरीर में स्फूर्ति, उत्साह, मल का क्षय, बलहानि, अतृप्ति, दौर्बल्य, लेखन, कार्श्य, लाघवता,रौक्ष्य, सौषिर्य, वैशद्य, व्रणरोपण करता है। यह शीघ्रपाकी, दीपन, पाचन और बद्धविण्मूत्रकर होता है।(१)**लघु पथ्यं परं प्रोक्तं कफघ्नं शीघ्रपाकि च।** भा० प्र० (२) **धातून्मलान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत्। तत् लेखनं।** शा० सं० प्र० खं० ४। (३) **लंघने लघ :।** हे०। (४) **लघुस्तद्विपरीत इति अस्मादनुलेपकृत् कफहरश्चेत्यर्थः लेखनः पतलीकरण।** डल्हणः।

लघु द्रव्य—आहार द्रव्य(वानस्पतिक) षष्ठिक, शालि, लाजा, मुद्ग, मसूर, आढकी(अरहर की दाल) दाडिम, निम्बुक, वास्तुक (बथुआ) मेचनाद (चौलाई) मूलक, पटोल, सूरण, सार्षप तैल, काञ्जी। **जाङ्गम द्रव्य**—छाग दुग्ध, धारोष्ण दुग्ध, जांगल मांस, हरिणमांस। **औषधद्रव्य(वानस्पतिक)** हरीतकी, विभीतक, शुण्ठी, मिर्च, पिप्पली, चव्य, चित्रक, यवानी, जीरक, एला, त्वक्, पत्रज, लवंग, नागकेशर, मदनफल, जीमूतक, कुटज, कृतवेधन, धामार्गव, किराततिक्त, भंगा, वचा, जटामांसी, कर्पूर, वासा, मुण्डी, गुग्गुलु, पुनर्नवा, तुलसी आदि। **जांगम द्रव्य**-गोमूत्र, समुद्रफेन। **पार्थिव द्रव्य**-सौवर्चल–विड–सांभर लवण, ताम्र, यशद। **लघुद्रव्य** उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, रूक्ष, लघु, खर, विशद गुण वाले द्रव्य प्रायः लघु होते हैं।

शीत गुण–परिभाषा—जो बाह्याभ्यन्तर प्रयोग से शीत, स्निग्ध, गुरुत्व क्रिया करके शरीर में प्रसन्नता और मूर्च्छा–दाह–तृष्णा का शमन करे उसे शीत गुण द्रव्य कहते हैं। **१–ह्लादनः स्तम्भनः शीतः मूर्च्छातृड्दाहस्वेदनुत्।** सु० सू० अ० ४६। (२) **दाहनाशकत्वं शीतत्वं।** आ० द० २–१०। लोकभाषा में शीत गुण को ठण्डा या ठण्डापन (cold or coldness) कहते हैं।

भौतिक संगठन—शीत गुण जलमहाभूत प्रधान होता है। **द्रव्याणि····शीत गुण····बहुलानि आप्यानि।** च० सू० अ० २६।

कार्मुक गुण—यह पित्तहर वातश्लेष्मवर्धक होता है। उष्णता से पीड़ित मनुष्य के लिए सुखकर, ह्लादन, मूर्च्छा–तृषा–दाह–स्वेदनाशक, स्तम्भक एवं छर्दि, अतिसार, स्वेदाधिक्य, रक्तस्रावरोधक होता है। यह गुरुपाकी, क्लेदन, स्नेहन, मार्दव, शैत्य उत्पन्न करता है। **१–शीतस्तु ह्लादनः स्तम्भी मूर्च्छातृड्दाह स्वेदजित्।** भा० प्र०। (२) **स्तम्भने हिमः।** हे०।

शीत द्रव्य—आहार द्रव्य (वानस्पतिक) शालि, षष्ठिक, यव, गोधूम, मुद्ग, मसूर, चणक मकुष्ठ, कलाय, तण्डुलीयक, पालक, कुष्माण्ड, त्रपुष, भिण्डी, आलुक, आम्रफल, कदलीफल, चीकू, सीताफल, नारिकेल, खर्जूर, पनस, राजादन, शृंगाटक, तूद, परुषक, द्राक्षा, सेव आदि। **जाङ्गम द्रव्य**—दुग्ध, (गो, महिषी, छाग) धारोष्ण दुग्ध, नवनीत, घृत, हरिण–शशमांस।

औषध द्रव्य—अष्टवर्ग, जीवनीय गण, पंचक्षीरी, वंशलोचन, चन्दन, उशीर, मंजिष्ठा, विदारी, शतावरी, उत्पल, मधुयष्टि, आरग्वध, किराततिक्त, पाषाण भेद, लाक्षा, राल, कर्पूर, एला मुस्तक, प्रियंगु, काश्मरीफल, गोक्षुर, बला, दूर्वा, शाल्मली, मोचरस, गावजबां, रूमीमस्तगी आदि। **जाङ्गम द्रव्य**—समुद्रफेन, प्रवाल, मुक्ता, शुक्ति। **पार्थिव द्रव्य**—स्वर्ण; रजत, यशद, अभ्रक,स्वर्णगैरिक। **शीत द्रव्य**—गुरु, मृदु, स्थूल, पिच्छिल, स्निग्ध, मन्द, स्थिर, श्लक्ष्ण, द्रव, सूक्ष्म, सर, लघुगुण वाले द्रव्य प्रायः शीत होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उष्ण गुण—परिभाषा—जो शीत गुण के विपरीत रुजा करने वाला, स्वेद–मूर्च्छा–दाह–तृषाकर एवं शीघ्रकारित्व, पाचन करने वाला हो उसे उष्ण कहते हैं। १—**उष्णस्तद्विपरीतः स्यात् पाचनश्च विशेषतः**। सु०सू०अ० ४६। (२) **उष्णत्वं शीघ्र कारित्वम्। दाहजनकत्वमुष्णत्वम्**। आ० द० ३–२–१४। (३) **स्वेदने उष्णः** (हे०)। लोकभाषा में उष्ण गुण को गर्म या गर्मी (Hot or Hotness) कहते हैं।

भौतिक संगठन—उष्ण गुण तैजसमहाभूत प्रधान होता है। १—**द्रव्याणि....उष्ण....गुण बहुलानि आग्नेयानि**। च० सू० अ० २६।

कार्मुक गुण—यह वातश्लेष्महर एवं पित्तवर्धक होता है। उष्ण गुण सारक, पाचक, दाह–मूर्च्छा–तृषा–स्वेदकर, शीघ्रकारित्व, आह्लादन (शरीर में उत्तेजना, अशान्ति) करने वाला होता है। उद्धरण परिभाषा में दृष्टव्य हैं।

उष्ण द्रव्य—मिर्च, पिप्पलीमूल, शुण्ठी, चव्य, चित्रक, भल्लातक, कार्पासबीज, करञ्ज, जयपाल, वत्सनाभ, निशोथ, दन्ती, इन्द्रवारुणी, पुष्करमूल, कुष्ठ, रास्ना, गुग्गुलु, पीलू, हरिद्रा, अगरु कर्पूर, देवदारु, आदि। **उष्ण द्रव्य**—रूक्ष, लघु, खर, तीक्ष्ण, स्थिर, विशद, सूक्ष्म, द्रव, सर गुण वाले द्रव्य प्रायः उष्ण होते हैं।

स्निग्ध गुण—जो द्रव्य शरीर में मार्दव, स्नेहन, क्लेदन उत्पन्न करते हैं एवं बल वर्णकर होते हैं। वे स्निग्धगुणवाले होते हैं। १–**यस्य क्लेदने शक्तिः स स्निग्धः**। हे०। (२) **स्नेह मार्दवकृत् स्निग्धो बलवर्णकरस्तथा**। सु० सू० अ० ४६। लोक भाषा में स्निग्धगुण को चिकनाहट (Smoothness) कहते हैं।

भौतिक संगठन—स्निग्ध गुण का भौतिक संगठन आप्य महाभूत प्रधान होता है। १–**स्नेहोऽपां विशेषगुणः जलवृत्तिः**। आ० द० ३–२–१८। (२) **लघुर्गुरुस्तथा स्निग्धो रूक्षस्तीक्ष्ण इति क्रमात्। नभोभूवारिवातानां वह्नेरेते गुणाः स्मृताः** (भा० प्र०) सुश्रुत ने जल और पृथिवी दोनों महाभूतों को स्निग्ध गुण का संगठक माना है। **पृथव्यम्बुगुणभूयिष्ठः स्नेहः**। सु० सू० अ० ४६।

कार्मुक गुण—स्निग्ध गुण से वायु का शमन होता है और श्लेष्मा की वृद्धि होती है। स्निग्धगुण शरीर में बल वर्ण, कान्ति मृदुता, क्लिन्नता करता है। इससे धातुओं का बृंहण (रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जाधातुओं की वृद्धि) वृष्य (शुक्रधातु वृद्धि) स्नेहन, मलों का निस्सरण होता है। **स्निग्धं वातहरं श्लेष्मकारि वृष्यं बलावहम्**। भा० प्र०।

स्निग्ध द्रव्य—आहारद्रव्य (वानस्पतिक) शालि, षष्ठिक, गोधूम, माष, तिल, अतसी, सर्षप, प्रियाल, वाताद, पक्वाम्र, पनस, राजादन, खर्जूर, दाडिम, पटोल, इक्षु, गुड़, शर्करा आदि। **जाङ्गम द्रव्य**-दुग्ध, घृत, दधि, नवनीत, आनूपमांस, वसा, मज्जा, पित्त। **औषध द्रव्य–वानस्पतिक द्रव्य** भल्लातक,जयपाल, एरण्ड, मधूक, करञ्ज, शुण्ठी, पिप्पली, रसोन, देवदारु, सरल, जीवन्ती, बलाचतुष्टय विभीतकमज्जा, निम्बफल, विदारी, शतावरी, मोचरस आदि। **स्निग्ध द्रव्य**–द्रव, सूक्ष्म, सर, पिच्छिल गुरु, शीतल, मन्द गुण वाले द्रव्य प्रायः स्निग्ध होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रूक्ष गुण–**परिभाषा**–जिससे शरीर में स्निग्ध गुण के विपरीत रौक्ष्यता, स्तम्भन, काठिन्य शुष्कता (द्रव शोषण) उत्पन्न हो वह रूक्ष गुण कहलाता है। **रूक्षस्तद्विपरीतः स्याद् विशेषात् स्तम्भनः खरः।** सु० सू० अ० ४६। लोकभाषा में रूक्ष गुण का अर्थ रूखा या रूखापन (Dry or Dryness) होता है।

भौतिक संगठन—रूक्ष गुण आग्नेय और वायव्यभूत प्रधान होता है। **१–द्रव्याणि''''' रूक्ष''' गुण बहुलानि आग्नेयवायव्यानि।** च०सू०अ० २६। **२–लघुर्गुरुस्थता स्निग्धो रूक्षस्तीक्ष्ण इति क्रमात्। नभोभूवारिवातानां वह्नेरेते गुणाः स्मृताः।** भा० प्र०।

कार्मुक गुण—यह परम वातवर्धक और कफक्षयकर होता है। रूक्ष द्रव्य शरीर में रौक्ष्य काठिन्य (धातुओं, मलों की स्निग्धता, अभिष्यन्दन क्रिया का ह्रास करके रौक्ष्य एवं मांस सूत्रों में काठिन्य उत्पन्न करना) बल-वर्ण का ह्रास, स्तम्भन, खरता, अवृष्यता (बलऔर शुक्रनाशक) वैशद्य उत्पन्न करता है **१–रौक्ष्यं खरत्वं वैशद्यं यत्कुर्यात्तद्धि रूक्षणम्।** च० सू० अ० २२। **(२) रूक्षं समीरणकरं परं कफहरं मतम्।** भा० प्र०।

रूक्ष द्रव्य—**आहारवर्ग (वानस्पतिक)** यव, कंगुनी, श्यामाक, बाजरा, कलाय (मटर) मसूर, आढ़की(अरहर)चणक, मुद्ग, राजमाष, निष्पाव, सूरण, आलुक, मेघनाद, लोणिका, चांगेरी। **जान्तव द्रव्य**-जांगलमांस, शशमांस, अश्वीक्षीर। **औषधद्रव्य (वानस्पतिक)** त्रिफला, षड्षण, गुडूची, अपामार्ग, शिग्रु, करीर, गुग्गुलु, रसांजन, विडङ्ग, कुटकी, किरात, मदनफल, त्रिजात, चतुर्जात, श्वेतचन्दन, हरिद्रा, आसवारिष्ट, सुरा। **जाङ्गमद्रव्य**- पुराणमधु, गोमूत्र। **पार्थिव**–शिलाजतु, टङ्कण, यशद, बंग, पित्तल, विड्लवण। **रूक्षद्रव्य**-लघु, खर, उष्ण, तीक्ष्ण, स्थिर, विशद, गुण वाले द्रव्य प्रायः रूक्ष होते हैं।

मन्द गुण—**परिभाषा** जो द्रव्य शरीर में जाकर मन्द क्रिया-धीरे-धीरे-क्रिया करते हैं। मन्द गुण कहलाते हैं। (१) **मन्दो यात्राकरः स्मृतः** सु० सू० अ० ४६। (२) **यस्य शमने शक्तिः स मन्दः।** हे०। मन्द क्रिया अर्थ में अल्पकार्य, शिथिल व शमन (Depression) कार्य का भी अन्तर्भाव होता है। लौकिक भाषा में मन्द का अर्थ धीमा या सुस्ती (Dull or Dullness) होता है।

भौतिक संगठन—मन्द गुण पृथिवी और आप्य महाभूत प्रधान होता है। **द्रव्याणि मन्द'''' गुणबहुलानि पार्थिवानि–आप्यानि।** च० सू० अ० २६।

कार्मुक गुण—यह पित्तशामक, कफवर्धक होता है। मन्द द्रव्य शरीर में जाकर अपनी सब क्रियाओं की अल्पता, शिथिलता और चिरक्रियता-अवयवों में मन्दता उत्पन्न करता है। धातुओं की वृद्धि (बृंहण) शरीर को स्थूल बनाता है। **१–यस्य शमने शक्तिः स मन्दः। (२) मन्दः सकलकार्येषु शिथिलोऽल्पो हि कथ्यते।** भा० प्र०।

मन्द द्रव्य—गुडूची, अतिविषा, वत्सनाभ, शृंगिक, अहिफेन, कुटजघन, दधि। **मन्दद्रव्य** गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, स्थूल, पिच्छिल. स्थिर, श्लक्ष्ण, द्रवगुण वाले द्रव्य प्रायः मन्द होते हैं।

तीक्ष्ण गुण—**परिभाषा** जो शरीर की धातुओं के सम्पर्क में आने पर शीघ्र क्रिया, दाह, पाक, स्राव उत्पन्न करता है उसे तीक्ष्ण कहते हैं। **दाहपाककरस्तीक्ष्णः स्रावणः।** सु० सू० अ० ४६। लोकभाषा में तीक्ष्ण का अर्थ तीखा या तेजी (Sharp or Sharpness) होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भौतिक संगठन—तीक्ष्ण गुण तैजस महाभूत प्रधान होता है। **लघुर्गुरुस्तथास्निग्धो रूक्षः तीक्ष्ण इति क्रमात्। नभोभूवारिवातानां वह्नेरेते गुणाः स्मृताः।** भा० प्र०।

कार्मुक गुण—यह वातकफ शामक एवं पित्तवर्धक होता है। तीक्ष्ण द्रव्य शरीर में जाकर अपना कार्य शीघ्र करता है। इसका मुख्य कर्म शोधन (वमन,विरेचन,आस्थापन,शिरोविरेचन) मलप्रवर्तन लेखन, विभिन्न स्रावजनन है। १—**यस्य शोधने शक्तिः स तीक्ष्णः।** (हे०) २-**तीक्ष्णं पित्तकरं प्रायो लेखनं कफवातहृत्।** भा० प्र०। ३-**शीघ्रताकारित्वं तीक्ष्णत्वम्।** आ० द० ३-२-२४।

तीक्ष्ण गुण—औषध द्रव्य (वानस्पतिक) राजिका, सर्षप, मिर्च, पिप्पली, शुण्ठी, आर्द्रक, यवानी, पारसीक यवानी, लवंग, जायफल, हिङ्गु, चित्रक, भल्लातक, जयपाल,निशोथ, पुष्करमूल, कुष्ठ, अर्कक्षीर, स्नुहीक्षीर, जयपाल तैल, लवंग तैल, भल्लातक तैल, ज्योतिष्मती, रसोन, शिग्रु, करंज, अपामार्ग, तुलसी, काञ्जी, मद्य, शुक्त। **जाङ्गम द्रव्य**-कस्तूरी, अग्निजार, गोमूत्र, पित्त। **पार्थिव द्रव्य** गंधक, हरिताल, मनःशिला, तुत्थ। **तीक्ष्ण द्रव्य** उष्ण, लघु, रूक्ष, विशद, सूक्ष्म, सर, स्निग्ध, द्रव कठिन गुण वाले होते हैं।

स्थिर गुण—परिभाषा—जो शरीर में जाकर धातुओं को स्थिर करे तथा वात, मलादि का स्तम्भन करे उसे स्थिर कहते हैं। **स्थिरो वातमलस्तम्भी।** भा० प्र०। लौकिक भाषा में स्थिरगुण को गतिहीन या निश्चल (Immovable) कहते हैं।

भौतिक संगठन—स्थिर गुण पृथिवी महाभूत प्रधान होता है। **तत्र द्रव्याणि गुरु-स्थिर गन्धगुण बहुलानि पार्थिवानि।** च० सू० अ० २६।

कार्मुक गुण—यह कफवर्धक होता है। स्थिर द्रव्य वात, मूत्र, पुरीष, स्वेदादि को अपने २ स्रोतों से बहिर्गमन करने का स्तम्भन या धारण करता है। धातुओं (विशेषतः मांस, मेद, मज्जा) में स्थिरता उत्पन्न करता है। यह बल्य, चिरस्थायी, गति शैथिल्य (वातजन्य क्रियाओं की) कर होता है। १-**यस्य धारणे शक्तिः स स्थिरः** (हे०) **चलरहितत्वं स्थिरत्वम्।** आ० द० ३-२-२७। (३) **स्थिरो वातमलस्तम्भी।** भा० प्र०।

स्थिर द्रव्य—शीत, गुरु, मृदु, रूक्ष, स्थूल, पिच्छिल, द्रव, मन्द, श्लक्ष्णगुण वाले द्रव्य प्रायः स्थिर होते हैं।जैसे-बब्बूल, खदिर, शतावरी, अश्वगन्धा, बला, सुधा, प्रवाल।

सर गुण—परिभाषा जो द्रव्य शरीर में जाकर वात और मल मूत्र की प्रवृत्ति बढ़ाता है या अनुलोमन करता है वह सर कहलाता है। १-**यस्य प्रेरणे शक्तिः स सरः** (हे०) २-**सरोऽनुलोमनो प्रोक्तः।** सु०सू०अ० ४६। ३-। **सरस्तेषां प्रवर्तकः।** डल्हणः।लौकिक भाषा में सर का अर्थ गतिशील या चल (Mobility) होता है।

भौतिक संगठन—सर गुण जल महाभूत प्रधान होता है। **शीत-सरमधुर रसमाप्यम्।** सु०सू० अ० ४६। सरता (अधोगामिता) जल महाभूत का गुण है। सलिल वृत्तिः। आ० द० ३-२-३०।

कार्मुक गुण—यह कफ, पित्त (पित्त का सर गुण) वर्धक होता है। सर द्रव्य अनुलोमन (अपक्व मलों का पाक कर विबन्ध को नष्ट कर मलों का अधोगमन) वात, मल (पुरीष, मूत्र, स्वेद)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रवर्तन, प्रेरण (आमाशयान्त्र, पक्वाशय, वृक्क, वस्ति आदि अवयवों में सर क्रिया प्रेरण) कर्म करता है। उद्धरण परिभाषा में दृष्टव्य हैं।

सर द्रव्य——**आहार**(**वानस्पतिक**)गोधूम, राजमाष, निष्पाव, वास्तूक, चिञ्चा, कोल, बदर आदि। **जाङ्गम द्रव्य** दुग्ध, तक्र, गोमूत्र। **औषध द्रव्य** (वानस्पतिक) आरग्वध, आमलकी, हरीतकी, कुटकी, दन्ती-द्रवन्ती, त्रिवृत्, इन्द्रायण, अर्क, गुग्गुलु, रसोन, लाँगली, प्रसारिणी, अपामार्ग, पलाश, सप्तपर्ण आदि। **जाङ्गम द्रव्य**-दुग्ध, गोमूत्र, गोरोचन। **पार्थिव द्रव्य**-ताम्र, रजत, गन्धक। **सरद्रव्य** द्रव, सूक्ष्म, स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल, शीत, मृदु, तीक्ष्ण, उष्णगुण वाले द्रव्य प्रायः सर होते हैं।

मृदु गुण——जो बाह्याभ्यन्तर प्रयोग से शरीर में मृदुता और शिथिलता उत्पन्न करे उसे मृदु गुण कहते हैं। **१–श्लथने मृदुः**। हेमाद्रि। **२–यस्य श्लथने शक्तिः स मृदुः**। लौकिक भाषा में मृदु गुण का अर्थ कोमल या मुलायम (Soft or Softness) होता है।

भौतिक संगठन——मृदु गुण आप्य और नाभस महाभूत प्रधान होता है। **१–मार्दवं आन्तरिक्षमाप्यं च**। र० वै० ३-११५। (२) **सलिलाम्बर तमोवृत्तिः**। आ० द० ३-२-३३।

कार्मुक गुण—यह पित्तशामक एवं कफ वर्धक है। मृदु द्रव्य शारीरिक धातुओं, आशयों (मांस-शोणित मेदोमज्जहृन्नाभियकृत्प्लीहान्त्रगुद प्रभृतीनि मृदुः-सु० शा० अ० ३) त्वचा में मृदुता एवं शैथिल्य (विशेषतः मांस धातु का) उत्पन्न करता है। दाह पाक, स्राव एवं काठिन्यनाशक होता है। मलों को शिथिल करता है। यह पाक क्रिया विरोधि है। **१–दाहपाकशमनः स्तम्भनश्च**। सु०सू०अ० ४६। (२) **शिथिलावयत्वं मृदुत्वं**। आ० द० ३-२-३१।

मृदु द्रव्य——**वानस्पतिक द्रव्य**-गोधूम, षष्ठिक, शालि, व्रीहि, द्विदल, एरण्ड तैल, जैतून तैल, आरग्वध, मधुयष्टि, रूमीमस्तंगी। **जाङ्गमद्रव्य**-घृत, दुग्ध, नवनीत, वसा, मज्जा। **मृदुद्रव्य** द्रव, सूक्ष्म, सर, स्निग्ध, पिच्छिल, शीत, मन्द, स्थिर, श्लक्ष्ण, गुरुगुण वाले द्रव्य प्रायः मृदु होते हैं।

कठिन गुण—**परिभाषा**-जो शरीर में जाकर दृढ़ता और कठोरता उत्पन्न करता है वह कठिन गुण कहलाता है। **१–यस्य दृढीकरणे शक्तिः स कठिनः**। हेमाद्रि। लौकिक भाषा में कठिन का अर्थ कड़ा, कड़ापन (Hard or Hardness) होता है।

भौतिक संगठन——कठिन गुण पार्थिव महाभूत प्रधान होता है। **१–कठिनत्वं पार्थिवम् २–तत्र द्रव्याणि–कठिनगुणबहुलानि पार्थिवानि**। च० सू० अ० २६।

कार्मुक गुण—यह वातवर्धक होता है। कठिन द्रव्य शरीर की धातुओं में कठिनत्व, दृढ़त्व उत्पन्न करता है। यह अवयव संघात कर–शारीर कोषों एवं धातु पुञ्जों को संकुचित कर प्रोभूजिन को एकत्रित कर दृढ़ बनाता है। **संघातोऽवयवानां काठिन्यम्**। आ० द० ३-२-२४।

कठिन द्रव्य——**वानस्पतिक द्रव्य**–शतावरी, अश्वगन्धा, काकोल्यादिगण। **जाङ्गम द्रव्य** प्रवाल, मुक्ता, शंख, शुक्ति, दुग्ध, घृतादि। **कठिन द्रव्य** लघु, स्थिर, रूक्ष, खर, तीक्ष्ण, विशद, सूक्ष्म, सर, द्रव गुण वाले द्रव्य प्रायः कठिन होते हैं।

पिच्छिल गुण——**परिभाषा** जो द्रव्य शरीर में जाकर लेपन, चिक्कणत्व करे उसे पिच्छिल कहते हैं। **१–लेपने पिच्छिलः**। हे०। (२) **सान्द्र चिक्कणत्वं पिच्छिलत्वम्**। आ० द० ३-२-३८। लौकिक भाषा में पिच्छिल का अर्थ लुआब या लुआबदार (Sliminess) होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भौतिक संगठन—पिच्छिल गुण जल महाभूत प्रधान होता है। **१–पिच्छिलत्वमाप्यम्** र० वै० ३-११२। (२) **द्रव-पिच्छिल-रसगुण बहुलान्याप्यानि**। च० सू० अ० २६।

कार्मुक गुण––यह वातहर कफवर्धक होता है। पिच्छिल द्रव्य शरीर में बल्य, जीवन (शारीर कोषाणु, धातुओं का पोषण और शक्ति प्रदान करना) शैत्य, गुरुत्व, सन्धान (मांसपेशियों, अस्थि, सन्धियों का संयोजन) उपलेप (विभिन्न आशयों की श्लैष्मिक कला पर उपलेप–Demulcent) मलोत्सर्जन (मलवह स्रोतों को पिच्छिल करने से) रक्तस्कन्दन कर्म करता है। **१–यस्य लेपने शक्तिः स पिच्छिलः। हे०।** (२) **पिच्छिलो जीवनो बल्यः संघातः श्लेष्मलो गुरुः**। सु० सू० अ० ४६।

पिच्छिल द्रव्य—**वानस्पतिक द्रव्य**-इषबगोल, गोंदकतीरा, मधुयष्टि, गुग्गुलु, तालमखाना, श्लेष्मान्तक, मूसली, सेमल, बब्बूलनिर्यास, गावजबां, शर्करा, फाणित। **जाङ्गमद्रव्य**-क्षीर, दधि, आनूपमांस। **पिच्छिल द्रव्य** गुरु, शीत, मृदु, स्थूल, मन्द, स्निग्ध, स्थिर, श्लक्ष्ण, सरगुण वाले द्रव्य प्रायः पिच्छिल होते हैं।

विशद गुण—**परिभाषा**-जो द्रव्य शरीर में पिच्छिल गुण के विपरीत दोष-धातु-मल-स्रोतों में स्थित मल, उपलेप, द्रव-स्नेहांश का क्षालन कर शुचित्व-विमलत्व उत्पन्न करता हो वह विशद कहलाता है। **१–तद्विपरीतः विशदः। २–विशदो विपरीतोऽस्मात् क्लेदाचूषणरोपणः**। सु० सू० अ० ४६। लोकभाषा में विशद गुण का अर्थ निर्मल, स्वच्छता (Clearness) होता है।

भौतिक संगठन—विशद गुण वायु, आकाश, अग्नि, पृथिवी महाभूत प्रधान होता है। **द्रव्याणि-विशद गुण—बहुलानि-पार्थिवानि आग्नेयानि वायव्यानि**। च० सू० अ० २६।

कार्मुक गुण—यह कफशामक और वातवर्धक होता है। विशद द्रव्य असंघात (धातुओं में शैथिल्य और मांस मेद मज्जादि धातुओं का विभजन) क्लेदाचूषण, शोषण (दोष, धातु, मल, स्रोतों में स्थित क्लेद का आचूषण) अजीवन (जीवनीय शक्ति का ह्रास करने से) लेखन (धातुओं के स्नेह, पिच्छिल, द्रवांश का शोषण करने से) लाघव, बलहानि, व्रणरोपण (व्रण में क्लेद का शोषण होने से पूयोत्पादक जीवाणुओं की वृद्धि अवरुद्ध होती है तथा रोपण धातु की अभिवृद्धि शीघ्र होने से व्रण में क्षालन कर्म से व्रण मलरहित होने से व्रण का शीघ्र रोपण होता है) कर्म करता है।

विशद द्रव्य—खदिर, निम्ब, जाती, कदम्ब, सूरण, यव, मुद्ग, तिल तैल, मद्य, क्षार मध्वादि। **विशद द्रव्य** लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, कठिन, सूक्ष्म, खर, सर गुण वाले द्रव्य प्रायः विशद होते हैं।

श्लक्ष्ण गुण—**परिभाषा** जो द्रव्य शरीर में जाकर पिच्छिल गुण के समान (पिच्छिलो जीवनो बल्यः संघातः श्लेष्मलो गुरुः) कर्म करे वह श्लक्ष्ण कहलाता है। **श्लक्ष्णः पिच्छिलवज्ज्ञेयः....**। सु० सू० अ० ४६। पिच्छिल गुण के समान होने पर भी व्रणरोपण इसका वैशिष्ट्य कर्म है। यह खर गुण के विपरीत होता है। यह कठिन, स्नेह रहित होने पर भी स्पर्श में मसृण एवं सुखद होता है जैसे संगमरमर तथा घिसा हुआ मणि। **१–श्लक्ष्णः स्नेहं विनाऽपि स्यात् कठिनोऽपि हि चिक्कणः। भा०** (२) **अपरुषत्वं श्लक्ष्णत्वम्**। आ० द० ३–२–४१ (३) **सुमसृण मणीनामिव स्पर्शः**। र० वै०, भा०। (४) **श्लक्ष्णं स्नेह विनाऽपि स्यात्**। भा०प्र०। लौकिक भाषा में श्लक्ष्ण गुण का अर्थ चिकना (Smooth) होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भौतिक संगठन—भदन्त नागार्जुन ने श्लक्ष्ण गुण अग्नि महाभूत प्रधान माना है जबकि चरक एवं अन्य आचार्यों ने इसको आकाश गुण प्रधान माना है। **१–मृदुः श्लक्ष्ण गुण''''बहुलान्याकाशात्मकानि।** च० सू० अ० २६। (२) **गगनतमोवृत्तिः।** आ० द० ३-२-४२। महाभूतों के गुण की दृष्टि से सभी आचार्यों ने श्लक्ष्ण गुण आकाश का माना है। अस्तु इसका संगठन चाहे तैजस प्रधान हो या नाभस इसके कर्म संगठक महाभूत से विपरीत होते हैं।

कार्मुक गुण—यह कफवर्धक होता है। श्लक्ष्ण द्रव्य वल्य, स्नेहन, जीवन, संघातकर कर्म करता है। व्रणों का रोपण इसका मुख्य कर्म है। **१–यस्य रोपणे शक्तिः स श्लक्ष्णः।** हेमाद्रि। (२) **श्लक्ष्णः पिच्छिलवज्ज्ञेयः।** सु० सू० अ० ४६।

श्लक्ष्ण द्रव्य—घृताश्म, वैक्रान्तमणि, मणि, माणिक्य, प्रवाल, मुक्ता, शंख। **श्लक्ष्ण द्रव्य**-शीत, मन्द, मृदु, स्थिर, सूक्ष्म, द्रव, लघु, गुरु, स्निग्ध, रूक्ष गुण वाले द्रव्य प्रायः श्लक्ष्ण होते हैं।

खर गुण—परिभाषा-जो द्रव्य शरीर में जाकर विशद गुण के समान कर्म करे या परुषता उत्पन्न करे वह खर कहलाता है सुश्रुत ने खर को कर्कश लिखा है। **१–कर्कशे विशदो यथा।** सु० सू० अ० ४६। (२) **परुषत्वं खरत्वं।** आ० द० ३-२-४३। खर गुण का अर्थ लौकिक भाषा में खुरदरा या रूखा (Rough) होता है। यह स्पर्श में दुःखद स्पर्शी होता है।

भौतिक संगठन—चरक ने खर गुण पृथिवी और वायु महाभूत प्रधान माना है। जबकि सुश्रुत ने अग्नि और वायु प्रधान माना है। **१–द्रव्याणि-खरगुण-बहुलानि पार्थिवानि–वायव्यानि** च० सू० अ० २६। (२) **खरं तैजसं वायवीयम्।** सु० सू० अ० ४१।

कार्मुक गुण—यह वातवर्धक होता है। खर द्रव्य का मुख्य कर्म दोषों-धातुओं-मलों का शोषण, लेखन है। अन्य कर्म विशद गुण के समान होते हैं। **१–यस्य लेखने शक्तिः स खरः।** हे०। (२) **कर्कशो विशदो यथा।** सु० सू० अ० ४६।

खरद्रव्य—करञ्जफल, शंख, वराटिका, शुक्ति। **खरदव्य**–रूक्ष, लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, स्थिर विशद, कठिन गुण वाले द्रव्य प्रायः खर होते हैं।

स्थूल गुण—परिभाषा-जो द्रव्य शरीर में जाकर स्थूलता और स्रोतों का अवरोध–संवरण उत्पन्न करे वह स्थूल कहलाता है। **१–स्थूलः स्थौल्यकरो देहे स्रोतसामवरोधकृत्।** भा० प्र०। (२) **यस्य संवरणे शक्तिः स स्थूलः।** हे०। स्थूल गुण का अर्थ लोक भाषा में मोटा या मोटापन (Bulkiness) होता है।

भौतिक संगठन—स्थूलगुण पार्थिव महाभूत प्रधान होता है। **१–तत्र द्रव्याणि-स्थूल-गंधगुण बहुलानि पार्थिवानि।** च० सू० अ० २६।(२)**तत्र स्थूल-मधुरमिति पार्थिवम्।** सु० सू० अ० ४१।

कार्मुक गुण—यह कफवर्धक होता है। स्थूल द्रव्य के स्रोतोरोध, संवरण (शारीर धातुओं एवं स्रोतों में चिरकाल तक अविलेय रूप में रहने से) स्थौल्य (मांस और मेदो धातु की वृद्धि करने से) बृंहण मुख्य कर्म हैं। **१–संवरणे स्थूलः।** हे०। (२) **स्थूलः स्थौल्यकरो देहे स्रोतसामवरोधकृत्।** भाव प्र०। (३) **स्थूलः स्याद् बन्धकारकः।** सु० सू० अ० ४६।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्थूल द्रव्य—दधि, श्रीखण्ड, पिष्टक, कूर्चिका, पिण्याकादि। **स्थूल द्रव्य** गुरु, शीत, मन्द, स्थिर, स्निग्ध, पिच्छिल गुण वाले द्रव्य प्रायः स्थूल होते हैं।

सूक्ष्म गुण—परिभाषा–जिस गुण से द्रव्य शरीर के सूक्ष्मतम स्रोतों में प्रविष्ट होकर उनका विवरण कर (असंवरण-खुला रखकर) व स्थूल गुण के विपरीत कार्य करता है। उसे सूक्ष्म कहते हैं। **१–यस्य विवरणे शक्तिः स सूक्ष्मः** । हे०। (२) **देहस्य सूक्ष्मछिद्रेषु विशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते**। भाव प्रकाश।

भौतिक संगठन—चरक ने सूक्ष्म गुण को अग्नि, वायु, आकाश महाभूत प्रधान माना है। और सुश्रुत ने वायु और अग्नि प्रधान। (१)–**उष्ण-सूक्ष्म-बहुलानि आग्नेयानि, लघु-सूक्ष्म-वायव्यानि, मृदुसूक्ष्म-बहुलान्याकाशात्मकानि**। चरक सू० अ० २६। (२) **उष्ण-सूक्ष्म-तैजसम्, सूक्ष्म-वायवीयम्**। । सु० सू० अ० ४१।

कार्मुक गुण—यह वातवर्धक होता है। सूक्ष्म द्रव्य सूक्ष्म स्रोतस-प्रवेशी, विवरण-स्रोतोरोध दूरीकरण, संकोचन (कोषाणु, धातु, अवयव संकोच) लेखन तथा स्थूल गुण के विपरीत क्रिया करता है।

सूक्ष्म द्रव्य—गुग्गुलु, दशमूल, तिलतैल, मद्य, मधु, गोमूत्र, शिलाजतु, पारद, गन्धक, स्वर्ण-माक्षिक, लवण। **सूक्ष्मदव्य** द्रव, सर, स्निग्ध मृदु, गुरु, रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण गुण वाले द्रव्य प्रायः सूक्ष्म होते हैं।

सान्द्र गुण—परिभाषा–जिस द्रव्य के प्रयोग से शरीर में स्थौल्य, प्रसादन, धातुओं में संघात, दृढ़ता उत्पन्न हो उसे सान्द्र कहते हैं। **१–यस्य प्रसादने शक्तिः स सान्द्रः** ।हे०। (२) **सान्द्रः स्याद् बन्धकारकः**। सु० सू० अ० ४६। लौकिक भाषा में सान्द्र गुण घन या गाढ़ा (Solid) कहलाता है।

भौतिक संगठन—सान्द्र गुण पृथिवी आप्य महाभूत प्रधान होता है। **१–तत्र द्रव्याणि-सान्द्र गन्ध गुण बहुलानि पार्थिवानि**। च० सू० अ० २६। (२) **तत्र शीत-सान्द्र-रसप्रायमाप्यम्**। सु० सू० अ० ४१।

कार्मुक गुण—यह कफवर्धक होता है। सान्द्र द्रव्य प्रसादन, बृंहण, बन्धन-दोष, धातु, मल, स्रोत-शरीरावयवों की संहति-निविडता (निविडावयवत्वं सान्द्रत्वम्) कर्म करता है।

सान्द्र द्रव्य—अष्टवर्ग, काकोल्यादिगण, विदारीकन्द, मूसली, सालमपञ्जा, दधि, नवनीत, सन्तानिका आदि। **सान्द्र द्रव्य** गुरु, मन्द, शीत, स्निग्ध, स्थिर, पिच्छिल गुण वाले द्रव्य प्रायः सान्द्र होते है।

द्रव गुण—परिभाषा जो द्रव्य शरीर में जाकर अति क्लिन्नता उत्पन्न करे एवं सूक्ष्म स्रोतों में भी प्रसरणशील हो वह द्रव कहलाता है। **१–द्रवः प्रक्लेदनः परः**। सु० सू० अ० ४१। (२) **द्रवः क्लेदकरो व्यापि**। भा० प्र०। द्रव गुण का अर्थ लोकभाषा में पतला (Liquid) होता है।

भौतिक संगठन–द्रव गुण आप्य महाभूत प्रधान होता है। **१–द्रव-रसगुण बहुलान्याप्यानि**। च० सू० अ० २६।

कार्मुक गुण—यह कफपित्त वर्धक होता है। द्रवगुण सान्द्र के विपरीत कर्म करता हैं। द्रव द्रव्य प्रक्लेदन (आहार के पाचनार्थ आवश्यक क्लिन्नता उत्पन्न करना तथा रस-रक्त, मेद-मज्जा-शुक्र

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

धातुओं में द्रवांश का आप्यायन) व्याप्ति (रस धातु को इतर धातुओं के पोषण के लिए व्याप्त या प्रसरणशील करना) विलोड़न (जिसमें शरीरगत द्रव्यों का मिश्रण हो) स्यन्दन (विभिन्नाशयों, ग्रन्थियों, कलाओं से स्रावोत्पत्ति) मल द्रवीभूत (स्वेद, मूत्र, स्रोतों के मल के जलीयांश की वृद्धि से ये द्रवी भूत होते हैं) कर्म करता है। **१–स्यन्दन कारणं द्रवत्वम्।** आ० द० ३-२-५१। (२) **द्रवःक्लेदकरो व्यापि।** भा० प्र०। (३) **यस्य विलोडने शक्तिः स द्रवः।** हे०।

द्रव द्रव्य—तैल, जल, मूत्र, दुग्ध, घृत, दधि, इक्षुरस, लवण, शर्करा, नृसार। **द्रवद्रव्य सर,** सूक्ष्म, स्निग्ध, पिच्छिल, शीत, गुरु, मृदु, उष्ण, श्लक्ष्ण, लघुगुण वाले द्रव्य प्रायः द्रवगुण प्रधान होते हैं।

परादि गुण

सामान्य गुण वर्गान्तर्गत परत्व, अपरत्व, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिणाम संस्कार, अभ्यास ये दस गुण होते हैं। महर्षि चरक ने चिकित्सा में सफलता के लिए इन गुणों का कण्ठरव से महत्त्व प्रदिशत किया है। चरक के टीकाकार चक्रपाणि ने इन गुणों को विशेष उपयोगी नहीं माना है। **एते च सामान्य गुणा अपि नात्युपयुक्तत्वात्तथा बुद्धि प्राधान्याच्चान्ते उक्ताः।** च० सू० अ० १। च० द०। जबकि पूर्व में इन गुणों की उपयोगिता के सम्बन्ध में विचार प्रगट किये गये हैं।

(१) परत्व और (२) अपरत्व—परत्व का अर्थ उत्कृष्ट, प्रधानता (तच्च परत्वं प्रधानत्वम्। चक्र०) है। सामान्य जाति, वर्ग के पदार्थों में जो प्रधान या उत्कृष्ट होता है वह श्रेष्ठ या पर कहलाता है। आयुर्वेद में इस गुण की उपादेयता देश, काल, वय, मान, पाक, वीर्य, रसादि में उत्कृष्ट सात्म्य-हितकर के विचार से है। **देशकालवयोमानपाकवीर्यरसादिषु। परापरत्वे।** च० सू० अ० २६। उदाहरण के लिए देशों में मरुदेश, कालों में विसर्ग, वय में तारुण्य, अवस्थानुसार शरीर का प्राकृतमान, शरीर के लिए हितकर जो रस, विपाक, वीर्य हो उसे पर या श्रेष्ठ कहते हैं। **तत्र देशो मरुः परः, कालो विसर्गः परः, वयस्तरुणं परं, मानं च शरीरस्य यथा वक्ष्यमाणं शरीरे परं, पाकवीर्य-रसास्तु ये यस्य योगिनस्ते तं प्रति पराः।** च० द०। अपरत्व का अर्थ निकृष्ट या अप्रधान होता है। **अपरत्वम् अप्रधानत्वम्।** च० द०। पर और अपर ये दोनों ही एक दूसरे के सापेक्ष गुण हैं। आयुर्वेद में इस गुण का उपयोग देश कालादि में अप्रधान, निकृष्ट या असात्म्य-अहितकर भावों के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए देशों में आनूपदेश अपर या निकृष्ट, कालों में आदान काल अपर, वय में वृद्ध, अप्राकृत मान, तथा अहितकर रस, पाक, वीर्य अपर या निकृष्ट कहे जाते हैं।

(३) युक्ति-योजना—प्रकृति, दोष, देश, काल, बलाबल, वयादि को देखकर तदनुसार औषध की समुचित योजना (कल्पना) को युक्ति कहते हैं। **योजना दोषाद्यपेक्षया भेषजस्य समीचीन कल्पना।** च० द०। चिकित्सा में युक्ति (योजना) का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। 'नानौषधिभूतं जगति किंचित्' आचार्य वाक्यों का सही व्यावहारिक उपयोग एक चिकित्सक सम्यक् योजना के द्वारा ही चिकित्सा में कर सकता है। युक्तिज्ञ चिकित्सक का स्थान भी एतावता सर्वोपरि होता है। .... **तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा।** च० सू० अ० १। आयुर्वेददर्शनकार ने तो युक्ति को सम्पूर्ण द्रव्याश्रयी तक लिखा है। **सर्वद्रव्य वर्तिनी।** आ० द० ५–१–६।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(४) संख्या——का सामान्य अर्थ पदार्थों की एक दो तीन आदि के रूप में परिगणना है। (१) **संख्या स्याद्गणितं**। च० सू० अ० २६। (२) **गणना व्यवहारे तु हेतुः संख्याऽभिधीयते**—कारिकावलि। दोष, विकार और द्रव्य के भेदों का बोध संख्या द्वारा ही होता है। उदाहरण के लिए तीन दोष, आठ ज्वर, पांच श्वास-कास; पञ्चकषाय, लघुपंचमूल, दशमूल, त्रिफला आदि का ज्ञान च० वि० अ० १। सं या द्वारा ही होता है।

(५) संयोग—दो या दो से अधिक द्रव्यों के परस्पर योग-मिलने को संयोग कहते हैं। **१–योगः सह संयोग उच्यते। (२) संयोगः पुनर्द्वयोर्बहूनां वा द्रव्याणां संहतीभावः।** च०वि०अ० १। यह संयोग असम्बद्ध-विभिन्न पदार्थों का काल विशेष में स्वल्प काल के लिए होता है। यह नित्य और अनित्य भेद से दो प्रकार का होता है। द्रव्य का उसके गुण के साथ जो नित्य सम्बन्ध होता है उसे समवाय सम्बन्ध कहते हैं। द्रव्य का इतर द्रव्य के साथ जो संयोग या सम्बन्ध होता है वह अनित्य होता है। पुनः कारण भेद से (१) कर्मज (२) द्वन्द्व कर्मज (३) सर्वकर्मज तीन प्रकार का होता (१) **एक कर्मज**–यह दो के संयोग से होता है। जिसमें एक सचेष्ट दूसरा निश्चेष्ट होता है। जैसे वृक्ष और काक का संयोग। **एक कर्मजो यथा–वृक्षवायसयोः**। च० द०। यह केवल काक की चेष्टा से ही होता है। (२) **द्वन्द्व कर्मज**–यह दोनों की अपनी २ चेष्टा से होने वाला संयोग है जैसे लड़ते हुए दो भेड़ों का परस्पर मिलना। **तत्र द्वन्द्वकर्मजो यथा युध्यमानयोर्मेषयोः** च०द०। (३) **सर्वकर्मज**–में दो से अधिक पदार्थों का परस्पर सक्रिय संयोग-मिलन होता है। जैसे एक भाण्ड (मृत्पात्र) में रखे हुए उड़द के दानों का संयोग। **सर्वकर्मजो यथा भाण्डे प्रक्षिप्यमाणानां माषानां बहुलमाषक्रियायोगजः।** च० वि० अ० १ च०द०।

आधुनिक विज्ञान में कार्य के विचार से भौतिक मिश्रण (Physical mixture) एवं रासायनिक मिश्रण (Chemical mixture) दो प्रकार का संयोग माना गया है। आयुर्वेद में भौतिक मिश्रण को प्रकृति ससमवाय और रासायनिक मिश्रण को विकृति विषमसमवाय कह सकते हैं। जिसको मधुकोश कार ने इस प्रकार स्पष्ट किया है। **प्रकृत्या हेतुभूतया समःकारणानुरूपः समवायः कार्यकारण-भाव-सम्बन्धः प्रकृतिसमसमवायः कारणानुरूपं कार्यमित्यर्थः, यथा शुक्लतन्तु समवायारब्धस्य पटस्य शुक्लत्वम्। विकृत्या हेतुभूतया विषमः कारणानुरूपः ससवायः विकृति विषमसमवायः, यथा हरिद्राचूर्ण संयोगे लौहित्यमिति**। मधुकोश।

(६) विभाग—यह संयोग विरोधी गुण है। जिसके द्वारा संयोग का नाश होता है। उसे विभाग कहते हैं। संयुक्त पदार्थ समूह में से पारस्परिक विभजन या पृथक् २ करना ही विभाग कहलाता है। संयोग से नष्ट हो जाने से यह गुण भी अनित्य है। किसी संयुक्त ओषधि के संपूर्ण घटक-औषध द्रव्यों की निश्चित मात्रा का ज्ञान करना,कि कौन २ सी ओषधि कितनी २ मात्रा में है, विभाग कहलाता है। यह भी संयोग के समान ३ प्रकार का होता है। (१) **एक कर्मज**–काक वृक्ष का पृथक् होना (२) **द्वन्द्व कर्मज**–लड़ते हुए भेड़ों का पृथक् २ होना (३) **सर्वकर्मज**–सम्पूर्ण उड़दों को पृथक् २ करना ये विभाग के उदाहरण हैं।

(७) पृथक्त्व—असंयोग का नाम ही पृथक्त्व है। एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य को पृथक् करने वाला गुण पृथक्त्व कहलाता है। **पृथक्त्वं स्यादसंयोगो वैलक्षण्यमनेकता**। च० सू० अ० २६। यह

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तीन प्रकार का होता है (१) **असंयोग लक्षण**–जिनके संयोग की सम्भावना कभी न हो जैसे हिमालय और विन्ध्य पर्वत का असंयोग या पृथक्त्व।

(२) **वैलक्षण्यरूप**–असमान या विजातीय द्रव्यों का पृथक्त्व जैसे गाय, भैंस, सूअर। (३) **अनेकतारूप**–सजातीय द्रव्यों में से भी अनेकरूपता से एक दूसरे का पृथक्त्व जैसे अनेक उड़दों का समान सजातीय होने पर भी एक दूसरे से पृथक्त्व होता है।

(८) परिमाण––व्यवहार में इससे नाप व तौल का ग्रहण होता है। मान की ही परिमाण संज्ञा है। उस मान व्यवहार का हेतुभूत जो गुण हो वह परिमाण कहलाता है। यह सभी द्रव्यों में पाया जाता है। चिकित्सा में रोग, रोगी, दोष, बल, काल, देश, अग्नि, वय के अनुसार विभिन्न औषधियों का प्रयोग अमुक मात्रा में या परिमाण में करना इस गुण की सुविदित उपयोगिता है।

(९) संस्कार––जिस गुण के कारण द्रव्य को संस्कृत-संस्कारित कर गुणान्तर उत्पन्न किया जावे या गुणाधान करने को संस्कार या करण कहते हैं। मर्दन, स्वेदन, भावना, पुटपाक, भर्जन, रन्धन आदि क्रियाओं द्वारा एवं जल, अग्नि, संसर्ग, देश, काल, भावना, पात्रसंयोग द्वारा द्रव्यों में गुणान्तर किया जाता है। पारद के स्वेदनादि संस्कार करने से उसमें विशिष्ट गुणों का समावेश किया जाता है। रन्धन, भर्जन क्रिया द्वारा शालि से भात तथा लाजा बनाना। मुद्गादि स्वाभाविक लघु द्रव्यों को हल्वा, मोदक पाक क्रिया से गुरु बनाया जाता है। १–**करणं पुनः स्वाभाविकानां द्रव्याणामभिसंस्कारः** च० वि० अ० १। (२) **संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते**। च० वि० अ० १।(३) **गुणाधानम् दोषपरिहारो वा संस्कार** :। आ० द० ५-१- ३७।

(१०) अभ्यास––किसी द्रव्य के निरन्तर सेवन को ही अभ्यास कहते हैं। शीलन (एक ही द्रव्य का पुनः २ सेवन करना) सतत क्रिया(एक ही क्रिया बराबर करना-अनवरत औषध सेवन) इसके पर्याय हैं। **भावाभ्यसनमभ्यासः शीलनं सततक्रिया**। च० सू० अ० २६। किसी भी औषधि का निरन्तर सेवन करने से ही आरोग्य लाभ होता है, तत्काल लाभ नहीं होता है।

सतत अभ्यास एवं शीलन विधि से हितकर द्रव्यों के सेवन से शरीर के विषम दोष धातु मलों की उत्पत्ति या परम्परा अवरुद्ध हो जाती है तथा अल्पकाल के बाद ही प्राकृत, सम दोष, धातु मलों की उत्पत्ति या परम्परा प्रारम्भ हो जाती है। दोष धातुओं की समस्थिति होने से पूर्ण आरोग्य लाभ होता है।

व्यायामादि चेष्टाओं से भी सतत अभ्यास से ही अभीष्ट लाभ होता है। किसी भी एक द्रव्य या व्यायामादि क्रिया का एक कालिक प्रचुर मात्रा में सेवन से लाभ की अपेक्षा अलाभ ही होता है। अतः आचार्यों ने इनके सतत अभ्यास का ही निर्देश दिया है। **भावानामभ्यसनं पुनः पुनरनुष्ठानं सातत्येन करणमभ्यासः**। च० सू० अ० २६ यो०।

गुण प्राधान्यवाद

आचार्य भदन्त नागार्जुन ने गुण की प्रधानता में एकीय मत को उद्धृत करते हुए लिखा है।

(१) रसपराभव––गुण रसों का पराभव (दबाकर) करके अपना कार्य करते हैं। गुणों की उपस्थिति में रस अकिंचित्कर होने से गुणों द्वारा ही कर्मनिष्पत्ति होती है। उष्णोदक का उष्ण गुण जलगत मधुर रस का पराभव करके कफघ्न कर्म करता है। बृहत्पञ्चमूल और पटोल उष्ण गुण

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

होने से तिक्त रस का पराभव करके ये वात का शमन करते हैं। **गुणाः प्रधाना इति केचित्। गुणाद् रसानामभिभवात्।** र० वै० अ० १ सू० १२१। **रसानभिभूय गुणाः स्वं कार्यं निवर्त्तयन्ति। यथा उष्णोदकं श्लेष्माणं हरति माधुर्यमभिभूय, तथा पटोलश्च महत्पञ्चमूलञ्च तिक्तमौष्ण्याद्वातं जयति।**

(२) विपाक कारणत्व—गुण द्रव्यों के विपाक का कारण होने से प्रधान हैं। स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल, शीत, गुरु विपाक और रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण, विशद गुण लघु विपाक के कारण होते हैं। रसों की कार्यनिष्पत्ति विपाक के अधीन है और विपाक की निष्पत्ति गुण के अधीन होने से गुण प्रधान हैं। कारण मुख्य तथा कार्य गौण होता है। **विपाककारणत्वात्।** सू० १२३—**गुणाः विपाकयोः कारणम्; शीत-स्निग्ध-गुरु-पिच्छिला गुरुविपाकस्य; लघु-रूक्ष-विशद-तीक्ष्णा लघुविपाकस्येति। रसानां कार्य-निर्वृत्तिः पाकायत्ता, स च पाको गुणायत्त इति।** भाष्य।

(३) संख्या बाहुल्य—संख्या में गुण रस की अपेक्षा अधिक होते हैं। रस छ होते हैं तथा गुर्वादि गुण बीस होते हैं। जो अधिक होते हैं उनका दल सदा बलवान और प्रधान होता है। यह लोक प्रसिद्ध है। **बाहुल्यात्।** सू० १२४। **रसेभ्यो बहवो गुणाः दृष्टाः रसाः षट्,गुणाः दशेति, अल्पेभ्यो बहवो विशिष्टा इति लोक प्रसिद्धमेककर्मणि।** भाष्य।

(४) रसानुग्रह—गुण से अनुगृहीत रसों का प्राधान्य देखा जाता है किंवा गुणों के द्वारा रसों के कर्म में उत्कर्षाभिव्यक्ति हो जाती है। रस अपने कर्म अनुकूल गुणों के सहयोग से ही करते हैं। यदि किसी द्रव्य में रसानुसार गुण नहीं हों तो वह रसानुसार कार्य नहीं कर सकता है। उदाहरण के लिए वातशामक रसों में यदि रौक्ष्य, लाघव, शैत्य, गुण हों तो वे वात का शमन नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार पित्तशामक रसों में यदि तीक्ष्ण, उष्ण, लघु गुण हों तथा कफशामक रसों में स्नेह, गौरव, शैत्य गुण हों तो वे क्रमशः पित्त और कफ का शमन नहीं कर सकते हैं।

गुणों से अनुगृहीत रसों के प्राधान्य के उदाहरण—शैत्य, स्नेह, मार्दव, पिच्छिल गुण से तथा लघु विपाकी होने से मधुर द्रव्यों में घृत श्रेष्ठ होता है। मृदु, शीत गुण से और लघु विपाकी होने से अम्ल द्रव्यों में आमलकी श्रेष्ठ होता है। सैन्धव स्निग्ध, मृदु, नात्युष्ण होने से लवण द्रव्यों में श्रेष्ठ होता है। कटु द्रव्यों में पिप्पली गुरु मृदु नातिरूक्ष होने से और पटोल स्निग्ध पिच्छिल, गुरु वृष्य होने से तिक्त रसों में श्रेष्ठ होता है। इस प्रकार विभिन्न रसों में घृत, आमलकी, सैन्धव, पिप्पली, पटोल द्रव्यों का प्राधान्य विशिष्ट गुणों से है।

(५) प्रयोग बाहुल्य—रसों का प्रयोग केवल मुखमार्ग से होता है जबकि गुणों का अनेक प्रकारों-परिषेक, अभ्यङ्ग, अवगाह इत्यादि अनेक रूप से शीतोष्णादि गुणों का प्रयोग किया जाता है। **बहुधोपयोगात्-किंच बहुधाऽभ्यङ्गपरिषेकावगाहरूपेण शीतादय उपयुज्यन्ते, रसास्तु मुखत एवेति गुणाः प्रधानाः।** सू० १२५ भा०।

(६) अनुमान—शीतोष्णादि गुणों के अनुसार द्रव्यों के कर्मों का अनुमान होता है। जैसे यह उष्ण, गुरु, स्निग्ध होने से वातहर है, यह शीत, मृदु होने से पित्तशामक है।

(७) उपदेश—गुणों का उपदेश किया जाता है। गुण से ही द्रव्य का ज्ञान होता है। जैसे स्निग्धोष्ण, गुरु द्रव्य वातघ्न होते हैं। **उपदेशादनुमानात्-तेषां गुरूष्णस्निग्धाः वातघ्ना इत्यादिः उपदेशः।** र० वै० अ० १ सू० १२६ भा०।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रस विज्ञानीय चतुर्थ परिच्छेद

रस का लक्षण—रसनेन्द्रिय (जिह्वा) द्वारा जिस विषय (आहारौषध द्रव्यों के स्वाद गुण) का ज्ञान या ग्रहण होता है उसे रस कहते हैं। रसोत्पत्ति में जल और पृथिवी आधार कारण हैं। तेज, वायु, आकाश महाभूतों के संयोग से विभिन्न षड्रसों की अभिव्यक्ति होती है। **रसनार्थो रसस्तस्य द्रव्यमापः क्षितिस्तथा निर्वृत्तौ च विशेषे च प्रत्ययाः खादयस्त्रयः ।।** च० सू० अ० १। **रस्यत आस्वाद्यत इति रसः।** चक्रपाणि। (२) **रसो रसनाग्राह्यः।** प्रशस्तपाद। (३) **रसस्तु रसनाग्राह्यो मधुरादिरनेकधा।** कारिकावलि। रस की प्रस्तुत व्याख्या के अतिरिक्त रस शब्द से आहाररस, रसधातु (रसति अहरहर्गच्छतीति रसः) पारद (रसति भक्षयति सर्वान् लोहान् इति रसः) स्वरस (रसति शरीरे आशु प्रसरति इति रसः) का भी अर्थावबोध होता है।

रस संख्या—सभी आचार्य निर्विवाद रूप से मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय ६ रस मानते हैं। १—**रसास्तावत् षट्-मधुराम्ल-लवण-कटु-तिक्त-कषायाः।** च० वि० अ० १। **रसाः स्वाद्वम्ल-लवण-तिक्तोषणकषायकाः। षड्द्रव्यमाश्रितास्ते तु यथापूर्वं बलावहाः।** अ० हृ० सू० अ० १।

	रसनाम	लोकभाषा नाम	उदाहरण
१.	मधुर	मीठा	शर्करा, गुड़, द्राक्षा, घृत, दुग्ध, मुलेठी, पनस (पक्व)
२.	अम्ल	खट्टा	नींबू, जम्बीरीनींबू, इमली, आंवला, दाडिम।
३.	लवण	नमकीन	सैंधव-सामुद्र-विड्लवण, नरसार।
४.	कटु	चरपरा	कालीमिर्च, पीपल, सोंठ, चित्रक।
५.	तिक्त	तीता, कड़वा	नीम, गुडूची, चिरायता, करैला।
६.	कषाय	कसैला	हरड़, बहेड़ा, बबूल, इरिमेद, धातकी।

पञ्च महाभूतों से षड्रसों की उत्पत्ति—जिस प्रकार यावन्मात्र द्रव्य पाञ्चभौतिक होते हैं। उसी प्रकार रस भी पाञ्चभौतिक होते हैं। मधुराम्लादि रसों की विशिष्ट निष्पत्ति महाभूतों के वैशिष्ट्य संगठन से होती है। (१) पंच महाभूतों से छ रसों की ही उत्पत्ति क्यों होती हैं ? यह संख्या छ से कम या अधिक क्यों नहीं होती है ?। (२) इन रसों की उत्पत्ति के कारण महाभूतों का न्यूनाधिक्य क्यों और कैसे होता है ?। इन समुपस्थित दो प्रश्नों का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है। **प्रथम प्रश्न का समाधान-(१) स्वभाव से**-महाभूतों का स्वभाव ही ऐसा है कि वे आपस के संगठन विशेष से एक विशेष रस ही की उत्पत्ति करते हैं अधिक की नहीं। **स्वभावाददोषः एषां भूम्याकाशादीनामीदृशः स्वभावो यत् केनचिद् भूताधिक्येन व्यवस्थितानि भूम्यादीनि रसान्तरोत्पादन-समर्थानि भवन्ति। न सर्वेणेति।** अ० हृ० सू० अ० १०, अ० द०।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(२) रस वैशेषिककार नागार्जुन ने भी आप्तोपदेश एवं प्रत्यक्षज्ञान (जिह्वा के द्वारा छ ही रसों का ज्ञान होता है न्यूनातिरेक का नहीं) के अनुसार छ ही रस माने हैं। **षट्सूत्रकार प्रामाण्यादास्वाद्याच्च**। र० वै० ३–५।

(३) जिस प्रकार प्राणियों के पांच भौतिक होने पर भी महाभूतों के न्यूनाधिक्य से विशिष्ट आकृति, वर्ण उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार आन्तरिक्ष जल से जो स्वयं अव्यक्त रस प्रकृति से शीत लघु है; नभ से आते समय विविध महाभूतों के गुणों के सम्पर्क से तथा पृथिवी पर गिरने पर पूर्णतः पाञ्च भौतिक गुणान्वित हो जाता है। वह स्थावर एवं जङ्गम द्रव्यों के संयोग में आने पर मधुराम्लादि छ रसों की उत्पत्ति करता है। **१–एवमेषां रसानां षट्त्वमुपपन्नं न्यूनातिरेकविशेषान्महाभूतानां, भूतानामिव स्थावरजङ्गमानां नानावर्णाकृतिविशेषाः**। च० सू० अ० २६। **(२) सौम्याः खल्वापोऽन्तरिक्ष प्रभवाः प्रकृतिशीता लघव्यश्चाव्यक्तरसाश्च, तास्त्वन्तरीक्षाद् भ्रश्यमानाः भ्रष्टाश्च पञ्चमहाभूत गुणसमन्विता जङ्गम-स्थावराणां भूतानां मूर्तीरभिप्रीणयन्ति, तासु मूर्त्तिषु षडभिमूर्च्छन्ति रसाः–एवमेषां रसानां षट्त्वमुपपन्नं न्यूनातिरेकविशेषान्महाभूतानां**। च० सू० अ० २६।

विभिन्न रसों की रसाभिव्यक्ति में ऋतु भी मुख्य कारण है तथा ऋतुओं की संख्या छ होती है। अतः संख्या साम्य के आधार पर भी रसों की संख्या छ होती है। सारांश में कह सकते हैं कि पञ्च महाभूतों से छ ही (न्यूनातिरेक नहीं) रसोत्पत्ति का कारण महाभूतों का अपना विशिष्ट संगठनात्मक स्वभाव है।

द्वितीय प्रश्न का समाधान—विभिन्न षड्रसोत्पत्ति में महाभूतों का न्यूनातिरेक ऋतुओं के अनुसार होता है। द्रव्यों में विशिष्ट ऋतुओं में विशिष्ट रसाभिव्यक्ति महाभूतों के न्यूनाधिक्य से होती है। **कथं महाभूतानामूनाधिक्यम् ? उच्यते कालस्य संवत्सरारव्यस्य षड्ऋतुकत्वाद्रसस्यापि षड्भेदत्वम्। तथा च शिशिरे वाय्वाकाशयोराधिक्याद्रसस्य तिक्तता, वसन्ते वायुपृथिव्योः कषायता, ग्रीष्मेऽग्निवाय्वोः कटुता, वर्षास्वग्निपृथिव्योरम्लता, शरद्यग्न्युदकयोर्लवणता, हेमन्ते पृथिव्युदकयोर्मधुरतेति प्राधान्याद् व्यपदेशः। इन्दुः। (२) षड्ऋतुकत्वाच्च कालस्योपपन्नो महाभूतानां न्यूनातिरेकविशेषः**। चरक सूत्र स्थान अ० २६।

रस संख्या विषयक आधुनिक मत—आधुनिक विद्वान चार ही रस मानते हैं। १–मधुर रस (Sweet) २–अम्ल रस (Sour) ३–लवण रस (Salt) ४–तिक्त रस (Bitter)। ये कटु एवं कषाय रस को स्वतन्त्र रस नही मानते हैं। अपितु रस और स्पर्श की संयुक्त संवेदना मानते हैं, तथापि भेषज शास्त्र (Pharmacology) में कषाय द्रव्यों (Astringent) तथा कटु द्रव्यों (Pungent & Volatile Oil) के पृथक् वर्ग एवं कर्मों का उल्लेख किया गया है। अतः आयुर्वेद सम्मत षड्रस सं या भी अप्रत्यक्षतया सिद्ध हो जाती। रस के आस्वाद्य लक्षण से कटु एवं कषाय रसों का ज्ञान भी जिह्वा द्वारा होने से इनकी रस सं या में गणना समुचित ही है।

ऋत्वनुसार रसोत्पत्ति विवरण

ऋतुनाम	महाभूताधिक्य	रसोत्पत्ति	सन्दर्भ
हेमन्त	जल+पृथिवी	मधुर	पृथिवीसोमगुणातिरेकान्मधुरो रसः।च०।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ऋतुनाम	महाभूताधिक्य	रसोत्पत्ति	सन्दर्भ	
शरद्	जल+अग्नि	लवण	भूम्यग्निगुणबाहुल्याल्लवणः	।सु०।
			सलिलाग्निभूयिष्ठत्वाल्लवणः	।च०।
वर्षा	अग्नि+पृथिवी	अम्ल	पृथिव्यग्निभूयिष्ठत्वादम्लः	।च०।
			तोयाग्निगुणबाहुल्यादम्लः	।सु०।
ग्रीष्म	वायु+अग्नि	कटु	वाय्वग्निभूयिष्ठत्वात्कटुकः	।च०।
वसन्त	वायु+पृथिवी	कषाय	पवनपृथिवीव्यतिरेकात् कषायः	।च०।
शिशिर	वायु+आकाश	तिक्त	वाय्वाकाशातिरिक्तत्वात्तिक्तः	।च०।

क्ष्माऽम्भोऽग्नि-क्ष्माऽम्बु-तेज-ख-वाय्वग्न्यनिल-गोऽनिलैः । द्वयोल्वणैःक्रमाद्भूतैर्मधुरादिरसोद्भवः ।। अ० हृ० सू० अ० १० ।

द्रव्याश्रित रस पाञ्च भौतिक होने पर भी विशिष्ट महाभूतों के द्वन्द्वों के प्राधान्य से मधुर अम्ल लवण कटु तिक्त कषाय में अभिव्यक्त होते हैं । उपर्युक्त तालिका में कौन-कौन से महाभूतों के द्वन्द्व से कौन-कौन से रस की उत्पत्ति होती है यह दर्शाया गया है । प्रस्तुत विवरण (सन्दर्भ) से ज्ञात होता है कि अम्ल, लवण, कटु रसों की उत्पत्ति में आचार्यों में मतभेद है । यह मतभेद केवल भौतिक संगठन के दृष्टिकोण से है किन्तु इनके कर्मों की दृष्टि से इनमें विशेष विरोधाभास प्रतीत नहीं होता है तथा आचार्यों ने रसों के कर्मों को ही दृष्टिगत करते हुए भौतिक संगठन पर विचार किया है । अम्ल रस का संगठन जल+अग्नि हो या पृथिवी+अग्नि हो दोनों ही प्रकार से वातनाशक एवं पित्त-वर्धक है । इसी प्रकार से लवण रस का संगठन जल+अग्नि हो या पृथिवी+अग्नि से हो दोनों ही प्रकार से वातशामक एवं कफपित्तवर्धक है । कटु रस का भी संगठन वायु+अग्नि महाभूत हो या आकाश+अग्नि महाभूत हो दोनों ही प्रकार से वातपित्तवर्धक एवं कफहर होता है । **चरके तोयाग्नि-गुणबाहुल्याल्लवणः पठित, इह तु तोयाग्निगुणबाहुल्यादम्लः पठ्यते तदत्र प्रमेये विरोधो नास्त्येव, उभयथाऽपि वक्ष्यमाणरसगुणानामुपपत्तेः । च० द० । एवं लवणोऽप्यपां कारणत्वं ज्ञेयम् । लवणस्तु सुश्रुते पृथिव्यग्न्यतिरेकात् पठितः, अस्मिश्च विरोधे कार्यविरोधो नास्त्येव ।च० द० ।**

विरोधी महाभूतों से रसोत्पत्ति तथा विरोधी रसों की उत्पत्ति कैसे होती है ?

तेज तथा जल जैसे परस्पर विरोधी महाभूतों के सन्निवेश से द्रव्य में रस का अभाव क्यों नहीं होता है ? तथा विरोधी गुण क्यों नहीं पाये जाते हैं ? । एक ही द्रव्य में परस्पर विरोधात्मक रस निष्पत्ति कैसे होती है ? इन सभी शंकाओं का समाधान महाभूतों का सहज स्वभाव मात्र है । **नात्र वस्तुस्वभावे युक्तयः कोशनीयाः, अपर्यनुयोग्यत्वाद् भावस्वभावानां । च० द० ।** महाभूतों का स्वभाव है कि उनके सन्निवेश स्थल में सब गुण अभिव्यक्त नहीं होते हैं, अपितु कुछ गुण ही व्यक्त होते हैं जैसे सैन्धव में अग्नि से उष्णता की व्यक्ति नहीं होती है तथा जल से स्नेह गुण की अभिव्यक्ति हो जाती है । मकुष्ठ में जल के द्वारा मधुर रस की व्यक्ति हो जाती है किन्तु जल के स्नेह गुण की अभिव्यक्ति नहीं होती है । यह गुणोत्पत्ति और अनुत्पत्ति स्वभाव से ही होती है । यह अदृष्ट होती है । **भूतानामयं स्वभावः, यत् केनचित् प्रकारेण सन्निविष्टाःकिञ्चिद्गुणमारभ्यन्ते न सर्वम् । यथा मकुष्ठे ऽद्भिर्मधुरो रसः क्रियते न स्नेहः तथा सैन्धवे वह्निनाऽपि नोष्णत्वमारभ्यते । अयं च भूतानां सन्निवेशोऽदृष्ट स्वभाव एव । च० द० ।**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रसों में महाभूतों के प्राधान्य का निर्णय कैसे होता है ? रस विशेष में महाभूतों की अधिकता का विनिश्चय रसों के कार्य को देखकर अनुमान से ही होता है। (१) **स च सन्निवेशः कार्यदर्शनेनोन्नेयः। तेन यत्र कार्यं दृश्यते तत्र कल्पते।** च० द०। (२) **ते निर्धार्यन्तेऽनुमानात्।** र० वै० सू० ४४। विरोधि महाभूतों की अधिकता से उत्पन्न दोषों का क्षय और समान महाभूतों की अधिकता से उत्पन्न दोषों की वृद्धि को देखकर तत् तद् रस तत् तद् महाभूतों की अधिकता से उत्पन्न हुआ है यह अनुमान किया जाता है। संक्षेपतया किसी रस का प्रयोग करने पर शरीर के सजातीय दोष, धातुओं की वृद्धि एवं विजातीय दोष, धातुओं का क्षय होता है। **वर्धनात् समानजातीयस्य असमान जातीयस्य क्षपणाच्च।** र० वै० सू० ४५। मधुर रस के द्वारा श्लेष्मा की वृद्धि और तेज प्रधान पित्त के क्षपण को देखकर मधुर रस जल एवं पृथिवी की अधिकता से उत्पन्न हुआ है। यह अनुमान किया जाता है। **आप्यस्य श्लेष्मणो वर्धनादाग्नेयस्य पित्तस्य क्षपणाच्च मधुरस्याप्यत्वमुपपन्नमिति।** भाष्य। इसी प्रकार लवण के उष्ण होने से आग्नेय एवं विष्यन्दि होने से जलमहाभूत से निष्पत्ति का अनुमान होता है। **उष्णत्वादग्निर्विष्यन्दित्वाच्च जलमनुमीयते।** च० द०। इसी प्रकार से अम्ल रस कफपित्त वर्धक होने से पार्थिवाग्नेय, कटुरस वातपित्त वर्धक होने से वायव्याग्नेय, तिक्त रस वातवर्धक, कफक्षयकर होने से वायव्यनाभस; कषाय रस वातवर्धक और पित्तशामक होने से वायव्य पार्थिव महाभूत प्रधान के रूप में माना जाता है। वायु एवं आकाश महाभूत प्रधान द्रव्यों से वातवृद्धि; अग्नि प्रधान द्रव्यों से पित्त की वृद्धि तथा पृथिवी जलभूत प्रधान द्रव्यों से श्लेष्मा की वृद्धि होती है। इन महाभूतों के विरुद्ध भूतगुण प्रधान द्रव्यों से तत् तद् दोषों का शमन होता है।

भूतेजोवारिजैर्द्रव्यैः शमं याति समीरणः। भूम्यम्बुवायुजैः पित्तं क्षिप्रमाप्नोति निर्वृतिम्॥ खतेजोऽनिलजैः श्लेष्मा शममेति शरीरिणाम्। वियत्पवनजाताभ्यां वृद्धिमाप्नोति मारुतः। आग्नेयमेव यद्द्रव्यं तेन पित्तमुदीर्यते। वसुधाजलजाताभ्यां बलासः परिवर्धते॥ सु० सू० अ० ४२।

वमन विरेचनादि कर्मों से भी भौतिक सन्निवेश का अनुमान किया जाता है। जैसे वमन कर्म में दोष ऊर्ध्वगतिमान होकर ऊर्ध्व मार्ग से निकलते हैं। दोषों की ऊर्ध्वगति अग्नि-वायु प्रधान द्रव्यों से होती है। अग्नि स्वभाव से ऊर्ध्वगामी, वायु लघु गुण से उत्प्लवनशील होने से दोनों मिलकर (प्रसिद्धमूर्ध्वं ज्वलनं हविर्भुक्) दोषों की ऊर्ध्व गति करके ऊर्ध्वभाग से निष्कासित करते हैं। अतः वमनार्थ वायु-अग्निभूत प्रधान द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार आप्य-पार्थिव रस विरेचन-अधोभागहर होते हैं; क्योंकि जल स्वतः ही अधोगामी तथा पृथिवी का गुण भी गुरुत्व होने से अधोगामी होता है। अतः विरेचन द्रव्यों में स्थित रस पार्थिव और जल महाभूत प्रधान होते हैं। इसी प्रकार बृंहण, दीपन, पाचन, ग्राही, स्तम्भन आदि कर्मों को दृष्टिगत करते हुए महाभूतों का अनुमान किया जाता है। आगे वीर्य परिच्छेद में इन कर्मों के पाञ्चभौतिक संगठन पर भी विचार किया गया है। **तत्राग्निमारुतात्मकाः रसाः प्रायेणोर्ध्वभाजः, लाघवादुत्प्लवनाच्च वायोरूर्ध्वज्वलनाच्च वह्नेः, सलिल-पृथिव्यात्मकास्तु प्रायेणाधोभाजः पृथिव्या गुरुत्वान्निम्नगत्वाच्चोदकस्य, व्यामिश्रात्मकाः पुनरुभयतो-भाजः।** च० सू० अ० २६।

रसाभिव्यक्ति—पाञ्चभौतिक, षड्रसात्मक, द्रव्यों का भक्षण करने पर चर्वण क्रिया से जिह्वा स्थित बोधक कफ के सहयोग से भुक्त द्रव्य के सूक्ष्मांश बोधक कफ में विलीन हो जाते हैं। यह बोधक कफ जिह्वा, जिह्वामूल, कण्ठस्थित विभिन्न लालास्रावीय ग्रन्थियों का स्राव है। जिह्वा

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अपने स्वादाङ्कुरों से जो जिह्वा के पार्श्व, तालु, गल, कण्ठ प्रदेशों में रहते हैं आप्यरस बोधक कफ के सहयोग से रस ज्ञान में सक्रिय होती है। **जिह्वामूलकण्ठस्थो जिह्वेन्द्रियस्य सौम्यत्वात् सम्यग्रसज्ञाने वर्तते।** सु० सू० अ० २१। इन्द्रियार्थ रस का इन्द्रिय (जिह्वा) द्वारा ग्रहीत रस का मन का रसग्रहण रूप विषयाभिमुख (विषय में प्रवृत्ति) होने पर मधुराम्लादि षड्रसों का अर्थावबोध होता है। शरीर क्रिया विज्ञान की दृष्टि से यह क्रिया सांवेदनिक नाड़ियों एवं अनुसांवेदनिक नाड़ियों की क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त होती है। रसाभिव्यक्ति के लिए रसवाले द्रव्य की समुचित मात्रा में अवस्थिति, उसका बोधक कफ में विलीन होना, प्राकृत जिह्वेन्द्रिय एवं मन का रसग्रहण विषयाभिमुख होना अत्यावश्यक है। इनमें से किसी एक की न्यूनता या अभाव होने पर रसाभिव्यक्ति नहीं होती है। षड्रसों में विभिन्न रसों का ज्ञान जिह्वा के विभिन्न भागों में स्थित नियत स्वादाङ्कुरों द्वारा होता है। जैसे मधुर रस की अनुभूति विशेषतः जिह्वाग्र पर होती है। यद्यपि मधुररस के ग्राही स्वादाङ्कुर जिह्वा पर प्रायः सर्वत्र होते हैं। अम्ल, लवण रस के ग्राही स्वादाङ्कुर जिह्वा के दोनों पार्श्वों में स्थित होते हैं। तिक्त रस के जिह्वामूल में विशेषतः पाये जाते हैं। आधुनिक शारीरक्रियाविज्ञान शास्त्री कटुरस एवं कषाय रस का ज्ञान स्वादाङ्कुरों से न मानकर स्वादग्राही नाड़ियों (सांवेदनिक-अनुसांवेदनिक नाड़ियों) के प्रभाव से ही मानते हैं। आयुर्वेद के अनुसार कटु और कषाय रसों का ज्ञान भी रसनेन्द्रिय द्वारा ही होता है। षड्रस विज्ञान सन्दर्भ में कटु एवं कषाय रसों के जिह्वानिपात लक्षणों का विवेचन किया गया है। प्रत्यक्षज्ञान एवं कतिपय विद्वानों की मान्यता है कि स्पर्शनेन्द्रिय, गल, तालु, तालुमूल, कण्ठप्रदेश द्वारा भी रसानुभूति होती है। जैसे कटु रस के सेवन से मुख में कई स्थानों से लालारस स्रवित होता है। त्वचा पर कालीमिर्च का घर्षण करने या लेप प्रयोग से चरपराहट अनुभूत होती है। वस्तुतः यह भ्रामक मान्यता है क्योंकि स्पर्श के द्वारा मधुरादि रसों का ज्ञान प्रत्यक्षतः कभी नहीं होता है। वस्तुतः ये क्रियाएँ स्थानिक वातनाड्याग्रों के द्वारा प्रत्यावर्तन प्रभाव से होती हैं। आयुर्वेद में तो जिह्वा द्वारा ग्रहीत गुण (आस्वाद) को ही रस माना गया है। अन्य इन्द्रियों से ग्रहीत गुण को रस कदापि नहीं कहा जा सकता है।

रसज्ञानोपलब्धि—रसों का ज्ञान प्रत्यक्ष, अनुमान, आप्तोपदेश से होता है। **प्रत्यक्षतोऽनुमानादुपदेशतश्च रसानामुपलब्धिः।** र० वै० ३–१०८। रस ज्ञान का मुख्य साधन जिह्वा के साथ द्रव्य का सम्पर्क है। **रसो निपाते द्रव्याणां।** किन्हीं द्रव्यों का रसज्ञान आप्तोपदेश एवं कर्मों को देखकर अनुमान से होता है। जैसे स्वर्ण धातु के मधुर, कषाय रस का ज्ञान शास्त्रोपदेश और विषघ्न, हृद्य, रसायन, बृंहण, मेधावर्धक कर्मों को देखकर अनुमान किया जाता है।

रस संख्या विनिश्चयार्थ सम्भाषा परिषद्—रसों की सं या के बारे में आयुर्वेद के आदि प्रवर्तक मनीषियों में भी पर्याप्त विभेद रहा है। जिसकी झलक चरक संहिता के सूत्र स्थान में वर्णित आत्रेयभद्रकाप्यीयाध्याय (च० सू० अ० २६) में मिलती है। विभिन्न महर्षियों ने रस सं या के बारे में अपने २ विचार व्यक्त किये हैं तथा पुनर्वसु आत्रेय ने सभी मतों का दृढ़ता से खण्डन कर रस सं या का निरापद समाधान किया है। १–आचार्य भद्रकाप्य के मतानुसार रस एक ही होता है। जो पञ्चेन्द्रियों के पांच विषयों में रसनेन्द्रिय का भाव (अर्थ) रूप विषय है। वह जल से भिन्न नहीं है। २–आचार्य शाकुन्तेय ब्राह्मण के अनुसार छेदनीय (अपतर्पण, लंघन) उपशमनीय (बृंहण, तर्पण) दो रस होते हैं। ३–आचार्य पूर्णाक्ष मौद्गल्य के मतानुसार छेदनीय, उपशमनीय

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

और साधारण (दोनों कर्म करने वाला—जैसे तैल कृश को स्थूल एवं स्थूल को कृश करता है) तीन रस होते हैं। ४–आचार्य हिरण्याक्ष कौशिक के मतानुसार स्वादु और हित (शरीर के लिए लाभकर) स्वादु और अहित; अस्वादु और हित, अस्वादु और अहित ये चार रस होते हैं। ५–आचार्य कुमारशिरा भरद्वाज के मतानुसार भौम, औदक, आग्नेय, वायव्य और नाभस पांच रस होते हैं। (६) राजर्षि वार्योविद के मतानुसार रस गुरु, लघु, शीत उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष ये छ रस होते है। (७) आचार्य वैदेह निमि के मतानुसार मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय और क्षार ये सात रस होते हैं। (८) आचार्य वडिश धामार्गव के मतानुसार इन सात रसों के साथ अव्यक्त रस को मिलाने से रस आठ होते हैं। (९) वाह्लीक देश के वैद्य काङ्कायन के मतानुसार आश्रयभूत द्रव्य, गुण, कर्म एवं संस्वाद के अनुसार रस असंख्य या अनेक होते हैं।

महर्षि पुनर्वसु आत्रेय द्वारा एकान्तवादियों के मतों की आलोचना–प्रथम मत की आलोचना—जल रसों का आधार है रस आधेय हैं। जल रसों का आधार होने से रस नहीं हो सकता है क्योंकि आधार एवं आधेय (आश्रय, आश्रयी) भिन्न-भिन्न होते हैं। **द्वितीय एवं तृतीय मत की आलोचना**–छेदन, उपशमनीय एवं साधारण ये तीनों रसों के कर्म होते हैं। कारण (रस) और कार्य (छेदन, उपशमनीय) भिन्न-२ होते हैं। **चतुर्थ मत की आलोचना**–हित और अहित ये दोनों रस के प्रभाव हैं। प्रभाव द्रव्य-रसाश्रित होता है अतः वह स्वयं ही रस नहीं हो सकता है। **पञ्चम मत की आलोचना**–पार्थिवादि पांच भेद पंचमहाभूतों के विकार रूप कार्य द्रव्यों के होते हैं, रसों के नहीं होते हैं। रस द्रव्याश्रित होता है। कार्य द्रव्य प्रकृति, विकृति (संस्कार) विचार (द्रव्यान्तर संयोग) देश कालाधीन रहते हैं अर्थात् परिवर्तनशील होते हैं। रस की क्रिया सर्वथा भिन्न होती है। मुद्ग मधुर कषाय रस होने से रस की दृष्टि से गुरु होना चाहिए। किन्तु प्रकृति से मुद्ग लघु होता है। घृत एवं मधु समभाग में मिलाने पर संयोग प्रभाव से विषाक्त हो जाते हैं रस के आधार से नहीं। संस्कार-वशात् धान्य की अपेक्षा लाजा लघु हो जाता है यद्यपि दोनों के रसों में विशेष अन्तर नहीं होता है। **षष्ठ मत की आलोचना**–गुरु, लघु, शीतादि द्रव्याश्रित गुण विशेष होते हैं, रस भी गुण होता है जो जिह्वा ग्राह्य है; गुण में गुण नहीं रह सकता है और न ही शीतोष्ण गुण जिह्वा ग्राह्य होते हैं। **सप्तम मत की आलोचना**–मधुरादि षड्रस एवं क्षार में मधुरादि ६ रस तो मान्य हैं किन्तु क्षार रस नहीं है। क्षार द्रव्य होता है जो अनेक रस युक्त द्रव्यों (विशेषतः कटु लवणप्रधान) से बनता है। विशिष्ट पाक क्रिया से क्षार बनाया जाता है। क्षार जिह्वा, स्पर्शनेन्द्रिय से भी ग्राह्य होता है, रस में इन सबका अभाव होता है। **अष्टम मत की आलोचना**—अष्ट रसों में षड्रस मान्य हैं, क्षार का पूर्व में खण्डन किया गया है। अव्यक्त सातवां रस स्वतन्त्र नहीं हो सकता है। रस की अव्यक्तता अन्तरिक्ष जल, अनुरस एवं अनुरसयुक्त द्रव्य में होती है। व्यक्त और अव्यक्त तो रस की अवस्थाएँ हैं। अतः अव्यक्त रस पृथक् नहीं हो सकता है। **नवम मत की आलोचना**—आश्रय, गुण, कर्म, संस्वादों के असं य होने पर भी रसों की सं या में अन्तर नहीं आता है। जैसे घृत, दुग्ध, शालि गुड़ मधुर रस के भिन्न-भिन्न आश्रय होते हैं तथापि सब में मधुरत्व जाति वाला एक ही रस होता है। स्निग्ध, गुरु, आदि गुण, बृंहण, तर्पण, प्रीणन, आह्लादकर, तृप्ति आदि कर्म भिन्नता होने पर भी मधुर रस एक ही रहता है। इस प्रकार मधुर रस द्रव्यों के रस-गुण और कर्मों में तरतम भेद से अवान्तर भेद होने पर भी मधुरत्व बना रहता है। जैसे दोषों के अनेक संसर्ग होने पर भी

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उनका त्रित्व बना रहता है उसी प्रकार से रसों के आश्रय, गुण, कर्म, संस्वादों के अन्तर से भी उनका षट्त्व बना रहता है।

इस प्रकार रस संख्या के बारे में विभिन्न आचार्यों द्वारा प्रतिपादित एकान्तवादी विचारों का खण्डन करते हुए पुनर्वसु आत्रेय ने सम्भाषा परिषद् के अन्त में यह सिद्धान्त उपस्थापित किया है कि रस मधुर-अम्ल-लवण-कटु-तिक्त-कषाय छ ही होते हैं। **षडेव रसा इत्युवाच भगवानात्रेयः पुनर्वसुः, मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायाः** । च० सू० अ० २६। अष्टाङ्ग संग्रहकार ने भी रसों की संख्या के सम्बन्ध में पुनर्वसु आत्रेय के मत की पुष्टि की है। भूतों के न्यूनाधिक्य से द्रव्य के रस गुणों में यत्किञ्चित् अन्तर होता है किन्तु उनके प्रभाव में विशेष अन्तर नहीं होता है।

मधुरस्कन्धनिर्दिष्टघृततैलगुडादिषु। गुणास्वादादिभेदेन रसषट्कं न युज्यते। अस्तु भेदादसंख्यत्वमैक्यं वा ऽऽस्वादलक्षणात्। भूतोत्कर्षापकर्षेण भेदो योऽल्पेन कल्पते॥ संकीर्णत्वात् फले चासौ तुल्यत्वान्न विवक्ष्यते। गुर्वादीनां विशेषेऽपि स्वजातेरनतिक्रमात्॥ संख्याभेदो यथा नास्ति रसानामपि स क्रमः। दृष्टं मुखोपलेपादि यत् सर्वेषु घृतादिषु॥ न च तद्दाडिमाद्येषु षडेवातो रसाः स्मृताः। अ० सं० सू० अ० १४।

रस और अनुरस

द्रव्य की शुष्क या आर्द्रावस्था में जिह्वा पर रखते ही (जिह्वानिपातमात्र) प्रारम्भ से अन्तिमावस्था (खाने के अन्त तक) इन चतुर्विधावस्थाओं में भी मधुर अम्ल रसादि की स्पष्ट अनुभूति हो वह रस कहलाता है। उदाहरण के लिए परिच्छेद के प्रारम्भ में रसानुसार द्रव्यों की तालिका दृष्टव्य है; और इन अवस्थाओं में द्रव्य का रस अव्यक्त रूप से या ईषद् व्यक्त हो उसे अनुरस कहते हैं। जैसे हरीतकी में मधुर रस, आमलकी में कषाय, काञ्जी में तिक्त रस, अनुरस रूप में रहता है। (१)**व्यक्तः शुष्कस्य चादौ च रसो द्रव्यस्य लक्ष्यते। विपर्ययेणानुरसो रसो नास्तीह सप्तमः॥** च०सू०अ० २६। **शुष्कस्य चेति चकारादार्द्रस्य च, आदौ चेति चकारादन्ते च, तेन शुष्कस्य वाऽऽर्द्रस्य वा प्रथमजिह्वासम्बन्धे वा ऽऽस्वादान्ते वा यो व्यक्तत्वेन मधुरोऽयमम्लोऽयमित्यादिना विकल्पेन गृह्यते, स रसः; यस्तूक्तावस्था चतुष्टयेऽपि व्यक्तो नोपलभ्यते, किं तर्ह्यव्यपदेश्यतया छायामात्रेण कार्यदर्शनेन वा मीयते सोऽनुरस इति वाक्यार्थः। यतश्च मधुरादय एव व्यक्तत्वाव्यक्तत्वाभ्यां रसानुरसरूपाः, अतोऽव्यक्तो नाम सप्तमो रसो नास्ति।** च०द०। २—**व्यक्तो रसः। अनुरसस्तु रसेनाभिभूतत्वादव्यक्तो, व्यक्तो वा किञ्चिदन्ते।** अ० सं० सू० अ० १७।

शुष्क द्रव्यों के व्यक्त रस को ही रस या व्यक्त रस इसलिए कहा जाता है क्योंकि प्रायः ऐसा देखा जाता है कि विविध द्रव्यों की आर्द्रावस्था में जो रस होता है वह शुष्कावस्था में बदल जाता है। जैसे पिप्पली आर्द्रावस्था में मधुर रस होती है किन्तु शुष्क होने पर कटु हो जाती है। इसलिए इसका रस कटु एवं अनुरस मधुर रस होता है। हरीतकी आर्द्रावस्था में कटु किन्तु शुष्क होने पर कषाय रस प्रधान होती है। आर्द्र आमलकी कषायाम्ल रस, शुष्क होने पर अम्ल प्रधान होता है।

रसों का अन्यथा गमनत्व—अनेक द्रव्यों के रस (१) अवस्थान (२) अधिकरण (भाजन) स्थिति (३) संयोग (४) अग्निपाक (५) आतप (६) भावना (७) देश (८) काल (९) परिणाम (१०) उपसर्ग (११) विक्रिया (विकृति) हेतुओं से अन्य रसों में परिवर्तित हो जाते

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हैं। (१) **अवस्थान** (कुछ समय रखने से) मधुर ओदन-भात जल के साथ मिलाकर कुछ समय तक रखने से काञ्जी मे बदल जाता है। **अन्यथात्वगमनं स्थानात्**। र० वै० सू० ३–२९। (२) **भाजन-स्थिति**—पात्र विशेष में रखने पर रस परिवर्तित हो जाता है। जैसे काँस्य या पीतल के पात्र में दधि रखने पर कटु एवं ताम्रपात्र में दुग्ध अम्ल हो जाता है। **स्थानम् अधिकरणंभाजनं तद्धेतोरपि रसान्तरं भवति**। भा०। (३) **संयोग**—चूने के चूर्ण में इमली का फल रखने से चूर्ण संयोग से वह मधुर हो जाती है। **संयोगतः अग्नेः पाकात् अन्यथात्वगमनम्**। र०वै०सू० ३–३०। (४) **अग्निपाक**—इमली एवं जामुन आर्द्र होने पर अम्ल किन्तु अग्नि में संस्कारित(पकाने)करने पर मधुर हो जाते हैं। (५) **आतप**—धूप में सुखाने पर द्रव्य का रस बदल जाता है जैसे आर्द्र पिप्पली मधुर किन्तु धूप में सुखाने पर कटु रस हो जाती है। तुम्बरु के कषायफल धूप में सुखाने पर मधुर हो जाते हैं। खट्टे आम्रफल धूप में पाक से या पालमें पकाने पर मधुर हो जाते हैं। (६) **भावना**—तिक्तकषायमधुर तिल मधुयष्टि के क्वाथ की भावना से मधुर हो जाते हैं। (७) **देश**—देशविशेषानुसार द्रव्यों के रसों में विभिन्नता पायी जाती है। जैसे काश्मीर के सेव मधुर अन्य प्रदेशों के अम्ल होते हैं। नैनीताल, काशीपुर के आंवले मधुर तथा अन्य स्थानों के अम्लकषाय प्रधान होते हैं। वन्य जाति आंवला कषाय, कटुरस प्रधान होता है। **भावनया, देशकालाभ्याम्**। र०वै०सू० ३–३२। (८) **काल**—कदली फल कषाय रस होता है किन्तु रखने पर कालान्तर से मीठा हो जाता है। अम्ल आम्रफल कालान्तर से मधुर हो जाता है। पपीता अपक्व तिक्त कटु, पक्व होने पर मधुर हो जाता है। बदर अपक्व कषाय रस किन्तु पक्व होने पर मधुराम्ल हो जाते हैं। (९) **परिणाम**—द्रव्यों का रूपान्तर होने पर उनका रस भी परिवर्तित हो जाता है। जैसे मधुर दुग्ध दधि में रूपान्तरित होने पर अम्ल हो जाता है। मधुर इक्षुरस शुक्त रूप में अम्ल हो जाता है। **परिणामतः अन्यथात्वगमनं**। सू० ३३। (१०) **उपसर्ग**—कृमि-कीट के लगने से भी द्रव्य का रस बदल जाता है। जैसे कीड़े लगे हुए गन्ने अम्ल या तिक्त रस वाले होजाते हैं। (११) **विक्रिया**—कुछ विशिष्ट क्रियाओं या बार-बार स्पर्श व संपर्क से भी रस विकृत हो जाता है। जैसे ताड़फल को अग्नि में पक्व कर भूमि पर रगड़ने से वह तिक्त हो जाता है। नीम्बू को काटकर रखने से वह तिक्त हो जाता है। पक्व कटहल को पुनः पुनः हाथ से मथने से वह अम्ल हो जाता है। **उपसर्गतः, विक्रियात् अन्यथात्वगमनम्**। र० वै० सू० ३–३४–३५।

रसों का वर्गीकरण और गुणों का तरतम भेदात्मक विमर्श

(१) सौम्य एवं आग्नेय भेद—जगत् उष्ण शीतात्मक होने से रसों के दो भेद होते हैं। मधुर, तिक्त, कषाय रस सौम्य होते हैं। कटु, अम्ल, लवण रस आग्नेय होते हैं। **केचिदाहुः अग्निषोमीयत्वाज्जगतो रसाः द्विविधाः सौम्याश्चाग्नेयाश्च। मधुरतिक्तकषायाः सौम्याः, कट्वम्ललवणा आग्नेयाः।** सु० सू० अ० ४२।

तिक्त, कषाय, और मधुर रस ये उत्तरोत्तर शीतवीर्य और कटु, अम्ल, लवण रस उत्तरोत्तर उष्ण वीर्य होते हैं। रसाः कट्वम्ललवणाः वीर्येणोष्णा यथोत्तरम्। तिक्तः कषायो मधुरस्तद्वदेव च शीतलाः॥ अ० हृ० सू० अ० १०।

(२) गुण भेद से—स्निग्धगुण-रसों में मधुर(स्निग्धतम-उत्तम) अम्ल (स्निग्धतर-मध्यम) और लवण अवर होता है। तिक्त रस (अवर) कटु रस (मध्यम) कषाय (उत्तम) रस उत्तरोत्तर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रूक्ष होते हैं। गुरु गुण–रसों में मधुर (गुरुतम–प्रवर) कषाय (गुरुतर–मध्यम) और लवण अवर गुरु होता है। तिक्तरस, कटुरस, अम्लरस वाले द्रव्य क्रमशः प्रवर-लघुतम, मध्यम-लघुतर या अवर लघुगुण वाले होते हैं। **तिक्तः कटुः कषायश्च रूक्षा बद्धमलास्तथा। पट्वम्लमधुराः स्निग्धाः सृष्टविण्मूत्र-मारुताः॥ पटोः कषायस्तस्माच्च मधुरः परमं गुरुः। लघुरम्लः कटुस्तस्मात्तस्यादपि च तिक्तकः।** अ० हृ० सू० अ० १०।

चरक मतानुसार गुण एवं रसों का तरतम भेद—रौक्ष्यात् कषायो रूक्षाणामुत्तमो, मध्यमः कटुः।

गुण	अवर	मध्यम	उत्तम (प्रवर)
शीत	तिक्त	मधुर	कषाय
उष्ण	कटु	अम्ल	लवण
स्निग्ध	लवण	अम्ल	मधुर
रूक्ष	तिक्त	कटु	कषाय
गुरु	लवण	कषाय	मधुर
लघु	अम्ल	कटु	तिक्त

तिक्तोऽवरस्तथोष्णानामुष्णत्वाल्लवणः परः॥
मध्योऽम्लः, कटुकश्चान्त्यः, स्निग्धानां मधुरः परः।
मध्योऽम्लो, लवणश्चान्त्यो रसः स्नेहान्निरुच्यते॥
मध्योत्कृष्टावराः शैत्यात् कषायस्वादुस्तिक्तकाः।
स्वादुर्गुरुत्वादधिकः कषायाल्लवणोऽवरः॥
अम्लात् कटुस्ततस्तिक्तो लघुत्वादुत्तमोत्तमः।
केचिल्लघूनामवरमिच्छन्ति लवणं रसम्॥
गौरवे लाघवे चैव सोऽवरस्तूभयोरपि।
च० सू० अ० २६।

वाग्भट ने मधुर रस को शीतगुण में उत्तम माना है।

(३) विदाह्यविदाही भेद से—अम्ल लवण कटु रस विदाही एवं मूर्च्छाकारक होते हैं तथा मधुर तिक्त कषाय रस अविदाही एवं मूर्च्छा प्रशमन होते हैं। **कट्वम्ललवणा वैद्यैर्विदाहिन इति स्मृताः। स्वादुतिक्तकषायाः स्युर्विदाहरहिता रसाः॥ विदाहिनो रसा मूर्च्छां जनयन्ति प्रयोजिताः। विदाहरहिता मूर्च्छां शमयन्तीति निश्चितम्॥** । र० वै० भा०।

(४) ऊर्ध्वाधः संशोधन भेद से—वायु लघु और ऊर्ध्व गति करने वाला, अग्नि ऊर्ध्व-ज्वलनशील स्वभाव से वायु और अग्नि महाभूत प्रधानरस प्रायः वमनादि द्वारा ऊर्ध्व गति करने वाले होते हैं। पृथिवी गुरु और जल स्वभावतः अधोगतियुक्त होने से पृथिवी जल प्रधान रस मलमूत्रादि का विरेचन कराते हैं। अग्नि वायु जल पृथिवी महाभूत प्रधानरस वाले द्रव्य वमन एवं विरेचन दोनों कराने वाले होते हैं।

(५) दोष धातु मलों पर कर्म भेद से—आगे षड्रस गुणकर्म में एतदर्थ विशद वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर सारांशतः तालिका अंकित है।

रसनाम	रसों के गुण	दोष कर्म	धातु कर्म	मलों पर कर्म
मधुर	शीत, स्निग्ध, गुरु मृदु, पिच्छिल	वातपित्तशामक कफवर्धक	सर्वधातुतर्पण स्तन्य-वर्धन, जीवन, बल्य	सृष्टविण्मूत्रमारुतः
अम्ल	उष्ण, लघु, तीक्ष्ण स्निग्ध	वातशामक कफपित्तवर्धक	बृंहण, शुक्रहर	सृष्टविण्मूत्रमारुतः
लवण	स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण किंचिद् गुरु	वातशामक कफपित्तवर्धक	धातुशैथिल्यकर धातुनाशन, दौर्बल्यकर	सृष्टविण्मूत्रमारुतः

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रसनाम	रसों के गुण	दोष कर्म	धातु कर्म	मलों पर कर्म
कटु	उष्ण, लघु, रूक्ष तीक्ष्ण, विशद	कफशामक पित्तवातवर्धक	धातुलेखन, धातुनाशन	बद्धविण्मूत्रमारुतः
तिक्त	शीत, लघु, रूक्ष तीक्ष्ण, विशद	पित्तकफशामक वातवर्धक	धातु (मेद, वसा, मज्जा) शोषण, अवृष्य	बद्धविण्मूत्रमारुतः
कषाय	गुरु, शीत, रूक्ष विष्टम्भ, विशद	पित्तकफशामक वातवर्धक	लेखन, सर्वधातु शोषण	बद्धविण्मूत्रमारुतः

(६) वीर्य भेद से—जो द्रव्य रस और विपाक दोनों में मधुर होते हैं वे शीत वीर्य होते हैं। जो द्रव्य रस और विपाक में अम्ल होते हैं तथा जो द्रव्य रस और विपाक में कटु होते हैं वे उष्ण वीर्य होते हैं। जिन द्रव्यों का वीर्य और विपाक रस के समान ही होता है उन द्रव्यों के गुण कर्म रसों के गुण कर्म के समान होते हैं। जैसे दुग्ध एवं सर्पि रस और विपाक में मधुर तथा शीतवीर्य होते हैं। चव्य, चित्रक रस एवं विपाक में कटु तथा उष्ण वीर्य होते हैं। ऐसे अन्य द्रव्यों के गुणकर्म भी रसों के गुणकर्मानुसार ही होते हैं।

शीतं वीर्येण यद् द्रव्यं मधुरं रसपाकयोः। तयोरम्लं यदुष्णं च यद् द्रव्यं कटुकं तयोः॥ तेषां रसोपदेशेन निर्देश्यो गुणसंग्रहः। वीर्यतोऽविपरीतानां पाकतश्चोपदेक्ष्यते॥ यथा पयो यथा सर्पिर्यथा वा चव्यचित्रकौ। एवमादीनि चान्यानि निर्दिशेद्रसतो भिषक्॥ । च० सू० अ० २६।

कतिपय द्रव्य इस सामान्य सिद्धान्त के अपवादस्वरूप भी होते हैं। जैसे बृहत्पंचमूल कषाय तिक्त रस होने पर भी उष्ण वीर्य होता है। औदक और आनूप मांस मधुर होने पर भी उष्ण होता है। सैन्धव-लवण होने पर भी शीत वीर्य होता है। आमलकी अम्ल होने पर भी उष्ण वीर्य न होकर शीत वीर्य होता है। आक, अगर और गिलोय तिक्त होने पर भी शीत वीर्य न होकर उष्ण वीर्य होते हैं। कपित्थ जो रस में अम्ल होता है ग्राही है। जब कि आमल की अम्ल होने पर भी भेदन है। पिप्पली और रसोन कटु होने पर लघु, रूक्ष, अवृष्य न होकर स्निग्ध, गुरु एवं वृष्य होते हैं। हरीतकी कषाय होने पर भी शीतवीर्य, स्तम्भक न होकर उष्णवीर्य एवं भेदन है।

मधुरं किंचिदुष्णं स्यात् कषायं तिक्तमेव च। यथा महत्पञ्चमूलं यथाऽब्जानूपमामिषम्॥ लवणं सैन्धवं नोष्णमम्लमामलकं तथा। अर्कागुरुगुडूचीनां तिक्तानामुष्णमुच्यते॥ किंचिदम्लं हि संग्राहि, किंचिदम्लं भिनत्ति च। यथा कपित्थं संग्राहि, भेदि चामलकं तथा॥ पिप्पली नागरं वृष्यं, कटु चावृष्यमुच्यते। कषायः स्तम्भनः शीतः, सोऽभयायामतोऽन्यथा॥ तस्याद्रसोपदेशेन न सर्वं द्रव्यमादिशेत्। दृष्टं तुल्यरसेऽप्येवं द्रव्ये द्रव्ये गुणान्तरम्। च० सू० अ० २६।

इस प्रकार जो द्रव्य रस सामान्य नियम के अपवाद स्वरूप होते हैं उनके गुणकर्म रसानुसार न होकर विपाक-वीर्य-प्रभाव के अनुसार होते हैं। क्योंकि विपाक रस का और वीर्य रस तथा विपाक को प्रभाव तीनों को अभिभूत करके अपना कार्य करता हैं। **रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तान्यपोहति।**

षड्रस लक्षण ज्ञानक्रम—रसना के साथ द्रव्यों का संयोग होने पर उपलब्ध आस्वाद गुण की रस संज्ञा होती है। प्रत्येक रस का जिह्वा पर या उसके समीपवर्ती अवयवों-ओष्ठ, कपोल, गल, कण्ठ, तालु पर तथा कतिपय रसों का तात्कालिक सार्वाङ्गिक प्रभाव भी लक्षित होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मधुर रस—जिह्वा पर निपात मात्र से ही समग्रमुख में व्याप्त होकर माधुर्य से लिप्त (मुख लेपकर) कर देता है। सब इन्द्रियों को प्रसन्न करता है। मुख में स्नेहन, मृदुता, आह्लाद (सुख) कण्ठ को तृप्त, भोजनकाल में आनन्द और तृप्ति उत्पन्न करता है। कफ (क्लेदक) की वृद्धि करता है। भौरों और चींटियों, मक्खियों को अति प्रिय होता है। इन लक्षणों से मधुर रस की ज्ञानोपलब्धि होती है। १–**स्नेहनप्रीणनाह्लादमार्दवैरुपलभ्यते। मुखस्थो मधुराश्चास्यं व्याप्नुवँल्लिम्पतीव च।** चरक सू० अ० २६ (२) **तेषां स्वादुरास्वाद्यमानो मुखमुपलिम्पति, इन्द्रियाणि प्रसादयति, देहं प्रह्लादयति, षट्पदपिपीलिकादीनामभीष्टतमः।** अ० सं० सू० अ० १८।

अम्ल रस—खाते ही मुख से लालास्राव, दन्तहर्ष, मुख की शुद्धि, मुख-अन्न नलिका-कण्ठ में विदाह (जलन) रोचन (भोजन करने के प्रति रुचि) जिह्वोत्तेजन, नेत्र भौहों का संकोच, रोमहर्ष स्वेदन, क्लेदन एवं हृद्य होता है। इन लक्षणों से अम्ल रस का बोध होता है। (१) **दन्तहर्षान्मुखास्रावात् स्वेदनान्मुखबोधनात्। विदाहाच्चास्य कण्ठस्य प्राश्यैवाम्लं रसं वदेत्॥** च० सू० अ० २६। (२) **यो दन्तहर्षमुत्पादयति, मुखास्रावं जनयति, श्रद्धां चोत्पादयति, सोऽम्लः।** सु० सू० अ० ४२।

लवण रस—आशु विलयन (शीघ्र ही मुख में घुल जाता है), मुख को क्लिन्न करता है। लालास्राव, मार्दव बढ़ाता है। क्लेदक कफ की वृद्धिकर, भोजन के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करता है। मात्राधिक्य से मुख-गल-कण्ठ-कपोल विदाही (जलन करने वाला) है। (१) **प्रलीयन् क्लेद-विष्यन्द-मार्दवं कुरुते मुखे। यः शीघ्रं लवणो ज्ञेयः स विदाहान्मुखस्य च।** च० सू० अ० २६।

कटुरस—जिह्वा पर निपातमात्र (जिह्वा पर रखते ही) से रसनोद्वेजक, जिह्वाग्र पर चिमचिमायन, तोदक-सुई चुभने की सी वेदना, गल-कण्ठ-मुख में विदाह के साथ मुख-नासिका-नेत्रस्रावजनक, शिरःशूलकर शिरस्तोद एवं अन्नाभिकांक्षा उत्पन्न करता है। इन लक्षणों से कटु रस ज्ञात किया जाता है। (१) **संवेजयेद्यो रसनं निपाते तुदतीव च। विदहन्मुख-नासाक्षिस्रंस्रावी स कटुःस्मृतः।** (२) **कटुको भृशमुद्वेजयति जिह्वाग्रं चिमचिमायति कण्ठकपोलं स्रावयति मुखाक्षि-नासिकं विदहति देहम्** अ० सं० सू० अ० १८।

तिक्त रस—जिह्वा पर रखते ही जिह्वा की अन्य रसों की ग्रहण शक्ति का ह्रास करता है। तिक्त रस स्वयं अप्रिय होने पर भी यह अन्न के प्रति रुचि की वृद्धि करता है। मुखशोधक, गल तालु कण्ठ, जिह्वामूल कपोल का खिंचाव करता है। यह शोषोत्पादक, रोमाञ्चक, मुख वैशद्य और शैत्य कर है। (१) **प्रतिहन्ति निपाते यो रसनं स्वदते न च। स तिक्तो मुखवैशद्य-शोष-प्रह्लादकारकः॥** च० सू० अ० २६। (२) **यो गले चोषमुत्पादयति, मुखवैशद्यं जनयति, भक्तरुचिं चापादयति हर्षं च, सतिक्तः** सु० सू० अ० ४२।

कषाय रस—जिह्वा में वैशद्य, स्तब्धता, जाड्यकर और कण्ठ को संकुचित करता है। मुखशोष, हृच्छूल (हृदय में खींचने की सी वेदना), क्लेदक कफ एवं लालास्राव को सान्द्र करता है। मुख में गौरवता उत्पन्न करता है। इन लक्षणों से कषाय रस ज्ञात किया जाता है। (१) **वैशद्यस्तम्भजाड्यैर्यो रसनं योजयेद्रसः। बध्नातीव च यः कण्ठं कषायः स विकास्यपि॥** च० सू०अ० २६। (२) **यो वक्त्रं परिशोषयति, जिह्वां स्तम्भयति, कण्ठं बध्नाति, हृदयं कर्षति पीडयति च,स कषाय इति।** सु० सू० अ० ४२। (३) **कषायस्य मुखपरिशोषः, श्लेष्मसंवृत्तिः गौरवं स्तम्भश्च।** र० वै० सू० १८।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

षड्रसों के कर्म एवं अति सेवन जन्य व्यापद्

मधुर रस के कर्म—यह जन्म से ही मानव मात्र को सात्म्य होता है। अतः यह रस, रक्त मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, स्तन्य और ओज की वृद्धि करता है। दीर्घायुष्य, षडिन्द्रियप्रसादन (पांच ज्ञानेन्द्रियों और मन को प्रसन्न रखता है) बल-वर्णवर्धक है। वातपित्त शामक है। तृष्णा-दाह नाशक है। यह त्वच्य (त्वचा को मृदु रखना) केश्य (बाल बढ़ाता है) कण्ठ्य (कण्ठ को सुधारता है बल देता है) शरीर का पोषण करता है। अभिघातादि से मूर्च्छित को जीवन देने वाला, तृप्तिकर, बृंहण, शरीर को स्थैर्यप्रद, उरःक्षत और अस्थि भग्न का सन्धान कर है। घ्राणेन्द्रिय, मुख, कण्ठ, ओष्ठ और जिह्वा को आनन्द देने वाला, दाह मूर्च्छा, विष शामक होता है। मधुर रस के सक्रिय तत्त्व द्राक्षाशर्करा (Glucose) के रूप में मूत्र विषमयता, पित्त विषमयता, गर्भ विषमयता, वमनजन्य विषाक्तता स्थावर विषों में शिरा मार्ग द्वारा प्रयोग करने पर शीघ्र विषनाशक प्रभाव दैनिक चिकित्सा में देखा जाता है। विभिन्न कारणों से जन्य मूर्च्छा, अतिसार, विसूचिका में जलाल्पता से, मस्तिष्क में रक्त की अल्पता या रक्त का दबाव बढ़ने से, शिरोभिघात जन्य मूर्च्छा में, मधुमेह जन्य सन्यास में भी द्राक्षा शर्करा का विलयन शिरागत प्रक्षेप से लाभकारी होता है। (१) **मधुरो रसः। आजन्मसात्म्यात् कुरुते धातूनां प्रबलं बलम् ॥ बालवृद्धक्षतक्षीणवर्ण-केशेन्द्रियौजसाम्। प्रशस्तो बृंहणः कण्ठ्यः स्तन्य-सन्धानकृद् गुरुः ॥ आयुष्यो जीवनः स्निग्धः पित्तानिलविषापहः।** अ० हृ० सू० अ० १०। (२) च० सू० अ० २६।

अति सेवन जन्य विकार—इसके अति प्रयोग से शरीर में स्थौल्य, मृदुता, आलस्य, अतिनिद्रा, गौरव, अरुचि, अग्निमान्द्य, श्वास, कास, प्रतिश्याय, अलसक, शीतज्वर, आनाह, आस्य-माधुर्य, छर्दि, संज्ञानाश, स्वरनाश, गलगण्ड, गण्डमाला, अर्बुद, श्लीपद, गलशोथ, मूत्राशय-धमनी और कण्ठ में क्लेद (मलवृद्धि या चिकनाहट) अभिष्यन्द (दोषधातुमलस्रोतसां क्लेद प्राप्तिः कफजो ऽयंविकारः च० द०), नासा, नेत्ररोग एवं अन्य श्लैष्मिक, मेदोविकार उत्पन्न होते हैं। **कुरुतेऽत्युपयोगेन स मेदः श्लेष्मजान् गदान्। स्थौल्याग्निसादसन्यासमेहगण्डार्बुदादिकान् ॥** अ० हृ० सू० अ० १०। (२) च० सू० अ० २६।

अम्ल रस के कर्म—यह रस भोजन के प्रति रुचि उत्पन्न करता है, अग्नि दीपन, देह को पुष्ट बनाता है। उत्साहवर्धक, मन को उत्तेजित करता है। इन्द्रियों को दृढ़ करता है। बलवर्धक, वातानुलोमन, हृदय को तृप्त-तर्पण करता है। मुख में लालास्राव उत्पन्न करता है। भुक्तान्न को नीचे ले जाता है। यह क्लेदन, पाचन, मनःप्रसादकर होता है। अम्ल रस से आमाशयिक, आन्त्रिक रस, अग्न्याशयिक, पक्वाशयिक पाचक रसों की वृद्धि होती है। परिणामतः अग्नि दीप्त होती है। भोजन के पाचन के लिए दीपन, पाचन, क्लेदन, अपकर्षण आदि क्रियाएँ होती हैं। अम्लरस, रस, रक्तधातु में द्रवता, सरता बनाये रखता है। हृदय एवं रक्तवाहिनियों की मांसपेशियों, भित्तियों के उपलेप, गौरव को दूर करता है। प्रोटीन को अमीनो एसिड के रूप में व अन्य अम्लों के रूप में परिवर्तन करके मांसधातु की वृद्धि एवं पोषण में सहायक होता है। जिससे मांस धातु का पोषण होने से यह बलवर्धक होता है। अतः आयुर्वेद में अम्लरस को सद्य हृद्य माना गया है।

(१) **अम्लोऽग्निदीप्तिकृत् स्निग्धो हृद्यः पाचनरोचनः। उष्णवीर्यो हिमस्पर्शः प्रीणनः क्लेदनो लघुः ॥ करोति कफपित्तास्रं मूढवातानुलोमनः ॥** अ० हृ० सू० अ० १० (२) च० सू० अ० २६।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अति सेवन जन्य विकार—अम्ल रस के अति प्रयोग से दन्तहर्ष, रोमहर्ष, पित्त, कफ दोष (कफ द्रवीभूत) तथा रक्त धातु का प्रकोप होता है। माँस विदाह (मांस धातु में जलन करना) शरीर को शिथिल करता है। क्षीण-क्षत-कृश-दुर्बल मनुष्यों में शोथ उत्पन्न करता है। क्षत (अभिहत) दष्ट (विषैले जन्तुओं से दंशित) दग्ध, भग्न, शून, (शोफ युक्त) प्रच्युत (स्थानच्युत अस्थिवाला) सविष प्राणियों द्वारा शरीर पर मूत्रत्याग किये जाने पर स्पर्श एवं मर्दित होने पर, छिन्न-भिन्न विश्लिष्ट (संधिच्युति) बिद्ध, उत्पिष्ट (अङ्गों के पिच जाने पर) अवस्थाओं में आग्नेय गुण से अम्ल रस शीघ्र ही पाक या पूयोत्पत्ति करता है। इससे कण्ठ, गल, उरःप्रदेश और हृदय में दाह उत्पन्न होता है। अम्ल रस के अति सेवन से भ्रम, तिमिर, कण्डू, पाण्डु, विसर्प, विस्फोट, तृषा ज्वरादि विकार उत्पन्न होते हैं। **सोऽत्यभ्यस्तस्तनोः कुर्याच्छैथिल्यं तिमिरं भ्रमम्। कण्डू-पाण्डुत्वविसर्पशोफ-विस्फोटतृड्ज्वरान्।** अ० हृ० सू० अ० १०।

लवण रस के कार्य—यह पाचन, क्लेदन, दीपन, छेदन, भेदन, विकासी है। शरीर के धातुओं, अवयवों को स्वस्थान से च्युत करने वाला, द्रवोत्पत्ति द्वारा स्राव करने वाला, स्रोतों में अवकाश करने वाला (स्रोतो विवरण) वातहर, स्तम्भ (अङ्ग का जकड़ जाना) बन्ध (स्रोतों का अवरोध) काठिन्य को दूर करता है। अन्य रसों का विरोधी (अन्य रसों को तिरोहित कर देता है) मुख में लालास्राव करने वाला तथा कफ को द्रवीभूत करता है। स्रोतों का शोधक, शरीरावयवों का मार्दवकर, रोचक और आहार के साथ उपयोग में आता है।

लवण रस जिह्वानिपात मात्र से ही मुख में घुल कर क्लेदक कफ की वृद्धि करता है, मृदुता उत्पन्न करता है। आमाशय में क्लेदन, पाचन, छेदन कर्म से अन्न को द्रवीभूत, स्निग्ध करता है। शरीर में शोषित होने के बाद रसच्यावन कर्म कराता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म स्रोतों में प्रविष्ट होकर स्रोतों का अवरोध दूर कर उन्हें मृदु करता है। लवण शरीर में जाकर शारीर लवण के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। लवण के साथ अन्य लवण मेग्निशियम, पोटेशियम, केल्शियम् भी मिलकर रक्त रस, विभिन्न शारीरद्रवों (अन्तःकोषीय, बहिःकोषीय) मांसपेशियों, अस्थियों का नियमित पोषण एवं क्रियाओं में सहयोगी होते हैं। इनकी न्यूनता से शरीर में आक्षेप, कम्प भी आने लगते हैं।

लवणः स्तम्भ-सङ्घातबन्धविध्मापनोऽग्निकृत्। स्नेहनः स्वेदनस्तीक्ष्णो रोचनश्छेद-भेदकृत्। अ० हृ० सू० अ० १०।

अति सेवन जन्य विकार—यह पित्त को प्रकुपित करता है। रक्त की अति वृद्धि-प्रकोप करता है। तृषा, मूर्च्छा, ताप, अङ्गों का विदारण, मांस धातु में शैथिल्य, कुष्ठ में स्राव होना, शरीरस्थ विष की वृद्धि, शोथ में विदारण, दांतों का गिरना, पुंस्त्वनाश (शुक्रधातु क्षय) अपने-अपने कार्यों में इन्द्रियों का अशक्त होना, वलि-पलित और खालित्य, रक्तपित्त, अम्लपित्त, वातरक्त, विसर्प, कुष्ठ विचर्चिका आदि विकार लवण रस के अति सेवन से होते हैं।

(१) **सोऽतियुक्तोऽस्रपवनं खलितं पलितं वलिम्। तृट्कुष्ठविषविसर्पाञ्जनयेत् क्षपयेद्बलम्।** अ० हृ० सू० अ० १०। (२) च० सू० अ० २६।

कटु रस के कर्म—मुखशोधक, अग्निदीपन, भुक्तान्न का शोषण, नासिका और नेत्र स्राव-वर्धक, इन्द्रियों को उत्तेजित करता है। शोथ, स्थौल्य, अलसक, उदर्द, अभिष्यन्द, स्नेह-स्वेद-क्लेद

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

और मल का नाश करता है। यह रोचक, कण्डूनाशक, व्रणावसादक (व्रण में उभरे हुए मांस का विम्लापन-वेदनाशामक) कृमिघ्न, मांस लेखनकर, रक्तसङ्घातभेदक, बन्ध (स्रोतावरोध) को दूर कर स्रोतो विकासि (स्रोतों को खोलने वाला) और कफघ्न होता है। कटु रस शोधन, विष-कुष्ठनाशक, स्तन्य-शुक्र-मेदधातुनाशक, मुखरोगहर, गलरोगनाशक है। (१) **कटुर्गलामयोदर्दकुष्ठालसकशोफजित्। व्रणावसादनः स्नेहमेदक्लेदोपशोषणः॥ दीपनः पाचनो रुच्यः शोधनोऽन्नस्य शोषणः। छिनत्तिबन्धान् स्रोतांसि विवृणोति कफापहः।** अ० हृ० सू० अ० १०। (२) च० सू० अ० २६।

अति सेवन जन्य विकार—कटु रस के अति सेवन से पुंस्त्व का नाश होता है। यह रस उष्ण वीर्य से मोह, ग्लानि, अवसाद, कार्श्य, मूर्च्छा उत्पन्न करता है। यह मोह, भ्रम, कण्ठदाह, शारीरिक ताप, आकुञ्चन, बलक्षय, तृषा उत्पन्न करता है। यह अग्नि और वायु गुण की अधिकता से भ्रम, दाह, कम्प, तोद (सूचि भेदनवत् पीडा) भेद तथा विविध वातविकार (हस्त, पाद, पार्श्व, पृष्ठादि में) उत्पन्न करता है।

कुरुते सो ऽतियोगेन तृष्णां शुक्रबलक्षयम्। मूर्च्छामाकुञ्चनं कम्पं कटिपृष्ठादिषु व्यथाम्। च० सू० अ० २६।

तिक्त रस के कर्म—स्वयं अरुचिकर होने पर भी अरुचि को नष्ट करता है। यह विषघ्न, कृमिघ्न, मूर्च्छा-दाह-कण्डू-कुष्ठ-तृषानाशक, त्वचा और मांस को दृढ़ करने वाला, ज्वरघ्न, दीपन, पाचन, स्तन्यशोधन, लेखन कर्म करता है। यह क्लेद-मेद-वसा-मज्जा-लसीका-पूय-स्वेद-मूत्र-पुरीष-पित्त और कफ का शोषण करता है। यह छेदन, शोधन, कोठप्रशमन, मेधावर्धक होता है। (१) **तिक्तः स्वयमरोचिष्णुररुचिं कृमि विड्विषम्। कुष्ठमूर्च्छाज्वरोत्क्लेशदाहपित्तकफाञ्जयेत्॥ क्लेदमेदोवसामज्ज-शकृन्मूत्रोपशोषणः। लघुर्मेध्यो हिमो रूक्षः स्तन्यः कण्ठविशोधनः॥** अ०हृ०। (२) च० सू० अ० २६। तिक्त रस क्षुधा वृद्धिकर, पाचकरसोद्दीपक, आमाशय एवं आन्त्र क्रिया वर्धक होता है। तिक्त रस का प्रयोग जीर्ण अग्निमान्द्य में आमाशय बल्य होने से विशेष उपयोगी होता है। यह उत्तम कृमिघ्न होता है। यह कृमियों का उद्वेजक, कोष्ठ से कृमियों (विशेषतः सूत्र क्रिमि) के बहिर्निःष्कासन एवं मारने में विशेष प्रभावशाली माना जाता है। कटु और सुगन्धित तैलों के साथ वातानुलोमन क्रिया करता है। यह यकृत्प्लीहा पर भी विशेष कार्मुक होता है। यकृत् की निर्विषीकरण क्रिया में सहयोगी तथा यकृत् बल्य के रूप में प्रयुक्त होता है।

अति सेवन जन्य विकार—तिक्त रस रूक्ष, विशद, खर गुणों से रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र-धातुओं का क्षय, शोषण करता है। स्रोतों में काठिन्य उत्पन्न करता है। यह बलक्षय, कार्श्य, ग्लानि, मूर्च्छा, भ्रम, मुखशोष, तोद, भेदन एवं वातिक विकारों (आक्षेप, अर्दित, मन्यास्तम्भ, जाड्य) को उत्पन्न करता है। (१) **धातुक्षयानिलव्याधीनतियोगान् करोति सः।** अ० हृ० सू० अ० १०। (२) च० सू० अ० २६।

कषाय रस के कर्म—यह संशमन, ग्राही, सन्धानीय, व्रणपीडन, रोपण, शोषण, स्तम्भन है। पित्त कफ, रक्तशामक, शरीर के क्लेद को सुखाता है। यह लेखन, विकृत त्वचा को स्वाभाविक वर्ण में लाने वाला, रक्तशोधक, मेद का शोषण आमस्तम्भक (आम दोषों के पाक को रोकने वाला) है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कषाय रस जिह्वा, मुख, कण्ठ, आमाशयान्त्र के स्रावों का शोषण कर रूक्षता, संकोच, स्तम्भन उत्पन्न करता है। इससे धातुओं में दृढ़ता व संघननता होती है। रस रक्त धातु प्रसादन, स्तम्भक स्रोतोसंकोची होने से नासागत स्राव, रक्तस्राव, रक्तपित्त, रक्तार्श, रक्तमूत्रता व शरीर के किसी भी भाग के रक्तस्राव में अत्युपयोगी है। कषाय रस श्लेष्मल कला में जाकर एक अविलेयी उपलेप बनाता है। जिससे पूयजनक जीवाणु का प्रवेश न होने से तथा व्रण में द्रवांश की कमी से शीघ्र व्रण रोपण होता है। अतः मुख, गल, जिह्वा कण्ठ की प्रदाहावस्था में, गलमांसवृद्धि में गण्डूष कवल, धारण, लेप के रूप में प्रयोग होता है। आमाशयान्त्र-प्रद्राह-व्रण, त्वग्रोग, पूतिनासा, अभिष्यन्द, श्वेतप्रदर, गर्भाशयिकस्रावाधिक्य में बाह्याभ्यन्तर प्रयोग होता है। यह मल, मूत्र, स्वेद की मात्रा को कम करता है। (१) **कषायः पित्तकफहा गुरुरस्रविशोधनः। पीडनो रोपणः शीतः क्लेदमेदोविशोषणः ॥ आमसंस्तम्भनो ग्राही रूक्षो ऽति त्वक्प्रसादनः।** अ० हृ० सू० अ० १०। (२) चरक सूत्र स्थान अ० २६।

अति सेवन जन्य विकार—इसके अति सेवन से मुखशोष, आध्मान, विबन्ध, वाक्सङ्ग, हृत्पीडा, स्रोतों का अवरोध, श्याववर्ण, षण्ढत्व उत्पन्न होता है। यह वात, मूत्र, पुरीष और शुक्र को रोकता है। शरीर में कार्श्य, ग्लानि, तृषा, स्तब्धता उत्पन्न करता है। रूक्ष, खर, विशद होने से अर्दित, अपतानक, पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, आकुञ्चन, आक्षेपादि वातविकारों को उत्पन्न करता है। (१) **करोति शीलितः सो ऽति विष्टम्भाध्मानहृद्रुजः। तृट्कार्श्यपौरुषभ्रंशस्रोतोरोधमलग्रहान् ॥** अ० हृ० सू० अ० १०। (२) च० सू० अ० २६।

रसों में गुणों के उपदेश का हेतु—रसों के गुण कर्म प्रसंग में मधुर रस को गुरु, शीत, स्निग्ध कहा गया है। अम्ल रस को लघु, उष्ण, स्निग्ध और इसी प्रकार शेष रसों के गुण कर्मों का भी व्यपदेश किया है। प्रस्तुत संदर्भ में शंका समुपस्थित होती है कि विभिन्न रसों के गुणकर्मों का उपदेश कैसे किया गया है ? क्योंकि दोनों ही द्रव्याश्रय्य और द्रव्य के गुण हैं। एक गुण दूसरे गुण का आश्रय करके (निर्गुणास्तु गुणाः स्मृताः) नहीं रह सकता है। इस शंका का समाधान यही है कि द्रव्य में रस एवं गुण दोनों साहचर्य भाव (साथ रहने का सम्बन्ध) से रहते हैं। जैसे गुड़ में मधुर रस रहता है तथा गुरु गुण भी रहता है। मधुराम्लादि रसों और गुरु, लघ्वादि गुणों का आश्रयाश्रयि भाव न होने पर भी साहचर्य सम्बन्ध से औपचारिक भाषा में मधुर रस गुरु है। अम्ल रस लघु है ऐसा कहा जाता है। जैसे किसी व्यक्ति के उष्ण घृत से दग्ध होने पर भी औपचारिक भाषा में घृत दग्ध ऐसा कहा जाता है। वस्तुतः दग्ध कर्म तो घृतस्थ अग्नि का है न कि घृत का। फिर भी घृत एवं अग्नि के साहचर्य भाव से दग्ध कर्म घृत पर आरोपित होता है। इसी प्रकार मधुराम्लादि रसों के जो गुरु लघ्वादि गुण (साहचर्यभाव से) कहे गये हैं वे गुण उनके आश्रय या आधारभूत द्रव्यों के हैं ऐसा समझना चाहिए। (१) **गुणा गुणाश्रया नोक्तास्तस्माद्रसगुणान् भिषक्। विद्याद् द्रव्यगुणान्, कर्तुरभिप्रायाः पृथग्विधाः ॥** च० सू० अ० २६। (२) **गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये। रसेषु व्यपदिश्यन्ते साहचर्योपचारतः ॥** अ० हृ० सू० अ० ९।

षड्रसों से दोषों का शमन एवं प्रकोप—जब शरीर में मधुरादि षड्रसों एवं वातादि दोषों का सन्निपात (शरीर के अन्दर मिलते हैं) होता है तब जो रस जिन दोषों के समान गुण या समान गुण भूयिष्ठ होते हैं, वे सतत अभ्यास से उन दोषों को बढ़ाते हैं। इसी प्रकार जो रस जिन

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दोषों के विपरीत गुण या विपरीत गुण भूयिष्ठ होते हैं वे रस सतत अभ्यास से उन दोषों का शमन करते हैं। (१) **तत्र दोषमेकैकं त्रयस्त्रयो रसा जनयन्ति, त्रयस्त्रयश्चोपशमयन्ति। तद्यथा-कटुतिक्त-कषायाः वातं जनयन्ति, मधुराम्ललवणास्त्वेनं शमयन्ति; कट्वम्ललवणाः पित्तं जनयन्ति, मधुरतिक्त-कषायास्त्वेनच्छमयन्ति, मधुराम्ललवणाः श्लेष्माणं जनयन्ति, कटुतिक्तकषायास्त्वेनं शमयन्ति।।** च० वि० अ० १। (२) **तत्राद्या मारुतं घ्नन्ति त्रयस्तिक्तादयः कफम्। कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते।** अ० हृ० सू० अ० १।

वातपित्त कफ दोषों में से एक-एक दोष का तीन-तीन रस प्रकोप एवं शमन करते हैं। जैसे स्वादु अम्ल लवण वायु का शमन और शेष तीन रस कटु तिक्त कषाय वायु का प्रकोप करते हैं। मधुर तिक्त कषाय रस पित्त का शमन करते हैं शेष तीन रस कटु अम्ल एवं लवणरस पित्त का प्रकोप करते हैं। कटु तिक्त कषाय रस कफ का शमन करते हैं शेष तीन रस मधुर अम्ल लवण रस कफ की वृद्धि करते हैं। जो रस जिन महाभूतों के आधिक्य से उत्पन्न होते हैं वे सहज ही उन्हीं महाभूतों से उत्पन्न दोषों की वृद्धि करते हैं और विपरीत महाभूतों से उत्पन्न दोषों का शमन करते हैं।

मधुर रस के दोषानुसार कर्म—कफ दोष एवं मधुर रस दोनों जल और पृथिवी महाभूतों की अधिकता से उत्पन्न होते हैं। इसलिए मधुर रस अपने माधुर्य रस एवं स्निग्ध, गुरु, मृदु, शैत्य, पिच्छिल गुण से क्रमशः कफ दोष के मधुर, स्निग्ध, गुरु, मृदु, शैत्य, पिच्छिल गुणों की वृद्धि कर कफ की वृद्धि करता है। पित्त के कटु, लघु, तीक्ष्ण गुणों के विपरीत मधुर रस अपने मधुर, गुरु, मृदु गुण भूयिष्ठ होने से पित्त का शमन करता है। वायु के रूक्ष, लघु, खर, विशद, चल गुणों के विपरीत मधुर रस अपने स्निग्ध, गुरु, श्लक्ष्ण, पिच्छिल स्थिर गुण भूयिष्ठ होने से वातशामक है।

अम्ल रस के दोषानुसार कर्म—यह अग्नि एवं पृथिवी (चरक मतानुसार) अग्नि और जल (सुश्रुत मतानुसार) महाभूतों से अम्ल रस एवं पित्त दोष निष्पन्न होते हैं। इसलिए अम्ल रस (द्रव्य) अम्लरस, लघु, विदाही, तीक्ष्ण गुणों से पित्त के अम्ल रस, उष्ण, लघु, तीक्ष्ण गुणों की वृद्धि कर पित्त का प्रकोप करता है। अम्ल रस उष्ण, स्निग्ध, तीक्ष्ण गुण से कफ को क्लिन्न (सान्द्र कफ को द्रवीभूत) एवं प्रकुपित करता है। वात के रूक्ष, शीत गुणों के विपरीत अम्ल रस स्निग्ध, उष्ण गुणभूयिष्ठ होने से वातशामक है।

लवण रस के दोषानुसार कर्म—लवण रस अग्नि एवं जल (चरक मतानुसार) भूमि-अग्नि (सुश्रुत) महाभूतों से लवण रस एवं कफ पित्त दोष उत्पन्न होते हैं। इसलिए लवण रस अपने उष्ण, तीक्ष्ण, गुरु, स्निग्ध गुणों से कफ को द्रवीभूत कर वृद्धि करता है। लवण रस उष्ण, तीक्ष्ण, स्निग्ध गुणों से पित्त को प्रकुपित करता है। वायु के शीत, रूक्ष, लघु, मन्द गुणों के विपरीत लवण रस उष्ण, स्निग्ध, किंचिद् गुरु, तीक्ष्ण गुण भूयिष्ठ होने से वातशामक है।

कटु रस के दोषानुसार कर्म—कटु रस वायु-अग्नि महाभूतों से तथा पित्त, वात दोष भी क्रमशः अग्नि, वायु महाभूतों से निष्पन्न होते हैं। अतः समान हेतु निष्पत्ति से कटु रस के उष्ण, लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण गुणों से पित्त और वायु की वृद्धि (प्रकोप) होती है। कटु रस कफ के माधुर्य गुण, रूक्षता से कफ के स्निग्ध, लघुता से कफ के गुरु, उष्णता से कफ के शैत्य एवं विशद गुण से कफ के पिच्छिल गुण का नाश करने से कफ नाशक है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिक्त रस के दोषानुसार कर्म—वायु-आकाश महाभूतों से तिक्त रस और वात दोष उत्पन्न होते हैं। अतः तिक्त रस रूक्ष, शीत, मृदु, विशद समान गुण भूयिष्ठ होने से वायु की वृद्धि करता है। तिक्त रस शीत, रूक्ष, मृदु गुण से पित्त के अम्ल, उष्ण, स्निग्ध, तीक्ष्ण गुणों के विपरीत गुण भूयिष्ठ होने से पित्त शामक है। इसी प्रकार तिक्त रस कफ दोष के विपरीत रूक्ष, लघु, विशद गुण भूयिष्ठ होने से कफ शामक है।

कषाय रस के दोषानुसार कर्म—कषाय रस पृथिवी और वायु महाभूतों से उत्पन्न होता है। कषाय रस शैत्य, रौक्ष्य, लघु, वैशद्य, विष्टम्भी गुणों से वात दोष के समान गुण भूयिष्ठ होने से वात वर्धक है। कषाय रस लघु, रूक्ष, विशद गुणों से पित्त एवं कफ शामक है।

रसों के दोष जनन में अपवाद—मधुर रस प्रायः कफ वर्धक होता है परन्तु पुराने शालि जौ, गेहूँ, मूँग, मधु, जाँगल मांस, मिश्री मधुर रस होते हुए भी कफ की वृद्धि नहीं करते हैं। अम्ल रस प्रायः पित्तवर्धक होता है किन्तु आंवला, अनार अम्ल रस होने पर भी पित्तवर्धक नहीं है। लवण रस नेत्र के लिए हानिकर एवं उष्ण होता है किन्तु सैन्धव लवण नेत्रों के लिए हानिकर नहीं होता है तथा शीत होता है। कटु रस प्रायः वायुवर्धक एवं अवृष्य होता है किन्तु सोंठ, पीपल, लहसुन कटु होने पर भी वातवर्धक नहीं है और वृष्य भी हैं। तिक्त रस भी कटु के समान वात प्रकोपकर एवं अवृष्य होता है किन्तु गिलोय, पटोल, वेतस का अग्र भाग तिक्त होने पर भी वात प्रकोपक नहीं होते हैं। कषाय रस प्रायः शीत, स्तम्भन होता है। किन्तु हरीतकी उष्ण और अनुलोमन होती है। **तत्र प्रायो मधुरं श्लेष्मलम्, अन्यत्र पुराणशालियवगोधूममुद्गमधुशर्कराजाङ्गलमांसात्। प्रायोऽम्लं पित्तलम् अन्यत्र दाडिमामलकात्। प्रायो लवणमचक्षुष्यम्, अन्यत्र सैन्धवात्। प्रायस्तिक्तकटुकं वातलमवृष्यं च अन्यत्रामृतापटोलनागरपिप्पलीलशुनात्। प्रायः कषायं शीतं स्तम्भनं च अन्यत्र हरीतक्याः।** अष्टाङ्ग संग्रह सू० अ० १८।

कफजादि व्याधियों में रसोपयोग क्रम—शास्त्रविद् वैद्य को श्लैष्मिक विकारों में कटु, तिक्तण कषाय रसों का क्रमशः प्रयोग करना चाहिए। सर्वप्रथम कटु रस से कफ की पिच्छिलता और गुरुता नष्ट होती है। तदनन्तर तिक्त रस का प्रयोग करने से आस्य माधुर्य नष्ट होता है, कफ शुष्क होता है। अन्त में कषाय रस का प्रयोग करने से कषाय रस कफ को सान्द्र करता है और स्निग्धांश को नष्ट करता है। पैत्तिक विकारों में तिक्त, मधुर, कषाय रसों का क्रमशः प्रयोग करना चाहिए। तिक्त रस सर्वप्रथम आम का पाचन करता है। तदनन्तर मधुर रस शीत, गुरु, स्निग्ध गुणों से पित्त का शमन करता है। अन्त में कषाय रस अपने रौक्ष्य, शोषण गुण से पित्त के द्रवांश को नष्ट करता है। वातव्याधि में लवण, अम्ल, मधुर रस का क्रमशः प्रयोग करना चाहिए। लवण रस अपने क्लेदन, स्नेहन, उष्ण, गुरु गुण से वायु के विबन्ध एवं शीत, लघु गुण को नष्ट करता है। तदनन्तर अम्ल रस स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण गुण से वात के अवरुद्ध स्रोतों का विकास कर प्रतिलोम वायु का अनुलोमन करता है। अन्त में मधुर रस का उपयोग करने से स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल, स्थिर गुण से वायु के लघु, विशद, रूक्ष, चलगुण का शमन करके वात का शमन करता है। **मूल उद्धरण**—काश्यप-संहिता। खिल स्थान अ० ६ में द्रष्टव्य है।

त्रिषष्टि (६३) रस भेद

मधुरादि रसों के द्रव्य प्रभाव, देश प्रभाव, काल प्रभाव से परस्पर २-२, ३-३, ४-४, ५-५

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

और ६-६ के संसर्ग से ५७ तथा स्वतन्त्र रूप से १-१ इस प्रकार ६३ भेद होते हैं। जो चिकित्सक इन रस विकल्पों एवं दोष विकल्पों को जानता है वह रोगों के कारण, लिंग तथा चिकित्सा में भी मोह को प्राप्त नहीं करता है। बुद्धिमान वैद्य को दोष, औषध, देश, काल, बलादि को देखकर कहीं एक रस वाले द्रव्य का, कहीं एक रस वाले अनेक द्रव्यों का या एक से अधिक संयुक्त रस वाले एक या अनेक द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। अंशांश कल्पना से रसों के ६३ भेद होते है।

द्विक संयोग (रस) १५, त्रिक संयोग रस २०, चतुष्क संयोग रस १५, पञ्चक-संयोग रस ६ षट्क संयोग रस १, असंयुक्त रस ६, इस प्रकार कुल ६३ भेद होते हैं। (१) बदर-कपित्थफलादिकं **मधुराम्लम्** (२) उष्ट्रीक्षीरोरभ्रमांसादिकम् **मधरलवणम्** (३) कुक्कुरशृगालमांसादिकम् **मधुरकटुकं** (४) श्रीवाससर्जरसादिकम् **मधुरतिक्तं** (५) तैलधन्वनफलादिकं **मधुरकषायम्** (६) ऊषकादिकम् **अम्ललवणं** (७) चुक्रादिकम् **अम्लकटुकं** (८) सुरादिकम् **अम्लतिक्तं** (९) हस्तिनीदधि-शुकमांसादिकम् **अम्लकषायं** (१०) त्रपुसीसादिकं **लवणतिक्तं** (११) गोमूत्रस्वर्जिकादिकं **लवणकटुकं** (१२) समुद्रफेनादिकं **लवणकषायं** (१३) कर्पूरजातीफलादिकं **तिक्तकटुकं** (१४) लवलीफल-हस्तिनीधृतादिकं **तिक्तकषायं** (१५) भल्लातकमज्जा हरितालादिकं **कटुकषायम्**। **एवं द्विरसभेदाः पञ्चदशधा दर्शिताः। अतः परं रसत्रितयभेदा वक्ष्यन्ते**—(१) हस्तिमांसादिकं **मधुराम्ललवणं** (२) शल्यकमांसादिकं **मधुराम्लकटुकं** (३) गोधूमोत्थसुरादिकं **मधुराम्लतिक्तं** (४) मस्तुतक्रादिकं **मधुराम्लकषायं** (५) काणकपोतमांसादिकं **मधुरलवणकटुकं** (६) शम्बूकादिमांसं **मधुरलवणतिक्तं** (७) पद्मकादिकं गुडसंयुक्तं **मधुरलवणकषायं** (८) तृणशून्याफल-शुष्ककुस्तुम्बर्यादिकं **मधुरकटुतिक्तं** (९) गोधामांसैरण्डतैलादिकं **मधुरकटुकषायं** (१०) गुडूची-शाखामृगामिष-तुवरकतैलादिकं **मधुरतिक्तकषायं** (११) रौप्यशिलाजत्वादिकं **अम्ललवणकटुकं** (१२) हस्तिमूत्रादिकम् **अम्ललवणतिक्तं** (१३) सरोमकं हस्तिनीदध्यादिकं **अम्ललवणकषायं** (१४) मरिचसंस्कृतसुरादिकं **अम्लकटुतिक्तम्** (१५) अम्लवेतसादिकम् **अम्लकटुकषायं** (१६) कीरमांसयुतसुरादिकम् **अम्लतिक्तषायं** (१७) अविमूत्रादिकं **लवणकटुतिक्तम्** (१८) अरुष्करं सरोमकं **लवणकटुकषायं** (१९) समुद्रफेनादिकं **लवणतिक्तकषायं** (२०) कृष्णागुरुसुरदारुस्नेहादिकं **कटुतिक्तकषायं**। **एवं त्रिकभेदा विंशतिर्दर्शिताः। अतः परं चतुः संयोगाः पञ्चदशप्रकारा वक्ष्यन्ते**—(१) गोमूत्रान्वितशिलाजतुप्रभृतिकं **मधुराम्ललवणकटुकं** (२) गोमूत्रैकशफक्षीरादिकं **मधुराम्ललवणतिक्तकं** (३) सैन्धवान्विततक्रादिकं **मधुराम्ललवणकषायं** (४) लशुनान्वितं सुरादिकम् **मधुराम्लकटुतिक्तं** (५) काञ्जिकान्वितैरण्डतैलादि खदिरान्वितशिलाह्वादिकं च **मधुराम्लकटुककषायम्** (६) उदुम्बरान्वितं यवासशर्करादिकं **मधुराम्लतिक्तकषायं** (७) वार्ताकिफलादिकं **मधुरलवणतिक्तकटुकं** (८) गोमूत्रान्विततैलादिकं **मधुरलवणकटुकषायं** (९) तिल-गुग्गुल्वादिकं **मधुरतिक्तकटुकषायं** (१०) समुद्रफेन-शर्करा चित्रकान्वित बदरादि **मधुरलवणतिक्तकषायं** (११) सुवर्चलान्वित हस्तिनीदध्यादिकृत् सुरादिकम् **अम्ललवणकटुतिक्तम्** (१२) सौवर्चलान्वित हस्तिनीदध्यादिकम् **अम्ललवणकटुकषायम्** (१३) औद्भिदलवणान्वितं शुकमांसादिकं **अम्ललवणतिक्तकषायं** (१४) बालमूलक-हस्तिनीदध्यादिकम् **अम्लकटुतिक्तकषायं** (१५) सरोमकं बालबिल्वादिकं **लवणकटुतिक्तकषायम्**। **एवं चतुष्करससंयोगाः पञ्चदश कथिताः। अतः परं पञ्चरससंयोगाः षड् वक्ष्यन्ते।** (१) आमकरमर्दान्वित भृष्टवार्ताकिफलादिकं **मधुराम्ललवणतिक्तकटुकं** (२) कटुत्रययवक्षारान्विततक्रादिकं **मधुराम्ललवणकटुकषायम्** (३) औद्भिदान्विततक्रादिकं **मधुराम्ललवणतिक्तकषायं** (४) हरीतकी धात्रीफलादिकं **मधुराम्लकटुतिक्तकषायं**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(५) रसोनादिकं **मधुरलवणकटुतिक्तकषायं** (६) भल्लातक-रौप्यशिलाजतु मिश्रित निम्बादिकम् **अम्ललवणकटुतिक्तकषायम् एवं पञ्चरससंयोगाः षड् दर्शिताः । अतः परं षड्रसं वक्ष्यते**–(१) एणमांसादिकं **मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायम् । अतः परमेकैकरसानाह** (क) सन्तानिका-गोदुग्धादिकं **मधुरम्** (२) आमकरमर्दादिकम् **अम्लं** (३) रोमकादिकं **लवणं** (४) चव्यादिकं **कटुकं** (५) निम्बपर्पटादिकं **तिक्तं** (६) पद्म-न्यग्रोधाद्यंकुरादिकं **कषायम् । एवं षट् कथिताः । अनेन प्रकारेण त्रिषष्टिः कथिता ।**

रस प्राधान्यवाद––रस प्रधानवादी आचार्य रस के प्राधान्य में निम्न हेतु प्रतिपादित करते हैं । (१) **अधिकार से**–आगम या शास्त्रों में रस का महत्त्व स्वीकार किया गया है । शास्त्र में चिकित्सा और स्वस्थ वृत्त में रसोपयोगिता निर्दिष्ट है । आहार रसों के आधीन है और प्राणों का पोषण आहार से होता है । **रसास्तु प्रधानं कस्मात् ? आगमात्, आगमो हि शास्त्रमुच्यते, शास्त्रे हि रसा अधिकृताः यथा रसायत्त आहार इति, तस्मिंस्तु प्राणाः** । सु० सू० अ० १ । (२) **उपदेश से**–आयुर्वेद में रसों के द्वारा ही दोषशमन का उपदेश मिलता है । जैसे **मधुराम्ललवणाः वातं शमयन्ति** । सु० सू० अ० ४२ । (३) **ऋषि वचन से**–वेद ऋषियों के वचन हैं । वेदों में निर्देश है कि यज्ञ के लिए कुछ मधुर द्रव्य लाओ । **"ऋषिवचनाच्च, ऋषिवचनं वेदः, यथा किंचिदिज्यार्थं मधुरमाहरेदिति; तस्माद्रसाः प्रधानम्** । सु० सू० अ० ४२ । (४) **अनुमान से**–रस के द्वारा द्रव्य का अनुमान किया जाता है जैसे मधुर होने से अनुमानित द्रव्य वातपित्त शामक, कफवर्धक बलकर होगा । ऐसा अनुमान रस के द्वारा किया जाता है । (५) **व्यापत्ति निमित्तता**–द्रव्य के रस के विकृत होने पर उसके विपाक कर्मादि की विकृति की शंका से विकृत-विरस दुग्ध का प्रयोग नहीं होता है । **रसव्यापत्ति निमित्तं शेषाण्यं द्रव्यादीनां व्यापत्तेः–यथा क्षीरस्य रसे दुष्टे क्षीरं न गृह्यते, तद्विपाकादयश्च विपन्ना इति** । र० वै० सू० ११३, भा० । (६) **अनेक आधार से**–षड्रस विविध विषयभूत आधार द्रव्यों में रहते हैं । जैसे मधुर रस दुग्ध, शर्करा, गुड, इक्षु, द्राक्षादि में रहता है । बहु विषययुक्त होने से इसका प्राधान्य स्वतः सिद्ध है । **अनेकाधारत्वादिति मधुरस्य तावदिक्षुक्षीरशर्कराखण्डादयः एव मन्येषां च । यद् बहुविषयं तत् प्रधानं दृष्टं** । र० वै० सू० ११७, भा० । (७) **गुण वैशिष्ट्यापदेश**–किसी द्रव्य के गुण, विपाक, वीर्य का विनिश्चय भी उसके रसानुसार होता है । उदाहरण के लिए मधुर द्रव्य में गुरु, शीत, स्निग्ध गुण होते हैं । उसका विपाक मधुर वीर्य शीत एवं वातपित्तशामक, बल्य, बृंहण होता है । (८) **आशुकारित्व**–गुण, विपाक, वीर्य, प्रभाव पदार्थों की अपेक्षा रस का कार्य सर्वप्रथम ही प्रारम्भ हो जाता है । इसका कार्य द्रव्य का जिह्वा के साथ संयोग होते ही प्रारम्भ होजाता है । जैसे मधुर रस मुख में शीघ्र ही उपलेप कर देता है । कटु रस जिह्वा पर उद्वेग (चिमचिमाहट) करता है ।

□□

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विपाक विज्ञानीय पञ्चम परिच्छेद

विपाक का लक्षण—(१) जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम् । रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः । अ० हृ० सू० अ० ९ । (२) रसानां परिणामान्ते जरण निष्ठा काले यद्रसान्तरम् रसविशेषः उदेति उत्पद्यते स विपाकः । अरुण दत्त । (३) विपाक इति पाकः पचनं, द्रव्याणां स्वरूपरसयोः परावृत्तिः । सा च स्वरूपान्तरत्वेन रसान्तरत्वेन च परिणतिः, तस्या विशेषो पाकः स्वरूपपरिवर्तनं जाठराग्नियोगेन भुक्तानां द्रव्याणां जायमाने किट्टसाररूपेण पृथक्त्वे यः सार भागो द्रव्यस्य आद्योरसाख्यो धातुः, किट्टभागश्च मूत्रपुरीषरूपो मलधातुः । तद्रसमल धातुभूत रसान्तरवद् द्रव्यान्तरत्वेन भुक्तानां परिणति विशेषो ऽत्र विपाकः । रसान्तरपरिवर्तनरसान्तरत्वेन कस्य रसस्य, किं रसान्तरत्वेन उदयः परिणामः स्यादिति अत आह कटुतिक्तादिः ।। गंगाधर । (४) अवस्थापाकापेक्षया विशिष्टः पाकः. विपाकः । शिवदास सेन । (५) परिणाम लक्षणो विपाकः । र० वै० सू० १७० । जरण निष्ठाकाले रस विशेषस्य पाक प्रादुर्भावः विपाकः । भाष्य ।

आहार एवं औषध द्रव्यों (षड्रस, विंशति गुण युक्त) के खाने के पश्चात् महास्रोत में पाचन क्रिया के अन्त में किंवा जाठराग्नि, भौतिकाग्नियों द्वारा परिपाक से रूपान्तरित होने पर अन्त में जो रस या गुण विशेष की उत्पत्ति होती है, उसको विपाक या निष्ठा पाक कहते हैं । विपाक में आहारौषध गत रसों का शोषण होने के बाद शरीर सात्म्यकरण के लिए परिणमन होता है । भुक्त द्रव्य का अन्तिम परिवर्तन रसान्तर रूप में होता है । स्वरूप परिवर्तन किट्ट और सार रूप आद्य रस धातु में होता है । किट्ट भाग मूत्र, पुरीष में परिवर्तित होता है । आद्य रस धातु, मधुर, अम्ल, कटु रस या गुरु, लघु गुण युक्त होती है । ये ही गुरु, लघु गुण शारीर घटकों (दोष-धातु-मलों) गुणों में परिणत होते हैं ।

आयुर्वेद में भुक्त द्रव्यों के दो प्रकार के पाक माने गये हैं (१) अवस्था पाक (२) निष्ठा पाक । निष्ठा पाक के पहिले भुक्त द्रव्यों का अवस्था पाक होता है । इसकी प्रपाक संज्ञा भी है । अवस्था पाक में महास्रोत के पृथक् पृथक् स्थानों में जाठराग्नि के द्वारा खाये हुए आहार का पृथक् पृथक् आवस्थिक परिवर्तन होता है । इसलिए इसको **अवस्था पाक** कहते हैं । अवस्था पाक (१) मधुरावस्थापाक (२) अम्लावस्थापाक (३) कट्ववस्थापाक भेद से तीन प्रकार का होता है ।

प्रथम अवस्था पाक आमाशय में होता है । यहाँ पर षड्साहार के पाकारम्भ में उद्भूत मधुर रस से फेनसदृश मलरूप कफ उत्पन्न होता है । मधुरावस्था पाक में सम्पूर्ण षड्साहारोषध द्रव्यों का मधुर पाक होता है । यदि भुक्तान्न में मधुर रस का अधिक सेवन किया जावे तो प्रथम पाक में कफ की उत्पत्ति अधिक होती है । कटुतिक्तकषाय रसों के अधिक सेवन से कफ की उत्पत्ति कम मात्रा में होती है । द्वितीय अम्लावस्था पाक पच्यमानाशय में होता है । यहाँ उद्भूत अम्ल रस के बाहुल्य

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

से मलभूत स्वच्छ पित्त की उत्पत्ति होती है। अम्लावस्था पाक में सम्पूर्ण आहारौषध द्रव्यों का अम्ल पाक होता है। यदि खाए हुए आहार में अम्ल रस का अधिक प्रयोग किया जावे तो मल रूप पित्त की अधिक उत्पत्ति होती है। तृतीयावस्था पाक पक्वाशय में होता है। पक्वाशय में जाठराग्नि से शोष्यमाण और पक्व पिण्डीभाव को प्राप्त हुए आहार से उद्रिक्त कटु रस से मल रूप वात की उत्पत्ति होती है। इस पाक में सम्पूर्ण आहार द्रव्यों का कटु पाक होता है। यदि भुक्तान्न में कटु, तिक्त कषाय रसों का अधिक प्रयोग किया गया हो तो मल रूप वायु की अधिक उत्पत्ति होती है।

(१) मधुरावस्थापाक–**अन्नस्य भुक्तमात्रस्य षड्रसस्य प्रपाकतः। मधुराद्यात् कफो भावात् फेनभूत उदीर्यते ॥** (२) अम्लावस्था पाक–**परं तु पच्यमानस्य विदग्धस्याम्लभावतः। आशयाच्च्यवमानस्य पित्तमच्छमुदीर्यते ॥** (३) कट्ववस्था पाक–**पक्वाशयं तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वह्निना। परिपिण्डितपक्वस्य वायुः स्यात् कटुभावतः ॥** च० चि० अ० १५।

प्रस्तुत सन्दर्भ में यह शंका उत्पन्न होती है कि यदि अवस्था पाक में ही षड्रसों से कफ पित्त, वात की उत्पत्ति होती है तो निष्ठापाक में आचार्य द्वारा, कटुतिक्तकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः (च० सू० अ० २६) से जो विपाक कहा गया है वह अवस्थापाक से बाधित होने से विरुद्ध प्रतीत होता है। वस्तुतः अवस्थापाक एवं निष्ठापाक के कार्यों में कोई विरोध नहीं है। जैसे रस, गुण वीर्यादि अपना कार्य करते हैं वैसे ही अवस्थापाक भी अपना कार्य करता है। मधुरतिक्तादि षड्रस अन्न का उपयोग करने पर मधुर रस भी अपना कार्य करता है, तिक्तादि रस भी अपने कार्य करते हैं, किन्तु यदि आहार में मधुराम्ललवण रसों का बाहुल्य हो तो अवस्थापाक में प्रभूत मात्रा में कफ की उत्पत्ति होती है। कटुतिक्तकषाय कफ के विपरीत रसों के सेवन से प्रथम अवस्था पाक में अल्प मात्रा में कफ की उत्पत्ति होती है। **ननु यद्यत्रावस्थापाकवशात् षण्णामेव रसानां कफादिकर्तृत्वमुच्यते, तदा "कटुतिक्तकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः।"** । च० सू० अ० २६। **इत्यादिना यो विपाक उच्यते स विरुध्यते, अवस्थापाकेनैव बाधित्वात्; नैवं, नह्यवस्थापाकोऽयं रसस्वभावं निष्ठापाकं बाधते, किन्त्ववस्थायां स्वकार्यं करोति; तेन रसादयोऽपि स्वकार्यं कुर्वन्ति, अवस्थापाकोऽपि स्वकीयं कार्यं करोति; यथा मधुरतिक्तादिषड्रसेऽन्ने उपयुक्ते मधुरोऽपि स्वकार्यं करोति, तिक्तादयश्च स्वकार्यं कुर्वन्ति; अयं तु विशेषः—यदि मधुराख्यस्यावस्थापाकस्य मधुरादयः श्लेष्मजनका रसा अनुगुणा भवन्ति तदा स बहुश्लेष्माणं जनयति, यदा त्ववस्थापाको विपरीत कटुकादिपरिगृहीतो भवति तदा स्तोकमात्रं कफं जनयति....। इत्यादिनोक्तनिष्ठापाकस्तु रसमलविवेकसमकालो भिन्नकाल एवावस्थापाकैः सममिति न विरोधः।** च० सू० अ० २६। च० द०।

एक अन्य आचार्य के अभिमतानुसार जाठराग्नि के संयोग से त्रिधा आवस्थिक पाक नहीं होते हैं अपितु कफ पित्त वात के स्थानों में स्वभाव से ही मधुर अम्ल कटु रस होते हैं जो कफ, पित्त, वात दोषों की उत्पत्ति करते हैं। **मधुरो हृदयादूर्ध्वं रसः कोष्ठे व्यवस्थितः। ततः संवर्धते श्लेष्मा शरीरबल वर्धनः ॥ नाभीहृदयमध्ये च रसस्त्वम्लो व्यवस्थितः। स्वभावेन मनुष्याणां ततः पित्तं विवर्धते ॥ अधो नाभ्यास्तु खल्वेकः कटुकोऽवस्थितो रसः। प्रायः श्रेष्ठतमस्तत्र प्राणिनां वर्धतेऽनिलः।**

आधुनिक शारीरक्रियाविज्ञान की दृष्टि से अवस्थापाकों में मुख से लेकर बृहदन्त्र तक भुक्ताहार पर होनेवाले विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तनों का अन्तर्भाव किया जा सकता है। आहार में गोधूम, यव, शालि, द्विदलों की मात्रा का प्राधान्य होता है। लालास्राव स्थित टात्येलीन किण्वतत्त्व की

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रिया से सर्व प्रथम पिष्टसार, डेक्स्ट्रीन और धान्यशर्करा में परिवर्तन मधुर अवस्थापाक से साम्यता रखता है। आमाशय में मुख्यतया लवणाम्ल पेप्सीन, रेनीन किण्व तत्त्वों से आहार अम्ल हो जाता है। (अम्लावस्थापाक)। ग्रहणी में अग्न्याशयिक रस, याकृत्पित्त, आन्त्ररस (लायपेज, ट्रिप्सीन, एमायलेज, एण्टरोकाइनेज, सिक्रीटीन) के कटु, क्षारीय प्रधान होने से आहार क्षार या कटुरसयुक्त हो जाता है।

विभिन्न अवस्थापाकों में मुख से लेकर कण्ठ, आमाशय (ऊर्ध्वामाशय, अधो आमाशय) ग्रहणी, अन्त्र तक बोधक कफ, क्लेदक कफ, पाचक पित्त, समान वायु द्वारा खाये हुए षड्रसों का परिपाक होने पर अन्न रस में मधुर, अम्ल, कटुरस उद्रिक्त होते हैं।

तीनों अवस्थापाकों के अन्त में प्रसाद, सारभाग रस एवं किट्टभाग के विवेक काल में आद्य रस धातु में षड्रसों के अन्तिम परिणामस्वरूप जिस रस विशेष की उत्पत्ति होती है उसको निष्ठापाक या विपाक कहते हैं। निष्ठापाक से उत्पन्न रस विशेष से शरीर में धातुरूप दोषों की निष्पत्ति होती है। जैसे मधुर विपाक से धातुरूप कफ की उत्पत्ति होती है। अम्ल विपाक से पित्त की और कटु विपाक से धातुरूप वायु की उत्पत्ति होती है। यह निष्ठापाक वातादि दोषों की उत्पत्ति, सृष्टविण्मूत्रता, बद्धविण्मूत्रता आदि लक्षणों से (विपाकः कर्मनिष्ठया) अनुमान गम्य होता है। जबकि अवस्थापाक की मधुरावस्था में उद्रिक्त-उद्भूत मधुर रस (आस्योपलेप, आस्यमाधुर्य, तृप्ति) अम्ल एवं कटु अवस्थापाकों में अम्लतिक्तादि उद्गार तथा वमित द्रव्य में मिश्रित मधुर, अम्ल, कटु, तिक्तरस युक्त द्रव्यों से यह प्रत्यक्ष गम्य होता है। **(१) विपाकस्तु रसमलविवेकसमकालो भिन्नकाल एवावस्थापाकैः समम् इति न विरोधः। च० द०। (२) इमे मधुराम्लकटुरूपेण रसानां त्रयो विपाकाश्च सपरिणामाः रसाख्ये आद्यधातौ गुणा भवन्ति, न तु पाकारम्भचरमपर्यन्तं पच्यमाने षड्रसद्रव्ये प्रथममध्यमचरमावस्थासु मधुराम्लकटुरूपाः। गयदास। (३) एवं कर्मनिष्ठानुमित एकरूपावस्थो जाठराग्निसंयोगाद् यो रसानां रसान्तरोद्भवः स एव विपाकः, न तु यो जाठराग्निसंयोगमात्राद्रसानामनेकावस्थः प्राङ्मधुरो ऽनन्तरं स एव पच्यमानो ऽम्लस्ततो विपच्यमानः स एव कटुः विपाकः। हेमाद्रि।**

जाठराग्नि, धात्वग्नियों द्वारा आहार का सम्यक् पाचन होने के परिणामस्वरूप विपाक से धातुओं का पोषण, धातु वृद्धि रूप, शक्ति और शरीरोष्मा के रूप में परिवर्तन होने से ऊर्जा उत्पन्न होती है। अतः आहार के पाचन से लेकर उसके सात्म्यीकरण होने पर शरीर में ऊर्जा व बल प्राप्त होता है। **विविधपीतमशितलीढखादितम् जन्तोर्हितमन्तरग्नि सन्धुक्षितेन बलेन यथा स्वेनोष्मणा सम्यग्विपच्यमानं कालवदनवस्थित सर्वधातुपाकमनुपहत सर्वधातूष्ममारुत स्रोतः केवलं शरीरमुपचय बलवर्णसुखायुषा योजयति शरीरधातूनूर्जयति च। च० सू० अ० २८।**

अवस्थापाक और निष्ठापाक में भेद—(क) अवस्थापाक या प्रपाक प्रत्यक्ष गम्य होता है। जबकि निष्ठापाक का ज्ञान तज्जन्य कर्मों से होता है। **विपाकः कर्मनिष्ठया।** (ख) अवस्थापाक की क्रियायें निष्ठापाक (विपाक) के पूर्व आवस्थिक परिणाम में होती हैं। निष्ठापाक अन्तिम परिणाम है। (ग) अवस्थापाक में मलरूप दोषों की उत्पत्ति होती है और निष्ठापाक में धातुरूप दोषों की उत्पत्ति होती है। दूसरा अभिप्राय यह है कि अवस्थापाक में केवल कुछ काल के लिए दोषों का ईरण (आवस्थिक वृद्धि) तथा निष्ठापाक में स्थायी रूप से दोषों की पुष्टी होती है। चक्रपाणिदत्त ने अवस्था-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पाक में कफ-पित्त की वृद्धि और विपाक में दोषों की मलभूत उत्पत्ति मानी है। **अवस्थापाकात् कफपित्तयोर्वृद्धिः तथा निष्ठापाकाच्च मलरूपतया उत्पादः।** च० द०। धातुपाक काल में रसधातु और रक्तधातु से क्रमशः मलरूप कफ और पित्त दोषों की उत्पत्ति भी होती है। **किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्य तु कफोऽसृजः पित्तम्।** च० चि० अ० १५।

विपाक के प्रकार

विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के विपाक निम्न प्रकार से मानते हैं।

(१) **षड्विध विपाक**—(अ) यथारस विपाक। (आ) अनियत विपाक (अनवस्थित विपाक) का महर्षि सुश्रुत ने एकीय मत से उल्लेख किया है। अष्टाङ्ग संग्रहकार, रस वैशेषिककार।

(२) **पञ्चविध विपाक**—महर्षि सुश्रुत।

(३) **त्रिविध विपाक**—आत्रेय सम्प्रदाय–अग्निवेश, पराशर, वृद्धवाग्भट्ट, वाग्भट्ट।

(४) **द्विविध विपाक**—धन्वन्तरि सम्प्रदाय–महर्षि सुश्रुत, नागार्जुन।

(१) (अ) **षड्विध विपाक या यथारस विपाक**—इस सम्प्रदाय के अनेक आचार्यों की मान्यता है कि मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय छ रसों का अपने रसानुसार ही मधुर विपाक, अम्ल विपाक, लवण विपाक, कटु विपाक, तिक्त विपाक, कषाय विपाक होता है। इस पक्ष के समर्थक आचार्यों ने दृष्टान्तपूर्वक अपने पक्ष का स्थापन किया है। उदाहरणतया दुग्ध को बहुविध पकाने पर भी उसका मधुर स्वाद यथावत् रहता है। शालि, यव, मुद्ग आदि बोये जाते हैं तो वे अपने स्वभाव का परित्याग न करके शालि, मुद्ग, यव के रूप में ही अंकुरित एवं पक्व होते हैं। उसी प्रकार मधुरादि रस भी जाठराग्नि द्वारा परिपक्व होकर अपने स्वभाव का परित्याग नहीं करते हैं। अतः मधुर रस का विपाक मधुर होता है। इसी प्रकार अन्य रसों का भी अपने रसानुसार ही नियत विपाक होता है। (१) **तत्राहुरन्येः-प्रतिरसं पाक इति। मधुरो मधुरस्याम्लोऽम्लस्यैवं सर्वेषामिति। दृष्टान्तं चोपदिशन्ति-यथा शालियवमुद्गादयः प्रकीर्णाः स्वभावमुत्तरकालेऽपि न परित्यजन्ति तद्वदिति।** सु० सू० अ० ४०। (२) **प्रतिरसं पाक इति केचित्। अयमाशयः यथा स्थालीस्थं तावत् क्षीरं पच्यमानं मधुरमेव स्यात्, यथा वा शालियवमुद्गादयः प्रकीर्णाः स्वभावं न परित्यजन्ति। अर्थात् शालियवमुद्गादिबीजेभ्यः उप्तेभ्यः शालियवमुद्गाद्यंकुरा उत्पद्यन्ते, तद्वन्मधुरादयो जठराग्निपक्वाः स्वं स्वं रूपं मधुरादिकं न त्यजन्ति। मधुरो मधुरमेव पच्यते, अम्लो ऽम्लमेवमन्ये च, तेन षण्णां रसानां षड् विपाका भवन्ति।** यो०।

विमर्श—यथारस विपाक का अधिकांश आचार्यों ने विरोध किया है। यह सही है कि कुछ द्रव्यों में मधुर का विपाक प्रायः मधुर होता है। अम्ल द्रव्यों का अम्ल विपाक होता है इत्यादि। किन्तु चांवल का रस मधुर होने पर भी विपाक अम्ल होता है। कटुरस पिप्पली का विपाक मधुर होता है। मधुर रस तैल का कटु विपाक होता है। आमलकी, दाडिम का अम्ल रस होने पर भी मधुर विपाक होता है। पटोलपत्र का तिक्त रस होने पर भी विपाक मधुर होता है। कषाय रस कुलत्थ का विपाक अम्ल होता है। हरीतकी का कषाय रस होने पर भी विपाक मधुर होता है। इस प्रकार रसों के प्रतिकूल विपाक होने से यथारस विपाक सिद्ध नहीं होता है। **यथा रसं जगुः पाकान् षट् केचित्तद-**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

साम्प्रतम् । यत् स्वादुर्व्रीहिरम्लत्वं न चाम्लमपि दाडिमम् ।। याति तैलं च कटुतां कटुकापि न पिप्पली । यथारसत्वे पाकानां न स्यादेवं विपर्ययः । अ० सं० सू० अ० १७

यथारस पाक सिद्धान्त का नागार्जुन ने भी समर्थन नहीं किया है, उनका कथन है कि रस और विपाक के लक्षण भिन्न हैं। रसाभिव्यक्ति आस्वाद मात्र से होने से प्रत्यक्षगम्य है और विपाक पाचन के परिणाम काल में ज्ञात होता है अतः अनुमानगम्य है। यदि यथारस ही विपाक हो तो रस और विपाक के अलग-अलग प्रतिपादन का कोई औचित्य नहीं है। **यथारसं विपाकमन्ये ब्रुवते।** र० वै० ४ सू० ३१। **न भिन्नलक्षणत्वात्।** सू० ३२। **नायं पक्षः साधुः, कुतः ? भिन्नलक्षणत्वात्; आस्वादग्राह्यो रसः, परिणाम लक्षणो विपाक इति। विपाकस्य मधुरत्वम् कथमास्वाद्यते ? यद्यास्वाद्येत, रसलक्षणत्वात् रस एवेति विपाकाभावः। यदि नास्वाद्येत, कथं भवता मधुरं पच्यते, इत्युपलब्धमित्युक्तं भवति।** भाष्य।

(आ) अनियत विपाक (अनवस्थित विपाक)—अनियत विपाकवादी आचार्य भी यथारस पाकवाद के अनुसार मधुर, अम्लादि षड्विध विपाक मानते हैं, किन्तु इनकी युक्ति भिन्न है। अनेक रसयुक्त आहार में जो रस व्यक्त और अधिक मात्रा में हो, वे बलवान् और जो रस अव्यक्त, अल्प मात्रा में हो वे दुर्बल होते हैं। प्रबल रस दुर्बल रसों को दबा देता है। इसलिए निष्ठापाक काल में 'भूयसाऽल्पमवजीयते' के सिद्धान्तानुसार बलवान् रस से दुर्बल रसों का पराभव होने से अनियत स्थिति में विपाक होता है। यथा बलवान् मधुर रस का विपाक मधुर, बलवान् अम्ल रस का विपाक अम्ल आदि। इसमें विपाक क्रम अनियत होता है। यह विपाक आहार द्रव्य व तदाश्रित रस बाहुल्य पर आधारित होता है। (१) **केचित् पुनरबलवन्तो बलवतां वशमायान्ति, तस्मादनवस्थितः पाक इति।** सु० सू० अ० ४०। (२) **अन्ये तु ब्रुवते-रसा द्विविधा बलवन्तोऽबलवन्तश्च; बलवत्वं च व्यक्तत्वेन मात्राबाहुल्येन वा, अबलत्वं पुनरेतद्विपर्ययेण। तत्राल्पतयाऽबलवन्तो रसा बलवतां वशमायान्तीति, तेन निष्ठापाके बलवता रसेन दुर्बलरसाभिभवान्न रसप्रतिनियमेन मधुरस्य मधुर एव पाकोऽम्लस्य चाम्ल एवेत्यादि। प्रतिनियमाभावाच्चानवस्थितः पाक इति। अनियत्व पक्षेऽपि षट्कत्वमेव, कदाचित् कस्यचित् संभवात् इति। उक्तं च—बहवोऽभिभवन्त्यल्पान् बहिः मिश्रीकृताः रसाः। तेनानिश्चितमेवैके पाकमाहुर्मनीषिणः ।।** शिवदास सेन।

विमर्श—अनियत विपाकवाद या अनवस्थित विपाकवाद भी षड्रस विपाकवाद का ही भेद है। अतः यथारस विपाक के मानने में जो दोष है (रस और विपाक का अभेदात्मक स्वरूप) वह इस विपाक में भी आता है। इस सिद्धान्त पक्ष के अनुसार विपाक की स्थिति अनवस्थित या अनियत होती है। अतः अनियत विपाक सिद्धान्त में अनवस्था भी एक महान् दोष उपस्थित होता है। सुश्रुत, नागार्जुन, चक्रपाणि, शिवदास सेन, योगीन्द्रनाथसेन, गंगाधर प्रभृति आचार्यों ने भी इस वाद का खण्डन किया है। **किंच प्रतिरसं रससदृशः पाकस्तथा बलवत्पराधीनता च पाकस्य रसद्वारा प्रतिपाद्यमानकार्येणैव लभ्यते, तेनैतत् पक्षद्वयमपि न निष्ठापाके चिन्तनीयं, रसस्वरूपनिरूपणेनैवोक्तार्थत्वात्।** शिवदास सेन।

(२) पञ्चविध विपाक—चरक और सुश्रुत में इसका विवरण मिलता है। (१) **पञ्चभूतात्मके देहे आहारः पाञ्चभौतिकः। विपक्वः पञ्चधा सम्यक् स्वान् गुणानभिवर्धयेत् ।।** सु०सू०अ० ४६।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(२) यथास्वं स्वं च पुष्णन्ति देहे द्रव्यगुणाः पृथक्। पार्थिवाः पार्थिवानेव शेषाः शेषांश्च कृत्स्नशः ।। च० चि० अ० १५।

पञ्चविध विपाकवादियों के अनुसार सभी द्रव्य पाञ्च भौतिक होते हैं और इन पञ्चविध द्रव्यों का विपाक भी पाँच प्रकार का होता है। इस मत का उल्लेख चक्रपाणि और शिवदास सेन ने भी किया है। **इत्यनेन पञ्चधाऽपि विपाकस्तेनेवोक्तः।** शि०। **इत्यनेन पञ्चधापाकोऽभिहितः।** च० द०। पृथिवी और जल गुण प्रधान द्रव्य गुरु गुण वाले होते हैं। तैजस, वायव्य, नाभसमहाभूत प्रधान द्रव्य लघुगुण वाले होते हैं। अतः गुणों की दृष्टि से लघु या गुरु द्विविध विपाक मानें अथवा पाञ्चभौतिक भेद स्वीकार किया जावे कोई भेद नहीं है। दोनों ही भौतिक विपाक के पृथक्-पृथक् स्वरूप हैं। **तत्रपृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशानां द्वविध्यं भवति, गुण साधर्म्याद् गुरुता लघुता च, पृथिव्यापश्च गुर्व्यः, शेषाणि लघूनि। तस्माद्विविध एव पाक इति।** सु० सू० अ० ४०।

(३) त्रिविध विपाक—आत्रेय सम्प्रदाय के आचार्य मधुर, अम्ल, कटु भेद से तीन प्रकार का विपाक मानते हैं। **(१) परं चातो विपाकानां लक्षणं संप्रवक्ष्यते ।। कटुतिक्तकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः। अम्लोऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरं लवणस्तथा।** च० सू० अ० २६। कटु, तिक्त, कषाय तीन रसों का विपाक प्रायः कटु होता है। अम्लरस का विपाक प्रायः अम्ल होता है। मधुर और लवण रस वाले द्रव्यों का विपाक प्रायः मधुर होता है। प्रस्तुत संदर्भ में प्रायः शब्द का उल्लेख इसलिए किया गया है कि कतिपय द्रव्यों का विपाक रसों के विपरीत भी होता है। जैसे मधुर रस व्रीहि का विपाक अम्ल होता है। मधुर रस तैल का विपाक कटु होता है। अम्लरस आमलकी का विपाक मधुर होता है। सौवर्चल लवण (काला नमक) का विपाक कटु होता है। शुण्ठी, पिप्पली कटु रस द्रव्यों का विपाक मधुर होता है। पटोल तिक्तरस होने पर भी मधुर विपाकी होता है। हरीतकी कषाय रस प्रधान होने पर भी उसका विपाक मधुर होता है। कुलत्थ कषाय रस होने पर भी अम्ल विपाकी होता है। **प्रायशः ग्रहणाद् क्वचिन्नैवंविधोऽपि यथाशुण्ठीपिप्पल्यादीनां कटूनां मधुरोविपाकः। कषायस्य कुलत्थस्य अम्लः, कषायाहरीतकी-अम्लमामलकं च मधुरं पच्यते। मधुरो व्रीहिश्चाम्लं तथा विध तैलं पुनः कटुकम्.....सौवर्चलस्य लवणस्यापि कटुविपाकत्वात्।** सु० सू० अ० ४०। **(२) विपाकस्तूच्यते-विपाकस्तु प्रायः स्वादु स्वादुलवणयोः, अम्लोऽम्लस्य, कटुरितरेषाम्।** अ० सं० सू० अ० १७। **(३) स्वादुः पटुश्चमधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः। तिक्तोषणकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः।** अ०हृ०सू०अ० ९।

आत्रेय सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्य पराशर संख्या के विचार से तो विपाक तीन प्रकार के मानते हैं, किन्तु उन्होंने विपाक क्रम की मान्यता में भिन्नता प्रदर्शित की है। इनके मतानुसार अम्लरस का विपाक अम्ल, कटु रस का विपाक कटु तथा मधुर, लवण, कषाय, तिक्त रस का विपाक मधुर होता है। इन्होंने संकीर्ण (मिश्र) रसों का विपाक संकीर्ण भी माना है। अपने सिद्धान्त के समर्थन में पराशर कहते हैं कि यदि तिक्त, कषाय रसों का विपाक कटु माना जाये तो इनसे पित्त का शमन कैसे हो सकता है? जबकि तिक्त, कषाय रस व्यवहार में पित्तशामक होते हैं। अतः तिक्त, कषाय रसों का विपाक भी मधुर होना चाहिए। **पराशरस्तु पठति-पाकास्त्रयो रसानामम्लोऽम्लं पच्यते कटुः कटुकम्। चत्वारोऽन्ये मधुरं संकीर्णरसास्तु संकीर्णम् ।। कटुतिक्तकषायाणां कटुको येषां पित्तविघाते तिक्तकषायौ कथं भवतः** अ० सं० सू० अ० १७। चरक मतानुयायी आचार्य पराशर के कषाय तिक्त रसों के मधुर विपाक मानने के मत से सहमत नहीं है क्योंकि तिक्त कषाय रस वाले द्रव्य

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शीतवीर्य होने से पित्तशामक होते हैं, इसका हेतु यह है कि वीर्य रस और विपाक दोनों को अभिभूत करके कर्म करता है।

आचार्य चक्रपाणि, शिवदास सेन, गंगाधर, योगीन्द्रनाथ सेन ने भी अपनी टीकाओं में त्रिविध विपाक को स्वीकार किया है और इस पक्ष के समर्थन में यह लिखा है कि शरीर के आधारभूत घटक दोष तीन होते हैं। अतः संख्या साम्यता की दृष्टि से भी विपाक तीन ही मानने चाहिए। विभिन्न आहारौषध द्रव्यों के सेवन के पश्चात् जाठराग्नि संयोग से उत्पन्न आद्यरस धातु में मधुर, अम्ल या कटु रस के परिणाम से वात पित्त कफ दोषों की क्षय या वृद्धि होती है। मधुर विपाक कफवर्धक वात-शामक; अम्लविपाक कफ-पित्तवर्धक वातशामक, कटुविपाक वात एवं पित्तवर्धक और कफशामक होता है। विपाक की निष्पत्ति में दोष भी कारण होते हैं। कफ से एवं वात कफ से मधुर विपाक, कफ पित्त से अम्ल विपाक, वात से, पित्त से, वात पित्त से कटु विपाक होता है। **अन्ये तु वातादिभ्यो दोषेभ्य एव त्रिपाकानिच्छन्ति, कफात् वातकफाच्च मधुरः, कफपित्तादम्लः, वातात्पित्तात्वातपित्ताच्च कटुक इति। यदुक्तं–वाताद् वातकफात् स्वादु, अम्लःपित्तकफोद्भवः, दोषैस्त्रयोऽनिलात्, वातात्पित्तात् कटुर्भवः।** शिवदास सेन।

उपर्युक्त उद्धरण त्रिविध विपाक के समर्थन में दिया गया है किन्तु यह सिद्धान्त स्पष्ट नहीं है। रसों व दोषों के संयोग के बाद ही विपाक के द्वारा दोषों की वृद्धि व क्षय संभव होने से यह मान्य नहीं है, क्योंकि विपाक दोषावस्था का कारण है कार्य नहीं है। अतः स्वयं शिवदास सेन ने भी इस सिद्धान्त का खण्डन किया है। **दोषावस्थाजन्यश्च पाक उपपादकहेत्वाभावादागमशून्यत्वाच्च प्रेक्षावद्भिरूपेक्षणीयः।**

विमर्श—त्रिविध विपाक की मान्यता का मु य आधार त्रिदोषवाद है। रसों के अनुसार भी विपाक होने से इसको रस विपाकवाद भी कहते हैं। त्रिविध विपाक को महर्षि सुश्रुत ने सर्वथा अमान्य किया है तथा त्रिविध विपाक के सिद्धान्त को भी युक्तिपरक नहीं माना है। एतदर्थ सुश्रुत ने यह तर्क दिया है कि पित्त का स्वाभाविक रस कटु है। पित्त आग्नेयगुण होने से विदग्धावस्था में अम्लत्व की आवस्थिक स्थिति को प्राप्त करता है। उसका यदि भिन्न विपाक स्वीकार किया गया तो लवण को भी पृथक् विपाक मानना होगा क्योंकि कफ भी जब विदग्ध होता है तो वह लवण रस को प्राप्त होता है। त्रिविध विपाकवादी आचार्यों की मान्यता से भी कफ दोष में लवण रस की उपस्थिति ज्ञात होती है (लवण रस से कफ की वृद्धि होती है), क्योंकि जो-जो रस दोषवर्धक होते हैं। वे रस दोषों में भी होते हैं। अतः धन्वन्तरि सम्प्रदाय के आचार्यों को आत्रेय सम्प्रदाय के आचार्यों की अम्ल विपाक को मानने की तथा लवण विपाक को न मानने की मान्यता स्वीकार्य प्रतीत नहीं होती है। **केचित् त्रिविधमिच्छन्ति-मधुरम्, अम्लं, कटुकञ्चेति। तत्तु न सम्यक्, भूतगुणाद्यागमाच्चाम्लोविपाको नास्ति, पित्तं हि विदग्धमम्लतामुपैत्याग्नेयत्वात्। यद्येवं लवणोऽप्यन्यः पाको भविष्यति, श्लेष्मा हि विदग्धो लवणतामुपैतीति।** सु० सू० अ० ४०।

रस वैशेषिककार नागार्जुन ने ३ निम्न कारणों से त्रिविध विपाक का अनौचित्य सिद्ध किया है। तदनुसार (१) काल (२) गुण (३) रस के विचार से त्रिविध विपाक सिद्ध नहीं होता है। **कालतो गुणतो रसतश्चानुपपत्तिः त्रित्वस्य।** र० वै० १ सू० ५०। **(१) काल के विचार से**—द्रव्यों

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

के पचन काल के विचार से चिरकालिक और अचिरकालिक दो प्रकार के विपाक होते हैं। कतिपय द्रव्य शीघ्र पच जाते हैं तथा कतिपय द्रव्य देरी से पचते हैं। चिरकालिक को ही गुरु विपाक और अचिरकालिक को लघु विपाक कहते हैं। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के विपाक का अभाव होता है। **कालतस्त्रित्वं नोपपद्यते चिराचिरकालव्यतिरिक्तस्याभावात्।** भा०। **(२) गुण के विचार से—** गुण के विचार से भी विपाक का त्रित्व सिद्ध नहीं होता है। गुरुभूत (पृथिवी+जल) गुण वाले द्रव्यों का विपाक गुरु होता है और लघुभूत (तैजस्, नाभस, वायव्य) गुण वाले द्रव्यों का विपाक लघु होता है। इनके अतिरिक्त तृतीय विपाक सिद्ध नहीं होता है। **गुणतश्च त्रित्वं नोपपद्यते, गुरुभूतजनिता, लघुभूतजनिता इति गुणद्वैविध्यादिति।** भा०। **(३) रस के विचार से—**कटु, तिक्त, कषाय रसों का विपाक लघु और मधुर अम्ल लवण रसों का विपाक गुरु होता है। पांच भौतिक विचार से भी विपाक दो प्रकार का होता है। महाभूतों में तैजस, वायव्य, नाभस से कटु (लघु) विपाक होता है। पृथिवी और जल के संयोग से मधुर (गुरु) विपाक होता है। **रसतश्च त्रित्वस्यानुपपत्तिः, कटुतिक्तकषायास्तु लघवः, गुरवः परे इति द्विविधः भेदावरोधात् इति।** भा०।

द्वित्रिध विपाक—महर्षि सुश्रुत ने आगम प्रमाण से दो ही विपाक माने हैं। एक गुरु (मधुर) दूसरा लघु (कटु विपाक)। विपाक पाक काल में महाभूतों के जो गुण निष्पन्न होते हैं उन्हें दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। महर्षि सुश्रुत एवं नागार्जुन का विपाक क्रम महाभूतों एवं गुणों पर आधारित होने से इसको भूतविपाक या गुण विपाक भी कहते हैं। द्रव्यों के पचनकाल में यदि पृथिवी जल प्रधान गुणों का बाहुल्य हो तो मधुर विपाक होता है और यदि तैजस, वायव्य, नाभस प्रधान गुणों का उत्कर्ष हो तो कटु विपाक होता है। (१) **आगमस्त्वाह-द्विविध एव पाको मधुरः कटुकश्च, तयोर्मधुराख्यो गुरुः, कटुकाख्यो लघुरिति। तत्र पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां द्वैविध्यं भवति, तद्गुणसाधर्म्याद् गुरुता लघुता च, पृथिव्यापश्च गुर्व्यः शेषाणि लघूनि। तस्माद्विविध एव पाक इति। भवन्ति चात्र-द्रव्येषु पच्यमानेषु येष्वम्बुपृथिवीगुणाः। निवर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाको मधुर उच्यते। तेजोऽनिलाकाशगुणाः पच्यमानेषु येषु तु। निवर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाकः कटुक उच्यते॥** सु०सू०अ० ४०। गुण ही विपाक के कारण होते हैं। गुरु, स्निग्ध, शीत, पिच्छिल गुणोत्कर्ष से गुरु विपाक और रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण, विशद गुणों से लघु विपाक होता है। **गुणा विपाकयोः कारणम्, शीतस्निग्धगुरुपिच्छिला गुरुविपाकस्य, लघुरूक्षविशदतीक्ष्णा लघुविपाकस्येति।** र० वै० १ सू० १२३।

प्रस्तुत संदर्भ में यह स्मरणीय बिन्दु है कि जहाँ त्रिविध विपाक का आधार रसवाद और त्रिदोषवाद है वहाँ द्विविध विपाक का आधार महाभूत और उनके गुण हैं। अतः सुश्रुत को षड्रस विपाक, त्रिविध विपाक स्वीकार्य नहीं है। सुश्रुत ने त्रिविध विपाकवादियों के अम्ल विपाक की मान्यता का प्रबल खण्डन किया है (एतदर्थ त्रिविध विपाक का विमर्श प्रसङ्ग द्रष्टव्य है)। आचार्य नागार्जुन ने भी त्रिविध विपाक के अनौचित्य को सिद्ध करते हुए द्विविध विपाक के सिद्धान्त पक्ष में युक्तियां दी हैं। वे भी त्रिविध विपाक के विमर्श सन्दर्भ में मननीय हैं।

महाभूतों के अनुसार पञ्चविध विपाक मानने के बाद गुणानुसार द्विविध विपाक मानने पर विरोधि स्थिति की शंका आचार्य शिवदास सेन ने उठाई है। जिसका समाधान भी उन्होंने यों किया है, कि उपाधि भेद से यहां विरोधाभास नहीं है। महाभूतों के भेदों के आधार से पञ्चविध कहा गया है तथा भूतों के ही गुरु, लघु गुणों को लक्ष्य कर द्विविध मानने में कोई विरोध या असंगति नहीं होती

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है। **पञ्चधापि विपाकस्तेनैवोक्तः तत्कथं न विरोध इति चेत्, नैवम्, उपाधिभेदेन विरोधाभावात्, तत्र हि भूतभेदमवलम्ब्य पञ्चधात्वम्, अत्र तु लाघवगौरवरूपं भूतगुणद्वैविध्यमाश्रित्य द्वैविध्यमुक्तमिति न विरोधः, यथा पञ्चभूतात्मकत्वेऽपि द्रव्याणां सौम्याग्नेयत्वाद् द्वैविध्यमिति।**

रस वैशेषिककार नागार्जुन ने परिणाम और गुण के विचार से भी द्विविध विपाक माना है। इन्होंने **परिणाम लक्षणो विपाकः** माना है। तदनुसार आहार का द्विविध परिणाम होता है। कतिपय द्रव्य विलम्ब से पचते हैं तथा कतिपय द्रव्य शीघ्र पचते हैं। जैसे–खदिरकाष्ठ विलम्ब से जलता है। जबकि तृण, पत्र शीघ्र ही जल जाते हैं। **द्वौ, द्वैविध्यदर्शनात् परिणामस्य।** र० वै० १ सू० ५०। **यथा खदिरसारादीनि चिरादग्निसंयोगे परिणामं गच्छन्ति, पललादीन्यचिरादिति।** भा०। महाभूतों के गुरु, लघु गुणयुक्त द्रव्यों का परिणाम (पचन) भी चिरकालिक या अचिरकालिक होता है। अतः गुरु, लघु द्विविध गुणों से निष्पन्न विपाक भी द्विविध ही होता है। **गुणकारणत्वाद् गुणद्वैविध्याच्च।** र० वै० १ सू० ५१।

विमर्श—जिस प्रकार से त्रिविध विपाक का आधार त्रिदोषवाद है। उसी प्रकार द्विविध विपाक का आधार पञ्चमहाभूत और उनके गुण हैं। अतः इसे पञ्चभूत विपाक या गुणविपाकवाद भी कहते हैं। द्विविध विपाकवादी आचार्य नागार्जुन ने जो 'परिणामलक्षणो विपाकः' परिभाषा लिखी है। वह त्रिविधविपाकवादी आत्रेय सम्प्रदाय और द्विविध विपाक के प्रवर्तक धन्वन्तरि सम्प्रदाय के आचार्यों के मतानुसार भी यह परिभाषा सही नही है, क्योंकि निष्ठापाक तो त्रिविध अवस्थापाक के पश्चात् आद्य रसधातु में निष्पन्न होता है। अतः नागार्जुन के परिणाममात्र (आवस्थिक विपाक पच्यमानावस्था) को ही विपाक मानने की मान्यता शास्त्रानुमोदित प्रतीत नहीं होती है। निष्ठापाक के स्वरूप में चिर या अचिरकालिक पाक का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। चिर या अचिर पाक का सम्बन्ध अवस्थापाक से है। आचार्य नागार्जुन ने द्विविधविपाक के समर्थन में खदिरकाष्ठ एवं तृणादि के शीघ्र एवं विलम्ब से जलने को जो उदाहरण दिये है वे भी अवस्थापाक की मान्यता को पुष्ट करते हैं। परिणाममात्र को विपाक मानने से आहार ग्रहण से लेकर प्रपाक-अवस्थापाक परिपाक निष्ठा-पाकपर्यन्त सभी अवस्थाओं का अन्तर्भाव हो जाता है। **परिणामोऽर्थान्तरभावः जीर्यतीत्यर्थः। एवं विदाहानामपि पाकावयवत्वं युज्यते।** भा०। परन्तु अन्य आचार्य विपाक किंवा निष्ठापाक में अवस्थापाक के अन्तर्भाव के विचार से सहमत नहीं है। विपाक तो भुक्तान्नका जाठराग्नि व भौतिकाग्नियों की क्रियाओं से निष्पन्न आद्यरसधातु में चरम परिणति है। जिसका निर्णय शारीर घटकों (दोष, धातु, मल) पर होने वाले वृद्ध या क्षयमूलक कर्मों या बृंहण, लंघनादि कर्मों से होता है। इसमें चिरकालिक या अचिरकालिक पाक का कोई महत्त्व नहीं है।

चरक व सुश्रुत मत से त्रिविध द्विविध विपाक में वैमत्य और समन्वय—विपाक की परिभाषा के सम्बन्ध में विभिन्न मतों से विचार करने के बाद त्रिविध विपाक और द्विविध विपाकवाद में वैमत्य और समन्वय पर विचार करने के निमित्त इस बिन्दु पर दृष्टिपात करना है कि विपाक का अन्तिम लक्ष्य क्या है? यदि लक्ष्य की सिद्धि में दोनों वादों से सहायता मिलती है तो तीन या दो का मतभेद नगण्य हो जावेगा।। चरक का कथन है कि विपाक का ज्ञान कर्मोपलब्धि से होता है। **विपाकः कर्मनिष्ठया।** च० सू० अ० २६। विपाक की यह उपलब्धि दोष धातु मलों की वृद्धि

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

या क्षय से ज्ञात होती है (एतदर्थ आगे विपाक कर्म सन्दर्भ द्रष्टव्य है)। मधुर विपाक गुरु होता है और अम्ल, कटुविपाक लघु होता है। इस प्रकार चरक का विपाक सम्बन्धी दृष्टिकोण सर्वाङ्गीण प्रतीत होता है। चरक ने रस के अतिरिक्त गुणों के अनुसार भी विपाक का वर्णन किया है। मधुर अम्ल लवण ये तीन रस स्निग्धगुण प्रधान तथा विपाक में मधुर या गुरु होते हैं। कटु तिक्त कषाय रस रूक्ष-गुण प्रधान तथा विपाक में कटु या लघु होते हैं। सुश्रुत का द्विविध विपाक यद्यपि पञ्चमहाभूत और गुणों पर आधारित है तथापि वे गुरु या लघु विपाक के दोष-धातु-मलों पर कर्मों से चरक के विचार से सहमत हैं। **गुरुपाको वातपित्तघ्नः लघुपाकः श्लेष्मघ्नः**। सुश्रुत सू० अ० ४१। अतः दोनों महर्षियों का चाहे गुरु, लघु मानकर ही या मधुर और कटुविपाक मानकर विपाक के दोष-धातु-मलों पर वृद्धि क्षय कर्मों के आधार पर तो मतैक्य प्रतीत होता है। चरक का **विपाकः कर्मनिष्ठया** का सिद्धान्त भौतिक या गुणविपाकवादी सुश्रुत को भी स्वीकार्य है। इस कथ्य में कोई असंगति नहीं है।

यदि समन्वयात्मक दृष्टि से विचार किया जाये तो त्रिधा और द्विविध विपाक वादों में मौलिक मतभेद भी नही है। त्रिविधविपाक का आधार षड्रस एवं त्रिदोषवाद है। जबकि द्विविधविपाक महाभूतवाद एवं गुणानुसार आधारित है। स्मरणीय है कि त्रिदोषों एवं षड्रसों की निष्पत्ति का आधार तो पाञ्चभौतिक संगठन ही है फिर मतान्तर का महत्त्वपूर्ण आधार ही क्या शेष रह जाता है? दोनों वादों में सामञ्जस्य का महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह भी है कि दोनों पक्ष मधुर और कटु नाम से ही विपाक को मानते हैं। (१) **त्रिधा विपाकोद्रव्यस्य स्वाद्वम्लकटुकात्मकः**। अ० सं० सू० अ० १। (२) **द्विविध एव पाको मधुरः कटुकश्च**। सु० सू० अ० ४०। चरक ने भी मधुर विपाक को गुरु माना है, और कटु विपाक को लघु माना है। इसी प्रकार सुश्रुत और नागार्जुन ने भी मधुर विपाक को गुरु तथा कटुविपाक को लघु माना है। (१) **तयोर्मधुराख्यो गुरुः कटुकाख्यो लघुरिति**। सु० सू० अ० ४०। (२) **मधुरो गुरुत्वात् लघुत्वाच्च कटुकः**। र० वै० १ सू० ५२।

त्रिविध विपाक और द्विविध विपाक में स्पष्ट वैमत्य मात्र अम्लविपाक के सम्बन्ध में है। चरक अम्लविपाक मानता है सुश्रुत अम्ल नहीं मानता है। सुश्रुत का कथन है कि पित्त का स्वाभाविक रस कटु होता है वह विदग्ध होकर अम्ल होता है। ऐसे ही श्लेष्मा में सहज माधुर्य होता है किन्तु विदग्धावस्था में वह लवण होजाता है अतः यदि अम्ल विपाक मानें तो लवण विपाक भी मानना पड़ेगा। किन्तु सुश्रुत का यह तर्क इसलिए भी दुर्बल प्रतीत होता है कि यदि पित्त और श्लेष्मा विदग्ध होकर अम्ल एवं लवण रस की स्थिति में आजायें तो भी विपाक की निष्पत्ति का आधार तो षड्रस ही हैं न कि दोष। अतः अम्लरस जो आहार में होता है वह विपाक के अनन्तर अम्ल ही रहता है चाहे पित्त विदग्ध हो या न हो। सुश्रुत ने चरक के समान रस तो छ ही माने हैं किन्तु अम्ल रस का विपाक किस प्रकार का होगा? इस बारे में अपना अभिमत भी व्यक्त नहीं किया है। जिससे अम्ल विपाक सिद्धान्तवादी अपने पक्ष की ओर अधिक दृढ़ प्रतीत होते हैं।

विभिन्न टीकाकारों ने अम्लविपाक विषय को लेकर त्रिविध और द्विविध विपाक के मध्य सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयास भी किया है किन्तु एक निर्विवाद समाधान नहीं हो सका है। इसका मुख्य हेतु अम्ल रस की विशेष भौतिक निष्पत्ति भी है। अम्लरस उत्पति पृथिवी और अग्नि महाभूतों के उत्कर्ष से होती है। पृथिवी का विपाक गुरु और अग्नि का विपाक लघु होता है। अतः अम्ल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रस का गुरु या लघु विपाक निर्धारण भी सहज नहीं है। महर्षि चरक ने अम्ल विपाक को लघु स्वीकार किया है।

अम्ल रस का गुरु, लघु विपाक विभिन्न टीकाकारों एवं आचार्यों के मत से—

गुरु विपाक	लघु विपाक
शिवदास सेन, चक्रपाणिदत्त,	कवि० गंगाधर, हाराणचन्द्र
योगीन्द्र नाथ सेन	यादव जी, प्रियव्रत शर्मा

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि कतिपय आचार्य अम्ल रस का विपाक गुरु मानते हैं और कतिपय आचार्य लघु विपाक मानते हैं। अम्ल रस का सर्व सम्मत विपाक विनिश्चय नहीं हो सका है।

समन्वय का प्रयास—आचार्य शिवदास सेन ने आत्रेय सम्प्रदाय के त्रिविध विपाक का अनुमोदन करते हुए धन्वन्तरि सम्प्रदाय के द्विविध विपाक के साथ सामञ्जस्य करने का प्रयास किया है। तदनुसार व्रीहि (चावल) आदि मधुर द्रव्यों से पित्तदोष की वृद्धि अम्ल विपाक से ही सिद्ध होती है। उष्ण वीर्य से नहीं। इसका कारण यह है कि व्रीहि रस और विपाक में मधुर होने से भूयसाऽल्पं हि जीयते सिद्धान्तानुसार वीर्य का पराभव करने से पित्तशमन कर्म ही ज्ञात होगा, पित्तवर्धन कर्म ज्ञात नहीं होगा, किन्तु व्रीहि के कर्म निष्ठानुसार पित्तकर्त्तृत्व सिद्ध होता है, जिसका हेतु व्रीहि का अम्ल विपाक है। व्रीहि (चावल) के खाने के बाद अम्लोद्गार अम्लस्राव आदि अम्ल विपाक से प्रत्यक्ष ज्ञात होते हैं। जिसका हेतु अम्ल विपाक है, क्योंकि उष्ण वीर्य से उत्पन्न पित्त अम्ल न होकर कटु होता है।

यहां ध्यानाकर्षण का बिन्दु यह है कि चरक जिसे अम्ल विपाक मानते हैं। सुश्रुत ने उसी को उष्णवीर्य मानकर समन्वय किया है। तात्त्विक दृष्टि से दोनों मतों के अनुसार द्रव्यों के गुणकर्म में कोई अन्तर नहीं है। **यत् पुनः सुश्रुतेनाम्लपाको न मन्यते तच्चरकमतानुयायिनो न सहन्ते, यतोऽम्लपाकतयैव व्रीहिकुलत्यादीनां पित्तकर्त्तृत्वमुपपद्यते; अथ मन्यसे, व्रीह्यादेरुष्णवीर्यत्वेन तत्र पित्तकर्तृत्वं ? तदसत्, मधुरस्य व्रीहेस्तन्मते मधुरविपाकस्योष्ण वीर्यतायामपि सत्यां न पित्तकर्त्तृत्वमुपपद्यते, रसविपाकाभ्यमेकस्य वीर्यस्य बाधनीयत्वात्; किञ्चाम्लपाकत्वात् व्रीह्यादेः पित्तमम्लगुणमुत्पद्यते, किन्तूष्ण वीर्यताकृतं स्यात्तदा कटुगुणभूयिष्ठं पित्तं स्यात् दृश्यते च व्रीहिभक्षणादम्लोद्गारादिनाऽम्लगुणभूयिष्ठतैवेति .....यतो यदम्लपाकं चरको ब्रूते तत् सुश्रुतेन वीर्योष्णमिति कृत्वा समाधीयते, अनेन न कश्चिद् द्रव्यगुणे विरोधः।**

विपाक के परिणाम में वीर्य दो ही प्रकार के माने जाते हैं। शीत और उष्ण वीर्य। चरक अम्ल विपाक को उष्ण वीर्य मानता है। **शीतं वीर्येण यत् द्रव्यं मधुरं रसपाकयोः। तयोरम्लं यदुष्णं च यद् द्रव्यं कटुकं तयोः।** च० सू० अ० २६। अतः वीर्य के परिणाम में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। अतः सुश्रुत के अम्ल विपाक विरोधी दृष्टिकोण का कोई विशेष महत्त्व भी नही रहता है।

द्रव्यसंग्रहकार ने त्रिविध रस विपाकवाद और भौतिक गुण विपाकवाद का युक्तिपूर्वक सामञ्जस्य किया है। **कटुर्विपाकः शुक्रघ्नो बद्धविड् वातलो लघुः। स्वादुर्गुरुः सृष्टमलो विपाकः कफशुक्रलः॥ पाकोऽम्लः सृष्टविण्मूत्रः पित्तकृच्छ्रुक्रनुल्लघुः।** आधुनिक शारीर क्रिया विज्ञान से भी त्रिविध विपाक की पुष्टी होती है। तदनुसार आहार के पिष्टसार, कार्बोहाइड्रेट्स पदार्थों के पाचन के परिणामस्वरूप ग्लुकोज नामक मधुर पदार्थ (मधुर विपाक) तथा प्रोटीनों के पचन के अन्तिम

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिणामस्वरूप एमाइनो एसिड नामक अम्ल पदार्थ (अम्ल विपाक) तैयार होते हैं। स्निग्ध पदार्थों के पचन के परिणामस्वरूप अन्त में फेटीएसिड्स और ग्लिसरोल कटु रस पदार्थ (कटु विपाक) बनते हैं।

विपाक का तरतम स्वरूप—द्रव्यगत रसों के मधुरत्व, मधुरतरत्व, मधुरतमत्व भेद से तथा इसी प्रकार शेष रसों के तरतम भेद से विपाक की या विपाक के लक्षणों की निष्पत्ति होती है। एतदर्थ कविराज गंगाधर का कथन है कि मधुर रस वाले द्रव्यों का मधुर विपाक मल मूत्र की प्रवृत्ति और कफ शुक्र की वृद्धि में श्रेष्ठ होता है। लवण रस वाले द्रव्यों का मधुर विपाक मल मूत्र की प्रवृत्ति एवं कफ शुक्र की वृद्धि में अल्प होता है। अम्ल रस का अम्ल विपाक मल मूत्र की प्रवृत्ति एवं कफ शुक्र के नाश में मध्यम होता है। तिक्त रस द्रव्यों का कटु विपाक मल मूत्र के विबन्ध करने में, शुक्रक्षय में और वातोत्पत्ति में अल्प होता है। कटु द्रव्यों का कटु विपाक मल मूत्र विबन्ध करने में, शुक्रक्षय और वायु उत्पन्न करने में मध्यम होता है। कषाय द्रव्यों का कटु विपाक, मल मूत्र विबन्ध करने में शुक्रक्षय और वायु के उत्पन्न करने में प्रवर होता है। इसी प्रकार द्रव्यों के रूक्ष, स्निग्ध, गुरु, लघु आदि गुणों के तारतम्य भेद से भी विपाक के कर्मों का भेद स्वरूप जानना चाहिए। **तेन मधुररस-विपाको मधुरः श्रेष्ठो विण्मूत्रमोक्षे कफशुक्रवृद्धौ च, लवणरसविपाको मधुरस्त्वल्पसृष्टविण्मूत्रः कफशुक्रलश्चाल्पः अम्लश्च मध्यमसृष्टविण्मूत्रः शुक्रनाशनश्च मध्यमः, तिक्तकटुकषायाणां तिक्तरसविपाकः कटुरल्परूपेण शुक्रहा बद्धविण्मूत्रो वातलश्च, कटुरसविपाकः कटुर्मध्यमरूपेण, कषायरसविपाकः कटुरुत्तमरूपेणेति। एवं द्रव्याणां स्नेहरौक्ष्यादिगुणवैशेष्यादल्पमध्यमश्रेष्ठतामुपलक्ष्य ब्रूयात्॥** गंगाधर।

इसी प्रकार रसों में भी स्निग्ध, रूक्ष, गुरु, लघु, शीतोष्ण गुणों के आधार पर भी विपाक के तरतम भेद होते हैं। एतदर्थ महर्षि चरक ने अपने विचार स्पष्ट अभिव्यक्त किये हैं।

रौक्ष्यात् कषायो रूक्षाणामुत्तमो मध्यमः कटुः। तिक्तोऽवरस्तथोष्णानामुष्णत्वाल्लवणः परः॥ मध्योऽम्लः कटुकश्चान्त्यः स्निग्धानां मधुरः परः। मध्योऽम्लोलवणश्चान्त्यो रसः स्नेहान्निरुच्यते॥ मध्योत्कृष्टावराः शैत्यात् कषायस्वादुतिक्तकाः। स्वादुगुरुत्वादधिकः कषायाल्लवणोऽवरः॥ अम्लात् कटुरसः तिक्तो लघुत्वादुत्तमोत्तमः। केचिल्लघुनामवरमिच्छन्ति लवणं रसम्। गौरवे लाघवे चैव सोऽवरस्तूभयोरपि। च० सू० अ० २६।

इस प्रकार विपाक की दृष्टि से विचार करने पर रस और गुणों के आधार पर अवर मध्यम उत्तम द्रव्यों के गुण वैशिष्ट्य का ज्ञान होता है। **विपाकलक्षणस्याल्पमध्यभूयिष्ठतां प्रति। द्रव्याणां गुणवैशेष्यात्तत्र तत्रोपलक्षयेत्।** च० सू० अ० २६। अतः समान रस वाले द्रव्यों में केवल रसानुसार ही गुणों का निश्चय नहीं होता है अपितु द्रव्यों के गुणों का निश्चय नियत द्रव्याश्रित गुणों के अनुसार होना चाहिए। **तस्माद्रसोपदेशेन न सर्वं द्रव्यमादिशेत्। दृष्टं तुल्यरसेऽप्येवं द्रव्ये द्रव्ये गुणान्तरम्।** चरक सूत्र अ० २६।

विपाक की उपलब्धि—खाए हुए द्रव्यों का जाठराग्नि संयोग (अवस्था पाकों के बाद) से पाक होने पर रसों की जो अन्तिम परिणति होती है। उसका ज्ञान दोष वृद्धि क्षय, धातु वृद्धि क्षय, मल वृद्धि क्षय कर्मों को देखकर अनुमान द्वारा होता है। विपाक सर्वदा अप्रत्यक्ष होता है। **विपाकः कर्मनिष्ठया।** च० सू० अ० २६। **कर्मनिष्ठयेति कर्मणो निष्ठा निष्पत्तिः कर्मनिष्ठा कर्मसमाप्तिः।**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रसोपयोगे सति योऽन्त्याहारपरिणामकृतः कर्मविशेषः कफशुक्राभिवृद्ध्यादि लक्षणः, तेन विपाको निश्चीयते। एतेन विपाको नित्यपरोक्षः, तत्कार्येणानुमीयते। च० द०।

विपाक के गुण कर्म

महर्षि चरक ने विपाक के गुण कर्मों का स्पष्ट विवेचन किया है। तदनुसार मधुराम्ल लवण रस स्निग्ध होने से प्रायः वात, मूत्र, पुरीष, प्रवृत्ति कर होते हैं। कटु तिक्त कषाय रस रूक्ष होने से प्रायः वात-मूत्र-पुरीष का विबन्धकर होते हैं। कटु विपाक क्षुक्रक्षयकर, मलमूत्र विबन्धकर और वायु की उत्पत्ति करता है। अम्ल विपाक मल, मूत्र सृष्टकर (मलमूत्र प्रवृत्तिकारक) शुक्रक्षयकर्त्ता एवं पित्तवर्धक होता है। मधुर विपाक मल, मूत्र सृष्टकर और कफ शुक्रवर्धक होता है। मधुर विपाक गुरु तथा अम्ल कटु विपाक लघु होता है। (१) **मधुरो लवणाम्लौ च स्निग्धभावात् त्रयो रसाः। वात-मूत्रपुरीषाणां प्रायो मोक्षे सुखामताः॥ कटुतिक्तकषायास्तु रूक्षभावात् त्रयो रसाः। दुःखाय मोक्षे दृश्यन्ते वातविण्मूत्ररेतसाम्॥ शुक्रहा बद्धविण्मूत्रो विपाको वातलः कटुः। मधुरः सृष्टविण्मूत्रो विपाकः कफशुक्रलः। पित्तकृत् सृष्टविण्मूत्रः पाकोऽम्लः शुक्रनाशनः। तेषां गुरुः स्यान्मधुरः कटुकाम्लावतोऽन्यथा॥** च० सू० अ० २६। (२) **गुरुलघुविपाकावुक्तगुणौ। ··· गुरुपाको वातपित्तघ्नः, लघुपाकः श्लेष्मघ्नः। ····गुरुपाकः सृष्टविण्मूत्रतया कफोत्क्लेशेन च, लघुर्बद्धविण्मूत्रतया मारुतकोपेन च॥** सु० सू० अ० ४१। (३) मधुर, अम्ल और कटु विपाक क्रमशः मधुर, अम्ल और कटु रसों के समान कर्म वाले होते हैं। **रसे रसौतुल्यफलः।** अ० हृ० सू० अ० ९। द्रव्य गुण संग्रहकार ने मधुर, अम्ल, कटु विपाक तथा गुरु लघु विपाक का दोष धातु मलों के कर्मों से समन्वय किया है। **कटुर्विपाकः शुक्रघ्नो बद्धविड् वातलो लघुः। स्वादुर्गुरुः सृष्टमलो विपाकः कफशुक्रलः। पाको ऽम्लः सृष्टविण्मूत्रः पित्तकृच्छुक्रनुल्लघुः।**

रस और विपाक में अन्तर—(१) लक्षण भेद से–जिह्वा ग्राह्य गुण (आस्वाद) को रस कहते हैं तथा परिणाम लक्षण गुण की विपाक संज्ञा है। (२) **काल भेद से**–रस का ज्ञान जिह्वा निपात मात्र से शीघ्र हो जाता है और विपाक का ज्ञान जाठराग्नि द्वारा पाचन के बाद होने से विलम्ब से होता है। (३) **कर्माधिष्ठान भेद से**–विपाक जन्य कर्मों का प्रभाव शारीर घटकों पर सीमित होता है जबकि रसों के प्रयोग से दैहिक लक्षणों के साथ साथ आह्लादन, मनःप्रसादन प्रभृति मानसिक लक्षण भी होते हैं। उदाहरणतया किसी वनस्पति का अन्तिम परिणाम फल निष्पत्ति होता है। उसी प्रकार भुक्त आहारौषध द्रव्यों का अन्तिम परिणाम विपाक होता है।—षड्रसों का परिणाम पुष्पवत् देहाह्लादनादि लक्षण नहीं होता है अपितु फलसदृश वृष्यत्व, लघुत्वादि रूप में होता है। (४) **कर्म भेद से**–षड्रसों का ज्ञान जिह्वा द्वारा प्रत्यक्ष होता है और जिह्वा, मुख, तालु, कण्ठ, गल, कपोलादि पर स्थानिक कर्म भी होता है किन्तु विपाक का कार्य सार्वाङ्गिक रूप से दोष धातु-मल एवं स्रोतों में होता है।

विपाक के विपर्यास हेतु—द्रव्य प्रमाण, संस्कार, सात्म्य, अग्नि का बलाबल, देश, काल, संयोग, पाक विशेष से गुरु द्रव्यों का लघु विपाक और लघु द्रव्यों का गुरु विपाक हो जाता है। **द्रव्यप्रमाणसंस्कारसात्म्याग्निबलाबलदेशकालसंयोगपाकविशेषैर्विपाकविपर्यासः।** र०वै०सू०अ० ४, ५५।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(१) द्रव्य प्रमाण से—गुरु विपाकी दुग्ध अल्प मात्रा में हो तो शीघ्र पचता है और लघु विपाक शालि-भात अति प्रमाण में खाया जावे तो विलम्ब से पचता है। **द्रव्यप्रमाणाद् विपर्यासः गुरुविपाकं क्षीरमल्पं लघु पच्यते, लघ्वतिप्रमाणाद् गुरु पच्यते यथा-शालिरतिभुक्तः।** भाष्य।

(२) संस्कार से—गुरु विपाकी दुग्ध का दीपनीय द्रव्यों से संस्कार करने पर शीघ्र पचता है। **संस्काराद् गुरुविपाकं द्रव्यं दीपनीयसंस्काराल्लघुविपाकं भवति।**

(३) सात्म्य से—दुग्ध सात्म्य व्यक्ति को दुग्ध शीघ्र पचता है। **सात्म्यतः-क्षीरोचितानां क्षीरं लघुविपाकं भवति।** भाष्य।

(४) अग्नि बलाबल से—तीक्ष्णाग्नि पुरुषों में गुरु पदार्थ भी शीघ्र पचता है। **अग्नि-बलात्-तीक्ष्णाग्नीनां गुरुविपाकं लघुविपाकं भवति।** भा०।

(५) देश विशेष से—जांगल देश में गुरुपाकी द्रव्य भी प्रायः शीघ्र पचते हैं और आनूप देश में लघु विपाकी द्रव्य भी विलम्ब से पचते हैं। **देशविशेषात्-जाङ्गलेषु गुरुविपाकाश्च लघवो भवन्ति प्रायशः, आनूपेषु लघुविपाकाश्च गुरुविपाका भवन्ति।** भा०।

(६) काल विशेष से—ग्रीष्म और वर्षा में लघु द्रव्य भी विलम्ब से पचते हैं। हेमन्त में गुरु द्रव्य भी शीघ्र पचते हैं। **कालविशेषात्-ग्रीष्मे लघवो भवन्ति गुरवः, हेमन्ते गुरवः अपि लघवः।** भाष्य।

(७) संयोग विशेष से—शुण्ठी संयोग से साधित गुरु विपाकी दुग्ध भी शीघ्र पचता है। **संयोगविशेषात्-क्षीरं शुण्ठीसंयोगाल्लघुविपाकं भवति।**

(८) पाक विशेष से—जला हुआ तथा अत्यन्त श्रृत दुग्ध या अधपका लघु द्रव्य भी विलम्ब से पचता है और सम्यक् पक्व गुरु दुग्ध शीघ्र पचता है। **पाकविशेषात्-दुग्धं विदग्धं वा द्रव्यमुपयुक्तं गुरु विपच्यते लघ्वपि क्षीरं गुर्वपि श्रृतं लघु भवतीति।** भा०।

रस वैशेषिक सूत्रकार ने ये जो उदाहरण दिये हैं। अवस्था पाक के लिए सार्थक हैं। निष्ठा पाक के लिए नहीं, क्योंकि चिर या अचिर, गुरु या लघुपाक से निष्ठापाक के स्वरूप में अन्तर नहीं आता है। रस वै० सूत्रकार परिणाम को ही विपाक मानते हैं जो अवस्था पाक का द्योतक है।

विपाक प्राधान्यवाद—विपाक प्राधान्यवादी आचार्यों की मान्यता है कि द्रव्य, रस, गुण और वीर्य प्रधान नहीं है किन्तु विपाक प्रधान होता है। इस कथन में उपपत्ति यह है कि भुक्त आहारौषध द्रव्यों का जाठराग्नि से सम्यक् पाक हो तो वे धातु साम्य गुण करते हैं एवं जाठराग्नि के मान्द्य से भुक्त आहारौषध द्रव्यों का मिथ्यापाक होने से धातु वैषम्य या विकार रूप दोष उत्पन्न होता है। **नेत्याहुरन्ये, विपाकः प्रधानमिति। कस्मात्? सम्यङ्मिथ्याविपाकत्वात्, इह सर्वद्रव्याण्यश्यवहृतानि सम्यङ्मिथ्याविपक्वानि गुणं दोषं वा जनयन्ति।** सु० सू० अ० ४०। विभिन्न टीकाकारों ने सम्यक् और मिथ्या विपाक का अर्थ इस प्रकार किया है। द्रव्यगुणानुरूप विपाक सम्यग्विपाक कहा जाता है। जैसे कटुरस वाले चित्रक का कटु विपाक होता है। द्रव्य के गुण से विपरीत विपाक जैसे पिप्पली का कटु रस होने पर भी जो मधुर विपाक होता है वह मिथ्या विपाक कहलाता है। सम्यग्विपक्व चित्रक रसगुणानुरूप अग्निदीपन, मल मूत्र बद्ध कर्म करता है। मिथ्या विपक्व पिप्पली अपने रस गुण के

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विपरीत, शुक्रवर्धन, क्लेदजनन कार्य करती है। **सम्यक् विपक्वानि गुणं, मिथ्याविपक्वानि दोषं जनयन्ति। सम्यक्पाकः समेनाग्निना, मिथ्यापाकस्तु हीनातिरूपो यथाक्रमं मन्देन तीक्ष्णेन वाऽग्निना क्रियते। × किंवा सम्यक्पाको द्रव्यानुगुणः पाकः यथा चित्रकः × मिथ्यापाको तद्द्रव्यगुणविसदृशः पाकः यथा पिप्पल्यः। तेन × यथोक्तं गुणं दोषं वा करोति। च० द०। अत्र द्रव्यगुणानुरूपो निष्ठापाकः सम्यग्विपाक उच्यते, तद्विपरीतस्तु मिथ्याविपाकः। तयोराद्यः कटुकश्चित्रकः पाकेऽपि कटुक इत्यादौ, द्वितीयस्तु कटुका पिप्पली पाके मधुरा इत्येवमादौ बुभुत्सितव्यः। गुणं दोषं वा इति वा शब्दश्चार्थे, सम्यग्विपक्वानि मिथ्याविपक्वानि वा गुणं दोषं च जनयन्ति, मिथ्याविपक्वा पिप्पली च शुक्रवर्धनादिरूपं गुणं प्रक्लेदजननादिरूपं दोषं च जनयति। हा०।**

रस वैशेषिकसूत्रकार ने विपाक की प्रधानता इस प्रकार व्यक्त की है। (१) दोष धातु मलों की साम्यावस्था या क्षय वृद्धि विपाकाधीन होने से विपाक प्रधान होता है। **तन्निमित्तत्वात् प्रशमन-वर्धनयोः।** र० वै० १ सू० १४२। (२) विपाक के द्वारा ही शरीर में धातु निर्माण होता है। **धातूपदेहात्।** सू० १४३। (३) सभी आहारौषध द्रव्य अपने गुण दोषों के लिए विपाक की अपेक्षा करते हैं। सम्यक् पक्वाहारारौषध गुणकारी तथा असम्यक् पक्व दोषकारी होता है। **विपाकापेक्षत्वा-दितरेषां, प्रायशो विपाकसाद्गुण्ये च गुणवतामप्यदोषात्।** सू० १४४॥ (४) शास्त्र प्रमाण से विपाक प्रधान होता है। **शास्त्रप्रामाण्यात्।** १४६॥ (५) विपाक के अभाव में चिकित्सा संभव नहीं है। **किञ्च तदभावे चिकित्साभावात्।** १४७॥ (६) आयुर्वेद का प्रयोजन पुरुष को आरोग्य प्रदान करना है और यह प्रयोजन सम्यग्विपाक से सिद्ध होता है। **आरोग्यप्रयोजनत्वादायुर्वेदस्य, सम्यग्विपाके तदुपलब्धेः।** भाष्य।

□□

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वीर्य विज्ञानीय षष्ठ परिच्छेद

वीर्य शब्द की निरुक्ति—वीर्य शब्द 'वीर विक्रान्तौ' धातु से निष्पन्न होता है। अतः **वीरयते विक्रान्तः कर्म समर्थो भवति अनेन इति वीर्यम्।** कर्म करने में समर्थ होने के रूप पराक्रम या विक्रम को वीर्य मानते हैं। अमरकोषकार ने **'उत्साहोऽध्यवसायः स्यात् सवीर्यातिशयोक्तिभाक्, वीर्यं तेज-प्रभावयोः।** उत्साह, अध्यवसाय, अतिशक्ति, तेज, प्रभाव को वीर्य कहा है।

वीर्य का लक्षण—परिभाषा–द्रव्य जिस विशिष्ट शक्ति से कर्म सम्पादन में सक्षम होता है उसे वीर्य कहते हैं। १) **वीर्यन्तु येन या क्रियते क्रिया। नावीर्यं कुरुते किंचित्सर्वा वीर्यकृता क्रिया।** च०सू०अ० २६। **येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम्।** च० सू० अ० २६, सु० सू० अ० ४१। (३) **वीर्यं द्रव्यस्य तज्ज्ञेयं यद्योगात् क्रियते क्रिया। नावीर्यं कुरुते किंचित्सर्वा वीर्यकृता हि सा।** अ० सं० अ० १७। (४) **शक्तिमात्रं तु वीर्यस्यादिति केचिद् बुधा विदुः। तन्मते द्रव्यरसयोः पाकस्य च गुणस्य च। मृद्वादेः स्वक्रियोत्पादे शक्तिवीर्यमिति स्थितिः।** (५) **वीर्यतः कर्मसामर्थ्यं द्रव्याणां भिषजो विदुः।**

द्रव्य जिस शक्ति (गुण) विशेष से (रस, विपाक, प्रभाव के भी अतिरिक्त) अपनी क्रिया या कर्म सम्पादन करता है उसे वीर्य कहते हैं। **रसविपाकप्रभावातिरिक्ते प्रभूतकार्यकारिणी गुणे वीर्यम् इति संज्ञा।** च० द०। द्रव्य के क्रिया-कर्म सम्पादन अर्थ में यह शंका उत्पन्न होती है कि द्रव्य रस, गुण, विपाक, प्रभाव से कार्य करता है। 'किंचिद्रसेन कुरुते कर्म, वीर्येण चापरम्। द्रव्यं गुणेन, पाकेन, प्रभावेण च किंचन'। अतः सभी वीर्य की परिभाषान्तर्गत समाविष्ट हो जावेंगे, किन्तु इस शंका का समाधान टीकाकारों ने बड़ी सूझ-बूझ से किया है और कहा है कि वीर्य के अतिरिक्त रस, गुण, विपाक, प्रभाव उत्कृष्ट शक्ति से रहित होते हैं। अतः इन्हें वीर्य नहीं कहा जा सकता है। **रसादयो-रस वीर्य-विपाक-गुणान्तराणि यद्यपि स्वां स्वां क्रियां कुर्वन्ति तथापि गुर्वाद्युक्तप्रकार वैपरीत्याद् वीर्यसंज्ञया न परामृश्यन्ते।.....तेन कदाचिदपि वीर्याख्यां लभन्ते।** इन्दु। वीर्य शक्ति स्वरूप से (उत्कृष्ट गुण) द्रव्य में आश्रित होता है। वह रस गुण विपाक प्रभाव से भिन्न होता है। वीर्य से द्रव्यों के कर्म सम्पादन होते हैं। आचार्य शिवदास सेन ने वीर्य की स्थिति द्रव्य के सार भाग में मानी है। जो पूर्व-वर्ती आचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की अपेक्षा भिन्न एक नयी महत्त्वपूर्ण मान्यता है।" **वीर्य शक्तिः, सा च पृथिव्यादीनां भूतानां यः सारभागस्तदतिशयरूपा बोध्या।।** शि०। इसी सार भाग को वर्तमान आचार्य Active principle वीर्य मानते हैं। डा० बालकृष्ण अमरजी पाठक ने वीर्य को Active principle, डा० चोपड़ा ने Ultra chemical action of drugs तथा डा० घाणेकर ने Biochemical action माना है। किन्तु आयुर्वेद के मत से Active principle को ही वीर्य मानना निर्विवाद विचार नहीं है क्योंकि सार भाग होने से वह द्रव्य ही मानना चाहिए। जबकि वीर्य भी द्रव्य का गुण (उत्कृष्ट शक्ति गुण) होने से द्रव्याश्रित ही होता है। अतः द्रव्य के सारभाग की

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्कृष्ट शक्ति (गुण) को वीर्य मानना उचित है। किंवा द्रव्याश्रित गुणसार, शक्युत्कर्ष, भूतप्रसादातिशयत्व को समवेत रूप से वीर्य मानना सर्वथोचित सिद्धान्त है।

प्राच्य प्रतीच्य द्रव्यगुण शास्त्रियों ने आप्तोपदेश, अनुमान तथा प्रत्यक्ष ज्ञान के अनवरत प्रयोगों से विभिन्न वानस्पतिक, जाङ्गम द्रव्यों के एक एक अङ्गों या अनेक अङ्गों की उत्कृष्ट शक्ति (गुण) का ज्ञान कर कार्मुक शक्ति सम्पन्न प्रयोज्याङ्गों का प्रतिपादन किया है। अन्य शेष अङ्गों की चिकित्सोपयोगिता न होने से विशेष विचार नहीं किया है। उदाहरण के लिए हरीतकी, विभीतकी, आमलकी, मदनफल के वृक्षों में कार्मुक शक्ति फलों में होती है अन्य मूल, त्वचा, पत्रादि अवयवों में नहीं। अतः इनके फलों का ही चिकित्सा में प्रयोग होता है। दशमूल के घटक द्रव्यों, शतावरी, अश्वगंधादि के मूलभाग में वीर्याधिष्ठित होता है। अतः इनके मूल का प्रयोग होता है। दारचीनी, लोध्र, त्रिवृत्, अशोक, अर्जुनादि की त्वचा में, रास्ना, पत्रज, सनाय, तालीसपत्र के पत्रों में; धातकी, नागकेशर, शतपत्री के पुष्पो में, आत्मगुप्ता, बाकुची, करञ्ज, गुञ्जा, एरण्ड, जयपाल के बीजों में भेषज कार्मुक शक्ति होती है। प्रत्यक्षतया यह भी देखा जाता है कि अधिक काल तक किसी द्रव्य या द्रव्य की घृत, तैल, चूर्ण, वटी आदि कल्पनाओं को रख देने से या कृमि, फफूंद या आतप, शीत, वर्षा के प्रभाव (सम्यक् संरक्षण के अभाव में) से द्रव्य की कार्मुक शक्ति नष्ट हो जाती है किंवा अभिप्सित लाभ नहीं होता है। ऐसे द्रव्य या कल्पना को हीन वीर्य कहा जाता है। शास्त्रकारों ने भी द्रव्यों एवं उपर्युक्त विभिन्न कल्पनाओं की अवधि १–२ वर्ष तक निर्दिष्ट की है। स्मरणीय है कि अमुक अवधि के बाद भी द्रव्य का या कल्पना का स्थूलस्वरूप बना रहता है। उनमें रस, गुणादि पदार्थ भी यत्किंचिदंश में स्थित रहते हैं किन्तु द्रव्य स्थित वीर्य नष्ट हो जाता है। अतः शास्त्रकारों ने नवीन द्रव्य या तज्जनित कल्पना का चिकित्सार्थ प्रयोग करने का निर्देश दिया है। **द्रव्याण्यभिनवान्येव प्रशस्तानि क्रियाविधौ**। इस प्रकार (१) विशिष्टाङ्गो का प्रयोग करना। (२) द्रव्यों के विभिन्न अङ्गों का विभिन्न ऋतुओं में संग्रह करना। (३) विभिन्न कल्पनाओं से प्रयोग करना। (४) संरक्षण विधियों एवं द्रव्य संयोगादि का विचार द्रव्य स्थित वीर्य को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए ही होता है।

वीर्य के भेदों की तालिका पृष्ठाङ्क ६९ पर द्रष्टव्य है।

गुण वीर्यवाद—चरक और सुश्रुत ने द्रव्याश्रित कर्म कर्त्तृत्व उत्कृष्ट शक्ति को ही वीर्य माना है। चक्रपाणिदत्त ने प्रस्तुत प्रसङ्ग की टीका में लिखा है कि वीर्य शब्द को पारिभाषिक वीर्य नहीं मानते हैं, किन्तु शक्तिमात्रवचन मानते है। इससे प्रभाव, गुण, विपाकादि अपने अपने कार्य करते हुए शक्ति पर्याय रूप वीर्य संज्ञा प्राप्त करते हैं। **१—वीर्यं तु क्रियते येन या क्रिया। नावीर्यं....। अयं च वीर्यशब्दः पारिभाषिकवीर्यवचनो न भवति, किन्तु शक्तिमात्रवचनः, तेन प्रभावरसादयः सर्व एव स्वकार्यं कुर्वन्तः शक्तिपर्यायरूपवीर्यवाच्या इति ज्ञेयाः।** च० द०। महर्षि सुश्रुत एवं आचार्य वाग्भट्ट उत्कृष्ट शक्ति सम्पन्न गुणों को वीर्य मानते हैं। जब शीतोष्ण गुरुलघ्वादि बीस गुणों में से गुरु लघु शीतोष्णादि आठ गुण शक्ति सम्पन्न (शक्ति उत्कर्ष) होते हैं तब इनकी संज्ञा वीर्य होजाती है। **१—गुर्वाद्या वीर्यमुच्यन्ते शक्तिमन्तो ऽन्यथा गुणाः। परसामर्थ्यहीनत्वाद् गुणा एवेतरे गुणाः॥** अ० सं० सू० अ० १७। **२—तैरपि चैवमतिप्रकृष्टशक्तियुक्तानामशेषौषधगुणसारभूतानामष्टानामेव गुर्वादीनां वीर्यसंज्ञा विशिष्टाम्नायविहिता ऽपि लौकिकीति समुद्भाव्यते, तथा हि तया रसविपाकगुणान्तरविजयिनो**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

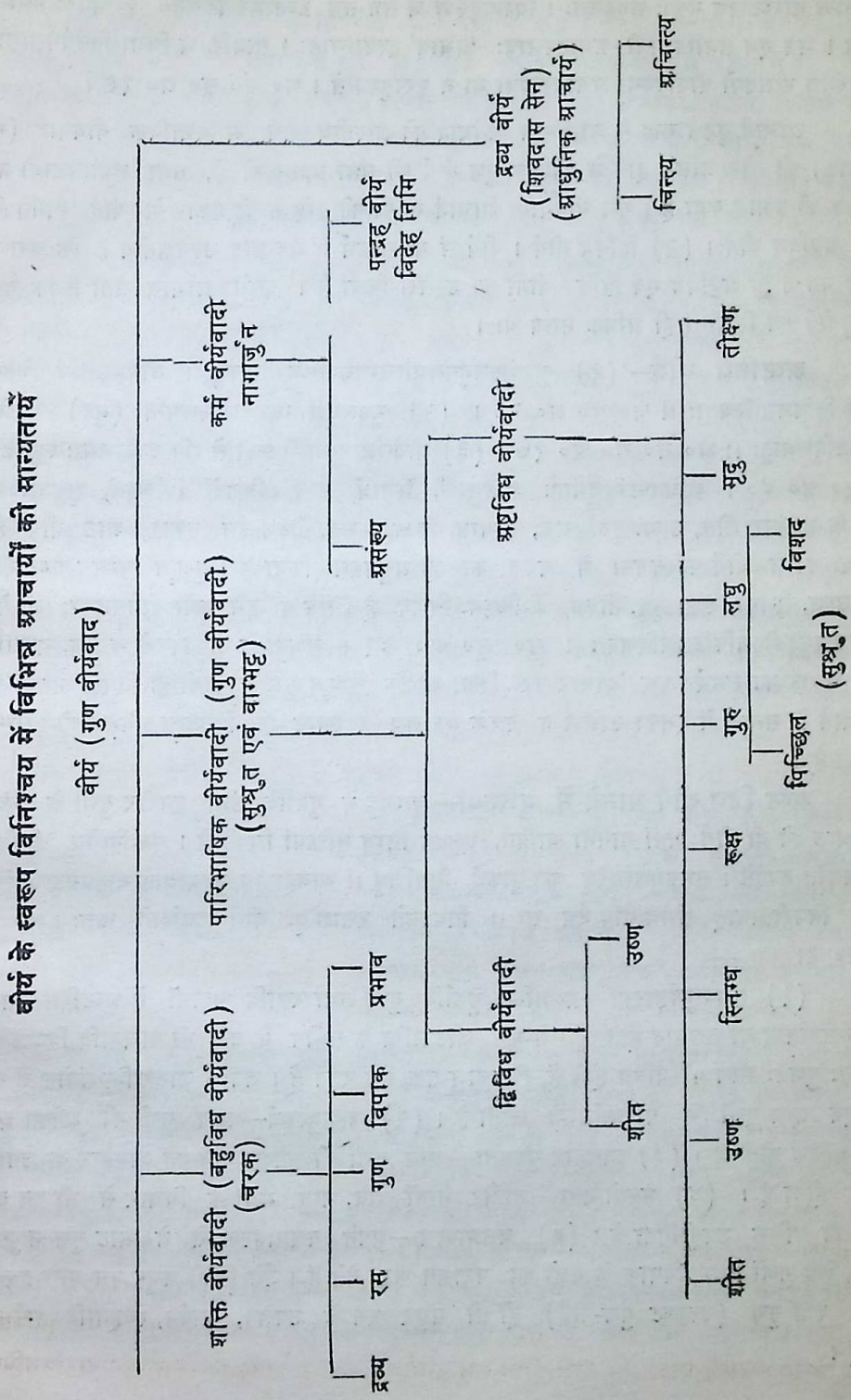

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भूयांसश्च वरिष्ठाश्च गुणाः संगृहीताः। विशेषवृत्त्या च तत्र तत्र द्रव्यस्वरूपकथनेन व्यवहारः प्रवर्तितो भवति। अत एव सर्वातिशायी द्रव्यस्वभावः 'प्रभाव' इत्याम्नातः। सत्यपि च क्रिया निर्वर्तनसामान्ये तद्विपरीता रसादयो वीर्याख्यया प्रभावसंज्ञया वा न परामृश्यन्ते। अ० सं० सू० अ० १९।

आचार्य वृद्धवाग्भट्ट ने शक्तिमात्र वीर्यवाद को शास्त्रीय तथा पारिभाषिक वीर्यवाद (गुण वीर्यवाद) को लोक प्रसिद्ध होने से लौकिक गुण वीर्य की संज्ञा प्रदान की है, तथा सर्वातिशायी द्रव्य स्वभाव को प्रभाव कहा है। गुण वीर्यवादी आचार्य सं या की दृष्टि से दो प्रकार के वीर्य मानते हैं। (१) अष्टविध वीर्य। (२) द्विविध वीर्य। वीर्य सं या सन्दर्भ में यह बात उल्लेखनीय है कि चरक ने एकीय मत से ही अष्टविध एवं द्विविध वीर्यों का उल्लेख किया है। इससे आभास होता है कि चरक को बहुवीर्य का सिद्धान्त ही अधिक मान्य था।

अष्टविध वीर्य—(१) **मृदुतीक्ष्णगुरुलघुस्निग्धरूक्षोष्णशीतलम्। वीर्यमष्टविधं केचित्, केचिद् द्विविधमास्थिताः॥** च० सू० अ० २६। (२) **गुरुलघुस्निग्धरूक्षतीक्ष्णमन्द (मृदु) शीतोष्ण भेदेनाष्टविधमाहुः॥** अ० सं० सू० अ० १७। (३) **वीर्यसंज्ञा गुणा ये ऽष्टौ ते ऽपि द्रव्याश्रयाः स्मृताः॥** सु० सू० अ० ४०। **केचिदष्टविधमाहुः शीतमुष्णं, स्निग्धं, रूक्षं, विशदं, पिच्छिलं, मृदु तीक्ष्णं।** चरक के अनुसार शीत, उष्ण, गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण इस प्रकार आठ वीर्य होते हैं। वाग्भट्ट ने वीर्य परिगणना में चरक का ही अनुसरण किया है। सुश्रुत सम्मत अष्ट वीर्य-शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छिल, विशद हैं। **तत्र य इमे गुणा वीर्यसंज्ञकाः शीतोष्ण स्निग्धरूक्षमृदुतीक्ष्णपिच्छिलविशदाः॥** सु० सू० अ० ४१। सुश्रुत के टीकाकारों डल्हण, चक्रपाणि ने इस अन्तर का समर्थन इस आधार पर किया है कि सुश्रुत गुरु, लघु दो ही विपाक मानते हैं। अतः वीर्य के सन्दर्भ में इनका उल्लेख न करके गुरु लघु के स्थान पर पिच्छिल, विशद वीर्य मानना समुचित है।

अष्ट विध वीर्य मानने में युक्तियाँ—वाग्भट्ट ने गुर्वादि बीस शारीर गुणों के समुदाय में से आठ को ही वीर्य क्यों मानना चाहिए, एतदर्थ निम्न युक्तियां लिखी हैं। **गुर्वादिष्वेव वीर्याख्या तेनान्वर्थेति वर्ण्यते। समग्रगुणसारेषु शक्त्युत्कर्ष विवर्त्तिषु॥ व्यवहाराय मुख्यत्वात् बह्वग्रग्रहणादपि। अतश्च विपरीतत्वात् संभवत्यपि नैव सा॥ विवक्ष्यते रसाद्येषु, वीर्यं गुर्वादयो ह्यतः।** अ० हृ० सू० अ० ९।

(१) **समग्रगुणसारता**—द्रव्याश्रित गुर्वादि गुणों तथा रसादि पदार्थों में अष्टविध गुण ही अधिक सारवान् या बलवान् होते हैं। ये गुण जाठराग्नि के संयोग के बाद भी पाचनादि क्रियाओं से स्वरूपतः गुणतः अल्प परिवर्तित होते हैं, चिरकाल तक बने रहते हैं। जबकि जाठराग्नि संयोग के बाद रसों एवं अन्य गुणों में परिवर्तन हो जाता है। (२) **शक्त्युत्कर्ष**—अन्य गुणों की अपेक्षा इनमें शक्ति अधिक होती है। (३) **व्यवहार मुख्यता**—अन्य गुणों की अपेक्षा इन का व्यवहार या उपयोग अधिक होता है। (४) **उपयोगिता**—शारीर भावों--दोष, धातु, मलों के विचार से भी इन आठ गुणों की अधिक उपयोगिता है। (५) **बलप्राबल्य**—अपने बलप्राबल्य से ये आठ गुण मधुरादि षड्रसों, शेष गुणों तथा विपाक के गुणों का पराभव कर देते हैं। जैसे किसी मधुर रस वाले द्रव्य में तीक्ष्ण, रूक्ष गुण (उत्कृष्ट गुण-वीर्य) हों तो मधुर रस के उपलेप, मार्दव, स्नेहनादि कर्म नहीं होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अष्टविध वीर्य मानने में एक उपपत्ति यह कि इन आठ गुणों के अतिरिक्त अन्य पिच्छिल, विशदादि गुण प्रायः रस, विपाक के विपरीत कार्य नहीं करते हैं। अतः इनके कर्मों का ज्ञान उनके रसानुसार ही हो जाता है। जबकि ये गुरु, लघु आठ गुण अपने उत्कृष्ट बल-शक्ति से रस, विपाक आदि को अभिभूत करके भी कार्य करते हैं। जैसे महत्पंचमूल रस में तिक्त, कषाय, विपाक में कटु होता है। उष्ण गुण (वीर्य) दोनों को अभिभूत करके वात का शमन करता है। जबकि रस, विपाकानुसार महत्पंचमूल वातकारक होना चाहिए। सुश्रुत ने आठगुणों को बलप्रधान से ही वीर्य कहा है। **एतानि खलु वीर्याणि स्वबलगुणोत्कर्षाद्रसमभिभूयात्मकर्म दर्शयन्ति।** सु० सू० अ० ४०।

द्विविध वीर्य—चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट तीनों ने ही अष्टविध वीर्य का निरूपण करने के बाद द्विविध वीर्य का भी वर्णन किया है। तथा इनके अध्ययन से ऐसा विदित होता है कि इन मनीषियों ने जहाँ पर किसी एक औषध या योग के वीर्य का वर्णन किया है। वहां पर प्रधानतः केवल शीत वीर्य, उष्ण वीर्य का ही उल्लेख किया है। निघण्टु काल में तो निघण्टुकारों ने द्रव्यों को शीतवीर्य या उष्णवीर्य मानकर ही उल्लेख किया है। अन्य वीर्यों का प्रतिपादन गौणरूप से किया है। द्विविध वीर्य मानने में ये कारण आधारभूत हैं। (१) सृष्टि के पांच भौतिक होने पर भी जल और तेज दो महाभूत अधिक प्रबल होते हैं। किंवा यावन्मात्र द्रव्यों की उत्पत्ति में इन भूतों का विशेष कर्त्तृत्व होता है। अतः सृष्टि की अग्निषोमीय संज्ञा है। (२) काल भी तेज (सूर्य) एवं सौम्य (चन्द्र) की प्रबलता के अनुसार आदानकाल और विसर्गकाल कहलाता है। (३) जिस प्रकार जगत् की व्यक्ताव्यक्त (व्यक्त-तरु, पर्वत, जलादि, अव्यक्त-भूतकालादि) दो अवस्थाओं के अतिरिक्त तीसरी अवस्था नहीं होती है। उसी प्रकार तीसरा वीर्य भी नहीं होता है। ऐसा द्विविध वीर्य वादियों का स्पष्ट एवं दृढ़ अभिमत है। गुर्वादि बीस गुण शीत एवं उष्ण वीर्य दो वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं।

शीत वीर्य गुण	उष्ण वीर्य गुण
गुरु, मन्द	लघु, तीक्ष्ण
हिम, स्निग्ध	उष्ण, रूक्ष
श्लक्ष्ण, सान्द्र	खर, विशद
मृदु, स्थिर,	सूक्ष्म,
द्रव, सर, स्थूल	
कठिन, पिच्छिल	

(१) वीर्यं शीतोष्णमिति द्विविधम्। च० सू० अ० २६।
(२) तच्च वीर्यं द्विविधम्, उष्णं शीतं च अग्नीषोमीयत्वाज्जगतः सु० सू० अ० ४०। **(३) अन्ये तु गुर्वादीनामग्नीषोमात्मकत्वादादानविसर्गविभागेन कालस्य चोष्णशीतात्मकत्वाद् द्विविधमेवामनन्ति। एवं चाहुः—नानात्मकमपि द्रव्यमग्नीषोमौमहाबलौ। व्यक्ताव्यक्तं जगदिव नातिक्रामति जातुचित्।** अ० सं० सू० अ० १७।

महर्षि सुश्रुत मत से वीर्य निरूपण—सुश्रुत ने अन्य आचार्यों का मत उद्धृत करते हुए लिखा है कि द्रव्य-रस या विपाक प्रधान नहीं है किन्तु वीर्य प्रधान है। क्योंकि औषधियों के कर्म वीर्य (वीर्यवशात्-वीर्याधीन) से होते हैं। ऊर्ध्वभाग संशोधन (वमन) अधोभागसंशोधन (विरेचन) उभयतोभाग-संशोधन, संशमन, संग्राहिक, दीपन, पीडन, लेखन, बृंहण, रसायन, वाजीकरण, श्वयथुकरण, श्वयथुविलयन, दहन, दारण, मादन, प्राणनाशन विषनाशनादि कर्म वीर्य से ही होते है। ये वीर्य अपने शक्ति रूप गुण की प्रधानता से रस एवं विपाक को अभिभूत करके अपना कार्य करते हैं। जैसे बृहत्पंचमूल रस में कषाय अनुरस में तिक्त एवं कटु विपाकी होने से वातवर्धक होना चाहिये किन्तु यह उष्णवीर्य होने से वातशामक है। इक्षु रस मधुररस होने पर भी शीत वीर्य होने से वातकारक है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पिप्पली कटुरस होने पर भी मृदु, शीत वीर्य होने से पित्तशामक है। आमलकी अम्ल रस तथा सैन्धव लवणरस होने पर भी मृदु, शीतवीर्य होने से पित्तशामक है। मत्स्य (मछली) मधुर रस होने पर भी उष्ण वीर्य होने से पित्तवर्धक है। मूली (पक्व) कटु रस होने पर भी स्निग्ध होने से कफवर्धक है। कपित्थ (कैथ) अम्ल रस होने से तथा मधु मधुर होने पर भी रूक्ष वीर्य होने से कफशामक है। वात-शामक रसों (मधुर, अम्ल, लवण) में यदि रूक्ष, शीत, लघु वीर्य हों तो ये वात का शमन नहीं कर सकते हैं। पित्तशामक रसों (मधुर, तिक्त, कषाय) में यदि उष्ण, तीक्ष्ण, लघु वीर्य हों तो वे पित्त का शमन नहीं करते हैं। कफशामक रसों (कटु तिक्त, कषाय) में यदि शीत, स्निग्ध, गुरु वीर्य हो तो वे कफ शमन नहीं करते हैं। **नेत्याहुरन्ये, वीर्यं प्रधानमिति । कस्मात् ? तद्वशेनौषधकर्मनिष्पत्तेः । इहौषधकर्माण्यूर्ध्वाधोभागोभयभागसंशोधन संशमनसांग्राहिकाग्निदीपनपीडनलेखनबृंहणरसायनवाजीकरणश्वयथुकरविलयनदहनदारणमादनप्राणघ्नविषप्रशमनादीनि वीर्यप्रधानाद्भवन्ति । एतानि खलु वीर्याणि (अष्टविधवीर्याणि) स्वबलगुणोत्कर्षाद्रसमभिभूयात्मकर्म कुर्वन्ति। यथा तावन्महत्पञ्च मूलं कषायं तिक्तानुरसं वातं शमयति, उष्णवीर्यत्वात्: तथा कुलत्थःकषायः, कटुकः पलाण्डुः, स्नेहभावाच्च; मधुरश्चेक्षुरसो वातं वर्धयति शीतवीर्यत्वात्; कटुका पिप्पली पित्तं शमयति, मृदुशीतवीर्यत्वात्; अम्लमामलकं लवणं सैन्धवं च; तिक्ता काकमाची पित्तं वर्धयति उष्णवीर्यत्वात्; मधुरा मत्स्याश्च; कटुकं मूलकं श्लेष्माणं वर्धयति स्निग्धवीर्यत्वात्; अम्लं कपित्थं श्लेष्माणं शमयति रूक्षवीर्यत्वात्; मधुरं क्षौद्रं च; तदेतन्निदर्शनमात्रमुक्तम् । भवन्ति चात्र ये रसा वातशमना भवन्ति यदि तेषु वै । रौक्ष्यलाघवशैत्यानि न ते हन्युः समीरणम् ।। ये रसाः पित्तशमना भवन्ति यदि तेषु वै । तैक्ष्ण्यौष्ण्यलघुताश्चैव न ते तत्कर्मकारिणः ।। ये रसाः श्लेष्मशमना भवन्ति यदि तेषु वै । स्नेहगौरवशैत्यानि न ते तत्कर्मकारिणः ।।** सु० सू० अ० ४०।

कर्म वीर्य वाद—आचार्य भदन्त नागार्जुन ने **कर्म लक्षणं वीर्यम्** अर्थात् वीर्य को कर्म स्वरूपात्मक लक्षण माना है। द्रव्यगत जिस सार भाग से वमनविरेचनादि कर्म होते हैं वह वीर्य कहलाता है। शंखपुष्पी के प्रयोग से मेधा की वृद्धि तथा मदनफल के उपयोग से वमनरूप कर्म (फल) को देखकर मेध्य एवं छर्दनीय वीर्य ज्ञात होता है। नागार्जुन के मत से वीर्यवान् द्रव्य क्रियाशील और हीनवीर्य या निर्वीर्य द्रव्य निष्क्रिय होने से त्याज्य हैं।

नागार्जुन ने शीतोष्ण उत्कृष्टशक्ति गुणों का वीर्य मानने वाले मत (गुणवीर्य वाद) का विरोध किया है। (१) उनके मतानुसार रस एवं गुणों को वीर्य नहीं माना जा सकता है। द्रव्यों में समान रस गुण होने पर भी कर्म वैशिष्ट्य होता है। **तुल्येषु रसगुणेषु विशेषात्**। र० वै० सू० १–१३६। (२) द्रव्य में रस, गुणादि के रहने पर भी वीर्य के अभाव में द्रव्य कार्मुक नहीं होता है तथा तथा रस गुणादि के न होने पर भी वीर्य से कर्म (**रसगुणव्यतिरेकेण चोपलब्धेः कर्मणस्तस्य** र० वै० १–३५) होता है। जैसे मन्त्र, मणि आदि। दुंदुभीस्वनीयाध्याय में नगाड़े की ध्वनि द्वारा भी विष निर्वीर्य होने का उल्लेख है। पताका, तोरण के अगद युक्त होने पर उसके दर्शन से भी विषनाश होता है। **विषप्रतिघातात्. दर्शनात् श्रवणादपि**। र० वै० सू० १३५। (३) किसी पदार्थ की उत्कृष्टता या या हीनता से उसकी जातित्व में अन्तर नहीं होता है। उदाहरण के लिए श्वेत, श्वेततर-तम अवस्थाओं में श्वेतत्व सामान्य रहता है। उसी भाँति शीतोष्णादि गुणों के उत्कृष्ट होने पर भी गुण ही रहेंगे। वे अपनी जाति को छोड़कर वीर्य नहीं हो सकते हैं। (४) कभी कभी द्रव्यों के संयोग से निष्पन्न वीर्य

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

से उन द्रव्यों के गुणों के विपरीत कार्य भी देखा जाता है। जो वीर्य से होता है। जैसे मधु और घृत समान मात्रा में जीवन बृंहण कर्मोंकी अपेक्षा प्राणनाशक हो जाते हैं। **संयोगस्तनिवृत्तेः।** र० वै० सू० १–१३८। (५) कभी कभी औषधियों के योग से बने द्रव्य की अद्भूत क्रिया होती है। जैसे पारद संस्कारों से खेचरत्व होना, अदृश्य होना, अग्नि से न जलना आदि। **दर्शनाच्चाद्भुतादीनां कर्मणाम्।** र० वै सू० १–१३९।

गुणवाद समर्थक आचार्यों ने जहां वीर्यों के नाम गुरु, लघ्वादि गुणानुसार व्यवहृत किये हैं। वहां आचार्य नागार्जुन ने छर्दनीय, अनुलोमनीय द्रव्यों के कर्मानुसार निर्दिष्ट किये हैं। कर्म वीर्यवाद सिद्धान्त के आचार्य भदन्तनागार्जुन ने गुणवादी आचार्यों के समान वीर्यों की संख्या निश्चित नहीं की है, तथा कतिपय वीर्यों जैसे सांग्राहिक, दीपनीय, प्राणघ्न, मदनीय, मेध्य, आयुष्य, वर्चस्य, वृष्य, वयःस्थ, रक्षोघ्न, पुंसवन, पित्तनिग्रहण, श्लेष्मानिग्रहण, वातपित्तप्रकोपण, सर्व-प्रकोपण, श्वयथुविलयन, श्वयथु करण, प्रशमन आदि का नामोल्लेख किया है। इसी मत के अनुयायी एक आचार्य निमि ने १५ प्रकार के वीर्यों का उल्लेख किया है। ((इनके नाम सुश्रुत मत से वीर्य निरूपण प्रसङ्ग में द्रष्टव्य हैं)।

वीर्यों का भौतिक संगठन

गुणसंख्या	गुणवीर्यवाद[1]	भौतिक संगठन	कर्मवीर्यवाद[2]	भौतिक संगठन
१.	गुरु	पृथिवी+जल	१. अधोभागहर	पृथिवी+जल
२.	लघु	तेज+वायु+नभ	२. ऊर्ध्वभागहर	वायु+अग्नि
३.	शीत	जल+पृथिवी	३. उभयतोभागहर	वायु+अग्नि+पृथिवी
४.	उष्ण	अग्नि	४. सांग्राहिक	पृथिवी+वायु
५.	स्निग्ध	जल	५. संशमन	जल+पृथिवी+वायु
६.	रूक्ष	वायु	६. दीपन	अग्नि+पृथिवी
७.	मृदु	जल+आकाश	७. पाचन	अग्नि
८.	तीक्ष्ण	अग्नि	८. दारण	अग्नि+वायु
			९. रोपण	जल+वायु+पृथिवी
			१०. शोथकर	जल+पृथिवी
			११. शोथघ्न	वायु+आकाश
			१२. शीतीकरण	जल
			१३. जीवनीय	जल+पृथिवी
			१४. प्राणघ्न	अग्नि+वायु
			१५. मादन	अग्नि+वायु

(१) **तीक्ष्णोष्णावाग्नेयौ, गुरुशीतावम्बुगुणभूयिष्ठौ, अम्बुगुणभूयिष्ठः स्नेहः, तोयाकाशगुणभूयिष्ठं मृदुत्वम्, वायुगुणभूयिष्ठं रौक्ष्यम्, अग्न्याकाश समीरणगुण भूयिष्ठं लघुत्वं।**
सु० सू० अ० ४१॥

(२) **दशपञ्च च कर्माणि गुणानां पाञ्च भौतिकात्। द्रव्येष्वेवं विजानीयात् कर्माणि दशपञ्च च।**

अष्टविध वीर्यों के कर्म

गुरु[1]	लघु[2]	स्निग्ध[3]	रूक्ष[4]	मृदु[5]	तीक्ष्ण[6]	शीत[7]	उष्ण[8]
बृंहण	लेखन	बृंहण	संग्रहण	रक्त एवं	संग्रह	जीवन	स्वेदन
उपलेप	क्लेद-	स्नेहन	पीड़न	मांसप्रसा-	आचूषण	बल्य	तृष्णाकर
संश्लेषण	शोषण	संतर्पण	विरूक्षण	दन	अवदारण	गुरु	दहन

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुरु[1]	लघु[2]	स्निग्ध[3]	रूक्ष[4]	मृदु[5]	तीक्ष्ण[6]	शीत[7]	उष्ण[8]
वाजीकरण	विरूक्षण	वयःस्थापन	उपरोहण	सुस्पर्शन	स्रावण	वृष्य	पाचन
पूरण	उपरोहण	वाजीकरण	वातकर	पित्तहर	कफहर	प्रह्लादन	वमन
वातहर	कफहर	वातहर	कफहर			विष्यन्दन	विरेचन
						स्थिरीकरण	विलयन
						रक्तपित्त-	भ्रमकर
						प्रसादन	मूर्च्छन
						क्लेदन	ग्लानिजनन
						स्तम्भन	लघु
						पित्तशमन	अवृष्य
						वातकर	पित्तकर
						कफकर	वातहर
							कफहर

(१) गुरूष्णस्निग्धा वातघ्नाः । सु० सू० अ० ४१ । रूक्षगुरुलघवो विरूक्षणोपलेप लेखनादिना सु० सू० अ० ४१ । (२) लघुतीक्ष्णरूक्षाः श्लेष्मघ्नाः । सु० सू० अ० ४१ । (३) स्निग्धस्य स्नेहन बृंहण-सन्तर्पण-वाजीकरण-वयःस्थापनानि । उष्णस्निग्धौ वातघ्नौ । सु० सू० अ० ४१ । (४) रूक्षस्य अनिलवृद्धि संग्रहणपीडनविरूक्षणोपरोपणानि । ·····रूक्षविशदाः श्लेष्मघ्नाः । सु० सू० अ० ४१ । (५) मृदो रक्तमांसप्रसादनसुस्पर्शनानि । ·····शीतमृदुपिच्छिलाः पित्तघ्नाः । सु० सू० अ० ४१ । (६) तीक्ष्णस्य संग्रहाचूषणावदारण-स्रावणानि । सु० सू० अ० ४१ । (७) शीतस्य प्रह्लादन-विष्यन्दन-स्थिरीकरण-प्रसादन-क्लेदन-जीवनानि । सु० सू० अ० ४१ । शीतं ह्लादनस्तम्भनजीवनरक्तपित्तप्रसादनादीनि । अ० सं० सू० अ० १७ । (८) तत्र कर्माण्यप्युष्णस्य दहनपाचनमूर्च्छनस्वेदनवमनविरेचनानि····· उष्णस्निग्धौ वातघ्नौ । सु० सू० अ० ४१ । तत्रोष्णं-विलयनानिलकफशमनानि करोति । अ० सं० सू० अ० १७ । तत्रोष्णं भ्रमतृड्ग्लानिस्वेददाहाशुपाकिताः । शमं च वातकफयोः करोति । अ० हृ० सू० अ० ९ ।

उपयुज्यमान द्रव्यों की वीर्योपलब्धि—वीर्य का ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों विधियों से होता है । महर्षि चरक ने तीन विधियों से वीर्योपलब्धि बतायी है । **वीर्यं यावदधीवासान्निपाताच्चोपलभ्यते ।** च० सू० अ० २६ । द्रव्यगत वीर्य का ज्ञान द्रव्य का शरीर के साथ सम्बन्ध होने से लेकर जब तक वह शरीर में रहता है तब तक शरीर पर होने वाली उसकी क्रियाओं से होता है । कतिपय तीक्ष्ण, उष्ण, द्रव्यों के वीर्यों का ज्ञान जिह्वानिपात (जिह्वा प्रत्यक्ष) या त्वगिन्द्रिय के साथ संयोग मात्र से होता है । जैसे मिर्च, हिङ्गु, चित्रक, आकारकरभ आदि के तीक्ष्णत्व का ज्ञान जिह्वा पर रखने मात्र से होता है । कुछ उपयुज्यमान द्रव्यों का वीर्य अधिवास से ज्ञात होता है । उदाहरणतया आनूप मांस के उष्णत्व का ज्ञान जब तक वह शरीर में विद्यमान रहता है, तबतक शरीर पर होने वाली उसकी क्रियाओं से अनुमान गम्य होता है । कतिपय द्रव्यों के वीर्यों का ज्ञान जिह्वा संपर्क व अधिवास (शरीर में विद्यमान रहना) दोनों के द्वारा होता है । जैसे मिर्च के उष्ण, तीक्ष्णत्व का ज्ञान जिह्वा संपर्क-निपात और अधिवास दोनों के द्वारा ज्ञात किया जाता है । **किञ्चिद् वीर्यमधीवासादुपलभ्यते, यथा आनूपमांसादेरुष्णत्वं, किञ्चिच्च निपातादेव लभ्यते यथा मरिचादीनां तीक्ष्णत्वादि, किञ्चिच्च निपाताधीवासाभ्यां यथा मरिचादीनामेव ।** च० सू० अ० २६ । च० द० ।

मधुरादि रसों का ज्ञान जिह्वा प्रत्यक्ष से होता है । विपाक नित्यपरोक्ष है, और उसका कार्य देखकर अनुमान किया जाता है । कतिपय द्रव्यों के वीर्यों का ज्ञान अनुमान से जैसे सैन्धव लवण-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गत शैत्य का, आनूप मांस स्थित उष्णता का ज्ञान कर्मानुमेयी होता है। कतिपय द्रव्यों के वीर्यों का ज्ञान प्रत्यक्ष से ही हो जाता है। (मिर्च के प्रत्यक्ष ज्ञान का ऊपर वर्णन किया है)। राजिका (राई) गत तीक्ष्णता का ज्ञान घ्राणेन्द्रिय द्वारा सूंघने से होता है। पिच्छिल, विशद, स्निग्ध, रूक्ष, आदि वीर्यों का ज्ञान स्पर्शनेन्द्रिय एवं नेत्रेन्द्रिय से होता है। **एतेन रसः प्रत्यक्षेणैव, विपास्तु नित्यपरोक्षः तत्कार्येणानुमीयते, वीर्यं तु किञ्चिदनुमानेन यथा सैन्धवगतं शैत्यम्, आनूपमांसगतमौष्ण्यं वा, किञ्चिच्च वीर्यं प्रत्यक्षेणैव, यथा राजिकागतं तैक्ष्ण्यं घ्राणेन, पिच्छिलविशदस्निग्धरूक्षादयः चक्षुःस्पर्शनाभ्यां निश्चीयन्त इति वाक्यार्थः।** च०सू०अ० २६। च०द०। मृदु, शीत और उष्ण वीर्य स्पर्श ग्राह्य हैं। पिच्छिल, विशद वीर्यों का चक्षु और स्पर्श दोनों से ज्ञान होता है। स्निग्ध, रूक्ष का ज्ञान चक्षु से, तीक्ष्ण वीर्य का ज्ञान मुख में दुःखोत्पादन से होता है। **तेषां मृदुशीतोष्णाः स्पर्शग्राह्याः, पिच्छिलविशदौ चक्षुःस्पर्शाभ्यां, स्निग्धरूक्षौ चक्षुषा तीक्ष्णो मुखे दुःखोत्पादनेन।** सु० सू० अ० ४१।

वीर्य निर्धारण—महर्षि चरक ने रस एवं विपाकानुसार द्रव्यों को स्थूल रूप से शीत एवं उष्ण वीर्यों में विभाजित किया है। जो द्रव्य रस और विपाक में मधुर होता है, वह शीत वीर्य होता है। अम्ल रस व अम्ल विपाक तथा कटुरस, कटुविपाक वाले द्रव्य उष्ण वीर्य होते हैं। जैसे शीत वीर्य द्रव्य-घृत, दुग्ध, द्राक्षा। उष्ण वीर्य द्रव्य-चव्य, चित्रक, पिप्पलीमूल। **शीतं वीर्येण यद्द्रव्यं मधुरं रसपाकयोः। तयोरम्लं यदुष्णं च यद् द्रव्यं कटुकं तयोः। तेषां रसोपदेशेन निर्देश्यो गुणसंग्रहः।** च० सू० अ० २६। रस एवं विपाकानुसार वीर्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त के अपवादस्वरूप भी चरक ने कुछ विरुद्ध वीर्य द्रव्य बताये हैं। जिनका ज्ञान द्रव्य के गुण कर्मों से होता है।

द्रव्य नाम	द्रव्यगत रस	रस विपाकानुसार वीर्य निर्धारण	अपवादस्वरूप द्रव्यगत वीर्योपलब्धि
१. आनूप मांस	मधुर	शीत	उष्ण
२. आमलकी	अम्ल	उष्ण	शीत
३. सैन्धव लवण	लवण	उष्ण	शीत
४. अर्क,गुडूची, अगुरु	तिक्त,	शीत	उष्ण
५. महत्पञ्चमूल	कषाय, तिक्त	शीत	उष्ण
६. हरीतकी	कषाय	शीत	उष्ण

मधुरं किञ्चिदुष्णं स्यात् कषायं तिक्तमेव च। यथा महत्पञ्चमूलं यथाऽब्जानूपमामिषम्। लवणं सैन्धवं नोष्णमम्लमामलकं तथा। अर्कागुरुगुडूचीनां तिक्तानामुष्णमुच्यते। कषायः स्तम्भनः शीतः सोऽभयायामतोऽन्यथा। च० सू० अ० २६।

द्रव्य वीर्याधान—सामान्य वीर्य द्रव्यों का देश सम्पद् (गुणवान्) काल सम्पद्, गुण सम्पद् भाजन सम्पद् से वीर्याधान होने पर वे क्रिया करने में अधिक समर्थ होते हैं। **तानि तु द्रव्याणि देशकाल-गुण-भाजनसंपद्वीर्यबलाधानात् क्रियासमर्थतमानि भवन्ति।** च० क० अ० १-७।

देश सम्पद्—जाङ्गल, आनूप, साधारण भेद से त्रिविध देश (भूमि) होते हैं। इनमें साधारण या जाङ्गल देश में शीत, उष्ण, जल, पवन से सेवित औषधि कंकड़ों, खड्डों, वल्मीकों से

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रहित, श्मशान, वधस्थान, देवस्थान, सभास्थल, क्षार बड़े-बड़े वृक्षों से रहित, जलाशय के निकटवर्त्ती स्निग्ध, तृणयुक्त, मृदु, स्थिर, कृष्ण, लाल वर्ण की अफालकृष्ट (हल से जोती न हो) मधुर भूमि में उत्पन्न औषधि लेनी चाहिए। **तत्र देशे साधारणे जाङ्गले वा यथाकालं शिशिरातपपवनसलिलसेविते समे शुचौ प्रदक्षिणोदके श्मशानचैत्यदेवयजनागारसभाश्वभ्रारामवल्मीकोषरविरहिते कुशरोहिषास्तीर्ण-स्निग्धकृष्णमधुरमृत्तिके वा मृदावफालकृष्टेऽनुपहतेऽन्यैर्बलवत्तरैर्द्रुमैरौषध द्रव्याणि जातानि प्रशस्यन्ते।** च० क० अ० १। **कालसम्पत्**—वर्षा और वसन्त ऋतुओं में शाखा, पत्र, ग्रीष्म या शिशिर में मूल, शरद् में त्वक्, कन्द, क्षीर, हेमन्त में सार(काण्डसार) तथा पुष्पफलों का संग्रह सम्पूर्ण वीर्ययुक्त पुष्पित फलित होने पर द्रव्य का संग्रह करने पर वीर्यवान् औषधि प्राप्त होती है। **तेषां शाखापलाशमचिर-प्ररूढं वर्षावसन्तोर्ग्राह्यं, ग्रीष्मे मूलानि, शिशिरे वा शीर्णप्ररूढपर्णानां, शरदित्वक्कन्दक्षीराणि, हेमन्ते साराणि यथर्तुपुष्पफलमिति।** च० क० अ० १। **भाजन सम्पत्**—यथा विधि द्रव्य संग्रह के पश्चात् उसे भेषजागार में अग्नि, जल, नमी (आर्द्रता) वाष्प, धूम्र, धूल, चूहे आदि जन्तुओं से सुरक्षा के लिए जमीन से ऊपर किसी बन्द पात्र में रखना चाहिए। इससे द्रव्य अधिक काल तक वीर्यवान् रहता है। **गृहीत्वा चानुरूपगुणवद् भाजने संस्थाप्यागारेषु-अग्निसलिलोपस्वेदधूमोरजोमूषिक····स्थापयेत्।** च० वि० अ० १। **गुणसम्पत्**—दोषानुसार वातव्याधियों में औषधि का सौवीरक, धान्याम्ल, फलाम्ल, दध्यम्ल, तुषोदक से, पैत्तिक विकारों में मृद्वीका, आमलक, परुषक, फाणित, क्षीरादि से, श्लैष्मिक विकारों में मधु, मूत्र, कषायादि से प्रयोग करने से प्रयुज्यमान औषधि अधिक वीर्यवान् (गुणवान्) होकर व्याधि का शमन करती है। च० वि० अ० १।

वीर्य प्राधान्यवाद—महर्षि सुश्रुत ने वीर्य का प्राधान्य युक्तिपूर्वक प्रतिपादित किया है। तदनुसार रस, गुण, विपाक की अपेक्षा वीर्य प्रधान होता है। क्योंकि द्रव्य के ऊर्ध्वाधः संशोधन कर्म, अग्निदीपन, सांग्राहिकादि कर्म वीर्य से होते हैं। अर्थात् द्रव्य के विभिन्न कर्म वीर्याधीन होते हैं। वीर्य रस, विपाकादि का अपने बल तथा गुणोत्कर्ष से पराभव करके कर्म करता है। वीर्य की उत्कर्ष शक्ति से द्रव्यगत रस अपने कार्य नहीं करते हैं। **(१) वीर्यं प्रधानमिति। कस्मात्? तद्वशेनौषधकर्म-निष्पत्तेः।** सु० सू० अ०४०। **(२) एतानि खलु वीर्याणि स्वबलगुणोत्कर्षाद्रसमभिभूयात्मकर्म कुर्वन्ति।**

बृहत्पञ्चमूल तिक्त कषाय रस होने पर भी उष्ण वीर्य होने से वात का शमन करता है। कुलत्थ कषाय रस होने पर भी उष्ण होने से वात शामक है। पलाण्डु कटु रस होने पर भी स्निग्ध होने से वात शामक है। इक्षु रस मधुर रस होने पर भी शीत वीर्य होने से वातकारक है। पिप्पली कटु होने पर भी मृदु, शीत वीर्य होने से पित्तशामक है। आमलकी अम्ल एवं सैन्धव लवण रस होने पर भी मृदु, शीत वीर्य होने से पित्तशामक हैं। काकमाची तिक्त होने पर भी उष्ण वीर्य होने से पित्त वर्धक है। मत्स्य मांस मधुर होने पर भी उष्ण वीर्य होने से पित्तवर्धक है। मूलक कटु होने पर भी स्निग्ध वीर्य से कफवर्धक होता है। कपित्थ अम्ल होने पर भी रूक्ष वीर्य से कफशामक होता है। मधु मधुर होने पर भी रूक्ष वीर्य से कफशामक होता। **बृहत्पञ्चमूल से मधु तक द्रव्यों के वीर्य से सम्पन्न कर्मों का मूल उद्धरण पृष्ठाङ्क ७२ पर द्रष्टव्य हैं।**

रस वैशेषिक सूत्रकार नागार्जुन ने (१) आप्तोपदेश, (२) रसाभिभूत, (३) कर्मनिष्पत्ति (४) वीर्यवान् द्रव्यों की उत्कृष्ट कार्मुक शक्ति परक बिन्दुओं से वीर्य का प्राधान्य वर्णित किया है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(१) शास्त्रकारों ने वीर्य को ही रस, गुण, विपाक की अपेक्षा उत्कृष्ट माना है।

(२) द्रव्यगत रसों को वीर्य अभिभूत करके अपना कार्य करता है। समान रस, गुण वाले द्रव्यों में भी कर्म वैशिष्ट्य देखा जाता है। **तुल्यरसगुणेषु विशेषात्।** र० वै० अ० १ सू० १३६।

(३) द्रव्य अपना कर्म वीर्य से ही सम्पादन करता है। **तेन कर्मकरणात्।** र० वै० अ० १ सू० १३१। **वीर्यतः कार्यसामर्थ्यं द्रव्याणां भिषजो विदुः।** भाष्य।

(४) चिकित्सा में वीर्य सम्पद् औषधियों का ही प्रयोग होता है। नष्ट वीर्य या हीन वीर्य औषधियों का चिकित्सा में प्रयोग सर्वथा निषिद्ध होता है।

□□

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रभाव विज्ञानीय सप्तम परिच्छेद

प्रभाव का लक्षण—(१) **रसवीर्यविपाकानां सामान्यं यत्र** लक्ष्यते। **विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य स स्मृतः ॥** च० सू० अ० २६। (२) **रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम्।** अ० सं० सू० अ० १७। (३) **रसवीर्यविपाकादि गुणातिशयवानयम्। द्रव्यस्वभावोनिर्दिष्टः यः प्रभावः स कीर्तितः।** अ० द०।

जिस द्रव्य में रस, वीर्य, विपाक समान होने पर भी उसकी विशिष्ट प्रकार की कार्य-कर्त्तृत्व शक्ति (अन्य समान द्रव्यों की अपेक्षा वैशिष्ट्य कर्म) को प्रभाव कहते हैं। द्रव्य अपने द्रव्यगत प्रभाव से रस, गुण, वीर्य विपाक के कर्मों से भिन्न (विशिष्ट) कार्य करता है या रस से, वीर्य से, विपाक से, गुण से द्रव्य जो कार्य करता है उनसे सर्वथा भिन्न कर्म प्रभाव से होता है। इसका हेतु कार्यकारणभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। **रसेन वीर्येण गुणैश्च कर्म द्रव्यं विपाकेन च यद्विदध्यात्। सद्योऽन्यथा तत्कुरुते प्रभावाद्धेतोरतस्तत्र न गोचरोऽस्ति।** अ० सं० सू० अ० १७। आधुनिक आचार्यों में श्री बालकृष्ण अमरजी पाठक ने प्रभाव को (Specific action) श्री विश्वनाथ द्विवेदी ने प्रभाव को (Potency) श्री प्रियव्रत शर्मा ने प्रभाव को (Specific property) एवं डा० श्री गोविन्द भास्कर घाणेकर ने (Empirical action) माना है।

प्रभाव का स्वरूप—आत्रेय सम्प्रदाय के आचार्यों ने प्रभाव का विशद वर्णन किया है। सुश्रुत एवं नागार्जुन ने प्रभाव का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है तथापि कतिपय द्रव्यों के लिए अचिन्त्य, अमीमांस्य शब्दों (प्रभाव के लिए व्यवहृत शब्द) का उल्लेख किया है। जिससे अप्रत्यक्षरूपेण प्रभाव मानने का आधार मिलता है। सुश्रुत ने द्रव्यगत शक्ति दो प्रकार की लिखी है। (१) चिन्त्य शक्ति (२) अचिन्त्य शक्ति। चिन्त्य शक्ति (वीर्य) वह है, जिसका द्रव्यों के पाञ्च भौतिक संगठन द्वारा, किंवा रस, गुण, विपाकजन्य कर्मों के साथ कार्यकारण भाव ज्ञात हो सकता है। अचिन्त्य शक्ति (प्रभाव) वह है जिसका द्रव्यों के पाञ्चभौतिक संगठन, रस, गुण, वीर्य, विपाक के कर्मों द्वारा कार्य-कारण भाव ज्ञात न हो। यही प्रभाव कहलाता है। अधोभागहरत्व, वृष्यत्व आदि कार्य प्रभाव के ही मानने चाहिए। इस प्रकार वीर्य और प्रभाव दोनों में स्पष्ट पार्थक्य सिद्ध हो जाता है। **अत्र च वीर्यशब्देन द्रव्यस्य द्विविधापि चिन्त्याऽचिन्त्या च शक्तिरुच्यते। तत्राचिन्त्या शक्तिर्या तन्त्रान्तरे 'प्रभाव' इत्युच्यते सा ग्राह्या, तस्यैव च वीर्यस्य प्रभावस्य स्वतन्त्रे, तद्द्रव्यमात्मना किञ्चित्-इत्यादिना निष्कृष्टद्रव्यप्रकारतयोक्तस्य एतदधोभागहरत्ववृष्यत्वादि प्रायः कार्यं, न हीदमुष्णशीताभ्यां वीर्याभ्या-मष्टाभिर्वोष्णादिभिर्वीर्यैरुपपद्यते कार्यम्।** च० द०।

द्रव्यगत विशेष शक्ति को प्रभाव, द्रव्यस्वभाव और सर्वातिशयी द्रव्यस्वभाव भी कहते हैं। स्वभाव अचिन्त्य (प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते) अर्थात् बुद्धिगम्य नहीं होता है। अतः प्रभाव भी द्रव्य का

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वभाव होने से अचिन्त्य, युक्ति प्रतिपादित नहीं होता है। **(१) सर्वातिशायी द्रव्यस्वभावः प्रभावः (२) द्रव्य स्वभावो निर्दिष्टः यः प्रभावः स कीर्तितः।** अ० द०। रस वैशेषिककार ने वीर्य को अनवधारणीय कहा है।

जिन औषधियों की कार्यकारिणी शक्ति तर्क और युक्ति से सिद्ध नहीं होती है तथा जो विरेचकत्व, स्तम्भकत्व, विषहरत्व आदि अपने स्वभाव से प्रसिद्ध हैं। उन औषधियों का चिकित्सा में प्रयोग निष्णात वैद्य को शास्त्र किंवा आप्तोपदेश के अनुसार ही करना चाहिए। जिन द्रव्यों के फल या कर्म प्रत्यक्षतया स्वस्थ या आतुर पुरुषों में देखे जाते हैं और जिनके स्वभावों (विषहरत्व, विरेचकत्व, स्तम्भकत्व आदि) का शास्त्रों में वर्णन होने से प्रसिद्ध हैं, ऐसे द्रव्यों का विद्वान् चिकित्सक को शास्त्र विरुद्ध तर्क मीमांसा, युक्तियों से दूर रहकर ही प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि अम्बष्ठादिगण की औषधियां हजारों तर्क एवं युक्तियों से भी विरेचन कार्य नहीं करेगी। अतः विद्वान् वैद्य को अचिन्त्य और प्रत्यक्ष कर्म वाली औषधियों का शास्त्र वचनों किंवा आप्तोपदेशों के अनुसार प्रयोग करना चाहिए। **अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः। आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः॥ प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः। नौषधीर्हेतुभि र्विद्वान् परीक्षेत कदाचन॥ सहस्रेणापिहेतूनां नाम्बष्ठादिर्विरेचयेत्। तस्मात्तिष्ठेत्तु मतिमानागमे न तु हेतुषु॥** सु० सू० अ० ४०।

प्रभाव के सम्बन्ध में आचार्य गंगाधर का विशेष कथन यह है कि द्रव्य, गुण, कर्म, तीनों में से द्रव्य और गुण से क्रमशः सजातीय द्रव्य एवं सजातीय गुण की उत्पत्ति होती है। किन्तु कर्म से सजातीय कर्म की निष्पत्ति होना नियत नहीं है और कर्म कर्मसाध्य है भी नहीं। अतः जहाँ द्रव्य गुण और कर्म तीनों सजातीय हों वहाँ वीर्य जन्य कर्म निष्पत्ति होती है, तथा जहाँ विजातीय-विपरीत कर्म होता है वहाँ प्रभावजन्य कर्म माना जाता है। **स्वस्वारम्भकद्रव्यसंयोगे समवेतानां तेषां द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वात् तत्र द्रव्यात् सजातीय द्रव्यान्तरं जायते, गुणात् सजातीयगुणान्तरं जायते कर्मणा तु सजातीयकर्मारम्भकत्वनियमाभावात् कर्मसाध्यकर्माभावाच्च यत्र विजातीयं कर्म तदारम्भकद्रव्याणां कर्माण्यारभते, तद् विजातीयं कर्म खल्वचिन्त्यं, स प्रभाव उच्यते। कार्यद्रव्यं दन्त्यादिकं तत्कर्म विशेषेण स्वीयेन प्रभावेण विरेचनादि कर्म करोति।** गंगाधर।

प्रभाव के उदाहरण—चित्रक मूल रस और विपाक में कटु है, इसका वीर्य उष्ण है। चित्रक मूल में कटुरस, कटुविपाक और उष्ण वीर्य के जो कार्य शास्त्रों में वर्णित हैं, वे ही कार्य प्रत्यक्षतया देखे जाते हैं। उनसे विपरीत कोई कर्म नहीं देखा जाता है। किन्तु दन्ती चित्रक के तुल्य कटु रस, कटु विपाक, उष्णवीर्य होने पर भी इसके कर्म में विशेषता पायी जाती है। दन्तीमूल में विरेचन कर्म का हेतु दन्ती का अपना विशिष्ट स्वभाव (प्रभाव) है। एक विष दूसरे विष का शमन करता है, इसका हेतु भी विषनाशक द्रव्य में प्रभाव स्थिति ही है। ऊर्ध्व (वामक) और अधोभागहर (विरेचक) द्रव्य जो वमन विरेचन करते हैं, उनमें भी प्रभाव ही हेतु है, क्योंकि इन द्रव्यों के समान रस गुण वीर्य विपाक वाले अन्य द्रव्यों में ये कर्म नहीं होते हैं। विविध प्रकार के रत्नों और औषधियों के धारण करने से जो विविध कर्म दृष्टिगोचर होते हैं, वे उनके प्रभाव से ही होते हैं। इन द्रव्यों के कर्मों को कार्यकारण नियम से सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

मधुयष्टि और द्राक्षा दोनों मधुर रस, मधुर विपाकी, शीत वीर्य हैं, किन्तु द्राक्षा मृदु विरेचक है और मधुयष्टि विरेचक नहीं है। दुग्ध और घृत मधुर रस, मधुर विपाकी, शीतवीर्य हैं किन्तु घृत अग्नि

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दीप्तिकर है दुग्ध नहीं है। रसोन (लहसुन) कटुरस, कटुविपाकी, स्निग्ध और गुरु वीर्य होने पर भी वात कफका शमन करता है। जबकि कटुरस एवं कटुविपाक से यह वातवर्धक तथा स्निग्ध, गुरु वीर्य से कफ वर्धक होना चाहिए। किन्तु लहसुन वातश्लेष्मावर्धक रस, विपाक, वीर्य से युक्त होने पर भी अपने प्रभाव (स्वभाव) से वातकफ का शमन करता है। रक्तशालि परस्पर गुणविरुद्ध वातपित्त कफ दोषों का शमन करता है। जबकि यवक धान्य तीनों दोषों का प्रकोप करता है। शिरीष आदि द्रव्य विष का का नाश करते हैं। निद्रा, मेघादि विष वेग की वृद्धि करते हैं। मणि, मन्त्र और औषधियों के धारण से विभिन्न कर्म देखे जाते हैं। वे भी प्रभावजन्य हैं। शल्यों का आकर्षण, पुत्र, प्रजा उत्पन्न करना, रसायनों से आयु का वर्धन, शंखपुष्पी, ब्राह्मी आदि से मेधावृद्धि, मन्त्रादि से किसी को वश करना, अगद के दर्शन मात्र से विष का नाश, वाजीकर द्रव्यों के उपयोग से आशु शुक्रोत्पत्ति, मदनफल का वमन कर्म, हरीतकी का विरेचन कर्म, आमलकी का त्रिदोष शमन करना, ये सब कर्म प्रभाव से ही होते हैं। **प्रभाव को अचिन्त्य वीर्य, द्रव्यस्वभाव, अमीमांस्य, अनवधारणीय भी कहते हैं।**

(१) कटुको कटुकः पाके वीर्योष्णश्चित्रको मतः। तद्वद्दन्ती प्रभावात्तु विरेचयति मानवम्॥ विषं विषघ्नमुक्तं यत् प्रभावस्तत्रकारणम्। ऊर्ध्वानुलोमिकं यच्च तत् प्रभावप्रभावितम्॥ मणीनां धारणीयानां कर्म यद्विविधात्मकम्। तत् प्रभावकृतं तेषा प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते॥ । च० सू० अ० २६।

(२) दन्ती रसाद्यैस्तुल्याऽपि चित्रकस्य विरेचनी। मधुकस्य च मृद्वीका घृतं क्षीरस्य दीपनम्॥ कटुपाकरसस्निग्धगुरुत्वैः कफवातजित्। लशुनो वातकफकृन्न तु तैरेव यद् गुणैः॥ मिथो विरुद्धान् वातादीन् लोहिताद्या जयन्ति यत्। कुर्वन्ति यवकाद्याश्च तत् प्रभाव विजृम्भितम्॥ शिरीषादि विषं हन्ति स्वप्नाद्यं तद्विवृद्धये। मणिमन्त्रौषधीनां च यत् कर्म विविधात्मकम्॥ शल्याहरणपुंजन्मरक्षायुर्धी-वशादिकम्। दर्शनाद्यैरपि विषं यन्नियच्छति चागदः॥ विरेचयति यद्वृष्यमाशु शुक्रं करोति च। ऊर्ध्वाधोभागिकं यच्च द्रव्यं यच्छमनादि च॥ मात्रादि प्राप्य तत्तच्च यत्प्रपञ्चेन वर्णितम्। तच्च प्रभावजं सर्वमतो ऽचिन्त्यः स उच्यते॥ अ० सं० सू० अ० १७।

आचार्य वाग्भट्ट ने द्रव्य रस वीर्य विपाक आदि के सामान्य और विशिष्ट कर्मों के चिन्तन के लिए **समानप्रत्ययारब्ध** और **विचित्रप्रत्ययारब्ध** नामक मौलिक सिद्धान्तों की स्थापना की है। महर्षि चरक द्वारा प्रतिपादित प्रकृतिसमसमवेत और विकृतिविषमसमवेत द्रव्य सिद्धान्त भी प्रायः यही अर्थावबोधकर हैं। तदनुसार पाञ्चभौतिक संगठन की दृष्टि से द्रव्य समान-प्रत्ययारब्ध और विचित्र-प्रत्ययारब्ध दो प्रकार के होते हैं। **इति सामान्यतः कर्म द्रव्यादीनां पुनश्च तत्। विचित्रप्रत्ययारब्ध द्रव्यभेदेन भिद्यते॥** अ० हृ० सू० अ० ९।

समान प्रत्ययारब्ध द्रव्य—जिन द्रव्यों में द्रव्यारम्भक महाभूत और रस, वीर्य, विपाकारम्भक महाभूत इन दोनों का एक ही प्रकार के या समान महाभूतों के न्यूनाधिक्य (उत्कर्ष-अपकर्ष) से संगठन हुआ हो उन द्रव्यों को समान प्रत्ययारब्ध द्रव्य (समान कारणों से निष्पन्न) कहते हैं। जैसे दुग्ध में द्रव्यारम्भक महाभूत और तदाश्रित वीर्य, विपाकारम्भक महाभूत दोनों का संगठन एक प्रकार का होता है, अर्थात् दुग्ध में रस वीर्य विपाक सब परस्पर अनुकूल होते हैं। अतः समान प्रत्ययारब्ध द्रव्यों के गुण कर्मों का ज्ञान रसोपदेश से हो जाता है। **(१) क्वचित् द्रव्ये यादृगेव भूतसंघातो द्रव्यस्यारम्भकः, तादृगेव रसादीनां, तत् समानप्रत्ययारब्धं, तत् सामान्यगुणान्नातिक्रामति।** हेमाद्रि।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(२) तदेवं द्रव्याणां द्वैविध्यं, यतः कानिचिद् द्रव्याणि यैरेवमहाभूतैर्यथाविधैः रसादयः आरब्धास्तैरेव तथा भूतैर्महाभूतैः तदाश्रयाणि द्रव्याण्यारब्धानि तानि रसादिसमानप्रत्ययारब्धान्युच्यन्ते। तानि च यथायथं तत् कर्म रसाद्यनुगुणं सामान्यात् कुर्वते यथा क्षीरेक्षु-शर्करादीनि। अ० द०।

विचित्र प्रत्ययारब्ध द्रव्य—जिन द्रव्यों में द्रव्यारम्भक महाभूत और रस, वीर्य, विपाकारम्भक महाभूतों का एक दूसरे से भिन्न प्रकार के न्यूनाधिक्य (उत्कर्षापकर्ष) से संगठन हुआ हो, उन द्रव्यों को विचित्र प्रत्ययारब्ध (विचित्र किंवा विभिन्न प्रकार के कारणों से निष्पन्न) कहते हैं। ऐसे द्रव्यों में इनके कर्म, रस, वीर्य, विपाक से भिन्न ही प्रकार के होते हैं। उदाहरणतया, यव, मकुष्ठ, मत्स्य, सिंहमांस आदि। इन द्रव्यों में रस वीर्य विपाक परस्पर प्रतिकूल होते हैं। अतः विचित्र प्रत्ययारब्ध द्रव्यों के गुण कर्मों का ज्ञान यथा रसोपदेश से नहीं होता है। गोधूम (गेहूँ) और यव (जौ) दोनों मधुर रस एवं गुरु होते हैं। किन्तु गोधूम समान प्रत्ययारब्ध होने से रसगुणादि के अनुसार वातशामक है जबकि यव विचित्र प्रत्ययारब्ध होने से अपने रस गुणादि के विपरीत वायु की वृद्धि करता है।

(१) क्वचिदन्यादृग्भूतसंघातो द्रव्यस्यारम्भकोऽन्यादृग्रसस्यान्यादृग्गुणस्येत्यादि, तद्विचित्रप्रत्ययारब्धं, तत् सामान्य गुणानतिक्रामति। हेमाद्रि। (२) कानिचित् पुनस्तदाश्रितरसादिसमारम्भकमहाभूतान्यन्यानि, तदाश्रयद्रव्यारम्भकाण्यन्यानि च महाभूतानि, तैरारब्धानि तानि विचित्रप्रत्ययारब्धानि द्रव्याणि। एतदुक्तं भवति–रसादीनामारम्भकाण्यन्यानि, द्रव्यस्य चारम्भकाण्यन्यथाभूतानि, महाभूतानि नोभयत्रैकरूपाणीति; तानि च यथायथं रसाद्यनुगुणं कर्म न कुर्वन्ति, भिन्नत्वाद्धेतु भावस्य। यथा मकुष्ठयवमत्स्यसिंहादीनि। एतानि हि यथारसं न वीर्यविपाककर्म कुर्वन्ति, विचित्रप्रत्ययारब्धत्वात्। अ० द०।

सापेक्ष विवरण

समानप्रत्ययारब्ध द्रव्य	विचित्रप्रत्ययारब्ध द्रव्य
(१) चिन्त्य	(१) अचिन्त्य
(२) मीमांस्य	(२) अमीमांस्य
(३) प्रकृतिसमसमवेत	(३) विकृतिविषमसमवेत
(४) युक्तियुक्त	(४) परीक्षासिद्ध, दृष्टफल
(५) Rational	(५) Empirical
(६) गोधूम, दुग्ध, शूकरमांस, आमलकी, धातकी।	(६) यव, मत्स्य, सिंहमांस, घृत, वसा, मुद्ग, माष, दधि, फाणित, दाडिम, कपित्थ, हरीतकी।

समानप्रत्ययारब्ध और विचित्रप्रत्ययारब्ध द्रव्य

द्रव्यनाम	रस, गुण, विपाक, वीर्य	समानप्रत्ययारब्ध या विचित्रप्रत्ययारब्ध	प्रभावजकर्म
१. गोधूम	मधुर, गुरु गुण	समान प्रत्ययारब्ध	वातहर
२. यव	मधुर, गुरु गुण	विचित्र प्रत्ययारब्ध	वातकृत्

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्यनाम	रस, गुण, विपाक वीर्य	समानप्रत्ययारब्ध या विचित्रप्रत्ययारब्ध	प्रभावजकर्म
३. दुग्ध	मधुर, गुरु गुण	समान प्रत्ययारब्ध	शीत वीर्य
४. मत्स्य	मधुर, गुरु गुण	विचित्र प्रत्ययारब्ध	उष्ण वीर्य
५. शूकर मांस	मधुर, गुरु गुण	समान प्रत्ययारब्ध	मधुर विपाकी
६. सिंह मांस	मधुर, गुरु गुण	विचित्र प्रत्ययारब्ध	कटु विपाकी
७. घृत	मधुर, शीत वीर्य	विचित्र प्रत्ययारब्ध	अग्निदीपन
द. वसा	मधुर, उष्ण वीर्य	विचित्र प्रत्ययारब्ध	अग्निमान्द्यकर
९. मुद्ग	मधुर, कटु विपाक	विचित्र प्रत्ययारब्ध	पित्तशमन
१०. माष	मधुर, मधुर विपाक	विचित्र प्रत्ययारब्ध	पित्तवर्धक
११. फाणित (राब)	स्निग्ध, गुरु, उष्णवीर्य	विचित्र प्रत्ययारब्ध	वातवर्धक
१२. दधि	मधुर, गुरु गुण	विचित्र प्रत्ययारब्ध	अग्निदीपन
१३. पारावत	मधुर, गुरु गुण	विचित्र प्रत्ययारब्ध	अग्निसादकृत्
१४. दाड़िम	अम्ल रस	विचित्र प्रत्ययारब्ध	ग्राही
१५. कपित्थ	अम्ल रस	विचित्र प्रत्ययारब्ध	ग्राही
१६. आमलकी	अम्ल रस	समान प्रत्ययारब्ध	स्रंसन
१७. धातकी	कषाय, शीतवीर्य	समान प्रत्ययारब्ध	ग्राही, शीतवीर्य
१८. हरीतकी	कषाय, उष्ण वीर्य	विचित्र प्रत्ययारब्ध	रेचन, उष्ण वीर्य

विचित्र प्रत्ययारब्ध द्रव्यों के जो कर्म रस वीर्य विपाक से विपरीत निर्दिष्ट किये गये हैं। वे इनके द्रव्यगत प्रभाव से होते हैं।

(१) स्वादुर्गुरुश्च गोधूमो वातजिद्वातकृद्यवः। उष्णा मत्स्याः, पयः शीतं, कटुः सिंहो न शूकरः॥ अ० हृ० सू० अ० ९। **(२) यस्माद् दृष्टो यवः स्वादुर्गुरुरप्यनिलप्रदः। दीपनं शीतमप्याज्यं, वसोष्णाऽप्यग्निसादिनी॥ कटुपाकोऽपि पित्तघ्नो मुद्गो, माषस्तु पित्तलः। स्वादुपाकोऽपि चलकृत् स्निग्धोष्णं गुरु फाणितम्॥ कुरुते दधि गुर्वेव वह्निं, पारावतं न तु। कपित्थं दाडिमं ग्राहि साम्लं, नामलकीफलम्॥ कषाया ग्राहिणी शीता धातकी, न हरीतकी।** अ० सं० सू० अ० १७।

महर्षि चरक ने समानप्रत्ययारब्ध और विचित्रप्रत्ययारब्ध द्रव्यों का **प्रकृतिसमसमवेत** (समानप्रत्ययारब्ध) **विकृतिविषमसमवेत** (विचित्र प्रत्ययारब्ध) नाम से वर्णन किया है। **प्रकृत्या समः कारणानुरूपः समवायः प्रकृति समसमवायः।** अर्थात् द्रव्यों में जब पञ्च महाभूतों और रसों का स्वाभाविक रूप से समवाय सम्बन्ध होता है उसको प्रकृति समसमवाय तथा इस प्रकार के रसवाले द्रव्यों को प्रकृति समसमवेत कहते हैं। ऐसे द्रव्यों में कारण के अनुरूप ही कार्य होता है। यानी प्रकृति समसमवेत द्रव्यों के रसानुसार यथारस गुणकर्म भी पाये जाते है। जैसे प्रकृति समसमवेत द्रव्य आम्र में मधुर रस होता है। अतः मधुर रस के सामान्य गुण वात-पित्तहरत्त्व कर्म पाये जाते हैं। अन्य उदाहरण समान प्रत्ययारब्ध द्रव्यों के जानने चाहिए। वंशलोचन, एला, सिता से निर्मित चूर्ण में रूप, रस गुणादि समुदाय में भी विभिन्न अवयवानुरूप स्वरूप एवं गुण कर्म होते हैं। प्रकृति समसमवेत में कारण द्रव्यों के गुणों का उपमर्दन नहीं होता है। **विकृत्या**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विषमः कारणानुरूपः समवायो विकृति विषमसमवायः। अर्थात् द्रव्यों में जब पञ्चमहाभूतों और रसों का विषम या अस्वाभाविक रूप से समवाय सम्बन्ध होता है। उसको विकृति विषम समवाय तथा इस प्रकार के रस वाले द्रव्यों को **विकृतिविषम समवेत** कहते है। ऐसे द्रव्यों में कारण के अनुरूप कार्य नहीं होता है। विकृति विषमसमवेत द्रव्यों में रसानुसार या यथारस गुण कर्म नहीं देखे जाते हैं। जैसे वार्ताक (बैंगन) कटु, तिक्त रस होने से वातकर होना चाहिए किन्तु विकृतिविषम-समवाय से वातकर न होकर वातघ्न होता है। अन्य उदाहरण विचित्रप्रत्ययारब्ध द्रव्यों के समझने चाहिए। विकृति विषमसमवेत में कारण द्रव्यों के गुणों का उपमर्दन करके नये गुण उत्पन्न होते हैं। प्रकृति समसमवेत द्रव्यों में जहाँ मिले हुए अवयवभूत रसों या द्रव्यों के स्वरूप और गुण कर्मों का अवयव या समुदाय रूप से विनिश्चय हो जाता है वहां विकृति विषमसमवेत द्रव्यों में ऐसा नहीं होता है। जैसे पारद और गन्धक के संयोग से निर्मित कज्जली या रस सिन्दूर में दोनों अवयवभूत द्रव्यों से सर्वथा भिन्न ही रूपादि उत्पन्न होते हैं। अतः ऐसे विकृति विष-मसमवेत द्रव्यों के गुण कर्मों का उनके स्वभाव या समुदाय के प्रभाव को देखकर ही निश्चय किया जाता है। जैसे मधु एवं घृत समान मात्रा में मारक होते हैं किन्तु सूर्यावर्त रोग में इनका समान मात्रा में प्रयोग करने पर भी संयोगमहिम्ना से रोग शमनार्थ प्रयोग होता है।

(१) द्विविधो मेलको भवति रसानां दोषाणां च प्रकृत्यनुगुणः प्रकृत्यननुगुणश्च, तत्र यो मिलितानां प्राकृत गुणानुपमर्देन मेलको भवति, स प्रकृतिसमसमवाय शब्देनोच्यते; यस्तु प्राकृत गुणोप-मर्देन भवति स विकृतिविषमसमवाय इत्यर्थः। ×तथायुक्ते समुदय इति विकृतिविषमसमवाये। समुदय प्रभावतत्त्वमिति मेलक प्रभावतत्त्वम्। समधृते हि मधुसर्पिषि सूर्यावर्ताख्ये वा दोषसमुदये न संयुज्यमाना मधुघृतगुणक्रमागतं मारकत्वं, न च वातादिदोषप्रभावगतं सूर्यवृद्ध्या वर्धिष्णुत्वं सूर्यावर्तस्य, किन्तु संयोग महिमकृतमेवेत्यर्थः। च० द० (२) **एवं रसेऽपि यथाम्राते मधुरत्त्वं प्रकृतिसमसमवेतं तत्राम्रातं मधुरमेतन्मात्रमेवोक्तं, तेन मधुरसामान्य गुणागतं तस्य वातपित्तहरत्वमपि लभ्यत एव। यत्र वार्ताके कटुतिक्तत्वेन वातकरत्वं प्राप्तमपि च विकृति विषमसमवायात्तन्न भवति, तत्राचार्येण "वार्ताकं वातघ्नम्"** च० सू० अ० २७। इति कथितम्।

प्रभाव प्राधान्यवाद—(१) द्रव्याश्रित रस गुण वीर्य विपाक प्रभाव पदार्थों में प्रभाव ही सर्वश्रेष्ठ होता है क्योंकि प्रभाव तो द्रव्य का ही स्वभाव होता है। अतः यह द्रव्य स्वभाव होने से शेष सभी पदार्थों का आधारभूत है। **अप्रधानाः पृथक् तस्माद् रसाद्याः संश्रितास्तु ते। प्रभावश्च यतो द्रव्ये, द्रव्यं श्रेष्ठमतोमतम्॥** अ० सं० सू० अ० १७। (२) द्रव्यगत पदार्थों-रस गुण वीर्य विपाक के समान होने पर भी कतिपय द्रव्यों में कर्म वैशिष्ट्य पाया जाता है। एतदर्थ विचित्रप्रत्ययारब्ध, विकृति विषमसमवेत द्रव्यों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं। (३) अगद के दर्शन, श्रवणमात्र से विषनिवारण, वशीकरण, रत्न मणिधारण से उपलब्ध विलक्षण कर्मों के अनुसार भी प्रभाव की श्रेष्ठता सिद्ध होती है, क्योंकि इन विलक्षण कर्मों में द्रव्यगत किन्हीं भी रसादि पदार्थों का कार्य कारणभाव सिद्ध नहीं होता है। द्रव्यगत स्वभाव अमीमांस्य, अचिन्त्य, अनवधारणीय होने से तथा आप्तोपदेश के अनुसार भी प्रभाव सर्वोपरि होता है।

□□

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कर्म विज्ञानीय अष्टम परिच्छेद

आयुर्वेद में पाञ्चभौतिक शरीर के दोष, धातु, मल, अग्नि, स्रोतों की वैषम्य क्रियाओं तथा इन वैषम्य घटकों को साम्यावस्था में लाने के लिए विभिन्न द्रव्यों के प्रयोगोपरान्त जो विभिन्न क्रियाएँ निष्पन्न होती हैं। उन सबका अन्तर्भाव कर्म में होता है।

कर्म का लक्षण एवं स्वरूप—क्रियते इति कर्म–जो किया जाय उसे कर्म कहते हैं। क्रिया के लक्षणों का स्वरूप ही कर्म है। **क्रियालक्षणं कर्म**। र० वै० अ० सू० ८०। (१) **संयोगे च विभागे च कारणं द्रव्यमाश्रितम्। कर्तव्यस्य क्रिया कर्म कर्म नान्यदपेक्षते**। च० सू० अ० १। (२) **एवं द्रव्यमगुणं संयोग विभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम्**। जो संयोग–विभाग में अनपेक्ष कारण या स्वतन्त्र कारण हो द्रव्य में आश्रित हो, अगुण हो उसे कर्म कहते हैं। जिस प्रकार सृष्टि के यावन्मात्र कर्म बिना किसी के संयोग विभाग के नहीं होते हैं। उसी प्रकार द्रव्य भी शरीर में जाकर दोष, धातु, मल, स्रोतों में संयोग विभाग रूप में यत्किञ्चित् क्रिया करता है वही कर्म कहलाता है। **यत् कुर्वन्ति तत् कर्म**। च० सू० अ० २६।

द्रव्याश्रित जो पदार्थ शरीर में जाकर पुनः पुनः संयोग-विभाग करके शरीरस्थ द्रव्यों किंवा शारीर गुणों में परिणत (परिवर्तित) होकर चिन्त्याचिन्त्य विशिष्टरूपेण जायमान हो। वह कर्म कहलाता है। **स्वाश्रयद्रव्याणां संयोगविभागेषु नान्यदपेक्षते, तद्, द्रव्यमेवाश्रित्य संयोगविभागौ पुनः पुनः कृत्वा तानि द्रव्याणि तत्स्थांश्च गुणान्परिणमयत् स्वयं च परिणमत् एकीभूत चिन्त्याचिन्त्यविशिष्टकर्मरूपेण जायमानं समवैति कार्यस्य तत्कर्म**। गंगाधर।

विचारकों का अभिमत है कि समस्त परमाणु मण्डल सदा परिस्पन्दनशील रहता है और इस परिस्पन्दन में उनका एक दूसरे परमाणुओं से संयोग विभाग जारी रहता है। परमाणुओं के संयोग से द्व्यणुक, त्र्यणुक आदि बनने से कार्यद्रव्यों की उत्पत्ति होती है और विभाग से वे कार्यद्रव्य पुनः परमाणु अवस्था प्राप्त कर लेते हैं। यह संयोग विभागात्मक क्रिया नित्यानित्य सभी द्रव्यों में जारी रहती है। संयोग से उत्पन्न कार्यद्रव्यों में उन-उन पार्थिवादि परमाणुरूप नित्य कारणद्रव्यों के गुण कर्म भी समवेत रहते हैं।

चरक ने कर्म के लिए विभिन्न उद्देश्यपरक अनेक संज्ञाओं का उल्लेख किया है। **प्रवृत्तिस्तु खलु चेष्टा कार्यार्था सैव क्रिया कर्म यत्नः कार्यसमारम्भश्च**। च० वि० अ० ८। प्रवृत्तिः—**प्रवर्त्तनम् प्रवृत्तिः**। द्रव्य शरीर में जाकर जो भी प्रवृत्ति-क्रिया करता है, उसे कर्म कहते हैं। **समारम्भ**–किसी भी कर्म की निष्पत्ति के लिए विविध क्रियाओं का क्रमबद्ध समारम्भ होता है। जैसे वमन कर्म के लिए स्थानिक दोषों का सर्वशरीर में प्रसरण, रोमहर्ष, स्वेदागमन, उत्क्लेश, आस्यस्राव, मुख, तालु, ओष्ठ, स्कन्धों का प्रसरण; दोषों का पुनः आमाशय में प्रवेश, आमाशयिक संकोचादि क्रियायें समारम्भक

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कहलाती हैं। जैसे तण्डुलपाक कर्म के लिए चाँवलों को साफ करना, जल में मिलाकर पतीली में रखना, अग्नि पर पकाना, ये सभी क्रियायें तण्डुलपाक कर्म के लिए समारम्भक क्रियायें होती हैं।

चेष्टा-व्यापार—किसी भी कर्म की उत्पत्ति के लिए द्रव्य को शरीर में प्रवेश करना आवश्यक है। वह द्रव्य शरीर में जाकर विभिन्न धातुओं, कोषाणुओं के साथ युगपत् संयोग विभाग क्रिया के परिणामस्वरूप संश्लेषण, विश्लेषण क्रियायें कर अन्ततः वमन विरेचनादि कर्म करता है।

द्रव्यगुण शास्त्र में वमन, विरेचन, बृंहण, लेखन आदि द्रव्यों का जो प्रयोग किया जाता है उसको कर्म कहते हैं। **कर्म पञ्चविधमुक्तं वमनादि। च० सू० अ० २६। एतच्च प्राधान्यादुच्यते, तेन बृंहणाद्यपि बोद्धव्यम्।** च० द०। द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाक भी कर्म के विषय हैं। सुश्रुत ने भी वमन, विरेचन, संशमन, संग्राहिक, दीपन, पीड़न, लेखन, बृंहण, रसायन, वाजीकरण, श्वयथुकर, श्वयथुविलयन, दहन, दारण, मादन, प्राणघ्न, विषप्रशमनादि को औषधकर्म लिखे हैं। **इहौषधकर्माणि ऊर्ध्वाधोभागोभयभाग संशोधनसंशमनसांग्राहिकाग्निदीपनपीडनलेखनबृंहणरसायनवाजीकरणश्वयथुकर—विलयनन्दहन-दारण-मादनःप्राणघ्न-विषप्रशमनादीनि वीर्यप्राधान्याद् भवन्ति।** सु० सू० अ० ४०।

शरीर में द्रव्यों की कार्मुकता की प्रक्रिया—किसी भी आहारौषध द्रव्य का सेवन करने पर शरीर में वह किस प्रकार कार्य करता है; इस महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर आयुर्वेद के मनीषियों ने पर्याप्त सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक चिन्तन के बाद कतिपय सिद्धान्तों की स्पष्ट व्याख्या तथा दिशा निर्दिष्ट की है। उन सिद्धान्तों का यहां संक्षिप्तया विचार आवश्यक है।

द्रव्यों की कार्मुकता विषयक महत्त्वपूर्ण प्रश्न का समाधान आयुर्वेद में पाञ्चभौतिक, त्रिदोष-सिद्धान्त, सामान्य विशेष सिद्धान्तों के आधार पर किया गया है। चिकित्स्य पुरुष षड्धात्वात्मक होने पर भी आत्मा के निर्विकार होने से पञ्चमहाभूत विकार समुदायात्मक रूप शरीर ही चिकित्स्य होता है। (१) **तत्र शरीरं नाम चेतनाधिष्ठानभूतं पञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकं समयोगवाहि।** च० शा० अ० ४। (२) **पञ्चभूतात्मके देहे** × × च० चि० अ० १५। सृष्टि के यावन्मात्र द्रव्य भी पाञ्चभौतिक होते हैं—**सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिकमस्मिन्नर्थे।** च० सू० अ० २६। शरीर के आधारभूत घटक त्रिदोष अग्नि, धातु, उपधातु मल, स्रोत सभी पाञ्चभौतिक होते हैं। जब इन शारीर संघटकों के वृद्धि या क्षय के परिणामस्वरूप विकारोत्पत्ति होती है। तब विषम दोष धातु मलों को साम्यावस्था में स्थापित करना ही चिकित्सा का मुख्य प्रयोजन होता है। इस प्रयोजन सिद्धि के लिए शरीर एवं द्रव्यों में पाञ्चभौतिक संगठन की साम्यता होने से द्रव्यों का विभिन्न युक्तियों से प्रयोग होता है। वे द्रव्य शरीर में जाकर विभिन्न अग्नियों के संयोग से तत्-तत् (द्रव्यगुणानुरूप) पाञ्चभौतिक शारीर गुणों में परिवर्तित हो जाते हैं। **गुणा ये उक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा। स्थानवृद्धिक्षयास्तस्माद् देहिनां द्रव्यहेतुकाः।** सु० सू० अ० ४१। स्वस्थावस्था में भी विभिन्न जैविक-रासायनिक क्रियाओं, ऐच्छिक अनैच्छिक क्रियाओं से दोष धातुओं का जो अनवरत क्षय होता है उनकी पूर्ति भी पाञ्चभौतिक आहार से ही होती है, किन्तु विकारावस्था में इन शारीर गुणों की क्षय या वृद्धि केवल आहार द्रव्यों के द्वारा ही शक्य न होने से विशिष्ट, उत्कृष्ट वीर्य प्रधान गुणों से की जाती है। समानगुण या समानगुण-भूयिष्ठ रसों से समान गुण वाले दोषों की वृद्धि और विपरीत गुण या विपरीतगुण भूयिष्ठ रसों से विपरीत गुण वाले दोषों का ह्रास होता है। **रसदोषसन्निपाते तु ये रसा यैर्दोषैः समानगुणाः**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

समानगुणभूयिष्ठा वा भवन्ति ते तानभिवर्धयन्ति, विपरीतगुणा विपरीतगुणभूयिष्ठा वा शमयन्त्यभ्यस्यमानाः । च० वि० अ० १ ।

द्रव्यों के आहरण के पश्चात् सर्वप्रथम उनका जाठराग्नि की क्रिया से संघातभेद होता है। तत्पश्चात् पाञ्चभौतिकाग्नियों द्वारा अपने अपने गुणों का पाक होने से पृथक् पृथक् पञ्चमहाभूतों के गुणों की उत्पत्ति होती है। भौतिकपाक के बाद सप्तधात्वग्नियां पोषक रस (अन्नरस) से अपनी अपनी नियत आवश्यकतानुसार पाञ्चभौतिक गुणों को ग्रहण करके रस, रक्त, मांसादि स्थायी धातुओं में पाञ्चभौतिक गुरु, लघु, स्थिर मन्द, शीतोष्णादि गुणों को शारीर गुणों के रूप में परिणत करती हैं। **(१) पञ्चभूतात्मके देहे आहारः पाञ्चभौतिकः । विपक्वः पञ्चधा सम्यग्गुणान् स्वानभिवर्धयेत । सु० सू० अ० ४६ । (२) भौमाप्याग्नेयवायव्या पञ्चोष्माणः सनाभसाः । पञ्चाहारगुणान् स्वान् स्वान् पार्थिवादीन् पचन्ति हि । यथास्वं स्वं च पुष्णन्ति देहे द्रव्यगुणाः पृथक् । पार्थिवाः पार्थिवानेव शेषाः शेषांश्च कृत्स्नशः । च० चि० अ० १५ ।** जाठरेणाग्निना पूर्वं कृते संघातभेदे पश्चाद्भूताग्नयः पञ्च स्वं स्वं द्रव्यं पचन्ति। अयं च भूताग्निव्यापारो धातुष्वप्यस्ति, यतो धातुष्वपि पञ्चभूतानि सन्ति, तत्रापि धात्वग्निव्यापारो भूताग्निव्यापारश्च जाठराग्निक्रमेणैवोक्तो ज्ञेयः । च० द० ।

आचार्यों ने सभी औषध द्रव्यों को पाञ्चभौतिक मानकर उनके मूर्त्त गुण (Physical properties) एवं कार्मुक गुणों (Pharmacological properties) का विश्लेषण करते हुए पांच वर्गों में विभजित किया है। पाञ्चभौतिक द्रव्यों में आकाशीय, वायव्य, तैजस, आप्य, पार्थिव द्रव्यों से शरीर में कौन कौन से गुण कर्मों की निष्पत्ति होती है, एतदर्थ विचार द्वितीय परिच्छेद में **पाञ्चभौतिक द्रव्य** सन्दर्भ में पृष्ठाङ्क ९ पर द्रष्टव्य हैं।

रस वैशेषिक के भाष्यकार ने द्रव्य के कर्म निष्पत्ति के सम्बन्ध में एक दृष्टिकोण यह भी लिखा है कि किसी भी द्रव्य की दो प्रकार की क्रियायें होती हैं। एक विभिन्न अवयवों में होनेवाली आवयिक क्रिया और दूसरी समुदायात्मिका क्रिया होती है। उदाहरणार्थ वमन कर्म समुदायात्मक क्रिया है और इसके पूर्व समारम्भक क्रियायें स्नेहन, स्वेदन, आश्वासन, वमन के दिन आहारयोजनादि अवयव क्रियायें हैं। जिस प्रकार लोक में तण्डुलपाक कर्म के पूर्व तण्डुल साफ करना, जल में मिलाकर पतीली में रखना अग्नि पर पकाना, दर्वी से चलाना, छानना अवयव क्रियायें हैं। तण्डुल (भात) कापक कर तैयार होना, समुदायात्मक कर्म है। **अत्र कर्मेति समुदायक्रिया । तस्या लक्षणरूपेण व्यवस्थाप्यमाना लक्षण क्रिया । वमनमिति समुदायक्रिया । स्नेहनस्वेदनाश्वासन तद्दिवसाहारक्रिया अवयव क्रिया तयाभिव्यञ्जते समुदाय क्रियेति । यथा उदकादिभिः तण्डुलधावने दर्वीघट्टनपरिस्रावणपरिवर्तनादयः क्रिया विशेष अवयव ।भाष्य ।**

द्रव्य का कार्मुकस्वरूप और द्रव्यगत पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध—द्रव्य शरीर में में किस प्रकार कार्य करता है ? इस प्रश्न के समाधान क्रम में द्रव्यस्थित रस गुण वीर्य विपाक प्रभाव पदार्थों के परस्पर सम्बन्ध विषयक विचार भी सामयिक है। एतदर्थ द्रव्यगुणशास्त्रियों ने कतिपय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। **(१) द्रव्यगत पदार्थों की स्वाभाविक प्रक्रिया। (२) द्रव्यगत पदार्थों के नैसर्गिक बल साम्य में उत्तरोत्तर पदार्थों द्वारा पूर्व पूर्व पदार्थों का पराभव (३) द्रव्यगत पदार्थों की असमान बलस्थिति में प्रवर बल पदार्थ द्वारा कर्मनिष्पत्ति। (४) द्रव्य के द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव, द्रव्यगुणस्वभाव द्वारा कर्म सम्पादन।**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(१) सामान्यतया मधुर रस द्रव्य विपाक में मधुर तथा वीर्य में शीत होते हैं। अम्ल रस द्रव्य विपाक में अम्ल, वीर्य में उष्ण होते हैं। कटुरस द्रव्यों का विपाक कटु और वीर्य उष्ण होता है। लवणरस वाले द्रव्यों का विपाक मधुर किन्तु वीर्य उष्ण होता है। कषाय, तिक्त रस वाले द्रव्यों का विपाक कटु किन्तु वीर्य शीत होता है। उदाहरणतया दुग्ध एवं घृत रस एवं विपाक में मधुर होने से शीतवीर्य होते हैं। चव्य और चित्रक रस एवं विपाक में कटु होने से उष्णवीर्य होते हैं। इसी प्रकार अन्य द्रव्यों के रसानुसार वीर्य एवं कर्म समझने चाहिएं। सर्व प्रथम प्रत्येक द्रव्य अपने रस से शरीर में कार्य करता है और यदि उसके यथारस ही गुण, विपाक, वीर्य होंगे तो वे रस के कार्य को ही अभिवृद्ध करेंगे। ऐसे द्रव्य प्रायः प्रकृतिसमसमवेत या समानप्रत्ययारब्ध होते हैं।।

(१) शीतं वीर्येण यद् द्रव्यं मधुरं रसपाकयोः। तयोरम्लं यदुष्णं च यद् द्रव्यं कटुकं तयोः। तेषां रसोपदेशेन निर्देश्यो गुणसंग्रहः। वीर्यतोऽविपरीतानां पाकतश्चोपदेक्ष्यते। यथा पयो यथा सर्पिः यथा वा चव्यचित्रकौ।एवमादीनि चान्यानि निर्दिशेद्रसतो भिषक्। च० सू० अ० २६।४७

(२) द्रव्याश्रित रस, विपाक, वीर्य, प्रभाव पदार्थों का नैसर्गिक बल समान बल होने पर विपाक रस को, वीर्य रस और विपाक को तथा प्रभाव रस, वीर्य, विपाक तीनों को अभिभूत कर अपना कार्य करता है। सामान्य स्थिति में रसों का कर्मोत्कर्ष अवस्थापाक तक रहता है। फिर विपाक रसों को अभिभूत करके अपना कार्य सम्पन्न करता है। उत्कृष्ट गुणों से सम्पन्न वीर्य रस और विपाक को अभिभूत कर अपना कार्य करता है। द्रव्यगत प्रभाव अपने अतिशय स्वभाव से तीनों को पराभूत कर कार्य सम्पन्न करता है। उदाहरणतया शुण्ठी के कटु रस को दबाकर मधुर विपाक वृष्य कर्म करता है। बृहत्पञ्चमूल के कषाय, तिक्त रस और कटु विपाक को उष्णवीर्य अभिभूत करके वात का शमन करता है। दन्ती अपने प्रभाव से कटुरस, कटुविपाक, उष्णवीर्य तीनों को दबाकर रेचन करती है। जबकि सामान्यतः कटुरस, कटुविपाकी द्रव्य मल को विबद्ध करते हैं। **रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तान्यपोहति। बलसाम्ये रसादीनामिति नैसर्गिकं बलम्।** च० सू० अ० २६।

(३) द्रव्याश्रित रस, वीर्य, विपाकादि पदार्थों की असमान बलस्थिति में या वैरोधिक स्थिति में जो पदार्थ प्रबल होता है वह अन्य पदार्थों को अभिभूत करके अपना कार्य करता है। द्रव्य अपने प्रवर बल के अनुसार कभी रस से, कभी वीर्य से, कभी विपाक और प्रभाव से अपना कार्य करता है। प्रबल पदार्थ द्वारा अन्य हीन बल पदार्थों का विरोध दो प्रकार का होता है। एक तो स्वरूप विरोध दूसरा कार्य विरोध होता है। **स्वरूप विरोध**-जैसे गुरु लघु में, शीतोष्ण में, **कार्य-विरोध**-जैसे गुरु रूक्ष में, उष्ण, स्निग्ध में। गुरु गुण से श्लेष्मा की वृद्धि होती है। रूक्ष की क्रिया गुरु गुण के विपरीत होती है। स्निग्ध गुण से श्लेष्मा की वृद्धि होती है और उष्णगुण से श्लेष्मा का क्षय होता है।

क्षीर शीत वीर्य होने पर भी मधुर रस, स्निग्ध गुणों की प्रबलता से वातवर्धक न होकर वातशामक होता है। रक्तार्क पुष्प में मधुर तिक्त, पित्तशामक रस प्रबल होते हैं। अतः प्रबल रस कटु-विपाक, उष्णवीर्य को अभिभूत करके रक्तपित्त शामक होता है। मधु मधुर रस होने पर भी कटु-विपाक के प्राबल्य से वात का शमन न करके वातवर्धक होता है। शुण्ठी का प्रबल मधुरविपाक कटु-रस, उष्णवीर्य का पराभव करके वृष्य कर्म करता है। हिङ्गु का प्रबल उष्णवीर्य, कटु तिक्त रस, कटु-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विपाक को अभिभूत करके वात का शमन करता है। माहिष मांस मधुर रस, मधुर विपाको होने पर भी प्रवर उष्णवीर्य से पित्त प्रकोपक होता है । आमलकी अपने प्रबल प्रभाव से अम्लरस, मधुर विपाक शीतवीर्य होने पर भी त्रिदोषशामक होता है। सुरा अम्लरस और अम्ल विपाकी, उष्णवीर्य होने पर भी प्रभाव से क्षीर को उत्पन्न करती है। (१) **यद्यद् द्रव्ये रसादीनां वलवत्त्वेन वर्तते। अभिभूयेतरांस्तत्तत् कारणत्वं प्रपद्यते ॥ विरुद्धगुणसंयोगे भूयसाऽल्पं हि जीयते। अ० हृ० सू० अ० ९। (२) किञ्चित् रसेन कुरुते कर्म वीर्येण चापरम्। द्रव्यं गुणेन पाकेन प्रभावेण च किञ्चन।** अ० संग्रह

(४) द्रव्यगत पदार्थों के परस्पर सम्बन्ध में यह सिद्धान्त सर्वमान्य है कि बल विरोध होने पर भी रस गुण वीर्य विपाक प्रभाव अपने-अपने कर्मों का सर्वथा परित्याग नहीं करते हैं। जिस प्रकार त्रिदोष परस्पर विरोधी होने पर भी अपने-अपने कार्य करते हैं, उसी भांति द्रव्यगत रसादि पदार्थ बलविरोध की स्थिति में भी अपने-अपने कार्य करते हैं। अतः द्रव्य के कतिपय कर्म रस से, गुण से, विपाक से, वीर्य से और प्रभाव से भी होते हैं। किंवा द्रव्यगत रसादि पदार्थ समवेत रूप से अपने-अपने कर्म करते हैं। इस प्रकार द्रव्यगत रस गुण वीर्य विपाक प्रभाव के गुणों की अभिव्यक्ति उसके बाह्याभ्यन्तर प्रयोग से शरीर में उत्पन्न होने वाले कर्मों के द्वारा होती है और वे कर्म चाहे रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव से हों अन्ततः द्रव्य के गुणों के अवबोधक होते हैं। जैसे आमलकी अम्ल, मधुर, कटु, तिक्त, कषाय रस होने से वातश्लेष्महर, शीतवीर्य होने से पित्तहर, मधुरविपाक होने से बृंहण तथा प्रभाव से त्रिदोषहर, अम्लपित्त, रक्तपित्तहर होता है। (१) **विरुद्धा अपि चान्योन्यं रसाद्याः कार्यसाधने। नावश्यं स्युर्विघाताय गुणदोषा मिथो यथा।** अ०सं०सू०अ० १७। (२) **द्रव्याणि हि द्रव्यप्रभावाद् गुणप्रभावाद् द्रव्यगुणप्रभावाच्च कार्मुकाणि भवन्ति।** च० सू० अ० २६। (३) **तद् द्रव्यमात्मना किञ्चित् किञ्चिद्वीर्येण सेवितम्। किञ्चिद्रसविपाकाभ्यां दोषं हन्ति करोति वा।** सु० सू० अ० ४०।

कर्म के विभिन्न प्रकार—औषध द्रव्यों के अधिकरण भेद से (शरीर के शाखा, मर्मास्थि-सन्धि, कोष्ठ-त्रिविध मार्ग) एवं प्रयोग भेद से (बहिःपरिमार्जन, अन्तःपरिमार्जन) द्विविध कर्म होते हैं। प्रथम स्थानिक कर्म (Local action) द्वितीय सार्वदैहिक कर्म (General or Systemic action) होते हैं। **स्थानिक कर्म**—जिन द्रव्यों की क्रिया एक स्थान विशेष पर होती है जैसे नेत्र, मुख, गल, कण्ठ, कर्ण, शिर, आमाशय, पक्वाशय, गर्भाशयादि की आवरणकला, मांस व अन्य स्थानिक धातुओं पर क्रिया होना। नेत्रविकारों में आश्च्योतन, अञ्जन के रूप में त्रिफला, रसाञ्जन का प्रयोग स्थानिक कर्म के लिए होता है। मुख, गल, कण्ठ रोगों में त्रिफला, आरग्वध, जाती, सौभाग्य मध्वादि का प्रयोग कवल, गण्डूष, प्रलेप के रूप में स्थानिक कर्म के लिये होता है। कर्ण विकारों में क्षारतैल, सुदर्शन, समुद्रफेनादि का कर्णपूरण, प्रलेप, प्रधमन के रूप में प्रयोग होता है। त्वग्रोगों में अभ्यङ्ग, परिषेक, प्रलेप के रूप में चक्रमर्द, राल, गन्धबिरोजा, बाकुची, तुत्थादि का प्रयोग होता है। शिरोरोगों में शिरोविरेचन, नस्य प्रयोग, आमाशय के लिए वमन, पक्वाशय के लिए विरेचन, गर्भाशय के लिए उत्तरबस्ति, पिचुधारण, वर्तिधारण स्थानिक कर्म के लिए होता है।

सार्वदैहिक कर्म—जो द्रव्य निष्ठापाक के बाद रस धातु में मिलकर सर्वाङ्ग शरीर पर कार्य करते हैं या किसी विशेष स्रोत या अवयव पर कार्य करते हैं। जैसे—बृंहण, रसायन, रक्तविशोधन, शोथघ्न, मूत्रल द्रव्यों की क्रियायें सम्पूर्ण शरीर को प्रभावित करती हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कतिपय द्रव्यों की क्रियायें सार्वदैहिक होने पर भी उनकी कार्मुकता विशिष्ट स्रोत या धातुओं पर विशेष परिलक्षित होती हैं। जैसे–मूत्रवहस्रोत पर पुनर्नवा, वरुण, तृणपञ्चमूल, गोक्षुर, शिलाजतु; विशेष प्रभावशाली होते हैं। रक्तवहस्रोत में मंजिष्ठा, सारिवा, गुग्गुलु, हरिद्रा एवं रक्तवहस्रोत के अवयवविशेष यकृत् पर कुटकी, रोहितक, ताम्रप्रयोग, प्लीहा पर शरपुंखा का प्रयोग विशेष प्रभावशाली होता है। प्राणवहस्रोत के विशिष्ट अङ्ग मस्तिष्क पर ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी, शंखपुष्पी; हृदय पर अर्जुन, हृत्पत्री, करवीर तथा श्वासमार्ग पर वासा, पुष्करमूल, भार्ङ्गी का प्रयोग तथा आर्त्तववहस्रोत के एक अवयव गर्भाशय पर अशोक, लोध्र, उलट-कम्बल की विशिष्ट क्रियायें परिलक्षित होती हैं।

कतिपय द्रव्यों के कर्मों में मात्रा, वय, प्रकृति, सात्म्यासात्म्य, शोषणादि की विभिन्नता से भी वैशिष्ट्य प्रतीत होता है। एरण्डस्नेह, लिक्विड पैराफिन बिना किसी परिवर्तन के अन्त्र को स्निग्ध कर मलमार्ग से उत्सर्जित हो जाते हैं। धत्तूर एवं मद्य सर्वप्रथम उत्तेजक क्रिया करते हैं। तदनन्तर अवसादन कर्म करते हैं। कुपीलु अल्पमात्रा में अग्निदीपन, तिक्त पौष्टिक होता है किन्तु अधिक मात्रा में आक्षेपकर हो जाता है। वचा अल्पमात्रा में मेध्य किन्तु अधिक मात्रा में वामक होती है।

कतिपय शारीरिक ग्रन्थियों, आशयों की क्रियाहीनता में उनके नैसर्गिक सत्त्व, यूष या कृत्रिम (Synthetic) सत्त्व के रूप में भी प्रयोग होता है। जैसे यकृद्रोगों में लिवर एक्सट्रेक्ट या यकृत्यूष प्रयोग, थायराइड ग्रन्थि के रोग में उसके सत्त्व आयोडीन का प्रयोग, पीयूषग्रन्थि की कार्य-हीनता में पिचुटरी सत्त्व प्रयोग, अग्निमान्द्य में (आमाशयिक पाचक स्रावाल्पता) में पेप्सीन व एञ्जाइम्स प्रयोग; मधुमेह में अग्न्याशयिक अन्तःस्राव इन्सुलीन का प्रयोग किया जाता है।

औषध कर्म के सम्बन्ध में एक सामान्य नियम यह है कि द्रव्य का पाक या परिणाम होने पर क्रमशः रस विपाक, वीर्यादि के द्वारा कर्म होते हैं, किन्तु इस नियम का अपवाद भी पाया जाता है। जैसे व्यवायी, विकासि द्रव्य मद्य और विष बिना किसी पाक या परिणाम की अपेक्षा रखते हुए सीधे रस धातु के साथ मिलकर अपने औषधीय कर्म व्यक्त करने लगते हैं। परन्तु शीघ्र ही इनका विभिन्न धात्वग्नियों के द्वारा पाक भी होता है।

आधुनिक भेषजशास्त्र की दृष्टि से भी औषधियाँ प्रधान (Direct action) और अप्रधान (Indirect action) या प्रतिक्रियात्मक (Reflex action) कर्म करती हैं। जब कोई द्रव्य किसी अङ्ग विशेष (नेत्र, मुख, गल, नासा, आमाशयान्त्रादि) की त्वचा, आवरक-कला, मांस या अन्य धातुओं के सम्पर्क में आते ही जो कर्म करता है वह उसका प्रधान कर्म होता है। कदाचित् कोई औषधि एक स्थान पर प्रयुक्त होती है किन्तु उसका प्रभाव इतर अङ्गों पर भी प्रतिक्रिया द्वारा गौण रूप में परिलक्षित होता है। उदाहरणतया अम्ल द्रव्य को मुख में रखने मात्र से ही आमाशयिक स्रावोत्पत्ति, अक्षि, भ्रू-संकोचनादि प्रतिक्रियात्मक या अप्रधान-गौण कर्म भी होते हैं। कटु रस का रसनोद्वेजक प्रधान कर्म है तथा नेत्र, नासा, मुख से स्रावोत्पत्ति अप्रधान कर्म हैं।

दीपन—(१) **यदग्निकृत् पचेन्नामं दीपनं तद्यथा घृतम्। दीपनं ह्यग्निकृत्त्वामं कदाचित् पाचयेन्न वा।** अ० हृ० सू० अ० १७ अ० द०। (२) **पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिशि।** शा० प्र०ख०अ० ४। (३) **दीपनमन्तरग्नेः सन्धुक्षणं, तस्मै हितं दीपनीयम्।** यो०। जो द्रव्य जाठराग्नि का उद्दीपन करता है, क्षुधा की वृद्धि करता है किन्तु आम (अपक्व अन्नरस) का पाचन नहीं करता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उसे दीपन, अग्निदीपन, दीपनीय (Stomachics) या (Appetiser) कहते हैं। दीपन द्रव्य आमाशय की श्लेष्मलकला को उत्तेजित करके आमाशय से पाचक रसों को उत्पन्न करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करते हैं। आमाशय में पाचक स्रावों की वृद्धि व स्थानिक रस धातु की वृद्धि से क्षुधा की वृद्धि होती है। दीपन द्रव्यों से आमाशयिक रसों की स्वल्प मात्रा में ही उत्पत्ति होती है। अतः उससे आम का परिपाक नहीं होता है। आमाशयिक पाचक रसों की उत्पादक ग्रन्थियाँ स्वल्प उत्तेजना से ही जैसे स्वादिष्ट भोजन को देखने से अम्ल, कटु, सुगन्धित द्रव्यों के मुख में धारण से पाचक स्रावों का निर्माण प्रारम्भ कर देती हैं। जिससे क्षुधा रस का उद्रेक होता है। दीपन द्रव्य अग्नि गुण भूयिष्ठ होने से पाचक पित्त की वृद्धि करते हैं एवं क्लेदक कफ के उपलेप को नष्ट करते हैं। जब अन्न का परिपाक होता हो किन्तु क्षुधा (भूख) ठीक न लगती हो तब दीपन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

दीपन द्रव्य—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, शुण्ठी, अम्लवेतस, मरिच, अजमोदा, भल्लातकास्थि, हिंगु दीपनीयगण के द्रव्य दीपन होते हैं। इनके अतिरिक्त शतपुष्पा (सौंफ) सुगन्धित द्रव्य (एला, दालचीनी, लवंग, तेजपत्रादि) तिक्त द्रव्य-कुचला, भङ्गा, मद्य, द्राक्षासव, काञ्जी, चुक्र, लवण, क्षार भी दीपन कार्य करते हैं।

पाञ्चभौतिक संगठन—दीपन द्रव्य अग्निप्रधान तथा पृथिवी एवं वायु प्रधान होते हैं। (१) **दीपनमग्निगुणभूयिष्ठं, तत्समानत्वात्।** सु० सू० अ० ४१। (२) **पृथिव्यनिलबाहुल्याद्दीपनं परिचक्ष्महे।** र० वै० अ० ४, सू० ३० भा०। सुगन्धित द्रव्य भी दीपन होते हैं। अतः गन्धगुण पृथिवी महाभूत का होने से पार्थिव प्रधान संगठन का उल्लेख समुचित है। दीपन द्रव्य कटु, अम्ल, लवण रस तथा तीक्ष्ण, लघु, उष्ण गुणयुक्त होते हैं। **कटुकाम्ललवणान् रसान्, तीक्ष्णोष्णलघून् गुणांश्चाश्रितमिति, तदग्निनैव निर्वर्त्यम्।** भाष्य।

पाचन—(१) **पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धिपाचनम्। नागकेशरवद्विद्याच्चित्रो दीपन-पाचनः।** शा० प्र० ख० अ० ४। (२) **पचन्तमग्निं प्रतिपक्षक्षपणेन बलदानेन च यत् पाचयति तत् पाचनं।** च० द०। (३) **पचतोऽग्नेः पक्तुं शक्तिमधिकां यदुत्पादयति तद् द्रव्यं क्रिया वा पाचनमुच्यते।** अ० द०। (४) **पाचनं पाचयेद्दोषान् समान शमनमेव तु।** अ० हृ० सू० अ० १४। जो द्रव्य आम (अपक्व अन्नरस) का पाचन करे और जाठराग्नि का सन्धुक्षण नहीं करे उसे पाचन (Digestants, Digestives) कहते हैं। जैसे नागकेशर। **एकीय मत से**—जो द्रव्य आमयुक्त, दोष, धातु, मलों का परिपाक करे और जिसमें जाठराग्नि उद्दीपन का गुण प्रधान न हो वह आम पाचन कहलाता है। अग्नि की पाचन शक्ति को जो अधिक उत्पन्न करे उसे पाचन कहते हैं। आढमल्ल ने इसका हेतु प्रभाव ही माना है। **यद् द्रव्यमामं पचति वह्निं न कुर्यात् तत् पाचनं ज्ञेयं। अत्रापि द्रव्यप्रभावो बोद्धव्यः। तच्च नागकेशरवद्विद्यात् जानीयात्। यतः नागकेशरकं रूक्षमुष्णं लघ्वामपाचनम्।** आ०। जब क्षुधा तो लगती हो किन्तु आहार का परिपाक-जरण ठीक नहीं होता हो वहां पाचन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। एरण्ड कर्कटी (पपीता) का दुग्ध इसका मुख्य उदाहरण है।

पाचन द्रव्य—सुश्रुत ने वचादि, हरिद्रादि गण को दोषपाचन, मुस्तादि गण को पाचन, पिप्पल्यादि, दशमूल के द्रव्यों को पाचन माना है। चरक की दीपनगण की औषधियाँ भी प्रायः पाचन होती हैं। चरक ने सौवीरक, तुषोदक को जरणीय (जरणीयं पाचनः) माना है। अन्य मुख्य पाचन

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य–रसोन, कुपीलु, रास्ना, वत्सनाभ, चित्रक, सूरण, आर्द्रक, यवानी, जीरक, पञ्चलवण, ताम्र, शङ्ख, वराटिका, नरसार, स्वर्जिका क्षारादि हैं।

पाञ्चभौतिक संगठन—पाचन द्रव्य अग्नि या अग्नि-वायु महाभूत प्रधान होते हैं। (१) **अग्नेस्तु गुणबाहुल्यात् पाचनं परिचक्ष्महे।** र० वै० भाष्य। (२) **तच्च वाय्वग्निभूयिष्ठं।** च० द०। जो द्रव्य जाठराग्नि को प्रदीप्त करे और आम का भी पाचन करे उसे **दीपन पाचन** कहते हैं। जब क्षुधानुभूति ठीक न हो और आहार का पाचन भी ठीक न हो तब दीपन पाचन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। जैसे चित्रकमूल।

विदाहि—**द्रव्य स्वभावादथ गौरवाद्वा चिरेण पाकं जाठराग्नियोगात्। पित्तप्रकोपं विदहत् करोति तदन्नपानं कथितं विदाहि।** डल्हण। जो द्रव्य स्वभाव से या गुरु गुण से जाठराग्नि द्वारा चिरपाकी हो, वह विदग्ध होकर पित्त को प्रकुपित कर विदाह उत्पन्न करे, ऐसे अन्नपान को विदाहि कहते हैं। जैसे राजिका, सर्षप, लङ्का (लाल मिर्च), अन्य तीक्ष्ण उष्णवीर्य, कटु, अम्ल, लवण, द्रव्य।

ग्राही—(१) **आग्नेयगुणभूयिष्ठं तोयांशं परिशोषयेत्। संग्रह्णाति मलं तत्तु ग्राहि शुण्ठ्यादयो यथा।** भाव० (२) **दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद् द्रवशोषकम्। ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली।।** शार्ङ्गधर। जो द्रव्य अग्निगुण प्रधान होने से अग्निदीप्तिकर, आमादि का पाचन कर द्रवस्वरूप मलादि (दोष, धातु) का शोषक हो उसे ग्राही कहते हैं। ग्राही द्रव्य कटुरस कटुविपाकी उष्णवीर्य होते हैं जिससे ये अग्नि को दीप्त करते हैं। ग्रहणी में आम का पाचन करते हैं। उष्ण होने से पक्वाशयगत वात का शमन करते हैं और उष्ण होने से ही मल के द्रवांश का शोषण करने से मल को गाढ़ा करते हैं। आढमल्ल ने ग्राही द्रव्यों को आमसंग्राहक और उष्णसंग्राहक भी माना है। **पक्वामग्राहकत्वेन द्विविधं हि संग्राहकम्। तत्र यत् ग्रहण्यामामं संपाच्य वह्निं कृत्वा तत्रस्थं द्रवं च शोषयित्वा संग्रहणं करोति तदुष्णग्राहकं ज्ञेयं।** ग्राही द्रव्यों का चिकित्सा में प्रयोग अतिसार और ग्रहणी में द्रवमल प्रवृति आममल प्रवृति, अग्निमान्द्यादि विकारों में किया जाता है।

ग्राही द्रव्य—शुण्ठी, जीरक, पिप्पली पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, अजमोदा, जायफल, जावित्री, नागकेशर, लवंग, कुपीलु, अतीस, दारुहल्दी, बिल्व, भङ्गा, धान्यक, गन्धक, विविध पर्पटी योग। **पाञ्चभौतिक संगठन**—ग्राही द्रव्य अग्नि महाभूत या वायु-अग्निमहाभूत प्रधान होते है (१) **अग्नि वाय्वात्मकम् अग्नितत्त्व प्रधानम्।** र० वै०४१९। जो द्रव्य अतिमात्रा में द्रवरूप पुरीष का संग्रह या सान्द्र करे उसे पुरीषसंग्रहणीय कहते हैं। (१) **पुरीषस्य अतिसरतः संग्रहणं संग्रहः तत्र हितं पुरीषसंग्रहणीयम्।** यो०। पुरीषसंग्रहणीय द्रव्यों के दो प्रकार होते हैं। प्रथम ग्राही द्वितीय स्तम्भन। पूर्व में ग्राही द्रव्यों का वर्णन किया गया है। आगे स्तम्भन द्रव्यों का वर्णन किया जाता है। वर्तमान प्रचलित धारणा के अनुसार ग्राही कर्म का तात्पर्य मलसंग्रहण से ही समझा जाता है। जो समुचित नही है, अपितु ग्राही संज्ञा से रक्त संग्रहण, मूत्र संग्रहण, पित्तसंग्रहण, तृष्णा-छर्दि निग्रहणादि का भी अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

स्तम्भन—(१) **रौक्ष्यात् शैत्यात् कषायत्वात् लघुपाकाच्च यद् भवेत्। वातकृत् स्तम्भनं तत् स्याद्यथा वत्सकटुण्टुकौ।** शा०। (२) **स्तम्भनं स्तम्भयति यद् गतिमन्तं चलं ध्रुवम्।** च० सू० अ० २२। जो द्रव्य कषाय रस, लघुविपाकी, रूक्षगुण, शीतवीर्य से पक्वाशय में वात की वृद्धि कर पुनः

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुनः उत्सर्जित और द्रवीभूत पुरीष का शोषण करता है। वह स्तम्भन (Astringent) कहलाता है। स्तम्भन में पुरीष के द्रवांश का शोषण वायु से होता है। स्तम्भन द्रव्यों के कषाय रस से पक्वाशय की स्थानिक धातुओं का संकोच तथा द्रव का शोषण भी होता है। जब पुरीष आमरहित हो (पुरीष के पक्व लक्षण होने पर) और पुनः पुनः द्रवमल-प्रवृति हो तब स्तम्भन द्रव्यों का प्रयोग हितावह होता है। आढमल्ल ने स्तम्भन द्रव्यों को शीतसंग्राहक, पक्वसंग्राहक भी लिखा है। **यद् द्रव्यमतिसारादौ पक्वमलादिकं संस्तभ्य संग्रहं करोति तच्छीतसंग्राहकं ज्ञेयं। आ०।**

स्तम्भन द्रव्य—श्योनाक, कुटज, इन्द्रयव, लोध्र, मोचरस, धातकी पुष्प, आम्रास्थि, खदिर-सार, माजूफल, स्वर्णगैरिक, सुश्रुतोक्त न्यग्रोधादि, प्रियंग्वादि, अम्बष्ठादि गण के द्रव्य। चरकोक्त पुरीषसंग्रहणीय द्रव्य–प्रियङ्गु, सारिवा, आम्रास्थि, मोचरस, लोध्र, मंजिष्ठा, धातकी पुष्प, पद्मक, श्योनाक स्तम्भन कर्म प्रधान द्रव्य हैं।

पाञ्च भौतिक संगठन—स्तम्भन द्रव्य वायु महाभूत प्रधान या पृथिवी-वायु गुण प्रधान होते हैं (१) **एतदनिलभूयिष्ठं।** आढमल्ल। (२) **सांग्राहिकं तत् पार्थिववायव्यम्।** र० वै० ४।९। स्तम्भन द्रव्य शीत, मन्द, मृदु, श्लक्ष्ण, रूक्ष, सूक्ष्म, द्रव, स्थिर, लघु गुणभूयिष्ठ होते हैं।

रेचन—दोषहरणमधोभागं विरेचनसंज्ञकम्। च०क० अ० १। **अधो गुदेन दोषनिर्हरणं भजत इत्यधोभागम्।** च० द०। जो द्रव्य अधोभाग-गुदमार्ग से दोषों का निर्हरण करे, उसे रेचन, विरेचन, अनुलोमनीय, अधोभागहर कहते हैं।

रेचन कर्म की प्रक्रिया—महर्षि चरक ने विरेचन द्रव्यों की प्रक्रिया का स्पष्ट विवेचन किया है। जो इस प्रकार है —उष्ण, तीक्ष्ण, सर, सूक्ष्म, विकासी व्यवायीगुण युक्त विरेचन द्रव्य अपने स्वभाव (प्रभाव) से हृदय में पहुँचकर, सूक्ष्म, व्यवायी गुणों से धमनियों द्वारा स्थूल और सूक्ष्म स्रोतों में होकर सम्पूर्ण शरीर में पहुँचते हैं। रेचन द्रव्य आग्नेयगुण से शरीर में स्थित दोष संघात को द्रवी-भूत तथा अन्नवह, पुरीषवह स्रोतों में जाकर विष्यन्दन कर्म करके कलाओं से द्रव विष्यन्दन कराते हैं। तीक्ष्णगुण से दोषसंघात का भेदन करते हैं। द्रवीभूत, विच्छिन्न दोष सर्वशरीर में परिसरणशील होकर पूर्व में किये गये स्नेहन, स्वेदन कर्मों से शरीरावयवों में अश्लिष्टरूप में (असंसक्त-जिस प्रकार स्नेहा-सिक्त पात्र में मधु नहीं चिपकता है) कोष्ठाभिमुखगमनशील होने से अधो आमाशय में आता है। रेचन द्रव्य पृथिवी जलमहाभूत गुण वैशिष्ट्य होने से अपने स्वभाव से अपानवायु के सहयोग से दोषों को अधोगति प्रदान कर गुद मार्ग से बाहर निकालते हैं। **तत्रोष्ण-तीक्ष्ण-सूक्ष्म-व्यवायि-विकाशीन्यौषधानि स्ववीर्येण हृदयमुपेत्य, धमनीरनुसृत्य स्थूलाणुस्रोतोभ्यः केवलं शरीरगतं दोषसंघातमाग्नेयत्वाद्विष्यन्दयन्ति तैक्ष्ण्याद्विच्छिन्दन्ति, स विच्छिन्नः परिप्लवन् स्नेहभाविते काये स्नेहाक्तभाजनस्थमिव क्षौद्रमसज्जन्ननु-प्रवणभावादामाशयमागम्य सलिलपृथिव्यात्मकत्वाधोभागप्रभावाच्चौषधस्यापानप्रणुन्नोऽधप्रवर्तते।** च० क० अ० १।

विरेचन द्रव्य अन्त्र द्वारा जल के शोषण में अवरोध उत्पन्न करने से द्रवत्व की वृद्धि करते हैं तथा अशोष्य पार्थिवांश की मात्रावृद्धि कर मलकी मात्रा में वृद्धि करते हैं। पाचनकर्म में विघात करते हैं। अन्त्रगत पेशियों और नाडियों को उत्तेजित कर या क्षुद्रान्त्र, बृहदान्त्र में क्षोभ उत्पन्न कर अन्त्र की पुरस्सरणगति की वृद्धि करने से रेचन करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विरेचन की उपयोगिता—(१) पित्त दोष के शोधन के लिए विरेचन सर्वश्रेष्ठ होता है। **विरेचनं पित्तहराणाम्**। च०सू०अ० २५।(२)महर्षि चरक ने सिद्धिस्थान के अध्याय दो में कुष्ठ, ज्वर प्रमेहादि विकारों एवं पैत्तिक विकारों के विरेचन साध्य होने का निर्देश प्रतिपादित किया है। (३) चिकित्सा कर्म में विभिन्न प्रयोजनों की दृष्टि से भी विरेचन का प्रयोग किया जाता है। (क) मुख्यतया विबन्ध, आनाह, अर्श, उदावर्त्तादि में मलावरोध को दूर करने के लिए विरेचन का प्रयोग होता है। (ख) ज्वरावस्था में सन्ताप कम करने के लिए। (ग) शोथ में जलीयांश को पुरीष द्वारा निष्कासित करने के लिए।(घ) शरीरस्थ विष या रक्तगत मल द्रव्यों, अन्त्रगत क्षोभक द्रव्यों को बाहर निकालने के लिए अन्त्र के विषाक्त प्रभाव को कम करने के लिए। (ङ) रक्तचाप कम करने के लिए भी विरेचन द्रव्यों का प्रयोग होता है।

उत्तम विरेचन द्रव्य—उत्तम विरेचन द्रव्य वह है, जिसकी क्रिया अन्त्र के अतिरिक्त किसी अन्य अङ्ग पर नहीं होती है, और आमाशय, पक्वाशय, गुद मार्ग पर क्षोभक क्रिया भी नहीं होती है। वह विरेचक द्रव्य अन्त्र में ही पहुँचकर ही क्रियाशील होता है। उत्तम विरेचन द्रव्य के प्रयोग से अनुपद्रव रूप से क्रमशः पुरीष, पित्त, कफ दोषों का निर्हरण होने से स्रोतों की विशुद्धि, अग्निदीप्ति एवं लाघवादि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

पाञ्चभौतिक संगठन—विरेचन द्रव्य पृथिवी जल महाभूत गुण प्रधान होते हैं। (१) **विरेचन द्रव्याणि पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठानि** ×× । सु० सू० अ० ४१। (२) **अब्भूमिजमधोभागम्**। र० वै० अ० ४ सू० ३० भाष्य।

विरेचन के भेद—चरक ने (१) **सुख विरेचन**—निशोथ (२) **मृदु विरेचन**—आरग्वध (३) **तीक्ष्ण विरेचन**—स्नुही क्षीर, इस प्रकार तीन भेद माने हैं। **त्रिवृत् सुखविरेचनानाम्, चतुरङ्गुलो मृदुविरेचनानाम्, स्नुक्पयस्तीक्ष्णविरेचनानाम्**। च० सू० अ० २५।

क्रिया वैशिष्ट्य के अनुसार विरेचन द्रव्यों को निम्न प्रकारों में विभाजित किया जाता है—

(१) अनुलोमन-सर (Laxatives) मृदुविरेचन
(२) स्रंसन (Simple purgatives) सुख विरेचन
(३) भेदन (Draustic purgatives) तीक्ष्णविरेचन
(४) विरेचन (Hydragogue purgatives)
(५) पित्त विरेचन (Cholagogue purgatives)
(६) लवण विरेचन (Saline purgatives)

सामान्य विरेचन में अनुलोमन और स्रंसन आते हैं और विशेष विरेचन में भेदन, रेचन, पित्त विरेचन, लवण विरेचन आते हैं।

अनुलोमन-सर—(१) **सरोऽनुलोमनः प्रोक्तः**। सु० सू० अ० ४६। **अनुलोमनो वातमलप्रवर्तकः**। डल्हण। (२) **कृत्वापाकं मलानां यद्भित्त्वा बन्धमधो नयेत्। तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी**। शा० प्र० ख० अ० ४। जो द्रव्य बद्ध मलों (वात, मूत्र, पुरीषादि) और दोषों को पकाकर पाचन क्रिया को अबाधित करते हुए मल बन्धन को भेदन करके अधोमार्ग द्वारा बाहर निकालते हैं उनको अनुलोमन या सर (मृदु-सुखविरेचन) कहते हैं। जैसे-हरीतकी। **अनुलोमन द्रव्य**—

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्राक्षा, आमलकी, विभीतक, बदर, राजबदर, पीलुफल, परूषक, इसबगोल, आलुबोखारा, अम्लिका, गुलाब के पुष्प, उन्नाव, शतपुष्पा, श्लेष्मान्तक, गावजबां, मधुयष्टि, एरण्डस्नेह, जैतून का तैल, बादाम तैल, अतसी (अलसी) तैल, घृत, दुग्ध, इक्षुरस आदि।

स्रंसन—(१) पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम्। नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात् कृतमालकः॥ शा० प्र०ख०अ० ४। (२) **पित्तं वा कफपित्तं वा पित्ताशयगतं हरेत्। स्रंसनं।** च० चि० अ० ३। जो द्रव्य कोष्ठ (पाचकस्थान-पित्ताशय) में श्लिष्ट-चिपके हुए पच्यमान मलों या कफ पित्त दोषों की अपक्व रूप में ही अधोगति करता है, उसे स्रंसन कहते हैं। जैसे—अमलतास। स्रंसन शब्द का विरेचन सामान्य में भी प्रयोग होता है। **स्रंसनं विरेचनम्।** यो०। स्रंसन द्रव्यों की क्रिया अनुलोमन द्रव्यों की अपेक्षा तीव्र होती है। ये द्रव्य अपक्व या पक्व श्लिष्ट मल को अन्त्र की पुरस्सरण गति की वृद्धि कर या उत्तेजित कर ढ़ीला करके बाहर निकालते हैं। स्रंसन द्रव्य पाचन क्रिया में भी बाधा उत्पन्न करते हैं। **स्रंसन द्रव्य**—मार्कण्डिका (सनाय), एलुवा, पीतमूला (रेवन्दचीनी), त्रिवृत्, कम्पिल्लक, त्रिफला, कालमेघ, एरण्डस्नेह, गोरोचन, पारद आदि।

भेदन—(१) मलादिकमबद्धं च बद्धं वा पिण्डितं मलैः। भित्त्वाऽधः पातयति तद्भेदनं कटुकी यथा॥ शा० प्र० ख० अ० ४। **(२) भेदनं पिण्डितमलानां द्रवीकृत्य वहिःसारणं, तस्मै हितम्।** यो०। जो द्रव्य अबद्ध (द्रवस्वरूप) या बद्धमल-परिपक्व-पिण्डित (जमे हुए) पुरीष और ग्रथित दोषादि के विबन्ध का भेदनकर द्रवीभूत करके बाहर निकालता है, उसे भेदन कहते हैं जैसे—कुटकी। भेदन द्रव्य बलपूर्वक बद्ध या पिण्डित, पक्व अपक्व मलों का भेदन कर (अन्त्र द्वारा जल शोषण की क्रिया में व्यवधानकर, तथा श्लेष्मल कला से जल विष्यन्दन कर) अन्त्र की पुरस्सरण गति की वृद्धि कर द्रवरूप में मल और दोषों का निर्हरण करते हैं। **भेदन द्रव्य**—कुटकी, त्रिवृत् (श्वेतनिशोथ) श्यामा (कृष्ण निशोथ) एरण्ड, अर्कक्षीर, दन्ती, स्नुहीक्षीर, इन्द्रायण, स्वर्णक्षीरी, करञ्ज, कलिहारी, महानिम्ब, चित्रकमूल, कम्पिल्लक। चरकोक्त भेदनीय गण, सुश्रुतोक्त श्यामादिगण के द्रव्य।

विरेचन—विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत्। रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा॥ शा० प्र० खं० अ० ४। जो द्रव्य अपक्व या पक्व मल को द्रवीभूत करके वेगपूर्वक निकालता है। वह रेचन, विरेचन द्रव्य कहलाता है। इसको तीव्र विरेचन या तीक्ष्ण विरेचन भी कहते हैं। तीक्ष्ण विरेचन द्रव्य की क्रिया भेदन की अपेक्षा तीव्रतर होती है, और आमाशय व पक्वाशय दोनों की क्रियाओं पर प्रभाव करता है। विरेचन द्रव्य अन्त्र की श्लेष्मलकला से अधिक मात्रा में द्रव का निष्कासन कर, अन्त्र की गति वृद्धिकर, उद्वेष्टन एवं दाह उत्पन्न कर वेगपूर्वक द्रवमल निकालते हैं। **विरेचन द्रव्य**—जलापा हरड़, जयपाल, स्नुही, कृष्णबीज, पीतमूला, (रेवन्द चीनी), एलुआ, निशोथ, सनाय, रसकर्पूर, स्नुही इन्द्रायण सुश्रुतोक्त श्यामादिगण, चरकोक्त भेदनीय गण के द्रव्यों का अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर तीव्र विरेचन क्रिया करते हैं। **पित्त विरेचन द्रव्य**—एलुआ, कुटकी, पीतमूला (रेवन्दचीनी), जलापा, निशोथ आदि। **लवण विरेचन द्रव्य**—सामुद्र लवण, सैन्धवलवण, काण्डलवण, अर्कलवण, नारिकेल लवण, क्षार के योग।

संशोधन—(१) यदीरयेद्बहिर्दोषान् पञ्चधाशोधनम् हि तत्। अ०हृ०सू०अ० १४। (२) **स्थानाद्बहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसंचयम्। देहे तच्छोधनं यत्स्याद्वेदाली फलं यथा।** शा० प्र० खं० अ०

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

४। जो द्रव्य शरीर के स्थानिक या सार्वाङ्गिक दोष-धातु मलों से संचित मलों को ऊर्ध्व या अधोमार्ग से बाहर निकाले उसे संशोधन कहते हैं। जैसे–देवदाली फल। संशोधन के बहिराश्रय एवं आभ्यन्तराश्रय दो प्रकार होते हैं। बहिराश्रयशोधन में शस्त्र, क्षार, अग्नि, प्रलेपादि का समावेश होता है। आभ्यन्तराश्रय शोधन में चरक के अनुसार वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, शिरोविरेचन, वाग्भट्ट के अनुसार वमन, विरेचन, आस्थापन, शिरोविरेचन, रक्तमोक्षण कर्मों का अन्तर्भाव होता है। शार्ङ्गधर के अनुसार वमन, विरेचन, आस्थापन, रक्तमोक्षण, **यतः शोधनं द्विविधमाचक्षते, बहिराश्रयमाभ्यन्तराश्रयं च। तत्र बहिराश्रयं शस्त्रक्षाराग्निप्रलेपादयः। आभ्यन्तराश्रयं तु चतुष्प्रकारकम्। वमनरेचनास्थापनशोणितमोक्षणं च। एके शिरोविरेचनं मन्यन्ते। तच्चात्र वमनान्तर्गतं बोद्धव्यम्, ऊर्ध्वशोधनत्वात्।** आढमल्ल। **संशोधन द्रव्य**–तिक्त, कटु, कषाय, लवण रस प्रधान एवं उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायी, विकाशि गुणयुक्त द्रव्य वमन, विरेचन या उभयकर्म कराने में समर्थ होते हैं। विरेचन कर्म प्रक्रिया के सम्बन्ध में पृष्ठाङ्क ९२ पर विचार किया गया है।

वमन-ऊर्ध्वभागहर—(१) **दोषहरणमूर्ध्वभागं वमनसंज्ञकम्।** च० क० अ० १। (२) **ऊर्ध्वमुखेन दोषनिर्हरणं भजत इत्यूर्ध्वभागम्।** च० द०। (३) **अपक्वपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत्तु यत्। वमनं तद्धि विज्ञेयं, मदनस्य फलं यथा।** शा० प्र०खं०अ० ४। जो द्रव्य शरीर के ऊर्ध्वभाग से (मुख मार्ग से) अपक्वपित्त एवं श्लेष्मा को बलपूर्वक निकालते हैं, वमन द्रव्य कहलाते हैं। जैसे मदनफल। **वमनकर्म प्रक्रिया**—महर्षि चरक ने वमन क्रिया का सविस्तार वर्णन किया है। एतदर्थ विरेचन द्रव्य सन्दर्भ में विरेचन प्रक्रिया का उल्लेख किया है। वह भी द्रष्टव्य है। मात्र अन्तर यह होता है कि वमन द्रव्य आग्नेय व वायव्यगुणभूयिष्ठ होने से भूतस्वभाव गुण से दोषों की गति ऊर्ध्व करके मुखमार्ग से बाहर निकालते हैं।

वमनद्रव्य—मदनफल, देवदाली, इक्ष्वाकु, धामार्गव, कोशातकी, कुटज, बिम्बी, अर्क, निम्ब इन्द्रायण, सर्षप, करञ्ज, काञ्चनार, वचा, लवण आदि द्रव्य।

वमनोपग—जो द्रव्य वमन द्रव्यों के साथ वमन कर्म में सौकर्य एवं गुण वर्धन के लिए सहायक रूप में प्रयुक्त होते हैं। उन्हें वमनोपग कहते हैं, जैसे मधु, सैन्धवलवण, मधुयष्टि, तथा चरकोक्त-वमनोपग गण के द्रव्य।

विरेचनोपग--जो द्रव्य विरेचन द्रव्यों के साथ विरेचन कर्म में सौकर्य्य एवं विरेचन शक्ति को बढाने के लिए सहायक रूप में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें विरेचनोपग कहते हैं। जैसे द्राक्षा, गम्भारीफल, आमलकी हरीतकी, पीलु, विभीतक, बदर, तथा चरकोक्त विरेचनोपग गण के शेष द्रव्य।

कृमिघ्न—जो द्रव्य उदरगत विभिन्न प्रकार के क्रिमियों को बाहर निकालते हैं, या नष्ट कर देते हैं, उन्हें कृमिघ्न (Anthelmintics) कहते हैं। **कृमीन् हन्तीति कृमिघ्नम्।** इसके (१) कृमिकर्षण-कृमिपातन (२) कृमिघ्न-क्रिमिहर (३) क्रिमिविकारप्रशमन तीन भेद होते हैं। इनमें क्रिमिविकारघ्न तथा कृमिहर सामान्य क्रिमिनाशक द्रव्य होते हैं। जैसे विडङ्ग, पलाश, निर्गुण्डी, शोभाञ्जन, मिर्च, करञ्ज, अपामार्ग, बाकुची, अर्क, लांगली, अपराजिता, इङ्गुदी, छिक्किणी, करवीर, सप्तपर्ण, निम्ब, हरिद्रा, कुटज, हिङ्गु, भल्लातक, अतिविषा, दाडिममूलत्वक्, वनपलाण्डु, पारसीकयवानी, कीटमारीयवानी, यवानी, नाड़ीहिङ्गु, कर्पूर, तारपीन तैल, एरण्ड तैल।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विशिष्ट कृमिनाशक द्रव्य—(१) **गण्डूपद** (Round worm) **क्रिमिघ्न द्रव्य**—पलाश, कीटमारी यवानी, कम्पिल्लक, अनारमूलत्वक्, कद्दू के बीज, पारसीकयवानी, सेन्टोनीन, तारपीन तैल, आदि। (२) **अंकुशकृमि** (Hook worm) अजवायनसत्त्व, विडङ्ग, मुस्तक, कर्पूर, कम्पिल्लक, हिङ्गु, हरिद्रा, चिनापोडियम तैल, तारपीन तैल। (३) **स्फीतकृमि**—(Tape worm) विडङ्ग, कम्पिल्लक, पूगफल, अनारमूलत्वक्। (४) **सूत्र क्रिमि**–(Thread worm) में लवण, फिटकरी, कलम्बा, एलुवा के विलयन या कटु तिक्तरस द्रव्यों-चित्रक, सप्तपर्ण, चिरायता के क्वाथ से आस्थापन बस्ति प्रयोग करना चाहिए। (५) **उदर क्रिमि विरेचक द्रव्य**—उदरस्थ कृमियों को मारकर या जीवितावस्था में बाहर निकाल देते हैं। जैसे—कम्पिल्लक, जलापा, उशारेरेवन्द, इन्द्रायणक्वाथ। **बाह्यकृमिघ्न**—जो द्रव्य त्वचा स्थित यूका, लिक्षा आदि बाह्य क्रिमियों को नष्ट करते हैं। जैसे—निम्बफल तैल (निमोली का तैल) कट्फल, हरिद्रा, बचा आदि द्रव्य हैं।

संशमन—(१) **न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि। समीकरोति विषमान् शमनं तच्च सप्तधा॥ पाचनं दीपनं क्षुत्तृड्व्यायामातपमारुताः। बृंहणं शमनं त्वेव वायोः पित्तानिलस्य च।** अ० हृ० सू० अ० १४। (२) **न शोधयति न द्वेष्टि समान् दोषांस्तथोद्धतान् समीकरोति विषमाञ्छमनं तद्यथाऽमृता॥** शा० प्र० खं० अ० ४। जो औषध द्रव्य वातादि दोषों का शोधन नहीं करता है। (अन्तः स्थित दोषों को बाहर नही निकालता है)। समदोषों का उदीरण या उत्क्लेश नहीं करता है। वृद्ध या हीन दोषों (दोष, धातु, मल) को समावस्था में करता है उसे शमन द्रव्य कहते हैं। शमन में पाचन, दीपन, क्षुत्, तृष्णा, व्यायाम, मारुत-आतपसेवन कर्मों का अन्तर्भाव होता है। शमन द्रव्य जैसे गुड़ची। वातसंशमन पित्तसंशमन, कफसंशमन द्रव्यों का द्रव्यवर्गीकरण नवम परिच्छेद में उल्लेख किया गया है। **संशमन द्रव्य** आकाशगुणभूयिष्ठ होते हैं। **आकाशगुणभूयिष्ठं संशमनम्।** सु० सू० अ० ४१। रस वैशेषिककार के मतानुसार शमनद्रव्य वायु-जल-पृथिवी महाभूत प्रधान होते हैं। **वायु-सोम-महीजातं तथा संशमनं विदुः।**

लेखन—(१) **धातून् मलान् वा देहस्यविशोष्योल्लेखयेच्च यत्। लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचा यवाः॥** शा० प्र० ख० अ० ४। (२) **यद् द्रव्यं धातून् रसादीन् मलान् वा विशोष्य शुष्कान् कृत्वा, लेखयेत् स्थूलस्य कृशतां कारयेत् तल्लेखनम्।** आढमल्ल (३) **लेखनं देहे उपलेपादिकान् भावान् विच्छिनत्ति।** इन्दुः। (४) **लेखनं पत्तलीकरणम्।** सु० सू० अ० ४०। ड०। जो द्रव्य शरीर के रसादि धातुओं-विशेषतया (मेद मांस धातुओं) कफ दोष को सुखाकर शरीर को कृश-पतला करते हैं वे लेखन कहलाते हैं। लङ्घन द्रव्यों का कार्मुक स्वरूप भी लेखन द्रव्यों के समान होता है। **लेखनद्रव्य**—मधु, वचा, उष्णोदक, मुस्तक, कुष्ठ, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, अतिविषा, कटुरोहिणी, चित्रक, चिरबिल्व (चरकोक्त लेखनगण) विडङ्ग, खदिर, इरिमेद, धव, सर्ज, शिरीष–शेष सुश्रुतोक्त सालसारादिगण के द्रव्य। **भौतिक संगठन**—लेखन द्रव्य वायु–अग्नि महाभूतगुणप्रधान होते हैं। **लेखनमनिलानलगुणभूयिष्ठम्।** सु० सू० अ० ४१।

छेदन—(१) **श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद्बलात्। छेदनं तद्यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु॥** शा० प्र०ख०अ० ४। जो द्रव्य शरीर के स्रोतों में श्लिष्ट-चिपके हुए कफादि दोषों को (आदि ग्रहणेन वातपित्तशोणितकृमिग्रहणम्) अपनी शक्ति से स्वस्थानों से उच्छेदन (पृथक् करना) करे उसे छेदन कहते हैं। जैसे यवक्षार, क्षारद्रव्य, काली मिर्च, शिलाजतु, हिङ्गु आदि द्रव्य।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मादक—(१) बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते। तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम्। जो द्रव्य तमोगुण या रजोगुण प्रधान होने से बुद्धि का लोप (नाश-विकृत) करके मद उत्पन्न करते हैं। उन्हें मादक, मदकारि (Narcotics-Delirifacients) कहते हैं। मादक द्रव्य अपने तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, रूक्ष, लघु, उष्ण, व्यवायी, आशुकारी, विकासि, विशद ओज के विपरीत गुणों से हृदय में प्रविष्ट होकर ओज के मृदु, श्लक्ष्ण, मधुर, स्निग्ध, गुरु, शीत, सान्द्र, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल गुणों को नष्ट करके ओज को क्षुब्ध कर हृदय को विकृत करते हैं। जिससे तदाश्रित मन को भी क्षुब्ध करके मद (नशा) उत्पन्न करते हैं। **मादक द्रव्य**—भांग, अहिफेन, मद्य, सुरा आदि द्रव्य। **भौतिक संगठन**—मादक द्रव्य अग्नि-वायु महाभूत गुणप्रधान होते हैं।.....**मदनीयम्। तदाग्नेयं वायव्यं च।** र० वै० ४।११।

प्रमाथि—(१) निजवीर्येण यद् द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसंचयम्। निरस्यति प्रमाथि स्यात्, तद्यथा मरिचं वचा॥ शा० प्र० ख० अ० ४। **(२) यद् द्रव्यं निजवीर्येण स्वप्रभावेण स्रोतोभ्यो रस-वाहिसिरामार्गेभ्यो, दोषसंचयं निरस्यति दूरी करोति, तत् प्रमाथि स्यात्।** आढ०। जो द्रव्य अपने वीर्य-शक्ति से रसादिवह सिराओं-स्रोतों तथा कर्ण, मुख, नासिका आदि के छिद्रों से दोषबाहुल्य-दोषसंचय को दूर करे, वह प्रमाथि कहलाता है। **द्रव्य**—कालीमिर्च, वचा। प्रमाथि द्रव्य अग्नि-वायु भूत प्रधान होते हैं।

विकाशि—(१) विकासी विकसन्नेवं धातुबन्धान् विमोक्षयेत्। सु० सू० अ० ४६। **(२) अपक्व एव सकलं देहं व्याप्य धातुबन्धान् विमोक्षयेत्, धातुशैथिल्यं करोति।** ड०। **(३) सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति विकाशि तत्। विश्लिष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवाः॥** शा० प्र० ख० अ० ४। जो द्रव्य जाठराग्नि द्वारा पाक के पूर्व ही शरीर में व्याप्त होकर धातुओं से ओज को विभक्त (पृथक्) करके धातुओं को शिथिल करता है, वह विकाशि कहलाता है। जैसे अपक्व पूगफल और कोद्रव (कोदों धान्य विशेष-कुधान्य विशेष) आदि द्रव्य।

व्यवायि—(१) व्यवायी चाखिलं देहं व्याप्य पाकाय गच्छति। सु० सू० अ० ४६। **(२) पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति। व्यवायि तद्यथा-भङ्गा फेनं चाहिससमुद्भवम्॥** शा० प्र० ख० अ० ४। जो द्रव्य जाठराग्नि द्वारा पाक के पूर्व ही अपने प्रभाव से रसधातु में व्याप्त होकर सम्पूर्ण शरीर में अपने गुणकर्मों को व्यक्त करने के पश्चात् जाठराग्नि संयोग से पाक स्थिति को प्राप्त करता है। वह व्यवायी कहलाता है। जैसे भङ्गा, अहिफेन, वत्सनाभ, मद्य, विषाक्त द्रव्य। व्यवायि द्रव्य आकाश-वायुगुण भूयिष्ठ होते हैं।

सूक्ष्म—(१) सूक्ष्मस्तु सौक्ष्म्यात् सूक्ष्मेषु स्रोतःस्वनुसरः स्मृतः। सु० सू० अ० ४६। **(२) देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद्यत् सूक्ष्ममुच्यते। तद्यथा सैन्धवं क्षौद्रं निम्बतैलं रूबूद्भवम्।** जो द्रव्य शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्रोतों (रोमकूप व स्रोतों के सूक्ष्म छिद्रों) में प्रविष्ट होकर अपने गुण कर्म व्यक्त करे, वह सूक्ष्म कहलाता है। जैसे—मधु, सैन्धवलवण, तिलतैल, नीम का तैल, एरण्डतैल आदि।

योगवाहि—(१) गृह्णाति योगवाहि द्रव्यं संसर्गिवस्तु गुणान्। भा०। **(२) एतदेव हि योगवाहित्वं यत् स्वगुणापरित्यागेनांशेन सादृश्यात् परस्य शक्तिपूरणम्।** इ०। जो द्रव्य अपने निजी गुणों का परित्याग न करके किसी संसर्गी द्रव्य के गुणों का उत्कर्ष करे वह योगवाहि कहलाता है जैसे-मधु।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अभिष्यन्दि—(१) **पैच्छिल्याद् गौरवात् द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः सिराः। धत्ते यद् गौरवं तत् स्यादभिष्यन्दि यथा दधि।** शा० प्र० ख० अ० ४। (२) **अभिष्यन्दो दोषधातुमलस्रोतसां क्लेद-प्राप्तिः।** च० सू० अ० २६–यो०। जो द्रव्य अपने गौरव और पिच्छिल गुण से रसवह स्रोतों को अवरुद्ध करके देह में गौरव उत्पन्न करे तथा दोषधातुमलस्रोतों में क्लेदांश की वृद्धि एवं कफ का प्रकोप करे वह अभिष्यन्दि कहलाता है। जैसे–दधि, मत्स्य, कदलीफल आदि।

विषघ्न—जो द्रव्य विविध प्रकार (जाङ्गम, स्थावर, भौम) के विष द्रव्य जन्य विकारों को नष्ट करते हैं। विषघ्न या अगद (Antidotes) कहलाते हैं। जैसे–शिरीष, हरिद्रा, मंजिष्ठा, एला, चन्दन, रास्ना, निर्मली, त्रिवृत्, पाठा, अपामार्ग, ज्योतिष्मती, मदनफल, बन्दाल, आरग्वध, कट्फल, वर्वरी, श्वेतापराजिता, निम्ब, गुडूची, कुटकी, शाल, सर्जरस, कुङ्कुम, सुवर्ण आदि।

सन्धानकर—(१) **सन्धानाय भग्नसंयोजनाय हितं सन्धानीयम्।** च० सू० अ० ४ यो०। (२) **सन्धानकं शरीरे ऽन्तः संहतिकरं भावानाम्।** इन्दुः। जो द्रव्य भग्न-अस्थि, सन्धि मांस आदि धातुओं का सन्धान (जोड़ना) करे वह सन्धानकर कहलाता है। जैसे मधुयष्टि, पृश्निपर्णी, धातकी, लोध्र, प्रियङ्गु, मोचरस, मंजीठ, कट्फल, मेदासक आदि द्रव्य।

जीवन—(१) **जीवनम् आयुः, तस्मै हितं जीवनीयम्।** च० सू० अ० ४, च० द०। (२) **आयुष्यो जीवनीयः।** च० सू० अ० २६। (३) **जीवनः प्राणधारणः।** सु० सू० अ० ३८। डल्हणः। जो द्रव्य जीवन (आयु-प्राण) का धारण करे या जीवन के लिए हितकर या आयु को स्थिर रखते हैं। वे जीवन या जीवनीय (Restoratives or Nutrients) कहलाते हैं। शरीर में क्षण प्रतिक्षण होने वाली धातु चयापचयजन्य विभिन्न रसायन, जैविक रसायन क्रियाओं से किंवा विभिन्न अग्नियों द्वारा दोष, धातुओं के निर्माण के साथ साथ धातुओं में अपचय या क्षय भी अनवरत होता रहता है। जिनकी पूर्ति जीवन या आयु के लिए अत्यावश्यक है। एतदर्थ विविध, अशित, पीत, लीढ़, खादित, पांच भौतिकाहार षड्रस, विंशतिगुणयुक्त आहार का प्रयोग किया जाता है। पोषकाहार के अभाव या रोग से आयु के क्षय की स्थिति में जीवनीय द्रव्य अपने उत्कृष्ट गुणों या शक्ति से अल्पमात्रा में ही प्रयुक्त करने पर प्राणधारक या आयु को स्थिर रखते हैं। जैसे–दुग्ध को सर्वोत्तम जीवनीय द्रव्य माना गया है। **प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तम्।** च० सू० अ० २७। विदारी कन्द एवं काकोल्यादिगण के द्रव्य भी जीवनीय होते हैं। काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, जीवक, ऋषभक मेदा, महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मृद्वीका, मधुयष्टि, जीवन्ती, वंशलोचन, सालममिश्री, दुग्ध आदि। **भौतिक संगठन**–जीवनीय द्रव्य पृथिवी और जल गुण प्रधान होते हैं। **पृथिव्यपां गुणैर्युक्तं जीवनीय-मिति स्थितिः।** र० वै० अ० ४, सू० ३० भाष्य।

बृंहण—(१) **बृहत्त्वं यच्छरीरस्य जनयेत्तच्च बृंहणम्।** च० सू० अ० २२। (२) **बृंहणं यत् बृंहत्वाय देहस्य।** सु० सू० अ० ४०। (३) **बृंहणं शरीरवृद्धिकरं।** डल्हण। जो द्रव्य शरीर को पुष्ट (स्थूल-मोटापन) करते हैं। बृंहण (Tonic) कहलाते हैं। बृंहण द्रव्य मुख्यतया मांस धातु की वृद्धि करके शरीर को पुष्ट करते हैं। **बृंहणयोग्यपुरुष**–क्षत, क्षीण, कृश, वृद्ध, नित्य स्त्री सेवन, नित्य मद्य सेवन, नित्य पैदल चलने वाले एवं दुर्बल पुरुषों को बृंहण द्रव्यों का सेवन करना चाहिए। **क्षीणाः क्षताः कृशाः वृद्धा दुर्बला नित्यमध्वगाः। स्त्रीमद्यनित्या ग्रीष्मे च बृंहणीया नराः स्मृताः।** च० सू० अ० २२। **बृंहण द्रव्य**—बृंहण द्रव्यों में मांस सर्वश्रेष्ठ होता है। **मांसं बृंहणीयानां।** च०

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सू० अ० २५। विदारी कन्द, मुनक्का, खर्जूर, अञ्जीर, बादाम, नारियल, पिस्ता, अखरोट, चिलगोजा, उरुमाणि (खुरमानी) ये चरकोक्त बृंहण गण के द्रव्य हैं। सुश्रुतोक्त काकोल्यादि गण के द्रव्य एवं–आम्र, कटहल, अश्वगन्धा, सालममिश्री आदि द्रव्य। बृंहण द्रव्य प्रायः गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, स्थूल, पिच्छिल, मन्द, स्थिर, श्लक्ष्ण गुण प्रधान होते हैं। **भौतिक संगठन**–बृंहण द्रव्य पृथिवी, जल गुण बहुल होते हैं। **बृंहणं पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठम्।** सु० सू० अ० ४१।

हृद्य—(१) हृदयाय हितम् हृद्यम्। च० सू० अ० ४ च०द०। **(२) हृदयाय मनसे हितम्।** गंगाधर। जो द्रव्य हृदय के लिए बल प्रदान करने वाले या हितकर हैं। हृद्य (Cardiac tonic) कहलाते हैं। हृद्य द्रव्य हृत्पेशीबल्य (Nutriation of cardiac muscels) एवं हृद्गति में स्थिरत्व उत्पन्न करते हैं। हृद्य द्रव्य हृद्गत ओज, अवलम्बक कफ के शीत, स्निग्ध, मधुर, श्लक्ष्ण, मृदु, स्थिरादि गुणों की वृद्धि करते हैं जैसे–स्वर्ण, अभ्रकभस्म, मुक्ता, माणिक्य, अर्जुन, नागबला, गोक्षुर आदि मधुर, शीतवीर्य द्रव्य। कतिपय कटु, तिक्त, अम्ल एवं उष्णवीर्य द्रव्य हृत्पेशियों पर उत्तेजित क्रिया करके हृदयाकुञ्चन गति की वृद्धि करते हैं जैसे–हृत्पत्री (डेजीटेलिस); करवीरमूल, वनपलाण्डु, कैफीन आदि। **हृदयोत्तेजक द्रव्य** (Cardiac stimulants)—(क) हृत्पेशीप्रभावजन्य हृदयोत्तेजक–अर्जुन, वनपलाण्डु, हृत्पत्री, शृंग, कैफीन आदि। (ख) सुषुम्नाशीर्षक को उत्तेजित कर हृदयोत्तेजक-कुचला, कर्पूर, कस्तूरी, अम्बर, सुरा (ग) नाड़ियों को उत्तेजित करने से हृदयोत्तेजक-बेलाडोना, सोम। **हृदयावसादक द्रव्य** (Cardiac depressant)—वत्सनाभ, अहिफेन, हृत्पत्री, (डेजीटेलिस)। **हृच्छूलनाशक द्रव्य**—पुष्करमूल, कुष्ठ, हिंगु, अजमोदा, शुण्ठी, पिप्पलीमूल, देवदारु, दशमूल के द्रव्य, मृगशृंग, ताम्रभस्म आदि। **हृद्य-द्रव्य**—आम्र, आम्रातक, करमर्द, वृक्षाम्ल, अम्लवेतस, दाडिम, मातुलुङ्ग, बदर, परूषक, द्राक्षा, कतकफलादि चरकोक्त हृद्य एवं सुश्रुतोक्त परूषकादि गण के द्रव्य हृद्य हैं।

कासहर—कासं हरतीति कासहरं। च० सू० अ० ४ यो०। **कफं हन्ति इति कफघ्नः।** कास एवं कफ को नष्ट करने वाले द्रव्य कासहर (Bronchial sedatives) कहलाते हैं। कासहर द्रव्य मुख्यतया निम्न वर्गों में विभाजित होते हैं। (क) **कफोत्सारि–कफनिस्सारक द्रव्य** (Expectorant)–मधुयष्टि, श्लेष्मान्तक, द्राक्षा, उन्नाव, गावजवां, खतमी, बनफ्शा, कण्टकारी, गन्धविरोजा, मिर्च, पिप्पली, लोबान, रुमीमस्तंगी, दालचीनी, सिता (मिश्री), नरसार, स्वर्जिकाक्षार। (ख) **आक्षेपहर कफनिस्सारक** (Antispasmodic expectorants)—अहिफेन, सोम, धत्तूर, हरिद्रा, पुष्करमूल, कण्टकारी, मनःशिला, क्षार, शोरकादि। (ग) **उत्तेजक कफःनिसारक** (Stimulant expectorants)–लोहबान, कर्पूर, नरसार, क्षार द्रव्य। (घ) **श्लेष्मोपशोषक**—भार्ङ्गी, कर्कटशृंगी, वासा, दशमूल के द्रव्य, शठी, चित्रक, हरीतकी, अगस्त, कासमर्द आदि। चरकोक्त कासहर एवं सुश्रुतोक्त सुरसादि, विदारिगन्धादि गण के द्रव्य कासहर होते हैं।

श्वासहर—श्वासं श्वासरोगं हरतीति श्वासहरम्। च० सू० अ० ४ यो०। जो द्रव्य श्वास रोग का शमन करते हैं। श्वासहर (Bronchial antispasmodics) कहलाते हैं। **श्वासहर द्रव्य**—पुष्करमूल, शठी, अम्लवेतस, हिङ्गु, अगुरु, जीवन्ती, भूम्यामलकी, चरकोक्त श्वासहर गण के शेष द्रव्य, सुश्रुतोक्त विदारिगन्धादि, सुरसादि गण के द्रव्य। श्वास एवं कास दोनों प्राणवहस्रोत की व्याधि होने

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

से श्वासहर द्रव्यों को भी कासहर द्रव्यों के समान वर्गीकृत किया जा सकता है। **श्वासवेग प्रशमन द्रव्य**—सोम, धत्तूर, वेलाडोना, पुष्करमूल, जटामांसी, मनःशिला आदि।

मूत्रकर-मूत्रल—(१) **मूत्रस्य विरेचनं बहिः सारणं तत्र हितम्।** यो०।(२) **मूत्रस्य विरेचनं करोतीति मूत्रविरेचनम्।** च० द०। जो द्रव्य मूत्र को अधिक मात्रा में रेचन–बाहर निकालते हैं। मूत्रल-मूत्रविरेचनीय, मूत्रकर (Diuretics) कहलाते हैं। मूत्र विरेचन क्रिया मूत्रवहस्रोत में विभिन्न प्रकार से होती है। (क) **क्रियाशील मूत्रोत्सिकाओं को अधिक संख्या में कार्य कराकर**–कैफीन (चाय-काफी), मूत्रक्षार, गोमूत्र, यूरिया। (ख) **वृक्कों में मूत्रोत्सिकाओं में रक्त प्रवाह की वृद्धिकर**–हृत्पत्री (डेजीटेलिस), अपामार्ग, कासनी, गोक्षुर, कैफीन, मद्य (ग) **रक्त की क्षारीयता की वृद्धिकर**–स्वर्जिकाक्षार, यवक्षार, मूत्रक्षार, शङ्ख। (घ) **रक्त गत अम्लता की वृद्धिकर**–कुलत्थ, नीम्बू, अम्लिका, नरसार, शोरक, लवण। (ङ) **वृक्कों को उत्तेजित या क्षोभ करके**–कङ्कोल, मिर्च, हपुषा, चन्दन एवं तारपीन का तैल। (च) **रक्तगत जलांश की वृद्धिकर**–गोमूत्र, इक्षुरस, जल, नारिकेल द्रव, लवण। (छ) **हृदय की आकुञ्चन गति की वृद्धि करके, वृक्क में रक्तसंवहन वृद्धिकर**–अर्जुन, कुटकी, वनपलाण्डु। **अन्य मूत्रल द्रव्य**–पाषाणभेद, पुनर्नवा, वरुण, काकमाची, कुश, कास, दर्भ, काण्डेक्षु, नल, शालिमूल, यवासक, शरपुङ्खा, वीरतरु, पलाशपुष्प, लोणिका, मंजिष्ठा, हरमल, पाठा, शोभाञ्जन, उष्ट्रकण्टक, खीरे के बीज, शतपुष्पामूल, सहचर, परूषक, द्राक्षा आदि।

स्नेहन—(१) **स्नेहनं स्नेहविष्यन्दमार्दवक्लेदकारकम्।** चरक सू० अ० २२। जो द्रव्य शरीर में स्निग्धता, मृदुता, आर्द्रता उत्पन्न करता है, उसे स्नेहन कहते हैं। स्नेहन द्रव्यों के गुण, कर्म, एवं द्रव्यों का पृष्ठाङ्क २२ पर उल्लेख किया गया है।

स्वेदन—**स्तम्भगौरवशीतघ्नं स्वेदनं स्वेदकारकम्।** च० सू० अ० २२। जो द्रव्य स्तम्भ (अङ्गों की निश्चेष्टता), गौरव, शैत्य को नष्ट करके स्वेद प्रवृत्ति करता है उसे स्वेदन (Diaphoretic or sudorific) कहते हैं। **स्वेदन द्रव्य के गुण**–**उष्णं तीक्ष्णं सरं स्निग्धं रूक्षं सूक्ष्मं द्रवं स्थिरम्। द्रव्यं गुरु च यत् प्रायस्तद्धिस्वेदनमुच्यते।** च० सू० अ० २२। **स्वेदन द्रव्यों का प्रयोग**–स्वेदन द्रव्यों का प्रयोग वातव्याधियों में अङ्गजाड्य, सुप्ति, वेदना कम करने के लिए, चेष्टावृद्धि के लिए, त्वचा रोगों में रक्त संवहन वृद्धि के लिए, व्रणशोथ कम करने के लिए, संताप कम करने के लिए, मलों को बाहर निकालने के लिए स्वेदन द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है। स्वेदन द्रव्यों का प्रयोग तापस्वेद, ऊष्म-स्वेद, उपनाहस्वेद, द्रवस्वेद के रूप में प्रतिश्याय, ज्वर, श्वास, कास, हिक्का, शिरःशूल, मन्या-कर्णशूल, पक्षाघात, अर्दित, गृध्रसी, शोथ, गौरव, स्तम्भ, सुप्ति, सर्वाङ्गविकारों में प्रयोग किया जाता है। (१) **त्वचागत रक्तवाहिनियों का विस्फारणकर**–वत्सनाभ, हरताल, ताम्रभस्म, सुरा, अहिफेन, उष्णस्वेद। (२) **स्वेदकेन्द्र को उत्तेजित करने वाले द्रव्य**–कर्पूर, नरसार, क्षारद्रव्य, तुलसी, द्रोण-पुष्पी, अर्कमूल त्वक्। (३) **नाड्यन्त भागों को उत्तेजित करने वाले द्रव्य**–कुष्ठ, पुष्करमूल, हरताल, तम्बाकू, कटुरस प्रधान द्रव्य। (४) मूत्रल द्रव्य, संतापहर द्रव्य, वामक द्रव्य भी स्वेद प्रवृत्ति करते हैं। **अन्य स्वेदन द्रव्य**—अर्क, शोभाञ्जन, एरण्ड, रसोन, यवानी, अजमोदा, सुरञ्जान, चोबचीनी, आकारकरभ, सप्तपर्ण, कुलत्थ, देवदारु, शुण्ठी, तिल, उड़द, नरसार, शोरक, तारपीन का तैल, श्री वेष्टक तैल, गन्धक।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आस्थापन–(१) **शरीरं आस्थापयन्ति दोष संशोधनेन स्थिरं कुर्वन्ति इति । आस्थापनानि**– जो द्रव्य शरीरगत दोषों (वात, पित्त, कफ, विट्, मूत्र) मुख्यतया वात का संशोधन कर देह को स्थिर बनाते हैं, उन्हें आस्थापन कहते हैं । ये द्रव्य संशोधक होने से कोष्ठ एवं शाखाश्रित या सर्वत्र सञ्चित दोषों का शोधन कर दोष धातुओं को साम्यावस्था में लाते हैं । आस्थापन बस्ति से सुख, आयु, अग्नि, मेधा, स्वर, वर्ण की वृद्धि होती है । यह बाल, युवा, वृद्ध सभी के लिए समान रूप से हितकर और सर्वरोगशामक होती है । **बस्तिर्वयःस्थापयिता सुखायुर्बलाग्निमेधास्वरवर्णकृच्च । सर्वार्थकारी शिशुवृद्धयूनां निरत्ययः सर्वगदापहश्च । विट्श्लेष्मपित्तानिलमूत्रकर्षी स्थिरत्वकृच्छुक्रबलप्रदश्च । विष्वक्स्थितं दोषचयं निरस्य सर्वान् विकारान् शमयेन्निरुहः** । च० सि० अ० १ । **आस्थापन द्रव्य**–त्रिवृत्, पिप्पली, वचा, इन्द्रयव, मदनफल, यष्टिमधु, बिल्व, सर्षप, कुष्ठ, शतपुष्पा, गुडूची, रास्ना, त्रिफला, एरण्ड, मुस्तक, पुनर्नवा, आरग्वध, देवदारु, लवण, मधु, तैल, काञ्जी ।

अनुवासन—**अनुवासयति अनुबध्नति शरीरं बलदानेन इति अनुवासनं** । अनुवासन बस्ति का प्रयोग भोजन करने के बाद किया जाता है । अनुवासन बस्ति शरीर को स्निग्ध करती है, बल-प्रदान करके दृढ़ बनाती है । अनुवासन बस्ति का प्रयोग केवल वातव्याधि से पीड़ित (आम, कफादि दोषानुबन्ध रहित), रूक्ष एवं तीक्ष्णाग्निवाले पुरुषों में किया जाता है । जिस प्रकार से किसी वृक्ष के मूल को जल से सींचने पर वह नवीन-नवीन मृदु पत्रों से आच्छादित हो जाता है उसी प्रकार से अनुवासन बस्ति से भी शरीर में शीघ्र ही नवीन २ धातुओं का निर्माण होने से शरीर दृढ़ तथा दीर्घायु प्राप्त करता है । **विशेषतस्तु रूक्षास्तीक्ष्णाग्नयः केवलवातरोगार्त्ताश्च, एतेषुह्यनुवासनं प्रधानतममित्युक्तं मूले द्रुमाणां प्रसेकवत्** । च० सि० अ० १ । **अनुवासन द्रव्य**–अनुवासन बस्ति में मुख्यतया तैल, घृत, वसा, मज्जादि स्नेह द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है । इन स्नेह द्रव्यों में वात विकारों में तैल तथा पैत्तिक विकारों में घृत उत्तम होता है ।

शिरोविरेचन—शिरोविरेचन को मूर्धविरेचन, शीर्षविरेचन, शिरोविशोधन, नस्य कर्म भी कहते हैं । नस्य में औषध या औषधियों से सिद्ध स्नेह का नासामार्ग से प्रयोग होता है । प्रयोगविधि के भेद से इसके नावन, धूम, प्रतिमर्श, अवपीड, ध्मापन पांच प्रकार तथा कर्म दृष्टि से शमन, रेचन, तर्पण तीन भेद होते हैं । शिरोविरेचन, नस्य का प्रयोग मुख्यतया शिरोरोगों एवं ऊर्ध्वजत्रुगत विकारों में भी किया जाता है । (१) **नस्तः कर्म च कुर्वीत शिरोरोगेषु शास्त्रविद् । द्वारं हि शिरसो नासा तेन तद्व्याप्य हन्ति तान्** । च० सि० अ० ९ ।

शिरोविरेचन द्रव्य–ज्योतिष्मती, क्षवक (नकछिकनी) मिर्च, पिप्पली, विडङ्ग, अपामार्ग-बीज, शिग्रुबीज, सर्षप, तुम्बुरू, एला, हरेणुका, तुलसी, पीलु, शिरीषबीज, रसोन, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, शुण्ठी, लवणद्वय, अणुतैल, सहचरादि तैल ।

प्रजास्थापन(१) **प्रजां गर्भं स्थापयति दोषं निरस्येति प्रजास्थापनम्** । यो० । (२) **प्रजोपघातकं दोषं हृत्वा प्रजां स्थापयतीति प्रजास्थापनम्** । च० द० । चं० सू० अ० ४ । जो द्रव्य गर्भ की स्थिति-उत्पत्ति के बाधक दोषों का निवारण कर गर्भ धारण कराते हैं, वे प्रजास्थापन कहलाते हैं । इनके प्रयोग से गर्भधारण बाधक गर्भाशयगत विकार नष्ट होते हैं । गर्भ स्थिति के बाद भी इनका प्रयोग गर्भवती स्त्री एवं गर्भ दोनों के लिए बल्यकर होता है । **प्रजास्थापन द्रव्य**–ब्राह्मी, लक्ष्मणा, दूर्वा शिवलिङ्गी, फलघृत आदि ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वाजीकरण—(१) येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नरः। व्रजेच्चाभ्यधिकं येन वाजीकरणमेव तत्। च० चि० अ० २ पा० ४। (२) वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहतः स्त्रियः। भवत्यतिप्रियः स्त्रीणां येन येनोपचीयते॥ तद्वाजीकरणं, तद्धि देहस्यौजस्करं परम्। अ० सं० उ० अ० ५०। (३) येन हेतुभूतेन पुरुषो वाजीव अश्व इवाप्रतिहतोऽङ्गना याति, येन च स्त्रीणामतिप्रियो भवति, येन च (शुक्र) धातुरुपचयं प्राप्नोति तद्वस्तु वाजीकरणमित्युच्यते। तद्धि परं देहस्यौजस्करम्। इन्दु। (४) यस्मात् द्रव्यात् भवेत् स्त्रीषु हर्षो वाजीकरं च यत्। यथा नागबलाद्याः स्यु बीजं च कपिकच्छुजम्। शा० प्र० ख० अ० ४। जिस द्रव्य के प्रयोग से पुरुष अश्व के समान मैथुन में समर्थ हो उसे वाजीकरण (Aphrodisiac) या वृष्य कहते हैं। वाजीकरण द्रव्य से शुक्र, हर्ष और मैथुन शक्ति की तथा ओज की वृद्धि होती है। वाजीकर द्रव्यों के चार भेद होते हैं। (१) **शुक्रविवर्धन-शुक्रल**—जो द्रव्य शुक्र धातु की अभिवृद्धि करते हैं, वे शुक्रल कहलाते हैं। जैसे—अश्वगन्धा, शतावरी, विदारीकन्द, कपिकच्छु बीज, श्वेतमूसली, सालमपञ्जा, इक्षुरक आदि। शुक्रल द्रव्य शीत, स्निग्ध, मधुर, द्रव, आप्यगुण प्रधान होते हैं। (२) **शुक्रस्रुतिकर-कामोत्तेजक**—द्रव्य शुक्र का प्रवर्तन, कामोत्तेजना उत्पन्न करते हैं, इनसे शुक्र की वृद्धि नहीं होती है। जैसे—आकारकरभ, कस्तूरी, स्त्री का मनोहर रूप, स्पर्शादि। (३) **शुक्रस्रुति-वृद्धिकर (वाजीकर)**—द्रव्य शुक्रजनन और प्रवर्त्तन दोनों क्रियायें करते हैं। जैसे—माष, भल्लातक मज्जा, दुग्धादि। (४) **शुक्रस्तम्भन**—द्रव्य शुक्रधातु का स्तम्भन करके संभोग काल में वृद्धि करते हैं। जैसे—अहिफेन, जातीफल, जावित्री आदि। **शुक्रस्रुतिकरं किञ्चित्, किञ्चिच्छुक्रविवर्धनम्। स्रुतिवृद्धिकरं किञ्चित्, त्रिविधं वृष्यमुच्यते।** च० द०।

रसायन—(१) रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम्। यथा ऽमृतारुदन्ती च गुग्गुलुश्च हरीतकी। शा० प्र० ख० अ० ४। (२) लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्। च० चि० अ० १। (३) श्रेष्ठानां रसरुधिरादीनां यो लाभोपायः स रसायनमुच्यते। अ० हृ०। (४) रसानां रसरक्तादीनामयनमाप्यायनं रसायनम्। डल्हण। (५) दीर्घमायुः स्मृतिं मेधारोग्यं तरुणं वयः। प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलं परम्। वाक्सिद्धिं प्रणतिं कान्तिं लभते ना रसायनात्। च० चि० अ० १, पाद १। जो द्रव्य प्रशस्त रसरक्तादि धातुओं की वृद्धिकर, बल, ओज, मेदा, स्मृति, प्रभा, वर्ण, स्वर को उत्पन्न करते हैं या जो द्रव्य जरा, व्याधि का नाश कर पुरुष को दीर्घ जीवन (शतायु) प्रदान करते हैं, वे रसायन कहलाते है। महर्षि चरक ने हरीतकी, आमलकी, भल्लातक, विडङ्ग द्रव्यों के रसायन प्रयोग का विस्तार से वर्णन किया है। वयःस्थापन, जीवनीय द्रव्य भी रसायन के ही भेद हैं। शार्ङ्गधर ने अमृता, रुदन्ती ? गुग्गुलु, हरीतकी द्रव्यों का रसायनार्थ उल्लेख किया है।

□□

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य वर्गीकरण विज्ञानीय नवम परिच्छेद

नानौषधिभूतं जगति किञ्चित् आचार्य उपदेश से सृष्टि में द्रव्यों की संख्या असीमित है। अतः प्रत्येक द्रव्य का शृङ्गग्राहीन्याय से ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। अतः द्रव्यगुणशास्त्रियों ने समानजाति-गुणधर्म वाले द्रव्यों का वर्गीकरण विधि से वर्णन किया है। वर्गीकरण पद्धति से द्रव्यों की प्रकृति, गुणकर्मों का ज्ञान सुगमतापूर्वक हो जाता है। द्वितीय परिच्छेद के द्रव्यवर्गीकरण सन्दर्भ में वर्गीकरण के सम्बन्ध में विभिन्न बिन्दुओं का प्रतिपादन किया गया है। प्रस्तुत परिच्छेद में मुख्य-मुख्य वर्गों, गणों की आकृति, जाति एवं गुणकर्मों का उल्लेख किया गया है।

त्रिफला—हरीतकी, विभीतक, आमलक तीनों के फलों को समान मात्रा में मिलाने से त्रिफला कहते हैं। इसकी फलत्रिक और वरा भी संज्ञा है। अन्य आचार्य त्रिफला में हरीतकी एक, विभीतक दो और आमलकी चार फलों को ग्रहण करने का निर्देश देते हैं। व्यवहार में तीनों फलों का निरस्थि भाग मज्जा का समान मात्रा में प्रयोग होता है। त्रिफला कषायरस प्रधान एवं मधुर अम्ल, तिक्त, कटु अनुरस युक्त होता है। विपाक में मधुर, वीर्य में नात्युष्णशीत और त्रिदोषशामक है। यह विशेषतया कफपित्तशामक रुचिकर, दीपन, सर, चक्षुष्य श्रेष्ठ रसायन है। प्रमेह, कुष्ठ, मेदो-रोग, रक्तविकार, विषमज्वर, उदर रोग, पाण्डु, कामला आदि रोगों में त्रिफला दोष, धातु, मल एवं स्रोतो शुद्धिकर होने से संशोधन कर्म की दृष्टि से विशेष लाभप्रद है। शोधनोपरान्त विभिन्न रोगों में इसका संशमन कर्म के लिए भी प्रयोग होता है।

पथ्याबिभीतधात्रीणां फलैः स्यात्त्रिफलासमैः। फलत्रिकं च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्तिता॥
त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठहरा सरा। चक्षुष्या दीपनी रुच्या विषमज्वरनाशिनी। भा० प्र०

मधुर त्रिफला—द्राक्षा, गम्भारी, खर्जूर के फल मधुर होने से तथा संख्या में तीन होने से मधुर त्रिफला संज्ञा है। यह पित्तशामक, रक्तपित्तशामक, श्रमहर रसधातुवर्धक है।
द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरीफलानि मिलितानि। मधुरत्रिफला ज्ञेया मधुरादिफलत्रयम्। राज० नि०

स्वल्प त्रिफला—गम्भारी, परूषक (फालसा) खर्जूर के फलों की स्वल्प त्रिफला संज्ञा है। यह गण भी पित्तशामक, रक्तपित्तशामक, तृषादाहशामक है। **स्वल्पा काश्मर्यखर्जूरपरूषकफलैर्भवेत्।**

सुगन्धि त्रिफला—लवङ्ग, जातीफल, पूगफल (सुपारी) सुगन्धित होने से सुगन्धित त्रिफला है। यह रुचिकर, मुखदौर्गन्ध्यहर होता है।

जातीफलं पूगफलं लवङ्गकलिकाफलम्। सुगन्धित्रिफला ज्ञेया सुरभित्रिफला च सा। राज० नि०

उपर्युक्त त्रिफला के चारों गणों को त्रिफला चतुष्टय भी कहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

त्रिकटु—शुण्ठी, पिप्पली, मिर्च इन तीनों के मिश्रण को त्रिकटु कहते हैं। इसकी कटुत्रिक, (तीनों कटुरस होने से) त्र्यूषण (तीनों उष्णवीर्य होने से) व्योष संज्ञा भी है। यह वातकफशामक है। इसका अग्निमान्द्य, अरोचक, श्वास, कास, पीनस, गुल्म, प्रमेह, स्थौल्य, मदोरोग, त्वग्रोग, श्लीपद आदि विकारों में मुख्यतया प्रयोग होता है।

विश्वोपकुल्या मरिचं त्रयं त्रिकटु कथ्यते। कटुत्रिकं तु त्रिकटु त्र्यूषणं व्योषमुच्यते ॥
त्र्यूषणं दीपनं हन्ति श्वासकासत्वगामयान्। गुल्ममेहकफस्थौल्यमेदःश्लीपदपीनसान् ॥ भा० प्र०

चतुरूषण—कटुत्रिक में पिप्पली के मिश्रण को चतुरूषण (चारों उष्ण वीर्य होने से) कहते हैं। त्रिकटु के सब गुणकर्मों के अतिरिक्त इसके विशेष गुणकर्म हैं।

त्र्यूषणं सकणामूलं कथितं चतुरूष्णम्। व्योषस्यैव गुणाः प्रोक्ता अधिकाश्चतुरूषणे ॥ भाव० प्र०।

पञ्चकोल—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक और शुण्ठी के मिश्रण को पञ्चकोल कहते हैं। सभी द्रव्य उष्ण होने से इसकी पञ्चोषण भी संज्ञा है। पञ्चकोल के द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण होने से एक कोल (½ कर्ष) की मात्रा में ही प्रयुक्त होने से इसे पञ्चकोल कहते हैं। यह कटुरस, कटुविपाक, तीक्ष्णगुण, उष्णवीर्य होने से रुचिकर, पाचन, पित्तकोपक, श्रेष्ठ दीपन एवं वातकफघ्न है। इसका प्रयोग गुल्म, प्लीहा, उदर, आनाह और शूल विकारों में होता है।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः। पञ्चभिःकोलमात्रं यत् पञ्चकोलं तदुच्यते।
पञ्चकोलं रसे पाके कटुकं रुचिकृन्मतम्। तीक्ष्णोष्णं पाचनं श्रेष्ठं दीपनं कफवातनुत्।
गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥ भावप्रकाश।

षडूषण—पञ्चकोल के पांचों द्रव्यों–पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, शुण्ठी में मिर्च मिला देने से षडूषण कहलाता है। इसकी कटुषटक भी संज्ञा है। इसके गुणकर्म पञ्चकोल के समान होने पर भी यह विशेष रूक्ष, उष्ण और विषनाशक है।

पञ्चकोलं समरिचं षडूषणमुदाहृतम्। पञ्चकोलगुणं तत्तु रूक्षमुष्णं विषापहम् ॥ भा० प्र०।

लघुपञ्चमूल—शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर मिलकर लघु पञ्चमूल होता है। इस गण के पांचों द्रव्यों के छोटे क्षुप होने से लघु या कनिष्ठ तथा प्रयोज्याङ्ग में मूल प्रयुक्त होने से पञ्चमूल संज्ञा है। यह स्वाद में कषाय, तिक्त, मधुर, लघु, किञ्चिदुष्ण, वातपित्तशामक, ग्राही, बृंहण, ज्वर, श्वास, अश्मरीनाशक है।

(१) शालपर्णी पृश्निपर्णी वार्ताकी कण्टकारिका। गोक्षुरः पञ्चभिश्चैतैः कनिष्ठं पञ्चमूलकम्।
पञ्चमूलं लघु स्वादु बल्यं पित्तानिलापहम्। नात्युष्णं बृंहणं ग्राहि ज्वरश्वासाश्मरीप्रणुत् ॥ भा० प्र०।
(२) कषायतिक्तमधुरं कनीयः पञ्चमूलकम्। वातघ्नं पित्तशमनं बृंहणं बलवर्धनम्। सु०सू०अ० ३८।

बृहत्पञ्चमूल—बिल्व, अग्निमन्थ, श्योनाक, पाटला, गम्भारी मिलकर बृहत्पञ्चमूल होता है। इस गण के पांचों द्रव्यों के बड़े वृक्ष होने से बृहत् या महत्पञ्च तथा प्रयोज्याङ्ग में मूल प्रयुक्त होने से बृहत्पञ्चमूल संज्ञा है। यह कषाय, तिक्तरस' मधुर अनुरसयुक्त, लघु, उष्ण, अग्निदीपन, वात-कफघ्न, श्वास, कासनाशक है।

(१) श्रीफलः सर्वतोभद्रा पाटला गणकारिका। श्योनाकः पञ्चभिश्चैतैः पञ्चमूलं महन्मतम्।
पञ्चमूलं महत्तिक्तं कषायं कफवातनुत्। मधुरं श्वासकासघ्नमुष्णं लघ्वग्निदीपनम्। भा० प्र०।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य गुण हस्तामलक

द्वितीय ~~प्रथम~~ खण्ड

वानस्पतिक कुल परिचय

प्रथम परिच्छेद

पुष्पी पादप (Flowering plant) एवं कुल (Family) की वर्णन विधि

१. **भौगोलिक वितरण** (Geographical distribution)—इसमें पौधों का प्राकृतिक वास-स्थान कौन २ सी जलवायु के प्रदेशों, उष्ण कटिवन्धीय (tropical) उपोष्ण (sub-tropical) समशीतोष्ण (temperate) एवं शीत प्रदेशों में पाये जाते हैं, का वर्णन किया जाता है।

२. **स्वभाव** (Habit)—वर्षायु (annual) द्विवर्षायु (biennial) या वर्षानुवर्षी (Perennial) शाक (Herb) गुल्मक (Under shrub) गुल्म (Shrub) वृक्ष (Tree) का स्वरूप लिखा जाता है।

३. **मूल** (Root)—मूसला जड़ (Tap root) या अपस्थानिक (Adventitious) विशेष प्रकन्द (Tuberous) रेशेदार (Fibrous) अवस्तम्भ (Stilt) रूपान्तर का जो हो उल्लेख करना चाहिए।

४. **स्तम्भ** (Stem)—शाकीय (Herbaceous)काष्ठीय (Woody) ठौस या सुषिर, सरल (Erect) आरोही (Climbing) शयान (Prostrate), वल्लरी (Twiner) रोमश (Hairy) स्निग्ध (Smooth)बेलनाकार (Cylindrical), कोणीय (Angular), वायव (Aerial) भूमि गत (Under ground), शाखित, अशाखी, कांटेदार (Spiny)।

५. **पर्ण** (leaf)—सरल (Simple) संयुक्त (Compound), सवृन्त (Petiolate) अवृन्त (Sessile), मूलज (Radicle) स्तम्भिक (Cauline) शाखीय (Ramal) पत्रविन्यास (Phyllotaxy)–एकान्तर (Altermate) अभिमुख (Opposite) या चक्रीय (Whorled); पर्ण यदि साधारण हो तो उसके फलक (Lamina) के विशेष आकार का नाम, सतह, सीमा, शीर्ष (Apex), शिरा विन्यास (Venation)।

संयुक्त पर्ण होने पर उसका प्रकार पिच्छाकार (Pinnate), द्विपिच्छकी (Bipinnate) समपिच्छकीय (Paripinnate) असम पिच्छकीय (Imparipinnate) पाणिवत् (palmate) एवं पर्णकों (leaflets) का सरल पत्र के समान वर्णन अपेक्षित है। अनुपर्णी (Stipulate) या अनअनुपर्णी (Ex-Stipulate)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

६. **पुष्पक्रम** (Inflorescence)—ससीमाक्षी (Cymose) असीमाक्षी (Racemose) सरल संयुक्त, विशिष्ट या एकल (Solitary) जिस प्रकार का हो उसका नाम लिखना चाहिए।

७. **पुष्प**—(Flower) सवृन्त Pedicellate) या अवृन्त (Sessile) सहपत्री (Bracteate) या सहपत्री रहित (Ebracteate) पूर्ण या अपूर्ण, त्रिज्या सममित (Actinomorphic) एक व्यास सममित (Zygomorphic) द्विलिंगी (Bi sexual) एकलिंगी (Unisexual)पुं या स्त्री पुष्प; जायांगाधर (Hypogynous), परिजायांगी (Perigynous) जायांगोपरिक (Epigynous); पुष्प का विशेष आकार तथा वर्ण, अन्य कोई वैशिष्ट्य हो तो लिखना चाहिए।

८. **बाह्यदलपुंज** (Calyx)—बाह्यदलों (Sepals) की संख्या, संयुक्त बाह्यदली (Gamosepalous); पृथक् बाह्यदली (Polysepalous)दलपुंज की आकृति, वर्ण, विन्यास (Aestivation) कोरस्पर्शी (Valvate) कोर छादी (Imbricate) व्यावर्तित (Twisted)या वेक्जलरी (Vaxillary) का नाम।

९. **दलपुंज** (Corolla)—दल (Petal) की संख्या, संयुक्त दली (Gamopetalous) पृथक्-दली (Polypetalous), आकृति (Shape) का नाम, वर्ण, रंगीन (Petaloid) हरित (Sepaloid) अन्य विशेषताओं का उल्लेख करना चाहिए।

१०. **परिदलपुंज** (Perianth)—बाह्यदल पुंज एवं दलपुंज जब समान वर्ण के होते हैं तो वे परिदल पुंज कहलाते हैं। इनका वर्णन बाह्यदल पुंज एवं दलपुंज के समान होता है।

११. **पुमंग** (Androecium)–पुंकेसरों की संख्या, पृथक् पुंकेसरी (Polyandrous) या संयुक्त संलाग (Adelphous) यदि हो तो एक संघी (Monoadelphous) द्विसंघी (Diadelphous) या बहुसंघी (Polyadelphous) संपराग (Syngenesious) द्विदीर्घी (Didynamous) चतुर्दीर्घी (Tetradynamous) आसंजन (Adhesion) जैसे-दललग्न (Epipatalous) परिदललग्न (Epiphyllous), पुंजायांगी (Gynandrous), दल एकान्तर या दलसम्मुख। **परागकोष** (Anthers) कोष्ठों की संख्या, पंतन्तु का परागकोष से लगाव जैसे अभिलग्न (Adnate) पृष्ठलग्न (Dorsifixed) आधारलग्न (Basifixed) मुक्तदोली (Versatile) परागकोष का स्फुटन-अनुदैर्घ्य, अनुप्रस्थ या संरध्री (Porous) अन्तर्मुखी (Entrose) या बहिर्मुखी (Extrose)

१२. **जायांग** (Gynoecium)–अण्डप (Carpel) की संख्या, एकाण्डपी (Monocarpellary) द्विअण्डपी (Bicarpellary,) त्रिअण्डपी (Tricarpellary) या बहुअण्डपी (Polycarpellary), युक्ताण्डपी (Syncarpous) पृथकाण्डपी (Apocarpous)

अण्डाशय (Ovary)—उर्ध्व (Superior) या अधर (Inferior) कोष्ठकों (Loculi) की संख्या, एककोष्ठीय (Unilocular) द्विकोष्ठीय (Bilocular) त्रिकोष्ठी (Trilocular) बहुकोष्ठीय (Multilocular) प्रत्येक कोष्ठ में बीजाण्डों (Ovules) की संख्या, आकृति। बीजाण्डान्यास (Placentation) जैसे अक्षीय (Axile) भित्तीय (Parietal) सीमान्त: (Marginal) आधारीय

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(Basal) परिभित्तीय (Superficial)। वर्तिका (Style) स्वतंत्र या संयुक्त, स्निग्ध, रोमश, अग्रस्थ (Terminal) पार्श्व (Lateral), जायांगनाभिक (Gynobasis) वर्तिकाग्र (Stigma) की संख्या, सरल, पालिवत् (Lobed) स्निग्ध या रोमश।

१३. **फल** (Fruit)—एकलफल-साधारण, समुच्चय पुंज (Aggregate) या संग्रथित (Composite) किस प्रकार का फल है उल्लेख करना चाहिए।

१४. **बीज** (Seed)—फल में बीजों की संख्या, निश्चित या असंख्य, आकृति; एक बीजपत्री (Monocotyledon) द्वि बीजपत्री (Dicotyledon) भ्रूणपोषी (Endospermic) या अभ्रूणपोषी (Non-endospermic)।

१५. **पुष्प सूत्र** (Floral Formula)—किसी पुष्प में प्राप्त विभिन्न अवयव, संख्या, लग्नता का एक सूत्र द्वारा बोध होता है। जिसके लिए निम्न चिह्नों का प्रयोग होता है।

लिंग बोधक चिह्न द्विलिंगी ⚥ या ☿, नर ♂ स्त्री ♀ बन्ध्य O।
सममित (Symmetry) **बोधक चिह्न**–त्रिज्या सममित या नियमित (Actinomorphic) ⊕
एक व्यास सममित, अनियमित (Zygomorphic) + या o|o

पुष्प के विभिन्न अवयव		सांकेतिक चिह्न
(1) बाह्यदल पुंज	(Calyx)	K
(2) दलपुंज	(Corolla)	C
(3) उपबाह्यदल पुंज	(Epicalyx)	E. K
(4) परिदलपुंज	(Perianth)	P
(5) पुमंग	(Androecium)	A
(6) जायांग	(Gynoecium)	G

इन सांकेतिक शब्दों के आगे अंकित संख्या भ्रमि के अवयवों की होती है। अनिश्चित संख्या '∞' द्वारा अंकित होती है। यदि पुष्पाङ्ग स्वतन्त्र हो तो संख्या का उल्लेख और संयुक्त हो तो संख्या कोष्ठक में लिखी जाती है। यदि कोई अङ्ग दो चक्रों में है तो दोनों की संख्या लिखकर मध्य में + चिह्नांकित करें। जैसे दल की संख्या 4 दो-दो चक्रों में है तो C_{2+2} लिखना चाहिए।

पुष्प के किन्हीं दो चक्रों के आपस में संयुक्त होने पर उनके ऊपर ⌒ चाप अंकित कर अवयवों के मध्य आसंजन दिखाया जाता है। जैसे $\widehat{CA}$ पुमंग दललग्न (Epipetalous Androecium) $\widehat{PA}$ परिपुष्प लग्न पुंकेसर जायांग की स्थिति को रेखा से प्रदर्शित किया जाता है। जैसे यदि उर्ध्वाण्डाशय है तो $\underline{G}$ तथा अधराण्डाशय है तो $\overline{G}$ अंकित करना चाहिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१६. **पुष्प आरेख** (Floral diagram) पुष्प कलिका के अनुप्रस्थ कर्तन से दृश्य सभी रचनाएं पुष्प आरेख में दिखायी जाती है। प्रस्तुत पुष्प आरेख चित्र में एक रेखा मातृ अक्ष को दिखाया गया है इस मुख्य अक्ष पर पुष्प के विभिन्न अवयवों की संख्या, संलाग, बाह्यदलपुंज, दलपुंज का पुष्पदल विन्यास, पुंकेसर की संख्या, आकृति, जायांग की संख्या, आकृति, अण्डाशय के कोष्ठ, बीजाण्डान्यास आदि अंकित किये जाते हैं। मातृ अक्ष एवं निपत्र-सहपत्र के मध्य पुष्पपत्रों के विभिन्न चक्र होते हैं। सबसे बाहर बाह्यदलपुंज, इसके बाद दलपुंज, फिर पुमंग, अन्त में मध्य में जायांग की स्थिति दिखायी जाती है। जिसमें कोष्ठों की संख्या तथा बीजाण्डान्यास स्पष्ट होता है। दललग्न अवस्था में दल तथा पुंकेसर परस्पर सीधी रेखाओं द्वारा संयुक्त किये जाते हैं।

मातृ अक्ष

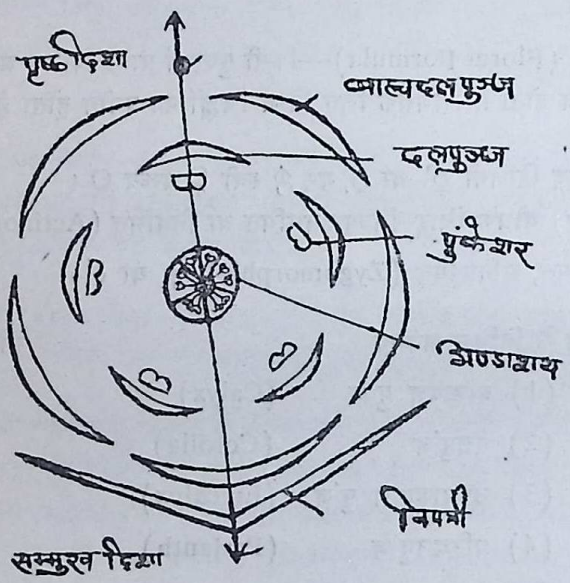

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वत्सनाभ कुल (RANUNCULACEAE FAMILY)

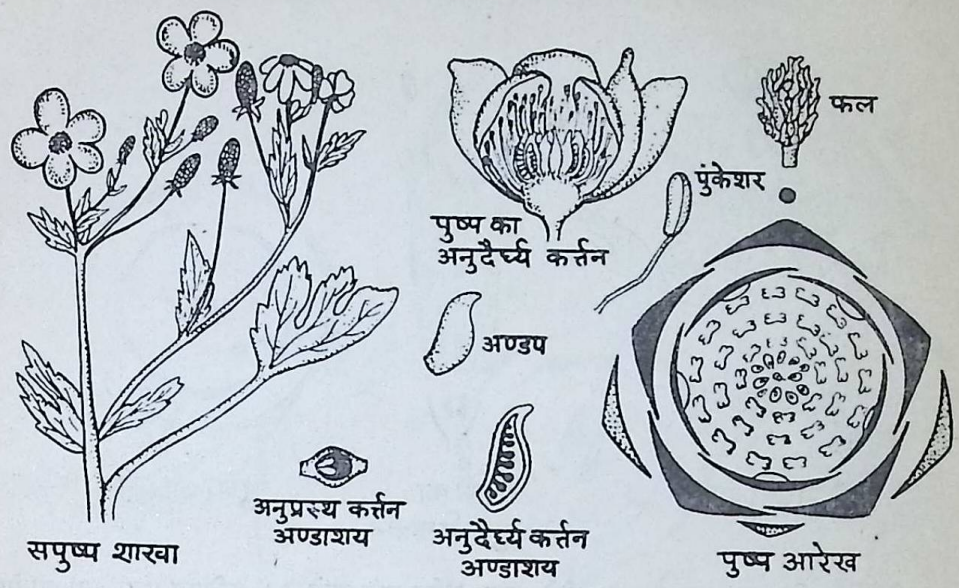

भौगोलिक वितरण—इस कुल के पौधे प्रायः हिमालय, नीलगिरि, पश्चिमी घाट के ६ हजार फीट के ऊपर पर्वतीय क्षेत्रों में या अति शीत, शीतोष्ण (Temperate) प्रदेशों में पाये जाते हैं। **स्वभाव** एक वर्षायु वर्षानुवर्षी (प्रकन्द या कन्दमूल द्वारा) अधिकांश क्षुप कभी-कभी आरोही गुल्म होते हैं। **मूल** प्रायः अपस्थानिक (Adventitious) कभी-कभी मांसल प्रकन्द, ग्रंथि में परिवर्तित। **स्तम्भ** शाकीय (Herbaceous) सरल, रम्भाकार (Cylindrical) स्राव युक्त। **पर्ण** अनअनुपर्णी, साधारण या संयुक्त, एकान्तर कभी-कभी अभिमुख, न्यूनाधिक खण्डित होते हैं। किन्हीं जातियों में मूलोद्भूत पर्ण (Radicle)। **पुष्पक्रम** (Inflorescence) प्रायः ससीमाक्षी (Cymose) कभी-कभी असीमाक्ष या एकल (Solitary)। **पुष्प** त्रिज्या सममित, कभी-कभी एक व्यास सममित, द्विलिंगी, जायांगाधर, अधिकांशतः परिदल (Perianth) में बाह्य दल एवं दल में भेद नहीं होता है। परिदलपर्ण पृथक् एवं दलाभ (Petaloid)। **बाह्यदलपुंज** (Calyx) ५ कभी-कभी अनेक पृथक् बाह्य दली। **दलपुंज** (Corolla) ५ पृथक् दली कभी-कभी अनुपस्थित, कोरछादी (Imbricate) विन्यास। अनेक जातियों में परिदल एवं पुंकेसरों के मध्य कुछ मकरकन्द ग्रंथियां होती हैं। **पुमंग** (Androecium) पुंकेसर असंख्य, स्वतन्त्र, मालाकार अवस्थित, परागकोष बहिर्मुखी (Extrose) एवं पार्श्व स्फुटी होते हैं। **जायांग** (Gynoecium) बहु अण्डपी, पृथकाण्डपी (Apocarpous), अण्डप (Carpel) मालाकार स्थित, एक अण्डाशय में बीजाण्ड २ से अनेक तक आधारी (Basal) या सीमान्त बीजाण्डान्यास (Marginal placentation) **फल** एक बीजास्फुटी फलों का पुंज (An etaerio of achenes), एक सेवनीक फल (Folicles) पुंज, कभी-कभी सरसफल (Berry) या संपुट फल (Capsule) **बीज** छोटे, भ्रूणपोषी (Endospermic) होते हैं।

पुष्प सूत्र $\oplus$ या $+$ ⚥ K_5C_5 या o A ∞ $\underline{G\infty}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मंजिष्ठा कुल (RUBIACEAE FAMILY)

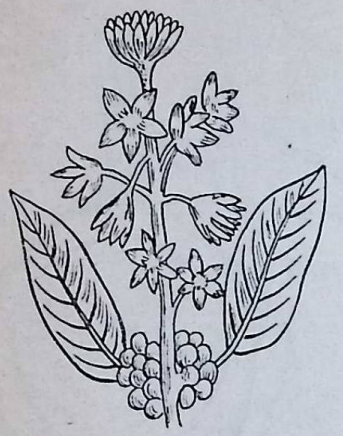

सपुष्प शाखा

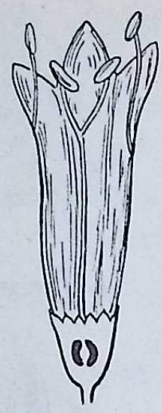

पुष्प का अनुदैर्घ्य कर्त्तन

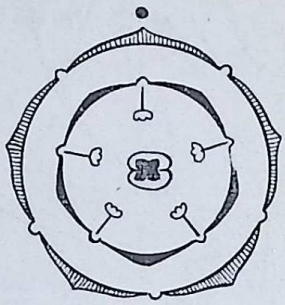

पुष्प आरेख

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं। कतिपय प्रजातियां शीतोष्ण प्रदेशों में मिलती हैं। **स्वभाव** (Habit) सरल, प्रसरी, क्षुप, गुल्म, वृक्ष कभी-कभी आरोही, वर्षायु, वर्षानुवर्षी होते हैं। **मूल** मूसला जड़ (Tap root) शाखा प्रशाखा युक्त **स्तम्भ** शाकीय (Harbaceous) काष्ठीय **पर्ण** अनुपर्णी, साधारण, अभिमुख या चक्रीय कभी-कभी अनुपर्ण संयुक्त होकर स्तम्भ के चारों ओर छद बनाते हैं। **पुष्पक्रम** (Inflorescence) ससीमाक्षी (Cymose) अनेक शाखान्वित **पुष्प** द्विलिंगी कभी-कभी एक लिंगी नियमित–त्रिज्या सममित कभी-कभी एक व्यास सममित, जायांगोपरिक (Epigynous)। **बाह्यदलपुंज** (Calyx) प्रायः ४ बाह्यदल कभी-कभी संयुक्त ५ बाह्यदली बाह्यदल नलिका (Calyx tube) अण्डाशय लग्न, कोरस्पर्शी (Valvate aestivation) विन्यास; कभी-कभी बाह्यदल १ या अधिक बहुत बड़े तथा विभिन्न वर्ण के होते हैं। **दलपुंज** (Corolla) दल प्रायः ४ कभी-कभी ५ संयुक्त दली, प्रायः चक्राकार (Rotate) कोरस्पर्शी, कोरछादी विन्यास, व्यावर्तित (Twisted) विन्यास। **पुमंग** (Androecium) पुंकेसर बाह्यदल संख्या के बराबर, दललग्न (Epi petalous) दलनलिकान्तः या दलौष्ठ पर्यन्त स्थित होते हैं। **जायांग** (Gynoecium) प्रायः द्वि युक्ताण्डपी, अधर, प्रायः द्वि कोष्ठीय (Bi locular), प्रत्येक कोष्ठ में १ से अनिश्चित बीजाण्ड होते हैं। अक्षीय बीजाण्डान्यास होता है। **फल** सरस फल (Berry), अष्ठिफल (Drupe) संपुटफल (Capsule) होता है।

पुष्प सूत्र ⊕ या + ⚥ K $(_{4-5})$ या० $\widehat{C(_{4-5})A}$ 4–5 $\overline{G(2)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अपराजितादि कुल (PAPILIONACEAE FAMILY)

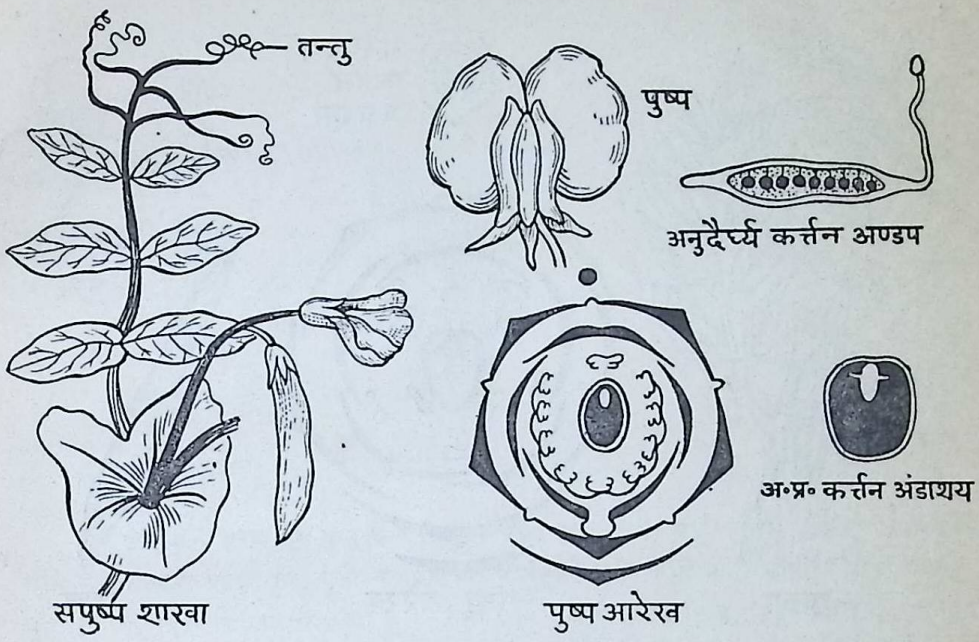

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे अधिकांशतः शीतोष्णप्रदेशों, पूर्वी हिमालय, आसाम के पर्वतीय क्षेत्रों एवं प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं। **स्वभाव** प्रायः क्षुप, आरोही, गुल्म, वृक्ष अत्यल्प; कतिपय जाति (quatic) । **मूल** मूसला जड़ अत्यधिक शाखायुक्त जिनमें ग्रन्थियां नत्रजन के संचय से बनती हैं। **स्तम्भ** प्रायः सरल, काष्ठीय, कभी कभी व्यावर्तित एवं आरोही होता है। **पर्ण** साधारण (Simple) या संयुक्त (Compound) अधिकतर एकान्तर, अभिमुख, अनुपर्णी (Stipulate) अनुपर्ण पत्र सदृश रूपान्ततिर हो जाते हैं। **पुष्पक्रम** प्रायः असीमाक्षी कभी २ एकल या कक्षीय (axillary) **पुष्प** द्विलिंगी, पूर्ण एक व्यास सममित (Complete Zygomorphic) परिजायांगी ((Perigynous) या जायांगाधर (Hypogynous)। **बाह्यदलपुंज** ५ संयुक्त बाह्यदली, कोरस्पर्शी विन्यास। **दलपुंज** तितली सदृशाकृति ५ दल, पृष्ठ दल एक बड़ा (Standard) दो पार्श्व दल पक्ष (Wings) दो सम्मुख दल (Keel) अवरोही कोरछादी विन्यास एवं वैक्जीलरी विन्यास होता है। **पुमंग** १० पुंकेसर. नोतल (Keel) लग्न पुंतन्तु संयुक्त अण्डाशय के चारों ओर नलिका बनाते हैं। पुंकेसर ९ संयुक्त तथा एक पृष्ठ पुंकेसर पृथक् द्वि संघी (Diadelphous)। **जायांग** एकाण्डप, उर्ध्वाण्डाशय, एक कोष्ठीय, सीमान्त बीजाण्डान्यास। वर्तिकाग्र (Stigma) पंखदार; अण्डाशय के आधार पर मकरन्द स्रावी चक्री होती है। **फल** शिम्बी (Legume) या पॉड (Pod) **बीज** अभ्रूण पोषी होते है।

पुष्प सूत्र + ⚥ $K(5)C_{1+2+2}A(9)+1\ G1$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पूतिकरंजादि कुल (CAESALPINIACEAE FAMILY)

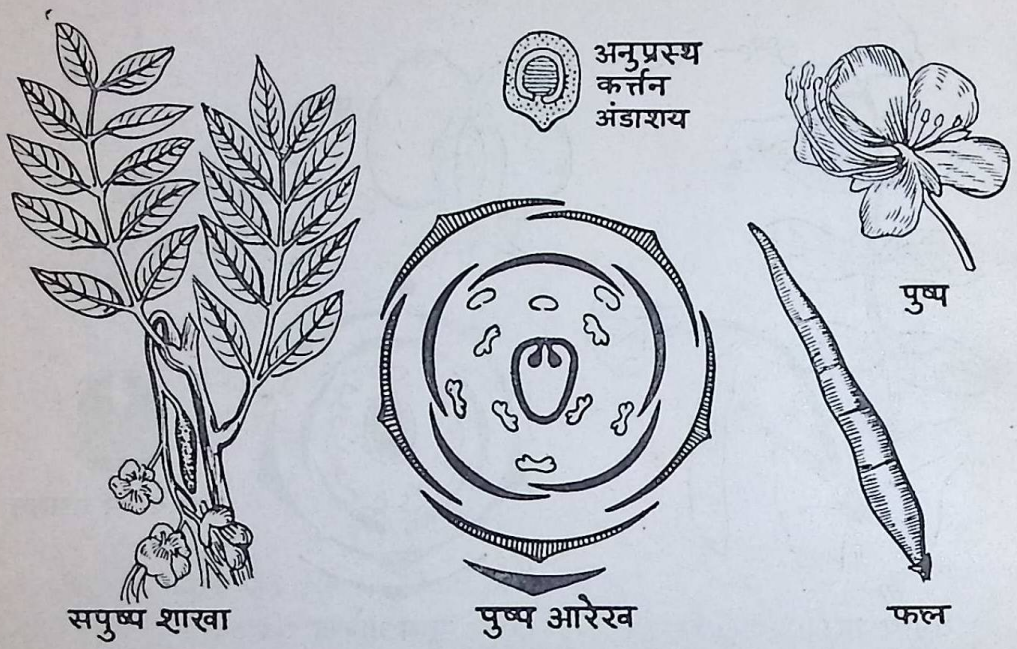

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे उष्ण कटिबन्धीय एवं उपोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में पाये जाते हैं। **स्वभाव** क्षुप, गुल्मक, गुल्म, छोटे वृक्ष। **मूल** मूसला जड़ शाखा प्रशाखायुक्त कभी कभी कक्षीय मूल प्रकन्द में परिवर्तित हो जाते हैं। **स्तम्भ** प्रायः सरल (Erect) शाकीय, काष्ठीय, कभी कभी आरोही। **पर्ण** अनअनुपर्णी कभी कभी अनुपर्णी, एकान्तर, पिच्छाकार या द्विपिच्छाकार संयुक्त (Bipinnately Compound) कभी कभी साधारण होते हैं। **पुष्पक्रम** असीमाक्षी, किन्हीं जातियों में ससीमाक्षी (Cymose)। **पुष्प** एक व्यास सममित या उप त्रिज्या सममित (Sub-actinomorphic) द्विलिंगी, पूर्ण, जायांगाधर प्रायः सहपत्री (Bracteate) युक्त। **बाह्यदल पुंज** ५ पृथक् बाह्यदली कोरछादी विन्यास, कभी कभी कोरस्पर्शी विन्यास कभी कभी दो उर्ध्व बाह्यदल अंशतः या पूर्णतः संयुक्त होते हैं। **दलपुंज** ५ पृथक् दली (Polypetalous) आरोही कोरछादी विन्यास। **पुमंग** पुंकेसर १०; कभी कभी संख्या अनिश्चित, स्वतन्त्र, पुंकेसर कभी कभी बन्ध्य (Staminodes) जिससे पुंकेसरों की संख्या ७, ५, ३, तक हो सकती है। परागकोष मुक्तदोली (Versatile) होते हैं। **जायांग** एकाण्डप (Monocarpellary), उर्ध्व, एक कोष्ठीय (Unilocular) सीमान्त बीजाण्डान्यास, वर्तिका (Style) दीर्घ, वर्तिकाग्र (Stigma) सूक्ष्म। **फल** शिम्बी या अनुप्रस्थफटीक (Lomentum) **बीज**–अभ्रूणपोषी होते हैं।

पुष्प सूत्र † या ⊕ ⚥ K_5C_5 A 10 $\underline{G1}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बब्बूलादि कुल (MIMOSACEAE FAMILY)

फल (पॉड)

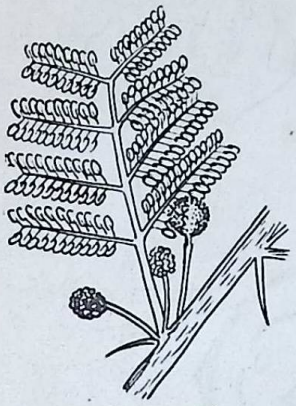

सपुष्प शाखा

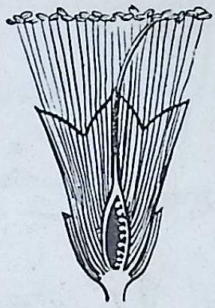

अनुदैर्घ्य कर्त्तन पुष्प

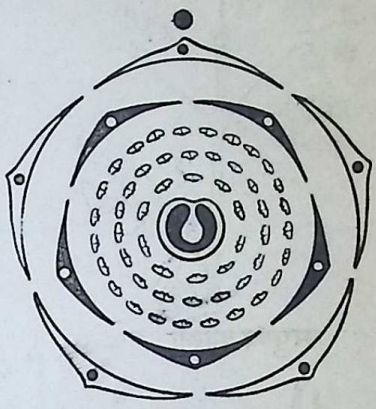

पुष्प आरेख

भौगोलिक वितरण इस कुल के अधिकांश पौधे उष्ण एवं उपोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में पाये जाते हैं। **स्वभाव** प्रायः वृक्ष, गुल्म कभी कभी वर्षानुवर्षीक्षुप कभी कभी आराही पौधे होते हैं। **मूल** मूसला जड़, गहरी, शाखायुक्त होती है। **स्तम्भ** प्रायः सरल, काष्ठीय, स्तम्भतन्तु कषाय द्रव्य एवं राल युक्त होते हैं। **पर्ण** एकान्तर (सीमित जातियों में) अनुपर्णी या अनअनुपर्णी प्रायः संयुक्त (पिच्छाकार द्विपिच्छाकार) कभी कभी पत्रक संवेदन शील (लज्जालु में) कभी कभी अनुपर्ण कण्टक में रूपान्तरित हो जाते हैं। **पुष्पक्रम** असीमाक्षी (Racemose) मुण्डक (Capitulum) या संयुक्त ससीमाक्ष। **पुष्प** छोटे छोटे अवृन्त (Sessile) नियमित-त्रिज्या सममित, द्विलिंगी, पूर्ण, जायांगाधर। **बाह्यदलपुंज** ४–५ संयुक्त बाह्यदली (Gamo sepalous), ये बाह्यदल नलिका बनाते हैं कोरस्पर्शी विन्यास (Valvate aestivation) होता है। **दलपुंज** दल ४-५ या ३-६ बाह्यदलों की संख्या के समान, सभी दल पृथक् २ आधार की ओर किंचित् संयुक्त, कोरस्पर्शी विन्यास होता है। **पुमंग** पुंकेशर प्रायः असंख्य कभी कभी दस या इससे कम होते हैं। पुंकेसर चमकदार रंगीन, स्वतन्त्र कभी कभी संयुक्त, दीर्घ, अन्तर्मुखी (Introse) परागकोष मुक्तदोली। **जायांग** एकाण्डप (Monocarpellary) एक कोष्ठीय, ऊर्ध्व (Superior), सीमान्त बीजाण्डान्यास, वर्तिका दीर्घ, वर्तिकाग्र सूक्ष्म। **फल** शिम्बी, अनुप्रस्थफटीक (Lomentum) **बीज** अभ्रूणपोषी होता है।

पुष्प सूत्र ⊕ ⚥ $K_{(4)}$ या$_{(5)}$ C_4 या$_5$ $A\infty G1$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शतपुष्पा कुल (UMBELLIFERAE FAMILY)

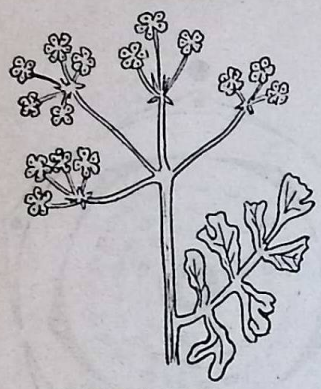

सपुष्प शाखा

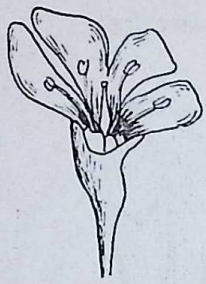

पुष्प

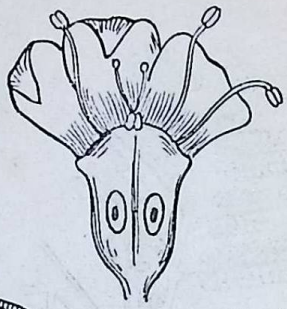

पुष्प का अनुदैर्घ्य कर्त्तन

पुंकेशर

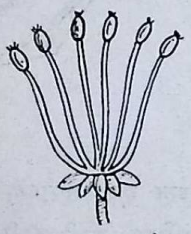

फल

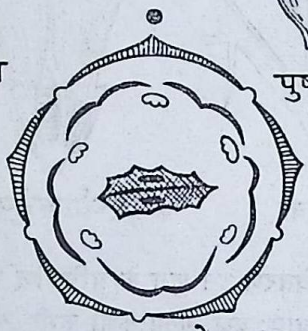

पुष्प आरेख

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौध प्रायः उत्तरी शीतोष्ण (Temperate) प्रदेशों में पाये जाते हैं एवं खेती की जाती है, स्वयं भी उत्पन्न होते हैं। **स्वभाव** प्रायः वर्षायु, द्विवर्षायु या वर्षानुवर्षी क्षुप कभी कभी गुल्मक या गुल्म। **मूल** मूसला जड़ शाखायुक्त कभी कभी खाद्य पदार्थों के संचय से स्थूल होता है। **स्तम्भ** सरल या प्रसरी (Prostrate) शाकीय कभी कभी ग्रंथियुक्त प्रायः हरिताभ पक्व होने पर गुलाबी वर्ण होता है। **पर्ण** प्रायः अनअनुपर्णी, साधारण, पिच्छाकार संयुक्त, एकान्तर प्रायः खण्डित (Dissected) होते हैं। **पुष्पक्रम** प्रायः संयुक्त पुष्प छत्रक (Compound umbel) कभी कभी साधारण छत्रक (Umbel) कभी कभी छत्रक ससीमाक्षी (Umbel Cymose) या एकल (Solitary)। **पुष्प** प्रायः त्रिज्या सममित, द्विलिंगी, कभी कभी छत्रक के बाह्यपुष्प एक व्यास सममित जायांगोपरिक, निचक्र सहपत्री (Involucral bracts) स्थित होते हैं। **बाह्यदलपुंज** ५ संयुक्त बाह्यदली, कभी कभी आकृति में बहुत छोटे होते हैं तथा अण्डाशय संलग्न, कोरस्पर्शी विन्यास होता है। **दलपुंज** ५ पृथक् दली कभी कभी अनुपस्थित श्वेत या पीत वर्ण के, अण्डाशय संलग्न कोरस्पर्शी एवं कोरछादी विन्यास (Imbricate aestivation) होता है। **पुमंग** पुंकेसर ५, पृथक् दलों के एकान्तर स्थित, पराग कोष अन्तर्मुखी, २ कोषीय आधार लग्न (Basifixed) पृष्ठलग्न (Dorsifixed) परिदोली, अनुलम्ब स्फोटी। **जायांग** द्वि अण्डपी, युक्ताण्डपी, अधर, अण्डाशय का ऊर्ध्व भाग मधुचक्र (Stylopodium) युक्त, अण्डाशय द्विकोष्ठीय प्रत्येक कोष्ठ में एक निलम्ब अधोमुखी बीजाण्ड स्थित, अक्षीय बीजाण्डान्यास होता है। **फल** (Cremocarp) **बीज** भ्रूणपोषी (Endospermic) सूक्ष्म भ्रूणयुक्त होता है।

पुष्प सूत्र ⊕ या + ⚥ K_5 या $(_5)$ C_5 या० A 5 $\overline{G(2)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भृङ्गराज कुल (COMPOSITAE FAMILY)

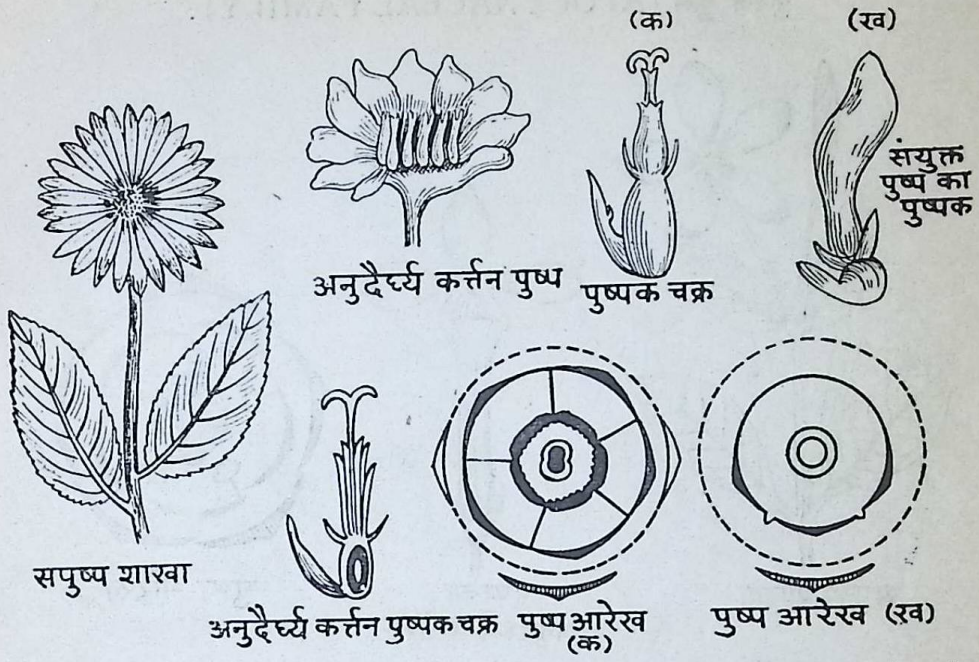

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे प्रायः सर्वत्र सभी प्रकार की जलवायु में पाये जाते हैं। **स्वभाव** वर्षायु, वर्षानुवर्षी प्रायः क्षुप कतिपय गुल्मक एवं गुल्म होते हैं। **मूल** प्रायः मूसला जड़ न्यूनाधिक स्थूल खाद्य पदार्थों के संचय से। **स्तम्भ** प्रायः शाकीय (Herbaceous) काष्ठीय सरल या प्रसरी नलिकाकार, ग्रन्थियुक्त **पर्ण** प्रायः अनअनुपर्णी, साधारण, एकान्तर या अभिमुख कभी-कभी संयुक्त पत्र, सूच्याकार (Acicular) सवृन्त, पर्णतल स्निग्ध या रोमश पर्णधार पूर्ण या दंतुरित पत्राग्र तीक्ष्ण, या कुण्ठिताग्र होता है। **पुष्पक्रम** मुण्डक (Capitulum) सहपत्री चक्र (Involucre of bracts) **पुष्प** पुष्पक (Florets) संज्ञा, २ प्रकार के; सीमान्त पुष्पक (Ray florets) जिह्वित (Ligulate) केन्द्रीय पुष्पक नलिकाकार, **केन्द्रीय पुष्पक** नियमित, त्रिज्या सममित द्विलिंगी, जायांगोपरिक। **बाह्यदलपुंज** छोटे-छोटे दंतुरित पर्ण या शल्क, रोम का चक्र बनाते हैं जिन्हें रोमगुच्छ (Pappus) कहते हैं। **दलपुंज** ५ संयुक्तदली नलिकाकार होता है **पुमंग** ५पुंकेसर, दललग्न, परागकोष संयुक्त होते हैं। **जायांग** द्वि अण्डपी, अधर, युक्ताण्डपी, एक कोष्ठीय, एक अधोमुख बीजाण्ड होता है। **सीमान्त पुष्पक** एक व्यास सममित, एकलिंगी (स्त्री) कभी-कभी क्लीब कतिपय द्विलिंगी जिह्वित, जायांगोपरिक, प्रत्येक पुष्पक सहपत्री के अक्ष से उत्पन्न **बाह्यदल पुंज** केन्द्रीय पुष्पक सदृश **दलपुंज** ५ संयुक्तदली, जिह्वित। **जायांग** द्वि अण्डपी अधर युक्ताण्डपी, एक कोष्ठीय, अधोमुख एक बीजाण्डयुक्त। **फल** सिप्सिला (Cypsela) होता है।

पुष्प सूत्र केन्द्रीय पुष्पक (क) + ⚥ K o (Pappus) $\widehat{C_{(5)}A_{(\infty)}}\ \overline{G(2)}$
सीमान्त पुष्पक (ख) + ♀ K o (Pappus) $C_{(5)}\ \overline{G(2)}$

सीमान्त पुष्पक (ग) + ⚥ K o (Pappus) $\widehat{C_{(5)}A_{(5)}}\ \overline{G(2)}$
सीमान्त पुष्पक (घ) + K o (Pappus) $C_{(5)}$ A o G o

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कुटज कुल (APOCYNACEAE FAMILY)

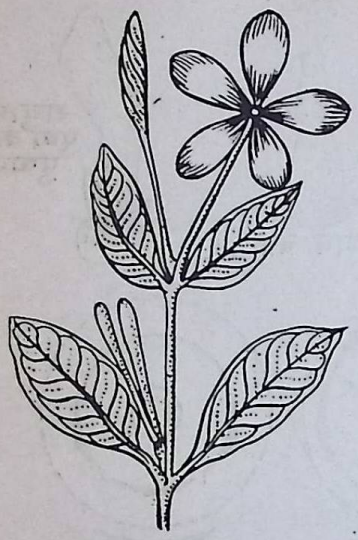

सपुष्प शाखा

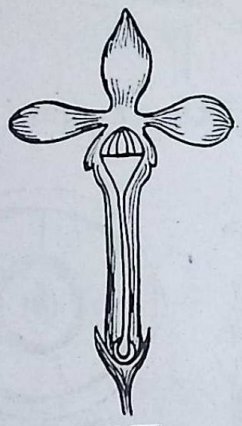

पुष्प का अनुदैर्घ्य कर्त्तन

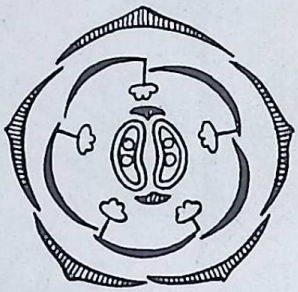

पुष्प आरेख

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे प्रायः सर्वत्र विशेषतः उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में पाये जाते हैं। **स्वभाव** बड़े या मध्याकार वृक्ष कभी-कभी काष्ठीय वल्ली गुल्म या क्षुप होते हैं। **मूल** मूसला जड़। **स्तम्भ** शाकीय या काष्ठीय, सरल शाखायुक्त स्निग्ध होता है। **पर्ण** प्रायः साधारण अभिमुख या चक्रीय कभी-कभी एकान्तर तथा अनअनुपर्णी। **पुष्पक्रम** ससीमाक्षी कभी कभी पुष्पगुच्छ (Panicle) या पुष्पछत्रक (Corymbose) होता है। **पुष्प** प्रायः नियमित त्रिज्या सममित कभी-कभी एक व्यास सममित द्विलिंगी जायांगाधर पंचतयी, कभी-कभी २–६ अवयवी होता है। **बाह्यदलपुंज** ५ संयुक्त बाह्यदली गहरे ओष्ठ-दंतुरयुक्त, आधार पर ग्रन्थियुक्त कोरछादी विन्यास होता है। **दलपुन्ज** ५ कभी कभी ४ संयुक्त दली, दल कीप, तूरी आकार के व्यावर्तित विन्यास कभी-कभी कोरस्पर्शी विन्यास होता है। **पुमंग** ५ पुंकेशर स्वतन्त्र कभी-कभी ४ पुंतन्तु बहुत छोटे, दलान्तर्मुखी, दलों के एकान्तर, परागकोष अनुलम्ब रेखाकार तीराकृति (Arrow) परागकोष युक्त या पृथक् वर्तिकाग्र के चारों ओर आधार पर एक गोलाकार ग्रन्थि चक्र होता है। **जायांग** द्वि अण्डपी (Bicarpellary) कभी-कभी अधिक, पूर्ण युक्ताण्डपी (Syncarpous) या नीचे स्वतन्त्र तथा वर्तिका के ऊपर संयुक्त, संयुक्त होने पर द्विकोष्ठीय दो बीजाण्ड, अक्षीय बीजाण्डान्यास; पृथकाण्डपी होने पर प्रत्येक अण्डप में एक बीजाण्ड सीमान्त बीजाण्डान्यास उर्ध्व अण्डाशय या अंशतः अधर। वर्तिका (Style) प्रायः साधारण स्थूल एवं वर्तिकाग्र के ऊपर तक होती है। **फल** शुष्क, मांसल, अष्ठिफल, संपुट-प्रावर, सरसफल या पिच्छाकार फल (Samara) **बीज** पिच्छाकार रोमश एवं भ्रूणपोषी होता है।

पुष्प सूत्र $\oplus$ ⚥ $K_{(5)}\ \overset{\frown}{C_{(5)}A_5}$ या (5) $\underline{G\,2}$ या $\underline{G}\,(2)$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कार्पास कुल (MALVACEAE FAMILY)

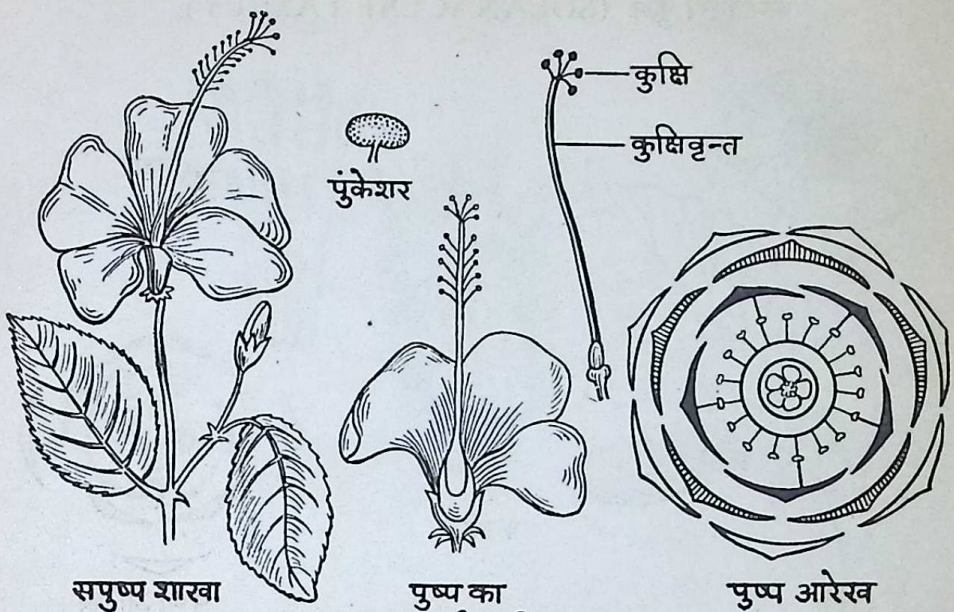

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे प्रायः सर्वत्र मिलते हैं विशेषतः उष्णप्रदेशों में पाये जाते हैं। किन्हीं जातियों की प्राप्ति खेती द्वारा होती है तथा वन्य प्रदेशों में भी पाये जाते हैं। **स्वभाव** वर्षायु, वर्षानुवर्षी क्षुप, गुल्मक, गुल्म वृक्ष। **मूल** मूसला जड़ शाखायुक्त **स्तम्भ** सरल, शाकीय, काष्ठीय शाखायुक्त, बेलनाकार, ठौस, स्निग्ध, रसदार प्रायः तारकाकृति रोमश (Stellate hairs) होते हैं। **पर्ण**—साधारण, एकान्तर, गोल, पाणिवत् खण्डित, सवृन्त, पाणिवत् सिरान्यास, तारकाकृति रोमश अनुपर्णी, अनुपर्णी-अचिर स्थायी। **पुष्पक्रम** एकल कक्षीय (Solitary axillary) अग्रस्थ एकल (Solitary Terminal) या ससीमाक्षी कभी-कभी पुष्प असीमाक्ष (Loose raceme) क्रम में होते हैं। **पुष्प** पूर्ण, नियमित, त्रिज्या सममित, द्वि लिंगी, जायांगाधर, पंचतयी प्रायः सहपत्री एवं सुन्दर वर्ण के पिच्छिल पदार्थ युक्त। **अनुबाह्यदल पुंज** (Epicalyx) बाह्यदल पुंज के चारों ओर सहपत्री चक्र में स्थित रहते हैं। इनकी संख्या अनिश्चित (३–७) होती है। **बाह्यदल पुंज** ५ बाह्यदल पृथक् या आधार पर संयुक्त, कोरस्पर्शी विन्यास होता है। **दलपुंज** ५ दल पृथक् कभी-कभी आधार पर संयुक्त, व्यावर्तित या कोरस्पर्शी विन्यास होता है। **पुमंग** पुंकेसर अनेक, अनिश्चित कभी-कभी ५ संयुक्त, एक संघी, पुंतन्तु मिलकर एक पुमंगनलिका बनाते हैं जो दललग्न रहती है। यह नलिका यौनिसूत्र, अण्डाशय को घेरती है। परागकोष एक कोष्ठीय अनेक दीर्घ नुकीले नर बीजाण्ड युक्त। **जायांग** ५ से अनिश्चित, युक्ताण्डपी, ऊर्ध्व अण्डाशय, एक से अनेक कोष्ठीय, एक से अनेक बीजाण्ड (Ovules) युक्त, अक्षीय बीजाण्डान्यास, वर्तिका साधारण, दीर्घ एवं पुमंग नलिका के मध्य से निकलती है। वर्तिकाग्र अनेक प्रायः अण्डपों की संख्या से द्विगुणित। **फल** बहुकोष्ठीय संपुट (Loculicidal Capsule) या वेश्मस्फोटी फल (Schizocarp) **बीज** अभ्रूणपोषी या सूक्ष्मभ्रूणी, वृक्काकार (Reniform) अण्डाकार होते हैं।

पुष्प सूत्र ⊕ ⚥ Epi 3–7 K (5) $\overset{\frown}{C_5\ A}$ (∞) $\underline{G(5\text{-}12)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कण्टकारी कुल (SOLANACEAE FAMILY)

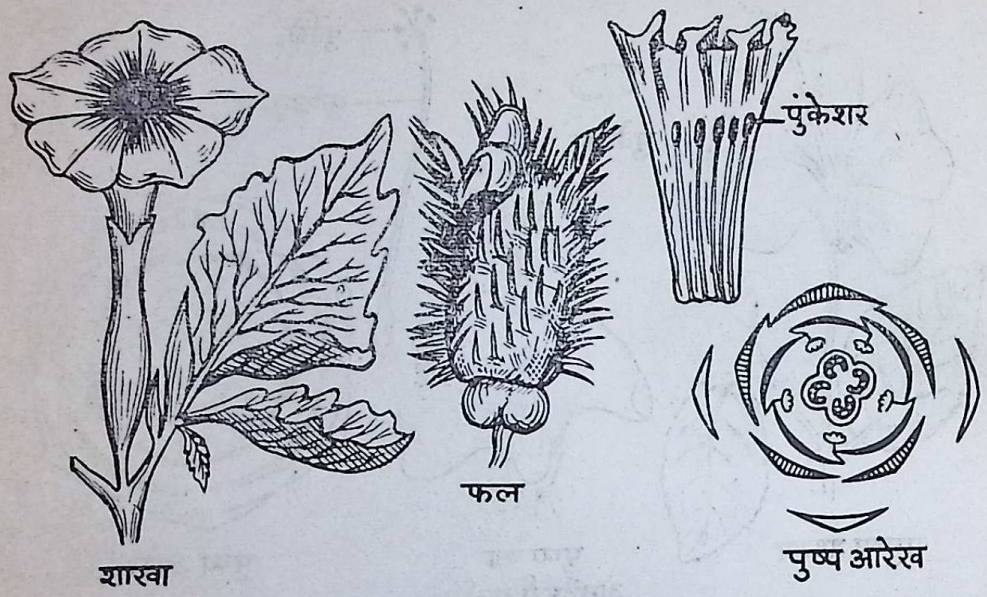

भौगोलिक वितरण—इस कुल के पौधे अधिकांशतः उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों तथा समशीतोष्ण प्रदेशों में तथा किन्हीं स्थानों एवं प्रदेशों में प्रभूत मात्रा में पाये जाते हैं। **स्वभाव** प्रायः वर्षायु, वर्षानुवर्षी क्षुप या छोटे गुल्म, छोटे वृक्ष या आरोही क्षुप होते हैं। **मूल** मूसला जड़ शाखायुक्त होती है। **स्तम्भ** शाकीय (Herbaceous) काष्ठीय (Woody) सरल, वेलनाकार शाखायुक्त रोमश या कांटेदार होता है। **पर्ण** अनअनुपर्णी, एकान्तर कभी-कभी युग्म क्रम में, पर्णधार अभिन्न क्वचित् खण्डित कांटेदार होता है। **पुष्पक्रम** प्रायः ससीमाक्ष, कक्षीय पुष्प या कक्षीय ससीमाक्ष (Extra axillary cymes)। **पुष्प** त्रिज्या सममित (Actinomorphic) क्वचित् एक व्यास सममित (Zygomorphic), द्वि लिंगी, पंचतयी, जायांगाधर होता है। **बाह्यदल पुंज** ५ संयुक्त बाह्यदली, चिरलग्न, कोरस्पर्शी, कोरछादी विन्यास होता है। **दलपुंज** ५ संयुक्तदली प्रायः चक्राकार, घण्टाकार, द्वयौष्ठी, कोरस्पर्शी, कोरछादी विन्यास। **पुमंग** ५ पृथक् पुंकेसर, दललग्न (Epipetalous) दलौष्ठों के एकान्तर, परागकोष कभी-कभी संयुक्त (Syngenesious) शेष पुंकेसर बन्ध्य (Staminodes) होते हैं। पराग कोष आधारलग्न (Basifixed) होते हैं। **जायांग** द्वि अण्डपी, युक्ताण्डपी, ऊर्ध्व अण्डाशय, द्विकोष्ठी, किन्तु कूटभित्ति द्वारा (False septum) चार कोष्ठीय, प्रत्येक कोष्ठ में अनेक बीजाण्ड होते हैं। अक्षीय बीजाण्डान्यास (Axile placentation), वर्तिकाग्र द्वि पाली (Bilobed) अण्डाशय तिर्यक् स्थित होता है। **फल** सरस फल (Berry) अनेक बीज युक्त संपुट (Capsule) होता है।

पुष्प सूत्र $\oplus$ ⚥ $K_{(5)}\widehat{C_5}A\ 5\ \underline{G(2)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

राजिका कुल (CRUCIFERAE FAMILY)

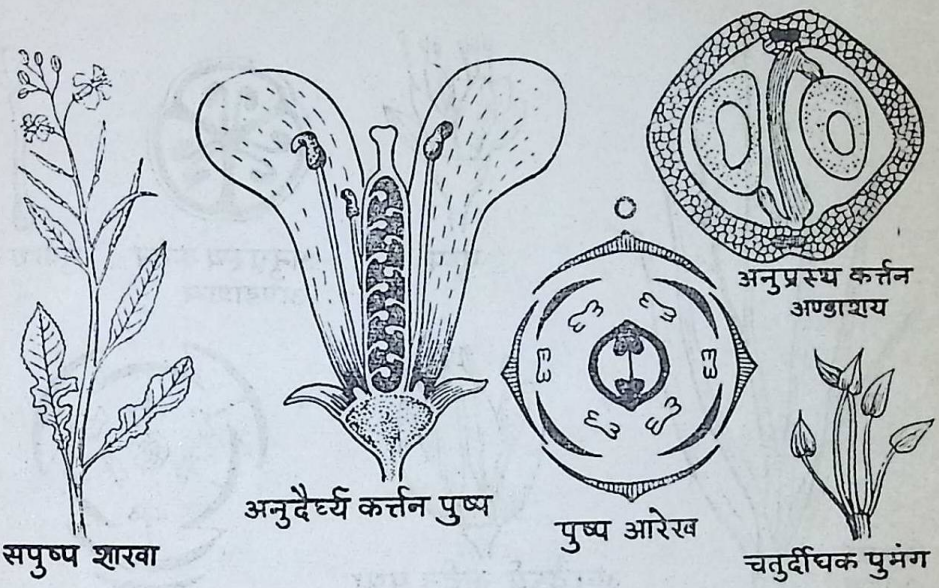

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे प्रायः सर्वत्र विशेषतः समशीतोष्ण या शीत प्रदेशों में पाये जाते हैं। **स्वभाव** अधिकांश क्षुप, वर्षायु, द्विवर्षायु, वर्षानुवर्षी क्षुप, कभी कभी गुल्म होते हैं। **मूल** मूसला जड़ कभी-कभी भोज्य पदार्थों के संचय से अति स्थूलाकार में परिवर्तित होती है। **स्तम्भ** प्रायः शांकीय क्वचित् काष्ठीय, सरल, बेलनाकार कभी-कभी बहुत छोटा होता है। **पर्ण** उपावृन्त (Sub sessile) या अवृन्त (Sessile) वीणाकार (Lyrate) गहरे खण्डित, पिच्छाकार संयुक्त, अनअनुपर्णी, साधारण, मूल एवं स्तम्भोद्भूत, एकान्तर होते हैं। **पुष्पक्रम** प्रायः असीमाक्ष या समशिख (Corymb) होता है। **पुष्प** त्रिज्या सममित कभी-कभी एक व्यास सममित द्वि लिंगी, पूर्ण तथा जायांगाधर टेट्रामिरस **बाह्यदलपुंज** बाह्यदल ४, दो दो चक्रों में (२+२) पृथक् बाह्यदली (polysepalous) कोरछादी विन्यास होता है। **दलपुंज** दल 4 प्रथक् २. स्वस्तिकाकार (Cruciform) एक चक्र में अवस्थित। प्रत्येक दल में एक ओष्ठ तथा चिबुक (Claw) होता है, कोरस्पर्शी विन्यास। **पुमंग** पुंकेसर ६ दो चक्रों में स्थित; प्रायः चतुर्दीर्घी (Tetradynamous) दो छोटे (बाहरी चक्र के) ४ बड़े, परागकोष आधार लग्न, अन्तर्मुखी। छोटे पुंकेसरों के आधार पर छोटी छोटी मकरन्द ग्रन्थियां होती हैं। **जायांग** द्वि अण्डपी, युक्ताण्डपी (Syncarpous) ऊर्ध्वाण्डाशय, एक कोष्ठीय जो द्विकोष्ठीय एक कूटभित्ति के विकास से होते हैं। वर्तिकाग्र दो पालीयुक्त, वर्तिका छोटी, दो भित्तीय बीजाण्डान्यास (Parietal placentation) बीजाण्ड अनेक होते हैं। **फल** कूटपटीक फल (Siliqua) या कूटपटीका फल (Silicula) या लोमेन्टम। **बीज** अभ्रूणपोषी होता है।

पुष्प सूत्र $\oplus$ ⚥ $K_{2+2} C_4 A_{2+4} \underline{G(2)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रसोन कुल (LILIACEAE FAMILY)

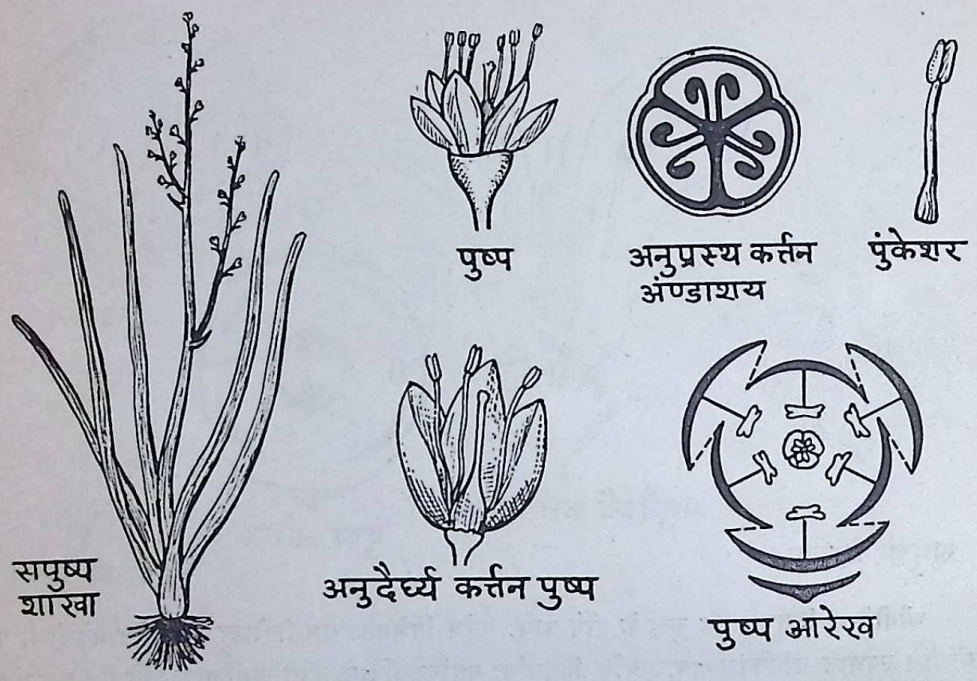

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे प्रायः सर्वत्र विशेषतः उपोष्ण, समशीतोष्ण प्रदेशों में खेती द्वारा एवं वन्य प्रदेशों में स्वयं उत्पन्न होते हैं। **स्वभाव** प्रायः वर्षानुवर्षी क्षुप, प्रकन्द (Rhizome) घनकन्द (Corm) शल्ककन्द (Bulb) युक्त। गुल्म, वृक्ष बहुत कम, आरोही पौधे। **मूल** प्रायः सूत्रान्वित, अपस्थानिक, किन्हीं पौधों में मूल खाद्य पदार्थों के संचय से ग्रन्थिमय। **स्तम्भ** शाकीय, काष्ठीय, वायवीय या भूमिगत, किन्हीं जातियों में शाखाएँ पत्राभास में परिवर्तित **पर्ण** साधारण स्तम्भ या मूलपत्र या दोनों होते हैं। अनअनुपर्णी, अवृन्त, शल्कीय, मांसल, समानान्तर सिरान्यास। **पुष्पक्रम** विभिन्न प्रकार का असीमाक्षी (Racemose) ससीमाक्षी (Cymose) छत्रक या एकल अग्रस्थ (Solitary terminal) कक्षीय एकल, पुष्प छत्र (Umbel)। **पुष्प** द्विलिंगी, त्रिज्या सममित जायांगाधर, शुष्क एवं छदशूकी छद (Spathaceous) सहपत्र (Bracts)युक्त। परिदल पुंज (Perianth) बड़े, दलाभ प्रायः ६ परिदलपर्ण दो चक्रों में स्थित (३ + ३) ये संयुक्त या पृथक् हो सकते हैं। कोरस्पर्शी, कोर छादी विन्यास होता है। **पुमंग** ६ पुंकेसर दो चक्रों में (३ + ३) परिदल पुंजाधार (Epiphyllous) पर संयुक्त या पृथक् होते हैं। परागकोष दीर्घ, रेखाकार, अन्तर्मुखी, द्विकोष्ठीय होते हैं। **जायांग** ३ अण्डपी, युक्ताण्डपी (Syncarpous) गर्भाशय त्रिकोष्ठीय (Trilocular) उर्ध्व, अक्षीय बीजाण्डान्यास, बीजाण्ड अनिश्चित संख्या में; वर्तिकाग्र प्रायः तीन होती हैं **फल** सरस फल (Berry) संपुट-प्रावर (Capsule) **बीज** भ्रूणपोषी होता है।

पुष्प सूत्र $\oplus$ ⚥ P_{3+3} या $(3+3)A_{3+3}$ $\underline{G(3)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

त्रिवृत् कुल (CONVOLVULACEAE FAMILY)

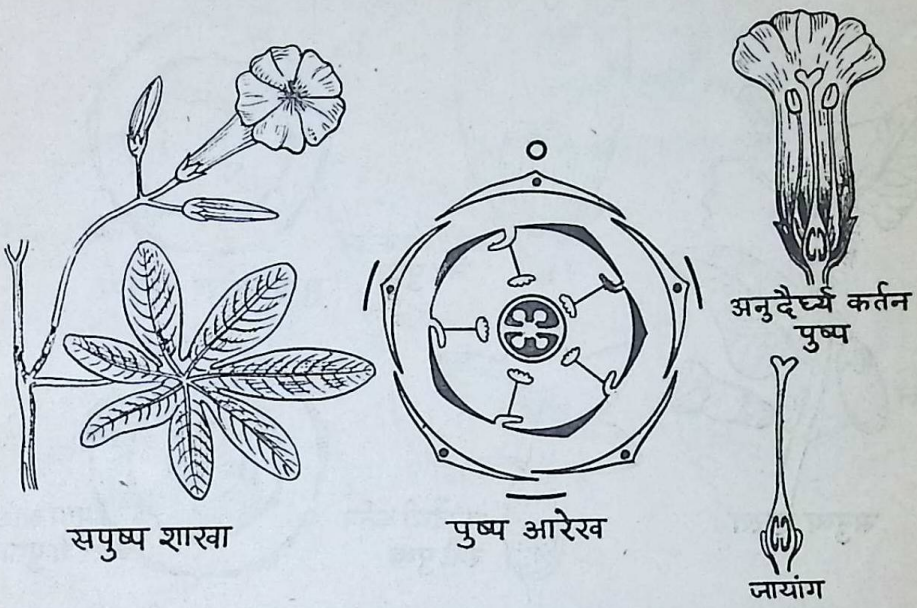

भौगोलिक वितरण—इस कुल के पौधे प्रायः सर्वत्र मिलते हैं। विशेषतः उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों, वन्य प्रदेशों में पाये जाते हैं। **स्वभाव** प्रायः वर्षायु, वर्षानुवर्षी क्षुप, प्रायः वल्ली, कतिपय गुल्म, कण्टकी मरुद्भिद् (Xerophytes) **मूल** विभिन्न प्रकार की प्रायः अपस्थानिक, बहुशाखायुक्त कभी-कभी मांसल, ग्रंथियुक्त, परजीवी चूषकमूल (Haustoria)। **स्तम्भ** प्रायः शाकीय (Herbaceous) व्यावर्तित (Twining) कतिपय जातियों में स्थूल, ग्रन्थियुक्त, प्रकन्दाकृति होता है। **पर्ण** साधारण किन्ही जातियों में पाणिवत् (Palmate) अनअनुपर्णी, एकान्तर प्रायः सवृन्त। **पुष्पक्रम** प्रायः द्विशाखी ससीमाक्ष (Dichasial Cyme) कभी-कभी एकल (Solitary)। **पुष्प** त्रिज्या सममित (Actinomorphic), द्विलिंगी, पंचतयी (Pentamerous) जायांगाधर, सहपत्री होता है। **बाह्यदलपुंज** ५ पृथक् बाह्यदली, चिरलग्न, कोरछादी विन्यास (Imbricate aestivation)। **दलपुंज** ५ संयुक्त दली, घण्टाकृति; विभिन्न वर्णों के प्रायः बैंगनी वर्ण के, कोर स्पर्शी विन्यास (Induplicate valvate)। **पुमंग** ५ पुंकेसर, दललग्न, दलों के एकान्तर अवस्थित होते हैं। **जायांग** द्वि अण्डपी, युक्ताण्डपी, ऊर्ध्व अण्डाशय, अण्डाशयाधर, एक चक्री युक्त, प्रायः द्विकोष्ठीय कभी-कभी त्रिकोष्ठीय, प्रत्येक कोष्ठ में एक एक बीजाण्ड अक्षीय बीजाण्डान्यास (Axile placentation)। **फल** संपुट (Capsule) सरस फल (Berry) **बीज** भ्रूणपोषी होता है।

पुष्प सूत्र $\oplus \quad ⚥ \; K_5 \; \overset{\frown}{C_{(5)} \; A_5} \; \underline{G(2)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कोशातकी कुल (CUCURBITACEAE FAMILY)

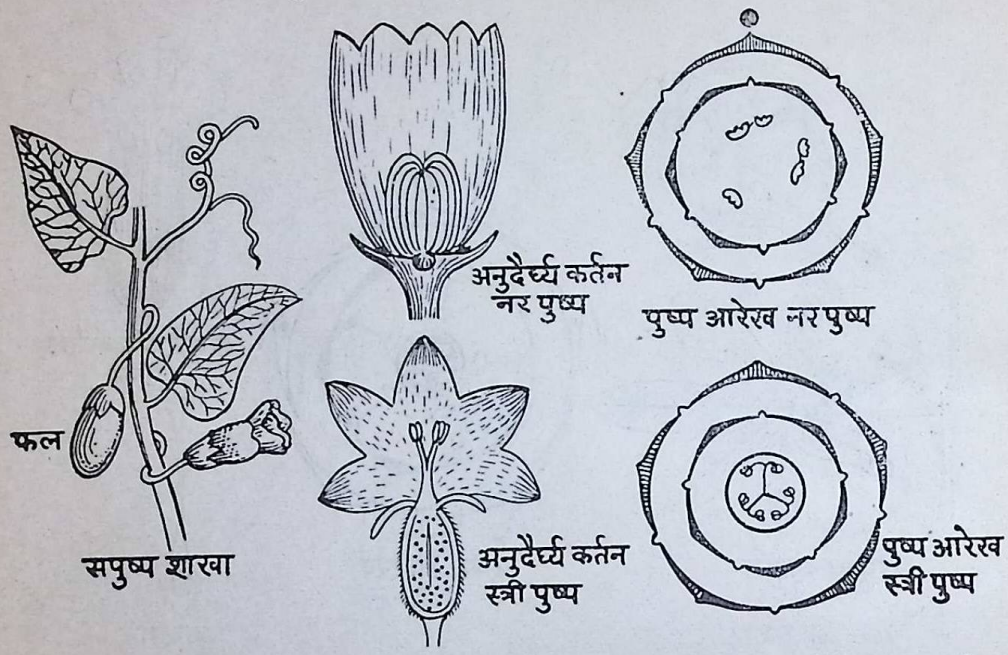

भोगोलिक वितरण :—इस कुल के पौधे विशेषतः, उष्ण, उपोष्ण प्रदेशों तथा कतिपय जातियाँ समशीतोष्ण प्रदेशों में पायी जाती हैं। **स्वभाव** वर्षायु या वर्षानुवर्षी आरोही प्रसरी क्षुप (आरोहण, प्रसरण, तन्तुओं-tendriles द्वारा) कभी कभी वर्षानुवर्षी क्षुप या गुल्म। **मूल** मूसला जड़ अनेक शाखा युक्त कभी-कभी खाद्य एवं जल संचय युक्त। **स्तम्भ** प्रायः दुर्बल, शाकीय तन्तुओं द्वारा आरोही; प्रायः पंचकोणीय एवं नलिकाकार होता है। **पर्ण** साधारण, एकान्तर, पाणिवत्, खण्डित, पर्णतन्तु विभिन्न आकृतियों के तथा स्पर्श से संवेदनशील, किन्हीं जातियों में तन्तु नहीं होते हैं। **पुष्पक्रम** विभिन्न प्रकार का पुष्प प्रायः बड़े एवं एकल (solitary) कभी-कभी असीमाक्ष, ससीमाक्ष या पुष्प गुच्छ (panicle) **पुष्प** प्रायः एकलिंगी, अपूर्ण, त्रिज्या सममित, जायांगोपरिक, कभी-कभी द्वि लिंगी। **नरपुष्प** बहु संख्यक **बाह्यदलपुंज** ५ संयुक्त बाह्यदली, ५ दीर्घ ओष्ठयुक्त, कोरछादी विन्यास। **दलपुंज** ५ संयुक्त दली, ५ दीर्घ ओष्ठयुक्त, कोरछादी विन्यास सभी दल बाह्यदल पुंज नलिका पर स्थित होते हैं। **पुमंग** पुंकेसर ५ विभिन्न जातियों में पुंकेसर दो चक्रों में २+२ तथा एक पृथक् किन्हीं जातियों में तीन पुंकेसर संयुक्त, किन्हीं में पांचों पुंकेसर स्वतन्त्र, कतिपय जातियों में चार पुंकेशर संयुक्त एक स्वतन्त्र होता है। **स्त्रीपुष्प** अल्प संख्यक बाह्यदलपुंज एवं दलपुंज नर पुष्प के समान होते हैं। **जायांग** गर्भाशय त्रि अण्डपी, युक्ताण्डपी, अधर, एक कोष्ठीय, कभी–कभी बीजाण्डान्यास अन्दर तक जाने से त्रिकोष्ठीय प्रतीति, प्रायः भित्तीय बीजाण्डान्यास होता है। **फल** अलाबुक (pepo)।

पुष्प सूत्र नर पुष्प ⊕ ♂ $K_{(5)}C_4$ या $_{(5)}A_5$ या (5) या (2)+(2)+1

स्त्रीपुष्प ⊕ ♀ $K_{(5)}C_5$ या $_{(5)}$ Ao या 3-5 बन्ध्य पुंकेशर (staminodes) $\overline{G(3)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आर्द्रक कुल (ZINGIBERACEAE FAMILY)

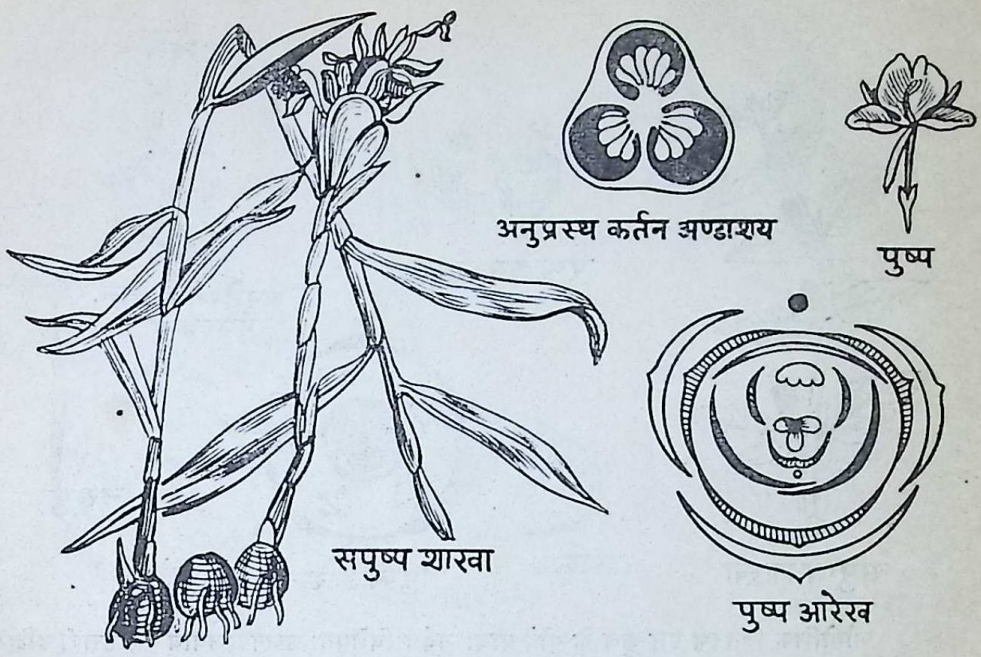

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे विशेषतः उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण प्रदेशों में इन्डों० मलाया, जावा, सुमात्रा द्वीप समूह; कैरल में पाये जाते हैं। **स्वभाव** प्रायः वर्षानुवर्षी क्षुप होते हैं। **मूल** अपस्थानिक होता है। **स्तम्भ** प्रायः भूमिगत प्रकन्द प्रसरी क्वचित् वायवीय स्तम्भ अनुपस्थित। **पर्ण** साधारण, सपर्णवृन्त या अवृन्त (sessile) पर्णाधार छदी, अखण्डित, रेखाकार (linear) भालाकार (lanceolate) या विस्तृत; मूल या स्तम्भोद्भूत **पुष्पक्रम** एकल अग्रस्थ (solitary terminal) पत्र-कोणोद्भूत या सहपत्री युक्त विशेषांकुर से उद्भूत या भूमिगत प्रकन्द से कभी–कभी पर्णस्तम्भ से उत्पन्न पुष्प मुण्डक या ससीमाक्ष क्रम में स्थित या सहपत्री शूकी (bracteate spike) होता है। **पुष्प** एक व्यास सममित द्वि लिंगी जायांगोपरिक, सहपत्री युक्त होते हैं। **परिदलपुंज** ६ परिदल पर्ण २ चक्रों में (३+३) परिदल पुंज बाह्यदल एवं दलों से विभेदित होते हैं। **बाह्यदल पुंज** ३ संयुक्त बाह्यदली, बाह्यदल कभी–कभी घण्टाकार या नलिकाकार होता है। **दलपुंज** ३ पृथक् दली नलिकाकार एवं तीन विषम ओष्ठीय **पुमंग** ६ पुंकेसर दो चक्रों में किन्तु अन्तः चक्रीय मध्य पृष्ठ पुंकेसर ही क्रिया शील, जो दल लग्न शेष दो पुंकेसरों से संयुक्त होकर (labellum) का निर्माण करते हैं। बाह्य चक्र के पुंकेसर अनुपस्थित **जायांग** ३ अण्डपी, युक्ताण्डपी, अधर गर्भाशय, प्रायः त्रिकोष्ठीय कभी–कभी एक कोष्ठीय अक्षीय बीजाण्डान्यास; वर्तिका साधारण, दीर्घ, गर्भ कारक पुंकेसर (Fertile stamen) के साथ नलिका में स्थित; वर्तिकाग्र एक। **फल** कोष्ठीय संपुट (laculicidal Capsule) कभी–कभी मांसल या अस्फोटी होते हैं।

पुष्प सूत्र + ⚥ $K_{(3)}\widehat{C_3A1}\ \overline{G(3)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एरण्ड कुल (EUPHORBIACEAE FAMILY)

सपुष्प शाखा

पुष्प क्रम चषक

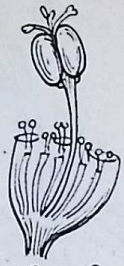

अनुदैर्घ्य कर्तन पुष्प क्रम

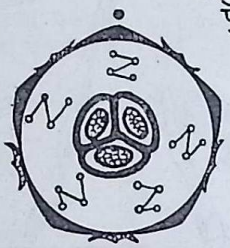

पुष्प आरेख

नर पुष्प

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे प्रायः सर्वत्र विशेषतः उष्ण जलवायु एवं उत्तरी दक्षिणी समशीतोष्ण प्रदेशों में पाये जाते हैं। **स्वभाव** वर्षायु, वर्षानुवर्षी क्षुप, गुल्म या वृक्ष; प्रायः सान्द्र दुग्धवत् स्रावयुक्त होते हैं। **मूल** मूसला जड़। **स्तम्भ** शाकीय या काष्ठीय, सीधा या प्रसरी कभी–कभी spiny सकण्टक; कभी–कभी स्तम्भ जल संचय से मांसल। **पर्ण** प्रायः साधारण, एकान्तर, अनुपर्णी कभी-कभी पर्ण गहरे खण्डित **पुष्पक्रम** असीमाक्ष या ससीमाक्षी एवं प्रायः संयुक्तक्रम में; चषक या कटोरिया (cyathium) विशेष पुष्पक्रम, इस पुष्पक्रम में प्याले के आकार का एक निचक्र (Involucre) जिसमें मकरन्दस्रावी ग्रन्थियां पायी जाती हैं। निचक्र द्वारा ढ़का हुआ बीच में एक स्त्री पुष्प होता है, जिसका वृन्त अपने चारों ओर घिरे हुए नर पुष्पों के वृन्तों की अपेक्षा दीर्घ होता है। स्त्रीपुष्प घटकर केवल स्त्री केशर तक सीमित; नर पुष्प घटकर केवल पुंकेसर तक शेष रहते हैं; पुंकेसर एक वृन्त से जुडा रहता है, उसके आधार पर एक शल्कीय सहपत्र होता है। बीच का मादा पुष्प पहिले परिपक्व होता है, उसके बाद स्त्री पुष्प के चारों ओर स्थित नर पुष्प पक्व होते हैं। **पुष्प** त्रिज्या सममित एक लिंगी, सहपत्री, जायांगाधर कदाचित् बाह्यदल पुंज एवं दलपुंज दोनों स्थित होते हैं या परिदल पुंज का एक चक्र बनता है या परिदल अनुपस्थित। **नरपुष्प** में पुंकेसर अनेक या कम किसी जाति में बिना परिदल के एक पुंकेसर तक सीमित; पुंतन्तु पृथक् या एक या अधिक गुच्छों में संयुक्त **स्त्रीपुष्प** प्रायः एकल स्त्रीकेसर; अण्डाशय ३ अण्डपी, ऊर्ध्व युक्ताण्डपी, अक्षीय बीजाण्डान्यास, प्रत्येक कोष्ठ में एक या दो बीजाण्ड; वर्तिका ३ प्रत्येक द्विशाखी, वर्तिकाग्र ६। **फल** संपुट या रेग्मा होता है

पुष्पसूत्र (क) ⊕ ♂ K_5C_5 A∞ (ख) ⊕ ♀ K_5C_5 या o $\underline{G\ (3)}$
(ग) ♂ K_0C_0 A 1 (घ) ♀ K_0C_0 $\underline{G\ (3)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अर्क कुल (ASCLEPIADACEAE FAMILY)

गर्भ केसर

पुष्प

अनुदैर्घ्य कर्तन पुष्प

सपुष्प शाखा

पुष्प आरेख

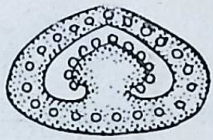

अनुप्रस्थ कर्तन अण्डाशय

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं, किन्तु उष्ण प्रदेशों एवं उपोष्ण प्रदेशों में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। **स्वभाव** प्रायः क्षुप, गुल्म, गुल्मक, वल्लीगुल्मक होते हैं। **मूल** प्रायः मूसला जड़ कभी-कभी अपस्थानिक (Adventitious root) होती है **स्तम्भ** शाकीय या काष्ठीय (Woody) कतिपय पौधे मोम एवं सघन रोमाच्छादित होते हैं। **पर्ण** साधारण, अखण्डित, अनअनुपर्णी (Exstipulate) मुख्यतया अभिमुख क्रम, पर्ण कभी-कभी कांटे या शल्क में परिवर्तित होते हैं। **पुष्पक्रम** प्रायः पुष्प छत्रक (Umbellate), ससीमाक्षी (Cymose) कभी-कभी असीमाक्षी किन्हीं जातियों में द्विशाखी ससीमाक्ष (Dichasial cyme), एक शाखी ससीमाक्ष में परिणित हो जाते हैं। **पुष्प** नियमित त्रिज्या सममित, द्विलिंगी, जायांगाधर कभी कभी एक व्यास सममित पंचतयी (Pentamerous) पुष्प होते हैं। **बाह्यदल पुंज** ५ पृथक् बाह्यदलों से निर्मित आधार पर किंचित्, संयुक्त, प्रायः कोरछादी विन्यास। **दलपुंज** ५ संयुक्त दली, दलपुंज बाहर एवं अन्दर से, मुख प्रदेश रोमयुक्त। **पुमंग** ५ पुंकेसर एक नलिका में संयुक्त, दललग्न (Epipetalous) पराग कोष पंचकोणीय वर्तिकाग्र की सीमा पर युक्त (Gynostegium) **जायांग** द्वि अण्डपी ऊर्ध्व अण्डाशय, बीजाण्ड अनेक, सीमान्त बीजाण्डान्यास (Marginal placentation) **फल** प्रायः युग्म एक सेवनीक फल (Pair of follicles) **बीज** चपटे, दबे हुए, रोमों से आवृत होते हैं।

पुष्प सूत्र $\oplus$ ⚥ K_5 $C_{(5)}$ A_5 $\underline{G2}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यव कुल (GRAMINEAE FAMILY)

शारवा

अनावृत शूकिका

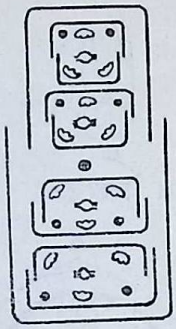

पुष्प क्रम आरेख

पुष्प आरेख

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे विभिन्न प्रकार की जलवायु में, उष्ण प्रदेशों में एवं समशीतोष्ण प्रदेशों में मुख्यतः शीतकाल में उत्पन्न तथा खेती की जाती है। **स्वभाव** प्रायः तृण, शाकीय जाति व वर्षायु या वर्षानुवर्षी, कतिपय बांस जाति आरोही, काष्ठीय होते हैं। **मूल** अपस्थानिक, सौत्रिक या जटामूल (Stilt) होते हैं। **स्तम्भ** बेलनाकार, पर्वसन्धि (Nodes) एवं पर्व (Internodes) ठोस या सुषिर होते हैं। **पर्ण** साधारण, एकान्तर, समानान्तर सिरान्यास (Parallel Venation) प्रायः संकुचित, दीर्घ, अवृन्त, स्तम्भलग्न, पर्ण, अधिकतर दो अभिमुख श्रेणी में स्थित, पर्णफलक रोमश होता है। **पुष्पक्रम** पुष्प छोटे-छोटे तथा तृणी (Grasses) एक अनावृत शाखान्वित शूकी (Spike) में उत्पन्न इन शूकियों के संयुक्त होने पर शूकिका (Spikelets) होती है। एक शूकिका में अनेक पुष्प; विशेष सहपत्री (Specialized bracts) बुसपत्र (Glume) के साथ रहते हैं। कतिपय जातियों में शूकिका पर केवल एक पुष्प स्थित; पुष्पों का अक्ष विशेष शल्कीय सहपत्री युक्त, जिसकी संज्ञा Pulla या Pale है। **पुष्प** प्रायः द्वि लिंगी, कभी-कभी एक लिंगी होते हैं। **परिदल पुंज** अण्डाशय के नीचे प्रायः दो शल्क (Lodicules) होते हैं। **पुमंग** पुंकेसर ३ जायांगाधर, पुंकेसर, क्वचित् ६ पुंकेसर (शालि-वास में) **जायांग** एकाण्डपी, ऊर्ध्व अण्डाशय, एक कोष्ठीय, एक आधार बीजाण्डयुक्त स्त्री केसर के पार्श्व भाग से २ पिच्छाकृति वर्तिकाग्र होती हैं। **फल** संचोल भित्तिफल (Caryopsis) कभी-कभी सरस फल या दृढ़ फल (Nut) होते हैं। **बीज** भ्रूणपोषी (Endospermic) एक बीजपत्री होते हैं।

पुष्प सूत्र ⚥ K_0 C_0 A_3 या $3+3$ $\underline{G\,1}$ या $\underline{(3)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जम्बीर कुल (RUTACEAE FAMILY)

सपुष्प शाखा

पुष्प

अनुप्रस्थ कर्तन फल

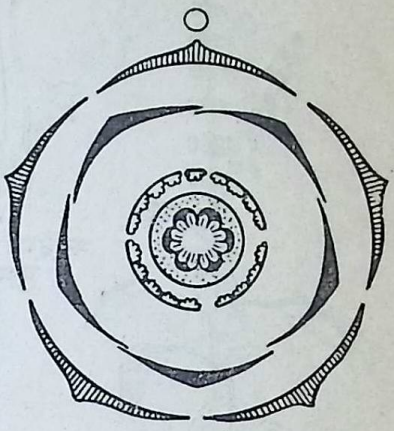

पुष्प आरेख

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे मुख्यतः उष्ण प्रदेशों में एवं समशीतोष्ण प्रदेशों में भी पाये जाते हैं। विविध फलों के लिए पौधे लगाये जाते हैं। **स्वभाव** प्रायः छोटे वृक्ष, गुल्म, क्षुप बहुत कम होते हैं। **मूल** मूसला जड़ शाखा प्रशाखा युक्त एवं कवक (Fungus) से संक्रमित रहती है। **स्तम्भ** सरल, बेलनाकार काष्ठीय या शाकीय प्रायः कांटेदार होता है। **पर्ण** अभिमुख या एकान्तर प्रायः संयुक्त अनअनुपर्णी, पत्र में स्थित तैल ग्रन्थियाँ कुलगत मुख्य वैशिष्ट्य है। **पुष्पक्रम** प्रायः ससीमाक्षी कभी-कभी पुष्प समशिख (Corymb) तथा असीमाक्ष क्रम (Raceme) में स्थित होते हैं। **पुष्प** प्रायः त्रिज्या सममित, द्वि लिंगी, जायांगाधर, अण्डाशय के नीचे एक उभरे हुइ चक्री (Prominent-disc) के साथ, पुष्प ५-४-३ अवयवी, असहपत्री। **बाह्यदल पुंज** ४-५ पृथक् बाह्यदली या आधार पर संयुक्त कोरछादी विन्यास होता है। **दलपुंज** ४-५ पृथक्दली विभिन्न वर्णों के होते हैं। **पुमंग** पुंकेसर विभिन्न संख्या में दल संख्या के समान या द्वि गुणित, पुंकेसर स्वतन्त्र या अनियमित गुच्छों में; संयुक्त परागकोष अन्तर्मुखी तथा मुक्तदोली (Versatile)। **जायांग** अण्डपों की संख्या प्रायः ४-५ कभी-कभी संख्या न्यून या अनिश्चित, युक्ताण्डपी या आधार पर स्वतन्त्र तथा ऊपर संयुक्त, कोष्ठों की संख्या अण्डपों के समान, अक्षीय बीजाण्डान्यास कभी-कभी भित्ति बीजाण्डान्यास, बीजाण्ड अधोमुखी। **फल** विविध प्रकार के सरसफल, संपुट, जम्बीरक, हेस्पिरिडियम (बेरी का विशेष प्रकार) **बीज** अभ्रूणपोषी होता है।

पुष्प सूत्र $\oplus$ ⚥ K_{4-5} या (4–5) C_{4-5} A_8 या 10 ∞ $\underline{G\ (5-\infty)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तुलसी कुल (LABIATAE FAMILY)

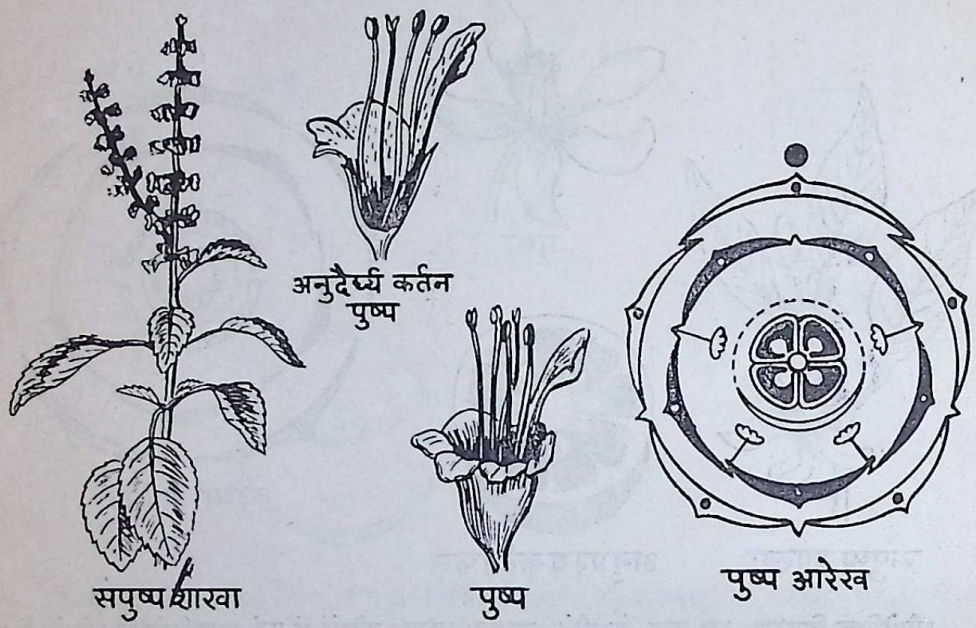

भौगोलिक वितरण : इस कुल के पौधे सर्वत्र समशीतोष्ण एवं उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में पाये जाते हैं। देश में वन्य जाति पौधे पर्वतीय क्षेत्रों में मिलते हैं। **स्वभाव** प्रायः वर्षायु, वर्षानुवर्षी क्षुप, गुल्मक, वृक्ष एवं गुल्म बहुत कम होते हैं। **मूल** मूसला जड़। **स्तम्भ** शाकीय, सरल, कोणाकार, रोमश होता है। **पर्ण** साधारण, अभिमुख या चक्राकार क्रम में, अनअनुपर्णी, तैल ग्रन्थियाँ युक्त होते हैं। **पुष्पक्रम** विशेष प्रकार कूटचक्रक (Verticillaster) कभी-कभी ससीमाक्ष क्वचित् शीर्षाकार (Head-like) कतिपय जातियों में एकल पुष्प। **पुष्प** पूर्ण, एक व्यास सममित कभी-कभी नियमित, द्वि लिंगी कभी-कभी एक लिंगी, जायांगाधर, पंचतयी (Pentamerous) सहपत्री (Brecteate) होताहै। **बाह्यदल-पुंज** ५ संयुक्त बाह्यदली जो नलिकाकार, कीपाकार या द्वयौष्ठी (Bilabiate) कोरस्पर्शी (Valvate) कोरछादी (Imbricate aestivation) **दल पुंज** ५ संयुक्तदली जो विविध वर्ण के, द्वयोष्ठी कोर-छादी विन्यास युक्त होते हैं। **पुमंग** पुंकेसर प्रायः ४ पाँचवां पृष्ठ पुंकेसर प्रायः अनुपस्थित द्विदीर्घी (Didyanamous) दल लग्न। किन्हीं जातियों में पुंकेसर केवल दो होते हैं। परागकोष अन्तर्मुखी, अनुलम्ब स्फुटी। **जायांग** द्वि अण्डपी, युक्ताण्डपी, ऊर्ध्व, प्रारम्भिक विकासावस्था में दो कूट भित्ति (False septa) द्वारा चार कोष्ठीय; जायांगाधार विशेष वर्तिकायुक्त। वर्तिका आधार से विकसित होकर चारों कोष्ठों के मध्य से होकर ऊपर तक स्थित होती है। **फल** कार्सेरुलस (Carcerulus) दृढ़फलिका (Nutlets) का समूह। **बीज** अभ्रूणपोषी होता है।

पुष्प सूत्र + ⚥ $K_{(5)}\ \overset{\frown}{C_{(5)}\ A_4}$ या 2 $\underline{G(2)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नारिकेल कुल (PALMAE FAMILY)

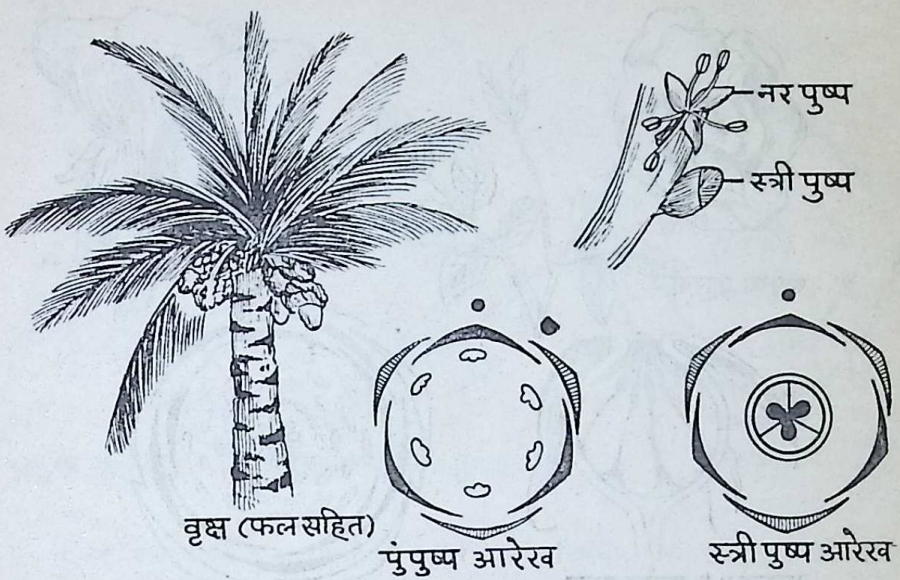

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे आवश्यक रूप से उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में उत्पन्न होते हैं। देश में बंगाल, बिहार, आसाम, कैरल, महाराष्ट्र तमिलनाडु के समुद्री तटवर्ती क्षेत्रों में पाये जाते हैं। **स्वभाव** ऊँचे-ऊँचे काष्ठीय शाखारहित स्तम्भ वृक्ष या गुल्म कभी-कभी आरोही होते हैं। **मूल** प्राथमिक मूल शीघ्र ही अपस्थानिक मूल में परिवर्तित। **स्तम्भ** ऊँचे, सरल, पत्रावशेष चिन्हांकित कतिपय ज़ातियों में चमकीले, स्निग्ध किन्हीं जातियों में मध्य में स्थूल; बहुत कम शाखी। **पर्ण** स्तम्भ शीर्ष पर मुकुटसदृश, पर्ण प्रायः बहुत दीर्घ पाणिवत्, पिच्छाकार, विभक्त, स्तम्भ लग्न अल्प संख्या में होते हैं। **पुष्पक्रम** प्रायः छद शूकी (Spadix) जो कि साधारण या शूकी या संयुक्त गुच्छ क्रम (Paniculate cluster) में स्थित या कक्षीय एक या अधिक बड़े-बड़े सहपत्र से आवृत्त इस प्रकार के पुष्पक्रम में असंख्यक पुष्प होते हैं। **पुष्प** एकलिंगी, अपूर्ण, बहुत कम, द्वि लिंगी, त्रिज्या सममित, नियमित; जायांगाधर (स्त्री पुष्प) अवृन्त या छोटा पुष्प वृन्त; विभिन्न जातियों में नर एवं स्त्री पुष्प विभिन्न प्रकार से स्थित। **परिदलपुंज** ६ परिदल पर्ण चक्रों में स्थित (३ + ३) बाहरी परिदल पर्ण छोटे कोरछादी विन्यास युक्त तथा स्त्री पुष्पों में चिरलग्न रहते हैं। **पुमंग** ६ पुंकेसर दो चक्रों में (३ + ३) इनके पुंतन्तु पृथक् या संयुक्त; परागकोष मुक्तदोली। परागकोष द्विकोष्ठीय बड़ी मात्रा में चूर्ण के समान; उदग्र स्फुटी। **जायांग** ३ अण्डपी पृथकाण्डपी या युक्ताण्डपी, ऊर्ध्वाण्डाशय, एक या तीन कोष्ठीय कभी-कभी एक कोष्ठीय, त्रिकोष्ठीय अण्डाशय में अक्षीय बीजाण्डान्यास। **फल** अष्ठिफल (Drupe) सरसफल (Berry) मांसल या दृढ़फल (Nut) होते हैं।

पुष्पसूत्र (क) $\oplus$ ♂ P_{3+3} A_{3+3}

(ख) $\oplus$ ♀ P_{3+3} $\underline{G\,(3)}$ या $\underline{3}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तरुण कुल (ROSACEAE FAMILY)

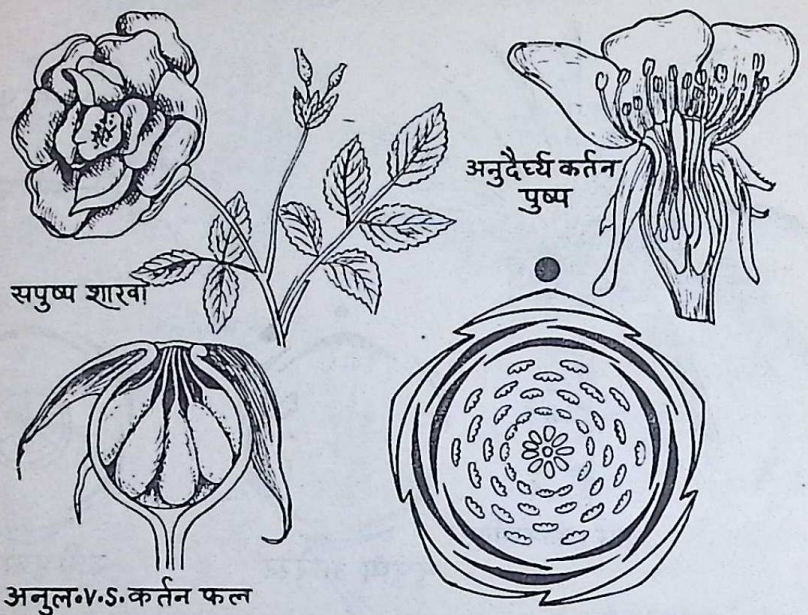

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे मुख्यतः शीतोष्ण एवं शीत प्रदेशों में प्राप्त। देश में इस कुल की अधिकांश जातियां पर्वतीय क्षेत्रों में मिलती हैं। **स्वभाव** विभिन्न वैचित्र्य स्वभाव के वर्षायु, वर्षानुवर्षी क्षुप, गुल्म या वृक्ष क्वचित् आरोही। **मूल** मूसला जड़ शाखायुक्त या अपस्थानिक मूल भूमिगत अंगों से उत्पन्न। **स्तम्भ** शाकीय या काष्ठीय, सरल, वेलनाकार शाखायुक्त अनेक गुल्म जाति कांटेदार; भूमिगत रूपान्तरित स्तम्भ पौधे की वृद्धि में सहयोगी। **पर्ण** एकान्तर कभी-कभी अभिमुख साधारण या संयुक्त, सवृन्त, अनुपर्ण पर्ण वृन्त के साथ संलग्न। Rachis पर प्रायः छोटे-छोटे कांटे होते हैं। पर्णधार पूर्ण या दंतुरित। **पुष्पक्रम** विभिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न क्रम; असीमाक्षी, ससीमाक्षी एकल, अग्रस्थ असीमाक्ष, ससीमाक्ष शूकी, समशिख एवं संयुक्त समशिख पुष्प क्रम होता है। **पुष्प** द्विलिंगी कभी-कभी एक लिंगी, त्रिज्या सममित, सहपत्री, जायांगाधर, जायांगोपरिक परिजायाङ्गी हरित वर्ण के पंचतयी, ४ अवयवी। रिसेप्टिकल चपटा (प्यालीनुमा) मकरन्दधर चक्रिका युक्त। **बाह्यदलपुंज** ५ संयुक्त बाह्यदली, दलौष्ठ स्वतन्त्र, कभी-कभी चार बाह्यदल क्वचित् अनुबाह्यदल भी उपस्थित, कोरस्पर्शी, कोरछादी विन्यास। **दलपुंज** ५ पृथक् दली; कभी-कभी ४ दल कभी-कभी दल अनुपस्थित कोरछादी विन्यास। **पुमंग** पुंकेसर दल संख्या से द्वि-त्रि-चतुर्गुणित या अनिश्चित एक या अनेक पंक्तियों में स्थित। **जायांग** अण्डाशय एक या अधिक पृथक् या युक्ताण्डपी, ऊर्ध्व, कभी अधर प्रत्येक अण्डप में १ से २ अधोमुखी बीजाण्ड। **फल** अष्ठिफल, एक बीजास्फोटी फल, उत्कोलक फल (Pome) होता है।

पुष्प सूत्र $\oplus$ ⚥ $K_{(5)}\ C_5 - \infty\ A_1 - \infty\ G_{\overline{1}} - \infty$ या $\overline{(5)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वासा कुल (ACANTHACEAE FAMILY)

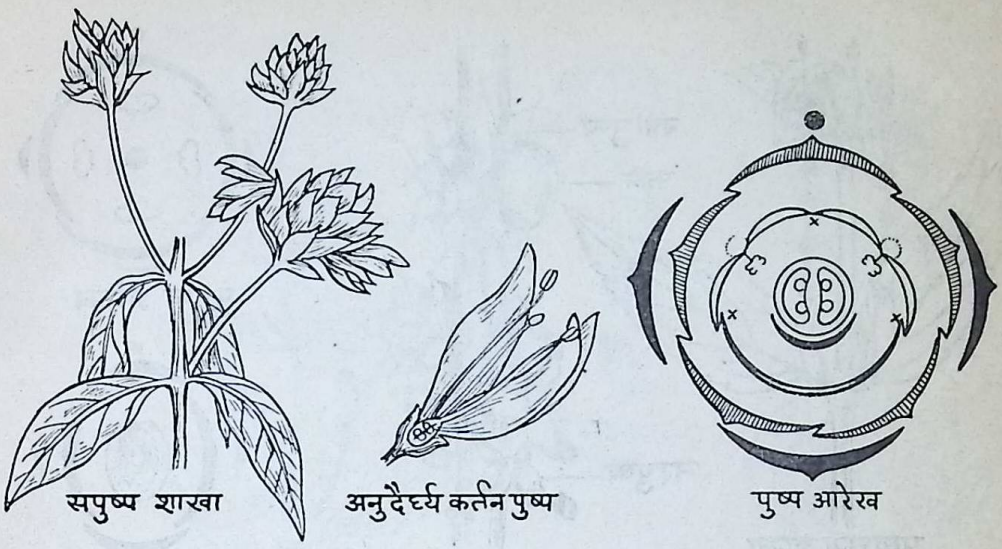

सपुष्प शाखा अनुदैर्घ्य कर्तन पुष्प पुष्प आरेख

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे अधिकतर उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंधीय वन्य प्रदेशों में तथा आर्द्र एवं कच्छ स्थानों में मिलते हैं। **स्वभाव** विभिन्न प्रकार के पौधे अधिकतर क्षुप या गुल्मक, कतिपय आरोही, कतिपय प्रजाति मरुद्भिद् (Xerophytes) होते हैं। **मूल** मूसला जड़। **स्तम्भ** शाकीय या काष्ठीय अल्पकोणीय, ठौस, हरिताभ। **पर्ण** अनअनुपर्णी, साधारण, तनु, समोद्भिद्, (Mesophytes) अखण्डित, अभिमुख, मरुद्भिद् में सकण्टकित। **पुष्पक्रम** द्विशाखी ससीमाक्ष (Dichasial cyme) जो अन्तिम शाखाओं में एक शाखी ससीमाक्षी में परिवर्तित; ये ससीमाक्षी असीमाक्षी क्रम में विकसित होते हैं। कभी-कभी असीमाक्ष क्रम तथा कक्षीय गुच्छ क्रम भी होता है। सहपत्र (Bracts) एवं सहपत्री प्रायः पूर्ण विकसित एवं चमकदार वर्ण के एवं सुन्दर होते हैं। **पुष्प** एक व्यास सममित, प्रायः द्वयौष्ठी द्विलिंगी, जायांगाधर होते हैं। **बाह्यदलपुंज** ५ संयुक्तबाह्यदली कभी कभी ४ या ३ होते हैं। **दलपुंज** ५ दल संयुक्त प्रायः द्वयौष्ठी ऊपर का दल सीधा आगे से द्वयौष्ठी नीचे का क्षैतिज; शेष तीन कीट पतंगों के लिये मंच तैयार करते हैं। **पुमंग** पुंकेसर २ या ४ होने पर, द्विदीर्घी (Didynamous) दललग्न पुंतन्तु स्वतन्त्र एवं दलपुंज के मुख से बाहर निकले हुए होते हैं। **जायांग** २ अण्डपी, युक्ताण्डपी, उर्ध्व, अण्डाशय, द्विकोष्ठीय प्रत्येक में दो से अनेक बीजाण्ड होते हैं। **फल** सम्पुट (Capsule) द्विकोष्ठी होते हैं।

पुष्प सूत्र + ⚥ K (4–5) C $\overset{\frown}{(2/3)}$A 2 या 2 + 2 $\underline{G(2)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वट कुल (URTICACEAE FAMILY)

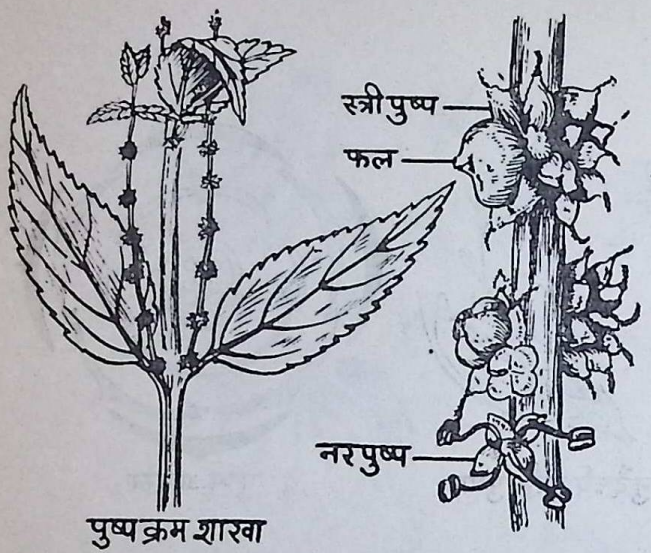

पुंपुष्प आरेख

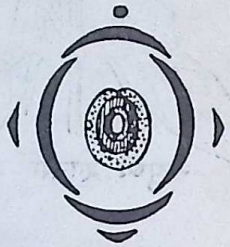
स्त्री पुष्प आरेख

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे प्रायः उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में तथा अनेक प्रजातियों के पौधे शीतोष्ण जलवायु में पाये जाते हैं। **स्वभाव** सूत्रीय क्षुप, गुल्मक या वृक्ष, कतिपय, आरोही प्रायः दंशाकृति (stinging) रोमश। **पर्ण** एकान्तर या अभिमुख, साधारण, अनुपर्णी (stipulate) कभी-कभी एक ही पौधे में अभिमुख एवं एकान्तर दोनों क्रम। पर्णों पर दंशरोम (sting hair) होते हैं। **पुष्पक्रम** विशेष प्रकार का हाइपेन्थोडियम मुख्यतः सहपत्री ससीमाक्ष (Bracteate cyme) कभी-कभी पुष्प वृन्त कम होने पर मुण्डक में परिवर्तित या पुष्प छोटे-छोटे गुच्छक (Clusters) या मांसल Recepticle युक्त, साधारण अक्ष प्रायः ऊर्ध्व पत्राक्ष से उत्पन्न होता है। **पुष्प** प्रायः एकलिंगी कभी कभी द्विलिंगी, एक लिंगी पुष्प अपूर्ण, द्विलिंगी पूर्ण, ज़ायांगाधर त्रिज्या सममित होता है। **परिदलपुंज** बाह्यदल एवं दलपुंज में अभेदित चार सहपत्र २–२ के चक्रों में हरितवर्ण, स्त्री पुष्पों से संयुक्त होता है। **बाह्यदलपुंज** बाह्यदल नलिकाकार या ३–५ भागों में विभक्त होता है। **पुमंग** प्रायः पुंकेसर बाह्य दल औष्ठ संख्या के बराबर ४ (कभी-कभी तीन या पांच) होते हैं। पुंतन्तु पृथक्-पृथक्, परागकोष २ कोषीय, अनुलम्ब स्फुटनशील होते हैं। **जायांग** एकल अण्डाशय (solitary ovary) अण्डाशय ऊर्ध्व या अधर परिदल पुंज से युक्त या पृथक्, एकाण्डपी एक कोष्ठीय (1 loculed) एक बीजाण्ड, वर्तिका, एक, वर्तिकाग्र एक विविध प्रकार की। **फल** छोटा एक बीजास्फोटी फल (achene) या अष्ठिफल चिरलग्न परिदलपुंज युक्त होता है। **बीज** भ्रूणपोषी प्रत्येक बीज में सीधा भ्रूण होता है।

पुष्प सूत्र (क) ⊕ ♂ $P_2 + {}_2$, A4 (ख) ⊕ ♀ $P_2 + P_2$ $\underline{G1}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

निर्गुण्डी कुल (VERBENACEAE FAMILY)

सपुष्प शाखा

अनुदैर्घ्य कर्तन
पुष्प

अनुप्रस्थ कर्तन
फल

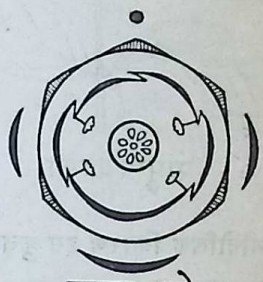

पुष्प आरेख

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे प्रायः उष्ण कटिबन्धीय एवं उपोष्ण प्रदेशों में पाये जाते हैं। **स्वभाव** इस कुल का तुलसी कुल (Labiatae Family) से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस कुल में प्रायः क्षुप गुल्म या वृक्ष होते हैं। **स्तम्भ** सरल, बेलनाकार, वल्ली प्रायः चतुष्कोणीय। **पर्ण** प्रायः अभिमुख या चक्रीय, पत्र अधिकतर साधारण, कभी-कभी पाणिवत् या पिच्छाकार संयुक्त, अननुपर्णी। **पुष्पक्रम** विविध प्रकार का द्विशाखी ससीमाक्ष, असीमाक्ष, ससीमाक्षी पुष्पशूकी, मुण्डक या कक्षीय क्रम में स्थित; प्रायः पूर्ण विकसित रंगीन सहपत्री युक्त होता है। **पुष्प** द्विलिंगी एक व्यास सममित कभी-कभी नियमित, जायांगाधर, प्रायः पंचतयी होता है। **बाह्यदलपुंज** ४–५ युक्त बाह्यदली ५ दंतुरित कभी-कभी छः या आठ दंतुरित कभी-कभी ये बढ़ कर बस्ति (bladder) की आकृति के तथा फल को आवृत कर लेते हैं। चिरलग्न कोरस्पर्शी विन्यास। **दलपुंज** दलौष्ठ दंतुर बाह्यदलौष्ठ संख्या के बराबर ४–५, युक्तदलीय, दंतुर अनियमित प्रायः दीवटाकार (salverform) आकृति युक्त कभी-कभी घण्टाकार कोरछादी विन्यास होता है। **पुमंग** पुंकेसर ४ द्विदीर्घी (Didynamous) कभी-कभी पांच या दो, दललग्न कन्दगर्भ उपस्थित, परागकोष २ कोषीय, अन्तर्मुखी अनुलम्ब स्फुटनशील होते हैं। **जायांग** एक स्त्री केसर, ऊर्ध्व अण्डाशय २ अण्डपी (कभी-कभी चार-पांच) अक्षीय बीजाण्डान्यास; कोष्ठ अण्डपों के बराबर या द्विगुणित (कूट भित्ति द्वारा) प्रत्येक कोष्ठ में एक एक बीजाण्ड सीधा या अधोमुखी पाली युक्त। **फल** अष्ठिफल, सरसफल होता है। **बीज** भ्रूण पोषी अण्डाकार एवं बीजवृन्त सहित। भ्रूण सीधा एवं अण्डद्वार (micropyle) की ओर स्थित होता है।

पुष्प सूत्र $\dagger$ ⚥ $K_{(5)}\ \overset{\frown}{C_{(5)}\ A2+2}$ या $5\ \underline{G(2)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हरीतकी कुल (COMBRETACEAE FAMILY)

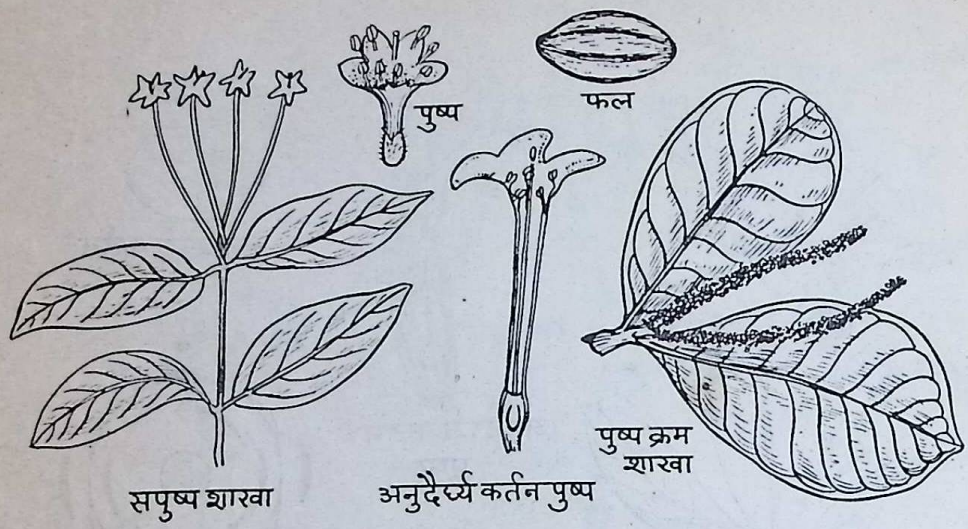

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे साधारणतया उष्ण कटिबन्धीय एवं उपोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में पाये जाते हैं। **स्वभाव** प्रायः वृक्ष,गुल्म। **पर्ण** प्रायः एकान्तर कभी-कभी अभिमुख, साधारण अनअनुपर्णी (Exstipulate) सपत्रवृन्त, संपूर्ण होता है। **पुष्पक्रम** प्रायः अवृन्त (sessile) अनेक शूकी, शूकिका (spikelets) असीमाक्षी या गुच्छक या मुण्डक, परिदलपुंज आधारलग्न (biseriate) रिसेप्टिकल या बाह्यदलपुंज नलिका (Calyx tube) अण्डाशय लग्न होती है। **पुष्प** द्विलिंगी, कभी-कभी एक लिंगी, नियमित कभी-कभी एक व्यास सममित सहपत्रीयुक्त, जायांगोपरिक पंचतयी या त्रितयी (Tetramerous) होता है। **बाह्यदलपुंज** ४–५(८) बाह्यदल चिरलग्न, अण्डाशय संलग्न, कोर-स्पर्शी विन्यास होता है। **दलपुंज** दल छोटे-छोटे बाह्यदल संख्या के बराबर ४–५ या अनुपस्थित; बाह्यदलों के एकान्तर स्थित कोरछादी विन्यास या कोर स्पर्शी विन्यास होता है। **पुमंग** पुंकेसर ४–५ या बाह्यदल संख्या से द्विगुणित २ पंक्तियों में स्थित, परागकोष मुक्तडोली (Versatile) २ कोषीय अनुलम्ब स्फुटी, बाह्यदलपुंज नलिका स्थित होता है। **जायांग** स्त्रीकेसर १ अधर अण्डाशय, कोणीय, एकाण्डपी एक कोष्ठीय बीजाण्ड २–५ या कभी अधिक अधोमुखी (anatropous) वर्तिका नलिका-कार। **फल** प्रायः शुष्क अष्ठिफल सदृश, एक बीजी, अस्फोटी, (indehiscent) या अपूर्ण स्फोटी २–५ कोणीय, कोण पिच्छाकार कभी-कभी बाह्यदलपुंजाच्छादित होता है।

पुष्प सूत्र $\oplus$ ⚥ K(4–5) C(4–5) या $_{0}A_{4-9}\ \overline{G1}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पिप्पली कुल (PIPERACEAE FAMILY)

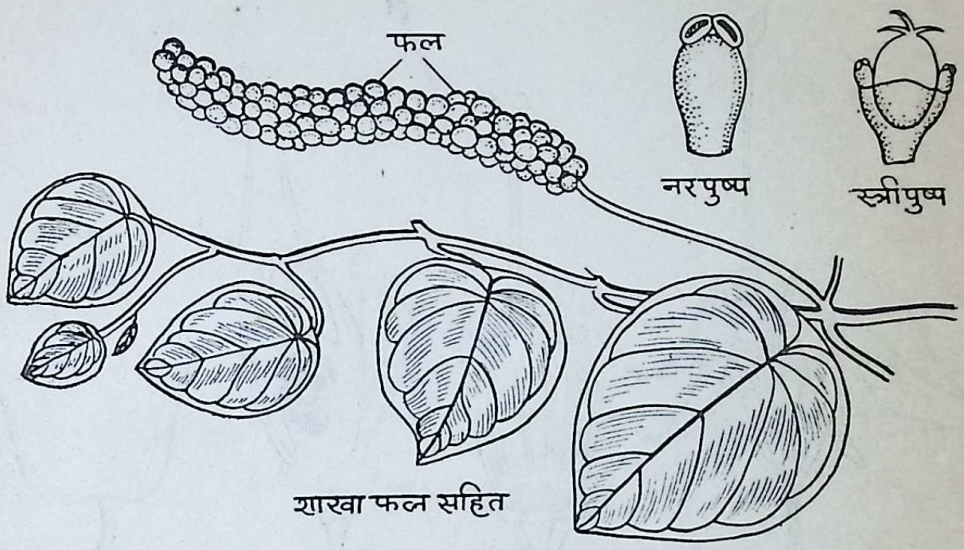

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में तथा कुछ प्रजातियाँ बहिरुष्ण कटिबंधीय (extra tropical) प्रदेशों में पाई जाती हैं । तथा इनकी प्रायः खेती की जाती है । **स्वभाव** सरल या आरोही क्षुप, गुल्म कभी-कभी वृक्ष सर्वदा हरित (काष्ठ स्तम्भ होने पर) होते हैं । **स्तम्भ** शाकीय होने पर आचूषक (Succulent) सन्धि स्थान पर ग्रन्थि युक्त या उभार युक्त; राल एवं तैल ग्रन्थियाँ बाह्य त्वचा में पाई जाती हैं । **पर्ण** एकान्तर कभी कभी अभिमुख या चक्रीय पर्ण, विस्तृत कभी-कभी बहुत बड़े हृदयाकार पूर्ण, पर्ण सवृन्त, कभी-कभी सूक्ष्म, धूसर गोल चिन्हांकित अनुपर्ण मांसल पर्णवृन्त के साथ संलग्न पत्र स्वाद में कटु । **पुष्पक्रम** नतकणिश (Catkin) प्रायः मांसल शूकी या छत्राकार शूकी कभी-कभी एक असीमाक्ष परिदलपुंज रहित होता है । **पुष्प** प्रायः नग्न बहुत छोटे-छोटे द्विलिंगी कभी-कभी एक लिंगी त्रिज्या सममित सहपत्री, जायांगाधर होता है । **पुमंग** पुंकेसर १–१० प्रायः ६ दो या तीन चक्रों में स्थित, पुंतन्तु पृथक्-पृथक्, परोगकोष दो संयुक्त या पृथक् कोषीय, अनुलम्ब स्फुटी होते हैं । **जायांग** स्त्री केसर १ ऊर्ध्व अण्डाशय २–५ अण्डपी तथा एक कोष्ठीय, एक बीजाण्ड, आधार उदग्रमुख, वर्तिकाग्र १–५ साधारण कूर्चाकृति । **फल** शुष्क या मांसल अस्फोटी सरसफल । **बीज** भ्रूणपोषी सूक्ष्म भ्रुणयुक्त होता है ।

पुष्प सूत्र ⊕ ⚥ P_0, A1–10 G(2–5)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आम्र कुल (ANACARDIACEAE FAMILY)

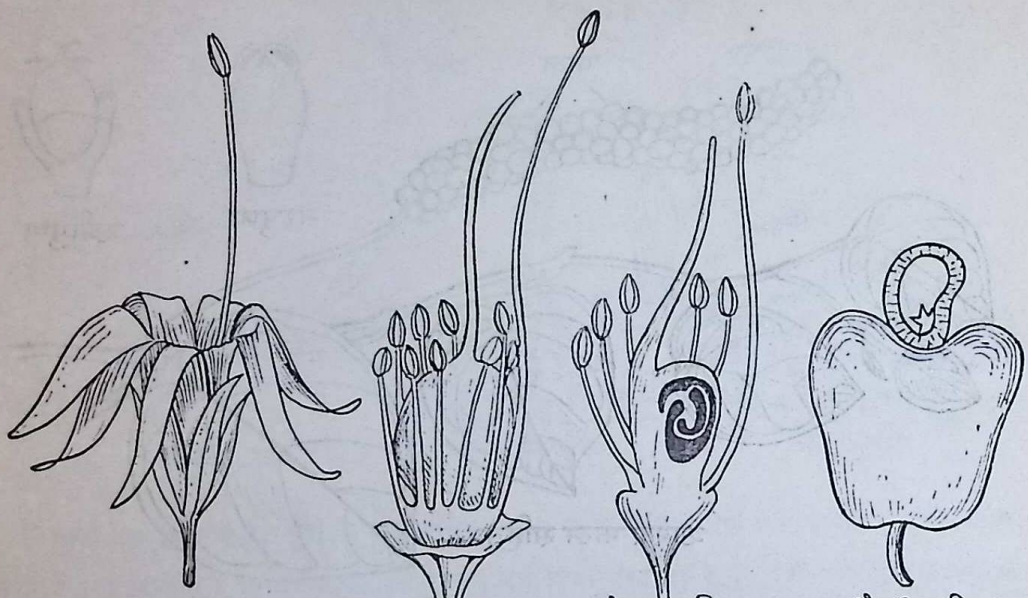

पुष्प पुष्प (दल रहित) अनुदैर्घ्य कर्तन पुष्प अनुदैर्घ्य कर्तन फल

भौगोलिक वितरण इस कुल के पौधे मुख्यतः उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में पाये जाते हैं। इस कुल के अनेक फलों की प्राप्ति के लिए खेती भी की जाती है। **स्वभाव** प्रधानतया वृक्ष या गुल्म। **मूल** मूसला जड़ शाखायुक्त। **स्तम्भ** सरल, सशाखी, काष्ठीय, वेलनाकार, ठोस, त्वचा राल युक्त होती है। **पर्ण** एकान्तर कभी-कभी अभिमुख साधारण, त्रिपर्णक या पिच्छाकार संयुक्त, अनअनुपर्णी या अनुपर्ण सूक्ष्म। **पुष्पक्रम** अग्रस्थ, कक्षीय संयुक्त परिदलपुंज (Perianth) संयुक्त होता है। **पुष्प** त्रिज्या सममित प्रायः द्विलिंगी क्वचित् एक लिंगी, पंचतयी जायांगाधर या जायांगोपरिक, परिजायांगी होता है। **बाह्यदलपुंज** ३–५ बाह्यदल आधार पर संयुक्त (कभी-कभी पुष्प के अन्य भागों से भी) जायांग से संयुक्त होता है। **दलपुंज** ३–५ दल पृथक् २ क्वचित् आधार पर संयुक्तदली कभी-कभी अनुपस्थित (०) चक्री (Disc) प्रायः कोणीय। **पुमंग** पुंकेसर १० दो चक्रों में स्थित दल संख्या से द्विगुणित कभी-कभी अधिक या न्यून अन्तर्मुखी पुंतन्तु पृथक्-पृथक्; परागकोष दो कोष्ठीय अनुलम्ब स्फुटी होते हैं। **जायांग** स्त्रीकेसर १ ऊर्ध्व अण्डाशय प्रायः एक कोष्ठीय तीन अण्डपी कभी ५ कोष्ठीय या ५ अण्डपी। प्रत्येक कोष्ठ में एक-एक बीजाण्ड एक कोष्ठीय होने पर बीजाण्ड अधोमुखी भित्तीय बीजाण्डान्यास, वर्तिका १, कभी-कभी २–६, वर्तिकाग्र अण्डपों की संख्या के समान। **फल** प्रायः अष्ठिफल मध्यफलभित्ति मज्जा युक्त; कभी-कभी स्फोटी होता है। **बीज** अभ्रूण पोषी, भ्रूण मांसल बीजपत्री होता है।

पुष्प सूत्र $\oplus$ ⚥ $K_{3-5}\ C_{3-7} A_{5+5}\ \underline{G(3)}$

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्वितीय परिच्छेद

(औषध द्रव्य परिचय)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वत्सनाभ कुल
Ranunculaceae Fam.

वत्सनाभ

नाम-हिन्दी मीठा विष, वछनाग, सिंगी मोरा
लेटिन : Aconitum ferox.

संस्कृत : वत्सनाभ, अमृत, विष, भंगुर, प्राणहर, गरल, रसायन, तीक्ष्ण, ब्रह्मपुत्र, जांगल।

वर्गीकरण—विषवर्ग (भाव प्रकाश)

उत्पत्ति स्थान—हिमालय में १०-१४ हजार फीट तक कुमाऊं, गढ़वाल, जम्मू-कश्मीर से पूर्व की ओर सिक्किम तक उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय बहुवर्षीय ०.३—०.६ मी० **क्षुप**, मूल २५—१०० मि० मी० दीर्घ ८—२५ मि० मी० व्यासयुक्त; ग्रन्थियुक्त, गोपुच्छाकार धूसर **पांडु** अंतःपृष्ठश्वेताभ काण्ड सीधा गोल **पत्र** रोमशः तरबूज सदृश किंतु छोटे **पुष्प** दीर्घपुष्प दंड पर दोनों ओर मटर पुष्प सदृश नील श्वेत **फल** गोल, छोटा तीक्ष्णरोमशः पंचकोष्ठीय।

रासायनिक संगठन—मूल में एकोनाइटिन के समान स्यूडो एकोनाइटिन (Pseudo Aconitine। विषाक्ततत्त्व; एकोनाइटिन ०.९७—१.२३%, एकोनीन, पिक्रोएकोनीन, स्टार्च तथा एकोनाइटिक अम्ल होता है।

गुणकर्म—रस-मधुर गुण-व्यवायि, विकाशि तीक्ष्ण, लघु। **विपाक**-मधुर। **वीर्य**-उष्ण, त्रिदोषशामक, शोथहर वेदनास्थापन, स्वेदजनन।

आमयिक प्रयोग : बाह्य-शिरःशूल, आमवात, संधिवात गृध्रसी शोथयुक्त वेदना विकारों में लेप। **आभ्यंतर**-ज्वर (सभी प्रकार के विशेषतः शोफोपद्रुत) हृद्दौर्बल्य, तज्जन्य शोथ. उदरशूल यकृत्प्लीहावृद्धि, श्वास, कास, श्वासनलिका फुफ्फुस शोथ; पक्षाघात, आमवात, वातव्याधि एवं इक्षुमेह, दौर्बल्य

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ—मूल (कंद) **मात्रा** ६२.५ से १२५ मि० ग्रा०। संजीवनी, मृत्युञ्जय, आनंदभैरव, कफकेतु।

विशेष—शुद्ध वत्सनाभ हृदय, रक्तवाहिनी, नाड्यग्रउत्तेजक, रक्तभारवर्द्धक, श्वसनकेन्द्र उत्तेजक, यकृदुत्तेजक, परिसरीयरक्तवाहिनी विस्फारक (स्वेदजनक) **विषाक्त प्रभाव**-अन्न वह स्त्रोतस् में दाह, शोथ, छर्दि, अतिसार। शैत्य, मूर्च्छा, श्वासकृच्छ, अवसाद, मृत्यु **निवारण** आमाशय प्रक्षालन, कृत्रिम श्वसनविधि प्रयोग हृदयोत्तेजक द्रव्य।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष, कृमिजुष्ट न होने पर अनेक वर्ष। प्राकृत वत्सनाभ श्वेत वर्ण, किंतु विशेष रंजन विधि से कृष्ण वर्ण किया जाता है। इससे कमि नही लगते हैं।

अतिविषा

द्रव्यनाम—हिन्दी : अतीस।
लेटिन : Aconitum Heterophyllum.

संस्कृत : अतिविषा, काश्मीरा, घुणवल्लभा, भंगुरा, शुक्लकंदा, शृंगी, प्रतिविषा, अरुणा, विश्वा, शिशुभेषज्या।

वर्गीकरण हरीतक्यादि (भा० प्र०) अर्शोघ्न, लेखनीय (च०) वचादि, पिप्पल्यादि, मुस्तादि सु०

उत्पत्ति स्थान—हिमालय पर्वत में ६-१२ हजार फीट की ऊंचाई पर तथा शिमला, कुमाऊं के समीपवर्त्ती क्षेत्र में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय—क्षुप ०.३—१.३ मी०; **मूल** द्विवर्षायु, २ कंद लम्बगोल; काण्ड पत्रावृत सरल; शाखाएँ चतुष्कोणीय; **पत्र** नीचे के पान सदृश, अण्डाकार पांच विच्छेदों से युक्त. ऊपर के पत्ते छोटे दंतुरित, **पुष्प** हरित नील, चमकीले **फल** पंचकोष्ठीय होते हैं।

रासायनिक संगठन—मूल में अतिरिक्त विना रवेदार, निर्विष क्षार अतीसिन (Atisine) प्रभूत-पिष्टसार, इक्षु-शर्करा, गोंद, एकोनाइटिक टैनिक अम्ल।

गुणकर्म-रस तिक्त, कटु। **गुण**-लघु, रूक्ष। **विपाक** कटु। **वीर्य** उष्ण। त्रिदोषशामक।

आमयिक प्रयोग—आभ्यंतर-ज्वर (नियतकालिक) ज्वरोत्तर दौर्बल्य, अग्निमांद्य, छर्दि, तृषा

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ज्वरातिसार, प्रवाहिका, कृमि, रक्त विकार, शोथ, प्रतिश्याय, कास ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ—मूल (कन्द) **मात्रा** ०.५–२ ग्राम; ०.२–०.५ ग्राम तिक्त पौष्टिक, बालचतुर्भद्रा, अतिविषादि चूर्ण ।

विशेष—मूलशंक्वाकृति कभी कभी अण्डाभ धूसर, २५ मि० मी० दीर्घ भंगु, तोड़ने पर श्वेत पिष्टमय पदार्थ तथा ४ कृष्ण बिंदु युक्त (Vascular bundles से चिन्हाङ्कित)। बाल रोगों में ज्वर, अतिसार, छर्दि,कासादि में अतीस का प्रचुर प्रयोग होता है ।

मिलावट—दक्षिण भारत में क्वचित् cryptocoryne spiradis, सूरण Araceae कुल के द्रव्य का कन्दाकृति भौमिक काण्ड अतीस नाम से बिकता है। तेलगु भाषा में नत्ती अतिविष नाम है। मिलावट वाले टुकड़े ऊपर से कृष्णधूसर वर्ण तथा शंक्वाकृति न होकर समान गोल, झुर्रीदार होते हैं।

कालाजाजी

नाम–हिन्दी : कालौंजी, मंगरेला, कलवंजी ।

लेटिन—Nigella Sativa.

संस्कृत—कालाजाजी पृथ्वीका, स्थूलाजाजी, उपकुंचिका, कृष्णा, कालिका, स्थूलजीरक ।

वर्गीकरण—हरीतक्यादि (भा० प्र०) ।

उत्पत्ति स्थान—देश के पूर्वी प्रांतों में बंगाल, बिहार तथा पंजाब एवं दक्षिण भारत में खेती की जाती है ।

वानस्पतिक परिचय—क्षुप सौंफ सदृश किन्तु छोटा **क्षुप पत्र**-पत्रदण्ड के दोनों ओर युग्म दीर्घ खण्डित सौंफ पत्र सदृश **पुष्प** नीलाभ **शिम्बी** १३ मि० मी० **बीज** कृष्ण, त्रिकोणाकृति, सुगंधि श्वेत-मज्जायुक्त अनेक । **पुष्प काल** शरद् **फल**–शीत ।

रासायनिक संगठन—बीजों में स्थिर तैल ३७.५%, उड़नशील तैल १.५% शर्करा, पिच्छिल सन्द्रिय अम्ल विषाक्त ग्लुकोसाइड ।

गुण कर्म–रस कटु तिक्त, **गुण**–तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण, वातकफशामक ।

आमयिक प्रयोग : बाह्य–खालित्य आमवात, संधिवात, शोथ, त्वग्रोगों में बीज, तैल, लेप, अभ्यंग **आभ्यंतर**-कृमि उदरशूल, अग्निमांद्य, ग्रहणी, गुल्म, श्वास, मूत्राघात, त्वग्रोग, रोजोरोध, प्रसव, सूतिकाविकार ।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ–बीज, पत्र, चूर्ण १-३ ग्राम, चतुर्बीज चूर्ण, कलौंज्यादि तैल ।

विशेष—इसकी आमाशयान्त्र, वृक्क, गर्भाशय, त्वचा पर उत्तेजक क्रिया होती है। अधिक मात्रा सेवन से विषाक्त ग्लु० होने से भ्रम शिरःशूल, उद्वेष्टन आदि लक्षण होते हैं। गर्भाशय पर तीव्रोत्तेजक क्रिया होने से गर्भकाल में न दें। **मिलावट-द्र० परीक्षण** लहसुन बीज, सिताब के बीज तथा भांगरे के बीज रंजित कर मिलाये जाते हैं। गुरु, स्थूल तीक्ष्ण बीज श्रेष्ठ; ये २.५, से ३.५ मि० मी० दीर्घ, २ मि० मी० स्थूल। बीज छेदन से तैलाक्त श्वेत मज्जा प्राप्ति; बीजों को मसलने से नीम्बू सदृश तीव्र सुगंधि प्रतीति होती है ।

अनुसंधान कार्य—चूहों में इसका बीज प्रयोग स्तन्य वृद्धिकर तथा स्तन ऊतक वृद्धिकर पाया गया है ।

ममीरा

द्रव्यनाम–हिन्दी : ममीरा, ममीरी ।

लेटिन : Coptis teeta.

संस्कृत : पीतमूला, मिष्मीतिक्ता ।

उत्पत्ति स्थान—हिमालय में ३ से ६ हजार फीट की ऊंचाई पर विशेषतः आसाम के पूर्व के पर्वत्तीय क्षेत्रो में उत्पन्न होती है ।

वानस्पतिक परिचय—वर्षायु क्षुप १–२ मी० **मूल** बहुवर्षायु २५-७५ मि० मी० दीर्घ सग्रन्थि, श्याम धूसर, अन्तःपृष्ठ पीतवर्ण **पत्र** संयुक्त पक्षाकार; **पत्रक** गोल दंतुरित **पुष्प** श्वेत छोटे ।

रासायनिक संगठन–मूल में दारूहारिद्रिक (Berberine) नामक पीत तिक्त क्षार ८.५% होता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण कर्म–रस तिक्त, गुण रूक्ष, लघु, सर **वि०** कटु **वी०** उष्ण, त्रिदोषशामक।

आमयिक प्रयोग : बाह्य–शोथ, श्वित्र, त्वग्-रोगों में लेप; नेत्राभिष्यंद, तिमिर दृष्टिमांद्यादि में नेत्रबिंदु, लेप, अंजन प्रयोग **आभ्यंतर** पित्तस्रंसन करने से अग्निमांद्य, यकृत् वृद्धि, शाखाश्रित कामला; शोथ, पूयमेह, ज्वरोत्तर दौर्बल्य में उपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ—मूल १-२ ग्राम; ०.५–१ ग्राम तिक्त पौष्टिक।

विशेष—मूल में (Berberine) क्षार होने से विभिन्न विकारों में अत्युपयोगी है। यकृदुत्तेजक एवं पित्तस्रंसन होने से शाखाश्रित कामला में लाभप्रद। **मिलावट** :–कुटकी, पियारांगा की जड़ें। **शुद्ध द्रव्य प०**–मूल तोड़ने पर टूटे हुए तल पर तन्तु एवं कोशा प्रकीर्ण स्थित, गंध हीन, अति तिक्त, चर्वण करने पर लालास्राव पीतवर्ण होता है।

निर्विषी

द्रव्यनाम—हिन्दी : निर्विषी, जदवार।

लेटिन—Delphinium Denudatum.

संस्कृत—विषहंत्री, विषभवा, अविषा, विषवैरिणी, विशल्यकरणी, निर्विषा।

उत्पत्ति स्थान—पश्चिम हिमालय प्रदेश के संमशीतोष्ण प्रदेश, कश्मीर से कुमाऊं ८–१२ हजार फीट तक उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय—बहुशाखी, वर्षायु क्षुप सरल ०.६–१ मी०; **पत्र** धान्यक सदृश, वृत्ताकार, दीर्घ, ५–६ भागों में विभक्त, **पुष्प** अल्प, नीलाभ, चंचुयुक्त, रोमशः **फल** त्रिकोष्ठीय, पीताभ, घंटाकृति **मूल** शंक्वाकार, कृष्णाभधूसर (अन्तर्बहिः) ठौस, २५–४० मि० मी० दीर्घ। **पुष्प काल** अप्रेल-जून।

रासायनिक संगठन—मूल में तीन क्षार तत्त्व Delphinine, staphisagrine, Delpha curarine. होते हैं।

गुण कर्म–रस तिक्त गुण–रूक्ष, लघु **वी०** उष्ण **वि०** कटु वातकफशामक पित्तसारक।

आमयिक प्रयोग—**बाह्य** सर्प वृश्चिक दंश ग्रंथि, गंडमाला, व्यङ्ग, सिध्म अर्श में लेप **आभ्यंतर** पक्षाघात, अर्दित, आक्षेप वात व्याधि, अपस्मार, उदर रोग, कामला हृद्दौर्बल्य, जलोदर, उपदंश, रक्तविकार, श्वास, कास प्रतिश्याय, अश्मरी, कृच्छ्रार्त्तव।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ—मूल, मात्रा ०.५–१ ग्राम। निर्विष्यादि वटी।

विशेष—लेखन होने से स्रोतोरोध दूर कर दोष तारल्य जनक होने से यकृत् व प्रतिहारिणी सिरा का अवरोधहर; तज्जन्य कामला, जलोदर में प्रयोग। **मिलावट**–विभिन्न जाति की जड़ें एवं वत्सनाभ मूल। वत्सनाभ की अपेक्षा छोटी, कम स्थूल अन्तः वहि भूरे वर्ण की, मुख में रखने पर दाह, शून्यता की अनुभूति नहीं होती है।

मंजिष्ठा कुल
Rubiaceae Fam.
मंजिष्ठा

द्रव्य नाम—हिन्दी : मजीठ, मंजीठ।

लेटिन : Rubia cordifolia.

संस्कृत : मंजिष्ठा, मंडूकपर्णी, रक्तांगी, रक्तयष्टिका, योजनवल्ली, समंगा, विकसा, जिङ्गी, वस्त्ररंजिनी, भण्डीरी।

वर्गीकरण—हरीतक्यादि (भा० प्र०) ज्वरहर विषघ्न, वर्ण्य च० प्रियंग्वादि, पित्त संशमन सु०।

उत्पत्ति स्थान—पर्वत्तीय क्षेत्र पश्चिमोत्तर हिमालय तथा दक्षिण में नीलगिरी पार्वत्यप्रदेश।

वानस्पतिक परिचय-अतिप्रसरी बहुशाखी **लता**, **स्तम्भ**–चतुष्कोणीय रक्ताभ, **पत्र**–सदीर्घवृंत खर हृदयाकार (पान के समान) चार चार चक्रों में; २ बड़े **पुष्प**-गुच्छों में श्वेत **फल**-बैंगनी, माँसल, मटरसदृश। **पुष्पकाल**–शरद् **फल** शिशिर।

रासायनिक संगठन–मूल में राल, मोंद, शर्करा, रंजक द्रव्य, सुधालवण, रंजक द्रव्य में पीत ग्लुकोसाइड मंजिष्ठीन, पप्युंरिन रक्त स्फटिक द्रव्य।

गुण कर्म—रस–कषाय तिक्त मधुर गुण-गुरु,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रूक्ष वि० कटु वी० उष्ण, पित्तकफशामक। रक्त शोधक, वर्ण्य, मूत्रविरजनीय, विषघ्न।

आमयिक प्रयोग : बाह्य–व्रण, अग्निदग्ध व्रण, विसर्प, शोथ में लेप **आभ्यन्तर** त्वग्रोग, दद्रु, पामा, श्वित्र, व्यङ्ग, विसर्प (रक्तविकार) रक्तपित्त, मेह, रजोरोध, स्तन्य-सूतिका विकार।

प्रयोज्य अङ्ग, कल्पनाएँ—**मूल**, चूर्ण १–३ ग्राम, क्वाथ ५०–१०० ग्राम। मंजिष्ठादिचूर्ण, मंजिष्ठादि क्वाथ, महामंजिष्ठादि क्वाथ।

विशेष—मूलदीर्घ, लम्बगोल प्रारम्भ में रक्त, बाद में रक्तधूसर। पित्त रक्त दोष गत वृद्ध तीक्ष्ण उष्ण-सर स्नेह गुणों का क्षय करने से मुख्यतः रक्त विकारों में प्रयुक्त होता है।

मदनफल

द्रव्यनाम—हिन्दी : मैनफल।
लेटिन : Randia dumetorum.

संस्कृत : मदन, शल्यक, पिण्डीतक, करहाट, छर्दन, विषपुष्पक, नट, मरूबक।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा०) वमन, फलिनी (च०) ऊर्ध्वभागहर, आरग्वधादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान – हिमालय के निम्नवर्त्ती क्षेत्रों में कश्मीर से सिक्किम, आसाम, बिहार तथा महाराष्ट्र।

वानस्पतिक परिचय— पध्यमाकार पत्रकोणीय युगल कंटकाकीर्ण **वृक्ष**; **पत्र** ऊपर से लट्वाकार नीचे की ओर क्रमशः संकुचित **पुष्प**–हरिद्राभ श्वेत छोटे **फल**-अखरोटसदृश पीत धूसर **बीज** ४ बृहदेला सदृश। **पुष्प काल** ग्रीष्म **फल**-शीत।

रासायनिक संगठन–फलमज्जा में मोम, राल, रंजक द्रव्य, वेनिरियनिक एसिड तथा सेपोनीन (Saponin) प्रचुर मात्रा में होता है।

गुण कर्म–रस–तिक्त मधुर कटु कषाय, गुण लघु, रूक्ष वि० कटु वी० उष्ण, वातशामक, पित्त–कफ निस्सारक, विषघ्न, रक्तशोधक, वामक।

आमयिक प्रयोग : बाह्य–शिरः शूल विद्रधि, शोथ, आमवात आघातज शोथ में त्वक् लेप **आभ्यन्तर**–हृल्लास, अजीर्ण, ज्वर, विषदोषों में वमनार्थ, कास श्वास प्रतिश्याय में (कफोत्सारि होने से) शोथ, रक्तविकार, कुष्ठ, बन्ध्यत्व।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ : त्वक् फल बीज चिकित्सार्थ ०.५–२ ग्राम, वमनार्थ ३–६ ग्राम।

विशेष––बीज को फल पिप्पली कहते हैं। वमनार्थ ३–६ ग्राम फल चूर्ण का फाण्ट बनाकर इसमें मधु, सैंधव, पिप्पली मिलाकर उष्णोदकानुपान से दिया जाता है। **द्रव्य परीक्षण**–शुष्क मदनफल गोल, अण्डाकार रक्ताभ भूरे वर्ण का नवीन फल चर्म सदृश गंधि, फल में धूसर मज्जा, जो गंध स्वाद में उत्क्लेशकर होती है।

कदम्ब

द्रव्यनाम— हिन्दी : कदम, कदम्ब।

लेटिन : Anthocephalus. Cadamb.

संस्कृत : कदम्ब, नीप, वृत्तपुष्प, हलिप्रिय।

वर्गीकरण–वेदनास्थापन, शुक्र शोधन (च०) न्यग्रोधादि, रोध्रादि (सु०), पुष्प वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान––उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल में रेतीली क्षार मिश्रित भूमि में होता है।

वानस्पतिक परिचय––शीघ्र वृद्धिशील अचिर-स्थायी बड़ा **वृक्ष**, **पत्र**-स्निग्ध महुए के समान; **पुष्प** गोल नारंगी वर्ण सुगन्धि **फल**-नारंगी वर्ण, कठिन, गोल। **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शिशिर।

गुण कर्म : रस–कषाय तिक्त, मधुर, लवण गुण-लघु, रूक्ष वि० कटु वी० शीत, पित्तकफशामक। वेदनास्थापन, शुक्र शोधक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य न्यच्छ, व्यंग, वेदना-युक्त शोथ, व्रण **आभ्यन्तर** छर्दि अतिसार ग्रहणी, तृषा दाह, रक्तपित्त, अश्मरी, मूत्राघात ज्वर।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएँ––**त्वक् पत्र फल** पत्र-रस १ –२० ग्राम, त्वक्चूर्ण १–१.५ ग्राम।

विशेष-शोथ वेदनायुक्त स्थानों पर कोष्ण पत्र बंधन। नेत्राभिष्यंद में नेत्र पलकों पर त्वक् लेप : ज्वर एवं वेदना में त्वक् क्वाथ प्रशस्त है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नाडीहिङ्ग

द्रव्य नाम–हिन्दी : डिकामाली ।

लेटिन : Gardenia Gummifera.

संस्कृत : नाड़ीहिंगु, पलाशाख्या, जंतुका, हिंगुपत्री, रामठी, पिण्डाह्वा, वंशपत्री ।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–मध्य भारत, महाराष्ट्र, आसाम

वानस्पतिक परिचय–छोटा **वृक्ष** १.५-२.५ मी० पत्रबहुल, **पत्र** अमरूद सदृश किन्तु बड़े, **पुष्प**-कनेर के पुष्प सदृश, श्वेतवर्ण **फल** गोल रेखाकार २-४ कोष्ठीय होते हैं ।

रासायनिक संगठन–निर्यास में गार्डेनिन(Gardenin) डिकेनाली (Dikenali) दो रालीय द्रव्य ।

गुण कर्म–रस कटु तिक्त **गुण** तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण, वातकफशामक, वेदनास्थापन ।

आमयिक प्रयोग : **बाह्य**-शोथ, दूषितव्रण, त्वग्-रोगों में लेप **आभ्यन्तर** कृमि, आध्मान, गुल्म, अग्निमांद्य, अर्श, कास, श्वास, हिक्का, हृच्छूल, बस्तिशूल, विषमज्वर ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–निर्यास ०.२-०.५ ग्राम

विशेष–शाखाओं से पीताभ निर्यास निकलता है जो पिन्डीभूत, पीताभधूसर, हिंगुगंध सदृश होता है ।

प्रसारिणी

द्रव्य नाम-हिन्दी : प्रसरनी, पसरन, गंधप्रसारनी

लेटिन : Paederia foetida.

संस्कृत : प्रसारिणी भद्रपर्णी, भद्रा, सरणी, राजबला, प्रतानिनी, सारणी ।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः मध्य और पूर्वी हिमालय में ५०० फीट तक बंगाल आसाम प्रान्त ।

वानस्पतिक परिचय–अतिविस्तृत प्रतानिनी **लता**, शाखाएँ दीर्घ, दृढ़ **पत्र** हृदयाकृति, भालाकार दूरवर्त्ती युग्मपत्र दुर्गन्धयुक्त, **पुष्प** जामुनी कीपाकार मंजरियों में **फल** स्निग्ध, चपटा पंचरेखायुक्त ।

पुष्पकाल–शरद् **फल** शीत ।

रासायनिक संगठन–पत्र मूल में दुर्गन्धित उड़नशील तैल तथा दो क्षार अल्फापेडिरिन, बिटापेडिरिन होते हैं ।

गुण कर्म–रस तिक्त **गुण** सर, गुरु; **वि०** कटु **वी०** उष्ण, वातकफशामक ।

आमयिक प्रयोग : **बाह्य**–आमवात, संधिवात, पक्षाघात, वातव्याधि में तैलाभ्यङ्ग **आभ्यन्तर** उदर शूल, आनाह, गुल्म में कोष्ण रस, समस्त वातव्याधि (वातवृद्धि, आम, आवरणजन्य) ज्वर ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ-पंचांग, चूर्ण २-४ ग्राम रस १०-२० ग्राम, क्वाथ ४०-८० ग्राम । प्रसारणी तैल ।

विशेष-संदिग्ध द्रव्य है किन्तु शास्त्रोल्लेखानुसार प्रस्तुत द्रव्य ग्रहण समीचीन है । केरल में Merrimia tridentata तथा कहीं २ Convolvulus arvensis का प्रयोग होता है ।

द्रव्य परीक्षण–बाजार में शुष्क पत्र प्राप्ति, पंचांग को मसलने पर तीव्र दुर्गन्धि, उबालने पर गंध रहित काण्ड भाग कठिन, सारभाग स्निग्ध होता है ।

अनुसन्धान कार्य–क्षेत्रीयानुसंधान केन्द्र कलकत्ता में प्रसारिणी का प्रयोग आमवात, संधिवात, गृध्रसी में जारी है । परीक्षणों के अनुसार यह वृद्ध E.S.R. को भी कम करती है ।

सिन्कोना

द्रव्य नाम–हिन्दी : कुनैन ।

लेटिन : Cinchona calisaya.

उत्पत्ति स्थान–दक्षिणी अमरीका का आदिवासी वृक्ष । देश में नागा, खासा, नीलगिरी पर्वत ।

वानस्पतिक परिचय–ऊंचे **वृक्ष**, **पत्र** स्निग्ध ऊर्ध्वतल चमकदार, कुंठिताग्र, आयताकार, लट्वाकार, **पुष्प** रक्त मंजरियों में लगते हैं ।

रासायनिक संगठन–त्वक् में क्विनीन, सिनकोनीन, क्विनीडीन, सिनकोनिडीन आदि क्षार ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म–रस तिक्त **गुण** लघु रूक्ष, **वि०** कटु **वी०** उष्ण त्रिदोषशामक, विषमज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग : आभ्यन्तर–विषम ज्वर में ज्वर वेग के पूर्व प्रयोग, कृमि, रक्तरोग, गर्भाशयोत्तेजक होने से रजोरोध, कष्ट प्रसव में उपयोगी।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–त्वक्-सत्व, सत्व ०.-०.६ ग्राम, त्वक् चूर्ण १-२ ग्राम। विभिन्न क्विनीन सल्फेट के योग।

विशेष–अधिक मात्रा व काल तक प्रयोग से भ्रम, दौर्बल्य, कर्णक्ष्वेड, वाधिर्य, अग्निमांद्य आदि लक्षण **प्रशमन**-दुग्ध, घृत, नवनीत, द्राक्षा, गिलोयसत्त्व, प्रवाल पिष्टी प्रयोग।

अपराजितादि कुल
Papilionaceae Fam.
बाकुची

द्रव्यनाम–हिन्दी : बावची, वायची, बाकुची।

लेटिन : Psoralia Corylifolia.

संस्कृत : बाकुंची, सोमराजी, पूतिफली, कुष्ठघ्नी, कृष्णफला।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र विशेषतः उत्तरप्रदेश आसाम में स्वयं उत्पन्न एवं खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–**क्षुप** ०.३-१.२ मीटर स्वावलंबी **पत्र** एकान्तर हृदयाकृति अरणी सदृश, **पुष्प** दीर्घ पुष्पदण्ड पर नील जामुनी वर्ण गुच्छों में **फल** गोल, स्निग्ध, कृष्ण वर्ण गुच्छों में **बीज** अंडाकार, चिपटे कृष्ण, स्निग्ध, मज्जा श्वेत।

पुष्पकाल–शीत **फल** वसंत।

रासायनिक संगठन–बीज में पीत उड़नशील तैल २०.१५% एक स्थिर तैल, ७.५% वर्मोनिन नामक क्षार होता है।

गुणकर्म–रस कटु तिक्त **गुण** लघु रूक्ष **वि.** कटु **वी.** उष्ण, वातकफ शामक कुष्ठघ्न, कृमिघ्न, नाडीवल्य, उत्तेजक, तिक्त पौष्टिक।

आमयिक प्रयोग-बाह्य श्वित्र कुष्ठ, खालित्य, में तैलाभ्यङ्ग **आभ्यन्तर** अर्श, विबंध, कृमि, कास श्वास, पाण्डु, शोथ, त्वग् रोग, कुष्ठ, श्वित्र।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–बीज, बीजतैल, चूर्ण १-२ ग्राम, बाकुची तैल।

विशेष–श्वित्र में १/४ भाग हरताल के साथ गोमूत्र में पीसकर लेप। अंतस्त्वचीय रक्तवाहिनियों का प्रसार कर रक्त की वृद्धि से त्वचा, रक्त एवं रंजक कोषों को उत्तेजित कर वर्ण परिवर्तन। अन्तः प्रयोग के पूर्व बीजों को एक सप्ताह गोमूत्र में भावित करें। छाया शुष्क कर चूर्ण करें।

अनुसन्धान कार्य–विभिन्न प्राणियों में अधिक मात्रा में भी देने पर विषाक्त प्रभाव अत्यल्प पाया गया है। बीज प्रयोग श्वित्र अन्य त्वग्रोगों में अतीव उपयोगी पाया गया है।

पलाश

द्रव्य नाम–हिन्दी : ढ़ाक, खाखर।

लेटिन : Butea Frondosa.

संस्कृत : पलाश, ब्रह्मवृक्ष, किंशुक, रक्तपुष्पक, शुक पुष्पक, त्रिपत्रक, याज्ञिक।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्र०) रोध्रादि न्यग्रोधादि, अम्बष्ठादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः क्षार प्रधान भूमि में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष** काण्ड सग्रंथि वक्र **पत्र** संयुक्त एक पत्रवृंत पर तीन, मध्यवर्त्ती पत्र दीर्घ, गोलाकार **पुष्प** एक पुष्पवृंत पर तीन २, वक्राकृति रक्तपीत वर्ण। **शिम्बी** सेम सदृश **बीज** वृक्काकार रक्ताभधूसर।

पुष्पकाल–वसंत **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन बीज में स्थिर तैल १८% (Kino oil) त्वक् निर्यास में काईनो, टैनिक गैलिक एसिड ५०% क्षार २% होता है।

गुण कर्म–रस तिक्त कषाय कटु **गुण** लघु स्निग्ध **वि.** कटु, **वी.** उष्ण, बीज वातकफ शामक कृमिघ्न, लेखन, विषघ्न, कुष्ठघ्न। पुष्प, शीत मधुर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विपाकी पित्तशामक रक्तस्कंदन कर मूत्रल, ज्वरघ्न, निर्यास, वृष्य-स्तंभन ।

आमयिक प्रयोग बाह्य व्रण, अर्श, त्वगरोग में त्वक् बीज लेप **आभ्यन्तर** गंडूपद कृमि । दाह-तृषा अतिसार ज्वर मूत्रकृच्छ्र कष्टार्त्तव में (पुष्प) ग्रहणी अर्श, कास में त्वक् प्रयोग ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–बीज, पुष्प, त्वक्, पत्र निर्यास, क्वाथ ४०-८० ग्रा० बीजचूर्ण ०.५-२ ग्रा. पलाश घन, क्षार, घृत ।

विशेष–४ जातियां (क) श्वेत पुष्प (ख) पीत पुष्प (ग) नीलपुष्प (घ) हस्ति कर्ण पलाश । गंडूपद कृमि में बीज घन, चूर्ण क्वाथ प्रयोग से विश्वसनीय लाभ होता है । (लेखक के शोध प्रबंध के परीक्षण के अनुसार)

बीजक

द्रव्यनाम–हिन्दी : विजयसार, विजैसार

लेटिन : Pterocarpus Marsupium.

संस्कृत : बीजक, पीतशाल, पीतसार, सर्जक ।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–बिहार, तमिलनाडु, दक्षिण भारत में उत्पन्न होता है ।

वानस्पतिक परिचय–९-१२ मी० अचिरस्थायी वृक्ष, **पत्र** संयुक्त, गोल अंडाकार, पत्रक ५-६ लम्बे तरगायित, **पुष्प** पीत श्वेत ६ मि० मी० व्यास युक्त **शिम्बी** ४०-५० मि० मी० चिपटी **बीज** २ निर्यास रक्तवर्ण होता है ।

पुष्पकाल–शीत **फल** वसंत

रासायनिक संगठन–निर्यास में कषाय ७०-८०% गोंद, गैलिक एसिड ।

गुण कर्म–**रस** कषाय **गुण** रूक्ष लघु **वि.** कटु **वी.** शीत पितकफ शामक प्रमेहघ्न, कुष्ठघ्न रक्त-शोधक, संधानीय ।

आमयिक प्रयोग: बाह्य–श्वित्र, विसर्प आघातज शोथ, त्वग्रोग, खालित्य, **आभ्यन्तर** कृमि, अतिसार प्रवाहिका, रक्तपित्त, वातरक्त, आमवात, प्रमेह मधुमेह, विसर्प, त्वग्रोग ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–निर्यास काण्डसार । निर्यास ०.३-०.६ ग्रा० चूर्ण ३-५ ग्राम, क्वाथ ४०-८० ग्राम ।

विशेष–श्वित्र, उदर्द आदि त्वग्रोगों में पत्र लेप, अभिघातज शोथ वेदना में काण्डसार वेदना शामक होने से प्रयुक्त होता है । **शुद्धगोंदपरी०** कोणाकार टुकड़े जो स्निग्ध, चमकदार, भंगुर, निर्गन्ध चवर्ण से लालास्राव रक्त वर्ण का, उष्ण जल में ९०% तक घुलनशील होता है ।

अनुसंधान कार्य–मधुमेह की प्रारंभिकावस्था में इसके काण्ड सार का क्वाथ अत्युपयोगी सिद्ध हुआ है । विभिन्न प्राणियों में काष्ठसारीय मद्यसारतत्व रक्तगत शर्करा को न्यून करता है यह कार्य ३ से ५ घन्टे की अवधि में स्पष्ट प्रतीत होता है ।

शिंशपा

द्रव्यनाम–हिन्दी : शीशम, सीसम, सीसो

लेटिन : Dalbergia sissoo.

संस्कृत : शिंशपा, श्यामा, कृष्णसारा, पिच्छिला ।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्र०) कषायस्कंध आसवयोनिसार च० सालसारादि, मुष्ककादि सु० ।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र वन, उपवन, तथा वाटिकाओं के किनारे लगाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–विशाल वृक्ष १५-१८ मी० दृढ़ काष्ठीय, शाखाएँ मृदु झुकी हुई, **पत्रक** गोल, नोंकदार, स्निग्ध मृदु ३-५युग्म **पुष्प** सूक्ष्म श्वेत-पीताभगुच्छों में **शिम्बी** चिपटी, धूसरवर्ण, तनु **बीज** छोटे चपटे । **पुष्पकाल** वसंत **फल** ग्रीष्म ।

गुणकर्म रस कषाय कटु तिक्त गुण-लघु रूक्ष **वि.** कटु **वी.** उष्ण त्रिदोष शामक, लेखन, रक्तशोधक, व्रण कुष्ठघ्न, शोथहर, रजः प्रवर्त्तक ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-दुष्टव्रण, त्वगरोग **आभ्यन्तर** छर्दि, रक्तार्श, रक्तातिसार, अतिसार

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रवाहिका, उपदंश, वातरक्त. रक्तविकार, मेदोरोग मेह, ज्वर।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–काष्ठ, सार त्वक्, चूर्ण ३-५ ग्रा० स्वरस १०-२० ग्राम।

विशेष–बाह्य प्रयोगार्थ दुष्टव्रण, त्वग् रोगों में इसके तैल का प्रयोग। सार भेद से कृष्णसार, कपिल सार २ जाति। दुष्ट व्रणों एवं त्वचारोगों में धावन एवं अवधूलन प्रयोग। वातरक्त रक्तविकार, मेदोरोग एवं प्रमेह विकारों में विशेषतः उपयोगी हैं।

पारिभद्र

द्रव्यनाम–हिन्दी : फरहद, पांगरा

लेटिन : Erythrina indica.

संस्कृत : पारिभद्र, मन्दार, पारिजातक, निम्ब तरु, रक्तपुष्प, कण्टकीपलाश।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः दक्षिण भारत के तटवर्त्ती प्रदेश।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष** ३-६ मी० कांड शाखाएँ कंटकित, **पत्र** पलाश के समान त्रिदल, पत्रक विषम चतुर्भुजाकार, अग्रपत्रक दीर्घ **पुष्प** रक्तवर्ण सुरम्य **शिम्बी** १५०-२५० मी० मी० चपटी वक्र **बीज** ६-१२ रक्त।

पुष्पकाल--वसंत, **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–त्वक् में २ प्रकार के रोल एक तिक्त Erythrine (एरिथ्रिन) नामक विषाक्त क्षाराभ।

गुणकर्म–रस तिक्त कटु **गुण** लघु **वि.** कटु **वी.** उष्ण, वातकफशामक, व्रणशोधक शोथहर, कृमिघ्न शूलप्रशमन आक्षेपहर, निद्रा जनन, मूत्रकर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-नेत्राभिष्यंद, व्रण, शोथ संधिवात में लेप, कर्णशूल में स्वरस पूरण, **आभ्यन्तर** ज्वर आक्षेप, शूल, कृमि, फिरंग, शोथ, मेदोरोग, मूत्रकृच्छ, ध्वजभंग।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–त्वक, पत्र पत्रक्वाथ ४०-८० ग्रा० स्वरस ५-१० ग्रा०

विशेष-त्वक्स्थित एरिथ्रिन कुचला सत्त्व का प्रतिविष होने से कुचला की विषाक्त अवस्था में प्रयुक्त होता हैं। **शुद्ध द्रव्य प०** नवीन त्वचा स्निग्ध धूसर, अनुलम्बरूपेण छोटे २ श्वसनरंध्र के चिन्ह युक्त, अन्य जातियों का भी ग्रहण प्रधानतः Erythrina Suberosa Roxb. जाति का।

अनुसंधान कार्य विभिन्न आयुर्वेद संस्थानों में पुरीष कृमि गंडूपद, हुकवर्म में तीन सप्ताह के लिए 60Ml. स्वरस तथा 60Mg 1Kg (शरीर भारानुसार) चूर्ण मात्रा दो बार विभक्त कर देने से उत्साहप्रद परिणाम मिले हैं।

अगस्त्य

द्रव्यनाम-हिन्दी : अगस्त्य, अगथिया

लेटिन : Sesbania Grandiflora.

सस्कृत : अगस्त्य, मुनिपुष्प, मुनिद्रुम, बंगसेन अगस्ति।

वर्गीकरण–पुष्प वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतया उत्तर भारत बंगाल. दक्षिण भारत।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार; **वृक्ष,** ६-८ मी० काण्ड सरल, शाखाएँ दूरवर्त्ती, **पत्रक** इमली सदृश, आकार में बड़े २०-३० युग्म, **पुष्प** श्वेत, वक्र **शिम्बी** चपटी होती है। **पुष्पकाल**–शरद् **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–त्वक् में टैनिन तथा रक्त वर्ण निर्यास होता है।

गुण कर्म–रस तिक्त रूक्ष, लघु **वि.** कटु **वी.** शीत। पित्तकफशामक, कृमिघ्न, स्तंभक, शोघहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य प्रतिश्याय, व्रण, संधिवात **आभ्यन्तर** कृमि, विबंध, उदर रोगों में पत्रशाक, संग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका, कास, प्रतिश्याय में त्वक् स्वरस, मेह, प्रदर, ज्वर, विष, रोग।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ पत्र, पुष्प, फल, त्वक् **मात्रा** क्वाथ ३०-६० ग्राम स्वरस १०-२० ग्राम।

विशेष-पुष्प वर्ण भेद से श्वेत, पीत, नील, रक्त ४ प्रकार का होता है किन्तु अधिकांशतः श्वेत पीत ही प्राप्त होता है।

करञ्ज

द्रव्यनाम-हिन्दी : करंज, कणजा

लेटिन : Pongamia Glabra.

संस्कृत : करंज, नक्तमाल, घृतपूर, स्निग्धपत्र उदकीर्य, गुच्छपुष्पक, वृक्षकंरज।

वर्गीकरण-गुडूच्यादि (भा०) कटु-तिक्त स्कंध कण्डूघ्न, विरेचन (च०) आरग्वधादि, वरुणादि, श्यामादि, शिरोविरेचन, कफसंशमन (सु०)

उत्पत्ति स्थान-सर्वत्र विशेषतः समुद्रीय तट-वर्त्तीय प्रान्तों में होता है।

वानस्पतिक परिचय-सर्वदा हरित मध्यमाकार **वृक्ष** शाखाएँ अवनत **पत्र** पक्षवत् पत्रक ५-७ लट्-वाकार, स्निग्ध **पुष्प** नीलाभ श्वेत गुच्छों में **शिम्बी** सेम के आकार सदृश २५-५० मि० मी० धूसर **बीज १ पुष्प फल काल** वसंत।

रासायनिक संगठन-बीज में तिक्त भूरे वर्ण का सान्द्र तैल Pongamia oil त्वक् में तिक्त क्षार राल. शर्करा, पिच्छिल द्रव्य होते हैं।

गुण कर्म-रस-तिक्त, कटु कषाय गुण-तीक्ष्ण लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण कफवात शामक शोथहर, व्रणघ्न, रक्तप्रसादन।

आमयिक प्रयोग-बाह्यः दद्रु पामा, विचर्चिका विसर्प, परिसर्प में तैल अभ्यंग, लेप **आभ्यन्तर** कृमि, अर्श, गुल्म, रक्तविकार, कुक्कुरकास, प्रमेह कुष्ठ, विषम ज्वर में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-त्वक्, पत्र **मात्रा** पत्र क्वाथ ४०-८० ग्राम, स्वरस ५-१० ग्रा०। करंजादि घृत, तैल, चूर्ण।

विशेष-४ जातियां (१) करंज (२) करंजी (३) कण्टकरंज (४) चिर बिल्व। संधिवात, शोथ पर पत्र कल्क धारण, प्रमेह में पुष्प उपयोगी।

रक्त चन्दन

द्रव्यनाम-हिन्दी : लालचंदन, रक्तचन्दन।

लेटिन : Pterocarpus Santalinus.

संस्कृत : रक्तचंदन, तिलपर्ण, रक्तसार, प्रवालफल, क्षुद्रचंदन, कुचन्दन।

वर्गीकरण-कर्पूरादि (भा० प्र०) पटोलादि, प्रियंग्वादि, सारिवादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान-दक्षिण भारत, कैरल।

वानस्पतिक परिचय-सर्वदा हरित **वृक्ष** ५ से ९ मी० ऊंचा, त्वक् कृष्णाभ धूसर वर्ण **पत्रक** एक-पत्रवृंत पर तीन २ गोल, अण्डाकार (तिल पर्णवत्) **पुष्प** श्वेत पीताभ गुच्छो में **शिम्बी** वक्र ५० मि० मी० दीर्घ **बीज** रक्तवर्ण गुंजासदृश। **पुष्प फल काल**-ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन-इसमें सेन्टलिन नामक रंजक द्रव्य सेन्टल टेरोकार्पिन नामक श्वेत रवेदार अविलेय तत्त्व होता है।

गुण कर्म-रस-तिक्त मधुर, गुण-गुरु, रूक्ष, **वि०** कटु **वी०** शीत पित्तकफशामक, तृष्णा, दाहप्रशमन, रक्तस्तम्भन, विषघ्न।

आमयिक प्रयोग-बाह्यः नेत्ररोग, व्रण. शिरःशूल शोथ, दाह, त्वग्रोगों में लेप **आभ्यन्तर** ज्वर, दाह, तृषा, अतिसार, रक्तार्श, रक्तपित्त, छर्दि, त्वग्दोष कुष्ठ, विषव्यापद् में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-काण्डसार **मात्रा** चूर्ण २-५ ग्राम, चन्दनादि लौह।

विशेष-बाह्य प्रयोगार्थ श्वेतचन्दन की अपेक्षा रक्तचन्दन का प्रयोग अधिक होता है। **शुद्धद्रव्य प०** छोटे बड़े, बेलनाकार, लंबगोल रक्त कृष्णाभ टुकड़े काष्ठ कठिन गुरु, जल में डूबता है। निर्गन्ध ताप देने पर मन्द सुगंधि। अनुप्रस्थकर्त्तन से तल रक्त श्याव, बीच २ में तनु भित्तिक ऊति हल्के वर्ण की होती है।

शालपर्णी

द्रव्यनाम-हिन्दी : सरिवन, सालवन

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लेटिन : Desmodium Gangeticum.

संस्कृत : शालपर्णी, स्थिरा, गुहा, शालिपत्री सुपर्णी, अंशुमति, वातघ्नी, त्रिपर्णी, दीर्घाघ्रि।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) मधुरस्कंध, अंगमर्दप्रशमन, वल्य, स्नेहोपग, शोथहर (च०) लघुपंचमूल, विदारिगंधादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–देश में सर्वत्र उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–शीघ्र वृद्धिशील **क्षुप** ०.५ १.३ मी० ऊंचा **पत्र** एकान्तर, शालपत्र सदृश पत्राग्र क्रमशः तीक्ष्ण **पुष्प** श्वेताभ जामुनी, गुलाबी वर्ण दीर्घ मंजरी में **शिम्बी** धूसर वक्र तनु ४०-६० मि० मी० **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–मूल में एक स्थिर तैल, पीत राल, क्षार, भस्म ६% होता है।

गुण कर्म–रस–तिक्त मधुर गुण–स्निग्ध गुरु **वि०** मधुर **वी०** उष्ण, त्रिदोष शामक ज्वरहर शोथ हर, अंगमर्दप्रशमन वल्य रसायन हैं।

आमयिक प्रयोग-आभ्यन्तरः अर्धावभेदक, श्वास श्वासप्रणालीशोथ, कास, अग्निमांद्य, ग्रहणी, अतिसार तृषा मूत्रकृच्छ, शोथ, मेह, शुक्रदौर्बल्य, सूतिकाज्वर में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग **मात्रा** चूर्ण ३ से ५ ग्राम क्वाथ ४०–८० ग्रा० शालपर्ण्यादि क्वाथ, लघुपंचमूल क्वाथ।

विशेष–इसकी एक त्रिपर्णी जाति (एक साथ तीन पत्र संयुक्त) D. Diffisum होती है तथा D. Polycarpum, D Pulchellum Benth, D. Tiliaefolium, D. Semialata Roxb. (देहरादून के वन्य क्षेत्रों में सालपान नाम से प्रसिद्ध अनेक जातियां होती हैं।

पृश्निपर्णी

द्रव्यनाम–हिन्दी : पठिवन, पिठवन।

लेटिन : Uraria Picta.

संस्कृत : पृश्निपर्णी, कलशि, अंघ्रिपर्णी, क्रोष्टुपुच्छी, शृगालविन्ना, सिंहपुच्छी, धावनी, चित्रपर्णी, पृथक्पर्णी।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) अंगमर्द प्रशमन, मधुरस्कंध, संधानीय, शोथहर (च०) लघु पंचमूल, विदारिगंधादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतया बंगाल, हिमालय की ५–६ हजार फीट तक की ऊंचाई पर होती है।

वानस्पतिक परिचय—सर्वदा हरित बहुवर्षीय **क्षुप** ०.३ से १ मी० ऊंचा **पत्र** अनेक आकृतियुक्त, संयुक्त श्वेत रेखांकित **पुष्प** गोल जामुनी वर्ण सघन मंजरी में पुच्छाकार **शिम्बी** वक्र २५ मि० मी० **बीज** वृक्काकार १–१० **पुष्प काल** वर्षा **फल** शरद्

गुणकर्म–रस–मधुर तिक्त; गुण स्निग्ध, लघु **वि०** मधुर **वी०** उष्ण, त्रिदोषशामक शोथहर, अंगमर्दप्रशमन, संधानीय।

आमयिक प्रयोग : आभ्यन्तर–शालपर्णी के समान प्रयोग कुछेक विशिष्ट प्रयोग; अस्थि भग्न में संधानीय होने से मांसरस के साथ लाभकर है।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–पचांग **मात्रा**– क्वाथ ४०–८० ग्राम। दशमूल क्वाथ–अरिष्ट।

विशेष–निम्न जाति का भी प्रयोग होता है। U. Hamosa पुष्प दंड अधिक दीर्घ होता है किन्तु सघन नहीं, U. Lagopoides विशेषतः बंगाल में पाई जाती है।

मेथिका

नाम–हिन्दी : मेथी, दानामेथी, दाणामेथी।

लेटिन : Trigonella Foenum Graecum

संस्कृत : मेथिका, बहुपर्णी, चन्द्रिका, गंधबीजा पीतबीजा, मिश्रपुष्पा।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान– देश के सभी प्रान्तों में प्रचुर मात्रा में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय छोटा **क्षुप** ०.३ मी०; **पत्रक** छोटे गोल, अंडाकार, कुंठिताग्र एक पत्रवृन्त पर तीन २; **पुष्प** श्वेत पीताभ छोटे **शिम्बी** वक्र ६०–१०० मि० मी० **बीज** ८–१५ चतुष्कोणीय

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चपटे पीतहरित होते हैं। **पुष्प काल**–शीत **फल**–वसंत एवं इसी ऋतु में बीज पक्व होते हैं।

रासायनिक संगठन–बीजों में स्थिर तैल ६% पिच्छिल २८% प्रोभूजिन २२%; कोलीन, ट्रिगोलीन दो क्षार; लेसीथीन पोषक तत्त्व। बीजों की भस्म में फॉस्फरिक अम्ल प्रचुर मात्रा में होता है।

गुण कर्म–रस–तिक्त, गुण–स्निग्ध, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, दीपन, नाड़ीबल्य, बल्य, आर्त्तवजनन।

आमयिक प्रयोग : बाह्य–व्रण, व्रणशोथ पर पत्र लेप **आभ्यन्तर**–ज्वर अर्धावभेदक, शिरःशूल कास, श्वास, अतिसार, ग्रहणी, आमवात, वातव्याधि, मेह, दौर्बल्य, अल्पार्त्तव, सूतिका दोष में बीज; दाह-तृषा में पत्र प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं—बीज, पत्र, **मात्रा**–चूर्ण ३–५ ग्राम, क्वाथ २०–४० ग्राम। चतुर्बीज चूर्ण, मेथिका मोदक।

विशेष-सापेक्ष	विवरण
मेथिका खेती की जाती है। क्षुप ६-" १½' तक ऊंचा पुष्प श्वेतपीत वर्ण शिम्बी ६० से –१०० मि० मी०।	वनमेथिका स्वयं उत्पन्न होती है। २'–३' तक ऊंची जामुनी रक्ताभ वर्ण शिम्बी २०–४० मि० मी०।

मुद्गपर्णी

नाम–हिन्दी : मुंगवन, वनमूंग, जंगली मूंग

लेटिन : Phaseolus Trilobus.

संस्कृत : मुद्गपर्णी, वनमुद्गा शिम्बी, कुरंगिणी, शूर्पपर्णी, मार्जारगंधिक सहा।

वर्गीकरण–गुड्च्यादि (भा० प्र०) मधुरस्कंध, जीवनीय, शुक्रजनन (च०) काकोल्यादि, विदारिगंधादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान-यह स्वयं सर्वत्र उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–वार्षिक लता; काड भूमि पर प्रसरी उप मूल सहित पत्र संयुक्त त्रिपर्ण, पत्रक मुद्गसदृश, अ'डाकार; पुष्पदंडाग्र पर **पुष्प** पीत वर्ण गुच्छों में; **शिम्बी** चपटी ५० मि० मी० **बीज** मुद्गसदृश। **पुष्प फल काल**–शीत ऋतु।

गुण कर्म—रस–मधुर तिक्त गुण–रूक्ष, लघु **वि०** मधुर **वी०** शीत वातपित्त शामक, जीवनीय।

आमयिक प्रयोग–बाह्य: नेत्राभिष्यंद, व्रण, क्षत पर लेप **आभ्यन्तर**-तृषा, अतिसार ग्रहणी, रक्तपित्त, दाह, क्षय, शुक्रक्षय, मेह, मूषिकविष।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–पंचांग, **मात्रा**–चूर्ण १–३ ग्राम, क्वाथ ४०–८० ग्राम।

विशेष—स्थान भेद से ग्राम्य और वन्य २ जातियां होती हैं। **संग्रह**–शरद् में फल आने पर पंचांग छाया शुष्क कर उपयुक्त संरक्षण अपेक्षित है

माषपर्णी

द्रव्यनाम–हिन्दी : जंगली उड़द, मषवन

लेटिन : Teramnus Labialis.

संस्कृत : माषपर्णी, अश्वपुच्छी, माषपर्णिका, बहुफला, पाण्डुरा, महासहा।

वर्गीकरण—गुडूच्यादि (भा० प्र०) मधुरस्कंध, जीवनीय, शुक्रजनन (च०) विदारिगंधादि, काकोल्यादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–उष्ण जलवायु युक्त पार्वत्य, वन्य क्षेत्र विशेषतः बंगाल, दक्षिण भारत में उत्पन्न

वानस्पतिक परिचय—माषलता सदृश **लता** शाखा, पत्र, शिम्बी रोमशः **पत्र** एक पत्रवृंत पर तीन २ विषम चतुर्भुजाकार माषपत्रवत् **पुष्प** गुलाबी बैंगनी **शिम्बी** वक्र २०–४० मि० मी० **बीज** माषसदृश। **पुष्प फल काल**–शीत।

गुण कर्म–रस–मधुर तिक्त गुण–लघु, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत वातपित्त शामक, स्नेहन, दाह प्रशमन, रक्तशोधन, शुक्रजनन।

आमयिक प्रयोग : आभ्यन्तर-मुद्गपर्णी के समान प्रयोग विशेषतः वातव्याधि पक्षाघात, अर्दित आदि रोगों में प्रयुक्त होती है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग, **मात्रा**–क्वाथ ४०–८० ग्राम, चूर्ण १–३ ग्राम।

विशेष–महर्षि चरक का वाजीकरणार्थ विशिष्ट योग-माषपर्णीभृतां धेनुं गृष्टिं पुष्टां चतुःस्तनीम्।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

समानवर्णवत्सां च जीवद्वत्सांच प्रयोग विशेष उल्लेखनीय है। संग्रह एवं संरक्षण—मुद्गपर्णी के समान हैं।

मधुयष्टी

द्रव्यनाम—हिन्दी : मुलेठी. मुलहठी

लेटिन : Glycyrrhiza Glabra.

संस्कृत : मधुयष्टी, यष्टि, मधुपर्णी, सौम्या, मधुस्रवा, मोदिनी, बहुगंधा, जलजा, क्लीतक।

वर्गीकरण—गुडूच्यादि (भा० प्र०) जीवनीय, संधानीय, वर्ण्य, कण्डूघ्न, छर्दिनिग्रहण, स्नेहोपग, वमनोपग, शोणितास्थापन, मूत्रविरजनीय, आस्थापनोपग (च०) सारिवादि, काकोल्यादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान—पंजाब, कश्मीर हिमालय के निम्नवर्त्ती क्षेत्रों में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय—सर्वदा हरित बहुवर्षीय **क्षुप** ०.३–१.२ मी०, **मूल** दीर्घ; पीताभ शाखाएं किंचित्चतुष्कोणीय **पत्रक** ४-६-७ युगल पक्षाकार **पुष्प** रक्ताभ गुलाबी **शिम्बी** चिपटी, तनु १३-२५ मि० मी० **बीज** अनेक होते हैं। **पुष्पकाल**—वसंत, **फल** वर्षा ऋतु में आते हैं।

रासायनिक संगठन—मूल में पीत मधुर रवेदार सत्त्व ग्लिसीराइजीन ५-१०% ग्लिसीराइजीन अम्ल, स्टार्च ३०% राल, गोंद, स्नेह।

गुण कर्म—रस—मधुर तिक्त गुण—गुरु, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत वातपित्त शामक, स्नेहन, शोथहर, संधानीय, जीवनीय, कण्ठ्य, कफोत्सारि, मूत्रजनन एवं मूत्र विरजनीय

आमयिक प्रयोग—**बाह्य**: गल—नेत्र, त्वग्रोग **आभ्यन्तर** संधानीय होने से उरःक्षत, क्षय में; स्वरभेद, प्रतिश्याय, कास, भ्रम, तृषा, दाह, अम्लपित्त मूत्रकृच्छ, हृद्दौर्बल्य, वातरक्त, विसर्प, दौर्बल्य, रक्तप्रदर, स्तन्याल्पता में अत्युपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं—मूल, **मात्रा**—१–३ ग्राम; यष्ट्यादि चूर्ण, क्वाथ तैल-घृत।

विशेष—गल कण्ठ रोगों में मूल क्वाथ गंडूष नेत्र रोगों में आश्चोतन, त्वग्रोगों में लेप। उत्पत्ति स्थान भेद से जलप्रधान क्षेत्र में उत्पन्न को क्लीतक कहते हैं। वर्तमान में तुर्की अरबी मिश्री जाति मधुयष्टी उत्तरोत्तर श्रेष्ठ। **शुद्धद्रव्य** प० छोटे छोटे टुकड़े (२५ से १०० मि० मी० त्वचा रक्ताभ धूसर अनुलम्ब झुर्रियां युक्त, काष्ठभाग पीत सौत्रिक तन्तु युक्त; अनुप्रस्थ कर्त्तन से तल पर Cambium-ring दिखाई देती है, काण्ड में केन्द्रस्थ मज्जक (Pith) स्पष्ट प्रतीत होता है।

मिलावट—ग्लिसीरहीजा की अन्य जातियों की जड़ें तथा गुञ्जा की जड़ें मिश्रित की जाती हैं।

अपराजिता

द्रव्यनाम—हिन्दी : कोयल, अपराजिता

लेटिन : Clitoria Ternatea.

संस्कृत : अपराजिता, आस्फोता, गिरिकर्णिका गिरिमल्लिका।

वर्गीकरण—गुडूच्यादि (भा० प्र०) शिरोविरेचन गण (च०)

उत्पत्ति स्थान—सर्वत्र उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय—तनुस्तम्भी समीपवर्त्ती गुल्म, वृक्षों पर चक्रारोही **लता**; **पत्र** संयुक्त विषम पक्षवत् **पत्रक** ५–७ अंडाकार **पुष्प** पत्रकोणीय पुष्प दण्ड पर एकाकी शुकाकृति नील वर्ण, **शिम्बी** चपटी ५०–१०० मि० मी० दीर्घ **बीज** ६–१० अंडाकार, श्याव धूसरवर्ण के होते हैं **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शरद्

रासायनिक संगठन—मूल त्वक् में स्टार्च, टैनिन राल भस्म ११%; बीज में स्थिर तैल, टैनिक एसिड तिक्त सत्त्व।

गुण कर्म—रस—कषाय, तिक्त गुण—लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत पित्तकफ शामक, शोथहर, मृदुविरेचन भेदन (बीजों का अधिक मात्रा में प्रयोग करने से) आमपाचन, कासश्वासघ्न।

आमयिक प्रयोग—**बाह्य**: अर्धावभेदक में नस्य; कर्णमूलग्रंथिशोथ में पत्र लेप **आभ्यन्तर** गलगंड, शोथ, कुष्ठ आमवात, संधिवात, जलोदर, शुक्रमेह, मूत्रकृच्छ, सर्पिविष।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं—**मूल** बीज चूर्ण १—३ ग्राम बीज चूर्ण १.५ ग्राम।

विशेष—जाति नील श्वेत अपराजिता। **द्रव्य-परीक्षा** मूल मांसल, श्वेत स्थूल, बीज स्निग्ध, चमकीले हरित, कृष्ण चिह्नांकित, द्विदली जिनमें स्टार्च बहुल, स्वाद में तिक्त कषाय।

शरपुंखा

द्रव्य नाम—हिन्दी : सरपुंखा, सरपोंखा।

लेटिन : Tephrosia purpurea.

संस्कृत : शरपुंखा, प्लीहशत्रु, नीलवृक्षाकृति प्लीहघ्न।

वर्गीकरण—गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान - सर्वत्र उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय—वर्षायु बहुशाखी, सरल, गुल्माकार **क्षुप** ०.६-१ मी०; **पत्र** संयुक्त पत्रक विषम पक्षवत् मेथी या नील सदृश; **पुष्प** रक्त या जामुनी **शिम्बी** ३०-५० मि० मी० दीर्घ **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन—मूल में क्लोरोफिल, राल, मोम, गोंद, किंचित् अलब्युमिन, रंजक द्रव्य, भस्म ६% होती है।

गुणकर्म—रस—तिक्त कषाय गुण—लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण, वातकफशामक भेदन मूत्रल, रक्तशोधक-स्कन्दन, कफोत्सारि, विषहर, प्लीहोदर नाशक है।

आमयिक प्रयोग – बाह्य—त्वग्रोग, गंडमाला अपची, शोथ में मूल लेप **आभ्यन्तर**—ज्वर विबंध, गुल्म, यकृत्प्लीहावृद्धि, कृमि, अर्श रक्तविकार, शोथ, श्वास, कास, पूयमेह, मूत्रकृच्छ, कष्टार्त्तव, विषदोष में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं पचांग मूल; **मात्रा**-चूर्ण ३—५ ग्राम, क्षार १—२ ग्राम, क्वाथ ४०-५० ग्राम, शरपुंखाक्षार।

विशेष—जाति-पुष्प दृष्ट्या रक्त, श्वेत। श्वेत जाति (T. Villosa) का क्षुप छोटा रोमशः भू पर प्रसरी, पुष्प श्वेत। एक जाति कण्टपुंखा (T. Petrosa) प्राप्ति स्थान-पश्चिमी राजस्थान; श्वेत शरपुंखा का प्रयोग रसायनार्थ होता है। यकृत्प्लीहा-वृद्धि, शोथ, कृमि में दैनिक प्रयोग होता है

नीलिनी

द्रव्यनाम—हिन्दी : नील, लील,नीली

लेटिन : Indigofera tinctoria.

संस्कृत : नीलिनी,तुत्था, नीलपुष्पा, रंजनी, शारदी, कालकेशी, ग्रामीणा।

वर्गीकरण—गुडूच्यादि (भा० प्र०) विरेचन (च०) अधोभागहर (सु०)

उत्पत्ति स्थान—आर्द्र एवं बालुका मिश्रित कृष्णमृत्तिका भूमि; उत्तरप्रदेश, बंगाल, बिहार में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय—क्षुप- १—१.५ मी०; **पत्र** संयुक्त पत्रक असमपक्षवत् पत्रक १-७ युग्म श्यामाभ हरित शरपुंखा सदृश; **पुष्प** पत्रकोण मंजरी में गुलाबी नीलाभ **शिम्बी** २५ मि० मी० **बीज** ८-१२ **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन—इसके पौधों को सड़ाकर इंडीकन नामक ग्लुकोसाइड प्राप्ति; पंचांग से ५०% तक नील प्राप्त होती है।

गुण कर्म—रस- तिक्त गुण- लघु रूक्ष **वि.** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक, स्वेदजनन, ज्वरघ्न (नियत कालिक) वेदनास्थापन, केश्य-रंजन, विषघ्न, लेखन।

आमयिक प्रयोग बाह्य-दग्ध व्रण, जीर्णव्रण, त्वग् रोगों में लेप शीघ्र लाभकारी। अर्श तथा आमवात में भी यही प्रयोग **आभ्यन्तर** विषम ज्वर मूर्च्छा, भ्रम, शोथ, जलोदर यकृत्प्लीहावृद्धि, विबंध गुल्म,कास, श्वास, मूत्रकृच्छ, खालित्य, विष दोष अलर्कविष में प्रयुक्त होती है।

प्रयोज्य अंग कल्प०—पंचांग विशेषतः बीज पत्र **मात्रा** क्वाथ ४०-८० ग्राम, मूल घन १२५-२५० मि० ग्रा०, नील ६३ मि० ग्रा०; घृत नलीन्याद्य।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विशेष—पागल कुत्ता काटने पर ५० ग्राम पत्र स्वरस पिलाते हैं दंश स्थान पर पत्र लेप इससे विष शांत होता है तथा जलसंत्रास का भय नहीं रहता है। न्यूनाधिक रचना भेद से विविध जातियां (क) (I. arreccta) ख-(I. sumatrana) ग-(I. articulata आदि।

गुञ्जा

द्रव्यनाम—हिन्दी : चिरमी, रत्ती, घुंघची

लेटिन : Abrus Precatorius.

संस्कृत : गुञ्जा, काकचिञ्चा, काकणन्ती, रक्तिका, उच्चटा, कृष्णला, काकवल्लरी।

वर्गीकरण गुडूच्यादि, उपविष (भा० प्र०) मूल विष (सु०)।

उत्पत्ति स्थान—प्रायः देश के सब प्रान्तों के जंगलों में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय—चक्रारोही अनेक शाखी **लता; पत्र** चिंचासदृश संयुक्त पत्रक १०-२० युग्म, अंडाकार; **पुष्प** बैंगनी श्वेत गुलाबी गुच्छों में **शिम्बी** २५-४० मि० मी० नुकीली **बीज** छोटे स्निग्ध रक्त, श्वेत, कृष्ण ३-६ होते हैं। **पुष्प काल** शरद् **फल** शीत।

रासायनिक संगठन—मूल में ग्लिसीराइजीन १५% बीजों में एब्रिन विषाक्त द्रव्य, विषाक्त प्रोभूजिन, वसाविच्छेदक किण्व, ग्लुकोसाइड।

गुण कर्म—बीज-रस तिक्त, कषाय **पत्र** मूल-मधुर तिक्त गुण-तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण, बीज वातकफहर, कुष्ठघ्न, केश्य, त्वग्दोषहर तिक्त पौष्टिक होते हैं।

आमयिक प्रयोग-बाह्य-मुखपाक (पत्रगंडूष) कण्डू दद्रु, त्वग्रोग (बीज लेप) खालित्य न्यच्छ में पत्र बीज सिद्ध तैल प्रयोग **आभ्यन्तर** कुष्ठ, त्वग्दोष कृमि, श्वास, हृद्दौर्बल्य, गलगंड, पूयमेह, उपदंश श्वेतप्रदर।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-मूल, पत्र, बीज **मात्रा** मूल चूर्ण ०.५-१ ग्राम, बीज चूर्ण ६३-१५० मि० ग्राम; पत्रक्वाथ २०-३० ग्राम; गुंजाद्य तैल-लेप गुंजाभद्र रस।

विशेष-जाति-वर्ण भेद से (क) रक्त (ख) श्वेत (ग) कृष्ण; **विषाक्तता**-तीव्र-छर्दि, अतिसार, मूत्राघात हृदयावसाद **निवारण** तंडुलीयक रस सशर्करा; अंगूर, अनार, दुग्ध प्रयोग

(१) **अनुसंधानकार्य**-बीजों का Etherol द्वारा प्राप्त सत्त्व गुच्छ गोलाणु, प्रवाहिका जनक जीवाणु एवं कुछ Fungi की वृद्धि रोकता है।

(२) बीजों से प्राप्त तैलीयांश का चूहों में मुखमार्ग से प्रयोग करने पर जननरोधी क्रिया पाई गई

(३) बीजों के जल में घुलनशील प्रोटीन का चूहों में अर्बुदीय कोशाओं पर नाशक प्रभाव मिला। "वान० अनु०दर्शिका"

कपिकच्छु

द्रव्य नाम-हिन्दी : कौंच, कैंवांच, कैंवांछ

लेटिन : Mucuna pruriens.

संस्कृत : कपिकच्छु, आत्मगुप्ता, दुःस्पर्शा, लांगली, शूकशिम्बी, अध्यण्डा, कण्डुरा, ऋष्यप्रोक्ता

वर्गीकरण-गुड्च्यादि (भा० प्र०) मधुरस्कंध, बल्य (च०) विदारिगंधादि, वातसंशमन (सु०)

उत्पत्ति स्थान-सभी प्रान्तों के मैदानी भागों में विशेषतः उष्णप्रदेशों में खेती भी की जाती है।

वानस्पतिक परिचय-लता-सेम सदृश; तनु चक्रारोही वर्षायु। पत्रक ३ सेमपत्रवत्, पार्श्वपत्रक लट्वाकर मध्यपत्रक तिर्यगाकार **पुष्प** नीलारुण सघन अवनत पुष्प दण्ड पर; **शिम्बी** सघन-धूसर रोमावृत ५० मि० मी० दीर्घ **बीज** सेमसदृश ५-६ धूसर श्याव मसृण एवं कठिन होते हैं।

पुष्पकाल-शरद् **फल** हेमंत।

रासायनिक संगठन-बीजों में राल, बसा, टैनिन एवं मेन्गनीज पाये जाते हैं।

गुण कर्म-रस-मधुर तिक्त गुण-गुरु स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** उष्ण त्रिदोष शामक, कृमिघ्न फल-रोम; मूत्रप्रजनन मूल; बृंहण, वाजीकर बीज।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर वातनाड़ी दौर्बल्य अंगघात, अर्दित में मूल क्वाथ मूत्रकृच्छ, योनि गर्भाशयभ्रंश में उ० बस्ति प्रयुक्त होती है। गन्डूपद कृमि में १२५ मि० ग्रा० फलरोम मधु से प्रयुक्त होता है। कार्श्य, शोष, शुक्रदौर्बल्य में बीज प्रयोग।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज, मूल, फलरोम, **मात्रा** बीज चूर्ण ३–५ ग्रा०, क्वाथ ४०–८० ग्रा०, कौंचपाक, वानरी वटिका।

विशेष–उत्पत्ति स्थान के भेद से वन्य और बागी। वन्य जाति की शिम्बी पर रोएं अधिक व तीक्ष्ण तथा बीज छोटे कठिन मसृण व धूसर होते हैं। **मिलावट** बाजार में बागी जाति के बीज अधिक मिलते हैं जो पुष्ट चौंला के बीजों के सदृशः होने से औषध विक्रेता कौंच के बीजों के नाम से इन्हें भी बेच देते हैं अतः बाजार से वन्य जाति बीज लेवें तथा ये गुणकर्म में भी उत्तम होते हैं।

विदारी

द्रव्यनाम–हिन्दी : विदारीकन्द, भुइकुम्हड़ा

लेटिन : Pueraria Tuberosa.

संस्कृत : विदारी, स्वादुकंदा, इक्षुगंधा, पयस्विनी, क्षीरशुक्ला, सिता, कंदपलाश, इक्षुविदारी भूमिकूष्माण्ड।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) मधुरस्कंध, बल्य, बृंहणीय, वर्ण्य, कण्ठ्य, स्नेहोपग (च०) विदारिगंधादि, पित्तसंशमन (सु०)

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के निम्नवर्त्ती क्षेत्र उत्तर प्रदेश आसाम, पंजाब, बिहार मैसूर, बंगाल राजस्थान-आबूपर्वत में स्वयं जात लताएं होती हैं।

वानस्पतिक परिचय–अत्यंत विस्तृत अचिरस्थायी आवर्त्तनी **लता** काण्ड सुषिर **पत्र** पलाश के समान त्रिपत्रक लट्वाकार, निम्नपृष्ठ श्वेत रोमशः **पुष्प** नील, नीलरक्त वर्ण मंजरी में **शिम्बी** ५०-७५ मि० मी० चपटी **बीज** २-६ **पुष्पकाल** वसंत **फल** ग्रीष्म ऋतु में आते हैं।

रासायनिक संगठन—कन्द में पिष्टमय सत्त्व, शर्करा १०% राल होती है।

गुण कर्म–रस-मधुर गुण-गुरु, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत वातपित्तशामक, दाहतृष्णाप्रशमन बल्य, रसायन, शुक्र एवं स्तन्यजनन।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर-दाह, तृष्णा, ज्वर विवध, कोष्ठगतवात (रौक्ष्य जन्य) रक्तपित्त, वातरक्त, रक्तविकार, हृद्दौर्बल्य, मूत्रकृच्छ, कास वातज; क्षय, शोष, कार्श्य, शुक्रदौर्ब. स्तन्याल्पता में उपयोगी हैं।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–कन्द **मात्रा** चूर्ण ३-१० ग्राम चूर्ण-घृत।

विशेष–एक जाति क्षीर विदारी लता बड़ी, प्रसरणशील पत्र पाणिवत् ५-७ भागों में विभक्त हरित रक्ताभ, पुष्प बैंगनी वर्ण कन्द क्षीर बहुल होता है। **कन्दपरीक्षा** भार, लम्बाई मौटाई आकार प्रकार में अनेक प्रकार के। बाहर हल्के भूरे, काटने पर श्वेत, गूदेदार, कटे तल पर Concentric rings तथा मज्जकिरणें (Medullary rays) होती हैं।

यवासक

द्रव्यनाम–हिन्दी : जवासा, यवासा

लेटिन : Alhagi Camelorum.

संस्कृत : यवासक, यवास, दुःस्पर्श

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–शुष्क उषर भूमि में नदियों के किनारे राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तरप्रदेश में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–दीर्घ तनुशाखी कंटकित ग्रीष्म में हरित **क्षुप; पत्र** छोटे गोल लम्बे अण्डाकृति रोमशः स्निग्ध अवनत **पुष्प** गुलाबी मंजरियों में **शिम्बी** २५ मि० मी० भालाकार। **बीज** स्निग्ध श्यावधूसरवर्ण। **पुष्पकाल** वसंत **फल** ग्रीष्म

रासायनिक संगठन–इसकी शर्करा में एक रवेदार सत्त्व जो किसी अम्ल में गरम करने पर ग्लुकोज में बदलता है। इसमें इक्षुशर्करा २६.४% होती है।

गुण कर्म–रस- मधुर तिक्त कषाय गुण-लघु

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्निग्ध वि० मधुर वी० शीत वातपित्तहर दाह तृष्णाशामक, बल्य मूत्रजनन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-अर्श में क्वाथ से धावन व पंचांग लेप, प्रतिश्याय, गल रोगों में गंडूष **आभ्यन्तर**-तृषा, दाह छर्दि, कामला. कास, मूत्रकृच्छ. ज्वर, शोथ, दौर्बल्य, भ्रम, मूर्च्छा में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–पंचांग, शर्करा, **मात्रा** यवास शर्करा १-३ ग्राम, पंचांग क्वाथ ४०-८० ग्रा.

विशेष–क्षुप से एक निर्यास स्रवित होकर रक्ताभ श्वेत छोटे-छोटे दोनों के रूप में जमता 'यवाशसर्करा' है। यूनानी में इसे 'तुरंजबीन' कहते हैं। मूर्च्छा, भ्रम में पंचांग क्वाथ लाभप्रद है।

जयन्ती

द्रव्यनाम–हिन्दी : जैंत, जयन्ती।

लेटिन : Sesbania Aegyptica.

संस्कृत : जया, सूक्ष्मपत्रा, केशरूहा, वेजयन्ती, नादेयी, सूक्ष्ममूला।

उत्पत्ति स्थान–देश के दक्षिण प्रान्तों में विशेषत: उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–छोटा **वृक्ष** २–३ मी० **पत्र** संयुक्त, पक्षाकार इमलीसदृश, दीर्घ **पत्रक** मृदु रोमश २०–२४ युगल, तिक्त, विशेष गंधि **पुष्प** प्रत्येक पुष्पदंड पर ३–१२ छोटे-छोटे पीतवर्ण; **शिम्बी** शोभांजन सदृश किंतु छोटी एवं तनु **बीज** छोटे १५–२० **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–बीजों में वसा ४.८%अलब्युमिनाइड ३३.७% कार्बोहाइड्रेट १८.२%; सेल्युलोज २८.३, क्षार ४.२% होता है।

गुण कर्म–रस-कटु तिक्त गुण-रूक्ष, लघु **वी०** उष्ण **वि०** कटु त्रिदोषशामक ज्वरघ्न, मूत्रसंग्रहणीय, यकृत्प्लीहोदरनाशक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-वृश्चिशकदं खालित्य, पालित्य, कुष्ठ, गलगंड व्रणं में लेप अण्डवृद्धि, ग्रंथि, संधिशोथ **आभ्यन्तर** स्वरभेद, प्रतिश्याय अतिसार, अग्निमांद्य, रक्त विकार गलगंड यकृत्प्लीहावृद्धि, बहुमूत्र, कष्टार्त्तव, ज्वर।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–त्वक्, मूल, पत्र, पुष्प बीज **मात्रा** स्वरस १०–२० ग्राम चूर्ण २–५ ग्राम, क्वाथ ५०–१०० ग्राम, जयान्टी।

विशेष–संधिशोथ, ग्रंथि में कोष्ण पत्र कोष्ण लेप, कुष्ठ, व्रण में क्वाथ से प्रक्षालन पुष्प वर्ण भेद से (क) पीत (ख) कृष्ण (ग) रक्त जाति रसायनार्थ एवं जांगम विषों में कृष्ण जाति का विशेष प्रयोग होता है।

शणपुष्पी

द्रव्यनाम–हिन्दी : झुनझुनिया

लेटिन : Crotalaria versucosa

संस्कृत : शणपुष्पी, घंटारवा, शणसमाकृति।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–देश के उष्ण प्रदेशों के वन्य क्षेत्र विशेषतः बंगाल एवं दक्षिण भारत में पाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु क्षुप ०.६-१ मी०; **पत्र** मृदु, स्थूलाग्र, अण्डाकार १००–१५० मि० मी० **पुष्प** सदीर्घपुष्पवृंत पीत, श्वेत या नीलाभ वर्ण १५-२० गुच्छों में **शिम्बी** शणशिम्बी सदृश, २५-४० मि० मी० रोमश: **बीज** १५–२० छोटे कृष्ण वर्ण; **पुष्प फल काल** शीत।

गुण कर्म–रस-तिक्त कषाय गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष लघु, **वी०** उष्ण **वि०** कटु, पित्तश्लष्महर शोथहर, ग्राही रक्तशोधक वामक (मूल)।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–त्वचागतशल्य कण्डू, त्वग्दाह, व्यङ्ग, शोथ, मुख, गल रोग। **आभ्यन्तर** अपस्मार, अतिसार, प्रवाहिका कुष्ठ, रक्तविकार; रक्तपित्त हृद्रोग (पुष्प), श्लेष्मज विकारों मे वमनार्थ मूल प्रयोग अपेक्षित है।

प्रयोज्य, अंग कल्पनाएं-मूल, पत्र, पुष्प **मात्रा** पत्रस्वरस ५–१० ग्राम, मूल,पत्र चूर्ण १–३ ग्राम।

विशेष–मुख, कण्ठ रोगों में पत्र क्वाथ गंडूष;

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कण्डू, शोथ, त्वचागत शल्यादि में पत्र लेप। शुष्क शिम्बी को हिलाने पर झनझन शब्द होने से घण्टारवा पर्याय सार्थक है।

कुलत्थ

द्रव्यनाम–हिन्दी : कुलथी, कुरथी

लेटिन : Dolichos Biflorus.

संस्कृत : कुलत्थ, कलवृन्त, ताम्रवृक्ष, कुलिथा, कुलिथिका।

वर्गीकरण–धान्यवर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र, विशेषतः तमिलनाडु, महाराष्ट्र में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु क्षुप ०.५ मी० प्रसरण शील; **पत्र** माषसदृश अण्डाकार, **पुष्प** पत्रकोणोद्भूत १–३ पीतवर्ण **शिम्बी** वक्र चिपटी २५ ५० मि० मी० रोमश; **बीज** रक्ताभ धूसर ५–६ चपटे गोल, वृक्काकार होते हैं। **पुष्प काल** वर्षा **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–बीज में स्टार्च ५२% तैल, प्रोभूजिन २२.५% फॉस्फरिक अम्ल; भस्म ३.२% सौत्रिक धातु तथा युरिएज प्रभूत मात्रा में होता है

गुण कर्म–रस-कषाय, अम्ल गुण-रूक्ष, तीक्ष्ण लघु, **वि०** कटु **वी०** उष्ण; वात कफशामक, पित्त रक्त प्रकोपक, मूत्रल, अश्मरीभेदन, लेखन, स्वेदजनन, आर्त्तवजनन, शोथहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : शैत्य, कर्णमूलग्रंथिशोथ में बीज लेप **आभ्यन्तर** ज्वर अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र गुल्म, कृमि, आध्मान, विबंध, यकृत्वृद्धि, कास श्वास, कृच्छ्रार्त्तव, मेदोवृद्धि में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–बीज, **मात्रा** चूर्ण २-५ ग्रा०, कुलत्थ-यूष-घृत-प्रलेप।

विशेष–सन्निपात, अवसादावस्था, स्वेदाधिक्य होने पर शरीर पर बीज चूर्ण का घर्षण करते हैं। अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र में विशेष उपयोगी। विविध खनिज द्रव्यों के शोधनार्थ भी प्रयुक्त होता है।

पूतिकरंज कुल
(Caesalpiniaceae Fam)

अशोक

द्रव्य नाम—हिन्दी : अशोक, असोक,

लेटिन : Saraca Indica.

संस्कृत : अशोक, वञ्जुल, हेमपुष्प, नट, ताम्रपल्लव; पिण्डपुष्प, गंधपुष्प, कंकेलि।

वर्गीकरण–पुष्पवर्ग (भा० प्र०) कषायस्कंध, वेदनास्थापन (च०), रोध्रादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–मध्य और पूर्व हिमालय के निम्नवर्त्ती प्रदेश, बंगाल दक्षिण भारत में स्वयं उत्पन्न तथा वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सुरम्य सर्वदाहरित आम्रवृक्ष सदृश **वृक्ष** मध्यमाकार **पत्र** आम्रसदृश ३–६ युग्म, दीर्घ, तरंगायित पत्र आरम्भ में ताम्रवर्ण; **पुष्प** सुन्दर सघनगुच्छों में रक्तवर्ण **शिम्बी** चपटी १५०–२५० मि० मी० **बीज** ४-८ चपटे। **पुष्पकाल** वसंत **फल**-शरद्।

रासायनिक संगठन–त्वक् में टैनिन, कैटेचिन लौह तथा हीमैटॉक्सिलिन Haematoxylin तत्त्व प्रभूत मात्रा में होता है।

गुण कर्म–रस-कषाय तिक्त गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत पित्तकफशामक, रक्त रोधकर-स्तम्भन, शोथहर (गर्भाशय योनि) गर्भाशयबल्य।

आमयिक प्रयोग : आभ्यन्तर–प्रदर (श्वेत-रक्त) गर्भाशयशोथ, असृग्दर, रक्तविकार, अतिसार, प्रवाहिका में त्वक्प्रयोग रक्तपित्त-दाह-तृषा (पुष्प) मूत्राघात, अश्मरी में बीज प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-त्वक्, बीज, पुष्प, **मात्रा** क्वाथ १०–२० ग्राम बीज चूर्ण १–३ ग्राम। अशोकारिष्ट, अशोकघृत।

विशेष–इसकी एक नकली जाति आसापाला (Polyalthia longia Less folia) है। चरक सुश्रुत संहिता ग्रंथों में अशोक का उल्लेख मिलने पर भी स्त्री रोगों में प्रयोग न मिलकर वेदनास्था-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पन के रूप में प्रयोग मिलते हैं। **मिलावट**-अशोक की छाल में देशी आसापाला, कचनार, वटप्ररोह की छाल की मिलावट की जाती है। **शुद्ध द्रव्य प०** रक्त अशोक की त्वक् तनु, अधिकतर तनु शाखाओं की त्वक् ही मिलती है ये रक्तवर्ण तनु मुड़ी हुई तथा अन्तस्संकुचित काण्ड त्वक् कुछ स्थूल रक्तवर्ण की होती है। आसापाला की त्वक् स्थूल विदीर्ण एवं खुरदरी। अन्दर रक्तवर्ण की एवं सघन सौत्रिक तंतुओं से युक्त होती है। रक्त कचनार एवं वटप्ररोह त्वक् को रक्तरंजित कर मिश्रित किया जाता है। जिनको शुद्ध अशोक त्वक् के परिचय से पृथक् करें।

आरग्वध

द्रव्यनाम—हिन्दी : अमलतास; सियार लाठी

लेटिन ; Cassia Fistula,

संस्कृत : आरग्वध, चतुरंगुल, कृतमाल, सुवर्णक कर्णिकार, शम्पाक, राजवृक्ष, व्याधिघात; दीर्घफल, स्वर्णांग, स्वर्णभूषण, आरवेत।

वर्गीकरण—हरीतक्यादि (भा० प्र०); तिक्तस्कंध, कुष्ठघ्न, विरेचन (च०) आरग्वधादि, अधोभाग हर, श्यामादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान—सर्वत्र उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय—मध्यमाकार **वृक्ष; काण्ड** सरल **पत्र** संयुक्त; पत्रक दीर्घवृंत पर ४—८ युग्म स्निग्ध दीर्घ अण्डाकार जामुनसदृश **पुष्प** दीर्घपुष्पदण्ड पर चमकीले पीतवर्ण के गुच्छों में सुरम्य; **शिम्बी** ०.३—०.७ मी० बेलनाकार कृष्णरक्ताभ **बीज** मज्जा में अनेक गोल धूसर मालाकार स्थित होते हैं। **पुष्पकाल** वसंत **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन-फल मज्जा में गोंद, पेक्टिन रंजक द्रव्य अल्प मात्रा में उड़नशील तैल, क्षार, जल शर्करा ६०%, पिच्छिल द्रव्य।

गुण कर्म—रस तिक्त मधुर गुण—स्निग्ध, मृदु गुरु, वि० मधुर वी० शीत वातपित्त शामक कफपित्त संशोधक, मृदु रेचन, शोथहर, कफोत्सारि, कुष्ठघ्न।

आमयिक प्रयोग—**बाह्य**-मुखपाक, तुंडिकेरी में मज्जा क्वाथ गंडूष। व्रण ग्रंथि, आमवात त्वग्रोगों में मज्जा, पत्र—लेप **आभ्यंतर** विबंध (रौक्ष्यता जन्य) कामला, यकृच्छोथ, गुल्म, शोथ, कुष्ठ। मूत्रकृच्छ, ज्वर, वातजकास (कफोत्सारि होने से) वातरक्त, रक्तपित्त में पुष्प प्रयोग।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं—पत्र पुष्प फलमज्जा; मात्रा-मज्जा ५-१० ग्राम रेचनार्थ २०-४० ग्राम। आरग्वधादि फांट, तैल, लेह, वर्त्ति।

विशेष—आरग्वध मृदु स्नेहन, सारक अनुलोमन होने से मृदु रेचन में श्रेष्ठ माना गया गया है। इसका प्रयोग ज्वरावस्था में सुकुमार, गर्भिणी, वृद्ध, कृश व्यक्तियों में भी अबाध होता है। उत्क्लेश, अरुचि निवारणार्थ द्राक्षा के साथ प्रयुक्त होता है। ताजे पुष्पों का गुलकन्द भी बनता है जो मुख्यतः रक्त पित्त दोषशामक है।

काञ्चनार

द्रव्यनाम—हिन्दी : कचनार, रक्त कचनाल

लेटिन : Bauhinia Variegata.

संस्कृत : काँचनार, युग्मपत्रक, शोणपुष्पक, गण्डारि, चर्मारक, अश्मंतक, स्वल्पकेसरी, कोविदार।

वर्गीकरण—गुडूच्यादि (भा० प्र०) वमनोपग (च०) ऊर्ध्वभाग हर (सु०)।

उत्पत्ति स्थान—सर्वत्र उत्पन्न तथा उद्यानों में लगाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय—मध्यमाकार **वृक्ष** अचिरस्थायी; **पत्र** एकान्तर द्विखंडित, कुंठिताग्र **पुष्प** पत्रकोणोद्भूत श्वेत, गुलाबी बैंगनी, **शिम्बी** किंचित् मुड़ी हुई रोमावृत २००-२५० मि० मी० चपटी कठिन **बीज** १०—१५ होते हैं **पुष्पकाल** वसंत **फल** वर्षा।

रासायनिक संगठन—त्वक् में टैनिन, शर्करा गोंद होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म–रस-कषाय गुण-लघु,रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत; पित्तकफशामक, व्रणशोधन, शोथहर, स्तम्भन, मूत्रसंग्रहण ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–गंडमाला, अपची में त्वक् लेप; मुखपाक में गंडूष, व्रण में धावन **आभ्यन्तर**, गंडमाला, लसीकाग्रंथिशोथ, मेदोरोग, कुष्ठ, प्रमेह, अतिसार, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, योनिभ्रंश, गर्भाशयभ्रंश में बाह्य आभ्यन्तर प्रयोग ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-त्वक्, पत्र, पुष्प, **मात्रा** क्वाथ ४०–८० ग्राम, चूर्ण ३–५ ग्राम; कांचनार-गुग्गुलु, क्वाथ, गुटिका ।

विशेष–पुष्प वर्ण भेद से श्वेत (B. acuminata) पीत B. purpurea) पीत कचनार का वृक्ष बड़ा, पुष्प पीत तथा पर्वत्तीय क्षेत्रों में होता है । गंडमाला, अपची, लसिकाग्रंथिशोथादि में श्वेतकायाणु की भक्षणक्रिया वृद्धि करने एवं शोथघ्न होने से प्रयोग होता है ।

अम्लिका

द्रव्यनाम–हिन्दी : इमली, आमली, तिन्तिडी

लेटिन : Tamarindus Indica.

संस्कृत : अम्लिका, चिञ्चा, सर्वाम्ला, दन्तशठ तिन्तिडिका, चुक्रा ।

वर्गीकरण-फलादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान-सर्वत्र उत्पन्न होती है ।

वानस्पतिक परिचय बड़ा **वृक्ष** शाखाएं विस्तृत वक्र, काण्ड स्थूल, विदीर्ण त्वगावृत **पत्र** संयुक्त पक्षाकार पत्रक आमलकीसदृश २०-४० युग्म **पुष्प** सित पीतवर्ण-गुच्छों में **शिम्बी** १०० से १५० मि० मी० अर्धवृत्ताकार **बीज**क ठिन चिपटे ३-१० रक्ताभ । **पुष्प काल** ग्रीष्मान्त **फल** शीत ।

रासायनिक संगठन–मज्जा में टार्टरिक अम्ल ५% एसेटिक एसिड ४% मैलिक एसिड, शर्करा २५-४०% गोंद, पेक्टिन होते हैं ।

गुणकर्म–रस अम्ल मधुर, गुण गुरु, रूक्ष **वि.** अम्ल **वी.** उष्ण वातशामक कफपित्त वर्धक मज्जा-दीपन-भेदन, रोचन, यकृत् उत्तेजक बीज-ग्राही, प्रमेहघ्न, शुक्रस्तम्भन ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : शोथ, स्थानिक वेदना में स्नेहाक्त पत्रोपनाह, **आभ्यन्तर** दाह, तृषा, छर्दि अरोचक, विबंध में मज्जा प्रयोग । गुल्म, शूल में क्षार प्रयोग, मूत्रकृच्छ, प्रमेह शुक्रतारल्य में बीज-प्रयोग होता है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मज्जा, बीज, पत्र, क्षार **मात्रा** मज्जा ३-५ ग्राम बीज १-३ ग्राम चिंचा क्षार, पानक कल्पना ।

विशेष–औषधि प्रयोगार्थ जिसका गूदा रक्ताभ भूरे वर्ण का तथा बीज छोटे हों, उत्तम मानी जाती है (गुजरात में प्रचुर उत्पन्न) **संग्रह–संरक्षण** अम्ल होने से ताम्रपात्र में वर्जित, छिलके सूत्र अलग कर मज्जा पिण्ड को तैलाक्त करने से शीघ्र खराब नहीं होती है ।

चक्रमर्द

द्रव्यनाम–हिन्दी : पवांड, पवांर, चकवड

लेटिन : Cassia Tora.

संस्कृत : चक्रमर्द, दद्रुघ्न, प्रपुन्नाट, मेष लोचन, एडगज, पद्माट, चक्री ।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्तिस्थान–सर्वत्र उत्पन्न होता है ।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **क्षुप** ०.६-१.३ मी० **पत्र** संयुक्त पक्षाकार पत्रक स्निग्ध लट्वाकार ३ युगल दुर्गन्धयुक्त **पुष्प** छोटे पीत वर्ण अक्षकोणीय २ युगल **शिम्बी** दीर्घ चतुष्कोणीय, **बीज** तनु मेथी-सदृश २०–३० **पुष्प काल** वर्षा **फल** शरद् ।

रासायनिक संगठन–पत्र बीजों में एमोडीन एक ग्लुकोसाइड जो क्राइसोफेनिक एसिड के समान होता है । पत्र में Cathartine सदृश सत्त्व, खनिज एवं रंजक सत्त्व होते हैं ।

गुणकर्म–रस–कटु गुण–लघु रूक्ष वि. कटु वी. उष्ण वातकफशामक पत्र–हृद्य, रेचक बीज कृमिघ्न कुष्ठ त्वग्दोषघ्न, कफोत्सारि, लेखन ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्य : दद्रु, कण्डू- सिध्म, एक्जिमा, कुष्ठ, अर्श, व्रणशोथ में लेप **आभ्यन्तर** कुष्ठ, कृमि, गुल्म, अर्श, रक्तविकार, कास, वातव्याधि में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज, पत्र **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, स्वरस ५-१० ग्राम, दद्रुघ्नवटी, प्रलेप।

विशेष–दद्रु में निम्बु या करंज तैल के साथ बीज पीसकर तथा पामा में तक्र से सिध्म में कांञ्जी से पीसकर लेप होता है। दद्रु, पामा आदि त्वग्विकारों एवं Fungi जनित रोगों मे मुख्य प्रयोग क्राइसोफैनिक एसिड सदृश ग्लुकोसाइड से लाभकारी। पत्र हृद्य एवं सनाय सदृश रेचक होते हैं

कासमर्द

द्रव्यनाम–हिन्दी : कसौंदी

लेटिन : Cassia occidentalis.

संस्कृत : कासमर्द, कासारि, अरिमर्द

वर्गीकरण–शाकवर्ग (भा०) सुरसादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु विस्तृत ०.७-१.५ मी० **क्षुप, पत्र** संयुक्त पत्रक लम्बे, अंडाकार ३-५ एक पत्र वृन्त पर, **पुष्प** पीत वर्ण गुच्छों में **शिम्बी** ७५-१०० मी० मि० चपटी **बीज** १०-३० चक्रिकाकार, भूरे वर्ण युक्त पुष्प **काल** वर्षा **फल** शरद्

रासायनिक संगठन–बीजों में वसा, टनिक अम्ल, गोंद, स्टार्च, सेल्युलोज, क्राइसोफेनिक अम्ल खनिजद्रव्य विषाक्त तत्त्व (Toxalbumin) पत्रों में सनाय सदृश रेचक सत्त्व (Cathartin)

गुणकर्म–रस तिक्त मधुर गुण–लघु, रूक्ष **वि.** कटु **वी.** उष्ण वातकफहर ज्वरघ्न, मूत्रल, पित्त स्रंसन, विषहर, मृदुरेचन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : त्वग्रोग, व्रण, विसर्प में लेप **आभ्यन्तर** ज्वर कास, श्वास, हिक्का, विबंध कामला, अग्निमांद्य,शोथ, अपस्मार, मेह, मूत्रकृच्छ्र, स्थावर जंगम विष, पाण्डु, कामला, अपतंत्रक, आक्षेप में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज, पत्र **मात्रा** बीज चूर्ण १-३ ग्राम स्वरस ५-१० ग्राम।

विशेष–त्वग् रोग, विसर्प आदि में पत्र, बीज लेप। कास श्वासादि श्वसन संस्थान के रोगों में पत्र रस का मधु के साथ प्रयोग होता है। भ्रष्ट बीज रेचक न होकर ग्राही होते है। भृष्ट बीजों का प्रयोग काफी के रूप में भी होता है।

आवर्त्तकी

द्रव्यनाम – हिन्दी : तरवर, आंवली

लेटिन : Cassia Auriculata.

संस्कृत : आवर्त्तकी, पीतपुष्पा, चर्मरंगा।

उत्पत्ति स्थान–राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में उत्पन्न होती हैं।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **वृक्ष** १–२ मी०; **पत्रक** संयुक्त अंण्डाकार, कुंठिताग्र ८–१० युगल **पुष्प** पीतवर्ण गुच्छों में **शिम्बी** ५०–१०० मि० मी० चपटी **बीज** अनेक धूसर गोल चिपिटाकृति होते हैं। **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–त्वक् में २५% कषाय द्रव्य

गुण कर्म–रस–कषाय तिक्त गुण–रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** शीत पित्तकफशामक, रक्तपित्त शामक, स्तम्भन।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर** अतिसार, प्रवाहिका, कृमि, मेह, प्रदर, त्वग्रोग, रक्तपित्त, कुष्ठ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं—त्वक्, बीज, पुष्प **मात्रा** क्वाथ त्वक् ४०–८० ग्रा० चूर्ण २–३ ग्राम

विशेष–उदयपुर के समीपवर्त्ती क्षेत्रों में अत्यधिक उत्पन्न होती है। कषाय, स्तंभन, शीत होने से अतिसार, प्रमेह की उत्तम औषधि है। चर्म रंजनार्थ इसकी मूल का प्रयोग होता है।

पूतिकरंज

द्रव्य नाम–हिन्दी : कंट करंज, करंजवा।

लेटिन : Caesalpinia Bonducella.

संस्कृत : पूतिकरंज, लताकरंज, कुबेराक्ष, प्रकीर्य, कण्टकिकरंज,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्गीकरण-गुडूच्यादि भा०) अधोभागहर (सु०)

उत्पत्ति स्थान-प्रायः सर्वत्र कण्टकित गुल्म स्वयं उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय-सघन विस्तृत कांटेदार **गुल्म** काण्ड शाखाएं कटंकित **पत्र** संयुक्त द्वि-पक्षाकार **पत्रक** ६-९ युग्म तनु लट्वाकार; **पुष्प** पीतवर्ण **शिम्बी** कटकावृत अण्डाकार **बीज** १-२ गोल, धूसर स्निग्ध एवं कठिन होते हैं। **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शीत।

रासायनिक संगठन-बीजों में प्रोटीन २०% स्टार्च ३५.५% तैल २५%, तिक्त सत्त्व नार्टिन या बाण्डुसिन (Bonducin) श्वेत चूर्ण रूप में जो जल में अविलेय किन्तु मद्यसार स्थिर तैलों में विलेय होता है।

गुण कर्म-रस-तिक्त कटु, गुण-तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष, **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक, शोथहर, कृमिघ्न, ज्वर, (विषमज्वर) हर, स्रंसन, यकृदुत्तेजक, मूत्रल, तिक्त पौष्टिक।

आमयिक प्रयोग-**बाह्य**: शोथ, आमवात में तैलमर्दन वृषणशोथ, त्वग्विकार **आभ्यन्तर** कृमि, शूल, रक्तविकार, श्वास, सूतिकाज्वर, विषमज्वर जीर्णज्वर, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार यकृत्प्लीहा वृद्धि एवं वेदनाप्रधान विकारों में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-बीज, मूल **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम-करंजादिवटी करंजाद्य तैल।

विशेष-करंज विषमज्वर में कुनैन के समान लाभप्रद है त्वग्रोगों में इससे सिद्ध तैल का स्थानिक प्रयोग; सूतिकाज्वर तथा सूतिकावस्था में ज्वर न होने पर भी प्रयोग लाभकारी। ज्वरोत्तर दौर्बल्य एवं अग्निमांद्य में विशेष उपयोगी है।

सनाय

द्रव्य नाम-हिन्दी : सनाय, सोनामुखी

लेटिन : Cassia Augustifolia.

संस्कत : स्वर्णपत्री, स्वर्णमुखी, कल्याणी, मार्कण्डिका।

उत्पत्ति स्थान--तमिलनाडु, गुजरात, उत्तर प्रदेश, पंजाब में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय-सरल **गुल्म** ०.६-१ मी० **पत्र**-समपक्षवत् पत्रक अभिमुख १-८ युग्म इमली सदृश किन्तु बड़े, **पुष्प** पीतवर्ण पत्र कोणोद्भूत सरल मंजरियों में **शिम्बी** कृष्ण, वक्र, सपर्व; **बीज** ५-६ **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शीत।

रासायनिक संगठन-पत्रों में एक ग्लुकोसाइड, केलशियम आक्जलेट १२% टैर्यार्टिक एसिड मुख्य विरेचन द्रव्य। शिम्बी में भी प्रायः पत्र सदृश सत्त्व होते हैं।

गुण कर्म-रस-तिक्त कटु, गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफहर पित्तस्रंसन, मलस्रंसन वामक (उभयमार्गदोषहर) रक्तशोधन।

आमयिक प्रयोग-**आभ्यन्तर**: ज्वर (विषमज्वर) आनाह, विबंध, उदावर्त्त यकृतोदर, उदररोग गुल्म, कृमि, आमदोष, रक्तविकार, गृध्रसी, आमवात वातरक्त, त्वग्दोष विषदोषों में मुख्यतः प्रयुक्त होती है।

प्रयोज्य अङ्ग, कल्पनाएं—पत्र, शिम्बी **मात्रा** चूर्ण १-६ ग्राम, पंचसकार यष्ट्यादि, चूर्ण।

विशेष—इसके प्रयो। से उत्पन्न हृल्लास उद्वेष्टन आदि को दूर करने के लिए इसके साथ शतपुष्पा, शुंठी, मुलेठी, गुलाब पत्र मिला कर प्रयोग होता है। शिम्बी प्रयोग से हृल्लास, अरुचि लक्षण नहीं होते हैं। इसका निस्सरण मूत्र, स्तन्य मार्ग से होने से स्तन्यदात्री स्त्री को सावधानी पूर्वक प्रयोग अपेक्षित है। विकृत दोषों के निर्हरणार्थ उत्तम द्रव्य है।

पतंग

द्रव्य नाम-हिन्दी : पतंग, बक, वकम

लेटिन : Caesalpinia Sappan.

संस्कृत-पतंग, रक्तसार, पत्राङ्ग, रंजन, पट्टरंजन पत्तूर, कुचन्दन।

वर्गीकरण-कर्पूरादि (भा० प्र०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति स्थान—तमिलनाडु, बंगाल, पूर्वी–पश्चिमी प्रायद्वीप।

वानस्पतिक परिचय—मध्यमाकृति कण्टकित **वृक्ष** शाखाएँ रक्ताभ रोमश **पत्र** अण्डाकार २०-४० से० मी० दीर्घ, पत्रक १०–२० युग्म, आयताकार, कुण्ठिताग्र **पुष्प** शाखाग्र मंजरियों में पीत धूसर वर्ण। **शिम्बी** अस्फोटी, वक्राकृति, चिपटी २५–४० मि० मी० दीर्घ **बीज** ३–४ होते हैं।

रासायनिक संगठन–काष्ठसार में एक रक्तवर्ण मैलिक, गैलिक अम्ल तथा सैपोनिन रवेदार सत्त्व होता है।

गुण कर्म–रस–मधुर तिक्त, गुण–लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत पित्तकफहर, व्रण शोधक–रोपण, शोणितास्थापन, स्तम्भन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य: जीर्णव्रण पर चूर्णावधूलन स्थानिक रक्तस्राव पर क्वाथ की वस्त्र पट्टीधारण, प्रदर में बस्तिप्रयोग **आभ्यन्तर** उरःक्षत सरक्तकफष्ठीवन, रक्तातिसार, प्रवाहिका, रक्तार्श असृग्दर, अत्यार्त्तव, प्रदर (श्वेत, रक्त)

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–काष्ठसार **मात्रा** १-३ ग्राम, पत्रांगासव।

विशेष—काष्ठसार रक्तचंदन सदृश कृष्णाभ रक्तवर्ण, कठिन किन्तु निर्गन्ध होता है, सद्य छेदन से रक्ताभ श्वेत जो वायु में खुला रखने पर रक्ताभ होता है। अनुप्रस्थ (T.S.) कर्त्तन से कटे तल पर सीधी एवं वृत्त रेखाएँ होती हैं।

बब्बूल कुल
Mimosaceae Fam.

बब्बूल

द्रव्यनाम – हिन्दी : बबूल, बबूर, कीकर

लेटिन : Acacia Arabica.

संस्कृत : बब्बूल, किंकिरात, सपीतक, दृढ़ारुह, सूक्ष्मपत्र, पीतपुष्प, युग्मकंटक, कषाय।

वर्गीकरण-वटादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र जल के समीप तथा कृष्ण मृत्तिका प्रधान भूमि में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष**; शाखाए सरल, अवनत, कंटकाकीर्ण **पत्र** संयुक्त **पत्रक** आमलकी सदृश **पुष्प** गोल पीत वर्ण **शिम्बी** श्वेत हरित ७५–१५० मि० मी० चपटी **बीज** ८–१० **पुष्पकाल** वसन्त **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–त्वक् में अत्यधिक कषाय द्रव्य, निर्यास में शर्करा, क्षार ३.४% केलशियम मेन्गनीज, मैलिक, एरेबिक अम्ल होते हैं।

गुण कर्म–रस–कषाय (त्वक्) गुण–रूक्ष, गुरु **वि०** कटु **वी०** शीत पितकफ शामक। त्वक्-शोथहर स्तंभन व्रणरोपण, कुष्ठहर। निर्यास–मधुर, गुरु, स्निग्ध, शीत वीर्य।

आमयिक प्रयोग–बाह्य: मुख-गल रोगों में गंडूष व्रण अग्निदग्ध व्रण में लेप, योनि–गर्भाशयभ्रंश में योनि धावन। **आभ्यन्तर** रक्तपित्त, कास, अतिसार प्रवाहिका, त्वग्रोग, कुष्ठ, प्रमेह, श्वेत एवं रक्तप्रदर में त्वक् तथा अपक्व शिम्बी प्रयोग। शुक्रदौर्बल्य में निर्यास क प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–पत्र, शिम्बी, निर्यास **मात्रा** त्वक् क्वाथ ४०-८० ग्राम, शिम्बी चूर्ण २-५ ग्राम, निर्यास ३-६ ग्राम, बब्बूलारिष्ट, चूर्ण।

विशेष समस्त वृक्ष पर सूच्याकार युग्म कंटक। लघुकंटक दीर्घकंटक भेद से २ जाति। काण्ड से रक्ताभ श्वेत निर्यास स्रवित होता है। जो विविधाकृति के टुकड़ों में मिलता है। टुकड़े अनेक दरारें युक्त, खंडित तल चमकदार, श्वेत वर्ण उत्तम, द्विगुणित जल में पूर्णतः विलेय; इसका संग्रह A. Senegal wild से भी, इसका गोंद श्वेत व श्रेष्ठ होता है।

खदिर

द्रव्य नाम–हिन्दी : खेर, खयर, सफेद खैर।

लेटिन : Acacia Cotechu.

संस्कृत : खदिर, सोमसार, रक्तसार, कण्टकी,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दंतधावन, यज्ञिय, बहुशल्य, बालपत्र ।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्र०) कषायस्कंध, कुष्ठघ्न (च०) सालसारादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान सर्वत्र विशेषतः पश्चिमोत्तर–प्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के जंगलों में उत्पन्न होता है ।

वानस्पतिक परिचय–**वृक्ष** मध्यमाकार **पत्र** बबूल सदृश संयुक्त पक्षाकार **पत्रक** ३०–५० युगल रोमश कृष्ण हरित **पुष्प छोटे** पीत मुंडकाकार **शिम्बी** धूसर, तनु, चपटी ५०-१०० मि० मी० दीर्घ होती है । **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शीत

रासायनिक संगठन-त्वक् में खदिर सार ३५% कषाय द्रव्य ५७% तथा कैटेचीन नामक सत्त्व ।

गुण कर्म–रस कषाय तिक्त गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत पित्तकफशामक ।

आमयिक प्रयोग-**बाह्य**: स्वरभेद, कास में क्वाथ गंडूष, दंतरोगों में मंजन, श्वित्र में लेप **आभ्यन्तर** कृमि, रक्तपित्त, शोथ, अतिसार, प्रदर, गुद-योनि-भ्रंश, प्रमेह में उपयोग होता है ।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–त्वक्, सार (कत्था) **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, क्वाथ ४०-८० ग्राम; सार ०.५-१ ग्राम; खदिरारिष्ट–क्वाथ–वटी ।

विशेष - जाति (क) इरिमेद (विट् खदिर) इसकी त्वक्, पत्रादि में विष्ठासदृश गंध (ख) रक्त खदिर (ग) रक्तकपिश (घ) कृष्ण खदिर । सार-काष्ठ से रसक्रिया से प्राप्त द्रव्य कत्था गाढ़े भूरे कृष्ण वर्ण का, शीघ्र भंगुर, सुषिर (Porous), अनियमित टुकड़ों में, गंधहीन स्वाद में तिक्त, कषाय, मधुर होता है ।

शिरीष

द्रव्यनाम–हिन्दी : सिरष, सिरिष, सेरसा

लेटिन : Albizia Lebbeck.

संस्कृत : शिरीष, शुकपुष्प, मृदुपुष्प, शुकप्रिय, भण्डीर, कपीतन ।

वर्गीकरण–कषायस्कंध, वेदनास्थापन, विषघ्न, शिरोविरेचन (च०) सालसारादि (सु०) ।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र उत्पन्न होता है ।

वानस्पतिक परिचय–बड़ा वृक्ष १५–१८ मी० सघन; **पत्र** संयुक्त **पत्रक** ४-९ युग्म, कृष्ण हरित, इमली सदृश किन्तु दीर्घ, विस्तृत **पुष्प** सुरम्य सुगंधि श्वेत पीताभ **शिम्बी** सेमवत् **बीज** गोलाकार, चपटे, पीताभ भूरे वर्ण के होते हैं । **पुष्प काल** वर्षा **फल** शीत ।

रासायनिक संगठन–त्वक् में सेपोनीन (Saponin) टैनिन एवं रालीय (Resinous) तत्त्व ।

गुणकर्म–रस-कषाय तिक्त मधुर, गुण–लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** अनुष्ण पित्तकफहर, वेदनास्थापन, रक्तशोधक, कुष्ठघ्न, विषहर, शोथघ्न ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-त्वग्रोग, व्रण (त्वक्-लेप) नक्तान्ध्य में पत्ररस आश्चोतन, गंडमाला में (बीज लेप) **आभ्यन्तर** स्थावर जंगम विष, रक्तविकार, शोथ, कास, श्वास, विसर्प, कुष्ठ, शिरःशूल वेदनाप्रधान विकारों में प्रयुक्त होता है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–त्वक्, **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम, क्वाथ ४०–८० ग्राम, महाशिरीषागद ।

विशेष–जाति श्वेत-कृष्ण क्रमशः त्वचा श्वेत धूसर एवं कृष्ण वर्ण । स्थावर, जंगम विषचिकित्सा में बहुत उपयोगी है । **द्रव्य परीक्षण** त्वक् का बाह्य तल धूसर, विदीर्ण, खर, अन्तस्तल रक्तवर्ण, त्वक् अन्तर्वस्तु कठिन, खर रक्ताभ होती है ।

लज्जालु

द्रव्यनाम–हिन्दी : लाजवंती, छुईमुइ,

लेटिन : Mimosa pudica.

संस्कृत : लज्जालु, शमीपत्रा, रक्तपादी, नमस्कारी, समंगा, खदिरका, जलकारिक ।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) सन्धानीय, पुरीषसंग्रहणीय च०; प्रियंग्वादि अम्बष्ठादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र उत्पन्न होती है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वानस्पतिक परिचय–विस्तृत कंटकित **गुल्म** प्रसरी **पत्रक** रेखाकार बबूल सदृश, पत्रवृंत के दोनो ओर पंक्तिबद्ध **पुष्प** गुलाबी, मुंडकाकार, सुन्दर, पत्रकोणीय, पुष्पदण्डाग्र, **शिम्बी** छोटी, सधियों पर सूक्ष्म कांटे होते हैं। **पुष्पफलकाल** शीत।

रासायनिक संगठन–इसमें माइमोसीन नामक क्षाराभ, कषाय द्रव्य, भस्म होता है।

गुण कर्म–रस-कषाय तिक्त गुण-रूक्ष लघु **वि०** कटु **वी०** शीत कफपित्तशामक शोणितास्थापन, संधानीय, संकोचक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-अर्श, व्रण, क्षत (पत्र पंचांग लेप) **आभ्यंतर** उरःक्षत, रक्तपित्त, शोथ, रक्तार्श, अतिसार, प्रमेह, प्रदर में प्रयुक्त होती है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–पत्र,पंचांग **मात्रा** स्वरस १०-२० ग्राम।

विशेष–इसके पत्र स्पर्श से संकुचित हो जाते हैं अतः लज्जालु एवं नमस्कारी पर्याय हैं। इसके गुल्म छोटे बड़े भेद से २ प्रकार के। बड़े गुल्म कंटक, अकंटक २ प्रकार के। कौशिका, रक्तवाहिनियों पर संकोची होने से विभिन्न स्रावी व्याधियों में उपयोगी है।

सप्तला (शिकाकाई)

द्रव्यनाम–हिन्दी : शिकाकाई, चीकाकाई,

लेटिन : Acacia Rugata.

संस्कृत : फेनिला, चर्मकषा, सप्तला, पत्रघना, विमला, विषाणिका।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–दक्षिण भारत के जंगलो में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–कांटेदार विस्तृत **गुल्म**, शाखाएं श्वेत चिह्नांकित, कंटकित **पत्र** खदिरवत्, अम्ल **पुष्प** पीत श्वेताभ गुलाबी मुण्डक (Capitulum) छोटे। **शिम्बी** बबूल सदृश, माँसल। पानी में भिगोकर मसलने से रीठा के समान फेनोद्भव। **पुष्पफल काल** वसंत।

रासायनिक संगठन–शिम्बी में सेपोनीन ११.२% रजक द्र० २१.५% मैलिक एसिड १२.७५%।

गुण कर्म–रस-तिक्त, गुण-तीक्ष्ण, **वि०** कटु **वी०** शीत पितकफहर, कृमिघ्न पित्तसारक, रक्तशोधक कफोत्सारि।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-शिर के केशरंजन एवं वर्द्धनार्थ फाँट से प्रक्षालन, एवं बाह्यकृमि में प्रयोग **आभ्यन्तर** कास, श्वास (फांट) शोथ, रक्तविकार, यकृद्दोष, कामला में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं शिम्बी; पत्र **मात्रा** फांट ३०-६० ग्राम; पत्र चूर्ण २-४ ग्राम।

विशेष–पित्तस्रंसन होने से शाखाश्रित कामला में कालीमरिचके साथ; कफोत्सारि एवं अधिक मात्रा में वामक होने से कास श्वास में प्रयोग होता है।

इरिमेद

द्रव्यनाम–हिन्दी : दुर्गन्ध खेर, अरिमेद

लेटिन : Acacia-Far-nesiana

संस्कृत : इरिमेद, विट्खदिर, अरिमेदक, कालस्कंध।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा०प्र०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र मुख्यतया उष्ण प्रदेशों में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–बबूल सदृश मध्यमाकार **वृक्ष**; त्वक् श्याव धूसर, शाखाएं मृदु कंटकित **पत्र** बबूल सदृश कृष्ण हरित, तनु **पुष्प** पत्रकोणोद्भूत पुष्पदण्डाग्र पीत मुंडकाकार, सुगंधि, **शिम्बी** बबूल सदृश **बीज** अनेक स्निग्ध, धूसर **पुष्पकाल** वसंत **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–पुष्पमुंडकों से प्राप्त तैल में Benzaldehyde, Salicylic acid, Methylsalicylate आदि तत्त्व होते हैं।

गुण कर्म–रस-कषाय तिक्त गुण-रूक्ष, लघु **वी०** उष्ण **वि०** कटु पित्तकफशामक, व्रणघ्न, पूतिहर, रक्तशोधक, स्तम्भन

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–वाह्य-शीताद, पूयदन्त, दन्त एवं मुख गल रोगों में त्वक् क्वाथ गंडूष, तैल, कवल प्रयोग। विसर्प, व्रण में लेप **आभ्यन्तर** अतिसार, कृमि, रक्तविकार, कुष्ठ, कण्डू, विसर्प, पूयमेह में त्वक् क्वाथ, चूर्ण प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–त्वक्, पत्र, निर्यास त्वक् क्वाथ, ५०-१०० ग्राम। इरिमेदादि तैल।

विशेष–पत्र एवं त्वक् में विष्टा सदृश गंध होने से विट् खदिर संज्ञा है। इसके तैल का प्रयोग विविध दंत विकारों में दैनिक चिकित्सा में होता है।

शतपुष्पा कुल
Umbelliferae Fam.
मंडूकपर्णी

द्रव्यनाम–हिन्दी : मंडूकपर्णी, ब्रह्ममांडूकी

लेटिन : Hydrocotyle asiatica.

संस्कृत : गण्डूकपर्णी, माण्डूकी, दिव्या, महौषधि, ब्राह्मी।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) तिक्तस्कंध, वयः स्थापन, (च०) तिक्त वर्ग (सु०)

उत्पत्ति स्थान–देश के प्रायः सभी शीत प्रधान प्रान्तों में हिमालय के निम्नवर्त्ती क्षेत्र २ हजार फीट ऊंचाई तक आर्द्र भूमि में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–भूमि पर छत्राकृति प्रसरी **लता** काण्ड दीर्घ प्रसरी अनेक पर्व युक्त, पर्व से मूल, पत्र, पुष्प फलोद्भव **पत्र** अखंड, गोल,वृक्काकार, एकान्तर सगन्ध **पुष्प**, ३–५ रक्तवर्ण छोटे **फल** चपटे ८ मि० मी०; ७ से ९ स्पष्ट रेखायुक्त **बीज** चपटे होते हैं। **पुष्पकाल** वसंत **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–इसमें क्षाराभ हाइड्रोकोटिलीन, श्वेत रवेदार Vellarine एक ग्लुकोसाइड एशियाटिक, स्थिरतैल उड़नशील तैल, राल, विटामिन 'सी' होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त कषाय मधुर गुण-लघु, सर वि० मधुर वी० शीत। त्रिदोषशामक. मेध्य हृद्य, रसायन ज्वरहर, शोथहर, रक्तशोधक, मूत्रकर।

आमयिक प्रयोग–वाह्य-व्रण, विसर्प, त्वग् रोगों में चूर्णावघूलन, लेप **आभ्यन्तर** अपस्मार, उन्माद, स्मृतिदौर्बल्य, अग्निमांद्य, हृद्दौर्बल्य, शोथ, कुष्ठ, फिरंग, क्षयजव्रण, स्वरभेद, कास, मूत्रकृच्छ्र ज्वर, रक्त विकार।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–पंचांग- **मात्रा** चूर्ण २-५ ग्राम स्वरस १०-२० ग्राम। सारस्वतारिष्ट, ब्राह्मी घृत, ब्राह्मी तैल, सारस्वत घृत।

विशेष–ब्राह्मी एवं मण्डूकपर्णी की सापेक्षता **ब्राह्मी**–पत्र- कृष्णचिन्हांकित पतले सुगंधित आकृति में चवन्नी के समान पुष्प-श्वेत नीलाभ गुलाबी आभायुक्त। रस में तिक्त कषाय मधुर होती है। **मण्डूकपर्णी**–लता रक्ताभ वर्ण पत्र-एक ग्रंथि से अनेक पत्रोद्भव, स्थूल तीव्रगंधि आकृति में अठन्नी सदृश पुष्प रक्त वर्ण रस में अल्प तिक्त होती है।

अतिसेवन से शिरःशूल, भ्रम, कंडू आदि विकार उत्पन्न होते हैं।

अनुसन्धान कार्य–प्रोढ़ायु के स्वस्थ्य ४३ व्यक्तियों में पंचांग का ६ माह तक प्रयोग से रसायन गुण प्राप्त हुए (वान० अनु० दर्शि० से सारांश)

शतपुष्पा

द्रव्यनाम हिन्दी : सौंफ, सउँफ

लेटिन : Foeniculum Capillaecum.

संस्कृत : शतपुष्पा, शताव्हया, मधुरा, सितछत्रा, मिसि, कारवी, अतिलम्बी, संहितच्छत्रिका।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा०) आस्थापन सु०

उत्पत्ति स्थान-देश के प्रायः सभी प्रांतों में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **क्षुप** ०.७-१ मी० **पत्र** खंडित सपक्ष सोयासदृश **पुष्प** छत्राकार श्वेतपीताभ **बीज** हरिताभ, लम्बे, रेखाकार। जिन फलों का तैल निकाल लिया जाता है, उनमें तैलीयांशन्यून, गंधन्यून, अधिक गहरे वर्ण के होते हैं। **पुष्पकाल** हेमन्त **फल** वसंत।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संगठन–बीजों में उड़नशील तैल १-३% स्थिर तैल ८.८%-१५.८%; उड़नशील तैल में एनीथाल ६०%, फेनकोन तत्त्व होता है।

गुण कर्म–मधुर कटु तिक्त गुण-स्निग्ध, तीक्ष्ण, लघु, **वि०** मधुर **वी०** नात्युष्ण, वातकफशामक दीपन पाचन, अनुलोमन, मूत्रल।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर-आध्मान, अग्निमांद्य, अजीर्ण, उदरशूल, छर्दि, तृषा, अरोचक, रक्त विकार, मूत्रकृच्छ्र कास श्वास, रजोरोध, ज्वर

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज, बीजतैल **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम, अर्क २०-४० ग्राम; तैल ५-१० बूंद; शतपुष्पादिचूर्ण, अर्क।

विशेष–विरेचन द्रव्यों के साथ हृल्लास उद्वेष्टन आदि विकारों को दूर करने के लिए प्रयुक्त होती है। अन्न-उदक-मूत्र, रस, रक्त, प्राण, आर्त्तव वह स्रोतस् पर उत्तेजक क्रिया होती है।

मिश्रेया (सोया)

द्रव्यनाम–हिन्दी : सोया, सोआ, सोवा।

लेटिन : Peucedanum Sowa.

संस्कृत : मिश्रेया, मधुरा, मिसि, छत्रा।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–देश के उष्ण, समशीतोष्ण प्रान्तों में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय-वर्षायु **क्षुप** ०.३-०.८ मी० **पत्र** सौंफसदृश किन्तु छोटे खंडित, मृदु **पुष्प** छत्राकार, पीत, बीजकोष में पक्व **बीज** श्यामवर्ण छोटे उन्नतोदर रेखाकार (बीज शतपुष्पासदृश किन्तु छोटे एवं चपटे होते हैं) **पुष्पकाल** हेमंत **फल** वसंत

रासायनिक संगठन–बीजों में ३-३.५% उडन तैल तथा स्थिर तैल। उड़नशील तैल में एपिओल एनीथीन द्रव प्राप्त होता है।

गुणकर्म-रस कटु तिक्त गुण लघु, तीक्ष्ण रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक, रोचन, अनुलोमन, दीपन, कृमिघ्न, हृद्य, स्वेदल, स्तन्य एवं आर्त्तवजनन, मूत्रल।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : शोथ, व्रण उदरशूल आध्मान, संधिवात **आभ्यन्तर** ज्वर, कृमि, अजीर्ण, अग्निमान्द्य, आनाह, छर्दि, कास, श्वास, हिक्का, हृद्दौर्बल्य, मूत्राघात, कष्टार्त्तव, स्तन्याल्पता।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज, बीजतैल **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम, अर्क २०-४० ग्राम, तैल ५-१० बूंद। सोया अर्क एवं तैल।

विशेष–शोथ, व्रण पर पत्र लेप, उदरशूल, आध्मान (उद्वेष्टहर होने से) संधिवात, वेदना प्रधान विकारों में तैल अभ्यंग (वेदनास्थापन होने से **शुद्ध द्रव्य प०** अनुप्रस्थरूपेण एक तनु झिल्ली से आवृत बीज ४ मि० मी० दीर्घ तथा २ मि० मी० विस्तार युक्त, रेखाएं अधिक सोन्नत, प्रत्येक खात में (Furrow) एक तैल नलिका स्थित। बीज सुगंधि, तीक्ष्ण. अल्पतिक्त होते हैं।

अजमोदा

द्रव्यनाम–हिन्दी : अजमोद, अजमूदा।

लेटिन : Carum Roxburghianum.

संस्कृत : अजमोदा, खराश्वा, मायूर, दीप्यक, ब्रह्मकुशा, लोचमस्तका।

वर्गीकरण हरीतक्यादि (भा० प्र०) शूलप्रशमन, दीपनीय (च०) पिप्पल्यादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः उत्तरप्रदेश, पंजाब में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **क्षुप** ०.२–०.३ मी० किंचित् प्रसरी **पत्र** पक्षाकार गहरे खंडित **पुष्प** छत्राकार गुच्छों में **बीज** यवानी के बीज से बड़े गोल धूसर पीताभ, सूक्ष्म चिन्हांकित। **पुष्प काल** शीत **फल** वसंत।

रासायनिक संगठन–बीजों में हल्के पीत वर्ण का उड़नशील तैल १.५-३% गंधक, अपोइल विषैला तत्त्व गोंद, क्षार, ग्लुकोसाइड होता है।

गुण कर्म–रस कटु तिक्त गुण तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण, वातकफघ्न, दीपन, शूल हर, अनुलोमन।

आमयिक प्रयोग-बाह्य बीजका-शोथ, वेदनायुक्त विकारों में लेप **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, अरोचक,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शूल, उदररोग, कृमि, कास, श्वास, हिक्का, बस्ति-शूल, गर्भाशय वेदना, मूत्राघात, कृच्छार्त्तव।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, अजमोदादि चूर्ण अजमोदादि वटी।

विशेष–यह उद्वेष्टनिरोधि (Anti spasmodic) होने से श्वास श्वसनिकाशोथ उदरशूल, कृच्छार्त्तव बस्तिशूल में लाभप्रद है। **शुद्ध द्रव्य प०** बीज गोल, यवानी से बड़े धूसर, चिन्हांकित, २ वेश्म-स्फोटी खण्डों से युक्त, प्रत्येक खण्ड में ५ उभरी रेखाएं तथा १५ तैल नलिकाएं होती हैं। विविध जातियां C. Strictocarpum तथा Apium Graeveolens होती हैं।

जीरक

द्रव्यनाम हिन्दी : जीरा, सफेद जीरा।

लेटिन : Cuminum Cyminum.

संस्कृत : जीरक, जरण, अजाजी, दीर्घक, दीर्घ-जीरक, दीप्यक, शुक्लाजाजी, मगधा।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा०) शूलप्रशमन; शिरोविरेचन (च०) पिप्पल्यादि (सु०)

उत्पत्तिस्थान–राजस्थान, बंगाल, बिहार, आसाम, पंजाब आदि उष्ण, समशीतोष्ण प्रांतों में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–सोंफ के समान **क्षुप** शाखाएं तनु, **पत्र** सोंफ के समान तनु, पक्षाकार, २-३ एक साथ **पुष्प** छत्राकार श्वेत **बीज** दीर्घ ५ उन्नत रेखाकार, श्वेत धूसर होते हैं। **पुष्प काल** हेमंत **फल** वसंत।

रासायनिक संगठन–बीजों में उड़नशील पीत तैल ३.५-५.२% इसमें कार्बोन तत्त्व, स्थिर तैल १०%, राल, प्रोभूजिन के यौगिक, पिच्छिल द्रव्य होता है।

गुण कर्म–रस कटु गुण रूक्ष, लघु, **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक पित्तवर्धक, दीपन, पाचन; शूलघ्न अनुलोमन, लेखन, मूत्रकर, गर्भाशयोत्तेजक होता है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : त्वग्रोग, कंडू, शोथ, ग्रंथि में लेप **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, शूल, ग्रहणी, अर्श, अतिसार, कृमि, छर्दि, मूत्राघात, सूतिकादोष स्तन्याल्पता, रजोरोध में दैनिक चिकित्सा में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-बीज **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम जीरकाद्य चूर्ण, हिंग्वष्टक चूर्ण, जीरकाद्यरिष्ट।

विशेष–उड़नशील तैल की पर्याप्त मात्रा होने से अन्न-रस—रक्त, मूत्र-आर्त्तव, स्तन्यवह स्रोतस् पर उत्तेजक क्रिया होती है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा** बीज वेलनाकार, पार्श्व में चपटे भूरेवर्ण के ६ मि० मी० दीर्घ २ मि० मी० चौड़े, प्रत्येक खण्ड में ५-५ उभरी तथा ४-४ गोण रेखाएं तथा ६ तैल नलिकाएं स्थित होती हैं।

कृष्णजीरक

द्रव्यनाम-हिन्दी : काला जीरा, स्याहजीरा

लेटिन : Carum Carvi.

संस्कृत : कृष्णजीरक, कृष्णाजाजी, बहुगंध, कश्मीरजीरक। उद्गारशोधन, जरणा, कारवी।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–इसकी खेती कश्मीर, कुमाऊं, गढ़वाल आदि हिमालय के समीपवर्त्ती क्षेत्रों में मुख्यतः खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय-वर्षायु **क्षुप** ०.३-०.८ मी० शाखाएं एकांतर मृदु, हरित **पत्र** बहु खंड़ित, दीर्घ **पुष्प** श्वेत छत्राकार **बीज** कृष्ण धूसर, तीव्र-गंधि श्वेतजीरक से तनु छोटे पांच उन्नत रेखा युक्त होते हैं। **पुष्प काल** शीत **फल** वसंत।

रासायनिक संगठन–बीजों में उड़नशील तैल ३.१-७% होता है जो जीरक सदृश स्वाद गंधयुक्त वर्ण हीन होता है।

गुणकर्म–रस कटु गुण लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक दीपन, पाचन, वातानुलोमन, ग्राही, मूत्रल स्तन्यजनन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-वातकफज शिरःशूल, ग्रंथिशोथ में लेप प्रयोग **आभ्यंतर** अरोचक, अजीर्ण

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ज्वर, कृमि, आध्मान, शूल, ग्रहणी, गुल्म, मूत्र–कृच्छ्र; रजोरोध, स्तन्यक्षय में उपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–फल (बीज) तैल **मात्रा** चूर्ण, १–२ ग्राम तैल १–५ बून्द।

विशेष–इसके तैल का उपयोग अन्य औषधियों को सुगन्धित रुचिकर करने के लिए होता है। **शुद्ध द्रव्य प०** श्यावाभ, तनु, अल्पवक्र, ३–६ मि० मी० दीर्घ, २ मि० मी० विस्तृत, २ वेश्मस्फौटी खण्डों से युक्त, प्रत्येक खण्ड पर ५ उन्नत रेखाएं, खात भाग में ६ तैल नलिकाएं स्थित, **मिलावट** सोया, गाजर, जीरा (श्वेत) के रंजित बीज, ये गंधहीन होते हैं। तैल निष्कासित बीज बाहर से झुर्रीदार तथा अधिक श्यावाभ होते हैं।

धान्यक

द्रव्यनाम–हिन्दी : धनियां, धना।

लेटिन : Coriandrum Sativum.

संस्कृत : धान्यक, कुस्तुम्बुरु, छत्रा, वितुन्नक, कुनटी, धान्य।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०) तृष्णा निग्रह, शीतप्रशमन (च०) गुडूच्यादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र खेती की जाती है। विशेषतः उत्तरप्रदेश, बंगाल में खेती होती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु बहुशाखी **क्षुप** ०.२ ०.५ मी० दीर्घ काण्ड **पत्र** गोलाकार ३-५ भागों में विभक्त, शाखापत्र दीर्घ, **पुष्प** श्वेत गुलाबी छत्राकार **फल** छोटे अंडाकार, द्विकोष्ठी, रेखाकार, हरिताभ होते हैं। **पुष्प फल काल** शीतान्त

रासायनिक संगठन–फलों में उड़नशील तैल ०.५-१% जिसमें कोरिएन्ड्रॉल ४५% स्थिर तैल १३% वसा १३% कषाय द्रव्य, मेलिक अम्ल, क्षार होता है।

गुणकर्म–रस-मधुर कटु तिक्त कषाय, गुण-लघु स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** नात्युष्ण त्रिदोषशामक दीपन, ग्राही, तृष्णाशमन, हृद्य, मूत्रजनन, कफघ्न वेदनास्थापन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः नेत्राभिष्यन्द, दाह, शोथ, विसर्प **आभ्यन्तर** तृषा, मूर्च्छा, रक्तपित्त, भ्रम, छर्दि में फाण्ट प्रयोग। अग्निमांद्य, अतिसार, शूल, मूत्रकृच्छ, पैत्तिकमेह, ज्वर, हृद्दौर्बल्य श्वास कास में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, पंचांग **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्रा०, फाण्ट ३०-५० ग्राम। धान्यपंचक क्वाथ एवं फाण्ट।

विशेष–नेत्राभिष्यंद में क्वाथ का नेत्र बिन्दु प्रयोग। दाह, शोथादि में फल का लेप। मूत्राघात ज्वर तृषा, छर्दि में फाण्ट का दैनिक प्रयोग होता है

यवानी

द्रव्यनाम–हिन्दी : अजवाइन, अजमो।

लेटिन : Carum Copticum.

संस्कृत : यवानी, उग्रगंधा, तीव्रगंधा, वातारि दीप्यका, हृद्या, शूलहन्त्री, उग्रा, अजमोदिका।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि, चतुर्बीज (भा० प्र०) शीतप्रशमन (च०)

उत्पत्ति स्थान–इसकी खेती उर्वरा भूमि में विशेषतः मध्यभारत, आंध्र, बंगाल, पंजाब आदि प्रान्तों में की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **क्षुप** ०.४-१ मी० **पत्र** छोटे-छोटे सोयासदृश, शाखाओं पर दूरवर्त्ती **पुष्प** शाखाग्र में छत्राकृति श्वेत, ये ही पक्व होने पर छत्राकृति बीज कोष में बदलते हैं। इन्हें कूटकर **बीज** प्राप्ति ये गोल, छोटे, पीत, कपिश, रेखाकार होते हैं। **पुष्पकाल** शीत **फल** वसंत।

रासायनिक संगठन–बीजों में तीव्र सुगन्धित उड़नशील तैल २-३%, इसी को शीतप्रक्रिया से घनीभूत किया जाता है जो अजवायन सत्व (Thymol) हैं। साइमोन, टरपेन सत्त्व भी होते हैं।

गुणकर्म–रस कटु तिक्त गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफ शामक पित्तवर्धक दीपन, वातानुलोमन, कृमिघ्न, शूलहर, गर्भाशयोत्तेजक।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः मुख–गल–दंतरोग, शैत्य, प्रतिश्याय, श्वास, कास **आभ्यन्तर**–आध्मान

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शूल, गुल्म, छर्दि, अरोचक, कृमि विशेषतः (हुक-वर्म) विसूचिका, जलोदर, कास, श्वास, कुक्कुर-कास, आमवात, कष्टार्त्तव, सूतिकारोग।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल (बीज) **मात्रा** चूर्ण १-४ ग्राम सत्त्व ३२-१२५ मि० ग्रा० अर्क २०-४० ग्राम, यवानीषाड़व, अर्क-चूर्ण सत्त्व।

विशेष-दंतशूल, कृमिदन्त, में कोष्ण जल में सत्त्व डाल कर गंडूष, शीतांग में बीज चूर्ण अव-घर्षण। त्वग्रोग एवं वृश्चिकदंश में लेप। आध्मान, उदरशूल में उदर पर लेप। कष्टार्त्तव अल्पार्त्तव में गुड़ के साथ क्वाथ प्रयोग। अहिफेन जन्य विषाक्तावस्था में उत्तम प्रतिविष द्रव्य है।

हिङ्गु

द्रव्यनाम–हिन्दी : हींग।

लेटिन : Ferula narthex.

संस्कृत : हिंगु, जतुक, वाह्लीक, रामठ, जंतु-नाशन, सहस्रवेधि, उग्रगन्ध, शूलनाशक।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा०) कटुकस्कंध दीपनीय, संज्ञास्थापन (च०)

उत्पत्ति स्थान–पंजाब, कश्मीर में वृक्ष लगाये जाते हैं, इसका आयात ईरान, अफगानिस्तान आदि शों से होता है।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु छोटा वृक्ष १.५-३ मी०, पत्र खंडित मृदु, रोमश दीर्घ (०.३ मी०) पुष्प शाखाग्र गुच्छों में पीत छत्राकार फल अण्डाकृति, काण्ड से स्रवित निर्यास को हिंगु कहते हैं। पुष्प काल मार्च फल जून।

रासायनिक संगठन–रसोन में पाया जाने वाला उड़नशील तैल ६-१७% राल ४०-६५% गोंद २५% फेरलिक अम्ल होता है।

गुण कर्म–रस कटु तिक्त, गुण, सर तीक्ष्ण, स्निग्ध, लघु वि० कटु वी० उष्ण वातकफशामक पित्तवर्धक, दीपन, शूलहर अनुलोमन, वेदनास्थापन

आमयिक प्रयोग–बाह्यः शोथ (वेदनायुक्त) आनाह, उदरशूल में लेप, कृमि में बस्ति आभ्यन्तर आध्मान, उदरशूल, कृमि, अग्निमांद्य, कास, श्वास, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कृच्छार्त्तव, आक्षेपक, वातव्याधि, विषमज्वर की मुख्य औषधि है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–निर्यास मात्रा ०.१-०.५ ग्राम, हिंग्वष्टक चूर्ण, हिंग्वादि वटी, हिंगुकर्पूर, रजः प्रवर्त्तनी वटी।

विशेष–वृक्ष की आयु ४-५ वर्ष होने पर विशेष विधि से काण्ड छेदन कर हिंगु प्राप्ति। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा** शुद्ध हिंगु रसोनसदृश तीव्रगंधि, शुभ्रवर्ण, कटु, जल के साथ घोटने पर दूधिया घोल, थोड़े से हींग के घोल को गंधकाम्ल में गरम करने पर रक्त धूसर घोल हो जाता है। हींग के एक छोटे टुकड़े को जलाने पर स्वच्छ ज्वाला के साथ पूरा जल जाता है।

गर्जर

द्रव्यनाम–हिन्दी : गाजर।

लेटिन : Daucas Carota.

संस्कृत : गर्जर, गृंजन, गाजर, नारंगवर्णक।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र खेती की जाती है

वानस्पतिक परिचय–द्वि वर्षायु ०.६-१.३ मी० क्षुप, मूल गोपुच्छाकार भूरे, रक्त, कृष्ण वर्ण पत्र सोयासदृश किन्तु सघन, स्थूल, विस्तृत रोमश पुष्प श्वेत, छत्राकार, गुच्छों में फल सौंफ के सदृश पुष्प फल काल वसंत।

रासायनिक संगठन–मूल में Carotin शर्करा स्टार्च, पेक्टिन, अलब्युमिन, लवण, Cineol सदृश द्रव्य, लौह प्रचुरमात्रा में विटामिन A. B. एवं B. के विभिन्न प्रकार तथा एसकोर्बिक अम्ल होते हैं

गुण कर्म–रस मधुर तिक्त गुण स्निग्ध, लघु, वी० शीत वि० मधुर त्रिदोषशामक।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः अग्निदग्ध व्रण (पत्र) शोथ में (बीज) लेप आभ्यन्तर ग्रहणी, रक्तार्श, रक्तातिसार, रक्तपित्त, रक्तविकार, हृद्दौर्बल्य क्षय मूत्रदाह-कृच्छ्र, कार्श्य, दौर्बल्य में मूल प्रयोग। कृच्छार्त्तव कष्ट प्रसव में (बीज प्रयोग)।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-मूल, बीज मात्रा स्व-रस २०-४० ग्राम बीज चूर्ण ३-६ ग्राम।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विशेष–दैनिक चिकित्सा में गर्जर रक्त पित्त, रक्तविकार, रक्तार्श, मूत्रदाहादि में शीत होने से प्रयुक्त होती है। किन्तु निघंटुकारों द्वारा उष्ण वीर्य एवं तीक्ष्ण गुण का उल्लेख विचारणीय है। गाजर में विविध पोषक तत्त्व होने से पोषणाभाव जन्य विकारों की मुख्य औषधि है।

भृङ्गराज कुल
Compositae Fam.

भृङ्गराज

द्रव्यनाम–हिन्दी : श्वेत भांगरा, भंगरैया।

लेटिन : Eclipta alba.

संस्कृत : भृङ्गराज, मार्कव, केशराज, केशरंजन, भृङ्गरज।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः बंगाल; आसाम कर्नाटक, तमिलनाडु आदि प्रान्तों में जलाशयों के पास उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–छोटा क्षुप प्रायः प्रसरी या सरल स्थित काण्ड, शाखाएँ श्वेत रूक्ष रोम से आवृत **पत्र** प्रायः अवृन्त आयताकार, रोमश रूक्ष, दंतुर; **पुष्प** एकाकी या पत्रकोणोद्भूत युग्म पीतवर्ण मुण्डकाकृति श्वेतवर्ण **बीज** छोटे, वक्राकृति (कालीजीरीसदृश) **पुष्प काल** वर्षा **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–श्वेत भृङ्गराज में अधिक मात्रा में राल, एक्लिप्टिन, निकोटीन क्षार होते हैं

गुण कर्म–रस कटु तिक्त गुण लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक, शोथहर, व्रणशोधन, केश्यरंजन, रक्तशोधक, यकृदुत्तेजक पित्तस्रंसन; वेदनास्थापन, रसायन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : खालित्य, पालित्य में स्वरस सिद्ध तैलाभ्यंग, त्वग्रोग, कुष्ठ व्रण शोथ पर पत्र लेप **आभ्यन्तर** शिरःशूल, भ्रम, यकृत्प्लीहावृद्धि, कामला, कृमि, रक्तरोग, पाण्डु, ज्वर, दौर्बल्य।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, पंचांग मात्रा स्वरस ५-१० ग्राम। भृङ्गराज तैल, चूर्ण षड्बिन्दु तैल।

विशेष–एक जाति पीत भृंगराज (Wedelia Calendulacea) होती है। नील पुष्प जाति बहुत कम प्राप्त होती है। **संग्रह–संरक्षण** पुष्पित, फलित होने पर पंचांग को छाया शुष्क करके संग्रह करना चाहिए।

आकारकरभ

द्रव्यनाम–हिन्दी : अकलकरा, अकरकरा

लेटिन : Anacyclus Pyrethrum.

संस्कृत : आकारकरभ, आकल्लक, अकल्लक, अरकरभ।

उत्पत्ति स्थान–देश में कश्मीर, नीलगिरि, कुमाऊं, आसाम, बंगाल में खेती होती है एवं उद्यानों में लगाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **क्षुप**; वर्षाऋतु में क्षुप निकलने प्रारम्भ होते हैं। काण्ड दूरवर्त्ती अतिरोमश **पत्र** छोटे रोमश अण्डाकार आगे से क्रमशः तीक्ष्ण २० से ४० मि० मी० दीर्घ **पुष्प** शाखाग्र हरित, पीत मुंडकाकार, छत्राकार गंधयुक्त। मूल ७५-१०० मि० मी० धूसर तर्क्वाकृति खर होती है। **पुष्पकाल** ग्रीष्म

रासायनिक संगठन–मूल में एक उड़नशील तैल तथा पाइरेथ्रीन (Pyrethrine) क्षार तत्त्व, यह क्रिया की दृष्टि से Piperine सत्त्व से साधर्म्यता रखता है।

गुण कर्म–रस-कटु गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक, पित्तवर्द्धक, वेदना स्थापन, नाडीबल्य।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-दंतकृमि-शूल में गंडूष विद्रधि, शोथ में लेप वातव्याधि में तैल मिलाकर अभ्यंग **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, अरोचक, कफजकास, हृद्दौर्बल्य, वातव्याधि, ध्वजभंग।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल **मात्रा** चूर्ण ०.५ १ ग्राम आकारकरभादि चूर्ण, योगराज गुग्गुलु।

विशेष–उड़नशील तैल एवं क्षार की विभिन्न संस्थानों पर उत्तेजक किया। अधिक प्रयोग से आमाशय क्षोभ, शोथ, रक्तपित्त, संज्ञाशून्यता **निवारण** दुग्ध द्राक्षा पित्तशामक द्रव्य **मिलावट** Pyrethrum जाति के पौधों की जड़ों को मिलाकर बेचा जाता है। **शुद्धद्रव्य प०** मूल के टुकड़े ७५-१०० मि० मी० दीर्घ, ८-१२ मि० मी० स्थूल, जो रम्भाकार, भूरे वर्ण के, झुर्रीदार, टूटे हुए तल की रचना चक्राकार, प्रायः मज्जा शून्य; तोड़ने पर सरलता से टूटती है मध्य में श्वेत पीत व श्याव धूसर वर्ण ऊपर की ओर। मुख में चर्वण करने पर लालास्राव, दाहानुभूति होती है।

कुष्ठ

द्रव्यनाम–हिन्दी : कूठ, कूट, कुष्ठ

लेटिन : Saussurea Lappa.

संस्कृत : कुष्ठ, वाप्य, परिवाप्य, उत्पल. काश्मीरज, अगद, पाकल।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा०) लेखनीय, शुक्रशोधन, आस्थापनोपग (च०) एलादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–काश्मीर में ८-१३ हजार फीट ऊंचाई तक झेलम चिनाव नदियों के समीपवर्त्ती क्षेत्रों में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–दृढ़ क्षुप बहुवर्षायु कांड स्वावलम्बी १-१.५ मी०; पत्र खंडित त्रिकोणाकार दंतुर, बड़े (०.६-१ मी०) दीर्घपत्रवृंत, **पुष्प** गहरे नीले बैंगनी, गेंदासदृश **फल** छोटे अस्फोटी (Achene) **बीज** छोटे चपटे होते हैं। **पुष्प फल काल** शरद्।

रासायनिक संगठन–मूल में उड़नशील तैल १.५-२.५% ग्लुकोसाइड, सास्सुरीन क्षार ०.०५% राल ६% शर्करा, टैनिन, स्थिर तैल, पोटाशियम नाइट्रेट होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त कटु मधुर गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक, दीपन, वेदनाप्रशमन, कफोत्सारि, रसायन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–शिरः शूल, संधिशोथ त्वग् रोगों में लेप **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, अतिसार, विसूचिका, शूल, पार्श्वशूल कुक्कुरकास, श्वास (तमकश्वास) हिक्का, वातव्याधि. आक्षेप, शुक्रदोष रजोरोध में उपयोगी है।

प्रयोज्य, अंग कल्पनाएं–मूल **मात्रा** चूर्ण ०.३–१.५ ग्राम। कुष्ठादि तैल, क्वाथ, चूर्ण।

विशेष–मूल दृढ़ रक्ताभ बादामी ३"-६" लम्बे १"-१.५" स्थूल, छोटे २ उभार युक्त, ३ पृष्ठीय, अनुलम्ब रेखाकार, तीव्रगंधि। अधिक स्थूल टुकड़े सुषिर, आसानी से भंगुरशील, टूटा हुआ भाग गोंद युक्त, श्वेत धूसर **मिलावट** (क) मीठा कुष्ठ (ख) Salvia lanata–तुलसी कुल (ग) Costus speciosus की मूलों को मिलाया जाता है। तिक्त, मधुर २ जाति। मधुर कुष्ठ अन्य पौधों की मूल है, वस्तुतः कुष्ठ केवल तिक्त होता है व्यापारी मधुर कूठ को आसली रूप में बेचते हैं।

अनुसंधान कार्य–कुष्ठ मूल तैल के Lactone के कुछ अंश में उद्वेष्टनरोधि जिसका प्रसारी एवं एवं रक्तचाप न्यून करने का गुण पाया गया है, इसमें कफोत्सारि गुण प्राप्त नहीं हुआ।

मुण्डी

द्रव्यनाम–हिन्दी : गोरखमुंडी।

लेटिन : Sphaeranthus indicus.

संस्कृत : मुंडी, श्रवणशीर्षिका, तपोधना, भिक्षु, मुण्डनिका, श्रावणी।

वर्गीकरण-गुडूच्यादि (भा०) रसायन (च०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः उष्ण प्रान्तों में जलाशयों के समीप ५ हजार फीट ऊंचाई तक उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु क्षुप शरद् ऋतु में उत्पन्न; क्षुप लोमश,प्रसरी गंधयुक्त पत्र अवृंत लट्वाकार, दंतुर, स्थूल, मांसल **पुष्प** सदीर्घ पुष्पवृंत,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पत्राभिमुख, कदम्ब के सदृश मुंडक) रक्त बैंगनी होते हैं। **पुष्पकाल** शीत **फल**-वसंत।

रासायनिक संगठन-इसमें सुगंध उड़नशील तैल तथा स्फिरेन्थाईन नामक तिक्त क्षार होता है।

गुण कर्म-रस-मधुर, तिक्त, कटु गुण-लघु, रूक्ष, **वि०** कटु **वी०** उष्ण त्रिदोषशामक, मूत्र-जनन, शोथहर, रक्तशोधक, हृदय यकृदुत्तेजक, मेध्य

आमयिकप्रयोग-बाह्य-दाह शोथ, ग्रंथि में लेप; नेत्राभिष्यंद में रस आश्चोतन **आभ्यन्तर**- रक्तविकार, रक्तपित्त, हृद्दौर्बल्य, वातरक्त, उपदंश, शोथ, यकृत्प्लीहा वृद्धि, कामला, मूत्रकृच्छ्र, मेह, ज्वर दौर्बल्य में प्रयुक्त होती है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-पंचांग **मात्रा** क्वाथ ५०-१०० ग्राम, स्वरस ५-२० ग्राम, गोरखमुंडी, अर्क, गोरखमुंडी शार्कर।

विशेष-इसकी एक बड़ी जाति (S. Africans) बंगाल, आसाम में उत्पन्न। क्षुप बड़ा, पत्र बड़े पुष्प मुण्डक बड़े कदम्ब पुष्प सदृश अतः भूकदम्बिका नाम है। नेत्राभिष्यंद, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ शोथादि रोगों की प्रमुख औषधि है।

सहदेवी

द्रव्यनाम-हिन्दी : सहदेई, सहदैया, सदोई

लेटिन : Vernonia cineria.

संस्कृत : सहदेवी, गोवन्दनी, दंडोत्पला, विषमज्वरनाशिनी, विश्वदेवा।

उत्पत्ति स्थान-वर्षाऋतु में ऊषर भूमि में सर्वत्र मिलती है।

वानस्पतिक परिचय-मृदु रोमशः **क्षुप** काण्ड तनु रेखाकार रोमश; शाखाएं श्वेताभ **पत्र** छोटे पत्रवृंत पर मृदु, रोमश अण्डाकार, रेखाकार **पुष्प** मृदु, बैंगनी, मुंडकाकार **बीज** काली जीरी सदृश किन्तु छोटे होते हैं। **पुष्प काल** वर्षा **फल** शीत।

गुण कर्म-रस- कटु गुण- लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक ज्वरघ्न (नियतकालिक) कृमिघ्न, रक्तशोधन।

आमयिक प्रयोग-बाह्य-ज्वर में स्वेद लाने के लिए शिर पर धारण एवं स्वरसपान, थोथ, वेदनायुक्त स्थान पर लेप **आभ्यन्तर** विषम ज्वर, अर्श, कुष्ठ, विस्फोट, त्वग्रोग, मूत्रकृच्छ, अश्मरी, कृमि, रक्तविकारों में लाभप्रद है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं—मूल-पंचांग **मात्रा** क्वाथ ५०-१०० ग्रा०, स्वरस १०-२० ग्राम।

विशेष-प्रस्तुत सहदेवी बला भेद (महाबला) नहीं है। दोनों द्रव्य वानस्पतिक एवं गुण कर्म दृष्टि से भिन्न हैं। जाति २-नील-श्वेत पुष्पा। विषमज्वर, जीर्णज्वर में पंचांग प्रयोग विशेष उपयोगी; रक्तशोधक होने से कुष्ठ, विस्फोट, त्वग्रोग, रक्तविकारों में प्रयुक्त होती है।

अयापान

द्रव्यनाम-हिन्दी : अयापान, अयापानी

लेटिन ; Eupatorium Ayapana.

संस्कृत : विशल्यकर्णी।

उत्पत्ति स्थान-विशेषत : बंगाल।

वानस्पतिक परिचय-गुल्मवत् छोटा **क्षुप** शाखाएं रोमशः सरल, रक्ताभ **पत्र** आयताकार अभिमुख, सुगंधित, मृदु, बड़े, तीक्ष्णाग्र, पत्रवृंत रक्त ३ स्पष्ट सिराएं **पुष्प** बैंगनी, मुण्डकाकृति **फल** पंचकोणीय, एक बीजास्फोटी (Achene)

रासायनिक संगठन-इसमें प्रचुर कषाय द्रव्य, उड़नशील तैल तथा आयापानिन सत्त्व (Ayapanine) होता है।

गुणकर्म-रस-तिक्त कषाय गुण-लघु, रूक्ष, **वि. वी०** उष्ण वातपित्त शामक शोणितास्थापन।

आमयिक प्रयोग -बाह्य-व्रण, रक्तस्राव में लेप **आभ्यन्तर** रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तमूत्रता, सरक्तकफष्ठीवन; रक्तपित्त, रक्तप्रदर, अत्यार्त्तव की विशिष्ट औषधि है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-पंचांग, पत्र **मात्रा** रस २-५ ग्राम, फाण्ट २०-५० ग्राम, चूर्ण २-४ ग्राम

विशेष-प्रबल रक्तस्तम्भक होने से विभिन्न

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

संस्थानों में होने वाले रक्तस्रावी रोगों की अद्वितीय औषधि है। सर्प विष में स्वरस प्रयोग होता है। **शुद्ध द्रव्य प०**–इसके पत्रों में विशेष प्रकार की सुगंधि, चर्वण से मुख सुवासित होता है।

रास्ना

द्रव्यनाम–हिन्दी : रास्ना, वायसुरई

लेटिन : Pluchea lanceolata.

संस्कृत : रास्ना, युक्तरसा, सुवहा, रसना; एलापर्णी, सुरसा, सुगंधा श्रेयसी।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान—उत्तरप्रदेश, बंगाल, विहार, पंजाब आदि प्रान्तों में स्वयं उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु क्षुप १–२ मी० ऊंचा, गुल्माकृति बहुशाखाप्रशाखायुक्त, धूसर सूक्ष्म-रोमश; **पत्र** सनाय के सदृश किंतु बड़े २५-६० मि० मी० दीर्घ, शुष्क होने पर पीत धूसर **पुष्प** शाखाग्र बैंगनी वर्ण, मुंडकाकृति होते हैं। **पुष्प-काल** शरद् **फल** शीत।

गुणकर्म–रस-तिक्त गुण-गुरु **वि०** कटु **वी०** उष्ण, वातकफघ्न, शोथहर, आमपाचन, रक्तशोधक, वेदनाप्रशमन।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर**–आमवात, संधिवात, पक्षाघात, अर्दित, गृध्रसी, विश्वाची आदि वातव्याधि, शोथ, श्वास, कास, गुल्म, उदररोग, वातरक्त, वातशूल, ज्वर, विष विकारों में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-मूल, पत्र, पंचांग **मात्रा** क्वाथ–४०–८० ग्राम, चूर्ण ३-६ ग्राम रास्नासप्तक क्वाथ, महारास्नादि क्वाथ, रास्नागुग्गुलु।

विशेष–संदिग्ध द्रव्य है। P.lanceolata का प्रयोग रास्ना के रूप में अधिक होता है। इसके अतिरिक्त (क) Inula racemosa (ख) Vanda roxburghii (ग) Tylohora asthmaitca (घ) Alpinia Galanga (ङ) Aristolochia Indica आदि अनेक द्रव्यों का प्रयोग होता है।

अनुसंधान कार्य– इसके शुष्क पंचांग काण्ड के ९०% मद्यसार के जल विलेय सत्त्व का चूहों में कृत्रिम विधि से शोथ उत्पन्न कर, प्रयोग करने पर अनेक शोथहर द्रव्यों की अपेक्षा उत्तम शोथहर पाया गया है। किन्तु बला की अपेक्षा न्यून शोथहर गुण मिला है।

सेन्टोनीन

द्रव्यनाम–हिन्दी : सेन्टोनीन

लेटिन : Artemisia cina Berg.

उत्पत्ति स्थान–तुर्की, अफ्रगानिस्तान, फारस तथा कश्मीर में अन्य प्रजातियों की खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–छोटे २ **गुल्मक**; पुष्प मुंडक आयताकार, अण्डाकार, १ १.५ मि० मी० व्यासयुक्त। इन मुंडकों को विकसित होने के पूर्व संग्रहित किया जाता है।

पुष्प काल–अगस्त, सितम्बर।

रासायनिक संगठन–सेन्टोनीन रंगहीन, चमकदार, श्वेत मणिभीय चूर्ण। सेन्टोनिका में २-३.५% सेन्टोनीन होता है।

गुण कर्म–रस–तिक्त गुण–लघु, रूक्ष, **वि०** कटु **वी०** उष्ण कफशामक, कृमिघ्न।

आमयिक प्रयोग–कृमि रोग विशेषतः गण्डूपद एवं सूत्रकृमि की अव्यर्थ औषध है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पुष्पमुण्डक से प्राप्त सत्त्व **मात्रा** ६२–१८७ मि० ग्राम।

विशेष–इसकी १–२ जातियाँ कश्मीर में उत्पन्न होती है। इसका प्रयोग रात्रि में खाली पेट पूर्व में रेचन कर बाद में इसके साथ केलोमल का प्रयोग एकान्तर से ३ दिन तक होता है।

अरण्यजीरक

द्रव्यनाम–हिन्दी : कालीजीरी, करजीरा

लेटिन : Vernonia anthelmintica.

संस्कृत : अरण्यजीरक तिक्तजीरक, कटुजीरक, वनजीरक, बृहत्पाली, सोमराजी।

उत्पत्ति स्थान–प्राय : सर्वत्र शुष्क एवं ऊपर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भूमि में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय-वर्षायु क्षुप ०.६–१.५ मी०; **काण्ड** रोमश, गोल **पत्र** शल्याकृति, दंतुरित, नोंकदार ७५–१५० मि० मी० दीर्घ; **पुष्प** बैंगनी' सूर्यमुखी सदृश स्तबक **बीज** कृष्ण, धूसर, दीर्घ बेलनाकार पृष्ठ भाग पर १० उन्नत रेखायुक्त, तीव्र-गंधि, **पुष्प काल** वर्षा, **फल** वसंत।

रासायनिक संगठन-बीजों में हरित वर्ण पिच्छिल तैल १०% उड़नशील तैल ०.०२%; एक Vernonine नामक क्रियाशील तिक्त सत्त्व १% होता है।

गुण कर्म–रस तिक्त कटु गुण तीक्ष्ण, रूक्ष **वी०** उष्ण **वि०** कटु वातकफशामक अनुलोमन, रक्त-शोधक, कृमिघ्न, स्तन्यशोधन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–श्वित्र, कण्ठमाला, कर्णमूल शोथ, त्वग्रोग, वेदनायुक्त शोथविकार, बाह्यकृमि में बीज लेप **आभ्यन्तर**–कृमि, अर्श, आध्मान, शूल, कामला, रक्तविकार, कुष्ठ, श्वित्र, त्वग्रोग, स्तन्यदोष, जीर्णज्वर, जाङ्गमविष।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज (फल) **मात्रा** १ १.५ ग्राम कृमि में १० ग्राम।

विशेष–अन्त्रस्थ कृमियों पर इसकी क्रिया शीघ्र एवं विश्वसनीय। इसके प्रयोगोपरान्त मृत कृमियों को बाहर निकालने के लिए विरेचन अपेक्षित है **शुद्ध द्र० प०**-फल ५ मि०मी०, बेलनाकार, आधार की ओर संकुचित, शीर्ष पर धूसर, बारीक शल्क-पत्र, क्वचित् श्वेतरोमयुक्त होते हैं।

कीटमारी यवानी

नाम-हिन्दी : किरमाला, किरमानी अजवाइन

लेटिन : Artemisia Maritima.

संस्कृत : चौहार, कीटमारी यवानी

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमोत्तर हिमालय में कश्मीर से कुमाऊं तक ७–११ हजार फीट तक पश्चिमोत्तर प्रदेश में प्रायः सर्वत्र होती है।

वानस्पतिक परिचय–दमनक सदृश **क्षुप**; उग्र-गंधि; श्वेताभशाखायुक्त, मूल से ही शाखोद्भव; **पत्र** एकान्तर, सघन तूलमय श्वेतरोमश **पत्रक** छोटे २, खंडित, बहुसंख्यक; **पुष्प** स्तबक पीत, अण्डाकार **बीज**–छोटे कृष्णाभ होते हैं।

रासायनिक संगठन पंचांग में कर्पूर सदृश एक उड़नशील तैल; पुष्पस्तबकों से १.७५% Santonin क्रियाशील सत्त्व; पचांग भस्म में सुधा एवं यवक्षार होता है।

गुण कर्म–रस तिक्त कटु गुण तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु, **वी०** उष्ण, **वि०** कटु वातकफशामक, कृमिघ्न आक्षेपहर, मूत्रजनन, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः खालित्य, संधिवात आमवात शोथ वेदनायुक्त विकारों में लेप, तैला-भ्यङ्ग **आभ्यन्तर** कृमि (गण्डूपद, अंशतः सूत्र कृमि) आनाह, अपतन्त्रक, आक्षेपप्रधान रोग, श्वास, मूत्राघात, शीतज्वर, मेदोरोग, रजोरोध।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग; सत्त्व **मात्रा** चूर्ण ३–५ ग्राम सत्त्व ६२–१८५ मिली ग्राम।

विशेष–फारस के किरमान नामक प्रदेश में प्रचुर उत्पन्न। इसकी अनेक जातियां होती हैं। गण्डूपद कृमि में रात्रि को निरन्नोदर में प्रयोग कर प्रातः रेचन प्रयोग अपेक्षित है। **शुद्ध द्रव्य प०** कर्पूर सदृश उग्र मधुर सुगंधि, स्वाद में तिक्त। १ ग्राम शुष्क चूर्ण १० मि० ली० मद्यसार (९०%) में उबालकर छानकर थोड़ा पोटा० हाइड्राक्साइड मिश्रण कर गरम करने से सान्द्र रक्त विलयन होता है।

दमनक

द्रव्य नाम–हिन्दी : दौना, दवना।

लेटिन : Artemisia Sieversiana.

संस्कृत : दमनक, मुनिद्रुम, तपोधन, गंधोत्कट, ब्रह्मजट, कलपत्रक, पुष्पचामर।

वर्गीकरण–पुष्पवर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमी, हिमालय खासिया (आसाम) आबू (राजस्थान) के पर्वतीय क्षेत्र तथा उद्यानों में लगाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय–गुल्माकृति ०.३-१ मी० श्वेतरोमश **क्षुप**, पत्र शाखायें विरल **पत्र** तीव्रगंधि,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अजमोदा सदृश, खंडित, निम्न पृष्ठ रोमश पाण्डुर **पुष्प** पीतधूसर चामर आकृतियुक्त मंजरी में।

रासायनिक संगठन-हरिताभ वर्ण सुगन्धि उड़नशील तैल, एक तिक्त सत्त्व, पंचांग में यवक्षार प्रभूतमात्रा में होता है।

गुण कर्म-रस तिक्त कषाय गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु **वी०** उष्ण **वि०** कटु वातकफशामक पित्तसारक, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, मूत्रल, गर्भाशयोत्तेजक।

आमयिक प्रयोग आभ्यन्तर-अग्निमान्द्य, आमदोष, उदरशूल, आध्मान, पाण्डु, कामला, यकृद्विकार, रक्तविकार, कुष्ठ, कंडू, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, कृच्छ्रार्त्तव, ज्वर में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-पत्र, पुष्प, बीज, पंचांग **मात्रा** चूर्ण १-२ ग्राम क्वाथ २०-५० ग्राम, स्वरस ५-१० ग्राम।

विशेष ज्वर में ज्वरघ्न क्रिया (आमपाचक, स्रोतोरोधदूरकर, मल-मूत्र रेचन, स्वेदजनक होने से) इसकी आमाशयांत्र, यकृत्, वृक्क, गर्भाशय पर उत्तंजक क्रिया होती है।

क्षवक

द्रव्यनाम—हिन्दी : नकछिकनी, छिकनी।

लेटिन : Centipeda Orbicularis.

संस्कृत : क्षवक, क्षवकृत्, तीक्ष्णा, घ्राणदुःखदा, छिक्किका।

वर्गीकरण गुडूच्यादि (भा० प्र०) कटुस्कंध, शिरोविरेचनोपग (च०)

उत्पत्ति स्थान-प्रायः सर्वत्र (विशेषतया बंगाल) जलाशयों के समीपर्त्ती स्थान।

वानस्पतिक परिचय-शीतकालोद्भव, वर्षायु छत्राकार **क्षुप**, रक्ताभ **स्तम्भ** बहुशाखी प्रसरी **पत्र** अवृंत, रोमश, छोटे, दंतुरित, अभिप्रासवत् ६-१३ मि० मी०, **पुष्प** कक्षीय छोटे-छोटे पीत श्वेताभ, मुण्डक **फल** छोटे रोमश **बीज** वनतुलसी सदृश **पुष्प फल काल** वसंत।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उड़न शील तैल तिक्त सत्त्व Myriogynin अत्यल्प सेपोनोन तथा ग्लुकोसाइड होते हैं।

गुण कर्म—रस-कटु, गुण—तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु **वी०** उष्ण **वि०** कटु वातकफशामक पित्तवर्धक।

आमयिक प्रयोग—**बाह्य**-शिरःशूल, अपस्मार, प्रतिश्याय, अर्धावभेदक, कुष्ठ, त्वग्रोग, दंतशूल **आभ्यन्तर**—अपस्मार, योपापस्मार, नाड़ीदौर्बल्य, पक्षाघात, कृमि, गुल्म, प्लीहावृद्धि, प्रतिश्याय, रक्तविकार, रजोरोध, क्लैब्य।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं—पत्र बीज पंचांग **मात्रा** स्वरस ५-१० ग्राम चूर्ण १-३ ग्राम।

विशेष—शिरःशूल प्रतिश्याय में स्वरस या चूर्ण नस्य, त्वग्रोग, दंतशूल में लेप। नाड़ी उत्तेजक होने से अपस्मार पक्षाघात में प्रयोग, आन्त्रस्थ कृमि में बीज विशेष लाभप्रद है।

कासनी

द्रव्यनाम—हिन्दी : कासनी।

लेटिन : Cichorium intybus.

उत्पत्ति स्थान—पश्चिमोत्तर भारत में ६ हजार फीट तक, कश्मीर-कुमाऊं के पर्वत्तीय क्षेत्र तथा पंजाब में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय—मृदुशाखी १-२ मी० **क्षुप**; **मूल** गोपुच्छाकृति बाहर से धूसर, भीतर श्वेत **काण्ड** रेखाकार **पत्र** आयताकार, खंडित, खर ७५-१५० मि० मी० दीर्घ **पुष्प** चमकीले, नीलवर्ण, **बीज** हल्के, छोटे, श्वेतधूसर, स्निग्ध, प्रायः पंचरेखायुक्त।

रासायनिक संगठन—बीजों में एक मृदु तैल Bland oil, इसकी भस्म में शर्करा, सेल्यु०, वसा, नत्रजनयुक्त पदार्थ, पुष्प में ग्लुको० C. intybin मूल में क्षार, तिक्त सत्त्व ३६% होता है।

गुणकर्म—रस तिक्त, गुण रूक्ष, लघु **वी०** शीत **वि०** कटु पित्तकफहर, शोथहर, वेदनाशमन, मूत्रल शोणितास्थापन।

आमयिक प्रयोग—बाह्य-नेत्राभिष्यंद, दाह, पै०-शोथ, यकृच्छोथ, शिरःशूल, वातरक्त, विसर्प में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पत्र-मूल लेप **आभ्यन्तर** अनिद्रा, तृषा, दाह, यकृद्विकार, कामला, पित्तोदर, हृद्द्रव, रक्त विकार, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, जीर्णज्वर में प्रयुक्त होती है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, मूल, बीज, पंचांग **मात्रा** मूल-बीज चूर्ण ३-५ ग्राम अर्क ५०-१०० ग्रा०

विशेष–ग्राम्य जाति (C. endivia) क्षुप, पत्र छोटे, पुष्प नीलवर्ण बड़े। **शुद्ध द्रव्य परीक्षण** एक बीजास्फोटी फल छोटे श्वेत धूसर अल्प, तिक्त, कृष्णाभ, भारी उत्तम। मूल परिचयान्तर्गत वर्णित, स्वाद में अल्प तिक्त एवं पिच्छिल होती है।

दुग्धफेनी

द्रव्यनाम–हिन्दी : दुधली, दुधल।

लेटिन : Taraxacum officinale.

संस्कृत : दुग्धफेनी, कर्णफूल, पयस्विनी।

उत्पत्ति स्थान हिमालय में सर्वत्र एवं नीलगिरी पर्वत में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–बहु वर्षायु वन गोभी सदृश **क्षुप, पत्र** अवृंत **मूल**-स्तम्भोद्भव, त्रिभुजाकार, खंडित, रेखाकार,दंतुर, अवनत **पुष्प** सदीर्घवृंत, मुण्डकाकार, पीतवर्ण **फल** चर्मफल सरोम कंटक **मूल** तिक्त, रम्भाकार, चिपटाकृति, अनुलम्ब रेखाकार, शुष्क भंगुर, पीताभ धूसर होता है।

रासायनिक संगठन–दूधिया रस में एक स्फटिकीय सत्त्व Taraxacerin तथा एक तिक्त द्रव्य Taramacin, राल, पोटाशि०, केल्शियम, मूल में Inuline २५% पेक्टिन, शर्करा, भस्म होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त कटु गुण-तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष, **वी०** उष्ण **वि०** कटु पित्तकफहर दीपन, यकृद्दुत्तेजक, मूत्रजनन, तिक्त पौष्टिक।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर** कृमि, अग्निमांद्य, विबंध, पाण्डु, कामला, यकृद्विकार, शोथ; रक्तविकार, त्वग्रोग, मूत्रकृच्छ्र, जीर्णज्वर, सामान्य दौर्बल्य में प्रयुक्त होती है।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–मूल **मात्रा** चूर्ण ०.५-१ ग्राम। अर्क एवं क्वाथ २५-५० ग्राम।

विशेष–क्षुप के सर्वाङ्गों से गंधरहित, श्वेत सान्द्र, स्निग्ध स्राव स्रवित होने से दुग्धफेनी। प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख नहीं है, राजनिघंटुकार ने उल्लेख किया है। पित्तसारक यकृद्दुत्तेजक होने से यकृद्विकारों में परमोपयोगी है।

झण्डु

द्रव्यनाम हिन्दी : गेंदा।

लेटिन ; Tagetes Erecta

संस्कृत : झण्डु।

वर्गीकरण–पुष्प वर्ग (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान-सर्वत्र उद्यानों में लगाया जाता है.

वानस्पतिक परिचय–गुल्माकृति रोमश **क्षुप** १-२ मी०; काण्ड शाखाएं तनु, खर, कोणयुक्त **पत्र** एकान्तर, पक्षाकार २५-५० मि० मी० दीर्घ, दंतुरित, **पुष्प** गोल, पीत पुष्पक अनेक **बीज** कृष्ण वर्ण दीर्घ **पुष्प काल**-शीत।

गुण कर्म–रस–तिक्त कषाय गुण–लघु, रूक्ष **वी०** शीत **वि०** कटु पित्तकफशामक रक्तस्कन्दन, मूत्रजनन, शोथहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-स्तन शोथ (पत्रोपनाह) क्षत, व्रण, रक्तार्श, (पत्र पुष्प लेप) दंत शूल में गंडूष **आभ्यन्तर** रक्तार्श, रक्तपित्त, रक्तरोग, रक्तप्रदर, अत्यार्त्तव, सरक्त-मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी में पुष्प प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं-पत्र, पुष्प **मात्रा** स्वरस १०-२० ग्राम कल्क ५-१० ग्राम।

विशेष–पुष्पाकृति वर्ण भेद से अनेक जातियां (क) मखमली (ख) सुरमाई (ग) जाफरी (घ) हजारा (ङ) हबशी। तिक्त, कषाय, शीत होने से केशिकाओं पर संकोचन क्रिया करने से रक्तस्रावी विकारों में मुख्यतः प्रयोग होता है।

कुकुन्दर

द्रव्यनाम–हिन्दी : कुकरोंदा, कुकरवंदा।

लेटिन : Blumea lacera.

संस्कृत : कुकुन्दर, ताम्रचूड़, सूक्ष्मपत्र, मृदुच्छद

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र आर्द्र एवं ऊंची भूमि में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु पूर्ण विकसित क्षुप ०.३–०.६ मी०; ऊपरी मृदुभाग ताम्रवर्ण, रोमश; पत्र कासनी सदृश, खंडित, मांसल,रोमश तीव्रगंधि; नीचे के पत्र दीर्घ **पुष्प** श्वेत पीताभ मुंडकाकार होते हैं। **पुष्प फल काल** शीत।

रासायनिक संगठन–इसमें उड़नशील तैल एवं कर्पूर (पत्री कर्पूर Blumea Camphor) सदृश भौतिक गुणधर्म युक्त सत्त्व होता है।

गुणकर्म-रस-तिक्त कषाय, गुण-तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष **वी०** उष्ण **वि०** कटु पित्तकफहर, शोथहर, रक्तस्कन्दन, कफघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-नेत्राभिष्यन्द (पत्र रस नेत्र बिंदु) शोथ, ग्रंथि, स्तनग्रंथि में कोष्ण पत्र लेप **आभ्यन्तर** कृमि, विसूचिका; यकृद्विकार रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तपित्त, प्रतिश्याय, कास, श्वास, प्रदर, अत्यार्त्तव, ज्वर।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, मूल **मात्रा** पत्र-चूर्ण ०.५–१.५ ग्राम मूल, पत्र स्वरस १० ग्राम।

विशेष-प्रतिश्याय, शिरःशूल में पत्ररस नस्य, अर्श में पत्र मूल लेप। वातज एवं रक्तार्श में अत्युपयोगी है पत्रों का कोष्ण रस लेप या कल्क बंधन तथा पत्र स्वरस घन या चूर्ण का अन्तः प्रयोग किया जाता है। **जाति** B. Balsamifera; B. Densiflora; B. Erientha; क्षुपाकृति (छोटे बड़े) पत्राकृति (दंतुर खंडित) भेद से होती हैं।

कुटज कुल

Apocynaceae Fam.

कुटज

द्रव्य नाम–हिन्दी : कुड़ा, कोरैया।

लेटिन : Holarrhena Antidysenterica

संस्कृत : कुटज, वत्सक, कालिङ्ग, गिरिमल्लिका, इन्द्र, यवफल, पाण्डुरद्रुम, कूटज, वसन्त, शक्रशाखी।

वर्गीकरण-गुडूच्यादि : (भा० प्र०) अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, स्तन्यशोधन, वमन, आस्थापनोपग (च०) आरग्वधादि, ऊर्ध्वभागहर, पिप्पल्यादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र पर्वतीय स्थानों में विशेषतः हिमाचल प्रदेश, बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा आदि प्रान्तों में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष** पाण्डु धूसर त्वगावृत **पत्र** स्निग्ध, आयताकार, अण्डाकार, १५०–३०० मि० मी० दीर्घ ३०-५० मि० मी० चौड़े, १०–१४ युग्म सिराएं; **पुष्प** श्वेतवर्ण सुगंधि जाजीपुष्पसदृश **शिम्बी** २० से० मी० से ४० से० मी० युग्म; वृंत की ओर संयुक्त कृष्ण वर्ण श्वेत चिह्नांकित **बीज** यवसदृश अनेक होते हैं। **पुष्पकाल** वसन्तान्त **फल** वर्षान्त।

रासायनिक संगठन–त्वक् बीजों में क्रोनेसाइन, कुर्चीन, कुर्चिसीन आदि क्षार ४.५%। त्वक् में क्षार अधिक मात्रा में होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त कषाय गुण-लघु रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत पित्तकफशामक, व्रणशोधक, अर्शोघ्न, ज्वरघ्न स्तम्भन, उदररोगहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-शोथ, व्रण में लेप एवं व्रण प्रक्षालन (त्वक् क्वाथ) **आभ्यन्तर** प्रवाहिका अतिसार, ग्रहणी, अर्श, कृमि, त्वग्रोग, मेदोरोग ज्वर (पित्त श्लेष्मिक) में उपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं-बीज कांडत्वक् **मात्रा** क्वाथ (त्वक्) १०-२० ग्रा० चूर्ण (बीज) ०.५ १.५ ग्राम० कुटजारिष्ट; कुटजावलेह।

विशेष–इसके बीजों को इन्द्रयव कहते हैं। इसकी एक जाति राइटिआ टोमेंटोसा कृष्ण जिसकी त्वचा कृष्ण, पुष्प रक्ताभ, बड़े, तीव्रगंधि,स्वाद में त्वक् मधुर। यह जाति दक्षिण में प्राप्त होती है। कुटज का प्रयोग प्रवाहिका (तरुणजीर्ण) अतिसार

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ग्रहणी में दैनिक चिकित्सा में होता है। **मिलावट** उदम्बर एवं भारंगी त्वक् मिश्रित। **द्रव्य परीक्षा** त्वक् बाहर से तनु उन्नतोदर, वृत्ताकार कपिश, श्वेताभ, अन्दर से गहरे भूरे वर्ण की बाहरी तल पर अनुलम्ब झुर्रियां दरारें छोटे २ दाने, भंगुरशील होती है।

करवीर

द्रव्यनाम—हिन्दी : कनैर, करौर, कनैल।

लेटिन : Nerium odorum.

संस्कृत : करवीर, अश्वमारक, दिव्यपुष्प, हरिप्रिय, पीत रक्त प्रसव, लगुड़, क्रूर, विषवीर्यशंका।

वर्गीकरण – गुडूच्यादि (भा०) तिक्त स्कंध, कुष्ठघ्न (च०) लाक्षादि, शिरोविरेचन (सु०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र बाग बगीचों में लगाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय–दृढ़ सर्वदा हरित, सघन, **गुल्म**, शाखाएँ रोमश शाखाओं के दोनों ओर तीन २ **पत्र** अभिमुख, भल्लाकार चर्मवत् तीक्ष्णाग्र **पुष्प** श्वेत, रक्त, गुलाबी चक्र-छत्राकृति **शिम्बी** १२०-१५० मि० मी० तनु, चिपटी होती है। **पुष्पकाल** ग्रीष्म वर्षा **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–मूल में विषाक्त-तिक्त सत्त्व Nēriodorin, Neriodorein एक ग्लुकोसाइड, एक सुगंधित तैल, डिजिटैलिन के सदृश सत्त्व Neriene, मोम, टैनिक एसिड होता है।

गुणकर्म–रस-तिक्त कटु कषाय गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक, कुष्ठघ्न, व्रणशोधन, उदररोगहर, हृद्य

आमयिक प्रयोग–बाह्य-त्वग्रोग व्रण, कुष्ठ, शोथ, उपदंशव्रण, खालित्य में मूलत्वक् लेप **आभ्यन्तर** दूष्योदर, जलोदर, अर्श, हृद्दौर्बल्य. हृदयावसाद, हृच्छोथ, हृच्छूल, विषमज्वर, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ में प्रयोग होता हे।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-मूलत्वक्, पत्र **मात्रा** मूलत्वक् चूर्ण ३१ मि० ग्रा० से १२५ मिलीग्राम। करवीराद्य तैल।

विशेष-एक जाति पीतकरवीर Thevatia Neriifolia सुपरिचित है। नवीनतम शोधों से इसमें स्थित Thevatin ग्लुकोसाइड विभिन्न हृद्रोगों में अद्भुत प्रभावशाली है। अधिक प्रयोग से छर्दि, अतिसार, मूर्छा, हृदय-श्वासावरोध से मृत्यु। **निवारण** वमनकर्म के बाद घृतपान करवाना चाहिए।

सप्तपर्ण

द्रव्यनाम—हिन्दी : सतवन, छितवन।

लेटिन : Alstonia Scholaris.

संस्कृत : सप्तपर्ण,विषमच्छद, शारद, विशालत्वक्, गुच्छपुष्प, शाल्मलिपत्रक. छत्रपर्ण, दलेगंधि

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा०) तिक्त-कषाय स्कंध, कुष्ठघ्न, उदर्दप्रशमन (च०) आरग्वधादि, अधोभागहर (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–बंगाल, बिहार, आसाम, दक्षिण भारत में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय—शीघ्र वृद्धिशील **वृक्ष** १२-१५ मी०; त्वक् भंगुर श्वेत स्थूल, पत्रछेदन करने से दुग्धवत् स्राव; **पत्र** कदम्बसदृश किंतु चौड़े कम ७-७ की संख्या में **पुष्प** छत्रवत् छोटे गुच्छों में श्वेतहरिताभ सुगंधि **शिम्बी** दीर्घ ०.३ मीटर, वक्र, चपटी होती है। **पुष्पकाल** शरद् **फल** शीत।

रासायनिक संगठन-त्वक् में डिटेमिन, एकिटेमिन, एकिटेनिन, एकिसरीन, एकिकाऊचिन, वसाम्ल, राल आदि सत्त्व होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त कषाय गुण-लघु, स्निग्ध **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातश्लेष्मशामक विषम ज्वरघ्न, कृमिहर, रक्तशोधन, सूतिकादोषहर।

आमयिक प्रयोग–**बाह्य**-व्रण, कुष्ठ, शोथ में लेप **आभ्यंतर** विषमज्वर, प्रवाहिका, विबंध, गुल्म, कृमि कास, श्वास, चिरकालीन अतिसार बृहदन्त्र की

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चिरकालज श्लैष्मिक कलाशोथ (Colitis) रक्त-रोग; कुष्ठ, सूतिकादोष, स्तन्याल्पता।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं-त्वक्, दुग्ध **मात्रा**-क्वाथ ५०-१०० ग्राम चूर्ण १-१.५ ग्राम। सप्तच्छदादि क्वाथ तैल-वटी।

विशेष-विषमज्वर में त्वक् का क्वाथ प्रयोग कुनैन की समान लाभप्रद। कुष्ठ, व्रण, उदर्द, त्वग्-रोगों में त्वक् क्वाथ प्रक्षालन, चूर्णाविधूलन एवं पान प्रयोग किया जाता है। प्रसूतास्त्रियों में त्वक्क्वाथ प्रयोग व्याधि प्रतिषधार्थ एवं बल, अग्नि वृद्धयर्थ होता है। **शुद्ध द्रव्य प०** त्वचा अति स्थूल ३-६ मि० मी०, अवनतोदर या नलिकाकार टुकड़े, बाहर से कृष्णाभ धूसर, अन्तः भाग पीताभधूसर बाह्य भाग स्पंजी, गोल २ श्वेतधूसर वातरन्ध्र चिह्न युक्त होता है।

करमर्द

द्रव्यनाम-हिन्दी : करोंदा, करौंदा।

लेटिन : Carissa Carandus.

संस्कृत : करमर्द, सुषेण, कृष्णपाकफल, क्षीर-फेना, साम्लपुष्प, जातीपुष्प, क्षीरफल कण्टकी, कराम्लक।

वर्गीकरण-फलादि वर्ग (भा०) हृद्य (च०)

उत्पत्ति स्थान-सर्वत्र उद्यान वाटिकाओं में लगाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय-सर्वदा हरित तीक्ष्ण कांटे-दार गुल्माकृति वृक्ष; **पत्र** स्निग्ध, मांसल निम्बुस-दृश किन्तु छोटे **पुष्प** श्वेत, जाती सदृश, सुगंधित **फल** मांसल, स्निग्ध, श्वेतरक्ताभ पक्व होने पर रक्त कृष्ण वर्ण बदर फल सदृश होते हैं। **पुष्पकाल** वसंत **फल** वर्षा

रसायनिक संगठन—फल में एक क्षार तथा सैलिसिलिक एसिड होता है।

गुण कर्म-पक्वफल रस-अम्ल मधुर गुण- स्निग्ध, लघु **वि०** मधुर **वी०** शीत वातपित्तहर, दीपन रोचन, ज्वरघ्न, तृष्णाप्रशमन।

आमयिक प्रयोग-आभ्यंतर अग्निमांद्य, अरोचक, तृष्णा, रक्तपित्त, ज्वर (वातपैत्तिक) त्वग्-रोगों में फल; श्वास, वातजकास में त्वक्प्रयोग होता है,

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-फल त्वक्, पत्र **मात्रा** क्वाथ ५०-१००० ग्राम रस १०-२० ग्राम।

विशेष-इसकी एक छोटी जाति करौंदी (कर-मर्दिका) होती है। इसके गुल्म पर्वत्तीय एवं वन्य स्थानों में होते हैं। फल छोटा होता है।

अनुसंधान कार्य-फल में जल विलेय पीताभ चूर्ण का प्रयोग हृद्य पाया गया है।

सर्पगन्धा

द्रव्यनाम-हिन्दी : सर्पगन्धा।

लेटिन : Rauwolfia Serpentina.

वर्गीकरण-अपराजितादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान-हिमालय की तराई में सतलज से आसाम तक ४ हजार फीट की ऊंचाई तक बिहार, उड़ीसा, बंगाल में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय-बहुवर्षायु क्षुप ०.३-१ मी० **पत्र** प्रत्येक कांडग्रंथि पर ३-३-४-४ के चक्रों में पत्र अण्डाकार, लम्बाग्र स्निग्ध, चमकदार हरित वर्ण, **पुष्प** श्वेत गुलाबी गुच्छों में **फल** अष्ठि, गोल एक या दो युग्मी नीलारुण वर्ण के होते हैं। **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** वर्षा।

रासायनिक संगठन-कुल क्षार तत्त्व १% जिसमें मुख्य कार्यकारी Serposil, Serpentine Rauwolfine आदि सत्त्व, राल, स्टार्च, गोंद, लवण होते हैं।

गुण कर्म-रस-तिक्त गुण-रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक। निद्राकर, वेदनास्थापन ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग-आभ्यन्तर अनिद्रा, उन्माद अपस्मार, उदरशूल, कृमि, रक्तभाराधिक्य की अद्वितीय औषधि है। इसके प्रयोग से सभी लक्षणों का उपशम होता है। तीव्रज्वर, कष्टार्त्तव में भी

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग, कल्पनाएं-मूल **मात्रा** उन्माद में १.५-३ ग्राम रक्तचाप में ०.२-०.५ ग्राम सर्पगंधा चूर्ण, सर्पगंधाघन वटी।

विशेष–मूल-अतितिक्त विशेषगंध युक्त ४" १६ इंच (कभी ५०") स्थूल, गोल नीचे की ओर संकुचित, भंगुर मूलत्वक् पीताभ धूसर होता है। अल्कलायड्स मूल त्वचा में अधिक होते हैं। **विविध जातियां** (क) R. Densiflora (ख) R. Canescence (ग) R. micrantha होती हैं।

कार्पास कुल
Malvaceae Fam.
बला

द्रव्यनाम–हिन्दी : खरैंटी, बरियार।

लेटिन : Sida Cordifolia,

संस्कृत : बला, वाट्या, वाट्यालिका, खरयष्टिका

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०) मधुरस्कंध, बल्य बृंहणीय, प्रजास्थापन (च०) वातसंशमन (सु०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र सर्वदा विशेषतः वर्षाऋतु में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–छोटा स्वावलम्बी ०.५ से १.३ मी० ऊंचा **क्षुप** रोमश बहुशाखी **पत्र** एकान्तर हृदयाकृति-तिर्यगाकार आयताकार, गोल दंतुर रोमश **पुष्प** पीत वर्ण पत्रकोणोद्भूत **फल** मुद्गवत्, पंचकोष्ठीय **बीज** त्रिकोणाकृति, एक पृष्ठ उन्नत दो पृष्ठ नतोदर छोटे भूरे, कृष्ण वर्ण के होते हैं। **पुष्प फल काल** शरद्।

रासायनिक संगठन-पंचांग में क्षाराभ ०.०८५% बीज में अधिक मात्रा, क्षाराभ में एफेड्रीन, राल म्यूसीन, पोटेशियम नाइट्रेट आदि सत्त्व होते हैं।

गुण कर्म–रस-मधुर, गुण पिच्छिल, स्निग्ध, गुरु वि० मधुर वी० शीत वातपित्तशामक कफवर्धक शोथहर, नाडीबल्य, हृद्य, मूत्रजनन, बृंहण।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : नेत्राभिष्यन्द, व्रण में लेप **आभ्यन्तर** उरःक्षत, रक्तपित्त, पक्षाघात, अर्दित वातव्याधि, प्रदर, शुक्रदौर्बल्य, कार्श्य में उपयोगी है

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल, पत्र, बीज **मात्रा** बीज चूर्ण १-४ ग्राम, पत्र मूलस्वरस १०-२० ग्राम, बलादिक्वाथ, तैल, क्षीरबलादितैल।

विशेष-केशिकाओं एवं श्लेष्मलकला, त्वक् क्षत विक्षत, तनु तथा शोथ युक्त होने पर यह संकोची शोथघ्न, संधानकर होने से विभिन्न रक्तस्रावी रोगों की मुख्य औषधि है। वातनाड़ी तंतु पोषक एवं शामक। **जाति** पीत-श्वेत पुष्पा होती है।

अतिबला

द्रव्यनाम- हिन्दी : कंघी, डावी डवल्या, कंगही

लेटिन : Abutilon indicum.

संस्कृत : अतिबला, कंकतिका, ऋष्यप्रोक्ता।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०) मधुरस्कंध, बल्य बृंहणीय (च०) वात संशमन (सु०)

उत्पत्ति स्थान–उष्ण प्रान्तों में उत्पन्न होती है

वानस्पतिक परिचय–**क्षुप** १.२-१.७ मी० **पत्र** एकान्तर हृदयाकार, दंतुर, रोमश, **पुष्प** पीत कटोरीनुमा, गोल **फल** धूसर कृष्ण चक्राकार, कंघी सदृश तथा दंतुरित **बीज** धूसर १५-२०, बला बीज से बड़े होते हैं। **पुष्प फल काल** शरद् शीत।

रासायनिक संगठन–पत्तों में पिच्छिल द्रव्य प्रभूत मात्रा में, सेन्द्रिय अम्ल, पत्तों की भस्म १६% जिसमें क्षारीय सल्फेट, क्लोराइड, मैगनीशीयम, केल्शियम कार्बोनेट होते हैं।

गुण कर्म–रस मधुर, गुण पिच्छिल, स्निग्ध गुरु वि० मधुर वी० शीत वातपित्तशामक।

आमयिक प्रयोग-बाह्य दंतरक्तस्राव, दंतवेष्ट पूयदंत में पत्र क्वाथ गंडूष **आभ्यन्तर** प्रयोग बला के समान विशेषतः पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र रक्तमेह में क्वाथ प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, बीज, मूल, **मात्रा** बीज चूर्ण १-४ ग्राम, पत्रमूलरस १०-२० ग्राम

विशेष–इसकी बड़ी जाति (Abutilon Hirtum) इसका क्षुप बड़ा व क्षुप के विभिन्न हिस्सों पर दीर्घरोम होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

महाबला

द्रव्यनाम–हिन्दी : पीला बरियार।

लेटिन : Sida Rhombifolia.

संस्कृत : महाबला, पीतपुष्पा, सहदेवी, क्षेत्रबला

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र ऊषर भूमि में अधिक उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–**क्षुप** ०.३-१.५ मी० ऊंचा **पत्र** एकान्तर, लट्वाकार या (Rhomboid) विषम चतुर्भुजाकार, दंतुर **पुष्प** पीत बलापुष्पवत् किन्तु कुछ बड़े **फल बीज** बलासदृश होते हैं। **पुष्प फल** वर्षा के बाद आते हैं।

रासायनिक संगठन–पत्रों में पिच्छिल सत्त्व प्रभूत मात्रा में होता है।

गुण कर्म–रस-मधुर, गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत, वातपित्तशामक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य आभ्यन्तर प्रयोग बला के समान हैं। विशेषतः आमवात, शीत ज्वर में मूल क्वाथ प्रयोग, क्षत व्रण पर मूलस्वरस पिचु धारण किया जाता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, मूल, **मात्रा** पत्र-मूलचूर्ण २-४ ग्राम क्वाथ ४०-८० ग्राम।

विशेष–भावप्रकाश निघण्टु में महाबला के पर्याय में सहदेवी पर्याय दिया गया है। कुछेक निघंटुकारों ने दोनों को एक माना है। वस्तुतः दोनों अलग द्रव्य हैं। सहदेवी का वर्णन भृंगराज कुल में दिया गया है।

नागबला

द्रव्य नाम–हिन्दी : गंगेरन, फरीदबूटी।

लेटिन : Sida Veronicaeolia.

संस्कृत : नागबला, भूमिबला।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु दीर्घ वक्र शाखी **क्षुप**, पृथ्वी पर या समीपवर्त्ती झाडियों पर प्रसरण शील **पत्र** लट्वाकार, हृद्वत्, रोमश, दंतुर, लम्बाग्र **पुष्प** पीतवर्ण छोटे होते हैं। **पुष्पकाल** वर्षा शरद्।

गुण कर्म–रस मधुर गुण–स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत, वातपित्तशामक, अन्य कर्म बला सदृश होते हैं।

आमयिक प्रयोग–राजयक्ष्मा, उरःक्षत में प्रयोगार्थ तथा रसायन कर्मार्थ इसका विशेष प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बलाके समान हैं।

विशेष–संदिग्ध द्रव्य है S. Humilis एवं S. Spinosa का भी नागबला के रूप में प्रयोग होता है

पारीष

द्रव्यनाम–हिन्दी : पारसपीपल, गजहुण्ड

लेटिन : Thespesia Populnea.

संस्कृत : पारीष, कपीतन, गर्भदण्ड, कमण्डलु, कपिचूत, पलाश।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–कई प्रान्तों में विशेषतः बंगाल के समुद्र तटवर्त्तीय क्षेत्र तथा कोंकण के सर्वत्तीय भागों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार शीघ्र वृद्धिशील **वृक्ष**, **पत्र** अश्वत्थ सदृश, किंतु छोटे, **पुष्प** घंटाकृति पीताभ मनोरम **फल** गोल किंचित् चतुष्कोणीय ४ कोष्ठीय **बीज** ४ एरण्ड बीज के समान होते हैं। **पुष्प काल** वर्षान्त **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–फल में फोसफरिक एसिड बीज में कृष्णाभ रक्त तैल Huile amere होता है

गुण कर्म–रस कषाय अम्ल मधुर गुण गुरु स्निग्ध, **वि०** कटु **वी०** शीत, वातपित्त शामक तृष्णादाहप्रशमन, वेदनास्थापन, स्तम्भन।

आमयिक प्रयोग-बाह्य : त्वग्रोग, अर्धावभेदक, गलरोग आमवात में फल लेप **आभ्यन्तर** तृषा, दाह, अतिसार, रक्तपित्त, वातरक्त, वातजकास, प्रदर, गर्भस्राव में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–त्वक् फल पत्र क्षीर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मात्रा चूर्ण ३-५ ग्राम, क्वाथ ४०-१०० ग्राम, क्षीर ५-१५ बूंद।

विशेष–अपक्व फल को चीरने पर पीतवर्ण दुग्ध निकलता है। त्वग्‌रोगों में वल्कल क्वाथ से प्रक्षालन कर दुग्ध लेप। वेदनायुक्त शोथ में पत्र कोष्ण प्रलेप उपयोगी है।

शाल्मली

द्रव्य नाम–हिन्दी : सेमर-सेम्हल।

लेटिन : Bomax malabaricum.

संस्कृत : शाल्मली, कंटाढ्या, मोचा, रक्तपुष्प, पिच्छिल, तूलिनी, स्थिरायु।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा०) कषायस्कंध, शोणितास्थापन, पुरीषविरजनीय, वेदनास्थापन (च०) प्रियंग्वादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान—वृक्ष सर्वत्र बाग बगीचों में लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बड़ा **वृक्ष**, काण्डशाखाएं शंक्वाकार कांटेदार, **पत्र** स्निग्ध पाणिवत् विभक्त एक पत्रवृंत पर पत्र ५-७ चक्राकार **पुष्प** रक्त स्निग्ध, सुन्दर, पृथुदली, **फल** लम्बे पंचकोष्ठीय, **बीज** अनेक कार्पाससूत्रावृत स्निग्ध, लट्वाकार कृष्ण वर्ण होते हैं। **पुष्प काल** वसंत **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–मोचरस में कषायाम्ल, गैलिक एसिड, बीजों में स्थिर तैल होता है।

गुण कर्म–त्वक्–रस कषाय मधुर निर्यास–कटु गुण-पिच्छिल, गुरु, **वि०** मधुर **वी०** शीत वातपित्त शामक, व्रणरोपण, स्तम्भन, बृंहण।

आमयिक प्रयोग–वाह्य : न्यच्छ, व्यग, व्रण, दाह, मुखपाक **आभ्यन्तर** अतिसार, प्रवाहिका, रक्तार्श, रक्तपित्त, प्रदर में त्वक् प्रयोग शुक्रदौर्बल्य में निर्यास प्रयोग तथा वातजकास एवं मूत्रकृच्छ्र में पुष्प प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–त्वक् पुष्प निर्यास **मात्रा** त्वक् चूर्ण २-५ ग्राम, स्वरस १०-२० ग्राम निर्यास १-३ ग्राम, पुष्यानुग चूर्ण, शाल्मलीघृत।

विशेष–त्वचा से निर्यास निकलता है इसे 'मोचरस' कहते हैं यह कृष्ण, रक्ताभ, सुषिर, लघु, अश्रुवत् दानों के रूप में भंगुरशील जल में भिगोने पर फूल जाता है। **जाति** कूटशाल्मली-श्वेत शाल्मली Ceiba pentendra. रक्तशाल्मली के स्थान पर प्रयुक्त होती है।

उदीच्य (सुगंधबाला)

द्रव्यनाम–हिन्दी : सुगंधबाला, नेत्रबाला

लेटिन : Pavonia Odorata.

संस्कृत : बाल, ह्रीवेर, उदीच्य, केशनाम, अम्बुनाम, बालक, बर्हिष्ठ।

वर्गीकरण–कर्पूरादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–देश के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–समस्त क्षुप तीक्ष्ण रोयें-दार गंधयुक्त; **पत्र** हृदयाकृति ३–५ भागों में विभक्त दंतुरित **पुष्प** गुलाबी गुच्छों में **फल** अण्डाकार छोटे होते हैं।

रासायनिक संगठन–मूल में पिच्छिल सत्त्व एवं सुगंधित द्रव्य होते हैं।

गुण कर्म–रस तिक्त, कषाय गुण-लघु, रूक्ष **वि०** मधुर **वी०** शीत त्रिदोषशामक, तृष्णा-छर्दिनिग्रहण रक्तपित्तहर, दाहप्रशमन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य दाह, विसर्प, व्रण में लेप **आभ्यन्तर** अरोचक, तृष्णा, छर्दि, अतिसार, रक्तपित्त, विसर्प, हृद्रोग में फाण्टविधि से प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल **मात्रा** चूर्ण ३-४ ग्राम फाण्ट ४०-८० ग्राम। षड्ङ्गोदक।

विशेष–मूल १७५-२०० मि० मी० दीर्घ ६ मि० मी० स्थूल, वक्र, स्निग्ध धूसर, अनेक उपमूल-युक्त सुगंधित होता है। ज्वर जन्य तृषा–अरोचक-छर्दि आदि उपद्रवों में दैनिक चिकित्सा में प्रयुक्त षडङ्गपानीय का यह एक घटक द्रव्य हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लताकस्तूरी

द्रव्यनाम–हिन्दी : कस्तूरीदाना, लताकस्तूरी
लेटिन : Hibiscus Abelmoschus.
संस्कृत : लताकस्तूरी ।

वर्गीकरण–कर्पूरादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–उष्ण प्रान्तों में विशेषतः उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार, तमिलनाडु में उत्पन्न होता है

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु क्षुप; आकृति में भिण्डी के तुल्य ०.३-१ मी०, **पत्र** भिण्डी सदृश **पुष्प** शाखाग्र घण्टाकृति पीत वर्ण **फल** भिण्डी के समान रोमश **बीज** वृक्काकार, काले चपटे । बीजों को मसलने से कस्तूरी सदृश गंध आती है । **पुष्प फल काल** शरद् ।

रासायनिक संगठन–इसमें गोंद, सुगंधित द्रव्य, उड़नशील तैल, राल, मणिभीय सत्त्व, पीतहरिताभ स्थिर तैल, अलब्युमिन होते हैं ।

गुण कर्म–रस–तिक्त मधुर गुण–लघु, तीक्ष्ण वि० कटु वी० शीत पित्तकफशामक, दौर्गन्ध्यहर दीपन, आक्षेपप्रशमन, मूत्रल, वृष्य ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–मुख में धारण करने से रुचिकर, सुगंधकर **आभ्यन्तर** अरोचक, अग्निमान्द्य, हृद्दौर्बल्य, तमकश्वास, मूत्रकृच्छ, पूयमेह, ध्वजभंग, शुक्रदौर्बल्य में उपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–बीज पत्र **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम ।

विशेष–औषधीय तैलों को सुगंधित करने के लिये प्रयुक्त होता है । बीजों को मसलने से कस्तूरी सदृश गंध; मुख्यकार्यकारी तत्त्व सुगंधित तैल है । **शुद्ध** द्र० प० बीज के बाह्य तल पर अनेक बारीक-२ रेखाऐं समानान्तर क्रम से स्थित, बीज में स्निग्ध, सुगधि मज्जा होती है । मुख में रखने पर सुवासित, क्वचित् इसमें बाकुची बीजों की मिलावट होती है ।

जपा (गुड़हल)

द्रव्य नाम–हिन्दी : गुड़हल, ओडहुल
लेटिन : Hibiscus rosa Sinensis.
संस्कृत : जपा, श्रीड्रपुष्प ।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र बाग बगीचों में लगाया जाता है ।

वानस्पतिक परिचय–छोटा क्षुप शाखाऐं अनेक **पत्र** अण्डाकृति हृदयाकार दंतुरित तीक्ष्णाग्र **पुष्प** रक्तवर्ण, घण्टाकृति, बीजकोष गोल होता है । **पुष्पकाल** शरद्-ग्रीष्म ।

गुण कर्म–रस कषाय मधुर गुण स्निग्ध, लघु वि० कटु वी० शीत, पित्तकफशामक, रक्तपित्तहर, ज्वरघ्न, रक्तस्तम्भन, बृंहण ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य खालित्य, पालित्य में पुष्प मर्दन एवं तैल प्रयोग **आभ्यन्तर** ज्वर, रक्तपित्त, रक्तातिसार, अर्श, मेह, शुक्रदौर्बल्य (पुष्प गुलकंद) में प्रयुक्त होता है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पुष्प **मात्रा** स्वरस १०-२० ग्राम । फाण्ट, पानक ।

विशेष–पुष्प वर्ण, आकृति भेद से श्वेत पीत आदि जाति । खालित्य में सिर पर पुष्पमर्दन एवं पुष्प सिद्ध तैलाभ्यंग प्रशस्त है । पैत्तिक विकारों में विशेष उपयोगी है ।

कार्पासी

द्रव्य नाम–हिन्दी : कपास, रूई ।
लेटिन : Gossypium Herbaceum.
संस्कृत : कार्पासी, समुद्रान्ता, तुण्डिकेरी ।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०) बृंहणीय (च०) वातशमन (सु०) ।

उत्पत्ति स्थान–समुद्र तटवर्त्ती प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु तथा पंजाब में खेती की जाती है ।

वानस्पतिक परिचय–१–१.५ मी० वर्षायु बहुशाखी **क्षुप; पत्र** एरण्डसदृश किन्तु छोटे ३–५ भागों में खंडित, हरित, निम्न पृष्ठ रोमश **पुष्प** पत्रकोणोद्भव, पीत रक्त वर्ण, घण्टाकार **फल** अण्डाकार ३–४ कोष्ठीय **बीज** (बिनोले) कृष्ण कठिन, गोल ५–७ कार्पास सूत्रावृत होते हैं । **पुष्प काल** शीत **फल** ग्रीष्म ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संगठन–बीजों में पीताभ तैल १०-२९% में, ग्लिसराइड, स्नेहाम्ल, रंजक द्रव्य, विषाक्त रवेदार द्रव्य Gossypol, मूलत्वक् में अम्ल, राल, सेलिसि० ए० Dihyoroxy benzoic अम्ल Betaine होते हैं।

गुण कर्म–रस–मधुर कषाय गुण–स्निग्ध, लघु **वी०** किंचिदुष्ण **वि०** मधुर वातशामक किंचित्वात-कफ वर्धक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य अग्निदग्ध व्रण, क्षत में बीज लेप, कर्णशूल–स्राव में पत्रस्वरसपूरण; वातव्याधि ग्रंथि, व्रणशोथ में बीजों का कांजी के साथ पोट्टली स्वेद **आभ्यन्तर** मानसिक रोग (हाइ-पोकोन्ड्रियासिस) में पुष्प शर्बत; नाड़ीदौर्ब० अप-स्मार, कामला, यकृद्विकार, दौर्बल्य, स्तन्याल्पता सर्पविष धत्तूर विष, नष्टार्त्तव, प्रदर, प्रसव विकार में बीजों एवं त्वक् का प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल, त्वक् पुष्प फल बीज, तैल **मात्रा** बीज चूर्ण ३–५ ग्राम मूलत्वक् फल–५–१० ग्राम- तैल– १५ से २५ ग्राम।

विशेष–जाति–देव कार्पास (G. Arboareum वनकार्पासी Thespesia Lampas) कृष्णकार्पा-सिका (G. Nigrum); मूलत्वक् गर्भाशय संको-चक, आर्त्तवप्रवर्तक; गर्भाशय पर क्रिया अर्गट सदृश होती है।

खत्मी

द्रव्यनाम–हिन्दी : खत्मी।

लेटिन : Althoea officinalis.

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमी हिमालय कश्मीर में उत्पन्न होता है। इसका आयात होता है

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु रोमश **क्षुप** ०.३–१ मी०, **पत्र** गोल, दंतुर, खर अनुपत्र रेखा-कार **पुष्प** गोल, बड़े, रक्त, पीत, श्वेत वर्ण **फल** सेमवत् **बीज** गोल चपटे कृष्ण होते हैं।

रासायनिक संगठन–मूल में स्थिर तैल पिच्छिल द्रव्य, पिष्टसार ५०% शर्करा, एल्थीन १–२% मणिभीय सत्त्व जो एस्पेरेगिन सदृश होता है।

गुणकर्म–रस–मधुर तिक्त गुण–गुरु, पिच्छिल **वि०** मधुर **वी०** अनुष्ण पित्तकफ शामक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य पार्श्वशूल, व्रणशोथ में बीज पत्र, लेप **आभ्यन्तर** प्रतिश्याय, वातजकास, प्रवाहिका, आंत्रशोथ, मूत्रकृच्छ्र में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज मूल **मात्रा** चूर्ण ३–५ ग्राम, फाण्ट ४०–८० ग्राम।

विशेष–इसके मूल को रेशाखत्मी, पुष्प को गुलखैरु, फल बीज को तुरब्म खत्मी कहते हैं। **द्रव्य प०** मूल वेलनाकार अल्प शंक्वाकार ७५-१५० मि० मी० दीर्घ, अनुलम्ब दिशा में झुर्रियांदार, अन्तर्बहि श्वेत होती है।

कण्टकारी कुल
Solanaceae Fam.

धत्तूर

नाम-हिन्दी : धतूरा, राजधत्तूर, कालाधतूरा

लेटिन : Datura Stramonium.

संस्कृत : धत्तूर, उन्मत्त, कनकाह्वय, घण्टपुष्प, तूरी, विष, भ्रान्त, मदकर, शिवप्रिय, कंटफल।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः मध्यप्रदेश एवं दक्षिण भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **क्षुप** ०.६-१.२ मी० ऊंचा; कांड शाखाएं बैंगनी कृष्ण वर्ण; **पत्र** उग्रगंधि, मृदु, स्निग्ध, अण्डाकार, हृदयाकार, तरं-गायित, **पुष्प**, घंटाकार श्वेत बैंगनी आभायुक्त **फल** गोल ४ कोष्ठीय लघु कंटकाकीर्ण **बीज** वृक्काकार श्यामाभ धूसर होते हैं। **पुष्प काल** वर्षा-शरद् **फल**–शीत।

रासायनिक संगठन–कृष्ण धत्तूर एवं इसकी जाति के पत्रों में डटुरीन क्षार में हायोसाएमिन, हायोसीन ०.२५ से ०.५५%, एट्रोपीन, पिच्छिल सत्त्व। बीज में पत्रवत् तत्त्व किंचित् अधिक मात्रा में होते है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण कर्म–रस तिक्त कषाय कटु मधुर, गुण गुरु, तीक्ष्ण **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक पित्तवर्धक शूलहर, अवसादक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : शोथ, वेदनायुक्त-विकार, अर्श, त्वग्रोग; श्लीपद, खालित्य में पत्र बीज लेप, कर्णशूल-स्राव में स्वरस, तैलपूरण **आभ्यन्तर** अलर्क विष, धनुःर्वात, तमकश्वास के वेगकाल में पत्रधूम्रपान, विसूचिका, कृमि, शूल (उदर, वृक्क, पित्ताशय) विषमज्वर, उपदंश में बीजों का प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज पत्र मूल **मात्रा** पत्र मूल चूर्ण ६२-२५० मि० ग्रा०, बीजचूर्ण ६२-१२५ मि० ग्रा०। घातक मात्रा बीज १-२ ग्रा०। कनकवटी, कनकासव, विषमज्वरांकुश, मृत्युंजयरस

विशेष–जाति कृष्ण (D. Tatula) श्वेत (D. Alba, D. Fastuosa) तथा (D. Metel) होती है। **विषाक्त लक्षण**-मूर्च्छा, भ्रम, गलतालु-शोष, स्वरविकृति, नेत्रकनीनिका विस्तार, तापवृद्धि आक्षेप मृत्यु। **निवारण**–वमन कर्म दधि, निम्बु, दुग्ध नवनीत कार्पास पंचांग एवं आवस्थिक चिकित्सा अपेक्षित है।

पारसीकयवानी

द्रव्यनाम–हिन्दी : खुरासानी अजवायन।

लेटिन : Hyoscyamus niger.

संस्कृत : पारसीकयवानी, मदकारिणी, यावनी तुरुष्का।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमी हिमालय, कश्मीर से कुमाऊं, गढ़वाल आदि स्थानों में खेती की जाती जाती है। इसका आयात फारस से होता है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु क्षुप, काण्ड स्थूल रोमश **पत्र** कृष्णहरित रोमश तरंगायित खंडित, धत्तूरपत्रवत् **पुष्प** क्षुप के ऊर्ध्वभाग में गुच्छों में पीतवर्ण, रक्ताभ दाड़िम सदृश **फल** अंडाकार द्वि कोष्ठीय **बीज** वृक्काकार, कृष्णाभ धूसर, खर होते हैं। **पुष्प फल काल** वर्षा-शरद्।

रासायनिक संगठन–बीजों में हायोसाइमिन, तैल २५% भस्म, पत्र में हायोसीन, हायोसाएमिन, एट्रोपीन, कोलीन, तैल, गोंद, पोटेशियम नाइट्रेट होता है।

गुण कर्म–रस–तिक्त, कटु कषाय गुण–गुरु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक पित्तवर्धक कृमिघ्न, शूलहर (मांसपेशी एवं नाड़ीजन्य) अवसादक, निद्राकर, शोणितस्तम्भन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः शोथ, अर्श, स्तनशोथ, अण्डकोषशोथ, संधिशूल में लेप **आभ्यन्तर** कृमि आध्मान, गुल्म, उदरशूल, अनिद्रा, उन्माद, प्रलाप, श्वास, कास, आन्तरिक रक्तस्रावी रोग, वृक्काश्मरीशूल, पित्ताश्मरीशूल, कृच्छ्रार्त्तव, शीघ्रपतन में अत्युपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र बीज, पंचांग **मात्रा** चूर्ण २५०-५०० मि० ग्राम, पाराशीयादि चूर्ण।

विशेष–जातियां-क H Reticulata ख H. Muticus होती हैं। **विषाक्तलक्षण**–तालुकंठशोष भ्रम, उन्माद, प्रलाप, सन्यास, **निवारण**–आमाशय प्रक्षालन, दुग्ध, मधु, हृदयोत्तेजक द्रव्य, वातशामक द्रव्य। **द्रव्य परी०**–धूसर भूरे वर्ण के बीज, चपटे, वृक्काकार बीजावरण बारीक जालकवत्–रचना बीजगर्भ9 आकृति सदृश **मिलावट** हुलहुल के बीज मिश्रित किये जाते हैं। **परीक्षण**–खुरासानी अजवायन के बीज ऊपर से जालकवत रचनायुक्त, जबकि हुल२ के बीज धारीदार, केन्द्र से बाहर की ओर रश्मिवत् होते हैं।

बृहती

द्रव्यनाम–हिन्दी : बड़ी कटेरी, बनभंटा।

लेटिन : Solanum Indicum.

संस्कृत : बृहती, कुली, वार्ताकी, कंटालु, कान्ता, वनवृंताकी, कटुफला, राष्ट्रिका, क्षुद्रभण्टाकी, दुष्प्रधर्षिणी।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०) शोथहर, अंगमर्द

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रश० कण्ठ्य हिक्कानि० (च०) बृहत्यादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान-देश के प्रायः सभी प्रान्तों की ऊषर भूमि एवं समशीतोष्ण जलवायु में उत्पन्न होती है

वानस्पतिक परिचय–बैंगन सदृश **क्षुप** कंटकित काण्ड दृढ़, **पत्र** बैंगन के समान पक्षाकार खंडित, मृदु **पुष्प** बैंगनी, बैंगनपुष्पाकृति, गुच्छों में **फल** पीत, गोल, मांसल **बीज** अनेक बैंगनसदृश होते हैं **पुष्प फल काल** शरद् ।

रासायनिक संगठन–मूल, फल में सोलेनीन (Solanine) सोलेनिडिन (Solanidine) २ क्षार वसाम्ल, मोम होता है ।

गुण कर्म–रस तिक्त कटु गुण तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु, **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक, पित्तस्रंसन, शोथहर, त्वग्रोगहर, रक्तशोधक, कफोत्सारि,

आमयिक प्रयोग–बाह्य-शोथ, त्वग्रोग; कंडू, खालित्य में पत्र, बीज लेप, मूर्च्छा में बीज चूर्ण प्रधमन **आभ्यन्तर** कास, श्वास, प्रतिश्याय, छर्दि, अतिसार, कृमि, अश्मरी. मूत्रकृच्छ्र, शोथ, रक्तविकारों में मुख्यतः प्रयोग होते है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल, फल, पत्र, बीज, **मात्रा** चूर्ण १-३ग्राम, क्वाथ ४०-८० ग्राम, दशमूल क्वाथ, अरिष्ट, लघुपंचमूलक्वाथ ।

विशेष-जाति श्वेत बृहती-क्षुप अधिक ऊंचा अल्पकण्टक पुष्प श्वेत होता । शोथ, कास, श्वास प्रतिश्याय में विशेष उपयोगी है ।

कण्टकारी

द्रव्यनाम–हिन्दी : छोटी कटेरी, भूरेंगण

लेटिन : Solanum Xanthocarpum.

संस्कृत : कण्टकारी, निदिग्धिका, दुःस्पर्शा, अनाक्रान्ता, चित्रफला, सर्पतनु, धावनी, भंटाकी, कासघ्नी

वर्गीकरण–गुडू० (भा०) अंगमर्द, शीतप्रशमन शोथ-कासहर, कण्ठ्य, हिक्कानिग्रहण (च०) बृहत्यादि, वरुणादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र बालूमिट्टी प्रधान भूमि एवं उष्ण जलवायु में उत्पन्न होती है ।

वानस्पतिक परिचय–सघन कंटकित भू पर प्रसरण शील **क्षुप** काण्ड वक्र **पत्र** पक्षवत् तरंगायित, खंडित निम्नपृष्ठ रोमश **पुष्प** बैंगनी तश्तरीनुमा पुंकेशर पीतवर्ण **फल** पीत, गोल, मांसल **बीज** अनेक बैंगन सदृश होते हैं। इसकी शाखा, काण्ड, पत्र पुष्प पर तारकाङ्कित रोएं होते हैं । **पुष्प फल काल** ग्रीष्म ।

रासायनिक संगठन–पंचांग में पोटेशियम नाइट्रेट १.६% पो० क्लोराइड, लोहांश सेन्द्रिय अम्ल । फल में सोलेनीन क्षार होता है ।

गुणकर्म–रस तिक्त कटु गुण रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक । शोथहर ज्वरघ्न, कफोत्सारि, मूत्रल ।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः नेत्राभिष्यंद, अर्श, त्वग्रोग, आमवात, ध्वजभंग में बीज-पत्र, फल लेप **आभ्यन्तर** कास, श्वास, तृषा, अग्निमांद्य, जलोदर, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, मेदोरोग, अंगमर्द, ज्वर में प्रयुक्त होती है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-पंचांग **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, क्वाथ ४०-८० ग्राम । कंटकारी क्वाथ क्षार, घृत, तैल, अवलेह, दशमूल ।

विशेष–जाति श्वेतपुष्पा कण्टकारी क्षुप कण्टकारी सदृश किंतु पुष्प शुभ्र श्वेत, बहुत कम प्राप्त होती है । राज० आयु० महाविद्यालय उदयपुर के उद्यान में पर्याप्त क्षुप लगाये गये हैं। **अनुसंधान कार्य** सेन्ट्रल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पटियाला में तमक श्वास में कण्टकारी प्रयोग से उत्साहप्रद परिणाम मिले हैं

काकमाची

द्रव्यनाम–हिन्दी : मकोय, कत्रैयानी ।

लेटिन : Solanum nigrum.

संस्कृत : काकमाची, ध्वांक्षमाची, काकाह्वा, वायसी ।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०) तिक्तस्कन्ध च०

उत्पत्ति स्थान–यह सर्वत्र उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **क्षुप** सघन ०.३-१

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मी०, शाखाएँ चतुष्कोणीय, **पत्र** अखंड, लट्वाकृति आयताकार, तंरगायित, मृदु **पुष्प** छोटे श्वेत **फल** गौल बैंगनी, मांसल, बहुबीजी, अपक्व हरितवर्ण तथा पक्व रक्तवर्ण होते हैं। **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शीतान्त।

रासायनिक संगठन–फल में सोलेनीन क्षार जो सेपोनीन शर्करा, सोलेनिडीन का यौगिक। पंचांग में डल्कामोरिन ग्लुकोसाइड होता है।

गुणकर्म–रस-तिक्त कटु गुण-लघु स्निग्ध **वि०** कटु **वी०** अनुष्ण त्रिदोषशामक, शोथहर, यकृत्प्लीहोदरघ्न, रक्तशोधक, मूत्रल।

आमयिकप्रयोग–बाह्यः शोथ (बाह्य तथा आभ्यन्तर आमाशयांत्र, यकृत्प्लीहा शोथ) में लेप **आभ्यन्तर** शोथ, वातरक्त, हृद्रोग, मूत्राघात, यकृत्प्लीहावृद्धि, छर्दि, अर्श, त्वग्रोग, रक्तविकार जीर्णज्वर में अत्युपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–फल पंचांग **मात्रा** चूर्ण १ ३ ग्राम. स्वरस १०-२० ग्राम, अर्क २०-५० ग्राम, मकोय अर्क।

विशेष-२ जाति बड़ी तथा छोटी मकोय **विषाक्त प्रभाव** अधिक सेवन से छर्दि, तृषा तथा धत्तूर विषसदृश लक्षण होते हैं। **चिकित्सा**–वमन निम्बु, दधि प्रयोग धत्तूरविष सदृश चिकित्सा करनी चाहिए। यकृत्प्लीहा–आमाशयांत्र–वृक्क, मस्तिष्क प्रदाह–शोथ में विशेष उपयोगी है।

सूची (बेलाडोना)

द्रव्यनाम हिन्दी : बेलाडोना, अंगूरशफा।

लेटिन : Atropa Balladonna.

संस्कृत : सूची, प्राणनाशक, द्राक्षाफला, कृष्णफला, करमर्दफला।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के समीपवर्त्ती क्षेत्र कश्मीर शिमला, कुमाऊं, नैनीताल ६-१२ हजार फीट की ऊंचाई पर उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–**क्षुप** १-१.३ मी० **पत्र** अभिमुख (ऊर्ध्वपत्र) एकान्तर (निम्न पत्र) छोटे वृंतयुक्त, अखण्डित ६५-१५० मि० मी० दीर्घ पत्रप्रांत तनु **पुष्प** रक्ताभहरित **फल** करौंदे के समान कृष्ण, चमकीले, मांसल होते हैं। **पुष्प काल**-शरद्

रासायनिक संगठन –मूल, पत्र में एट्रोपीन ०.८१% हायोसाएमिन ०.५०% क्षार होता है।

गुण कर्म––रस–तिक्त कटु गुण–लघु, रूक्ष तीक्ष्ण **वि०** कटु **वी०** उष्ण पित्तवर्धक, वातश्लेष्मशामक। वेदनाशमन, शूलहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-आमवात, गृध्रसी, वेदनायुक्त शोथ में लेप **आभ्यन्तर** लालाप्रसेक, अम्लपित्त, हृच्छूल, हृद्द्रव, कास, श्वास, शूल (आंत्र, वृक्क, बस्ति, पित्ताशय) अतिस्वेद में आशुलाभप्रद है

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–पत्र मूल **मात्रा** चूर्ण ३१-६३ मि० ग्राम, टिंक्चर ५-२० बूंद बेलाडोना मद्यसार।

विशेष–**विषाक्त लक्षण** मात्राधिक्य प्रयोग से मुखतालुशोष नेत्र कनीनिकाविस्तार, त्वग्शोष, मूत्रकृच्छ्र आक्षेपादि विकार उत्पन्न होते हैं **निवारण** आमाशय प्रक्षालन प्रतिविष द्रव्य, वत्सनाभ, अफीम, चाय, काफी उत्तेजक पेय प्रयोग अपेक्षित है।

अश्वगंधा

द्रव्यनाम–हिन्दी : असगंध, नागौरी असगंध

लेटिन : Withania Somnifera.

संस्कृत : अश्वगंधा, हयाह्वया, बलदा, वरदा, वाराहकर्णी, कुष्ठगंधिनी।

वर्गीकरण-गुडूच्यादि भा०, बल्य, बृंहणीय च०

उत्पत्ति स्थान–देश के उष्ण या समशीतोष्ण प्रान्तों में स्वयं उत्पन्न तथा खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–**क्षुप** ० ३-१.५ मी०; **पत्र** अखंड, लट्वाकर किंचित् कुंठिताग्र, तारकाकृति श्वेत रोमश **पुष्प** पत्रकोणोद्भूत सचूडाकार छोटे गुच्छो में हरितपीत **फल** मटरसदृश, रक्त **बीज** अनेक चपटे होते हैं। **पुष्पकाल** शरद् **फल** वसंत

रासायनिक संगठन–ग्राम्य जाति में शर्करा एक उड़नशील तैल तथा Withaniol तत्त्व वसा, राल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रंजकसत्त्व वन्य जाति में सॉम्निफेरीन क्षार।

गुण कर्म–रस-तिक्त कषाय मधुर गुण-स्निग्ध, लघु वि० मधुर वी० उष्ण वातकफहर, नाड़ीबल्य दीपन, बृंहण, वाजीकरण।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-ग्रंथिशोथ, प्लेग, गलगंड में वन्य जाति की मूल, पत्र लेप **आभ्यन्तर** हृद्दौर्बल्य, शोथ, रक्तविकार, क्षय, रस-मांसक्षय शोष, भ्रम, अनिद्रा, वातव्याधि, शुक्रदौर्बल्य, कार्श्य में अत्युपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम। अश्वगंधारिष्ट, घृत, चूर्ण।

विशेष–ताजे क्षुप को मसलने पर सूंघने से घोड़े के मूत्र सदृश गंध आती है। अतः अश्वगंधा नाम है। देश भेद से वन्य एवं ग्राम्य। वन्य जाति में Somniferin क्षार जो कि अवसादक है इसका बाह्य प्रयोग होता है। ग्राम्यजाति खेती से प्राप्त नागौरी असगंध नाम से व्यवहृत; नाड़ी दौर्बल्य जन्य व्याधियों में विशेष उपयोगी है।

संग्रह–पुष्पित होने के पूर्व या पुष्पित होते ही जड़ उखाड़ कर संग्रह करना चाहिए। पुष्प फल के बाद संग्रह से जड़ों में सौत्रिक तंतु अधिक हो जाते हैं।

राजिका कुल
Cruciferae Fam.

राजिका

द्रव्यनाम–हिन्दी : राई, लालराई।

लेटिन : Brassica Junceae.

संस्कृत : राजिका, तीक्ष्णगंधा क्षुज्जनिका आसूरी, कृष्णिका, क्षव।

उत्पत्ति स्थान–देश के अनेक प्रान्तों में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु क्षुप सरसों के सदृश पत्र दीर्घ मृदु गहरे कटे हुए पुष्प पीत वर्ण गुच्छों में शिम्बी ५०–७० मि० मी० गोल, तनु बीज रक्ताभ धूसर सरसों से छोटे गोल होते हैं। पुष्पकाल वसंत फल ग्रीष्म

रासायनिक संगठन–बीजों में २०-२५% स्थिर तैल व उड़नशील तैल भी होता है।

गुण कर्म–रस-कटु तिक्त गुण-तीक्ष्ण, लघु, अल्परूक्ष, वि० कटु वी० उष्ण, वातकफ शामक दीपन, शूलघ्न, कृमिहर, गर्भाशयोत्तेजक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-वातव्याधि, यकृत्प्लीहा फुफ्फुसशोथ त्वग्रोगों में बीज लेप **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, अजीर्ण, कृमि, प्लीहावृद्धि उदरशूल, गुल्म, हृद्दौर्बल्य, त्वग्रोग रजोरोध में प्रयुक्त होती है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज बीजतैल **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम।

विशेष–कृष्ण जाति B. nigra. के बीज काले होते हैं। बीज त्वचाक्षोभक, स्फोटजनक होने से बाह्य प्रयोग (लेप) अधिक समय तक वर्जित है। अधिक मात्रा सेवन से पैत्तिक विकार-उपशम मधुर स्निग्ध द्रव्य। **मिलावट** इसके बीजों में आकृति सादृश्य से स्वर्ण क्षीरी (सत्यानाशी) के बीजों की तथा तैल में तैल की मिलावट की जाती है।

चन्द्रशूर

द्रव्यनाम–हिन्दी : चनसुर, हालों।

लेटिन : Lepidium Sativum.

संस्कृत : चन्द्रशूर, दीर्घबीज, चर्महंत्री चन्द्रिका पशुमेहनकारिका, सुवासरा, वासपुष्पा, नंदिनी

वर्गीकरण–हरीतक्यादि, चतुर्बीज (भा०)।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र स्वयं उत्पन्न तथा खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय—सघन, शाखाप्रशाखायुक्त क्षुप ०.३-०.६ मी० पत्र खंडित धनियां के समान पुष्प छोटे गुच्छों में श्वेत नीलाभ वर्ण बीज रक्त वर्ण नौकाकृति होते हैं। पुष्पकाल हेमन्त फल वसंत

रासायनिक संगठन–पंचांग में लोह, आयोडीन, तिक्तसत्त्व, लवण, पोटाशि० गंधक-बीजों में स्थिर तैल तथा उड़नशील तैल होता है।

गुण कर्म–रस कटु तिक्त गुण पिच्छिल, स्नि-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ग्ध वि० कटु वी० उष्ण, वातकफहर वातानुलोमन, शूलहर, रक्तशोधन, मूत्रल, बृंहण;

आमायिक प्रयोग-बाह्य-वेदनायुक्त शोथ विकारों में लेप **आभ्यन्तर** उदरशूल, गुल्म, आध्मान प्रवाहिका, वातरक्त, रक्तविकार, हिक्का, क्षय शोष, दौर्बल्य, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध में मुख्यतः उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज पत्र **मात्रा** चूर्ण १–३ ग्राम, क्वाथ ३०–५० ग्राम चतुर्बीज चूर्ण।

विशेष-वातव्याधि में स्निग्ध, पिच्छिल, उष्ण होने से बीज चूर्ण का प्रयोग दुग्ध के साथ लाभप्रद है। विविध पोषक खनिज पदार्थ युक्त होने से दौर्बल्य, शोष में बीज, पंचांग प्रयोग प्रशस्त है।

सर्षप

द्रव्यनाम–हिन्दी : सरसों।

लेटिन : Brassica Campestris.

संस्कृत : सर्षप, सिद्धार्थ, कटुक, कटुस्नेह, कुष्ठनाशन, सिद्ध प्रयोजन, कण्डूघ्न।

वर्गीकरण–शाकवर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–देश के प्रायः सभी प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय-वर्षायु राजिका सदृश **क्षुप** ० ३–१ मी०; **पत्र** मूलक सदृश स्तम्भशाखा लग्न स्निग्ध, गहरे खंडित **पुष्प** मनोरम पीत गुच्छों में दल (Cruciform) **शिम्बी** छोटी रम्भाकार जिसमें **बीज** पीतरक्ताभ, अण्डाकार चिपटे अनेक होते हैं। **पुष्प फल काल**-वसंत

रासायनिक संगठन—बीजों में स्थिर कटु तैल २०-२५%; मणिभीय सत्त्व Sinalbin Sinapin sulphocyamide, Lecithin, पिच्छिल द्रव्य, प्रोटीन ४%, भस्म में अनेक लवण होते हैं।

गुणकर्म–रस-कटु तिक्त गुण-तीक्ष्ण, स्निग्ध **वी०** उष्ण **वि०** कटु वातकफशामक पित्तवर्धक त्वग्दोषहर, कृमिघ्न, पाचन, प्लीहोदरघ्न, गर्भाशयोत्तेजक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-कर्णशूल, दंतपूय; ग्रन्थि त्वग्रोग, कुष्ठ, पामा, विचर्चिका, वैवर्ण्य, वेदना युक्त शोथ में बीज लेप **आभ्यन्तर** कृमि, आमदोष अग्निमांद्य, प्लीहावृद्धि, त्वग्रोग, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज, बीज तैल **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम।

विशेष–कर्ण शूल में कोष्ण तैलपूरण दन्तपूय में तैलगंडूष। रक्त जाति (B. Nigra तन्तुभ, कदम्बक) के बीज बड़े। बीज उत्तेजक, क्षोभक, जन्तुघ्न होने से त्वग्रोगों की मुख्य औषधि है। रक्त जाति की अपेक्षा गौर सर्षप विशेष प्रभावशाली है।

मूलक

द्रव्यनाम–हिन्दी : मूली, मूला

लेटिन : Raphanus Sativus.

संस्कृत : मूलक, महाकन्द, स्वस्तिक, हस्तिदन्त, हरिपर्ण, शंखमूल, क्षारमूल, रुचिष्णा।

वर्गीकरण–हरितवर्ग (च०) शाकवर्ग (सु०)

उत्पत्ति स्थान–देश के सभी प्रान्तों में खेती की जाती है।

वानस्पतिकपरिचय–द्वि वर्षायु ०.३-०.५ मी० सर्षप सदृश **क्षुप**; मूल प्रकन्द लम्ब गोल, श्वेत **पत्र** मूल से अनेक पत्र, दीर्घ, खंडित, रोमश **पुष्प** श्वेत, सर्षप सदृश **फल** सर्षप सदृश किन्तु स्थूल, २५-६० मि० मी० दीर्घ होता है। **बीज** रक्ताभ, छोटे, गोल होते हैं। **पुष्प फल काल** शरद्।

रासायनिक संगठन–बीजों में स्थिर एवं उड़नशील तैल, में गंधक फोस्फरिक अम्ल; आर्द्र कंद में जल ९१%; शुष्क में विलेय कार्बोहाइड्रेट ५२.६६% अलब्यु० १८% क्षार १६% होते हैं।

गुणकर्म–रस कटु, गुण-तीक्ष्ण लघु **वी०** उष्ण **वि०** कटु त्रिदोषहर दीपन, अर्शोघ्न (मूल) शूलघ्न (क्षार) पित्तसारक, गर्भाशयोत्तेजक बीज)

आमयिक प्रयोग–बाह्य-वातजार्श में स्वेदन, कर्णशूल क्वेड, त्वग्रोग, ग्रंथिविसर्प में शुष्क मूल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लेप **आभ्यन्तर** अरोचक अग्निमांद्य, अर्श, उदररोग; गुल्म-शूल (क्षार) यकृत् प्लीहावृद्धि, कामला, मूत्र-कृच्छ्र, रजोरोध में बीज प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं—मूल, बीज **मात्रा** स्वरस २०-३० ग्राम बीज चूर्ण १-३ ग्राम शुष्कमूलाद्य तैल घृत।

विशेष-कर्णशूलादि में स्वरस सिद्ध तैलपूरण त्वग्रोग में बीज लेप आकृति भेद से २ जाति (क) लघुमूलक (ख) बृहन्मूलक। मूली का स्कर्वी रोग की चिकित्सार्थ एवं प्रतिषेधार्थ प्रयोग; चिरकालज कोष्ठबद्धता में पत्रशाक, आध्मान रक्तार्श मे स्वरस प्रयोग होता है।

तोदरी

द्रव्यनाम—हिन्दी : तोदरी

लेटिन : Lepidium iberis.

उत्पत्ति स्थान—पंजाब में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय—वर्षायु, सरल, कण्टकित **क्षुप; पुष्प** श्वेत, छोटे **शिम्बी** छोटी **बीज** मसूराकृति किन्तु आकृति में छोटे, चपटे (अल्प) जल में भिगोने पर पिच्छिलता से आवृत हो जाते हैं।

रासायनिक संगठन-बीजों में Lepidium विरुपिक तिक्त सत्त्व, उड़नशील तैल, गंधक। रक्ततोदरी में Cheirinine क्षाराभ, ग्लुकोसाइड होते हैं।

गुण कर्म—रस-मधुर, तिक्त, गुण-पिच्छिल गुरु, स्निग्ध, **वी०** उष्ण **वि०** मधुर वातपित्तशामक कफनिःसारक, शोथहर, मूत्रल, स्तन्यजनन।

आमयिक प्रयोग-बाह्य-वेदनायुक्त शोथ, संधिवात में शोथविलयन के लिए लेप, तैलाभ्यङ्ग; **आभ्यन्तर**-वातजकास, श्वास, श्वसनिकाप्रदाह (फाण्ट) मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह, शुक्रदौर्बल्य, स्तन्याल्पता की मुख्य औषधि है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं—बीज **मात्रा** ३ ५ ग्राम।

विशेष-जाति वर्ण भेद से (क) श्वेत Matthiola Incava Roxb. रक्त (Cherianthus) श्वेततोदरी के बीज सबसे बड़े, अधिक चपटे। रक्त तोदरी के बीज छोटे एवं रक्तवर्ण होते हैं।

खूबकला

द्रव्यनाम-हिन्दी : खूबकला।

लेटिन : Sisymbrium Irio.

उत्पत्ति स्थान—पश्चिमोत्तर हिमालय प्रदेश, पंजाब में रबी की फसल के साथ उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय-**क्षुप, पत्र पुष्प** सरसों के सदृश होते हैं। **बीज** पोस्तदाने (खसखस) से छोटे, गोल, रक्ताभ पीत, नारँगी वर्ण होते हैं।

गुणकर्म—रस—मधुर तिक्त गुण—स्निग्ध पिच्छिल **वि०** मधुर **वी०** अनुष्ण, वातपित्तशामक कफनिस्सारक, ज्वरघ्न (सन्तत ज्वर) शोथहर, तृषा प्रशमन।

आमयिक प्रयोग—बाह्य द ह, प्रदाहयुक्त शोथावस्था में लेप **आभ्यन्तर** आंत्रिक ज्वर, मसूरिका ज्वर, तृषा, छर्दि, विसूचिका, कास, श्वास, स्वरभग दौर्बल्य में दैनिक प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं—बीज **मात्रा** ३-६ ग्राम

विशेष—आन्त्रिक एवं मसूरिका ज्वर में दैनिक चिकित्सा में प्रयोग होता है। कफोत्सरि होने से वातजपैतिक कास, श्वसनिका शोथ, स्वरभंग में उपयोगी है।

रसोन कुल
Liliaceae Fam.

कलिहारी

द्रव्य नाम—हिन्दी : कलिहारी, कलियारी।

लेटिन : Gloriosa Superba.

संस्कृत : क लह री, लांगली, विशल्या, वह्निशिखा, स्वर्णपुष्पा, शुकपुष्पी, गर्भनुत्, गर्भघातिनी।

वर्गीकरण—गुडूच्यादि, उपविष (भा०)।

उत्पत्ति स्थान देश के प्रायः सभी प्रान्तों में विशेषतया ऊंचे एवं उष्ण प्रदेशों में बंगाल तथा दक्षिण भारत के प्रान्तों के वन्य क्षेत्रों में उत्पन्न होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वानस्पतिक परिचय–मनोरम आरोही बहु वर्षायु **लता** कन्द द्विधाविभक्त मांसल, श्वेताभ हलाकृति; शाखाऐं V आकृतियुक्त **पत्र** अवृंत; एकान्तर भालाकार, पत्राग्र सूत्राकार **पुष्प** सुंदर दीर्घ, ६ दली, तरंगायित, हरित पीत, रक्त, नारंगी वर्ण के होते हैं। **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन कन्द में २ राल (Resin) कषाय द्रव्य, तिक्त सत्त्व (Superbine) एक विषैला (Gloriosine) क्षारतत्त्व एवं स्टार्च।

गुण कर्म–रस–तिक्त कटु कषाय गुण तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक ज्वरघ्न, तिक्त पौष्टिक, गर्भाशयोत्तेजक शल्य निष्कासन (बाह्य प्रयोग–लेप से)।

आमयिक प्रयोग–बाह्य कृमि कर्ण, कर्णस्राव, खालित्य, त्वग्गतशल्य, व्रण, शोथ, श्वित्र, गंडमाला, सर्प वृश्चिकदंश पर लेप **आभ्यन्तर** कृमि, उदरशूल, वातरक्त, कुष्ठ, आमवात, पूयमेह मूढ़गर्भ में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–कन्द पत्र **मात्रा** कंद १२०–२५० मि० ग्राम; अपरागर्भ पातनार्थ ०.५-१ ग्रा० लांगल्यादिलौह, गुटिका, कासीसादि तैल।

विशेष-विषाक्त लक्षण–आमाशयक्षोभ, दाह, छर्दि, अतिसार, आक्षेप **निवारण** मिश्री तक्रानुपान से तथा घृतपान। त्वग्गत शल्यों का इसके लेप से निष्कासन होने से विशल्या नामक सार्थक है। कन्दाकृति भेद से पुं तथा स्त्री लांगली।

कन्द परीक्षा–७–८ इन्च दीर्घ; स्थूल १२ मि० मी० रम्भाकार, कंद (पूर्ण) २ भागों में विभक्त जो समकोण पर युक्त, कोण पर गोल चिह्न, अन्तर्वस्तु श्वेत स्निग्ध होती है।

लशुन

द्रव्यनाम–हिन्दी : लशुन, लहसुन।

लेटिन : Allium Sativum.

संस्कृत : रसोन, उग्रगंध, महौषध, यवनेष्ट, म्लेच्छकंद, अरिष्ट, रसोनक।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र उष्ण जलवायु एवं उर्वरा भूमि में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय-बहुवर्षायु कोमल स्तम्भी क्षुप ०.३ से ०.५ मी० ऊंचा **कन्द** गोल श्वेतरक्ताभ शल्क पत्र से आवृत ८ से १० कन्दिकाऐं (Bulbils) युक्त, ये कन्द के तल पर चक्रकार स्थित, मांसल यवाकृति होती हैं। **पत्र** मृदु दीर्घ तनु चिपटे लम्बाग्र **पुष्प** क्षुप के मध्य से निकले हुए दीर्घ पुष्प दण्ड पर श्वेत गुलाबी गुच्छों में होते हैं **पुष्प फल काल**–शीत।

रासायनिक संगठन कन्द में उड़नशील पीत वर्ण तैल (०.०६ से ०.१%) में गंधक के सेंद्रिय योग होते हैं। कन्द में श्वेतसार, पिच्छिल सत्त्व, शर्करा, अलब्युमिन, अयस् कैल्सियम एसकोर्बिक एसिड होता है।

गुण कर्म रस–कटु मधुर लवण तिक्त कषाय गुण–तीक्ष्ण स्निग्ध सर, गुरु **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातशामक, पित्तवर्धक दीपन, अनुलोमन, शूलहर, कृमिघ्न, हृद्य, कफोत्सारि, पूतिहर, शुक्रार्त्तवजनन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य त्वग्रोगों में लेप, कर्णशूल में रसपूरण, वातव्याधि, पार्श्वशूल में लेप **आभ्यन्तर** पक्षाघात, आमवात, गृध्रसी, वातव्याधि अग्निमांद्य गुल्म, उदरशूल, अजीर्ण, कृमि हृद्दौर्बल्य, क्षय कास, श्वास, कृच्छ्रार्त्तव, जीर्णज्वर में अत्युपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–कन्द **मात्रा** स्वरस १०–३० बूंद, कल्क २–५ ग्राम। रसोनपिण्ड, रसोनाद्य वटी, रसोन क्षीर–पाक।

विशेष–क्षय दण्डाणु नाशक होने से तज्जन्य फुफ्फुसविकार तथा नाड़ीव्रण, अस्थिव्रण में विशेष उपयोगी। वात व्याधियों में लशुन प्रयोग अतीव लाभप्रद है। अति प्रयोग से पैत्तिकविकार। उपशम-मधुर स्निग्ध द्रव्य, धान्यक प्रयोग करना चाहिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कुमारी

द्रव्य नाम–हिन्दी : ग्वारपाठा, घीकुआंर।

लेटिन : Aloe barbadensis.

संस्कृत : कुमारी, गृहकन्या, घृतकुमारिका।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र रेतीली, ऊषर जलासन्न भूमि में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु क्षुप ०.३ से ०.७ मी० ऊंचा **पत्र** दीर्घ (०.३ से ०.५ मी०) चमकीले हरित वर्ण के मांसल, स्थूल, भालाकार, तीक्ष्णाग्र, अन्तःपृष्ठ कुछ नतोदर, बहिर्भाग उन्नतोदर; कण्टकित पत्रधार। पत्र में घृत सदृश पिच्छिल श्वेतपीताभ मज्जा (गूदा) होती है। **पुष्प** क्षुप के मध्य में दीर्घ पुष्पदण्डाग्र पर रक्ताभ पीत वर्ण होता है। **पुष्प फल काल**–शीतान्त।

रासायनिक संगठन–घन सत्त्व में एलोइन १० से ३०% में बार्बेलोइन नामक स्फटिकीय ग्लुकोसाइड; Aloe emodin, राल, उड़नशील तैल भी होता है।

गुण कर्म–रस–पत्र (गूदा–मज्जा) तिक्त मधुर गुण–पिच्छिल, सर, स्निग्ध गुरु **वि०** कटु **वी०** शीत एलुवा–रस–तिक्त गुण–रूक्ष, तीक्ष्ण, लघु वी०–उष्ण। दीपन, भेदन, शोथहर, शूलहर, कृमिघ्न, गर्भाशयोत्तेजक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य नेत्राभिष्यंद, त्वग्रोग, अर्श, व्रण में स्वरस लेप **आभ्यन्तर** ज्वर, विबंध गुल्म, शूल, यकृत्प्लीहावृद्धि; कृमि, पांडु, शोथ, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र रजोरोध, कृच्छ्रार्त्तव में दैनिक प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र मज्जा (गूदा) स्वरस, १०–२५ ग्राम, सत्त्व एलुआ, १२० मि० ग्राम से ०.५ ग्राम। कुमार्यासव, वठि–पाक, रजः प्रवर्तनी वटी।

विशेष–इसका गूदा स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु मधुर, तिक्त होने से तिक्त पौष्टिक एवं बल्य बृंहण है। पत्र स्वरस से रसक्रिया विधि द्वारा प्राप्त घनसत्त्व एलुआ या मुसब्बर कहलाता है इसकी आमाशयान्त्र, यकृत्प्लीहा, गर्भाशय पर उत्तेजक क्रिया होती है। **घनसत्त्व परीक्षा** कृष्णाभ भूरे वर्ण के असमान टुकड़े, अपारदर्शक, चमकदार, विशेष गंध युक्त, मद्यसार में अविलेय सत्त्व १२% तक, जलविलेय सत्त्व ५०% तक; इसमें बालू मिट्टी, कत्थे, लोहे के चूर्ण का मिश्रण। मद्यसार में विलयन कर विजातीय द्रव्य परीक्षणापेक्षी है।

शतावरी

द्रव्य नाम–हिन्दी : सतावरि, सतावर।

लेटिन : Asparagus racemosus.

संस्कृत : शतावरी, बहुसुता, शतवीर्या, शतमूली, शतपदी, अति सा, पीवरी।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) मधुरस्कंध, बल्य, वयः स्थापन (च०) विदारिगंधादि, पित्त प्रशमन (सु०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र आर्द्र तथा शुष्क ऊंचाई वाले वन्य क्षेत्रों में उत्पन्न होती है। विशेषतः उत्तर भारत में हिमालय प्रदेशों में ४ हजार फीट तक उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु अधोमुखी कंटकित आरोही **लता** शाखा प्रशाखाऐं रेखाकृति, त्रिकोणाकार, रेखायुक्त **पत्र** अतिसूक्ष्म सोया के समान नोंकदार **पुष्प** छोटे, सुगंधित श्वेत गुलाबी गुच्छों में **फल** रक्त, मटर सदृश होते हैं। **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–ताजे कन्द में जल विलेय द्रव्य ५२.५%, में शर्करा ७%; पिच्छिल द्रव्य, जल ९%, भस्म ४% होते हैं।

गुण कर्म–रस–मधुर तिक्त गुण–स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत, वातपित्तशामक। बृंहण, वयःस्थापन, नाड़ी बल्य, स्तन्य–शुक्रवर्धक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य शोथ, प्रदाह में पत्र लेप इससे सिद्ध तैल का वातव्याधि में अभ्यंग **आभ्यन्तर** अम्लपित्त, ग्रहणी, गुल्म रक्तपित्त, वात-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रक्त, वातव्याधि (धातु क्षय जन्य) क्षय, शोथ दौर्बल्य मूत्रकृच्छ्र, गर्भस्राव, शुक्रदौर्बल्य रक्त प्रदर में अत्युपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-मूल **मात्रा** चूर्ण ३-६ ग्राम स्वरस १०-२० ग्राम। शतावरीघृत, पाक नारायण तैल।

विशेष-इसकी बड़ी जाति महाशतावरी सहस्रवीर्या (A. Sarmentosa) दक्षिण में अधिक उत्पन्न होती है लता कन्द दीर्घ। एक अकंटक जाति हिमालय में होती है। **कन्द परीक्षा**-ताजे कन्द मांसल १००-२५० मि० मी० दीर्घ, १२ मि० मी० स्थूल, बेलनाकार; दोनों सिरों पर संकुचित, मज्जा श्वेत, पिच्छिल, शुष्क कन्द गाढ़े भूरे वर्ण का अनुलम्ब रेखाकार होता है।

चोबचीनी

द्रव्य नाम-हिन्दी : चोबचीनी, चोपचीनी।

लेटिन : Smilax Glabra.

संस्कृत : द्वीपान्तरवचा।

वर्गीकरण-हरीतक्यादि (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान-हिमालय के समीपवर्त्ती उष्ण क्षेत्र पूर्व की ओर आसाम, बंगाल तथा कोंकण में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय-अति विस्तृत हरित सघन आरोही **लता** स्तम्भ दृढ़ छोटे २ कांटेदार **पत्र** अण्डाकार, चर्मवत् कुण्ठिताग्र, तीन उन्नत शिरायुक्त **पुष्प** छोटे श्वेतवर्ण गुच्छों में। मूल को चोबचीनी कहते हैं।

रासायनिक संगठन-कन्द में वसा, शर्करा, ग्लुकोसाइड, रंजकद्रव्य, सेपोनीन, गोंद, स्टार्च होते हैं।

गुण कर्म-रस-अल्प तिक्त, गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण त्रिदोषशामक दीपन, शोथहर वेदनाप्रशमन, मूत्रकर, रक्तशोधक बृंहण।

आमयिक प्रयोग-आभ्यन्तर फिरंग, पूयमेह, तज्जन्य संधिशोथ हृद्रोग-रक्तविकार; उन्माद, अपस्मार, वातव्याधि, ज्वर, आध्मान, शूल, शोथ, गंडमाला, दौर्बल्य में मुख्यतः प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं-कन्द **मात्रा** चूर्ण ३-६ ग्राम। चोबचीन्यादिचूर्ण, पाक।

विशेष-इसका प्रकंद बेडौल अनियमित नलिकाकार ग्रंथियुक्त। मूल श्वेत, रक्ताभ, गुरु स्थूल सूत्ररहित, स्निग्ध पिष्टमय होता है। फिरंग, पूयमेह में तथा तज्जन्य संधिवात, हृद्रोग तथा रक्तविकारों में इसका दैनिक प्रयोग होता है। **जातियां** (क) S. Macrophylla (ख) S. lanceaefolia Roxb. होती हैं।

वन पलाण्डु

द्रव्य नाम-हिन्दी : वनपलाण्डु, जंगली कांदा।

लेटिन : Urginea indica.

संस्कृत : वनपलाण्डु, कोलकंद।

उत्पत्ति स्थान-पश्चिमोत्तर हिमालय तथा बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, गोवा, पश्चिमीघाट की बालुकामय भूमि में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय-वर्षायु, स्निग्ध, प्याज सदृश **क्षुप कन्द** छोटे गोल प्याज के समान **पत्र** मूलोद्भव रेखाकृति, दीर्घ, संकुचित लम्बाग्र, तीक्ष्णाग्र **पुष्प** दीर्घ पुष्प दण्ड पर, अग्रस्थ, श्वेतवर्ण **बीज** कोष ३ भागों में विभक्त **बीज** ५-१० कृष्णवर्ण चिपटे होते हैं। **पुष्प फल काल**-वर्षा।

रासायनिक संगठन-कन्द में दो तिक्तसत्त्व Scillipicrin, Scillitoxin, एकविषाक्तग्लुकोसाइड, शर्करा, भस्म, केल्सियम आक्जलेट्स पिच्छिल सत्त्व होते हैं।

गुण कर्म रस-कटु तिक्त गुण-तीक्ष्ण, लघु, **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक, पित्तवर्धक; कृमिघ्न, मूत्रजन हृदयोत्तेजक, शोथहर मुख्यतः हृद्विकार एवं वृक्कविकार जन्य।

आमयिक प्रयोग-बाह्य शोथ, त्वग्रोगों में लेप **आभ्यन्तर** जलोदर, कृमि, जीर्णकास, श्वास-फुफ्फुस रोग, शोथ, विविध हृद्विकारों में (डेजिटेलिस के

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

समान लाभकारी) कृच्छ्रार्त्तव, जीर्ण वृक्कविकारों में अत्युपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-कन्द **मात्रा** चूर्ण १२०-१८० मि० ग्राम, टिंक्चर ५-३० बूंद।

विशेष–आमाशय पर स्थानिक क्षोभक होने से प्रत्याक्षिप्त क्रिया से कफोत्सारि वृक्कगत रक्तसंवहन वृद्धि तथा वृक्ककोशाओं को उत्तेजित करने से मूत्रल; तीव्रक्षोभक होने से छर्दि, उत्क्लेश आदि लक्षण प्रयोग काल में संभावित हैं। यह स्थानिक क्षोमक भी है।

उशबा

द्रव्यनाम–हिन्दी : उशबा।

लेटिन : Smilax Zaylanica.

उत्पत्ति स्थान-हिमालय के समीपवर्त्ती क्षेत्र तथा अन्यत्र आर्द्रता युक्त पार्वत्य प्रदेशों में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–इसकी **लता** कंटकित, अनन्तमूल के समान **मूल** रक्ताभ नलिकाकार गुच्छों में **पत्र** अण्डाकार अनन्तमूल सदृश किन्तु मृदु **पुष्प फल** गुच्छों में रक्ताभहरित वर्ण के होते हैं। **पुष्प फल काल** शरद्।

रासायनिक संगठन विदेशी उशबा में Smilaxin सत्त्व सेपोनीन की तरह; एक उड़नशील तैल, राल, स्टार्च होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त कषाय गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण, त्रिदोषशामक, रक्तशोधन मूत्रल।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर** त्वग्रोग कुष्ठ रक्तविकार कंडू, विचर्चिका, दुष्टव्रण, उपदंश, पूयमेह, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र; वातव्याधि, यकृद्विकारों में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–मूल **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम क्वाथ ५०–१०० ग्राम, माजून उशबा।

विशेष–विदेशी उसबा दक्षिण-मध्य अमेरिका में उत्पन्न (Sarsaparilla) होता है। इसकी मूल-शाखाऐं दीर्घ, तनु, गोल, झुर्रीदार, रक्ताभ, अन्तः-पृष्ठ श्वेताभ, पिष्ट प्रधान होता है।

पलाण्डु

द्रव्यनाम हिन्दी : प्याज, कांदा।

लेटिन : Allium cepa.

संस्कृत : पलाण्डु, यवनेष्ट, दुर्गन्ध, मुखदूषक।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान सर्वत्र खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–सुपरिचित **क्षुप** ०.६–१ मी० ऊंचा; **पत्र** मूलपत्र, रम्भाकार, स्थूल स्निग्ध, सुषिर, दीर्घ **पुष्प** पत्रों के मध्य से निकले हुए दीर्घ पुष्प दण्ड पर लट्वाकार, श्वेत वर्ण गुच्छों में **बीज** कृष्ण वर्ण त्रिकोणाकार **कन्द** गोल रक्त या श्वेत शल्कपत्रावृत अनेक स्तर युक्त **पुष्पकाल** श त।

रासायनिक संगठन–कंद की बाह्यस्त्वक् में Quercetin रंजकद्रव्य; कन्द में कटु उग्रगंधि उड़नशील तैल, मंधक के सेन्द्रिय योग, शर्करा, श्वेतसार, पिच्छिल द्र०, खनिज द्रव्य; एवं ३ कार्यकारी तत्त्व Scillapicrine, Scillamarine, Scillinine. होते हैं।

गुण कर्म रस–कटु मधुर गुण–स्निग्ध, तीक्ष्ण गुरु **वी०** अनुष्ण **वि०** मधुर वातकफहर पित्तवर्धक।

आमयिक प्रयोग–वाह्य कर्णशूल–स्राव पिड़िका में कोष्ण रसपूरण, तिमिर दृष्टिमांद्य में स्वरस नेत्र बिन्दु; किलास, न्यच्छ में (उद्वर्तन) व्रणशोथ, स्नायुक, गण्डमाला, वृश्चिकदंश में लेप **आभ्यन्तर** गृध्रसी, संधिवात, आक्षेपक, जलसंत्रास, छर्दि, विसूचिका, अर्श, कामला, प्लीहावृद्धि, श्वास, कास, हिक्का, मूत्रकृच्छ्र क्लैव्य, अंशुघात में दैनिक उपयोगी द्रव्य है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं-कन्द बीज **मात्रा** स्वरस १०–३० ग्राम बीज चूर्ण १ ३ ग्राम।

विशेष–कन्द वर्ण भेद से रक्त–श्वेत, आकृति भेद से छोटा, बड़ा, २ भेद; रक्त पलाण्डु (राज पलांडु) कहते हैं। चिकित्सार्थ श्वेत जाति का

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोग प्रशस्त। **अहित प्रभाव** पित्तप्रकृति के लिए तृषा, स्वेदकारक, मस्तिष्क के लिए हानिप्रद। निवारण दाड़िम रस, तक्र प्रयोग करना चाहिए।

रक्तनिर्यास (खूनखराबा)

द्रव्यनाम–हिन्दी : खूनखराबा, हीरादोखी।

लेटिन : Dracaena cinnabari.

संस्कृत : रक्तनिर्यास।

उत्पत्ति स्थान–अफ्रीका, अरब, सकोतरा (Socotra) द्वीप; इसका आयात किया जाता है।

द्रव्य परिचय–यह एक वृक्ष का प्रसिद्ध निर्यास है जो रक्त वर्ण नीलाभ होता है। चूर्ण करने पर गहरा लाल होता है। जाति–(क) चकीदा (ख) तुरावी (ग) खशवी।

द्रव्य परीक्षा–धूसर रक्त वर्ण के छोटे २ अश्रु-वत् दानों के रूप में, तोड़ने पर टूटा हुआ तल पारदर्शकाभास, चमकदार रक्त वर्ण का उत्तम होता है। ढ़ेले, पिण्डाकृति, धूसर वर्ण का खून-खराबा हीन होता है।

रासायनिक संगठन–निर्यास में लोबानाम्ल (Benzoic acid) तथा सिनेमिक अम्ल (cinnamic acid) होते हैं।

गुण कर्म–रस–कषाय गुण–रूक्ष, लघु वी० शीत वि० कटु पित्तकफशामक, रक्तस्कन्दन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य नेत्रव्रण में सूक्ष्म रज का अंजन एवं सद्यव्रण में चूर्णावधूलन **आभ्यन्तर** अतिसार, प्रवाहिका, रक्तार्श, रक्तपित्त, उरःक्षत, रक्तष्ठीवन, रक्तप्रदर, अत्यार्त्तव।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-निर्यास **मात्रा** १-१.५ग्रा०

विशेष–रक्तकेशिकाओं पर प्रबल संकोचनक्रिया करने एवं रक्तगतस्कंदन वृद्धि से विभिन्न स्रोतों में रक्तस्रावी विकारों की मुख्य औषधि है।

मुशली

द्रव्यनाम- हिन्दी : मुसली सफेद।

लेटिन : Asparagus Adscendens.

संस्कृत : मुशली।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमी हिमालय, उत्तरप्रदेश, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान (आबूपर्वत)

वानस्पतिक परिचय–तनु शाखी कण्टकित क्षुप, **स्तम्भ**-सरल, स्थूल; **शाखाएं** अवनत, आरोही, सुषिर, कोणीय **पत्राभास काण्ड** केशाकृति, वर्तुल ६–२० की संख्या गुच्छों में **पुष्प** मुकुट २५ मि० मी० व्यास युक्त पुष्प सूक्ष्म **फल** छोटे २ रक्त, कृष्ण वर्ण होते हैं। **पुष्प काल**–शरद् **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–कन्द में अलब्युमिन्स द्रव्य, पिच्छिल द्रव्य; सेल्युलोज, एस्पैरिगन। कन्दचूर्ण में जल विलेय भाग ७७.५% कंदभस्म में केल्सियम होता है।

गुणकर्म-रस-मधुर तिक्त गुण स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु **वी०** उष्ण **वि०** मधुर त्रिदोषशामक बल्य, बाजीकर।

आमयिक प्रयोग आभ्यन्तर–दाह, वातव्याधि रक्तविकार, शोथ, श्रम, दौर्बल्य, कार्श्य, मधुमेह, शुक्रमेह, पूयमेह, नपुंसकता, प्रदर में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–कन्द **मात्रा** चूर्ण ३-६ ग्राम, मुशली पाक मोदक।

विशेष–तालमूली–कृष्ण मुशली (Curculigo orchioides) तालमूली कुल के द्रव्य का पृथक् वर्णन किया गया है। मूलस्तम्भ से श्वेतकंद सदृश लम्ब गोल मूलों का गुच्छ निकलता है, जिन्हें मुसली कहते हैं।

त्रिवृत् कुल

Convolvulaceae Fam.

शंखपुष्पी

द्रव्य नाम–हिन्दी : शंखाहुली, शंखपुष्पी।

लेटिन : Convolvulus pluricaulis.

संस्कृत : शंखपुष्पी, शंखाह्वा, मांगल्यकुसुमा, शंखकुसुमा, रक्तपुष्पिका, विष्णुक्रान्ता, श्यामक्रान्ता (नीलपुष्पी)।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र पार्वत्य, बालूमिट्टी प्रधान एवं जलासन्न क्षेत्रों में अधिक उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय बहुवर्षायु प्रसरी, श्वेत रोमश **क्षुप** काण्ड अल्पचतुष्कोणीय शाखाएं, प्रसरी उठी हुई **पत्र** अवृंत, रेखाकार, तनु, दीर्घ, तीनशिराएं युक्त **पुष्प** शुभ्र श्वेत १२-३७ मि०मी० व्यासयुक्त कीपाकार, तश्तरीनुमा **फल** छोटे २–४ कोष्ठीय होते हैं। **पुष्पकाल** वसन्त, शरद्।

गुणकर्म रस–कषाय कटु तिक्त गुण–सर गुरु, पिच्छिल, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत त्रिदोष-शामक। मेध्य, वातनाड़ीबृंहण, सारक, रसायन, हृद्य, त्वग्दोषहर, मूत्रल।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर–भ्रम, अनिद्रा, उन्माद, अपस्मार, विबंध, आनाह दाह, तृषा स्वर-भंग, हृद्रोग, रक्तपित्त, रक्तवमन, कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह, बन्ध्यत्त्व, सान्निपातिकज्वर में एवं रसाय-नार्थ प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग **मात्रा** चूर्ण ३–५ ग्राम, स्वरस २०–४० ग्राम, फाण्ट ४०·८० ग्राम। चूर्ण, पानक, घृत।

विशेष–पुष्प वर्ण भेद से श्वेत, रक्त, नील जातियां होती हैं। नील शंखपुष्पी Evolvulus alsinoides प्रसरी, क्षुप शाखाएं दीर्घ, पत्र छोटे **पुष्प** चमकीले नीलवर्ण २–३ एक साथ शाखाग्र। मस्तिष्क–नाड़ी–दौर्बल्य जनित रोगों में (मेध्य, नाड़ीपोषक शामक होने से) मुख्यतः प्रयोग होता है।

त्रिवृत्

द्रव्य नाम–हिन्दी : निशोथ, निसोत।

लेटिन : Operculina Turpethum.

संस्कृत : त्रिवृत्, रेचनी; त्रिपुटा, श्यामा, सर्वा-नुभूति, सरला, सुवहा।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०) भेदनीय (च०) अधोभागहर श्यामादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–३ हजार फीट ऊंचाई तक प्रायः सर्वत्र इसकी लताएं उत्पन्न होती हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षीय आरोही **लता** काण्ड त्रिकोणाकार, ऐंठा हुआ; **पत्र** दूरवर्त्ती, नीचे के पत्र हृदयाकार, खण्डित, नुकीले, ऊपर के पत्र आयताकार रोमश। **पुष्प** घण्टाकृति श्वेत प्रायः ३–५ एक साथ **फल** प्रावर, मांसल अण्डा-कार **बीज** ४ कृष्ण स्निग्ध होते हैं। **पुष्प काल** वर्षा **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–मूल त्वक् में कार्यकारी सत्त्व (Turpethin) नामक ग्लुकोसाइड तथा पीत रंजक द्रव्य, राल, उड़नशीलतैल, स्टार्च, लवण होते हैं।

गुण कर्म–रस–तिक्त कटु मधुर कषाय गुण–तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण पित्तकफहर, भेदन, पित्तस्रंसन; ज्वरहर।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर विबंध, आनाह, गुल्म, कामला, उदररोग, आमवात, ज्वर, शोथ, अम्लपित्त में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूलत्वक् **मात्रा** चूर्ण १–४ ग्राम त्रिवृतादि चूर्ण, वटी, क्वाथ, अविपत्ति-कर चूर्ण।

विशेष–यह आंत्रगति उत्तेजक एवं पित्त का द्रव, सर गुण वर्धक है। २ **जाति** (क) त्रिवृत् मूल श्वेतारुण (ख) श्यामा मूल कृष्णाभ यह तीव्र रेचक होती है। त्रिवृत् सुखविरेचन द्रव्यों में श्रेष्ठ है इसके साथ सोंफ, सौंठ, मिश्री आदि द्रव्यों का प्रयोग हृल्लास उद्वेष्टन आदि विकारों के प्रति-षेधार्थ होता है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा** मूलत्वक् अति स्थूल, बाजार में मूल एवं काण्ड के बेलनाकार टुकड़े प्राप्त, किन्तु चिकित्सा में मूलत्वक् का ही प्रयोग; शुद्ध निशोथ के दोनों छोर पर गोंद, त्वक् तोड़ने पर टूटती है, किन्तु अन्तःभाग सूत्राकार टूटता है (T. S.) अनुप्रस्थ कर्त्तन से कटा तल हल्के भूरे वर्ण का दृश्य होता है।

कृष्णबीज

द्रव्य नाम–हिन्दी : कालादाना।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लेटिन : Ipomoea Hederaceae.

संस्कृत : कृष्णबीज, श्यामबीज ।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र लताएं उत्पन्न होती हैं ।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु आरोही **लता** काण्ड तनु दीर्घ रोमश, **पत्र** लट्वाकार ५० से १०० मि० मी० व्यास युक्त हृदयाकार ३-३ खण्डयुक्त, लम्बाग्र; **पुष्प** गुलाबी लिए हुए नीले वर्ण के कीप-नलिकाकार; **फल** प्रावर त्रिकोष्ठीय **बीज** ४–६ कृष्ण त्रिकोणाकार कठिन एवं स्निग्ध होते हैं **पुष्प काल** वर्षान्त, **फल** शरद् ।

रासायनिक संगठन–बीज में कालादाना रेजिन या Pharbitin ८% मुख्य तत्त्व तथा स्थिर तैल १४.४% पिच्छिलद्रव्य, ग्लुकोसाइड, टैनिन होते हैं ।

गुण कर्म रस–कटु मधुर गुण–तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण पित्तकफहर । तीव्र विरेचन, कृमिघ्न ।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर-जलोदर, उदररोग, शोथ, तीव्र विबंध कृमि; जिन व्याधियों में तीव्ररेचन के साथ शरीर से द्रवापहरण करना आवश्यक हो वहां इसका प्रयोग अपेक्षित है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज **मात्रा** चूर्ण १.५-३ ग्राम कृष्णबीजादि चूर्ण ।

विशेष-इसके बीजों का घृतभृष्ट चूर्ण बनाकर रेचनार्थ प्रयोग होता है । उद्वेष्टन, हृल्लास आदि विकारों के निवारणार्थ इसके साथ षोडशांश शुंठी-चूर्ण या हरीतकी, सोंफ का प्रयोग होता है । **शुद्ध द्रव्य प०** बीज कृष्ण भूरे ५.५ मि० मी० दीर्घ ३.७ चौड़े, एक पृष्ठ अवनतोदर जो मध्य में एक लम्बी परिखा युक्त, मज्जा श्वेत, **मिलावट** दूसरी जाति (I. Muricata) के बीज जो अधिक बड़े परिखा-विहीन; इसके अतिरिक्त हरमल, शणबीज व तुलसी जाति के बीज मिलाये जाते हैं ।

जलापा

द्रव्य नाम–हिन्दी : जलापा ।

लेटिन : Ipomoea Convolvulus.

उत्पत्ति स्थान–उत्तरी अमरीका का जलापा नामक प्रदेश ।

द्रव्य परिचय–निशोथ जातीय एक विदेशी लता का **मूल** बेडौल, अण्डाकृति शलगमाकार, दृढ़, गुरु, रेखांकित, धूसर, अन्तःपृष्ठ पीताभ धूसर होता है ।

रासायनिक संगठन–इसमें जलापा रेजीन (Jalapoe resin) ९-१८% जलापिन Jalapine या Jalapurgin १०% होता है ।

गुण कर्म–रस–तिक्त मधुर गुण–तीक्ष्ण, रूक्ष लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण, पित्तस्रंसन, शोथहर ।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर शोथ, जलोदर, तीव्र विबंध, पक्षाघात, अर्दित, आमवात, प्रतिश्याय, वृक्कशोथ, मूत्रविषमयता में मुख्यतः प्रयोग होता है ।

प्रयोज्य अङ्ग कल्प०–मूल **मात्रा** ०.३-१.३ग्रा०

विशेष–तीव्र रेचन द्रव्यों में निरापद रेचन द्रव्य है । मरोड़, हृल्लास; क्षोभक लक्षण कम होते हैं । यह जलीयरेचक, पित्तरेचक, अल्प मात्रा में सारक है ।

अमरवल्ली

द्रव्य नाम–हिन्दी : अमरवेल ।

लेटिन : Cuscute Reflexa.

संस्कृत : आकाशवल्ली, अमरवल्ली ।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०प्र०)

उत्पत्ति स्थान–देश में सर्वत्र छोटे बड़े वृक्षों एवं गुल्मों पर प्रसरी लताएं मिलती हैं ।

वानस्पतिक परिचय–परोपजीवी दीर्घ सूत्रवत् काण्डयुक्त पीतवर्ण **लता** पत्र विहीन होती है **पुष्प** श्वेत गुच्छों में **फल** प्रावर मकोय सदृश गोल **बीज** कृष्ण १–४ होते हैं । **पुष्पकाल** वसंत **फल** ग्रीष्म ।

रासायनिक संगठन–क्वर्सेटिन रंजक द्रव्य ०.२%, राल, कुस्कुटीन सत्त्व । बीजों में अमरबेलिन रंजक तत्त्व, पीताभ हरित वर्ण का तैल होता है ।

गुण कर्म–रस–तिक्त, कषाय गुण-लघु, पिच्छिल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वि० कटु **वी०** शीत, पित्तकफहर, शोथ वेदनाशमन, स्वेदल, मूत्रजनन दीपन स्तम्भन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–त्वग्रोग खालित्य व्रण, शोथ कंडू में लेप **आभ्यन्तर**–ग्रहणी, यकृद्विकार, शोथ रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, जीर्णज्वर में उपयोगी।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–लता बीज **मात्रा** स्वरस १०–२० ग्राम, बीजचूर्ण १–३ ग्राम।

विशेष–आघातज एवं अस्थिभग्न शोथ में कल्क का लेप शीघ्र लाभकारी है।

वृद्धदारुक

नाम–हिन्दी : विधारा, समुद्रशोष घावंपत्ता।

लेटिन : Argyreia Speciosa.

संस्कृत : वृद्धदारुक, दीर्घवल्लरी, आवेगी, छागलान्त्री, वृष्यगंधिका, अन्तःकोटरपुष्पी, समुद्र शोष।

वर्गीकरण-गुडूच्यादि (भा०) अधोभागहर सु०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र स्वयं उत्पन्न एवं उद्यानों में लगाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय-वृक्षों पर आरोहिणी **लता** काण्ड शाखाएं दृढ़, गोल, श्वेत रोमश **पत्र** हृदयाकृति, तीक्ष्णाग्र, बड़े निम्नपृष्ठ तूलरोमश **पुष्प** घंटाकृति, श्वेत गुलाबी गुच्छों में **फल** पीताभ धूसर लंबगोल, नुकीले **बीज** धूसर, श्वेत त्रिरेखायुक्त होते हैं।

रासायनिक संगठन–इसमें टैनिन तथा एक प्रकार का अम्ल राल होता है।

गुण कर्म–रस–कषाय, तिक्त कटु, गुण-स्निग्ध, लघु **वी०** उष्ण **वि०** मधुर वातकफशामक रसायन, मेध्य बृंहण, कफघ्न शोथहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–व्रण शोथ (पाचनदारणार्थ) आमवात, कुक्कुणक में पत्र बंधन एवं लेप **आभ्यंतर** मस्तिष्क-नाड़ी दौर्बल्य जनित वातव्याधि आमदोष, अर्श, स्वरभंग, कास, शोष, क्षय, प्रमेह शुक्रदौर्व०, प्रदर, गर्भाशय शोथ में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग, कल्पनाएं-पत्र, मूल, बीज **मात्रा** चूर्ण १–३ ग्राम बीज चूर्ण ०.५–१ ग्राम वृद्धदारुकाद्य घृत, वृद्धदारुकसम चूर्ण।

विशेष–बाजार में मूल के अंगुष्ठवत्, स्थूल छोटे बड़े टुकड़े काष्ठ प्रधान होते हैं। मध्य में सुषिर काष्ठ ऊति रचना होती है। संदिग्ध द्रव्य है। प्रस्तुत द्रव्य के अतिरिक्त दो पाती लता Ipomoea biloba); (Rourea Santaloides); (I. Petaloides) आदि द्रव्यों का प्रयोग होता है।

कोशातकी कुल
Cucurbitaceae Fam.

इन्द्रवारुणी

द्रव्यनाम–हिन्दी : इन्द्रायण, इनारुन, इन्द्रारुन

लेटिन : Citrullus Colocynthis.

संस्कृत : इन्द्रवारुणी, गवाक्षी, चित्रा, एन्द्री, विशाला, महाफला, श्वेतपुष्पा, मृगाक्षी।

वर्गीकरण-गुडूच्यादि (भा०) विरेचन, मूलिनी (च०) अधोभागहर, श्यामादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान-सर्वत्र विशेषतः राजस्थान, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, दक्षिण भारत की रेतीली भूमि में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय-वर्षायु सूत्र प्रतानिनी **लता** अतिकर्कश रोएंदार; **पत्र** एकान्तर दूरवर्त्ती, लट्वाकार, त्रिकोणाकार, अनियमित खण्डित; **पुष्प** पीत, घंटाकार, १३ मि० मी० व्यास युक्त **फल** पीत, चित्रित, मांसल, गोल ५०–७५ मि० मी० व्यासयुक्त फलमज्जा में अनेक **बीज** अण्डाकृति धूसर होते हैं। **पुष्पकाल** शीत **फल** वसंत।

रासायनिक संगठन–फल में तिक्त रेचक क्षाराभ कोलीसिन्थिन, ग्लुकोसाइड १४%, राल गोंद, पेक्टिन, बीज में स्थिर तैल १५% होता है।

गुण कर्म–रस–तिक्त, गुण–तीक्ष्ण, रूक्ष, **वि०** कटु **वी०** उष्ण; कफशामक पित्तस्रंसन। तीव्ररेचन, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न, विषघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–पालित्य में बीज तैलाभ्यंग, शोथ विद्रधि में मूल लेप **आभ्यन्तर**–आम-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वात, उरुस्तम्भ, कामला, जलोदर, तीव्रविबंध यकृत्दाल्युदर, प्लीहोदर, कृमि, रक्तविकार, श्वास, कास, नष्टार्त्तव में उपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–मूल, फल **मात्रा** मूल-चूर्ण १–३ ग्राम, फल चूर्ण ०.२–०.३ ग्राम, शोधनार्थ ०.३–०.७ ग्राम। नारायण चूर्ण, सुख विरेचनी वटी।

विशेष-इसकी बड़ी जाति 'विशाला' बड़ी इन्द्रायण, इसके पुष्प श्वेत, फल बड़े ककड़ी सदृश। यह पित्तस्रंसन, आम कफ शोषक तथा अन्न-पुरीष-मूत्र-आर्त्तव-रस-रक्त-प्राणवह स्रोतस् शोधक है। **अनुसन्धान कार्य**–महाविद्यालयीय आतुरालय में १५ जलोदर रोगियों में इन्द्रायण फलमज्जा का १ से ३ ग्राम की मात्रा प्रयोग से उत्साहजनक परिणाम मिले हैं। प्रयोग काल में हृल्लास, आंत्रोद्वेष्टन लक्षण भी मिले हैं।

देवदाली

द्रव्य नाम–हिन्दी : बन्दाल, घघरबेल, देवदाली

लेटिन : Luffa Echinata.

संस्कृत : देवदाली, वेणी, जीमूत, वृत्तकोश, कर्कटी, गरगरी, देवताडक।

वर्गीकरण-गुडूच्यादि (भा०) वमन, फलिनी (च०) उभयतोभागहर, ऊर्ध्वभागहर (सु०)

उत्पत्ति स्थान–गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार, उत्तरप्रदेश आदि प्रांतों में खेत की दीवारों पर तथा वन्य प्रदेशों में प्राप्त होता है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु सूत्रारोही प्रतानिनी तरोई के समान **लता; स्तम्भ** तनु, पंचकोणीय कर्कशरोमश **पत्र** वृक्काकार हृदयाकृति, क्वचित् पंच खण्डों में विभक्त रोमश दंतुर, २५-५० मि० मी० व्यासयुक्त **पुष्प**-श्वेत पीताभ छोटे **फल** कांटेदार, पीत, ककोड़े के सदृश होते हैं। **पुष्प फल काल** वर्षान्त।

रासायनिक संगठन–इसमें लफिन (Luffein) तिक्त द्रव्य, जो वामक, रेचक। बीज में स्थिर तैल

गुण कर्म–रस-तिक्त गुण-तीक्ष्ण रूक्ष, लघु वि० कटु वी० उष्ण पित्तकफघ्न। दीपन, वामक रेचन, मूत्रजनन, व्रण शोधन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य कामला, श्लै० शिरोरोग, प्रतिश्याय में रस नस्य; व्रण, अर्श में लेप **आभ्यन्तर**–कामला, यकृत्-प्लीहोदर, ज्वर, श्वास हिक्का, कृमि, अर्श जलोदर, शोथ, रक्तदोष, रजोरोध, मूढ़गर्भ, विषविकारों में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल **मात्रा** ०.३–०.५ ग्राम शोधनार्थ १–२ ग्राम।

विशेष इसकी जाति (L.graveolens) इसके पुष्प पीत. फल पर कांटे अल्प तथा दूरवर्त्ती। कामला में फाण्ट नस्य का दैनिक चिकित्सा में प्रयोग होता है।

इक्ष्वाकु

द्रव्य नाम–हिन्दी : कड़वी लौकी, कड़वीतोंबी

लेटिन : Lagenaria Vulgaris.

संस्कृत : इक्ष्वाकु, कुटुतुम्बी, महाफला, कटुकालाबू, तुम्बी, तिक्तालाबू, पिण्डफला।

वर्गीकरण–शाक वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र जंगलों में लताएं उत्पन्न होती हैं।

वानस्पतिक परिचय–समीपवर्त्ती वृक्ष, गुल्म दिवार आदि पर प्रतानिनी **लता** काण्ड स्थूल पंचकोणीय **पत्र** गोलाकार, पंचकोणाकार, पाणिवत् रोमश **पुष्प** एकलिंगी गोल श्वेत **फल** लम्ब गोल लौकी सदृश एवं विविधाकृति होते हैं। **पुष्प फल काल** वर्षान्त।

रासायनिक संगठन–शुष्क फल में सेपोनीन, ईथर एक्स्ट्रैक्ट, काष्ठसूत्र क्षार। बीजों में स्थिर तैल होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त गुण-तीक्ष्ण, लघु वि० कटु वी० शीत, पित्तकफशोधन-शमन। भेदन कफोत्सारि, रक्तशोधक, विषघ्न ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग-बाह्य-शोथ, कामला गंडमाला,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कुष्ठ में तैल लेप। नस्यप्रयोग बंदाल के समान **आभ्यन्तर** श्वास, कास (कफोत्सारि होने से) शोथ में मूल; कृमि, विषविकार, ज्वर अन्य प्रयोग बन्दाल के समान हैं।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, बीज, मूल **मात्रा** बीजचूर्ण १–२ ग्राम, रस ५–१० ग्राम। संशोधनार्थ २०–३० ग्राम।

विशेष–इसका प्रयोग मुख्यतः विभिन्न स्रोतों में श्लेष्म, पित्त, आमदोषसंचय प्रधान रोगों में शोधनार्थ। मधुर जाति 'लोकी' प्रसिद्ध शाक है।

कोशातकी

द्रव्यनाम हिन्दी : कड़वीतरोई।

लेटिन : Luffa amara.

संस्कृत : कोशातकी, जालिनी, कृतवेधन, राजिमत्फला, मृदंगफल, क्ष्वेड।

उत्पत्ति स्थान-लताएं प्रायः सर्वत्र मुख्यतः दक्षिण भारत, बंगाल के वन्य क्षेत्रों में स्वयं उत्पन्न होती हैं।

वानस्पतिक परिचय–दूरवर्त्ती प्रतानिनी **लता पत्र** दंतुर कर्कश रोमश पंचकोणीय पाणिवत् **पुष्प** पीत, **फल** लम्बे ७५-१२५ मि० मी०, अण्डाकार गोल, दंतुर धारयुक्त (मीठी तरोई की अपेक्षा छोटा) फल मज्जा श्वेत, विशेष गंधयुक्त होती है। **पुष्प फल काल**–शरद्।

रासायनिक संगठन-फल में इन्द्रायण के समान तिक्त सत्त्व, बीजों में स्थिर तैल होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त, गुण–तीक्ष्ण, रूक्ष, **वि०** कटु **वी०** उष्ण, पित्तकफशामक। दीपन, विरेचन वामक मूत्रजनन; विषघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–शोथ, व्रण ग्रन्थि पर लेप **आभ्यन्तर**–शोथ, कुष्ठ, पाण्डु यकृत्प्लीहावृद्धि गुल्म, उदर, विषदोषों में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल बीज **मात्रा** ०.३-०.५ ग्राम, शोधनार्थ २–३ ग्राम।

विशेष–मधुर जाति 'तोरई' प्रसिद्ध शाक, तक्त जाति से फल दीर्घ होता है। कड़वी तोरई की फलमज्जा अल्प मात्रा में दीपन तथा शोधन योग्य मात्रा में उत्तम वामक विरेचन है।

धामार्गव

द्रव्य नाम–हिन्दी : तिक्त गलतोरई, नेनुआ।

लेटिन : Luffa Aegyptica.

संस्कृत : धामार्गव, महाकोशातकी, घोषक, कोठफला, राजकोशातकी, महाजालिनी।

वर्गीकरण–वमन, फलिनी (च०)

उत्पत्ति स्थान–इसकी लताएं सर्वत्र मिलती हैं

वानस्पतिक परिचय–इसकी लता पत्र पुष्प तोरई सदृश होते हैं। **फल**–दीर्घ, श्वेत रेखांकित किन्तु तोरई के समान धारदार रेखाएं नहीं होती हैं। **बीज** सपक्ष कृष्ण वर्ण के होते हैं।

गुण कर्म–रस तिक्त कटु, गुण–तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण पित्तकफसंस्रन वामक कफोत्सारि।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर गुल्म, उदररोग, कास, श्वास, रक्तविकार, शोथ, गुल्म में प्रयोग करना चाहिए।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, पुष्प, पत्र **मात्रा** फल स्वरस ३–६ ग्राम० चूर्ण १–३ ग्राम।

विशेष–मधुर गलतोरई (नेनुआ) प्रसिद्ध शाक, मधुर, शीतवीर्य रक्तपित्त शामक है।

पटोल

द्रव्यनाम–हिन्दी : कड़वा परवल, पखर।

लेटिन : Tricosanthes cucumerina.

संस्कृत : पटोल, तिक्त, पाण्डुक, कर्कशच्छद, राजीफल, पांडुफल, अमृतफल, बीजगर्भ, कासभंजन, कुष्ठहा।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र (विशेषतः उत्तर प्रदेश में गंगा के समीपवर्त्ती क्षेत्र) जंगलों एवं पार्वत्य स्थानों में होता है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु रूक्षरोमश स्तम्भी चक्रारोही **लता**; **पत्र** हृदयाकार, दंतुरित; दीर्घ, नोंकदार, कर्कश, अनेक असमान खण्डों में विभक्त,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्प एकलिंगी श्वेत वर्ण **फल** अण्डाकार, श्वेत रेखांकित, दोनों ओर नुकीले, श्वेत हरिताभ अपक्व; पक्व होने पर नारंगी वर्ण के होते हैं।

रासायनिक संगठन–मधुर जाति फल में जल ९२.३%; खनिज द्रव्य ०.५%, प्रोभूजिन २–५%, कार्बोहाइड्रेट १–९%, वसा ०–३%, केलशियम, फासफोरस अयस् प्राप्त होता है।

गुण कर्म–रस तिक्त गुण–रूक्ष, लघु **वी०** उष्ण **वि०** कटु वातकफशामक पित्तसारक दीपन, अनुलोमन, ज्वरघ्न, कृमिघ्न, रक्तशोधक, विषघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः कफज पैत्तिक शोथ, खालित्य, गुदपाक, दाह शिरःशूल में पत्र–मूल लेप **आभ्यन्तर** तृषा दाह अग्निमांद्य, आमदोष, रक्त-विकार, रक्तपित्त शोथ, उदररोग, पाण्डु, अर्श, कामला, कृमि, यकृद्विकार, जीर्णज्वर, मसूरिका ज्वर, विसर्प, विषविकारों में दैनिक चिकित्सो-पयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग **मात्रा** क्वाथ ५०–१०० ग्राम; चूर्ण २–४ ग्राम, स्वरस १०–२० ग्राम, पटोलाद्य चूर्ण–क्वाथ–घृत–तैल।

विशेष-उत्पत्ति स्थान एवं प्रयोग भेद से दो जाति। वन्य–तिक्त चिकित्सार्थ ग्राम्य-मधुर जाति (T- Dioica) शाकार्थ का फल, तिक्त जाति से बड़ा होता है तिक्त जाति मूल तीव्र रेचक होता है। पंचांग भी अधिक मात्रा में प्रयोग करने से वामक, रेचक है।

त्रपुष

द्रव्यनाम–हिन्दी : खीरा, बालमखीरा।

लेटिन : Cucumis Sativus.

संस्कृत : त्रपुष, कण्टकिफल, सुधावास, सुशीतल

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र बालुकामय उष्ण प्रदेशों में अधिक उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–ककड़ी के सदृश वर्षायु रोमश प्रतानिनी **लता; पत्र** दीर्घ पत्रवृन्त पर गोलाकार पंचकोणीय सघन रोमश **पुष्प** एकलिंगी, पीतवर्ण **फल** दीर्घ, स्थूल श्वेत हरिताभ या पीत हरिताभ, फल के अन्त का पार्श्व भाग कण्टकसदृश ग्रंथियुक्त **बीज** ककड़ी सदृश, अनेक श्वेत, स्निग्ध, चिपिटाकृति, दोनों सिरों पर नुकीले होते हैं।

रासायनिक संगठन-बीजों में स्थिर तैल, स्टार्च, शर्करा, राल होते हैं।

गुण कर्म–रस–मधुर गुण–रूक्ष, लघु **वी०** शीत **वि०** मधुर पित्तशामक वातकफवर्धक तृष्णा-दाहशमन, मूत्रल, बृंहण।

आमयिक प्रयोग-बाह्य-पैत्तिकशिरःशूल, अनिद्रा दाह में बीज तैल लेप **आभ्यन्तर** दाह, तृषा, रक्तपित्त, रक्तविकार, कामला, मूत्रकृच्छ्र, दौर्बल्य, श्रम में फल, बीज प्रयोग।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज, फल **मात्रा** बीज चूर्ण १–५ ग्राम। स्वरस २०–५० ग्राम।

विशेष–फलाकृति भेद से छोटी एवं बड़ी २ जातियां; बड़ी जाति का फल बड़ा, पीत हरिताभ छोटी जाति का फल छोटा, कण्टकित श्वेत हरि-ताभ। दाह–तृषा–रक्तपित्त मूत्रकृच्छ्र विकारों में बीज विशेष उपयोगी है।

कुष्माण्ड

द्रव्यनाम–हिन्दी : पेठा, सफेद कुम्हडा।

लेटिन : Benicassa hispida

संस्कृत : कुष्माण्ड, पीतपुष्प, पुष्पफल, वल्ली-फल, बृहत्फल, घृणावास, सोमका, स्थिर फल।

उत्पत्ति स्थान–देश के उष्ण प्रदेशों में प्रायः सर्वत्र रोपण किया जाता है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु दीर्घ प्रसारिणी **लता; शाखाएं** चतुष्कोणीय **पत्र** सदीर्घवृन्त मृदु, श्वेतरोमश, श्वेतचिन्हांकित, गोलाकार, ५ भागों में खंडित **पुष्प** एकलिंगी, पुंपुष्पदण्ड स्त्रीपुष्पदण्ड की अपेक्षा दीर्घ, पीताभ श्वेतवर्ण **फल** अण्डाकार, बृहदाकार (३००–५०० मि० मी० दीर्घ) श्वेत रज से आवृत, सकठिन फलावरण **बीज** श्वेतपीताभ चपटे होते हैं। **पुष्प काल** शीत **फल**–ग्रीष्म।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संगठन–फलमज्जा में श्वेतसार, एक तिक्त राल, मांससार, मायोसिन, शर्करा विटामिन बी, कुकुर्पिटीन क्षार, अन्य क्षारोद। बीजों में स्थिर तैल होता है।

गुणकर्म–रस-मधुर गुण-स्निग्ध, लघु **वी०** शीत **वि०** मधुर वातपित्त शामक कफवर्धक, मेध्य, नाड़ीबल्य–शामक, हृद्य, बृंहण, रक्तपित्तशमन मूत्रल, विषघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य अग्निदग्ध, दाह में पत्र, फलमज्जा लेप **आभ्यन्तर** मस्तिष्क दौर्बल्य, उन्माद अपस्मार, अम्लपित्त, आमाशयव्रण, अन्नद्रव, परिणामशूल; विबंध, रक्तार्श, कृमि, रक्तपित्त, उरःक्षत, क्षय, कास, श्वास, हृद्दौर्बल्य, अश्मरी मूत्राघात (बीज) दौर्बल्य, कार्श्य, जीर्ण ज्वर, पारदविषमयता में अत्युपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र फलमज्जा बीज, बीज तैल **मात्रा** फल स्वरस १०-२० ग्राम बीज चूर्ण ३-५ ग्राम, बीज तैल ५-१० ग्राम। कुष्माण्ड-घृत–चूर्ण–खण्ड-गुड़–अर्क।

विशेष-जाति (क) B. Cerifera (ख) Cucurbita Moschata.। उन्माद, अपस्मार एवं मानसिक विकारों में दैनिक चिकित्सार्थ प्रयोग; आन्त्र कृमि विशेषतः स्फीत कृमि में बीज कल्क चूर्ण तैल प्रयोग के बाद रेचन कर्म अपेक्षित है।

अनुसंधानकार्य–विभिन्न आयु० अनुसंधान केन्द्रों में कुष्माण्ड रस का परिणाम एवं अन्नद्रव शूल में प्रयोग किया जा रहा है।

आर्द्रक कुल
Zingiberaceae Fam.
हरिद्रा

द्रव्य नाम–हिन्दी : हलदी, हल्दी, हर्दी।

लेटिन : Curcuma Longa.

संस्कृत : हरिद्रा, वरवर्णिनी, योषित्प्रिया, निशा, काञ्चनी, गौरी, निशाऽऽख्या, पीता, कृमिघ्नी, हट्टविलासिनी।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा०) तिक्तस्कंध, कुष्ठघ्न, लेखनीय, कण्डूघ्न, विषघ्न (च०) हरिद्रादि, मुस्तादि, श्लेष्मसंशमन (सु०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र विशेषतः बंगाल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र आदि प्रांतों में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–बहु वर्षायु क्षुप १-१.५ मी० अदरक के सदृश; **पत्र** सदीर्घवृन्त, आयताकार भालाकार ०.३-०.५ मी० लम्बे स्निग्ध आम्रगंधि; **पुष्प** सदीर्घ पुष्पवृन्त पीतवर्ण मंजरियों में **कन्द** मूल के नीचे पीत–नारंगीवर्ण ग्रंथियुक्त लम्ब गोल होते हैं। **पुष्पकाल**–वर्षा के प्रारंभ में।

रासायनिक संगठन–कन्द में Curcumin नामक पीत रवेदार रंजक तत्त्व, उड़नशील तैल ५-६% कर्पूरगंध सदृश; हरिद्रा तैल पीत सान्द्र; स्टार्च २४% अलब्युमिनाइड्स ३०% होते हैं।

गुण कर्म–रस–तिक्त कटु गुण–लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण त्रिदोषशामक। दीपन. लेखन, वर्ण्य कुष्ठघ्न, कृमिघ्न, व्रणघ्न, शोथहर तिक्त पौष्टिक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–आघातजशोथ, वेदना अर्श व्रण, कण्डू, कुष्ठ, वैवर्ण्य में लेप, मूर्च्छा, हिक्का में धूम्रपान, नेत्राभिष्यंद में नेत्रबिन्दु **आभ्यन्तर**–शीतपित्त, उदर्द पाण्डु, कुष्ठ, कृमि, विबंध, कास, श्वास, प्रमेह, स्तन्यदोष शुक्रदोष, गर्भाशयशोथ, प्रदर विषविकारों में दैनिक चिकित्सोपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–कन्द भौमिक काण्ड **मात्रा** चूर्ण २-४ ग्राम, स्वरस १०–२० ग्राम; हरिद्राखण्ड, बृहत् हरिद्राखण्ड।

विशेष–जातियां (१) वन हरिद्रा; क्षुप हरिद्रा सदृश पत्र कन्द दीर्घ विस्तृत (२) आम्रगंधि हरिद्रा कन्द स्थूल गोल। अम्लरंगेच्छु श्वेतकायाणु वृद्धि एवं अनूर्जता जन्य विकारों में घृतभ्रष्ट हरिद्रा चूर्ण विभिन्न केन्द्रों में किये गये परीक्षणानुसार अत्युपयोगी सिद्ध हुआ है। प्रमेह में हरिद्रा एवं आमलकी क्वाथ का चिकित्सा में प्रभूत प्रयोग होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शुण्ठी

द्रव्यनाम–हिन्दी : सोंठ, सूंठ।

लेटिन : Zingiber Officinale.

संस्कृत : शुण्ठी, विश्वा, नागर, विश्वभेषज, शृंगवेर, कटुभद्र, ऊषण, महौषध, आर्द्रज; शुष्कार्द्र।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०) शूलप्रश०, तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, दीपनीय, तृष्णानिग्रह (च०) पिप्पल्यादि, त्रिकटु (सु०)

उत्पत्ति स्थान–इसकी खेती सुधा, कार्बन बालूमिट्टी, उर्वरा, आर्द्र भूमि में विशेषतः पंजाब बंगाल, तमिलनाडु, केरल में की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु क्षुप; **पत्र** बांस के समान किन्तु छोटे ७५–३५० मि० मी० दीर्घ तथा ३० मि० मी० चौड़े स्निग्ध रेखाकार **पुष्प** बहुत कम बैंगनीवर्ण मंजरियों में **कन्द** आर्द्रक अनियमित ग्रंथियुक्त धूसर पीत होता है।

रासायनिक संगठन–कन्द में उड़नशील तैल १–३% पीत कटु सत्त्व जिंजरोल, जिंजीरीन, रेजिन स्टार्च, भस्म ६% होते हैं।

गुण कर्म–रस–कटु गुण–लघु, स्निग्ध वि० मधुर वी० उष्ण वातकफहर, दीपन, रोचन, शूल-प्रशमन, वातानुलोमन हृद्य, अर्शोघ्न गर्भाशयशोधक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–शोथ आमवात, शोथ-युक्त वेदना विकारों में लेप, शैत्य में चूर्ण–अव-घर्षण **आभ्यन्तर**–अरोचक तृषा छर्दि, अग्निमांद्य, आध्मान, शूल, अर्श हृच्छूल, कास, श्वास, शोथ, प्रतिश्याय, आमवात जीर्ण संधिशोथ प्रसवोत्तर दौर्बल्य में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–कन्द (भौमिक कांड) **मात्रा** चूर्ण ०.५–२ ग्राम, क्वाथ १०–३० ग्राम, सौभाग्यशुंठी पाक, आर्द्रक खंड. पंचसकार चूर्ण।

विशेष–आर्द्रक की बाह्यस्त्वक् अलग कर जल, दुग्ध में उबाल कर शुष्क करने पर प्राप्त द्रव्य शुण्ठी कहलाता है। कन्दों को मुलतानी मिट्टी के हल्के विलयन में डुबोकर शुष्क किया जाता है। इससे कन्दों में शीघ्र कृमि नहीं लगते हैं। देश भेद एवं निर्माण भेद से दूधिया सोंठ. मैदा सोंठ मुख्य जाति। **शुद्ध द्र० प०** प्रकन्द ५०–१०० मि० मी० दीर्घ २०–४० मि० मी० स्थूल, चिपिटाकृति, हल्के भूरे या पीताभ भूरे वर्ण के; बाह्यतल लम्बाई में झुर्रीदार, रेखायुक्त, टूटा हुआ तल, सूत्रयुक्त पिष्ट-प्रधान। निर्माण उत्पत्ति स्थान भेद से प्रकंदों की रचना, गंध, स्वाद में भिन्नता होती है।

अनुसंधान कार्य–क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र जयपुर में ग्रहणीरोग में शुण्ठी चूर्ण प्रयोग जारी है।

एला

द्रव्य नाम–हिन्दी : छोटी इलायची।

लेटिन : Elettaria Cardamomum.

संस्कृत : एला, कोरंगी, द्राविड़ी, उपकुंचिका, कुमारी, त्रिपुटा, तुत्था' गौराङ्गी, त्रुटि, पृथिवी, क्षुद्रैला।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा०प्र०) कटुकस्कंध, अङ्गमर्दप्रशमन, श्वासहर, शिरोविरेचन, (च० एलादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमी दक्षिण भारत के आर्द्र पर्वतीय क्षेत्रों में विशेषतः कर्नाटक, केरल, गुजरात में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित, बहुवर्षायु पत्रमय क्षुप १.३ मी० से २.५ मी० ऊंचा, मूल के नीचे अनुप्रस्थ मांसल कंद **पत्र** एकान्तर सुगंधि दीर्घ ०.३–०.६ मी० तथा २५–५० मि० मी० चौड़े स्निग्ध भालाकृति **पुष्प** दीर्घ पुष्प दण्ड पर छोटे श्वेत रक्ताभ वर्ण **फल**–गुच्छों में हरिताभ श्वेत स्फोटी त्रिकोष्ठीय **बीज**-छोटे गोल कृष्ण धूसर होते हैं। **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–बीजों में स्थिर तैल १०% तथा उड़नशील तैल ३–५% स्टार्च, पिच्छिल सत्त्व पोटेशियम लवण एवं पीत रंजक तत्त्व होते हैं।

गुण कर्म–रस–कटु मधुर गुण-लघु, रूक्ष वि० मधुर वी० शीत त्रिदोषशामक, रोचन, दीपन,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तृष्ण-दाह प्रशमन, छर्दिघ्न, वातानुलोमन, शूलहर, हृद्य, मूत्रजनन। शिरोविरेचन।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर–तृषा, अरोचक हृल्लास, अग्निमान्द्य छर्दि, उदरशूल, आनाह, उदावर्त, हृद्दौर्बल्य, श्वास, कास (क्षतज, क्षयज) क्षय, बस्तिशूल में तथा दाहप्रधान विकारों में मुख्यतः उपयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल तैल **मात्रा** चूर्ण ०.५–१ ग्राम, तैल ५–१० बूंद, सितोपलादि चूर्ण एलादि चूर्ण, एलाद्य-वटी–क्वाथ।

विशेष–बृहत् एला (बड़ी इलायची) की खेती पूर्वी प्रान्तों में (बंगाल, आसाम); क्षुप एला सदृश पत्र अधिक विस्तृत पुष्प श्वेत नलिकाकार, फल रक्त धूसर त्रिकोणाकार २५ मि० मी० दीर्घ होता है। **शुद्ध द्रव्य प०** कर्नाटक की इलायची उत्तम ताजी स्थूल, तीव्रगंध युक्त, बीज कठिन, कृष्ण रक्ताभ, ४ मि० मी० दीर्घ, बाह्यतल में चौड़ाई में ६–८ झुर्रियां होती हैं। **मिलावट एवं परीक्षा**–देशी एला फल अधिक दीर्घ झुर्रीदार, बीज की लम्बाई में ४ झुर्रियां तथा अर्क खिचे फल, फीके वर्ण के अल्प सुगंधि होते हैं।

कर्चूर

द्रव्यनाम–हिन्दी : कचूर।

लेटिन : Curcuma Zedoaria.

संस्कृत : कर्चूर, द्राविड, शटी, वेधमुख्य।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–पूर्वी हिमालय तथा दक्षिण भारत में स्वयं उत्पन्न तथा खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–हल्दी सदृश **क्षुप** ०.३–०.६ मी० ऊंचा **पत्र** ४ से ६, ०.३ मी० से ०.५ मी० दीर्घ हल्दी सदृश हरित श्यावाभ भालाकार धूसर, नील, रक्ताभ शिरायुक्त **पुष्प** नलिकाकार गुच्छों में पीत वर्ण **फल** प्रावर अण्डाकार होते हैं। **पुष्प काल** ग्रीष्म **फल** वर्षा।

रासायनिक संगठन–कन्द में उड़नशील तैल स्टार्च, शर्करा, एक तिक्त राल, सेन्द्रिय अम्ल, जेडोएरिन (Zedoarine) सत्त्व होता है।

गुणकर्म–रस–कटु तिक्त गुण-तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक, रोचन दीपन, हृद्य, वातानुलोमन, कफोत्सारि, मूत्रल, आर्त्तवजनन, शोथहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य शोथ, ग्रन्थि वेदना युक्त स्थान पर लेप **आभ्यन्तर**–कृमि, छर्दि, गुल्म जलोदर, अग्निमांद्य, शूल, अर्श, कास, श्वास हिक्का शोथ, रक्तविकार कुष्ठ, त्वग्रोग, पूयमेह, कष्टार्त्तव में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–कन्द **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम; कर्चूर तैल।

विशेष–मूल के नीचे हल्दी के समान कंद श्वेत धूसर कर्पूर गंधयुक्त होते हैं। आमाशयान्त्र, यकृत् हृदय गर्भाशय पर उत्तेजक क्रिया होती है। **जाति** बाजार में नर कर्चूर (काली हल्दी) C. Caesia Roxb. की प्राप्ति, बंगाल में मुख्यतः उत्पन्न, यह दीर्घ एवं गांठदार प्रकन्द रूप में, बाहर से गाढ़े भूरे वर्ण, अन्दर से कृष्णाभ धूसर कर्पूर सदृश सुगंधित होता है।

शठी

द्रव्यनाम–हिन्दी : गंधपलाशी, कपूरकचरी।

लेटिन : Hedychium Spicatum.

संस्कृत : शठी, पलाशी, षड्ग्रन्था, सुव्रता, गंधमूलिका, गंधारिका।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा० प्र०) श्वासहर, हिक्कानिग्रहण (च०)

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के समीपवर्त्ती प्रांत सिक्किम हिमाचल प्रदेश, पश्चिमोत्तर उत्तर प्रदेश, पंजाब में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित वर्षायु **क्षुप** कर्चूर सदृश; पत्र हल्दी के समान किन्तु छोटे **पुष्प** दीर्घ पुष्पवृन्त पर श्वेत वर्ण **फल** त्रिदल, गोल, स्निग्ध **मूल** सुगंधि, प्रकन्द तथा अनुप्रस्थावस्था में अवस्थित होता है। **पुष्प फल काल**–वर्षा।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संगठन–कन्द में शर्करा, स्टार्च, गोंद, पिच्छिल द्रव्य, सेल्युलोज, अलब्यूमिन, स्थिर तैल एवं सुगन्धित द्रव्य होते हैं।

गुणकर्म–रस-कटु, तिक्त, कषाय, गुण-तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफघ्न, दौर्गन्ध्यहर, दीपन, कफोत्सारि, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–व्रण, शोथ, संधिशोथ में लेप, मुख दंत रोगों में गंडूष मंजन प्रयोग **आभ्यन्तर** छर्दि, शूल, अग्निमान्द्य, अतिसार, कास. श्वास, हिक्का, ज्वर में मुख्योपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं- कन्द **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, शठ्यादि क्वाथ–चूर्ण।

विशेष-कन्द स्थूल दीर्घ, इन्हें काटकर शुष्कीकृत छोटे २ गोल २ कटे हुए टुकड़े प्राप्त किये जाते हैं। ये श्वेत वर्ण के पिष्टमय, बाह्यस्त्वक् रक्ताभ धूसर। **द्र० परीक्षा** बाह्यत्वक् एवं मध्यवस्तु पृथक् २; त्वक् रक्ताभ भूरे वर्ण की गोल, रेखा एवं चिन्ह युक्त; अन्तर्वस्तु श्वेत, कर्पूरगंधि, स्वाद में तिक्त तीक्ष्ण होती है।

आम्रगन्धि हरिद्रा

द्रव्यनाम–हिन्दी : आंबाहल्दी, कर्पूर हल्दी।

लेटिन : Curcuma aromatica.

संस्कृत : आम्रगंधिहरिद्रा, कर्पूरा, पद्मपत्रा, सुगंधा, सुरभी, दार्वीभेदा, सुरभिदारु, सुरनायिका, वनहरिद्रा।

उत्पत्ति स्थान–बंगाल एवं पश्चिमी भारत (महाराष्ट्र, कैरल, गोवा) में स्वयं उत्पन्न एवं खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–हरिद्रा सदृश ०.६–१ मी० **क्षुप**; स्तम्भ स्थूल **कन्द** गोलाकार, झुर्रीदार, स्थूल आर्द्रक सदृश नारंगीवर्ण, आर्द्रकन्द आम्रगंधि, शुष्क कर्पूर गंधि **पत्र** हल्दी सदृश किन्तु अधिक दीर्घ एवं विस्तृत, नुकीले, विविध वर्ण युक्त होते हैं। **पुष्प** दीर्घ पुष्पदण्ड ,पत्र छोटे २ पीताभ वर्ण होते हैं। **पुष्पकाल**–शरद्।

रासायनिक संगठन–कन्द में एक उड़नशील तैल, राल शर्करा, स्टार्च, अलब्युमिनाइड्स, क्रियाशील क्षार एवं सेन्द्रिय अम्ल होते हैं।

गुण कर्म–रस–तिक्त, मधुर गुण–लघु, रूक्ष **वी०** शीत **वि०** कटु पित्तकफहर, वर्ण्य, दीपन, रक्तशोधन, श्वास कासहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–सद्यव्रण, त्वग्रोग, वैवर्ण्य, व्यङ्ग में लेप **आभ्यन्तर** अरोचक, अग्निमांद्य, श्वास, कास (पैत्तिक) हिक्का, वातरक्त, त्वग्रोग, रक्तविकार, कण्डू में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–कन्द **मात्रा** २-४ ग्रा०

विशेष–**शुद्ध द्रव्य प०** कन्द सामान्यतः हरिद्रा सदृश आयताकार या शंक्वाकृति, बाह्य तल श्वेत भूरे वर्ण का या धूसर, वर्तुल चिन्हांकित क्वचित् सूत्रयुक्त; कन्द को तोड़ने पर टूटा तल गाढ़े नारंगी वर्ण युक्त; कन्द कर्पूर सदृश तीव्र गंधि होते हैं।

कुलञ्जन

द्रव्य नाम–हिन्दी : कुलिञ्जन, महाभरी।

लेटिन : Alpinia Galanga.

संस्कृत : महाभरी वचा, मलयवचा, कुलञ्जन, उग्रगंधा, सुगंधा, एलापर्णी।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान—बंगाल, दक्षिण भारत, मालावार, गोवा के वन्य क्षेत्रों में स्वयं उत्पन्न एवं खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–आम्रगंधि हरिद्रा सदृश **क्षुप** २-२.३ मी०; **मूल** कन्दवत्, सुगंधि इसके शुष्कीकृत खंडित टुकड़े बाजार में प्राप्त होते हैं जो रक्ताभ, बादामी वर्ण अंगुष्ठ समान स्थूल २५-७५ मि० मी० दीर्घ अन्दर मुद्रिकाकृति रेखायुक्त होते हैं। **पत्र** दीर्घ (०.३-०.६ मी०) स्निग्ध, अंडाकार, निम्न पृष्ठ रोमश **पुष्प** वक्र, छोटे, हरिताभ श्वेत **फल** वर्तुल रक्त पीताभ होते हैं। **पुष्प काल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–मूल में पीताभ सुगंधित

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उड़नशील तैल १.५-४.८% में Eugenol २५%, Methyl cinnamate ४८%, cineol २०-३०%, मूल में स्टार्च २८%, वसा Galagin, Alpinin क्षाराभ होते हैं।

गुण कर्म–रस-कटु गुण तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष **वी०** उष्ण **वि०** कटु वातकफशामक, दीपन, कण्ठ्य, श्वासघ्न, बाजीकर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य स्वरभेद, मुखदौर्गन्ध, अवसाद, शैत्य, खल्ली, दंतशूल **आभ्यन्तर** अरोचक, अग्निमांद्य, छर्दि, उदरशूल, आध्मान, कास, श्वास प्रतिश्याय, स्वरभेद, बहुमूत्र, प्रमेह ध्वजभंग में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग–मूल **मात्रा** ०.५–२ ग्राम।

विशेष–स्वरभेद गलग्रह वाक्दोष (स्पष्ट शब्द उच्चारण न करना) मुख दौर्गन्ध में बाजीकरण के लिए मूल चर्वण–धारण। अतिस्वेद जन्य अवसाद, शैत्य में चूर्णाविघर्षण, खल्ली में कोष्ण लेप मधुमेह में मूत्र की मात्रा कम करने के लिए फाण्ट प्रयोग। प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख नहीं है। अन्य जातियां (A. officinarum. A. chinensis) होती हैं।

एरण्ड कुल
Euphorbiaceae Fam.
आमलकी

द्रव्य नाम–हिन्दी : आंवला, आमला।

लेटिन : Phyllanthus Emblica.

संस्कृत : अमृता, शिव, श्रीफल, कर्षफल, कायस्था, वृत्तफला, जातीफल, धात्री, पंचरसा, तिष्यफल।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा०) वय : स्थापन, विरेचनोपग (च०) परुषकादि, त्रिफला (सु०)

उत्पत्ति स्थान–देश के प्रायः सभी प्रान्तों के वन, उपवन, पार्वत्य स्थानों, उद्यानों में रोपण तथा स्वयं उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–वृक्ष छोटा या मध्यमाकार ६–१० मी० **पत्र** हरितपीताभ संयुक्त इमली के पत्तों के समान किन्तु पत्रक तनु, छोटे **पुष्प** एकलिंगी, मंजरियों में पीत वर्ण सुगंधित **फल** वर्त्तुल पीत हरित, माँसल षट् रेखायुक्त **बीज** १ षट्कोणीय कठिन होते हैं। **पुष्प काल** शरद् **फल** शिशिर।

रासायनिक संगठन–फल में टैनिन, टैनिक एवं गैलिक एसिड, ग्लुकोज, खनिज तत्त्व (लौह, केल्शियम) पेक्टिन तथा एसकोर्बिक एसिड प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

गुण कर्म–रस अम्ल कषाय मधुर कटु तिक्त गुण-लघु, रूक्ष **वि०** मधुर **वी०** शीत त्रिदोष शामक, रसायन, बृंहण, चक्षुष्य, मेध्य, दीपन, अनुलोमन शोणितास्थापन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य दाह, पालित्य, नेत्र रोग **आभ्यन्तर** अरुचि, छर्दि गुल्म उदावर्त, अर्श, ग्रहणी, शोथ रक्तपित्त तृषा हृद्रोग, यक्ष्मा, शोष, प्रतिश्याय, कास, श्वास, मेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, कुष्ठ दौर्बल्य नेत्र एवं शिरो रोगों में दैनिक चिकित्सोपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–फल, पत्र **मात्रा** चूर्ण २-४ ग्राम, स्वरस १०-२० ग्राम धात्रीलौह धात्र्यरिष्ट आमलकी रसायन, च्यवनप्राश।

विशेष–देश भेद से **२** जाति (क) ग्राम्य फल मुदु मांसल, बड़े (ख) वन्य फल छोटे, कठिन, कषाय रस प्रधान। टेनिन से फल को अधिक समय उबालने पर भी विटामिन सी नष्ट नहीं होता है। नेत्र विकारों में त्रिफला फाण्ट से प्रक्षालन। प्रमेह में हरिद्रा आमलकी क्वाथ प्रयोग सर्व विदित है।

एरण्ड

द्रव्य नाम–हिन्दी : अरण्ड, एरण्ड, रेंडी।

लेटिन Ricinus communis.

संस्कृत : पञ्चांगुल, गंधर्वहस्त, वातारि चित्रक, व्याघ्रपुच्छ, उरुबूक, दीर्घदण्डक, वर्धमान व्यडम्बक उत्तानपत्रक।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) मधुरस्कंध, अंगमर्द प्रश०, भेदनीय, स्वेदोपग (च०); वातसंशमन, अधोभागहर (सु०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र वन्य, कृषि भूमि में मुख्यतः बंगाल महाराष्ट्र, तमिलनाडु आदि प्रान्तों में खेती भी की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–सुपरिचित २-४ मी० गुल्माकृति **वृक्ष** काण्ड, शाखा, पत्र, श्वेतरज युक्त, **पत्र** खंडित चौड़े, हरित रक्ताभ अंगुलिवत् ५-७ खण्डों में विभक्त, पत्र वृन्त दीर्घ नलिकाकार **पुष्प** एक लिंगी, रक्त वैंगनी वर्ण सवृन्त कांडज पुष्पव्यूह **फल** गोल त्रिकोष्ठीय समृदुकंटक **बीज** गोल लम्बे माँसल, स्निग्ध, धूसर श्वेत चित्रित, मज्जा स्निग्ध एवं श्वेत होती है। **पुष्पकाल** शीत **फल** ग्रीष्म

रासायनिक संगठन–बीजमज्जा में स्थिर तैल ४५% मांससार २०% शर्करा, स्टार्च, **क्षार** १०%, मांसजातीय विषाक्त तत्त्व रिसिन। तैल में रिसिनोलिकाम्ल, वसाम्ल प्रभृति अम्ल होते हैं।

गुणकर्म–रस-मधुर कटु कषाय गुण-तीक्ष्ण; गुरु स्निग्ध, सूक्ष्म **वि०** मधुर **वी०** उष्ण, त्रिदोषहर भेदन, स्वेदोपग, शोथहर, त्वच्य, स्रोतोविशोधन, गुल्मघ्न, शूलहर, बृंहण बाजीकर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–शोथ स्तनशोथ ग्रन्थि वातव्याधि त्वग्रोगों में पत्रोपनाह या तैलाभ्यङ्ग **आभ्यन्तर**–गुल्म विबंध, कृमि, अर्श, शूल कटिबस्तिशूल, अश्मरी, श्वास, कास, अर्दित, आमवात, गृध्रसी, पक्षाघात, नाड़ीशूल, मेह, शुक्रदोष, योनिरोग; कुष्ठ रक्तविकारों में नित्य चिकित्सोपयोगी द्रव्य है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज, पत्र, मूल, तैल **मात्रा** तैल २०-५० ग्राम, मूल कल्क ५-१० ग्राम, क्वाथ ४०–५० ग्राम। एरण्ड सप्तक, रास्नादि क्वाथ, एरण्ड पाक, विषगर्भ तैल।

विशेष–जाति श्वेत, रक्त-जाति का काण्ड रक्तवर्ण। आकृतिभेद से छोटा बड़ा २ जाति। गुरु स्निग्ध उष्ण तथा मधुर वि० होने से वातशामक प्रमुख द्रव्य है।

अनुसंधान कार्य–एरण्ड स्नेह प्रधान योग सुकुमार कु०घृत का परिणाम शूल में सैन्ट्रल रिसर्च इन्स्टीट्यूट चेरुथुरथी में प्रयोग जारी है।

स्नुही

द्रव्यनाम–हिन्दी : थूहर, थूअर, सेहुंड।

लेटिन : Euphorbia Neriifolia.

संस्कृत : सेहुण्ड, समन्तदुग्ध, वज्रकंटक महावृक्ष, नागद्रु, काण्डशाख, स्नुही, बहुशाखी, वज्री।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०) विरेचन, मूलिनी (च०) अधोभागहर, श्यामादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–वन्य एवं पर्वत्तीय भूमि में उत्तर प्रदेश, राजस्थान गुजरात, बंगाल, बिहार दक्षिणभारत के पर्वतीय क्षेत्रों में गुल्म स्वयं उत्पन्न होते हैं :

वानस्पतिक परिचय–बड़ी जाति का **गुल्म** २-५ मी० कांड शाखा एकान्तरिक; सुषिर, मांसल **पत्र** स्थूल लट्वाकृति **पुष्प** शाखाग्र रक्ताभ पीत श्वेत वर्ण **फल** प्रावर त्रिकोषीय **बीज** छोटे २ गोल मृदु, रोमश, गुल्म को तोड़ने पर प्रत्येक भाग से दुग्ध निकलता है। **पुष्प फल काल**-वसंत।

रासायनिक संगठन–यूफोर्बोन नामक क्षार, राल, गोंद, काऊचूक मालेट ऑफ केल्शियम।

गुण कर्म–रस–कटु, तिक्त गुण–तीक्ष्ण, लघु, स्निग्ध; **वि०** कटु **वी०** उष्ण, वातकफशामक, तीव्र रेचन, वेदनास्थापन, रक्तशोधन, कफोत्सारि, विषहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-शोथ, चर्मरोग, दंतकर्ण शूल, अर्श, ध्वजभंग में क्षीर, पत्र रस लेप, अभ्यंग, पूरण; **आभ्यन्तर**-गुल्म, शूल. यकृत्प्लीहा वृद्धि, पाण्डु, शोथ मधुमेह, त्वग्रोग, विषविकारों में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–क्षीर, पत्र, कांड, मूल **मात्रा** पत्रस्वरस ५-२० बूंद. क्षीर २-१० बूंद,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पत्रचूर्ण १-२ ग्राम, वज्रक्षार, स्नुह्यादि तैल।

विशेष—जाति बहुकण्टक स्नुही; अल्पकण्टक सेहुण्ड। डण्डा, अंगुलिया, त्रिधारा, चौधारा, पंचधारा, विविध प्रकार की जातियां होती हैं। अधिक सेवन से अन्नवहस्रोतस् में प्रदाह एवं स्थानिक प्रयोग से शोथ स्फोट आदि विकार हो जाते हैं। निवारण-घृत, दुग्ध अन्तः प्रयोग एवं शतधौतघृत का बाह्य प्रयोग करना चाहिए।

कम्पिल्लक

द्रव्य नाम हिन्दी : कबीला, कमीला।

लेटिन : Mallotus philippinensis.

संस्कृत : कम्पिल्लक, कर्कश, चन्द्र; रक्ताङ्ग, रोचन।

वर्गीकरण-हरीतक्यादि (भा०प्र०) विरेचन(च०) अधोभागहर, श्यामादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान—पार्वत्य भूमि, हिमालय के निम्नवर्त्ती पूर्वीक्षेत्र बंगाल, आसाम।

वानस्पतिक परिचय—सर्वदा हरित **वृक्ष** मध्यमाकार **पत्र** एकान्तरिक, अण्डाकार उदुम्बर सदृश **पुष्प** छोटे एकलिंगी रक्तवर्ण के **फल** त्रिकोष्ठीय बेरसदृश गुच्छों में रक्तरजावृत **बीज** कृष्ण, गोल, स्निग्ध। रक्त रज को कम्पिल्लक कहते हैं। **पुष्पकाल** शरद् **फल** वसंत।

रासायनिक संगठन—फल रज में एक रक्त पीत राल ८०% जिसमें Rotllerine स्फटिक द्रव्य, रंजकद्रव्य, कषाय द्रव्य, स्टार्च होते हैं।

गुण कर्म—रस—कटु गुण—रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण **वि०** कटु **वी०** उष्ण कफवातशामक, रेचन, वातानुलोमन, कृमिघ्न, त्वग्रोगहर।

आमयिक प्रयोग—बाह्य-व्रणशोधन—रोपण—जीवाणुनाशन होने से त्वग्रोग अग्निदग्ध व्रण कण्डू में तैल में मिलाकर लेप **आभ्यन्तर** उदर कृमि (विशेषतः स्फीत कृमि गण्डूपद कृमि) विबन्ध, गुल्म आध्मान, रक्तविकारों में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं-फलरज **मात्रा** १.५ ग्राम, बच्चों को ०.५ ग्राम। पामाहर लेप।

विशेष शुद्ध कम्पिल्लक परीक्षा (१) जल में अविलेय इथर अल्कोहल में घुलनशील (२) लघु स्वाद हीन (३) जलार्द्र अंगुलि से कबीला लेकर कागज पर रगड़ने से पीत रेखा बनती है (४) जलाने पर बारुद की तरह ज्वलन शील।

भौतिक परीक्षा—शुद्ध कम्पिल्लक रक्त, रक्ताभ भूरे वर्ण का बारीक दानेदार चूर्ण जो स्वाद रहित, निर्गन्ध होता है। **मिलावट** रक्त वर्ण की बालुई मृत्तिका, इष्टिका चूर्ण, फल के छिलके के सूक्ष्म कण मिश्रित किये जाते हैं।

अनुसंधान कार्य—विभिन्न आयुर्वेदीय अनुसंधान केन्द्रों में कृमियों में तीन सप्ताह तक ३० मि० ग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भारानुसार २ विभक्त मात्रा में मधु के साथ देने से प्राप्त परिणाम लाक्षणिक शमन के रूप में प्राप्त हुए हैं।

जयपाल

द्रव्य नाम—हिन्दी : जमालगोटा।

लेटिन : Croton tiglium.

संस्कृत : जयपाल, तिन्तिड़ीफल, दन्तीबीज।

वर्गीकरण—गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान—हिमालय के पूर्वी प्रान्त बंगाल, आसाम के वन्य क्षेत्रों में वृक्ष स्वयं उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय-छोटे **वृक्ष** सर्वदा हरित, शाखाएं छोटी रोमश **पत्र** लम्बगोल ५०-१०० मि० मी० दीर्घ दंतुरधार ३-५ प्रधान शिराएं, स्निग्ध तीक्ष्णाग्र **पुष्प** हरिताभ पीत मंजरी में शाखाग्र प्रायः एकलिंगी होते हैं। **फल** अण्डाकार त्रिकोणीय त्रिकोष्ठीय **बीज** बादामी वर्ण, मांसल, एरण्डसदृश होते हैं। **पुष्प काल** ग्रीष्म **फल** शीत।

रासायनिक संगठन—बीजों के स्थिर तैल, में ओलिईक पामिटिक, टिग्लिक अम्ल। तैल में एक रालीय सत्त्व जो स्थानीय क्षोभक एवं विस्फोटजनक होता है।

गुण कर्म—रस—कटु गुण—तीक्ष्ण, स्निग्ध, गुरु,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वि० कटु वी० उष्ण कफवातहर। तीव्र रेचन, कृमिघ्न, विषहर।

आमयिक प्रयोग–वाह्य–खालित्य, त्वग्रोग, शोथ, संधिवात में बीज, तैल लेप **आभ्यन्तर** कृमि, जीर्णविबंध, जलोदर, सर्वाङ्ग शोथ, ज्वर, आमवात, विषदोष में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-बीज, तैल **मात्रा** बीज चूर्ण ३२–१२५ मि० ग्रा० तैल ½–१ बूंद, घृत या नवनीत के साथ। इच्छाभेदी रस, जलोदरारि रस नाराच रस Croton oil.

विशेष–अति सेवन से आमाशयांत्र प्रद्राह, उद्वेष्टन, शूल रक्तातिसार आदि विकार हो जाते हैं। **निवारण**–जल में कत्था घिसकर या निम्बुरस, दधि, घृत, दुग्ध का प्रयोग करना चाहिए।

दन्ती

द्रव्यनाम–हिन्दी : दन्ती, छोटीदन्ती।

लेटिन : Baliospermum Montanum.

संस्कृत : दन्ती, एरण्डफला, घुणप्रिया, उदम्बरपर्णी, निकुंभा, प्रत्यक्श्रेणी।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०) विरेचन, मूलिनी, मूलासव (च०) श्यामादि, अधोभागहर (सु०)

उत्पत्ति स्थान-पूर्वी हिमालय में आसाम, बंगाल, बिहार, दक्षिण भारत में गुल्म स्वयं उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–छोटा **गुल्म** १–२ मी० अनेक शाखाएं मूलोद्भूत कांड शाखाएं रोमश रक्ताभ **पत्र** अन्जीर सदृश विभिन्न आकृतियों के, ३–५ भागों में खंडित, एकान्तर क्रम में **पुष्प** एकलिंगी हरिताभ, शाखाग्र मंजरियों में **फल** प्रावर त्रिकोष्ठीय, रोमश जिनमें धूसर **बीज** ३ एरण्ड सदृश होते हैं। **पुष्पकाल** वसंत **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–बीजों में स्थिर तैल, मूल में राल एवं स्टार्च होता है।

गुण कर्म–रस–कटु गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष, गुरु, वि० कटु वी० उष्ण वातकफहर, रेचन, पित्त-सारक, कृमिघ्न, विषघ्न, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग–वाह्य अर्श में मूल लेप, वातव्याधि में तैलाभ्यंग आभ्यन्तर अर्श, गुल्म, कृमि, उदररोग, जलोदर, तीव्रविबंध, श्वास, त्वग्रोग कुष्ठ, अश्मरी, शोथ, कामला, यकृत्लीहावृद्धि, ज्वर में विशेष उपयोगी हैं।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज, मूल **मात्रा** बीज १२५–२५० मि० ग्रा० मूल चूर्ण १-२ ग्राम। दंतीहरीतकी, दन्त्यरिष्ट।

विशेष–अधिक मात्रा में सेवन करने से हृल्लास, क्षोभ, उद्वेष्टन, अतिसार छर्दि आदि विकार उत्पन्न होते हैं। **निवारण**–मधुर, स्निग्ध द्रव्य। इसके प्रयोग के साथ सौंफ, गुलाबपुष्प शुण्ठी सुगंधित द्रव्यों का प्रयोग अपेक्षित है।

जाति–इसकी एक जाति C. Oblongifolius नागदन्ती होती है।

दुग्धिका

द्रव्य नाम–हिन्दी : छोटी दुधी (श्वेत)।

लेटिन : Euphorbia Microphylla.

संस्कृत : दुग्धिका, क्षीरा, विक्षीरिणी, स्वादुपर्णी, नागार्जुनी।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०प्र०)

उत्पत्ति स्थान–उष्ण जलवायु प्रधान प्रांत-बंगाल, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु, रोमश सरल या प्रसरी **क्षुप** शाखाएं अनेक, तोड़ने से दुग्ध स्रवित। **पत्र** अभिमुख द्वि पंक्ति में अण्डाकार, आयताकार, नुकीले **पुष्प** छोटे हरित गुलाबी, रोमश **फल** प्रावर रोमश **बीज** छोटे रक्त धूसर होते हैं। **पुष्प फल काल** प्रत्येक ऋतु में पुष्प फल लगते हैं।

रासायनिक संगठन–पंचांग में जल विलेय गेलिक एसिड कर्सेटीन, ग्लुकोसाइड; शर्करा एवं सुगन्धित तेल होते हैं।

गुण कर्म–रस–कटु, तिक्त, मधुर गुण–गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण वि० कटु वी० उष्ण, पित्तकफशामक,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अनुलोमन, रक्तशोधन, मूत्रल, विषघ्न ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य त्वग्रोगों में लेप **आभ्यन्तर** विबंध, कृमि, प्रवाहिका, छर्दि, श्वास, कास, उपदंश, पूयमेह, अश्मरी रक्तविकार, विषदोष स्तन्याल्पता, वन्ध्यत्व, कृच्छ्रार्त्तव ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग **मात्रा** क्वाथ २०–४० ग्राम, स्वरस ५–१० ग्राम ।

विशेष–शाखा, पत्र तोड़ने से दुग्ध निकलता है । आकृति भेद से लघु, बृहत् (E.hirta) दो जाति । लघु दुग्धी भी वर्ण भेद से श्वेत, रक्त जाति (E.thymifolia) । रक्त दुग्धी का क्षुप ताम्र रक्त वर्ण का होता है ।

पुत्रजीवक

द्रव्यनाम–हिन्दी : जियापोता, पुत्रजिया ।

लेटिन : Putronjiva Roxburghii.

संस्कृत : पुत्रजीवक, गर्भकर, गर्भदा, कुमारजीवा, यष्टीपुष्प, अर्थसाधक ।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–देश के शीतोष्ण प्रदेश–कुमाऊं से पूर्व की ओर, कर्नाटक, गोवा, पूर्वी-पश्चिमी घाट के बागों में वृक्ष लगाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित वृक्ष मध्यमाकार **काण्ड** सरल, दीर्घ कृष्ण धूसर **पत्र** आसापाला सदृश किन्तु छोटे, चमकीले, हरित दंतुरित, नुकीले **पुष्प** छोटे पीताभ श्वेत गुच्छों में **फल** भरवेर सदृश नुकीले होते हैं । **पुष्प काल** शीत **फल** वसंत ।

रासायनिक संगठन बीज की मज्जा २८.८६% में ४२.९% स्वच्छ तैल, जिसमें ग्लिसरीन सदृश क्षाराभ (Glycerides of certain acids) होते हैं ।

गुण कर्म–रस–लवण, कटु, गुण–रूक्ष, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत वातकफहर शोथघ्न, तृषादाहप्रशमन, विषघ्न, गर्भस्थापन ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य गंडमाला, कर्णमूलग्रंथि, कुक्षिग्रंथि, श्लीपद में फलमज्जा, त्वक्, पत्र लेप **आभ्यन्तर** तृषा, दाह, छर्दि, विबंध, रक्तविकार मूत्रकृच्छ्र उपदंश, फिरंग, बन्ध्यत्व, गर्भाशयशोथ जांगमविष में प्रयोग होता है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं-फल, बीज, मज्जा,त्वक्, पत्र **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम क्वाथ ५०–१०० ग्राम ।

विशेष–पुत्रेच्छु स्त्रियां बीजों की माला बनाकर पहिनती हैं । गर्भस्राव गर्भ पातावस्था एवं गर्भाशय विकारों, संतानोत्पत्ति न होने पर संतानोत्पत्ति के लिए अद्वितीय औषध मानी गई है । जंगलनी जड़ी बूटी ग्रंथ कर्त्ता के परीक्षणानुसार ।

भूम्यामलकी

द्रव्य नाम–हिन्दी: भुई आंवला,भूमि आंवला ।

लेटिन : Phyllanthus niruri.

संस्कृत : भूम्यामलकी, तामलकी, बहुपत्रा ।

वर्गीकरण-गुडूच्यादि (भा० प्र०) श्वासकासहर (च०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र उष्ण प्रदेशों के खेतों एव आर्द्र वन्य भूमि में होता है ।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु छोटा क्षुप; **शाखाएं** तनु, सरल श्वेत हरिताभ **पत्र** आमलकी सदृश किन्तु छोटे, सघन **पुष्प** श्वेत हरित पीताभ छोटे २ **फल** पत्रदण्ड के नीचे की ओर सूक्ष्म आमलकी सदृश होते हैं **पुष्प फल काल**-वर्षा शरद् ।

रासायनिक संगठन–पत्तों में एक तिक्त कार्यकारी सत्त्व Phyllanthin होता है ।

गुण कर्म–रस तिक्त कषाय अम्ल मधुर गुण-रूक्ष, लघु **वी०** शीत **वि०** मधुर पित्तकफशामक, शोथहर, पित्तस्रंसन, विषमज्वरघ्न, मूत्रल, रक्त शोधक ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य व्रणशोथ, व्रण, त्वग्रोग, नेत्रविकार, हिक्का **आभ्यन्तर** तृषा, अम्लपित्त, अतिसार प्रवाहिका, जलोदर, रक्तपित्त, रक्तविकार, कामला, मूत्रकृच्छ्र पूयमेह प्रदर जीर्णविषमज्वर एवं तज्जन्य यकृत्प्लीहावृद्धि में अत्युपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग **मात्रा** चूर्ण

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३–५ ग्राम स्वरस १०–२० ग्राम।

विशेष–व्रणशोथादि में पंचांग कोष्णोपनाह, त्वग् रोगों में लवण के साथ पीस कर लेप हिक्का में नस्य विषम ज्वर में क्वाथ प्रयोग से शीघ्र ज्वर निवृत्ति होती है। मूत्रकृच्छ्र एवं पूयमेह में (दाहशमन एवं मूत्रल) इसका दैनिक चिकित्सा में प्रयोग होता है। **जाति** श्वेत, रक्त (P. Urinaris के काण्ड, शाखाऐं, पुष्प, फल रक्ताभ, पत्र पुष्प वृंत रहित आकृति में बड़े (श्वेत जाति की अपेक्षा) होते हैं।

अर्क कुल
Asclepiadaceae Fam.

अर्क

द्रव्यनाम–हिन्दी : आकड़ा लाल आक, मदार

लेटिन : Calotropis procera.

संस्कृत : अर्क, क्षीरपर्णी, क्षीरकांडक, शुकफल, सदापुष्पी, दिवाकर, सूर्याह्वय, तूलफल।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) वमनोपग, भेदनीय, स्वेदोपग(च०)अधोभागहर अर्कादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान—उष्ण, शुष्क ऊषर भूमि में विशेषतः राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय सरल बहु शाखी, बहुवर्षायु **गुल्म** १.५-२.५ मी० ऊंचा **पत्र** अवृंत अभिमुख, वटवत्, माँसल, अंडवृत्ताकृति अधस्तल पर श्वेततूलरोमश **पुष्प** छत्राकार, गुच्छों में श्वेत रक्ताभ बैंगनी **फल** युग्म, छोटे आम्रसदृश स्फोटी **बीज** वृक्काकार अनेक कार्पासिसूत्रावृत धूसर वर्ण के होते है। **पुष्पकाल** प्रायः सर्वदा विशेषतः शिशिर वसंत **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–मूलत्वक् में पीताभ तिक्त सत्त्व अल्प मात्रा में किण्व तत्त्व व मदार ऐल्बनफ्लैवल क्षार, रबड़ (Caoutchouc) कृष्णाम्ल राल होते है।

गुण कर्म–रस कटु तिक्त गुण–तीक्ष्ण लघु, रूक्ष वि० कटु वी० उष्ण, वातकफशामक, पित्तवर्धक शोधन, भेदन, वमनोपग, दीपन, स्वेदजनन, शूलहर, कृमिघ्न, उदररोगहर, ज्वरघ्न (नियत कालिक)

आमयिक प्रयोग–बाह्य-कर्णशूल, दंतशूल, कृमि, अर्श खालित्य, त्वग्रोग में क्षीर, पत्र रस लेप व्रण शोथ, ग्रंथि में स्नेहाक्त पत्र बंधन **आभ्यन्तर** उदर, कृमि, गुल्म, विबंध अर्श, उदररोग, शोथ कुष्ठ यकृत्प्लीहावृद्धि, कास, श्वास, उपदंश, विषमज्वर, आमवात आदि रोगों में दैनिक प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–क्षीर, पुष्प, पत्र, मूल **मात्रा** क्षीर ४-६ बूंद मूलत्वक् चूर्ण ०.२-०.४ ग्राम, वामक १.५-४ ग्राम, पत्रचूर्ण ०.३–१ ग्राम, अर्कवटी, अर्क लवण।

विशेष-पुष्प भेद से रक्त एवं श्वेत जाति (C. gigantea) आकृति भेद से राजार्क–गुल्म पत्र, पुष्प बड़े होते हैं **विषाक्त लक्षण** अतिसेवन से से छर्दि क्षोभ, प्रदाह, उद्वेष्टन, सरक्तमल प्रवृति होती है। **निवारण**-घृत, दुग्ध, स्नेह द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

काकनासा

द्रव्य नाम–हिन्दी : काकनासा, कौवाठोडी।

लेटिन : Asclepias curassavica.

संस्कृत : काकनासा, काकाङ्गी, काकतुण्डफला, वायसफला ध्वांक्षनामिका।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः बाग-बगीचों एवं ग्राम्य क्षेत्रों में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–**क्षुप** ०.६ मी० ऊंचा पत्र अभिमुख, आयताकार, भालाकार ५०–७५ मि० मी० दीर्घ; **पुष्प** रक्त, नारंगीवर्ण गुच्छों में **फल** युग्म, ७५ मि० मी०; काकतुण्ड सदृश होते हैं। **पुष्प फल काल** शरद्।

रासायनिक संगठन–पंचांग में Asclepiadin

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नामक ग्लुकोसाइड, मूल में स्थित Vincetoxin नामक द्रव्य की क्रिया इमेटिन सदृश होती है।

गुण कर्म–रस कषाय, कटु, तिक्त, गुण-गुरु, **वि०** कटु **वी०** उष्ण, कफपित्तहर कफोत्सारि, वामक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य शोथ, रक्तस्राव में पत्र पुष्प लेप **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, शोथ, अर्श यकृत्प्लीहावृद्धि; कफजकास, श्वास (कफ की मात्रा अधिक होने पर वामक होने से) श्वित्र, कुष्ठ में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग, मूल **मात्रा** क्वाथ ३०–५० ग्राम।

विशेष–संदिग्ध द्रव्य है। प्रस्तुत द्रव्य के अतिरिक्त Martynia diandra (उदयपुर के समीपवर्ती क्षेत्रों में भी होता है) व Thunbergia alata. आदि द्रव्यों का प्रयोग होता है।

सारिवा

द्रव्य नाम–हिन्दी : अनन्तमूल, सारिवा।

लेटिन : Hemidesmus Indicus

संस्कृत : सारिवा, शारदी, गोपा, दुग्धगर्भा अनन्ता, कृशोदरी, स्फोटा, लता, चंदना।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) मधुर स्कध, ज्वरहर, दाहप्रशमन, एवं स्तन्य शोधन (च०) सारिवादि, विदारिगंधादि वल्लीपंचमूल (सु०)

उत्पत्ति स्थान-सर्वत्र विशेषतः उतर प्रदेश बंगाल, बिहार, केरल, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश के वन्य क्षेत्रों में लताएं पायी जाती हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु तनु आवर्त्तनी **लता** बहुशाखी गुल्माकृति-काण्डशाखाएं रोमश एवं अनुदैर्ध्य सूक्ष्म २ धारी युक्त **पत्र** दूरवर्त्ती, अभिमुख अंडाकार भालाकृति आयताकार, दीर्घवृंत्त उर्ध्वपृष्ठ श्वेत-रेखांकित निम्न पृष्ठ श्वेत रोमश २५–१०० मि० मी० दीर्घ १५ मि० मी० से ४० मि० मी० विस्तृत। **पुष्प** नीलाभहरित पत्रकोणोद्भूत गुच्छों में **फल** युग्म, बेलनाकार शृंगाकार **बीज** लट्वाकार, चपटें कृष्ण वर्ण के श्वेतरोमावृत होते हैं। **पुष्प काल** वर्षा **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन मूल में उड़नशील तैल अत्यल्प मात्रा में हेमीडेस्मीन तत्त्व, राल, कषाय द्रव्य, सेपोनीन, शर्करा, ग्लुकोसाइड होते हैं।

गुण कर्म–रस मधुर तिक्त गुण-गुरु स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत त्रिदोषशामक रक्त शोधन कुष्ठघ्न, मूत्रल शोथहर दाहशमन, स्तन्यशोधन, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग-बाह्य दाह, नेत्राभिष्यंद में क्रमशः लेप नेत्रबिन्दु प्रयोग **आभ्यन्तर** प्रवाहिका, अग्निमांद्य, वातरक्त, उपदंश, आमवात, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, त्वग्रोग, कुष्ठ शोथ रक्तदोष ज्वर (वात-पैत्तिक) एवं स्तन्यदोषों में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल पत्र **मात्रा** कल्क ३–५ ग्राम, फाण्ट ५०–१०० ग्राम, सारिवाद्यासव, सारिवादि क्वाथ।

विशेष–इसकी दो जातियां, कृष्ण जाति सारिवा (Cryptolepis buchanani Roem.) त्वक् कृष्णाभ रक्त, इसके पत्र जामुन सदृश, तोड़ने पर दुग्ध अधिक निकलता है। **शुद्ध द्रव्य प०** मूल के दीर्घ टुकड़े ०.३ मी० तक, स्थूल ३–६ मि० मी०, बेलनाकार, मूलत्वक् धूसर भूरे वर्ण का, लम्बाई में दरारें, चौड़ाई में विदीर्ण रेखाएं, काष्ठ भाग कठिन पीताभ, मूल सुगंधि स्वाद में मधुर तिक्त होती है। गरम करने से इसका क्रिया शील तत्त्व उड़नशील तैल उड़ जाता है अतः इसका प्रयोग चूर्ण या फाण्ट विधि से ही करना चाहिए। त्वक् में तैल की मात्रा अधिक होने से त्वक् विशेष लाभकारी है।

जीवन्ती

द्रव्य नाम-हिन्दी : राइडोडी, जीवन्ती।

लेटिन : Leptadenia reticulata.

संस्कृत : जीवंती, हेमलता, अर्कपुष्पी, मधुस्रवा, क्षाकश्रेष्ठा, पयस्विनी।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०) मधुरस्कंध

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जीवनीय (च०) काकोल्यादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–पंजाब, बंगाल, उत्तर प्रदेश, गुजरात, दक्षिण भारत के प्रान्तों में पायी जाती है।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु **लता** चक्रारोही, श्वेत रोमश, **पत्र** अण्डाकार, आयताकार, नौंकदार, ३७ मि० मी० से ७५ मि० मी० दीर्घ, १३ से ३७ मि० मी० चौड़े, अधर पृष्ठ श्वेताभ, **पुष्प** पत्र कोणोद्भूत, छत्रकाकार पीताभ हरित गुच्छों में **फल** युग्म विषाणाकृति, मांसल। शाखा, पत्र तोड़ने पर दुग्ध निकलता है। **पुष्पकाल** ग्रीष्मान्त **फल** शीत।

गुणकर्म–रस-मधुर गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, स्नेहन, वल्य, बृंहण, रसायन, दाहतृषाप्रशमन, ग्राही, रक्तपित्त-शामक, मूत्रजनन, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-व्रण, गल रोग, त्वग् रोगों में लेप, **आभ्यन्तर** तृषा, दाह, ग्रहणी, हृद्दौर्बल्य, उरःक्षत, क्षय, क्षतज एवं क्षयज कास, रक्तपित्त, विसर्प, शुक्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, दौर्बल्य में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग, मूल, **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम, क्वाथ ४०-६० ग्राम। जीवन्त्यादि-घृत।

विशेष–संदिग्ध द्रव्य है किन्तु शास्त्रोक्त वान-स्पतिक पर्याय, गुण कर्म एवं प्रस्तुत द्रव्य का शाक कल्पना प्रयोग साधर्म्य से प्रयोग करना उचित है। इसके अतिरिक्त क–Dregia volubilis. ख–Celtis orentalis, ग–Cimifuga foetida आदि द्रव्यों का भी प्रयोग होता है।

बाजार में उपर्युक्त द्रव्यों के अतिरिक्त Dendrobium macraei (Orchidaecae) कुल के पीत वर्ण, चमकदार, पुआलदार पंचांग भी प्राप्त होते हैं। यह विशेषतः बंगाल, आसाम, कर्नाटक में उत्पन्न होती है। यह जीवन्ती के भेद स्वर्ण जीवन्ती, हेमलता के रूप में ग्रहणीय है।

मधु नाशिनी

द्रव्य नाम–हिन्दी : गुड़मार।

लेटिन : Gymnema sylvestre.

संस्कृत : अजगन्धिनी, मधुनाशिनी, अजाशृंगी, मेषशृंगी।

उत्पत्ति स्थान–मध्यभारत, केरल, गोआ, कर्नाटक आदि प्रान्तों के जंगलों में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–प्रतानिनी **लता** दीर्घ, रोमश, मृदु, अनेक शाखा युक्त **पत्र** अभिमुख अण्डाकार, लम्बाग्र, लट्वाकृति, चर्मवत् ३०-१०० मि० मी० दीर्घ, १५-३० मि० मी० चौड़े; दोनों पृष्ठ रोऐंदार; **पुष्प** पीताभ, छत्राकार गुच्छों में **फल** कठिन, भालाकार, शृंगवत् युग्म लगते हैं, **पुष्पकाल** शरद्, **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–पत्र में जिम्नेमिक अम्ल ६% क्वर्सिटाल, शर्करा पाचक किण्व तत्त्व, रञ्जक द्रव्य, केल्सियम आक्जलेट होते हैं।

गुण कर्म–रस–तिक्त, कषाय, कटु; गुण-लघु, रूक्ष **विपाक**-कटु **वीर्य**-उष्ण। वातकफशामक, दीपन, यकृदुत्तेजक, हृद्य, मूत्रजनन।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर—अग्निमांद्य, यकृद्विकार, कामला, इक्षुमेह, ग्लाइकोमिया, हृद्दौर्बल्य, में मूल पत्र प्रयोग। श्वास, कास प्रतिश्याय में बीज चूर्ण तथा मूल का (धूम्रपान) प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल, पत्र, बीज **मात्रा** पत्र चूर्ण १-२ ग्राम, बीज चूर्ण १-३ ग्राम।

विशेष–मधुमेह चिकित्सा में इसके पत्र चूर्ण का प्रयोग सुविदित है। यकृदुत्तेजक एवं अग्न्याशय स्राव (Insuline) के जनन में प्रेरक होने, रक्तगत शर्करा पर नियमन करने से मधुमेह में उपयोगी है। विभिन्न संस्थानों में हुए प्रयोगों के परिणामानुसार इसके प्रयोग से कुछ अवधि तक ही, रक्त शर्करा कम होती है। मधुमेह चिकित्सा में अभी स्थायी एवं विश्वसनीय सिद्ध नहीं हुआ है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यव कुल
GRAMINEAE FAM.
शर (मूञ्ज)

द्रव्यनाम–हिन्दी: मूञ्ज, सरपत, कण्डा ।

लेटिन : Saccharum munj.

संस्कृत : तृणाख्य, दृढ़मूल, बहुप्रज, सुमेखला, शर, वाण, तेजन, इक्षुकाण्डज, मुञ्जातक, मुञ्ज ।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) तृण पंचमूल (सु०) ।

उत्पत्ति स्थान–आर्द्र, बालू मिट्टी प्रधान भूमि विशेषत: बिहार, बंगाल, आसाम, उत्तर प्रदेश, पंजाब आदि प्रान्तों के वन्य क्षेत्रों में उत्पन्न होता है ।

वानस्पतिक परिचय–तृण जातीय बहुवर्षीय गुच्छाकार **क्षुप** ५ मी० ऊँचा; इक्षु सदृश पत्रावृत **काण्ड** स्निग्ध, सपर्व, चमकीला रेखांकित **पत्र** दीर्घ, १-१.५ मी०, चिपटाकृति भालाकार, चमकीले, तनु, तीक्ष्णाग्र, **पुष्प** काण्डाग्रज, अत्यन्त छोटे रक्ताभ होते हैं । **पुष्प फलकाल** शरद् ।

गुण कर्म–रस-मधुर, कषाय, गुण-लघु, स्निग्ध, **वि०** मधुर **वी०** शीत । त्रिदोषशामक, रक्तपित्तहर, तृष्णा-दाहप्रशमन, मूत्रजनन ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य: नेत्राभिष्यन्द में, फाण्ट (नेत्रबिन्दु) दाह, विसर्प में लेप, प्रदर में उत्तरबस्ति प्रयोग । **आभ्यन्तर** तृषा, दाह रक्तपित्त, विसर्प, मूत्राघात, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, स्तन्याल्पता, शुक्रदौर्बल्य में प्रयोग होता है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल **मात्रा** क्वाथ ४०-८० ग्राम । तृणपंचमूल क्वाथ एवं, तृणपंचमूलादि क्वाथ, हिम ।

विशेष–इसके पत्र एवं काण्ड से निकाले गये सूत्रों से रस्सी बनायी जाती है । मधुर, कषाय, लघु, मधुर विपाकी, शीत वीर्य होने से पित्त एवं रक्तज विकारों की मुख्यौषध है ।

कुश (दाभ)

द्रव्य नाम–हिन्दी: दाभ, डाभ, कुशा ।

लेटिन: Desmostachya bipinata.

संस्कृत: कुश, दर्भ, यज्ञभूषण, सूच्यग्र, क्षुरपत्र, दीर्घपत्र ।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) मधुरस्कन्ध, मूत्रविरेचनीय, स्तन्य जनन (च०) तृणपंचमूल (सु०) ।

उत्पत्ति स्थान–जलासन्न भूमि में प्राय: सर्वत्र उत्पन्न होता है ।

वानस्पतिक परिचय–तृण जातीय **क्षुप** मुञ्ज के समान किन्तु छोटा ०·३-१ मी० ऊँचा, **पत्र** तीक्ष्ण धार युक्त, सूच्यग्र, दीर्घ, (३५-४० सें० मी०) दृढ़ रोमश **पुष्प** गुच्छों में काण्डाग्रज होते हैं । **पुष्पकाल**-वर्षा, **फल** शरद् ।

गुण कर्म–रस-मधुर, कषाय; गुण-लघु, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत । त्रिदोषशामक, तृष्णा-दाहशमन, मूत्रविरेचन, स्तन्यजनन ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य: व्रण, हिक्का, प्रदर में क्रमश: फाण्ट से धावन; मूल धूम्रप्रयोग, बस्तिप्रयोग, **आभ्यन्तर** तृषा, दाह, मूर्च्छा, रक्तातिसार, रक्तपित्त, विसर्प, अश्मरी, बस्तिरोग, प्रदर, ज्वर में उपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल **मात्रा** कल्क ३-५ ग्राम, क्वाथ ४०-८० ग्राम, कुशाद्यघृत, तृणपंचमूल क्वाथ एवं क्षीर ।

विशेष–आचार्य डल्हण ने कुश की एक जाति को दर्भ "दर्भ: पृथु: खरपत्र: दीर्घ:" माना है ।

कास (कांस)

द्रव्यनाम–हिन्दी: कास, कांस ।

लेटिन : Saccharum, spontaneum.

संस्कृत : इक्षुरक, इक्ष्वालिका, इक्षुकुसुम्भ, लेखनी, नादेय, चामरपुष्प, सितपुष्पक ।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) स्तन्यजनन, मूत्रविरेचनीय (च०) तृणपंचमूल (सु०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र (विशेषतः बंगाल) नदी, तालाव, झरने, नहरों के पास आर्द्र भूमि में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–तृण जाति **क्षुप**; मुञ्ज के समान गुच्छों में उत्पन्न २–३ मी० ऊँचा **काण्ड** ठोस **पत्र** मुञ्ज के समान किन्तु छोटे, कम तीक्ष्ण, पत्र पार्श्व मुड़ा हुआ। **पुष्प** श्वेत हरिताभ मृदु गुच्छों में चामर (चंवर) सदृश होते हैं। **पुष्पकाल**–शरद् **फल**-शीत।

गुण कर्म–रस-मधुर, तिक्त, गुण-स्निग्ध, लघु **वि०** मधुर **वी०** शीत। त्रिदोषशामक, तृष्णादाह-प्रशमन, मूत्रजनन, रक्तपित्तशामक, बल्य।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः दाह, विसर्प में लेप प्रदर में उत्तरबस्ति प्रयोग होता है।

आभ्यन्तर–दाह, रक्त विसर्प, मूत्राघात, मूत्र-कृच्छ्र, अश्मरी, प्रदर, स्तन्याल्पता में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल, **मात्रा** क्वाथ ५०-१०० गाम, कल्क ३-५ ग्राम। कुशाद्यघृत, तृणपंचमूल क्वाथ एवं क्षीर।

नल (नरसल)

द्रव्य नाम–हिन्दी : नरसल, नरकट।

लेटिन : Arundo donax.

संस्कृत : नल, कीचक, दीर्घ वंश, रन्ध्री, नर्तक, नटी, धमन, लालवंश, मृदुपत्र, वंशच्छद, शून्यमध्य।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) तृण पञ्च-मूल (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र आर्द्र, पङ्कयुक्त भूमि में अधिक उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–तृण जाति बहु वर्षीय ३-५ मी० ऊँचा **क्षुप** वंश के समान किन्तु स्निग्ध, तनु काण्डयुक्त पीताभ क्वचित् रक्ताभ काण्डपर्व छोटे हरिताभ **पत्र** वंश सदृश्य किन्तु तनु छोटे। **पुष्प** व्यूह की छोटी-छोटी धूसर श्वेत वर्ण शलाकाए पुष्प गुच्छ की Spikelets भूरे वर्ण की। **बीज** बीज कोष नहीं होते हैं। **पुष्प काल** शरद्।

गुण कर्म–रस-मधुर, तिक्त, कषाय; गुण-लघु, स्निग्ध **वि०** मधुर। **वी०** शीत त्रिदोषशामक, दाह-तृषा-प्रशमन, मूत्रजनन, रक्तशोधक।

आमयिक प्रयोग–कुश एवं कास के समान विविध प्रकारों में प्रयुक्त होता है; किन्तु इसकी जाति विशेष का सुरासार (टिंक्चर लोबेलिया) ५-१० बूंद वातज कास एवं तमक श्वास में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्यअंग कल्पनाएं–मूल **मात्रा** क्वाथ ४०-८० ग्राम। लोबेलिया चूर्ण ६२ मि० ग्रा० से १८७ मि० ग्राम०। टिंक्चर ५-१५ बूंद, तृणपञ्चमूल क्वाथ।

विशेष–इसके काण्ड की लेखनी बनायी जाती है तथा बांसुरी, विविध नलिकाकृति वाद्ययंत्रों का निर्माण होता है। नल, महानल के पर्याय मृत्युपुष्पक तथा तीक्ष्ण; उष्ण वीर्य व कर्मों को लक्ष्य करते हुए Lobelia Nicotainfolia का ग्रहण उचित है। इसमें लोबिन, निकोटीन विष क्षार हैं। इसके अधिक सेवन से मृत्यु तक हो जाती है। **जाति**—(क) Phargmites rorpa (ख) P. Maxima दो जातियां होती हैं।

उशीर

द्रव्य नाम–हिन्दी : खस।

लेटिन : Vetiveria zizanioides.

संस्कृत : उशीर, अमृणाल, समगंधक, वीरण-मूल, सेव्य, वीरण।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा० प्र०) तिक्त स्कन्ध, दाह प्रशमन, स्तन्यजनन, वर्ण्य, छर्दिनिग्रहण, (च०) पित्तसंशमन, सारिवादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–पङ्कयुक्त दलदल भू प्रदेश में विशेषतः बंगाल, बिहार, राजस्थान, दक्षिणी भारत में क्षुप पाये जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वानस्पतिक परिचय–तृण जाति बहु वर्षीय ०.६-१.५ मी० दृढ़ **क्षुप** कास के समान **पत्र** मुंज के समान दीर्घ तनु, तीक्ष्णाग्र विरल कंटकित, परस्पराच्छादित **पुष्प** हरित, पीत, रक्तगुच्छों में **मूल** प्रशाखायें तन्तुमय सुगन्ध युक्त होती है **पुष्प काल** वर्षा **फल** शरद् ।

रासायनिक संगठन–मूल में उड़नशील तैल, राल, रंजक द्रव्य, अम्लसत्व, लौह, भस्म, चूने के लवण होते हैं ।

गुण-कर्म–रस-मधुर, तिक्त । गुण–रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामक, छर्दिनिग्रहण, तृषाप्रशमन, ग्राही मूत्रजनन, रक्तशोधक,

आमयिक प्रयोग–बाह्य: प्रदाह, अतिस्वेद, दाह, त्वग्रोग, **आभ्यन्तर**–तृष्णा, छर्दि, अतिसार, रक्तपित्त, मूर्च्छा, कास, श्वास, हिक्का, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, त्वग्रोग, ज्वर में प्रयोग होता है ।

प्रयोज्यअङ्ग कल्पनाएं–मूल **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम, फाण्ट ३०-६० ग्राम । उशीरासव, उशीरादि चूर्ण, उशीर पानक ।

विशेष–बाह्य प्रयोगार्थ लेप प्रयोग होता है । कास, श्वास में धूम्रपान के रूप में प्रशस्त है । **शुद्ध द्रव्यपरीक्षा**-इसके मूल स्तम्भ से अनेक सूत्राकार दीर्घ मूलोद्भव ये तनु ०.३–०.६ मी० दीर्घ, बाह्यस्तर भूरे पीताभ वर्ण का, अन्तर्वस्तु सौत्रिक एवं, सुगन्ध दीर्घ काल तक रहती है ।

इक्षु

द्रव्य नाम–हिन्दी : गन्ना, ईख ।

लेटिन : Saccharum Officinarum.

संस्कृत : तृणराज, इक्षु, वेणु, असिपत्र, गुडदारु, मधुतृण, भूरिरस, वृष्य, दीर्घच्छद ।

वर्गीकरण–इक्षु वर्ग (भा० प्र०) तृण पंचमूल (सु०) ।

उत्पत्ति स्थान–आर्द्र भूमि, एवं उष्ण जलवायु में बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में खेती की जाती है ।

वानस्पतिक परिचय–सुपरिचित **क्षुप** तृण जाति, काण्ड जाति विशेष के अनुसार दीर्घ, ग्रन्थि युक्त (२-३.५ मी० ऊंचा) स्थूल (५०-७० मि० मी०) **पत्र** तनु, चपटे ०.३ मी० दीर्घ ५०-७५ मि०-मी० चौड़े; शरद् में **पुष्प** मृदु श्वेताभ गुच्छों में लगते हैं । **पुष्प काल** शरद् **फल**-शीत

रासायनिक संगठन–इक्षुरस में शर्करा, जल, पिच्छिल द्रव्य, वसा, अलब्यूमिन तथा Calcium oxalate होते हैं ।

गुण कर्म–रस-मधुर; गुण-स्निग्ध गुरु । **वि०** मधुर **वी०** शीत । वातपित्तशामक, कफवर्धक, सारक, वमनोपग, कफोत्सारि, मूत्रल, बल्य, बृंहण

आमयिक प्रयोग–बाह्य: नेत्राभिष्यंद, दाह, विसर्प ज्वर, **आभ्यन्तर**-स्वरभेद, तृषा, दाह, विबन्ध, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, पाण्डु, कामला, क्षतजकास, दौर्बल्य, विषविकारों में दैनिक चिकित्सा में प्रयुक्त होता है ।

प्रयोज्यअङ्ग कल्पनाएं–मूल, स्वरस **मात्रा** क्वाथ ५०-१०० ग्राम, इक्षुरस २५-५० ग्राम । तृण पंचमूल क्वाथ, इक्षुसिरका ।

विशेष–तीव्र संताप में इक्षु सिरका को ३ गुने जल में डालकर वस्त्र भिगोकर ललाट प्रदेश-पर धारण । कामला में इक्षुरस का भूरिश: प्रयोग सुविदित है । पाण्डु एवं दौर्बल्य में वसा, शर्करा व खनिज पदार्थ युक्त होने से उपयोगी है ।

दूर्वा

द्रव्य नाम–हिन्दी : दूब, दोब ।

लेटिन : Cynodon dactylon.

संस्कृत : रुहा, दूर्वा, शतपर्विका, सहस्त्रवीर्या, सतवल्ली, शतवीर्या, गोलोमी ।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भाव प्रकाश) वर्ण्य, प्रजास्थापन (च०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र जलासन्न भूमि में लताएं उत्पन्न होती हैं ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वानस्पतिक परिचय–**लता** जाति जमीन पर छत्राकृति प्रसरण शील होती है। **काण्ड** तनु अनेक ग्रन्थियाँ युक्त, ग्रन्थि से मूल, सूत्रोद्भव **पत्र** भालाकार, रेखाकार २५-७५ मि० मी० दीर्घ। उठी हुई शाखाओं पर मृदु सूक्ष्म हरिताभ या नीलारुण **पुष्प** होते हैं। **पुष्प काल** सर्वदा **फल** सर्वदा।

रासायनिक संगठन–पंचांग में ग्लोभूजिन, शर्करा; जलाने पर ११.७५% भस्म प्राप्ति; जिसमें पोटाशियम, मेगनीसियम, सोडियम के लवण होते हैं। **गुण कर्म**–रस–मधुर, कषाय, तिक्त; गुण–लघु, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत। त्रिदोषशामक, व्रण रोपण, दाह तृष्णा प्रशमन, छर्दिनिग्रहण, रक्तशोधक, रक्तस्तम्भन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : नाक से रक्तस्राव में स्वरस पूरण, नेत्राभिष्यन्द, दाह- क्षतव्रण, न्यच्छ व्यङ्ग विसर्प में क्रमशः नेत्र विन्दु तथा लेप। **आभ्यन्तर**-छर्दि, तृष्णा, अर्श, रक्तपित्त रक्तविकार, कुष्ठ उपदंश, अतिसार, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, बस्तिशोथ, पूयमेह, अत्यार्त्तव, रक्तप्रदर, गर्भपात, गर्भस्राव एवं विषदोषों में प्रयुक्त होती है।

प्रयोज्यअङ्ग कल्पनाएं–पंचाग **मात्रा** क्वाथ ४०-८० ग्राम। स्वरस १०-२० ग्राम। दूर्वाद्यघृत–तेल-क्वाथ।

विशेष–जाति (१) नील दूर्वा अधिक प्रसरण शील होती है, काण्ड शाखाएँ पत्र नीलाभ वर्ण होते हैं। (२) श्वेत दूर्वा (३) गण्ड दूर्वा

रोहिषतृण

द्रव्य नाम–हिन्दी : रुषा घास, रोहिष।

लैटिन : Cymbopogon martini.

संस्कृत : कत्तृण, भूतिक, सौगन्धिक, रोहिष, ध्यामपौर, श्यामक।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) स्तन्यजनन (च०)।

उत्पत्ति स्थान–मध्य भारत, दक्षिण पश्चिमोत्तर प्रान्त, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, आर्द्र, बालुका भूमि में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–सुगन्धित तृण जाति **क्षुप** १.५–२ मी० ऊँचा; काण्ड रक्ताभ, स्निग्ध, पत्रयुक्त **पत्र** काण्डलग्न दीर्घ, स्निग्ध, नुकीले, सुगन्धित शुष्क होने पर रक्ताभ श्वेत वर्ण के होते हैं **पुष्प** काण्डाग्रज गुच्छों में रक्त बादामी वर्ण; पत्रकोशावृत होते हैं **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–पत्र में सुगन्धित तैल Ganiol इसका स्वाद आर्द्रकवत् वर्ण रक्ताभ नील तथा सुगन्धित होता है। नवीन मृदु पत्तियों से अधिक एवं उत्तम तैल प्राप्ति होती है।

गुण कर्म–रस-कषाय, तिक्त; गुण-लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, स्वेदजनन, उत्तेजक, मूत्रल, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः त्वग् रोग, खालित्य में लेप। **आभ्यन्तर**-अरुचि, अजीर्ण, शूल, कृमि, वातरक्त, रक्तविकार, श्वास, कास, हृद्रोग, कास मूत्रकृच्छ्र, स्तन्याल्पता, ज्वर में उपयोगी है।

प्रयोज्यअंग–पत्र, मूल, तैल **मात्रा** क्वाथ ५०-१०० ग्राम, तैल २-५ बूंद।

विशेष–मूल, मधुरगन्धि होता है। आमाशयान्त्र, हृदय, फुफ्फुस, वृक्क, स्तनग्रन्थियों पर उत्तेजक क्रिया करता है। **द्रव्य परीक्षा**–धूसर श्वेत भूरे वर्ण की मूल, उपमूल एवं तन्तुमय, उपमूल बेलनाकार, रेशेदार, मधुरगन्धि, स्वाद में तिक्त, कषाय मुख में रखने पर मुख सुवासित होता है।

वंश (वंशलोचन)

द्रव्यनाम–हिन्दी : बांस, बास।

लैटिन : Bambusa arundinaceae.

संस्कृत : वंश, त्वचिसार, यवफल, वेणु, तृणध्वज, शतपर्व, तेजन, कीचक।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र प्रधानतः बंगाल, आसाम,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दक्षिणी भारत एवं हिमालय की तराई में उत्पन्न होता हैं।

वानस्पतिक परिचय–१०-२५ मी० ऊँचा **वृक्ष** काण्ड स्थूल व्यास में १५०-३०० मि० मी०; सान्तर पर्व एवं पर्वान्तर सुषिर **पत्र** दीर्घ, रेखाकार, भालाकार, तीक्ष्णाग्र **पुष्प** एक लिंगी, सूक्ष्म श्वेत **फल** यव सदृश होते हैं। **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–वंशलोचन में सिलिका ९०% मण्डूर, सुधा, पोटाश, किण्वतत्त्व, ग्लुकोसाइड़ होते हैं।

गुण कर्म–रस-मधुर, कषाय; गुण-लघु, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, बल्य, बृंहण हृद्य, रक्तस्कन्दन, मूत्रल, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः व्रणशोथ, त्वग्रोगों में मूल भस्म का लेप। **आभ्यन्तर**-तृष्णा, छर्दि, रक्तपित्त, रक्तदोष, हृद्रोग, क्षय, उरःक्षत, क्षतज एवं क्षयज कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, जीर्णज्वर, दौर्बल्य में विशेष प्रयोग होता है।

प्रयोज्यांग कल्पनाएं–मूल, पत्र, निर्यास **मात्रा** वंशलोचन १-३ ग्राम पत्र, मूल क्वाथ ४०-८० ग्राम। सितोपलादि चूर्ण, तालीशादि चूर्ण।

विशेष–स्त्री जाति बांसों में ही स्राव जमता है। इसे वंशलोचन कहते हैं। इसके शुद्ध नीलाभ, श्वेत, शुभ्रश्वेत, अनियमित आकृति के टुकड़े; एक पृष्ठ उन्नतोदर तथा दूसरा नतोदर होता है। लकड़ी पर घिसने पर रेखा नही बनती है। जल में पारदर्शकाभासी; यह पानी को सोख लेता है किन्तु शीघ्र घुलता नहीं है, दबाने पर टूटता नहीं है। वर्तमान में बाजारों में अधिकांशतया नकली वंशलोचन मिलता है। अतः शुद्धाशुद्ध परीक्षण कर लेना चाहिये। इसकी विशेष शुद्धाशुद्ध परीक्षा लेखक की द्रव्य परीक्षा पुस्तक में अवलोकनीय है।

जम्बीर कुल
RUTACEAE FAM.
बिल्व

द्रव्यनाम–हिन्दी : बेल, श्रीफल।

लैटिन : Aegle marmelos.

संस्कृत : बिल्व, श्रीफल, शिवेष्ट, त्रिपत्र, शल्य, गंधपत्र, गंधफल, सदाफल, कपित्थ, पीतफल, पूतिवात, शलाटु।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) शोथहर, अर्शोघ्न, आस्थापन, अनुवासनोपग, (च०) बृहत् पंचमूल, वरुणादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–देश के सभी प्रान्तों में विशेषतः उत्तर प्रदेश, आसाम, बिहार, बंगाल, दक्षिण भारत के वन्य क्षेत्रों एवं उद्यानों में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकृति **वृक्ष**, ६-१२ मी० ऊँचा; शाखाएं ग्रन्थि तथा कण्टक युक्त, कांटे दृढ़ २५ मि० मी० दीर्घ पत्र कोणोद्भूत **पत्र** संयुक्त त्रिपत्रक आकृति में तिर्यगाकार, लट्वाकृति, अण्डाकार, लम्बाग्र, मध्य पत्रक बड़ा, पार्श्वीय पत्रक छोटे एवं प्रायः पत्रवृन्त रहित या छोटे वृन्तयुक्त **पुष्प** श्वेत हरिताभ, मधुगन्धि, **फल** गोल पीत नारंगी वर्ण १००-२०० मि० मी० व्यास युक्त, कठिन फलावरण के ८-१५ कोष्ठीय होते हैं। **पुष्पकाल** वसन्त **फल** दूसरे वर्ष वसन्त काल तक पक्व होते हैं।

रासायनिक संगठन–बिल्व पत्रों से आसवन विधि द्वारा हरिताभ पीतवर्ण तैल प्राप्ति, फल मज्जा में शर्करा, पेक्टीन, टेनिन, पिच्छिल द्रव्य, तिक्त सत्त्व गोंद, कार्यशील, सत्व मार्मेसोलिन। काण्ड भस्म में लौह, सुधा लवण होते हैं।

गुण कर्म–अपक्व फल रस-कषाय, तिक्त कटु पक्वफल-मधुर, कषाय, तिक्त। अपक्व फल गुण-स्निग्ध, तीक्ष्ण। पक्व फल-स्निग्ध गुरु। मूल-रूक्ष, उष्ण, लघु। अपक्व फल-ग्राही, दीपन। पक्व-फल सारक, बृंहण, पत्र हृद्य, कफोत्सारि, प्रमेहघ्न, मूलशोथहर।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्यः नेत्राभिष्यन्द, नेत्रप्रदाह-पिडिका, कर्णशूल, कर्णस्राव, शोथ और व्रण। नेत्र विकारों में आश्च्योतन, लेप। कर्ण विकारों में पूरण (तेल-स्वरस) **आभ्यन्तर**-प्रवाहिका, अतिसार, ग्रहणी, अर्श, विबन्ध, कास, श्वास, प्रतिश्याय, हृद्दौर्बल्य, हृत्कम्प, शोथ, इक्षुमेह, पूयमेह, प्रदर, गर्भाशयशोथ, दौर्बल्य, कार्श्य में दैनिक चिकित्सोपयोगी द्रव्य है।

प्रयोज्यांग कल्पनाएं–पक्वापक्व फल, पत्र, मूलत्वक्, **मात्रा** ३-५ ग्राम; रस १०-२० ग्राम। बिल्वादि चूर्ण-घृत तैल, बृहत् गंगाधर चूर्ण।

विशेष–प्रवाहिका, अतिसार, ग्रहणी में अपक्व फल, विबन्ध (रौक्ष्यजन्य) में पक्व फल प्रयोग, पत्र में स्थित उड़नशील तैल, उत्तेजक, कफोत्सारि होने से प्रतिश्याय, श्वास, कास में प्रयोग होता है। मूलत्वक् हृदय, रक्त वाहिनियाँ, वृक्क, गर्भाशय उत्तेजक। **अनुसंधान कार्य**-कुत्तों एवं मेंढ़कों में इसके पत्र का जलीय एवं मद्य सारीय सत्व, डेजीटेलीन के तुल्य हृदय बल्य पाया गया है।

कपित्थ

द्रव्यनाम–हिन्दी : कैथ, केथ, कैत।

लैटिन : Feronia elephantum,

संस्कृत : कपित्थ, दधित्थ, ग्राहीफल, दन्तशठ, कपिप्रिय, पुष्पफल, चिरपाकी

वर्गीकरण–फलादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र शुष्क भूमि में अधिक उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–वृक्ष बिल्व के समान १०-१२ मी० ऊँचा, काण्डत्वक् श्वेत धूसर, शाखायें सीधे कण्टक युक्त। **पत्र** एकान्तर, संयुक्त पत्रक ३-७ स्निग्ध, मेंहदी के सदृश, कुछ बड़े सुगन्ध युक्त, **पुष्प** श्वेत, रक्ताभ मंजरियों में **फल** श्वेत गोल बिल्व सदृश। **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–पत्तियों में सुगन्धित तैल, फल मज्जा में निम्बुकाम्ल प्रचुर मात्रा में, पिच्छिल, क्षार, लौह आदि खनिज द्रव्य होते हैं।

गुणकर्म–रस-अम्ल, कषाय, मधुर; गुण-लघु. रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत। वातपित्तशामक, रोचक, कण्ठ्य ग्राही, पत्र-शोथहर, वेदनाशामक।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः शोथ, ग्रन्थि, विद्रधि में पत्र लेप **आभ्यन्तर**-अरोचक, तृष्णा, अतिसार, प्रवाहिका, हिक्का, कण्ठरोगों में फल मज्जा प्रयोग। शोथ, श्वास, कास, वेदना विकारों में पत्र प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, पत्र, **मात्रा** स्वरस १०-२० ग्राम, मज्जा २०-३० ग्राम, कपित्थाष्टक चूर्ण।

अम्लवेतस्

द्रव्य नाम–हिन्दी : अमलवेत, अम्लबैत।

लैटिन : Acidozeyfolia.

संस्कृत : अम्लवेतस् चुक्र, शतवेधि, स्हस्रनुत्।

वर्गीकरण–फलादि वर्ग (भा० प्र०) दीपनीय, हृद्य, श्वासहर (च०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र, विशेषतः बंगाल, बिहार में वृक्ष बागों में लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार का **वृक्ष** ५-८ मी० ऊँचा **पत्र** दीर्घ, विस्तृत, रोयेंदार, कर्कश, **पुष्प** श्वेत गुच्छों में, **फल** पीत रक्ताभ, नाशपाती के समान किन्तु आकृति में दुगुना बड़ा होता है।

रासायनिक संगठन–फल में निम्बुकाम्ल प्रचुर मात्रा में होता है।

गुण-कर्म–रस-अत्यम्ल गुण-तीक्ष्ण, लघु **वि०** अम्ल **वी०** उष्ण। वातकफशामक, दीपन, रोचक, छर्दिघ्न, अनुलोमन।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर**–तृषा अग्निमांद्य, अजीर्ण, अरोचक, गुल्म, विबन्ध, उदावर्त, छर्दि, आध्मान, यकृत्प्लीहावृद्धि, श्वास, कास, हिक्का में उपयोगी है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोज्यांग फल **मात्रा** चूर्ण १–२ ग्राम।

विशेष–सन्दिग्ध द्रव्य है, वर्तमान में (१) Rumex Vesicarious (२) Citrus decumana (३) Garcinia Pedunculata आदि वृक्षों के फलों का प्रयोग भी अम्ल वेतस् के नाम से होता है।

तुम्बरु (तेजबल)

द्रव्यनाम–हिन्दी : तेजफल, नेपाली धनियां।

लेटिन : Zanthoxylum alatum

संस्कृत : तुम्बरु, सौरभ, सौर, तेजोवति, वनज, तेजस्विनी।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०) तिक्त स्कन्ध, शिरोविरेचन (च०)

उत्पत्ति स्थान–हिमालय की उष्ण तराइयों-टिहरी गढ़वाल जम्मू से भूटान, नागा-खासियों के पर्वतों में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–गुल्माकृति छोटा **वृक्ष** शाखाएं कांटेदार; काष्ठ पीत, **पत्र** एकान्तर, पत्रक असम पक्षवत २-६ युग्म २५-५० मि० मी० दीर्घ दन्तुरित। **पुष्प**–एकलिङ्गी पीतवर्ण गुच्छों में **फल** धनिये के सदृश अन्तः सुषिर, स्फुटितमुख, फलावरण दानेदार होता है **पुष्पकाल** अप्रेल-जून **फल** अगस्त-से अक्टूबर।

रासायनिक संगठन–फलों में उड़नशील तैल एक पीत कटु द्रव्य तथा Zanthoxylile नामक रवेदार तत्त्व, राल होते हैं।

गुणकर्म–रस-कटु, तिक्त, गुण-तीक्ष्ण, लघु **विपाक** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, दीपन, स्वेदजनन, मूत्रल, कृमिघ्न, यकृदुत्तेजक, हृद्य, तिक्त पौष्टिक है।

आमयिक प्रयोग–वाह्यः दन्त, मुख, गलरोगों में क्वाथ का गण्डूष, शिरःशूल, व्रण, शोथ में लेप।

आभ्यन्तर–अग्निमांद्य, अतिसार, अरोचक, कृमि, अर्श, यकृत्प्लीहावृद्धि, श्वास, कास, हृद्दौर्बल्य, मूत्राघात, ज्वर में प्रयोग होता है।

प्रयोज्यांग–फल **मात्रा** चूर्ण ०.४ से १ ग्राम. फाण्ट १०-२० ग्राम।

विशेष–तेजबल की आमाशयान्त्र, यकृत्-प्लीहा, फुफ्फुस, हृदय, वृक्क पर जत्तेजक-क्रिया उड़नशील तैल एवं कटु पदार्थ युक्त होने से होती है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**-धान्यकसदृश फल, अण्डाकार या अर्धवर्तुलाकार, स्फुटित मुख, रक्ताभ भूरा, बाह्य तल दानेदार, अन्दर तनु श्वेत झिल्ली युक्त। बीज कृष्ण गोल, फल सवृन्त, सुगन्धित। **मिलावट** अन्य जातीय (Z.budrunga) फल बड़ा, दाने, झिल्ली रहित। अन्य जातियाँ (१) Z. Hamiltonianum, (२) Z. Oxyphyllum. (३) Z. Acanthopadium होती है।

हरमल

द्रव्य नाम–हिन्दी : इस्वंद, हरमल।

लेटिन : Peganum harmala.

उत्पत्ति स्थान–बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, कश्मीर के बगीचों में क्षुप लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–झाड़ीनुमा, बहुवर्षीय, **क्षुप** ०.३ से १ मी० तक ऊँचा; शाखा द्विविभक्त **पत्र** दीर्घ, तनु, पत्राधार खण्डित, एकान्तर, **पुष्प** पत्रकोणोद्भूत मेंहदी की तरह, गोलाकार, श्वेत, **फल** गोल, त्रिकोष्ठीय, **बीज** प्रत्येक कोष्ठ में धूसर त्रिकोणाकृति एक-एक होता है।

रासायनिक संगठन–बीजों में Harmalal. Harmaline. Harmine. तीन क्षार ४ प्रतिशत तक होते हैं तथा रञ्जक तत्त्व एवं राल भी होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण कर्म–रस-अतितिक्त; गुण-तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, कृमिघ्न, वेदनास्थापन, मदकारि, आक्षेपप्रशमन, गर्भाशयोत्तेजक मुख्य कर्म हैं।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-आमवात शोथादि में लेप, कर्ण शूल–स्राव, वाधिर्य में बीज सिद्ध तैल **आभ्यन्तर**-रक्त विकार, श्वास, हिक्का, कृमि, उदरशूल, ज्वर, अपस्मार, उन्माद, अपतन्त्रक, पक्षाघात, आक्षेपप्रधानरोग, रजोरोध में अत्युपयोगी औषध है।

प्रयोज्यांग–बीज **मात्रा** १-३ ग्राम।

विशेष-विषाक्त लक्षण-मात्रा अति प्रयोग व दीर्घ काल तक प्रयोग से भ्रम, मद, हृल्लास, दाह, तृषा, आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। **उपक्रम** द्राक्षा, दाड़िम, निम्बु, दुग्ध, दधि प्रयोग करना चाहिए।

निम्बूक

द्रव्य नाम–हिन्दी : नींबू, कागजी नींबू।

लेटिन : Citrus Medicavar acida.

संस्कृत : निम्बूक, निम्बुक, जन्तुजित्।

वर्गीकरण–फलादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र मुख्यतया हिमाचल प्रदेश, बंगाल, मध्यप्रदेश, आसाम, महाराष्ट्र में अधिक होता है।

वानस्पतिक परिचय–गुल्माकृति कांटेदार, मध्यमाकार, **वृक्ष; पत्र** छोटे, गोल, किंचित् दीर्घ मसलने पर नींबू फल सदृश गंध युक्त, **पुष्प** सुगन्धित, श्वेत निदल-दली ५; **फल** छोटे, गोल, हरित (अपक्व) पीत (पक्व) फलावरण कागज के समान तनु; **बीज** अनेक स्निग्ध, गोल, नुकीले होते हैं। **पुष्प फल काल**-वर्षा, शरद्, ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–निम्बूक रस में निम्बूकाम्ल ७-१०% फास्फोरिक-मेलिक अम्ल, शर्करा १०.९% पिच्छिल द्रव्य, क्षार, विटामिन A. C. अम्ल प्रतियोगी खनिज तत्त्व, टारट्रेट्स, मेलेट्स होते हैं।

गुण कर्म–रस-अम्ल; गुण-लघु **वि०** मधुर **वी०** अनुष्ण। वातपित्तशामक दीपन, रोचक, अनुलोमन, रक्तशोधक, मूत्रजनन, बल्य, बृंहण।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : न्यच्छ, वैवर्ण्य, पालित्य, अरुंषिका में (लेप) अभ्यंग, दन्त मुख रोग, **आभ्यन्तर**-तृषा, छर्दि, विसूचिका, अजीर्ण, अरोचक, अग्निमांद्य, विबन्ध, शूल, कृमि (बीज) यकृत्विकार, कामला, स्कर्वी, रक्तपित्त, वातरक्त, आमवात, मेदोरोग, मूत्रकृच्छ्र, (मूत्राम्लता वृद्धि) ज्वर (विशेषतः विषमज्वर) श्रम, विषविकारों में दैनिक चिकित्सोपयोगी है।

प्रयोज्य अंग–फल **मात्रा** स्वरस ५-१० ग्राम, पानक २०-५० ग्राम।

विशेष–ताजे छिलकों को मशीन से दबाने से प्राप्त पीताभ हरित, उड़नशील तैल में Hesperidine तिक्त ग्लुकोसाइड ५-८%, क्षार ४%। स्कर्वी के अतिरिक्त पायोरिया में भी नवीनतम शोधानुसार विशेषोपयोगी है। इसके अम्ल प्रतियोगी द्रव्य रक्तगत यूरिक-लेक्टिक अम्लों को निष्क्रिय करने से आमवात वातरक्तादि रोगों में उपयोगी है।

मातुलुङ्ग

द्रव्यनाम–हिन्दी : विजौरा नींबू।

लैटिन : Citrus medica-var Typica.

संस्कृत : मातुलुङ्ग, रुचक, बीजपूरक, बीजपूर्ण, सुकेसर।

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमोत्तर भारत, कश्मीर, बंगाल, आसाम, दक्षिण भारत के उद्यानों में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार, निम्बूक सदृश्य **वृक्ष, काण्ड** गोल सकण्टक **पत्र** एकान्तर, निम्बूक सदृश किन्तु अधिक दीर्घ, विस्तृत, **पुष्प** अनेक सुगन्धित, पीताभ श्वेत, वर्ण **फल** पीत वर्ण नींबू की अपेक्षा बड़े, दीर्घ गोलाकार, अनेक उभार युक्त होते हैं।

रासायनिक संगठन–फलत्वक् स्थित उड़नशील तैल में Citrene ७६%, Citrol ७-८%, Cymone,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Citronellol, रस में निम्बूकाम्ल, गन्धकाम्ल, शर्करा होती है।

गुणकर्म–रस-मधुर (मधुर जाति में), अम्ल (अम्ल जाति में) गुण-लघु, स्निग्ध **वि०** रसानुसार **वी०** अनुष्ण। वातपित्त एवं वातकफशामक, दीपन, तृषा-छर्दि प्रशमन, शूलहर, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, हृदयोत्तेजक है।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः त्वग्रोग, शोथ, वृश्चिक दंश, वेदनायुक्त शोथ, में लेप **आभ्यन्तर**-छर्दि, तृषा, अरोचक, अजीर्ण, गुल्म, उदरशूल, विबन्ध, अर्श, रक्तातिसार, रक्तपित्त, यकृद्रोग, श्वास, कास, हृद्रोग, अश्मरी, रजोरोध (बीज) में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग, कल्पनाएं–फल, बीज, मूलत्वक्, पुष्प केसर **मात्रा** फल स्वरस ५-१० ग्राम, मूलत्वक् क्वाथ ४०-८० ग्राम, बीजपूराद्य घृत।

विशेष–रस भेद से दो जातियां (क) मधुर (ख) अम्ल जाति रस से निर्मित Citric acid जो दानेदार रूप में प्राप्त होता है। त्वग्रोगादि में बीज लेप, वेदनायुक्तशोथ में कोष्ण पत्र बन्धन किया जाता है।

सिताब

द्रव्यनाम–हिन्दी : सुदाब, सिताब।

लैटिन : Ruta graveolens.

उत्पत्ति स्थान–पंजाब में क्षुप लगाये जाते हैं। इसका आयात ईरान, अफगानिस्तान से होता है।

वानस्पतिक परिचय–दुर्गन्धित, वर्षायु छोटा **क्षुप** काण्ड मृदु अनेक शाखा प्रशाखायुक्त **पत्र** धूमिल, हरिताभ, तनु छोटे द्वि विभक्त तीव्र अप्रिय गन्धि, **पुष्प** पीतवर्ण गुच्छों में **फल** त्रिकोष्ठीय जिनमें ३ **बीज** त्रिकोणाकार धूसर वर्ण के होते हैं। **पुष्पकाल** शीत **फल** बसन्त।

रासायनिक संगठन–इसमें एक ग्लुकोसाइड, रुटिन, एक उड़नशील तैल, (गंधयुक्त) जिसमें ९०% मेथिल नानिलेकेटोन होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त गुण-तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, कृमिघ्न, स्वेदजनन, नाड़ी उत्तेजक, आक्षेपहर, अवसादक, मूत्रजनन, गर्भाशय उत्तेजक।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः कर्णशूल-स्राव में स्वरस पूरण, शोथ, सर्प, वृश्चिकदंश में लेप, **आभ्यन्तर** अपस्मार, अपतन्त्रक, आक्षेपक, नाड़ीदौर्बल्य, आध्मान, उदरशूल, कृमि, कास, प्रतिश्याय, त्वग्रोग, मूत्राघात, रजोरोध, अनार्त्तव, कष्टप्रसव, ज्वर में विशिष्ट उपयोगी द्रव्य है।

प्रयोज्य अंग–पंचांग **मात्रा** चूर्ण ०.५-१ ग्राम, फाण्ट १०-२० ग्राम; स्वरस २-३ ग्राम।

विशेष–इसके पत्रों में तैल ग्रन्थियाँ होती हैं, पत्रों को मसलने पर उत्क्लेशकर तीव्र दुर्गन्धि की अनुभूति होती है। बालकों में होने वाले ज्वर, उदरशूल, कास, प्रतिश्याय, कृमि, आक्षेप प्रधान विकारों की मुख्यौषधि है। बच्चों के आक्षेप, अपस्मार में गोरोचन के साथ प्रयोग। भ्रम एवं अपतन्त्रक में फाण्ट प्रयोग। तीव्र गर्भाशय संकोचक होने से गर्भावस्था में प्रयोग वर्जित है।

जम्बीर

द्रव्य नाम–हिन्दी : जम्बीरी निंबू।

लेटिन : Citrus medica var limonium.

संस्कृत : जम्बीर, जम्भ, दन्तशठ।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र लगाया जाता है। विशेषतः उत्तर भारत के प्रदेशों एवं मध्य प्रदेश में पाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय–प्रायः निंबुक या बिजौरा निम्बूक सदृश **वृक्ष, पत्र** निम्बुक सदृश किन्तु बड़े पत्र वृन्त की ओर पक्षयुक्त **पुष्प** श्वेताभ, **फल** पीत (पक्व) लम्ब गोल, अधिक गूदेदार, खर, एवं फलावरण स्थूल होता है।

रासायनिक संगठन–फल रस में Citric acid प्रचुर मात्रा में प्राप्त (१०० सी० सी० में ३.७%)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ग्लुकोसाइड Hespreriodine, फलत्वक् में उड़नशील तैल होता है।

गुण कर्म–रस-अम्ल; गुण-तीक्ष्ण, गुरु **वि०** अम्ल **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्तवर्धक।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः कर्ण शूल में सघृत कोष्ण रस पूरण, त्वग्रोगों में, फलत्वक् बीज लेप, **आभ्यन्तर**-अरोचक, छर्दि, विबन्ध, अजीर्ण, गुल्म, कृमि, यकृद्विकार, हृच्छूल, कास, श्वास, आमवात, गृध्रसी, विषविकार।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, पत्र, त्वक् **मात्रा** फल स्वरस ५-१० ग्राम।

विशेष–फलाकृति भेद से बृहत् (जम्बीर, बृहत्फल, स्थूल त्वचा युक्त) लघु (जम्बीरिक फल छोटे तनुस्त्वक् युक्त) फलत्वक्से तिर्यक्पातन द्वारा पीतवर्ण, उड़नशील तैल (Citronila oil) निकलता है।

तुलसी कुल
LABIATAE FAM.
तुलसी

द्रव्य नाम—हिन्दीः तुलसी, तुलशी।

लेटिन : Ocimum sanctum.

संस्कृत : तुलसी बहुमञ्जरी, गौरी, ग्राम्या, सुलभा, भूतघ्नी, अपेतराक्षसी, शूलघ्नी, अमृता।

वर्गीकरण—पुष्प वर्ग (भा० प्र०), सुरसादि (सुश्रुत)।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र उष्ण एवं साधारण प्रान्तों के वन, उपवनों में उत्पन्न होती है। घरों में भी लगायी जाती है।

वानस्पतिक परिचय–सुपरिचित **क्षुप** ०.३-०.७ मी० ऊंचा; तीव्रगन्धयुक्त, शाखाएँ तनु विस्तृत, **पत्र** अण्डाकार, सूक्ष्मदन्तुरित ३०–४० मि० मी० दीर्घ **पुष्प** शाखाग्र १००-१५० मिलि मीटर दीर्घ मञ्जरी में श्वेत हरिताभ वर्ण **बीज** रक्ताभ, आयताकार चपटे होते हैं। **पुष्प फल काल** शीत।

रासायनिक संगठन—इसमें हरितपीताभ सुगन्धित तैल जो कुछ समय रखने से रवेदार हो जाता है। इसे Basil camphor कहते हैं।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्त वर्धक, बीज स्निग्ध, पिच्छिल। पत्र दीपन, कृमिघ्न, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, हृद्य, रक्तशोधक।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः वेदनायुक्त शोथ, व्रण में लेप व शैत्य में त्वचा पर अवघर्षण, **आभ्यन्तर**-प्रतिश्याय, कास, पार्श्वशूल, छर्दि, उदरशूल, विषमज्वर, हृद्रोग, शोथ, रक्त विकारों में पत्र प्रयोग, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह, दौर्बल्य में बीज प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग—पत्र, बीज **मात्रा** पत्र स्वरस १०-२० ग्राम, बीज चूर्ण १-२ ग्राम।

विशेष–जातियाँ, कृष्ण जाति तुलसी की शाखाएं कृष्णाभ। (१) वर्वरी-अजगन्धिका (O.basilicum.) कपूरी तुलसी इससे कर्पूर निकाला जाता है (२) राम तुलसी (O.gratis simum.) (३) O.canum होती हैं।

वर्वरी (वन तुलसी)

द्रव्य नाम—हिन्दी : बनतुलसी, बुबई।

लैटिन : Ocinum basilicum.

संस्कृत : वर्वरी, सुरभी, खरपुष्पा, तुंगी, तुवरी, अजगन्धिका, पर्णाश।

उत्पत्ति स्थान—उष्ण एवं समशीतोष्ण प्रदेश बंगाल, पंजाब आदि प्रदेशों के वन्य क्षेत्रों में स्वयं जात क्षुप समूहबद्ध पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सरल, रोमश ०.३–०.६ मी० ऊंचा **क्षुप** काण्ड शाखायें हरित, बैंगनी **पत्र** मधुर गन्धि अण्डाकार, नुकीले २५-७५ मि० मी० दीर्घ **पुष्प** शाखाग्र मञ्जरी में, गोल, श्वेत, बैंगनी, **बीज** अण्डाकृति छोटे, कृष्ण वर्ण; जल में भिगोने पर लुआब उत्पन्न होता है। **पुष्प फल काल** शीत।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संगठन–पत्र में हरिताभ, पीत वर्ण उड़नशील तैल, तीव्रगन्धि जो रखा रहने पर रवेदार ठोस हो जाता है (Basil camphor)। तैल में Ocimine; बीजों में पिच्छिल सत्व होता है।

गुर्ण कर्म–पत्र-रस-कटु, तिक्त गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष-लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। बीज-मधुर, शीत, स्निग्ध, वातकफशामक।

आमयिक प्रयोग—बाह्यः नेत्राभिष्यन्द, दुष्ट व्रण, नाड़ीव्रण, शोथ, शिरोरोग, मूर्च्छा, **आभ्यन्तर**-तृषा, दाह, आन्त्रशोथ, प्रवाहिका, रक्तार्श, रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ्र में (बीज), अरोचक, आमदोष, कृमि, हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, कास, श्वास, कृच्छ्रार्त्तव, पूयमेह, विषमज्वर में (पंचांग, पत्र) प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग—पत्र, पंचांग बीज **मात्रा** स्वरस ५-१० ग्राम, क्वाथ ५०-१०० ग्राम, बीज १-३ ग्राम।

विशेष–इसके बीजों को तुख्म शर्बती या तुख्म रैहां कहते हैं। पत्रों से पानी के साथ वाष्पीकरण विधि से उड़नशील तैल प्राप्ति। पत्र एवं पुष्प वर्ण भेद से ३ जाति (क) वटपत्र ख–अर्जक (श्वेत पुष्प) ग–कुवेरक (बैंगनी पुष्प) होती है।

द्रोणपुष्पी

द्रव्यनाम–हिन्दी : गूमा।

लैटिन : Leucas cephalotes.

संस्कृत : द्रोणपुष्पी, द्रोणा फलेपुष्पा, कुतुम्बक।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र वर्षा ऋतु में क्षुप उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **क्षुप** ०.५-१ मी० ऊंचा, रोमश, स्तम्भ सरल, चतुष्कोणीय **पत्र** अण्डाकार, प्रासवत् ५०-७५ मि० मी० दन्तुरित **पुष्प** श्वेत प्रायः शाखाग्र गोल (द्रोणाकृति) पत्रकोणोद्भूत, एवं पुष्प गुच्छ के ऊपर दो पत्र संलग्न रहते हैं। **पुष्पकाल**–शरद्।

रासायनिक संगठन–पुष्पों में एक सुगन्धित तैल तथा क्षाराभ पाया जाता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त, लवण मधुर, गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष, गुरु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्तस्रंसन। स्वेदजनन, वेदना-शोथहर, रक्तशोधक, आर्त्तवजनन, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः प्रतिश्याय ज्वर जन्य शिरःशूल में स्वरस नस्य **आभ्यन्तर**-विषम ज्वर, फ्लू, आध्मान, अग्निमांद्य, उदरशूल, कामला, रक्तविकार, शोथ, कष्टार्त्तव, सर्पविष में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग–पत्र, पुष्प, पंचांग **मात्रा** स्वरस ५-१० ग्राम, क्वाथ ३०-६० ग्राम।

विशेष–विषम ज्वर एवं सर्प विष में पंचांग क्वाथ लाभप्रद है। प्रतिश्याय में पुष्प-शर्बत या फाण्ट स्वरस में मधु, टंकण के साथ प्रयोग होता है। आध्मान, उदरशूल में स्वरस देते हैं।

उस्तखुद्दूस

द्रव्यनाम–हिन्दीः धारु, उस्तूखूदूस।

लेटिन : Lavandula stoechas

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के समशीतोष्ण क्षेत्र कश्मीर से भूटान तक ५-११ हजार फीट तक; बंगाल, गोवा में क्षुप उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–शरद् ऋतु में उत्पन्न वर्षायु **क्षुप** ०.५ मी० ऊंचा **पत्र** गोल, दन्तुरित, **पुष्प** बैंगनी, रोमश; कर्पूरगन्धि **बीज** गोल, चिपटे, धूसर पीत होते हैं। बाजार में इसके पुष्प मिलते हैं।

रासायनिक संगठन–पुष्पों से पीत रक्ताभ वर्ण का उड़नशील तैल प्राप्त होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त, गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्त स्रंसन, दीपन, अनुलोमन, प्रमाथी, मस्तिष्क-नाड़ी संशोधक, बल्य, कफघ्न हृद्य, मूत्रल।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्यः पत्र का वेदनायुक्त शोथ विकारों में लेप, **आभ्यन्तर**-उन्माद, स्मृति दौर्बल्य, अपस्मार, पक्षाघात, अर्दित, आमवात, गृध्रसी, उदरशूल, अर्श, जलोदर, यकृच्छोथ, प्रतिश्याय, कास, तमकश्वास, हृद्दौर्बल्य, मूत्रकृच्छ्र में अत्युपयोगी द्रव्य है।

प्रयोज्यअंग कल्पनाएं–पुष्प, पत्र, **मात्रा** ३-६ ग्राम, अतरीफल उस्तूखूदूस।

विशेष–तमक श्वास में इसका प्रयोग जूफा, मुलैठी, सौंफके क्वाथ फाण्ट से होता है। उन्माद, अपस्मार, पक्षवध, नाड़ीशूल की मुख्य औषध है। अत्युष्ण तीक्ष्ण होने से पैत्तिक प्रकृति पुरुषों में प्रयोग निषेध है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**-पुष्प बैंगनी रंग, श्वेत, पीत, रक्ताभ होते हैं, एवं उनके ऊपर सूक्ष्म रोएं, कर्पूर के समान तीव्र सुगन्धि, सूंघने से छींक आती है। **जातियाँ** (१) L. burmani (२) Prunella vulgaris होती हैं।

जूफा

द्रव्य नाम–हिन्दी : जूफा।

लैटिन : (Hyssopus officinalis)

उत्पत्ति स्थान–कश्मीर से कुमाऊं तक ८-११ हजार फीट ऊँचाई तक तथा पंजाब में क्षुप उत्पन्न होते हैं। इसका फारस से आयात होता है।

वानस्पतिक परिचय–तृण जाति **क्षुप**; ०.४ मी० तक ऊँचा, स्तम्भ स्निग्ध, भूमि पर प्रसरी शाखाएँ ग्रन्थियुक्त **पत्र** सुगन्धित साधारण, अभिमुख, भालाकृति ८ मि० मी० दीर्घ। **पुष्प** प्रत्येक शाखा ग्रन्थियों पर पीताभ, द्रोणपुष्पी सदृश **फल** नीलाभ, बैंगनी, चतुर्वेश्म (Nutlets) संकुचित त्रिकोणीय स्निग्ध होते हैं।

रासायनिक संगठन–पंचांग में उड़नशील तैल (Oil of hyssop) पीत, हरिताभ वर्ण ¼ – ½%, पिच्छिल, वसा, शर्करा, कषाय सत्व होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त कटु, गुण-लघु, तीक्ष्ण **विपाक** कटु वी० उष्ण। वात कफशामक, पित्तस्रंसन, प्रमाथी, शोथहर, वातानुलोमन, कृमिघ्न, यकृदुत्तेजक, कफनिस्सारक।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः शोथ में लेप **आभ्यन्तर** प्रतिश्याय, कास, श्वास, फुफ्फुस-श्वासप्रणालीशोथः कृमि, उदररोग, विबन्ध, यकृत्वृद्धि, जलोदर में अत्युपयोगी एवं दैनिक चिकित्सोपयोगी द्रव्य है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–पंचांग **मात्रा** क्वाथ ३०-५० ग्राम, शर्बत २०–४० ग्राम। गोजिह्वादि क्वाथ; शर्बत जूफा।

विशेष–कफोत्सारि, शोथघ्न होने से इसका श्वसन संस्थान की विभिन्न शोथ, प्रदाह युक्त व्याधियों, न्यूमोनिया, प्रतिश्याय, कृच्छ्रश्वास, कफ-कासादि में क्वाथ, शर्बत प्रयोग होता है। पित्तसारक, यकृत् उत्तेजक होने से उदर रोग एवं यकृत् विकारों में उपयोगी है।

पूतिहा (पुदीना)

द्रव्य नाम–हिन्दी : पुदीना, पोदीना।

लैटिन : Mentha viridis.

संस्कृत : पूतिहा, रोचनी, पूतनी, पुदिन, पूतकन्या, शाकशोधन, वान्तिहर, सुगन्धि पत्र, व्यञ्जन, रोपण।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र उद्यानों में लगाया जाता है। हिमालय क्षेत्र, कश्मीर, बंगाल में स्वयं उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–सुगन्धित, वर्षायु, हरित **क्षुप**; **पत्र** अवृन्त, मृदु, लट्वाकार, भालाकार, तीक्ष्णाग्र, दन्तुरित, **पुष्प** छोटे, बैंगनी गुच्छों या मञ्जरी में होते हैं।

रासायनिक संगठन–पुष्प मञ्जरी एवं पत्रों में स्थित उड़नशील तैल में मुख्यतः Thymol, राल, टैनिन, गोंद होते हैं।

गुण कर्म–रस-कटु गुण-तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, दौर्गन्ध्यहर, दीपन, तृष्णा-छर्दिप्रशमन, कृमिघ्न, मूत्रल, हृद्य।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्य-मुखदौर्गन्ध्य में स्वरस का सजल गण्डूष। वृश्चिक मूषकदंश, शोथ, दुर्गन्धित व्रण में लेप। **आभ्यन्तर**-अरोचक, छर्दि, हृल्लास, तृषा, दाह, आध्मान, विसूचिका, अतिसार, कृमि, हिक्का, कास, श्वास, हृद्दौर्बल्य, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग–पत्र, तैल, सत्व **मात्रा** पत्र स्वरस १०-२० ग्राम, तैल १-३ बूंद, फाण्ट २०-५० ग्राम, सत्व ६२-१२५ मि० ग्राम।

विशेष–विविध जातियाँ–M. sativa; वन्य पुदीना, (M. sylvestris); जलीय पौदीना (M. aquatica), फूदजन पुदीना (M.arvensis) सम-शीतोष्ण हिमाचल प्रदेश में उत्पन्न। सत्व Thymol जो पिपरमेन्ट से स्वाद एवं गन्ध में भिन्न होता है।

मरुबक (मरुवा)

द्रव्यनाम–हिन्दी : मरुवा, मरुआ।

लेटिन : Origanum marjorana.

संस्कृत : मरुवक, खरपत्र, प्रस्थपुष्प, मारुत, फणी, फणिञ्जक, समीरण।

वर्गीकरण–पुष्प वर्ग (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–सर्व उद्यानों में लगाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में क्षुप स्वयं उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सुगन्धि **क्षुप** ०.३-१ मी० ऊँचा **पत्र** तीव्रगन्धि, दीर्घ, अण्डाकार, रक्ताभ, श्वेतरोमश, **पुष्प** पत्रकोणोद्भूत, तुलसी सदृशमञ्जरी में **बीज** कृष्ण, छोटे, गोल, उन्नतोदर होते हैं। **पुष्प-काल**-शीत।

रासायनिक संगठन–इसमें उड़नशील सुगन्धि तैल Oleum-marjoranae, तैल में टर्पिन तथा तिक्त सत्व होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त कटु, गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्त-वर्धक, दीपन, वातानुलोमन, शूलघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः वृश्चिकादि विषदंश, शिरःशूल, आमवात, शोथ, व्रण, दन्तशूल **आभ्यन्तर** कृमि, आध्मान, शूल, हृद्दौर्बल्य, कफज (कास-श्वास-हिक्का) त्वग्रोग, रजोरोध, ज्वर में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग–पंचांग **मात्रा** स्वरस ५-१० ग्राम, फाण्ट १०-२० ग्राम, तैल २-५ बूंद।

विशेष–वृश्चिकदंश, शिरःशूल आदि में लेप, उपनाह, स्वेदन, धूपन प्रयोग होता है। **जाति**–कृष्ण श्वेत का चिकित्सार्थ प्रयोग। वन्य एवं ग्राम्य भेद से दो जातियां होती हैं।

नारिकेल कुल
PALMAE FAM.

नारिकेल

द्रव्य नाम–हिन्दी : नारियल, खोपरा, गरी।

लेटिन : Cocos nucifera.

संस्कृत : नारिकेल, श्रीफल, दृढ़फल, सदाफल, स्कन्धफल, दक्षिणात्यक, तोयगर्भ, सदापुष्प, कूर्च शीर्षक, लांगली, तुंग।

उत्पत्ति स्थान–लवणाम्बु मिश्रित भूमि, समुद्र तटवर्ती प्रान्त, कैरल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, उड़ीसा, बंगाल में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–ताड़ सदृश १२-१८ मी० ऊँचा **वृक्ष**; **काण्ड**, शाखारहित सरल, गोल, वर्तुल चिन्हयुक्त, धूसर श्वेत, **पत्र** खजूर सदृश, अति दीर्घ (३-४ मी०) **पत्रक** दीर्घ पत्रकाग्र क्रमशः तीक्ष्ण रेखाकार, हरित वर्ण, **पुष्प** पत्रों के मध्य सुन्दर, पीत वर्ण, **फल** ताड़ सदृश, अण्डाकार, दृढ़ावरण युक्त; बाल्यावस्था में जलप्रधान, मध्यमावस्था में गिरी श्वेत, मृदु दुग्धवत्, जल अल्प; पक्वावस्था में जलविहीन गिरी कठिन मधुर, मज्जा, स्नेह प्रधान होती है। **पुष्प फल काल** ग्रीष्मान्त-वर्षा।

रासायनिक संगठन–ताजे फल में मांस जातिय द्रव्य, ५.५% वसा, तालशर्करा, (ग्लुकोज, द्राक्षा, इक्षु) क्षार, तैल में लॉरिक मायरिस्टिक, पामिटिक,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्टियरिक, अम्लों के ग्लिसराईड्स के साथ Caprylic acid होता है।

गुणकर्म–रस-मधुर गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, दाहतृष्णाछर्दिप्रशमन, रक्तपित्तशामक, शूलहर, मूत्रल, बृंहण।

आमयिक प्रयोग–बाह्य: दग्धव्रण. दद्रु, त्वग्रोग, खालित्य, **आभ्यन्तर**-दाह तृषा, अग्निमांद्य, छर्दि विसूचिका, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, रक्तपित्त, हिक्का में जल प्रयोग, अम्लपित्त, पैत्तिकशूल, गुल्म में (क्षार) क्षय, कास, दौर्बल्य में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पुष्प, जल, पक्वफल, क्षार, **मात्रा** जल ५०-१०० ग्राम, फल २०-३० ग्रा०, क्षार ०.५-१ ग्राम, तैल १०-२० बूंद, नारिकेल-लवण-खण्ड।

विशेष–आधाशीशी में जल नस्य प्रयोग, त्वग्-रोगों में कवच का पाताल यंत्र से प्राप्त तैल, विश्वस्त औषध द्रव्य है। मध्यम (कच्चा) खोपरा फल पित्तसारक, शामक, अनुलोमी होने से पैत्तिक शूल एवं अम्लपित्त में दैनिक प्रयोग। पक्व फल से ६०-६९% तक तैल प्राप्ति। पत्र भस्म में पोटाश प्रचुर मात्रा में होता है।

खर्जूर

द्रव्य नाम–हिन्दी : खजूर, खजूरी,।

लैटिन : Phoenix-sylvestris,

संस्कृत : भूमिखर्जूरिका, खर्जूर, पिण्डफला, स्कन्धफला, स्वाद्वी, दुरारोहा।

वर्गीकरण–मधुरस्कन्ध, श्रमहर, विरेचनोपग (च०) फल वर्ग (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–देश के प्राय: सभी प्रान्तों में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–ऊँचा १०-१३ मी०, शाखारहित, सुन्दर **वृक्ष**; **काण्ड** सरल, धूसर, उत्तरोत्तर संकुचित, सदीर्घकंटक, खर **पत्र** शीर्षस्थ सदीर्घपत्रवृन्त कांडलग्न, पक्षाकार, दीर्घ **पत्रक** दीर्घ, हरितवर्ण, तीक्ष्णाग्र, रेखाकार **पुष्प** एकलिंगी, श्वेताभ, सुगंधि **फल** स्त्री जाति वृक्ष में, गोलाकार २५-४० मि० मी० दीर्घ रक्ताभ पीत वर्ण गुच्छों में **बीज** कठिन लम्ब गोल, दीर्घपरिखायुक्त होते हैं। **पुष्प फलकाल** ग्रीष्म-ग्रीष्मान्त।

रासायनिक संगठन–पिण्ड खजूर फल में खनिज लवण, लौह, टैनिन, सुधा, पिच्छिल द्रव्य, शर्करा आदि द्रव्य होते हैं।

गुण कर्म–रस-मधुर गुण-गुरु, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, दाहतृष्णाछर्दि प्रशमन, रक्तपित्तशामक, हृद्य, बल्य, बृंहण।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर**–दाह, तृषा, अरोचक, छर्दि, अतिसार, कोष्ठगत वात, भ्रम, मूर्च्छा, हृद्दौर्बल्य, रक्तपित्त, उरःक्षत, श्वास, कास, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदौर्बल्य, ज्वरोत्तर दौर्बल्य; शोष, क्षय में खजूरी रस उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, रस **मात्रा** ५-७ दाने, खजूरी ५०-१०० ग्राम; खर्जूरासव।

विशेष–इसके वृक्ष से एक स्राव स्रवित होता है जिसे खजूरी कहते हैं इसे कुछ काल तक रखने से मद्य में परिवर्तित। एक जाति पिण्ड खजूर (P. dactylifera) अफगानिस्तान, मिश्र, अरब; देश में पंजाब में उत्पन्न होता है।

ताल (ताड़)

द्रव्य नाम–हिन्दी : ताड़, ताल।

लेटिन : Borassus flabellifera,

संस्कृत : ताल, तृणराज, महोन्नत, ध्वजाद्रुम, शतपर्व, लेख्यपत्र, गुच्छपत्र।

वर्गीकरण–फल वर्ग (भा० प्र०) मधुरस्कन्ध (च०) सालसारादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–प्राय: सर्वत्र विशेषतया उष्ण-प्रान्त केरल, तमिलनाडु, बिहार, उड़ीसा, बंगाल में वृक्ष स्वयं उत्पन्न तथा लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहुत ऊँचे (२०-३० मी०) सुन्दर शाखारहित **वृक्ष**; **पत्र** काण्ड शीर्षस्थ गुच्छों में पत्रवृन्तदीर्घ तीक्ष्ण दन्तुरित; पक्षाकार,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दीर्घ, (१-१.५ मी०) **पुष्प** एकलिंगी, मृदु, गुलाबी, पीत वर्ण **फल** स्त्री जाति में नारियलसदृश गुच्छों में, कठिन, धूसरपीताभ, फलमज्जा रक्ताभपीत, मधुर, सूत्रान्वित **बीज** कठिन अण्डाकार १-३ होते हैं। **पुष्पकाल** बसन्त **फल** वर्षा।

रासायनिक संगठन–इसमें निर्यास, वसा, अलब्यूमिनायड होते हैं।

गुण कर्म–रस-मधुर, गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, दाहतृषा शमन, रक्तपित्तशामक, मस्तिष्क नाड़ीबल्य-शामक; रक्तशोधक, ज्वरघ्न, कफोत्सारि, बल्य, बृंहण।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–त्वग्रोग, रक्तस्राव, सद्यव्रण, दाह, शोथ, **आभ्यन्तर** मूर्च्छा, ज्वर, प्रलाप, दाह, रक्तपित्त, रक्तविकार (पत्र रस) तृषा, दाह, श्रम, दौर्बल्य, शोष (ताड़ी गुड़शर्करा) गुल्म यकृत्-प्लीहावृद्धि (पुष्प क्षार) में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग–पत्र, पुष्प, फल, ताड़ी, क्षार **मात्रा** स्वरस १०-२० ग्राम, क्षार १-२ ग्राम, ताड़ी ५०-१०० ग्राम।

विशेष–वृक्ष से श्वेत फेनमय, मधुर, स्वच्छ पारदर्शक रस स्रवित होता है जिसे नीरा कहते हैं, ८-१० घंटे बाद नीरा में किण्विकरण क्रिया प्रारम्भ होने लगती है। जिससे मद्यसार में परिणत होने से ताड़ी कहलाती है। त्वग्रोगों में फलमज्जा लेप एवं रक्तस्राव शोथादि में पत्रस्वरस लेप प्रयोग प्रशस्त है।

पूगीफल

द्रव्य नाम–हिन्दी : सुपारी, छालिया।

लेटिन : Areca Catechu.

संस्कृत : पूगीफल, पूग, क्रमुक, घोरण्ट, गुवाक।

वर्गीकरण–फलादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–लवणाक्त भूमि में विशेषतः उष्णप्रान्त केरल, तमिलनाडु, आसाम, बंगाल में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–ताड़, नारियल सदृश **वृक्ष** १०-१३ मी० ऊँचा, **काण्ड** सरल, तनु, **पत्र** संयुक्त पक्षाकार, दीर्घ (१.३-२ मी०) **पत्रक** नारियल सदृश सूक्ष्म-रोमश **पुष्प** कठिन बहुशाखी पुष्पदण्ड पर पीताभ श्वेत गुच्छों में **फल** लम्ब गोल (२५-५० मि० मी०) गुच्छों में, रक्त धूसर वर्ण (पक्व) बाह्यफलावरण नारियल सदृश, सौत्रिक-कोषयुक्त, इसे तोड़ने पर सुपारी निकलती है। श्वेतरेखाबहुल सुपारी उत्तम होती है। **पुष्प काल** शरद् **फल** बसन्त।

रासायनिक संगठन–इसमें १४% एक अनुत्पत् तैल, कषाय द्रव्य १०-१५% गैलिक एसिड, गोंद, ४ क्षारोद् Arecoline, Arecaine, Arecaidine, Guvacine होते हैं।

गुण कर्म–रस-कषाय मधुर गुण-रूक्ष, गुरु **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामक दीपन, स्तम्भन, नाड़ी बल्य, स्वेदल, मूत्र संग्रहणीय, शुक्रस्तम्भन, गर्भाशयशोथहर है।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः–मुखपाक, गल रोग, दन्तपूय, दन्तवेष्ट, शीताद में क्वाथ गण्डूष, अन्तर्धूम दग्ध भस्म का मञ्जन, नेत्र विकारों में अञ्जन; व्रण, श्वेतप्रदर, **आभ्यन्तर**–अरोचक, छर्दि, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, रक्तातिसार, कृमि, रक्तपित्त, रक्तविकार, बहुमूत्र, शुक्रमेह, श्वेतप्रदर, गर्भाशयशोथ, सूतिका विकारों में विशेष उपयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ–फल-पुष्प **मात्रा** ३-५ ग्राम। पूगखण्ड।

विशेष–जाति–अनेक मुख्यतः साधारण सुपारी (श्वेत) दूसरी दक्षिणी सुपारी (लाल)। व्रण में चूर्णावधूलन, श्वेत प्रदर में क्वाथ पिचुधारण या उत्तर बस्ति प्रयोग होता है। विकासी रूक्ष होने से ओजोनाशक, धातु शैथिल्य मद, भ्रम उत्पन्न करता है। **निवारण** घृत, दुग्ध, स्निग्ध द्रव्यों का प्रयोग

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

करना चाहिए। सुपारी को स्विन्न कर या बालू मिट्टी में भूनकर प्रयोग करने से हानिकर प्रभाव नहीं होता है।

दरियाई नारियल

द्रव्य नाम–हिन्दी : दरियाई नारियल।

लैटिन : Lodoicea seychellarum.

उत्पत्ति स्थान–पूर्व अफ्रीका के सिकेलीज टापू, अमरीका के समुद्र तटवर्ती क्षेत्र, देश के पश्चिमी समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–नारियल सदृश **वृक्ष** १५-३० मी० ऊँचा **पत्र** नारियल सदृश, पक्व एवं शुष्क पत्र पतनशील **पुष्प** छोटे छोटे **फल** नारियल सदृश किन्तु अत्यधिक बड़े, अतिकठिन, स्थूल, भारी (१८-२३ कि० ग्रा०) फलावरण तोड़ने पर प्राप्त गिरी पहले आर्द्र बाद में पाषाण सदृश कठिन, बाजार में शुष्क गिरी के श्वेत वैडोल टुकड़े प्राप्त होते हैं।

गुण कर्म-रस-कटु मधुर, गुण-लघु रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः सर्प, वृश्चिक, शतपदी आदि के दंश स्थान पर लेप, शोथ, ग्रन्थि, उपदंश-व्रण पर लेप **आभ्यन्तर**-तृषा, दाह, छर्दि, ह्लल्लास, अतिसार, विसूचिका, हृद्दौर्बल्य, हृत्स्पन्दन, शीतज्वर, मधुमेह, स्थावर विष, (वत्सनाभ, अहिफेन) विकारों की मुख्य औषध है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ–फल, मज्जा, **मात्रा** ०.५-१ ग्राम, जवाहरमोहरा।

विशेष–विषैले जंतुओं के दंश स्थान पर गुलाब अर्क में घिस कर लेप। विसूचिका में गुलाब जल में घिसकर पान प्रयोग से विष निर्गमन (वमन-अतिसार द्वारा) होकर रोगोपशम। इसका प्रयोग निरन्नोदर में वर्जित है।

तरुणी कुल
ROSACEAE FAM.
तरुणी (गुलाब)

द्रव्य नाम–हिन्दी : गुलाव, गूलाब।

लैटिन : Rosa Centifolia.

संस्कृत : तरुणी, अतिमंजुला, शतपत्री, चारुकेशरा, कर्णिका, गन्धाढ्या, महाकुमारी, लाक्षा।

वर्गीकरण–पुष्प वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान—प्रायः सर्वत्र, उद्यानों में लगाया जाता है, विशेषतः कश्मीर, पंजाब, पश्चिमोत्तर प्रदेश, बंगाल में प्राप्त होता है।

वानस्पतिक परिचय–सुपरिचत बहुवर्षायु **क्षुप** १-३ मी० ऊँचा शाखाएँ कण्टकित, **पत्र** हरित, अण्डाकार, दन्तुरित **पुष्प** मनोरम, गोल, चक्राकार, श्वेत, रक्त, पीत, विविध वर्ण के, अनेकदली (वन्य गुलाव ५ दली) **फल** रक्त, अण्डाकार होता है। **पुष्प फल काल** बसन्त।

रासायनिक संगठन–पुष्प में टैनिक एसिड़, तथा गैलिक एसिड एक तैल (Oleum rosi) होता है।

गुण कर्म–रस-मधुर, कषाय, तिक्त, गुण-लघु, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत। त्रिदोषशामक, सौमनस्कर, तृषा-दाह-छर्दिप्रशमन, सारक, हृद्य, रक्त-शोधक, शोणितास्थापन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः नेत्राभिष्यन्द, मुखपाक, दौर्गन्ध्य, विस्फोट, व्रण, पैत्तिक शिरःशूल, वैवर्ण्य, प्रदर, **आभ्यन्तर**-तृषा, दाह, अरोचक, कोष्ठगत वात, रौक्ष्यता, विबन्ध, हृद्दौर्बल्य, रक्तपित्त, रक्त विकार, त्वग्रोग, स्वेदाधिक्य, ज्वर, रक्तप्रदर, दौर्बल्य में अति उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पुष्प, **मात्रा** चूर्ण १-५ ग्राम, गुलकन्द, शार्कर, अर्क गुलाब।

विशेष–उत्पत्तिस्थान, गन्ध, निर्गन्ध, ग्राम्य, वन्य भेद से १५० से अधिक जातियां, मुख्य जाति

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

R. alba, R. damascena, R. gollica, R. maschata आदि। नेत्राभिष्यन्द में रस, नेत्र-बिन्दु एवं लेप, कर्णशूल में रसपूरण, मुखपाक दौर्गन्ध्य में गण्डूष, व्रण विस्फोट में लेप, प्रदर में कल्क धारण प्रयोग होता है।

आरुक (आलूबोखारा)

द्रव्य नाम–हिन्दी : आलूबोखारा, अलबुखारा।

लेटिन : Prunus communis.

संस्कृत : आरुक, भल्लुक, रक्तफल।

उत्पत्ति स्थान–आदिवासी स्थान, बुखारा समरकन्द, सम्प्रति हिमालय में गढ़वाल से कश्मीर तक ५-६ हजार फ़ीट तक होता है।

वानस्पतिक परिचय–गुल्माकृति मध्यमाकार, सकण्टक या अकण्टक **वृक्ष**; **शाखायें** सरल, पत्रधारक शाखायें V आकृतियुक्त **पत्र** सेव सदृश अण्डाकार दन्तुरित, **पुष्प** छोटे-छोटे श्वेत पीताभ, गुच्छों में **फल** आमलकी, आड़ूसदृश, गोल एक या युग्म रक्ताभधूसर (पक्व) **बीज** १ कठिन, मज्जायुक्त, मज्जा से तैल प्राप्ति। **पुष्पकाल** शीत **फल** बसन्त।

रासायनिक संगठन–फल में शर्करा Malic acid, citric acid, पेक्टीन, अलब्युमिनायड्स तथा क्षार होते हैं।

गुण कर्म–रस मधुर, अम्ल; गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्त शामक, कफवर्धक, दीपन, स्नेहन, सारक, तृषा–दाहशमन, मूत्रल, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर–हृल्लास, छर्दि, तृषा, कोष्ठगतवात, (रैक्ष्यता वृद्धि,) विबन्ध, अर्श, रक्तविकार, वातरक्त, रक्तपित्त, दाह, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, तज्जन्य उपद्रव (दाह, तृषा, हृल्लास) दौर्बल्य में भूरिशः प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग–फल मात्रा ३-५ दाने, रेचनार्थ १५-२० दाने।

विशेष–इसका शुष्क फल २५-३० मि० मी० व्यास युक्त, झुर्रीदार, रक्ताभ धूसर, गन्धरहित होता है। २ जाति (क) वन्य (ख) ग्राम्य जाति, फल बड़ा मधुर स्निग्ध, तनुफलावरण युक्त होता है।

पद्माख

द्रव्य नाम–हिन्दी : पद्माख।

लेटिन : Prunus pudum.

संस्कृत : पद्मक, पद्मकाष्ठ, पद्माह्वय, पद्मगन्धि, पीतरक्त।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा० प्र०) वेदनास्थापन, वर्ण्य, (च०) चन्दनादि, सारिवादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–हिमाचल प्रदेश में ८ हजार फीट तक, शिमला, गढ़वाल तथा खासिया पर्वतीय प्रदेशों में वृक्ष उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–अचिरस्थायी, मध्यमाकार **वृक्ष**; **काण्ड** गोल, ग्रन्थियुक्त, कृष्णाभधूसर, श्लक्ष्ण, चमकदार, तनु विदीर्ण त्वचायुक्त। **काष्ठ** सुगन्धि, रक्ताभ **पत्र** भालाकार, लट्वाकार, स्निग्ध, रोमश, तीक्ष्ण, दन्तुरित, **पुष्प** कदम्बसदृश, श्वेत, गुलाबी, रक्त कमल सदृशगन्धि **फल** लम्ब, गोल, छोटे पीत रक्ताभ होते हैं। **पुष्पकाल** जनवरी **फल** मार्च।

रासायनिक संगठन–त्वक् में Hydrocynic तीव्र विषाक्त अम्ल, Amygdalin होता है।

गुण कर्म–रस-कषाय तिक्त, गुण–लघु, स्निग्ध **वि०** कटु **वी०** शीत। त्रिदोषशामक, वेदनास्थापन, नाड़ीशूलहर, हृद्य, हृद्रोगघ्न, रक्तस्तम्भन, रक्तशोधक, वर्ण्य, गर्भाशयबल्य।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः विस्फोट, प्रदाहीव्रण, कुष्ठ, न्यच्छ, वैवर्ण्य, योनिकण्डू में लेप, हिक्का, श्वास, (धूम्रपान) **आभ्यन्तर**-नाड़ीशूल, वेदना प्रधान रोग, अग्निमांद्य, आमाशयव्रण-प्रदाह-शैथिल्य, छर्दि, अतिसार, हिक्का, श्वास कास, हृत्द्रव हृत्कम्प, वामहृत्पटल विकृतिजन्य रक्तप्रत्यावर्तन, मेदक्षय, त्वग्रोग, विसर्प, कुष्ठ, अतिस्वेद, गर्भपात, गर्भस्राव, गर्भाशय शैथिल्य, अश्मरी में विशेष प्रयुक्त होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–काष्ठ, त्वक्, बीज मज्जा, **मात्रा** फाण्ट २०–४० ग्राम, चूर्ण ०.५–१.५ ग्राम, पद्मकादि घृत-तैल ।

विशेष : विसर्प, वैवर्ण्य, त्वग्रोगों, (प्रदाह युक्त) में विशेष प्रभावशाली; वेदनास्थापन, शामक, होने से वेदनाप्रधान विकारों में उपयोगी, केशिकाओं का प्रबल संकोची होने से रक्तस्रावी विकारों की मुख्यौषध है । Hydrosynic विषाक्त तत्व होने से मात्रा पूर्वक प्रयोग अपेक्षित है ।

बिही (बिहीदाना)

द्रव्य नाम–हिन्दी : बिहीदाना ।

लेटिन । Pyrus Cydonia.

संस्कृत : बिही ।

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमोत्तर भारत के कश्मीर, पंजाब प्रान्तों में ५ से ६ हजार फीट तक उत्पन्न होता है ।

वानस्पतिक परिचय–बहु वक्रशाखा प्रशाखी मध्यमाकार **वृक्ष**; त्वक् बाहर से कृष्ण धूसर, **पत्र** डिम्बाकृति, **पुष्प** श्वेत् **फल** अमरूद, सेव सदृश, सुगन्धि, पीतरक्ताभ, कठिनरोमयुक्त, पंच कोष्ठीय, **बीज** अनेक, जल में भिगोने पर पिच्छिलता उत्पन्न होती है । **पुष्प काल** बसन्त **फल**-ग्रीष्म ।

रासायनिक संगठन–बीज में Cydonin पिच्छिल-द्रव्य; स्थिर तैल १५.३%, भस्म में फॉस-फॉरस, सल्फ्यूरिक अम्ल, सुधा, लौह, मेगनेशियम, होते हैं ।

गुण कर्म–रस-मधुर गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत । वातपित्त शामक । नाड़ीबल्य, तृषा-दाहशमन, रक्तपित्तशामक, हृद्य, बृंहण ।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर–मस्तिष्क नाड़ी दौर्बल्य, अरोचक, तृषा, छर्दि, शूल, रक्तातिसार, रक्तपित्त, हृद्दौर्बल्य, पांडु, कास-श्वास, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, दौर्बल्य में प्रयोग होता है ।

प्रयोज्य अंग–बीज, फल **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम शार्कर १०–५० ग्राम ।

विशेष–रस भेद से इसकी (क) मधुर (ख) मधुराम्ल (ग) अम्ल तीन जाति । शीत, स्निग्ध, मधुर, पिच्छिल होने से विभिन्न स्रोतों के प्रदाह रौक्ष्य जन्य विकारों में उपयोगी है ।

वाताद (बादाम)

द्रव्य नाम–हिन्दी: बदाम, बादाम ।

लेटिन : Prunus amygdalus.

संस्कृत : वाताद, वातवैरी, वाताभ, नेत्रोपम-फल ।

वर्गीकरण–फलादिवर्ग (भा० प्र०) ।

उत्पत्ति स्थान–शीत प्रधान प्रान्त कश्मीर एवं पंजाब में रोपण किया जाता है । इसका आयात प्रायः अफगानिस्तान, पश्चिमी एशियाई देशों से होता है ।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार, **वृक्ष**, त्वक् रक्त धूसर **पत्र** शाखाग्र, दीर्घ, भालाकार, अण्डाकार-अखण्ड या दन्तुरित, श्वेताभ हरित, **पुष्प** चक्राकार, श्वेत वर्ण, रक्तचिन्हांकित, **फल** अण्डाकार रक्ताभ, पीत, धूसर (पक्व) कठिन । **बीज** रक्ताभ भूरे, अण्डा-कार, चिपटे, उन्नत, अवनतोदर पार्श्वयुक्त होते हैं ।

रासायनिक संगठन–फल मज्जा में स्थिर तैल ५६%, प्रोटीड २५%, शर्करा ६%, पिच्छिल द्रव्य ३%, Emulsion किण्व तत्त्व, भस्म में अनेक खनिज तत्त्व होते हैं ।

गुणकर्म–रस-मधुर गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** उष्ण । वातशामक, कफवर्धक, स्नेहन, नाड़ी तन्तु पोषक-बल्य, वर्ण्य, कफोत्सारि, बृंहण ।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः न्यच्छ, वैवर्ण्य, शोथ, दद्रु, कण्डू, शिरःशूल में तिक्त बादाम लेप, दन्त विकार **आभ्यन्तर**-मस्तिष्क-नाड़ी दौर्बल्य, वात-व्याधि, जीर्ण विबन्ध, कोष्ठगत वात, (रौक्ष्यता), इक्षु मेह (पेया) मूत्रदाह, वातज कास, दौर्बल्य, कार्श्य, शोष, प्रदर, कृच्छ्रार्त्तव में प्रयोग होता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–बीजमज्जा, तैल **मात्रा** ७ से ११ दाने, तैल ३-१२ ग्राम। बादाम पाक, बादाम रोगन, लऊकसपिस्ता।

विशेष-फलावरण भेद से (क) मृदु कागजी–इसकी मज्जा, मांसल-गुरु, स्निग्ध, कठिन, (ख) कठिन ठर्रा–इसकी मज्जा अपुष्ट-लघु, ईषत् स्निग्ध। एक जाति तिक्त बादाम, (A. amarars) में स्थिर तैल ४५% एवं Amygdaline ३०%, Hydrocyanic विषाक्त अम्ल, जल के संयोग से Prussic acid उत्पन्न होता है।

कमल कुल
NYMPHAEACEAE FAMILY

कुल परिचय–जल एवं पंक भूमि में उत्पन्न क्षुप **स्तम्भ** छोटा, स्थूल, सरल, प्रकन्दाकृति **पर्ण** सवृन्त, साधारण, आकृति में बड़े-बड़े थालीनुमा, चमकदार, हरित वर्ण, स्निग्ध, **पुष्पक्रम** ससीमाक्षी, प्रकार; पुष्प एकल, दीर्घ पुष्पवृन्त, **पुष्प** बड़े-बड़े विभिन्न वर्णों के द्विलिंगी, पूर्ण, त्रिज्या-सममित, जायांगाधर जायांगोपरिक, **परिदलपुंज** ६ या अनिश्चित, स्वतन्त्र, परिदल, प्रायः बाह्यदल पुंज एवं पुंजदल से विभेदित, बाह्यदल पुंज प्रायः ३-५ या अनिश्चित संख्या में प्रायः हरित वर्ण, **दलपुंज** दल ३ या अनिश्चित, बड़े-बड़े रंगीन **पुमंग** पुंकेसर ३ से अनिश्चित, पुंतन्तु स्वतन्त्र, न्यून संख्या होने पर एक चक्र में पराग कोष २ कोषीय, अन्तर्मुखी, **जायांग** ३ से अनिश्चित अण्डपी, पृथक् या युक्ताण्डपी एक कोष्ठीय अनेक बीजाण्ड युक्त, भित्तीय बीजाण्डान्यास **फल** सरस फल एकसेवनीक स्फोटी, काष्ठ फलों (Nutlets) का पुंज होता है।

कमल

द्रव्य नाम–हिन्दी : कमल।

लेटिन : Nelumbium speciosum.

संस्कृत : कमल, सारस, पंकेरुह, महोत्पल, पद्म, अरविन्द, नलिन, सहस्रपत्र, शतपत्र, विसप्रसून, राजीव।

वर्गीकरण–पुष्पवर्ग (भा० प्र०) मूत्रविरजनीय (च०) उत्पलादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र विशेषतया कश्मीर, बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र, प्रान्तों के जलाशयों में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु, जलज **क्षुप मूल** सग्रन्थि, पंकस्थ, **पत्र** बड़े ०.३-१ मी० व्यास-युक्त चक्राकार स्निग्ध जल के ऊपर स्थित पत्र-नाल लग्न, निम्न पृष्ठ मृदु रक्ताभ **पुष्प** मनोहर, सुगन्धि, श्वेत, रक्त, गुलाबी वर्ण के, दीर्घ पुष्प दण्डाग्रस्थ, बहुदली। सूर्योदय के साथ, विकसित, पुंकेसर पीत, छत्राकार, बीजाधार स्पंजी, **बीज** अनेक गोल, कठिन, कृष्ण वर्ण होते हैं। **पुष्पकाल** बसन्त, वर्षा **फल** वर्षान्त।

रासायनिक संगठन–बीज, मूल में राल, ग्लूकोज, टैनिन, वसा, Metarbine. Nelumbine क्षार तत्व होते हैं।

गुणकर्म–रस–मधुर, कषाय तिक्त, गुण–लघु, स्निग्ध, पिच्छिल **विपाक** मधुर **वी०** शीत। पित्त-कफ शामक, मेध्य, तृषा-दाह-छर्दि-प्रशमन, हृद्य, रक्त स्कन्दन, रक्तशोधक, मूत्रजनन, विषघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः पैतिक शिरःशूल, विसर्प, प्रदाही-त्वचा रोग (पुष्प पत्र लेप) **आभ्यन्तर** भ्रम, मूर्च्छा, अपस्मार, अनिद्रा, मस्तिष्क् दौर्बल्य, छर्दि, तृषा, दाह, रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तष्ठीवन, रक्तपित्त, हृद्रोग, विसर्प, त्वग्रोग, मूत्रकृच्छ्र, बस्तिप्रदाह, गर्भस्राव, गर्भपात, ज्वर, दौर्बल्य में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–पत्र, पुष्प, बीज, केशर, मृणाल **मात्रा** बीज चूर्ण ३-६ ग्राम, पुष्प स्वरस १०–२० ग्राम, अरविन्दासव, उत्पलादिघृत।

विशेष–विभिन्न अंगों के नाम **नवपल्लव**–संवर्त्तिका, **कन्द** शालूक, करहाटक **नाल** विस मृणाल, **बीजकोश** कर्णिका, वराटक, **बीज** कमलाक्ष, पद्म-बीज। जाति वर्ण भेद से पद्म (श्वेताभ) पुण्डरीक

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(अति श्वेत), कुवलय-रक्त; नलिन-रक्ताभ, इन्दीवर नीलाभ होता है।

(कुमुद नीलोफर)

द्रव्य नाम हिन्दी : कुमुद, कुई, नीलोफर।

लेटिन : Nymphala lotus.

संस्कृत : कुमुद, चन्द्रेष्टा, कुवलय, कैरविका।

वर्गीकरण–कमलसदृश।

उत्पत्ति स्थान–देश के प्रायः उष्ण प्रदेशों के जलाशयों में बहुत होता है।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु, कमल सदृश, जलस्थ **क्षुप; पत्र** कमल सदृश किन्तु छोटे गोल, स्निग्ध, ऊर्ध्वपृष्ठ हरित पीताभ, **पुष्प** चन्द्रोदय के साथ विकसित, कमल सदृश किन्तु छोटे **फल** गोल दाड़िम सदृश, जिसके बीज कोषों में छोटे गोल **बीज** रक्त (अपक्व) कृष्ण (पक्व) इनको अग्नि में भृष्ट करने पर श्वेत वर्ण लघु लावा बन जाता है। **पुष्प काल** वर्षा **फल** शरद्।

गुणकर्म–रस–मधुर, तिक्त, कषाय, गुण–पिच्छिल, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत। पित्त-कफहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः अग्निदग्ध, विसर्प, त्वग्रोगों में स्वरस या कल्क लेप **आभ्यन्तर**-प्रयोग प्रायः कमल के सदृश हैं।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–पत्र, पुष्प, बीज **मात्रा**–बीज चूर्ण ३-६ ग्रा० पुष्प स्वरस १०–२० ग्रा० उत्पलादि घृत, नीलोत्पलादि हिम, क्वाथ–शार्कर।

विशेष–इसके मूल, नाल, पत्रादि संयुक्त सम्पूर्णाङ्ग को कुमुदिनी कहते हैं। अनेक जातियाँ पुष्प वर्ण एवं आकृति भेद से होती हैं।

मखान्न

द्रव्य नाम–हिन्दी : मखाना।

लेटिन : Euryale ferox.

संस्कृत : पद्मबीजाभ, पद्म, पानीयफल, मखान्न।

वर्गीकरण-फल वर्ग (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–बंगाल, आसाम, बिहार, उत्तर प्रदेश के जलाशयों में होता है।

वानस्पतिक परिचय–जलज कण्टकित, कुमुद सदृश **क्षुप; पत्र** पानी के ऊपर कमल सदृश छोटे कण्टकाकीर्ण निम्न पृष्ठ रक्ताभ **पुष्प** कण्टकित नीलोफर सदृश, दीर्घ पुष्पदण्ड, बाहर से हरित बैंगनी, दलान्तः पृष्ठ रक्त, गुलाबी वर्ण के होते हैं। **फल** गोल ५०-१०० मि० मी० व्यास युक्त **बीज** ८-२० मटर सदृश, कृष्ण वर्ण स्निग्ध होते हैं।

गुणकर्म–रस-मधुर, कषाय तिक्त गुण-रूक्ष, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत। त्रिदोषशामक, स्तम्भन, रक्तस्तम्भन, शुक्रवर्धक, शुक्रस्तम्भन, गर्भस्थापन।

आमयिक प्रयोग – आभ्यन्तर—रक्तातिसार, ग्रहणी, रक्तपित्त, रक्तविकार, हृत्कम्प-दौर्बल्य में (पुष्प फाण्ट) कास, शुक्रमेह, प्रमेह, शुक्र दौर्बल्य, प्रदर, गर्भस्राव, गर्भपात, ज्वर, दाह, दौर्बल्य में मखान्न दुग्ध में पकाकर सेवन करना चाहिए।

प्रयोज्य अंग–बीज, पुष्प **मात्रा** चूर्ण ५-१० ग्राम।

विशेष–बीजों को भृष्ट कर लावा बनाते हैं ये ही मखान्न हैं। गुरु, विष्टम्भी होने से अधिक मात्रा में प्रयोग से अजीर्ण हृल्लास, अरोचक, अतिसार, विकार सम्भावित हैं।

वासा कुल
ACANTHACEAE FAM.

वासा

द्रव्य नाम–हिन्दी : अडूसा।

लेटिन : Adhatoda vasica.

संस्कृत : वासा, वासिका, भिषङ्माता, सिंहास्य, वाजिदन्ता, वृष, अटरूषक।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित, गुल्माकार, दुर्गन्धित **क्षुप** १-२.५ मी० ऊँचा **पत्र** अखण्डित, भालाकार, अण्डाकार, ७५-२०० मि० मी० दीर्घ, ७५ मि० मी० चौड़े **पुष्प** श्वेत, द्वयोष्ठी, सिंह मुखवत् २५-७५ मि०मी० लम्बी मंजरी में **फल** संपुट मुद्ग-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

राकार, १५ मि० मी० दीर्घ अनुलम्ब रेखायुक्त **बीज** ४ होते हैं। **पुष्प फल काल** बसन्त, ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–पत्रों में एक तिक्त क्षार Vasicine ०.२५% एक सेन्द्रिय अम्ल Adhatodic acid; उड़नशील तैल वसा, राल, शर्करा, पीतरञ्जक द्रव्य, लवण होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कषाय, गुण-लघु, रूक्ष **विपाक** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामक, कफस्रंसन, शोथहर, व्रणघ्न, कफोत्सारि, रक्तपित्तशामक, शोणितास्थापन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः आमवातिक, सन्धिशोथ, व्रण शोथ में पत्रोपनाह, लेप प्रयोग।

आभ्यन्तर–ज्वर, कास, श्वास, जीर्ण श्वसनी शोथ, क्षयज कास, रक्तपित्त, उरःक्षत हृद्रोग, रक्तार्श, रक्त प्रवाहिका, मूत्रकृच्छ्र, मेह, रक्तप्रदर, में दैनिक चिकित्सोपयोगी प्रभावशाली औषधि है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, मूल, **मात्रा** पत्र स्वरस ५-१५ ग्राम, चूर्ण १-३ ग्राम, मूल क्वाथ २०-४० ग्राम, वासावलेह, अरिष्ट, क्षार, शार्कर।

विशेष–यह कफ निःसारक, (Expectorant) श्वासनलिकोद्वेष्टहर (Bronchial anti spasmodic) होने से, जीर्ण कास, श्वास, क्षयज कास में विशेष उपयोगी है। पत्र की अपेक्षा मूल में कफ निःसारक गुण अधिक होता है। वासा पत्र से सूक्ष्म रक्तवाहिनियों का संकोच होने से रक्तस्राव बन्द होता है। इसलिए रक्त स्रावी रोगों की मुख्यौषध है। **जाति** कृष्ण वासा, क्षुप अधिक ऊँचा, पत्र गहरे वर्ण, पुष्प, ताम्रवर्ण, अल्प तिक्त होता है। **अनुसंधान कार्य**–ताम्र पुष्पी वासा के पत्र, पुष्प श्वेत जाति की अपेक्षा क्षय में अधिक लाभकारी पाये गये हैं। ताम्र पुष्पी वासारिष्ट के प्रयोग से क्षय रोग में उत्साह वर्धक परिणाम मिले हैं।

कुरण्ट

द्रव्य नाम–हिन्दी : कुरण्ट, सहचर, पियावासा।

लेटिन : Barleria prionitis.

संस्कृत : सैरेयक, सहचर, कुरंट, कुरबक, बाण, आर्तगल।

वर्गीकरण–पुष्प वर्ग (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–विभिन्न उष्ण प्रान्तों में विशेषतः महाराष्ट्र, बंगाल, तमिलनाडु, आसाम आदि प्रान्तों के वन्य प्रदेशों में क्षुप उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–गुल्माकृति क्षुप; ०.५-१.५ मी० ऊँचा, शाखायें सघन मूल के पास से निकलती हैं। कण्टक पत्रकोणोद्भूत, दीर्घ, युगल' **पत्र** वासा सदृश किन्तु छोटे अभिमुख, अण्डाकृति, आयताकार ३५-१०० मि० मी० दीर्घ, **पुष्प** एकल पत्रकोणोद्भूत बड़े-बड़े पीतवर्ण के किंचित् घण्टाकृति, **फल** संपुट वासा सदृश यवाकृति, द्वि कोष्ठीय होते हैं। **पुष्प फल काल** बसन्त।

गुण कर्म–रस-तिक्त, मधुर, गुण-स्निग्ध, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, व्रणपाचनशोधन, शोथहर, स्वेदजनन, रक्तशोधक, विषघ्न, वेदनाप्रशमन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः खालित्य में पत्र सिद्ध तैल का अभ्यंग शोथ, गण्डमाला, कण्डू व्रण में लेप व तैल प्रयोग **आभ्यन्तर** वात व्याधि; पक्षाघात, अर्दित, गृध्रसी, रक्त विकार, शोथ, ज्वर, श्वास, कास, श्वसनिकाशोथ, विष विकारों में लाभकारी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, पंचांग, **मात्रा** क्वाथ ५०-१०० ग्राम, स्वरस १०-२० ग्राम। सहचरादि तैल।

विशेष–जाति, पुष्प, वर्ण भेद से पीत जाति के अतिरिक्त श्वेत (B. cacrulea) रक्त (B. cristata) नील (B. strigosa) होती हैं। औषध्यर्थ प्रायः पीत वर्ण सैरेयक का प्रयोग जो सर्वत्र उपलब्ध होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इक्षुरक

द्रव्य नाम–हिन्दी : तालमखाना ।

लेटिन : Asteracantha longifolia.

संस्कृत : कोकिलाक्ष, क्षुरक, इक्षुरक, काण्डेक्षु, इक्षुगन्धा, इक्षु वालिका ।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) शुक्र शोधन (चरक) ।

उत्पत्तिस्थान–सर्वत्र जलाशयों के समीपवर्ती क्षेत्रों में विशेषतः बंगाल, बिहार, गोवा में क्षुप पाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–द्वि वर्षायु **क्षुप** ०.५-१ मी० ऊँचा; काण्ड सपर्व, रोमश, चतुष्कोणीय, शाखारहित । **पत्र** काण्ड ग्रन्थि पर अवृन्त, भालाकार, चक्रीय क्रम में ६-६ पत्र; पत्रकोणोद्भूत कण्टक २५ मि० मी० दीर्घ, सुदृढ़ पीत वर्ण होते हैं । **पुष्प** नील बैंगनी, काण्ड पर्वों पर समूह में द्रोण-पुष्पी सदृश **फल** संपुट ८ मि० मी० दीर्घ रेखाकार, अग्र भाग में नुकीला, **बीज** कोषों में ४-८ बीज रक्ताभ, रोऐदार होते हैं । **पुष्प फल काल** शीत ऋतु ।

रासायनिक संगठन बीजों में २३% तक पीत वर्ण का, मधुर स्थिर तैल तथा अल्ब्युमिनायड्से ३१% लाइपेज, डायस्टेज किण्व होते हैं ।

गुण कर्म–रस-मधुर, तिक्त, गुण-पिच्छिल, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत । वातपित्तशामक, मूल उत्कृष्ट शीत, मूत्रजनन, वेदनाशमन, बीज स्निग्ध शुक्रल, मूत्रल, पंचांग–मूत्रजनन ।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः संधिवात में बीज लेप, **आभ्यन्तर**-तृष्णा, दाह, रक्तपित्त, वातरक्त, मूत्र-कृच्छ्र, शुक्रदौर्बल्य, एवं दौर्बल्य में बीज प्रयोग। शोथ, कामला, आनाह में मूल प्रयोग, अश्मरी, शोथ, यकृदुदर में पंचांग क्षार उपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग–बीज, मूल, क्षार, **मात्रा** बीज चूर्ण २-४ ग्राम, क्षार-०.३-०.५ ग्राम, मूल क्वाथ ३०-५० ग्राम ।

विशेष–पिच्छिल, स्निग्ध होने से रौक्ष्य, प्रदाह, शोथयुक्त अवस्थाओं में प्रयोग होता है । यकृदुदर, शोथ, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र में पंचांग क्षार उपयोगी है । **द्रव्य परीक्षा**–बीज तिल सदृश किन्तु छोटे छोटे, चिपटे, विषमाकृति, खाकी रक्ताभ, धूसरवर्ण होते हैं । जल में भिगोने पर लुआव उत्पन्न होता है ।

यूथिकपर्णी

द्रव्य नाम–हिन्दी : जूहीपालक, जुईबानी ।

लैटिन : Rhinacanthus commusis.

संस्कृत : यूथिकपर्णी ।

उत्पत्ति स्थान–पश्चिम दक्षिण भारत के प्रान्त, पश्चिमी घाट एवं बंगाल, उड़ीसा, बिहार ।

वानस्पतिक परिचय–गुल्माकृति **क्षुप**; १.३-१.५ मी०; काण्ड सरल, सपर्व, षट्कोणीय, शाखायुक्त, **पत्र** अभिमुख, भालाकार, कुण्ठिताग्र, ऊर्ध्वपृष्ठ रोमश, निम्न पृष्ठ स्निग्ध, मसलने पर दुर्गन्धित, **पुष्प** श्वेत, गुच्छों में, बीज कोषों में ४-४ **बीज** होते हैं । **पुष्प काल** शीत, **फलकाल** बसन्त ।

रासायनिक संगठन–मूल एवं त्वक् में Rhinacanthin नामक रक्त राल युक्त कार्यकारी क्षारोद् तत्त्व २%, इसकी क्रिया Chrysophanic acid सदृश होती है ।

गुण कर्म–रस–कटु, तिक्त गुण–लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, वर्ण्य, त्वग्रोगघ्न, कुष्ठघ्न, कृमिघ्न, कामोत्तेजक ।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः न्यच्छ, व्यंग, दद्रु, पामा, विचर्चिका, कुष्ठ में लेप, **आभ्यन्तर**-कृमि, कुष्ठ त्वग्रोगों में मूलत्वक् प्रयोग, ध्वजभङ्ग में मूल क्षीर कल्पना से प्रयुक्त होता है ।

प्रयोज्य अङ्ग–मूल, त्वक्, पत्र, बीज, **मात्रा** पत्र स्वरस ५–१० ग्राम, बीज चूर्ण ०.५ से १.५ ग्राम ।

विशेष–न्यच्छ, मुखदूषिका में पत्र स्वरस लेप; दद्रु आदि त्वग्रोगों में निंबू या सुधोदक में मूल या त्वक् पीस कर लेप करना चाहिए ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कालमेघ

द्रव्य नाम–हिन्दी : कालमेघ, महातीता ।

लेटिन : Andrographis paniculata

संस्कृत : कालमेघं, यवतिक्ता, कल्पनाथ ।

उत्पत्ति स्थान–देश के आनूप प्रान्तों-बंगाल, आसाम में विशेषतः स्वयं जात क्षुप होते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु, बहुशाखी, **क्षुप** ०.३–१ मी० ऊँचा; **काण्ड** चतुष्कोणीय सपर्व, **पत्र** अभिमुख, चतुर्पंक्तिक, क्रममें अनुलम्ब खातयुक्त, भालाकार, रेखाकार (हरी मिर्च सदृश) **पुष्प** छोटे-छोटे श्वेत नील वर्ण, द्वयोष्ठी (Bilabiate) **फल** स्फोटी, यवाकार, तिक्त, **बीज** अनेक होते हैं। **पुष्पकाल** शरद् **फल** शीत ।

रासायनिक संगठन–समस्त क्षुप में Kalme ghin तिक्त मणिभीय सत्व, Chlorophyll प्रभूत मात्रा में; पत्र में सुगन्धित तैल तथा २ तिक्त द्रव्य, पंचांग भस्म में सोडियम क्लोराइड एवं पोटेशियम लवण होते हैं ।

गुण कर्म–रस–तिक्त गुण–लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण । पित्तकफहर, आमदोषहर, यकृदु–त्तेजक, ज्वरघ्न (नियत कालिक) यकृत्प्लीहोदरघ्न रक्त शोधन ।

आमयिक प्रयोग–विबन्ध, आमदोष, यकृत्प्लीहा वृद्धि, कृमि, कामला, शोथ, रक्तविकार, त्वग्रोग, विषम ज्वर, (मरिच चूर्ण के साथ) तज्जन्योपद्रव, जीर्णज्वर की मुख्यौषधि है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग **मात्रा** चूर्ण ०.५ से १ ग्राम, क्वाथ २०–४० ग्राम, स्वरस २–४ ग्राम, कालमेघ सत्व, वटी, प्रवाही सत्व ।

विशेष–यकृद्रोगों में विशष लाभकारी है। विषम ज्वर में क्वीनिन सदृश कार्यकारी, एवं निरापद है । एक जाति. (A. echioides) दक्षिण भारत में उत्पन्न, क्षुप कालमेघ सदृश, शिम्बी दीर्घ रम्भाकार होती है । **मिलावट** पित्तपापडा, काकजंघा आदि द्रव्यों के पंचांग मिश्रित किये जाते हैं ।

लवङ्गकुल (MYRTACEAE FAMILY)

कुल परिचय–मध्यमाकृति वृक्ष, गुल्म **पर्ण** प्रायः अभिमुख कभी-कभी एकान्तर, अनअनुपर्णी सर्वदा हरित, अखण्डित प्रायः तैल ग्रन्थियां होती हैं **पुष्पक्रम** ससीमाक्षी कभी-कभी एकल पुष्प, पत्रकोणोद्भूत, असीमाक्ष बहुत कम **पुष्प** त्रिज्या सममित, सहपत्री युक्त, द्विलिंगी, जायांगोपरिक **बाह्यदलपुंज** ४-५ संयुक्त या पृथक् **दलपुंज** ४-५ दल पृथक् या कभी संयुक्त **पुमंग** अनेक पृथक् २ कभी बहुसंघी, परागकोष मुक्त दोली **जायांग** अण्डपों की संख्या दो से अनिश्चित, युक्ताण्डपी, अक्षीय बीजाण्डान्यास, कोष्ठों की संख्या दो से अनिश्चित **फल** संपुट,सरस फल, चिरलग्न बाह्यदलपुंज होता है ।

लवङ्ग

द्रव्य नाम–हिन्दी : लौंग, लवंग ।

लैटिन–Caryophyllus aromaticum.

संस्कृत : लवंग, श्रीसंज्ञ, देवकुसुम, चन्दन पुष्पक, कलिकोत्तम, शेखर, दिव्य, वारिज,श्रीप्रसून ।

वर्गीकरण–कर्पूरादिवर्ग (भा० प्र०) ।

उत्पत्ति स्थान–दक्षिण भारत विशेषतः केरल में खेती की जाती है । इसका आयात जञ्जीबार, पेम्बा द्वीपों से होता है ।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित सुरम्य मध्यमाकार **वृक्ष** १०–१२ मी० ऊँचा त्वक् स्निग्ध, पीताभ, धूसर; शाखाएँ मृदु, अवनत **पत्र** अभिमुख एवं लट्वाकार, आयताकार, चमकीले सुगन्धित हरित वर्ण के १०० मि० मी० दीर्घ तथा ५० मि० मी० चौड़े **पुष्प** गुच्छों में, शाखाग्र हल्के नीलारुण, चार, त्रिकोणीय, तीव्र सुगन्धित होते हैं ।

रासायनिक संगठन–इसमें उड़नशील तैल १५–२०% जिसमें ८५-९२% फेनोल सदृश युजिनॉल; टैनिन १३% गोंद व रवेदार सत्व केरियोफाइलिन होता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म–रस-कटु, तिक्त गुण-तीक्ष्ण, स्निग्ध, लघु **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्त कफ शामक, वेदना-स्थापन स्थानिक प्रयोग से; दौर्गन्ध्यहर, दीपन रोचन शूल-प्रशमन, वातानुलोमन तृषा, छर्दिप्रशमन, हृद्य, कफोत्सारि, मूत्रल, वाजीकर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य:वेदना शामक होने से आमवात, गृध्रसी, संधिवात, वातव्याधि में तैलाभ्यंग त्वग्रोग, शिर:शूल, प्रतिश्याय में लेप दंतशूल, कृमि दंत में तैल पिचुधारण **आभ्यन्तर** अरोचक, छर्दि, हृल्लास उदर-शूल, आध्मान, अम्लपित्त, तृषा, हिक्का, श्वास, कास, क्षय, हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र एवं ध्वजभङ्ग, नपुंसकता में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–पुष्प कलिका **मात्रा** चूर्ण ०.२–१ ग्राम, तैल ४–६ बूंद, लवंगादिवटी, लवंगादि चूर्ण, अविपतिकर चूर्ण।

विशेष : लवंग की पुष्प कलियाँ जब रक्त वर्ण की रहती हैं तभी संग्रहित एवं शुष्क की जाती हैं। ये ही शुष्क कलियां बाजार में लौंग के नाम से प्राप्त होती हैं। इसकी क्रिया प्रधानत: लवंग तैल से होती है। यह रक्तिमोत्पादक (Rubefacient) प्रतिक्षोभक (Counter irritant) स्थानिक वेदना स्थापक (Analgesic) उद्वेष्टहर, वातानुलोमन तथा जीवाणुरोधक है। **मिलावट** तैल निकाले हुए तथा पुराने शुष्क लवंग तथा इसके टुकड़े डंठल मिश्रित किये जाते हैं **परीक्षा**-शुष्क स्नेह रहित लवंग (पुष्प वृन्त) को नाखून से दबाने पर तैल नहीं निकलता है एवं जल में डूबता नहीं हैं।

तैलपर्णी (यूकेलिप्टस)

द्रव्य नाम–हिन्दी : यूकेलिप्टस।

लैटिन–Eucalyptus-globu.

संस्कृत : तैलपर्णी, हरितपर्णी, सुगन्धपत्रा, रक्तनिर्यास।

उत्पत्ति स्थान–वृक्ष सर्वत्र बाग, बगीचों में लगाये जाते हैं। विशेषत: देहरादून, नीलगिरि व अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सुन्दर ऊँचा **वृक्ष; काण्ड** सरल, दीर्घ, स्निग्ध, श्याम वर्ण, काण्डत्वक्, तनु, अनेक स्तर युक्त, श्वेत वर्ण, विदीर्ण, **पत्र** हरित नीलाभ २००–२५० मि० मी० दीर्घ, चर्मवत्, आयताकार, भालाकार, तीक्ष्णाग्र होते हैं। **पुष्प** पत्रकोणोद्भूत १–३ आकृति में बड़े होते हैं।

रासायनिक संगठन–पत्रों में उड़नशील तैल ६%,इस तैल में यूकेलिप्टोल सिनिओल ५५–६०% वसा, राल, होते हैं।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त, कषाय गुण–तीक्ष्ण, स्निग्ध, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातश्लेष्महर, स्वेदजनन, मूत्रजनन, वेदनास्थापन, श्लेष्म पूतिहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य: प्रतिश्याय फ्लू, कास, कुक्कुर कास, श्वसनिका शोथ में पत्र वाष्प आघ्राणन वेदनायुक्त शोथ में तैलाभ्यङ्ग होता है।

आभ्यन्तर–श्लैष्मिक ज्वर, प्रतिश्याय, फ्लू, कास, श्वसनिका शोथ में फाण्ट प्रयोग। आध्मान, कृमि, पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–पत्र, निर्यास **मात्रा** २०–४० ग्राम; चूर्ण ०.५–१.५ ग्राम, निर्यास०.३ –०.५ ग्राम। नीलगिरि तैल पंचगुण तैल।

विशेष : यह उत्तेजक प्रतिक्षोभक, जीवाणु वृद्धिरोधक, दुर्गन्धनाशक, (Deodorant) है। फ्लू, प्रतिश्याय, कास आदि में कार्पास पिचु या वस्त्र खण्ड पर तैल छिड़क कर आघ्राणन करना चाहिए। काण्ड त्वक् क्षत करने से रक्त वर्ण निर्यास निकलता है।

हिज्जल

द्रव्य नाम–हिन्दी : हिज्जल, समुद्र फल।

लेटिन–Barringtonia acutangula.

संस्कृत : हिज्जल, इज्जल, अम्बुज।

उत्पत्ति स्थान–प्राय: सर्वत्र विशेषतया उत्तर प्रदेश, बंगाल, मध्य प्रदेश, दक्षिण भारत के प्रान्तों में वृक्ष लगाये जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वानस्पतिक परिचय : सर्वदा हरित मध्यमाकार **वृक्ष** १०–१२ मी० ऊँचा **पत्र** लम्ब गोल, अण्डाकार सूक्ष्म दन्तुर, १२५ मि० मी० दीर्घ, ६० मि० मी० चौड़े **पुष्प** सदीर्घ वृन्त, अवनत मञ्जरी में रक्तवर्ण, देखने में सुन्दर, **फल** धूसर, कठिन, बादाम सदृश २५ मि० मी० दीर्घ, चतुष्कोणीय एक बीजी होता है।

रासायनिक संगठन–फल में सेपोनीन क्रियाशील तत्त्व, ग्लुकोसाइड, स्टार्च, प्रोटीन, वसा, क्षारीय लवण होते हैं।

गुण-कर्म–रस-तिक्त, कटु, मधुर, गुण-तीक्ष्ण लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातशामक, कफ पित्तसंस्रन; शिरोविरेचन, वामक, रेचन, वेदनाप्रशमन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः सन्धिशूल, पार्श्वशूल में फल पीस कर लेप। शिरः शूल में बीज चूर्ण प्रधमन। नेत्रस्राव में फल घिस कर अञ्जन। **आभ्यन्तर** श्वास, कास, उदरशूल, आनाह, विषम ज्वर, कुष्ठ, विष दोष में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग–फल, बीज, मूल, **मात्रा** चिकित्सार्थ फल ०.५–१ ग्राम; वमनार्थ ३–५ ग्राम, स्वरस (पत्र) १० ग्राम, मूल चूर्ण ०.५–१ ग्राम।

विशेष–श्वास, कास में वमन, रेचन द्वारा कफनिस्रण होने से रोगोपशम होता है। विषम ज्वर में मूल चूर्ण विशेष लाभकारी है। दुष्परिणाम होने पर शालि माण्ड में घृत मिलाकर प्रयोग करना चाहिये। **जाति** एक जाति B. Racemosa होती है।

जम्बू (जामुन)

द्रव्य नाम–हिन्दी : जामुन (बड़ी) राजजामुन।

लेटिन : Eugenia. Jambolana.

संस्कृत : जम्बू, राजजम्बू, महाजम्बू, फलेन्द्रा, सुरभिपत्रा।

वर्गीकरण–फलादि (भा०) मूत्र संग्रहणीय, छर्दि निग्रहण, पुरीषविरजनीय (च०)

उत्पत्ति स्थान–देश के प्रायः सभी प्रान्तों के उद्यानों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित बड़ा **वृक्ष**; **पत्र** स्निग्ध, चमकीले, आमसदृश, **पुष्प** श्वेत हरिताभ, पीताभ श्वेत मंजरी में सुगंधित, **फल** अण्डाकार १३-४० मि० मी० दीर्घ गहरे बैंगनी **वर्ण** के **बीज** १ अण्डाकार, रक्ताभ **पुष्पकाल** बसन्त **फल**-ग्रीष्मान्त।

रासायनिक संगठन–त्वक् में कषाय द्रव्य १२% तथा गोंद; बीज में Jamboline ग्लुकोसाइड, Ellagic acid, वसा, राल, गैलिक एसिड, पीताभ सुगंधि तैल होता है।

गुण कर्म–रस-फल-अम्ल, मधुर, कषाय बीज-कषाय। गुण-रूक्ष, लघु, **वि०** मधुर। **वी०** उष्ण। पित्तकफशामक, वातकारक, स्तम्भन, मूत्रसंग्रहणीय (बीज) रोचन, दीपन, यकृत्प्लीहोदरघ्न (फल)।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : मुखपाक, उपदंश, त्वग्रोग, कर्णस्राव, सद्यव्रण, तीव्रसंताप (सिरके का वस्त्र पट्टी सिर पर धारण) **आभ्यन्तर** अतिसार, प्रवाहिका (फलास्थि) अरोचक, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, शूल, यकृत्प्लीहावृद्धि (फल या सिरका), इक्षुमेह, उदकमेह, प्रदर में बीज प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–पत्र, त्वक्, फल, फलास्थि **मात्रा** पत्र स्वरस १०-२० ग्राम, फलास्थि चूर्ण १-३ ग्राम; जम्बवाद्य तैल, सिरका।

विशेष–फलास्थि यकृत् की शर्करा-पाचन क्रिया को सुधारता है तथा स्टार्च का शर्करा परिणमन में बाधक होने से रक्त-मूत्रगत शर्करा कम होती है। मूत्र राशि भी न्यून होती है। इक्षु-उदक मेह की प्रसिद्ध औषध है। **जातियाँ** क्षुद्रजम्बू, भूमिजम्बू, नदी जम्बू, गुलाबजंबू (E. Jambos) होती हैं।

कटुका कुल

SCROPHULARIACEAE FAM.

कुल परिचय प्राय : क्षुप या गुल्म **पर्ण** साधारण,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एकान्तर, अनअनुपर्णी, अभिमुख या चक्रीय **पुष्पक्रम** एकल कक्षस्थ, एकल अग्रस्थ प्रायः असीमाक्ष **पुष्प** एक व्यास सममित विशेष पंचतयी, द्विलिंगी प्रायः सहपत्र, जायांगाधर **बाह्यदलपुंज** ५ संयुक्त कोरछादी विन्यास **दलपुंज** ५ संयुक्तदली, नलिकाकार, घण्टाकृति कोरछादी विन्यास **पुमंग** ४ पुंकेसर कभी दो दललग्न, द्विदीर्घी **जायांग** द्विअण्डपी, युक्ताण्डपी, ऊर्ध्वाण्डाशय, दो कोष्ठीय, अक्षीय बीजाण्डान्यास **फल** संपुट या सरस फल ।

कुटकी

द्रव्य नाम : हिन्दी, कुटकी, कटुकी ।

लेटिन : Picrorrhiza kurroa

संस्कृत : कटुका, काण्डरुहा, मत्स्यशकला, चक्राङ्गी, कृष्णभेदा, तिक्ता, रोहिणी, शकुलादनी ।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०) तिक्तस्कन्ध, भेदन, लेखनीय, स्तन्य शोधन (च०) पटोलादि, पिप्पल्यादि, मुस्तादि (सु०) ।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के पूर्व की ओर ९ से १५ हजार फीट तक कश्मीर से सिक्किम तक उत्पन्न होती है ।

वानस्पतिक परिचय–छोटा शाकीय **क्षुप** रोमश; स्तम्भ दृढ़ **पत्र** लट्वाकार नीचे की ओर संकुचित, दंतुरित, तरंगायित **पुष्प** क्षुप के बीच दीर्घ, पुष्प दण्ड पर नील, श्वेत वर्ण के शूकीवत् मंजरी में **फल** संपुट यव सदृश होते हैं । **पुष्प फल काल** ग्रीष्म ।

रासायनिक संगठन–मूल में Picrorrhizin नामक तिक्त मणिभीय ग्लुकोसाइड़ २६.६%; मोम, रेचनाम्ल, (Cathartic acid) होता है ।

गुण कर्म–रस–तिक्त–गुण–लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण । पित्तकफहर, भेदन, कृमिघ्न, रक्तशोधक, यकृत्प्लीहोत्तेजक, ज्वरघ्न, तिक्त पौष्टिक (अल्प मात्रा में) हृद्य ।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर** अग्निमाँद्य, आनाह, कृमि, अर्श, यकृत्प्लीहावृद्धि, यकृद्दाल्योदर, जलोदर, कामला, शोथ, हृद्रोग, रक्तविकार, श्वास, कास, प्रमेह, विषमज्वर, जीर्णज्वर में दैनिक चिकित्सोपयोगी औषधि है ।

प्रयोज्यअङ्ग कल्पनाएं–मूल (राइजोम) **मात्रा** चूर्ण ०.५–१.३ ग्राम, रेचनार्थ ३–६ ग्राम; क्वाथ ४०–६० ग्राम, आरोग्यवर्धिनी, तिक्तादिक्वाथ-घृत ।

विशेष–यह आमाशयान्त्र, यकृत्प्लीहा, हृदय, फुफ्फुस, वृक्कोत्तेजक है । मल-मूत्र द्वारा द्रवापकर्षक होने से जलोदर एवं शोथ में बहुत उपयोगी है । **शुद्ध द्रव्य परीक्षा** भौमिक काण्ड के शुष्कीकृत छोटे बड़े टुकड़े ५०-१२५ मि० मी० दीर्घ चक्राकार, ग्रन्थियुक्त बाह्यस्वक् तनु खाक स्तरी भूरे वर्ण की तथा टूटे हुए मूलों के चिन्ह युक्त; वायवीय स्तम्भ गाढ़े भूरे वर्ण का लम्बाई में झुर्रीदार, शल्क पत्रावृत्त, मूल, भंगुर शील, टूटा हुआ तल कृष्ण वर्ण होता है । **मिलावट** Gentiana kurroa व Welfenia की जाति की मूलों की मिलावट की जाती है ।

हृत्पत्री

द्रव्य नाम–हिन्दी : डिजिटेलिस ।

लेटिन : Digitalis purpurea.

संस्कृत : हृत्पत्री, तिलपुष्पी ।

उत्पत्ति स्थान–कश्मीर, दार्जिलिङ्ग, नीलगिरि पर्वतीय क्षेत्रों में खेती की जाती है ।

वानस्पतिक परिचय–द्विवर्षायु कभी-कभी बहुवर्षायु क्षुप ०.५–१ मी० तक ऊँचा **पत्र** लट्वाकार, धत्तूर, तम्बाकू पत्र सदृश, पत्रधार गोल, दंतुरित, खर, **पुष्प** दीर्घ पुष्पदण्ड पर तिलपुष्प सदृश किन्तु बड़े बैगंनी श्वेताभ गुच्छों में होते हैं । **पुष्पकाल** ग्रीष्म ।

रासायनिक संगठन–पत्रों में मुख्यतः Digitoxin, Gitoxin, Digatalin, Digitonin. ग्लुकोसाइड़ होते हैं ।

गुण कर्म–रस-तिक्त गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण । वातकफ शामक, हृद्य, हृद्रो-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गघ्न, मूत्रल, शोथहर, ज्वरघ्न, अतिमात्रा में क्षोभकर एवं मादक।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर-हृद्द्रव हृत्कार्याक्षमता, हृदय गति अनियमितता आलिन्दाराजकता, रक्ताधिक्यजन्य, हृदयातिपात (Congestive heart failure) आलिन्दों की फड़फड़ाहट (Auricnlar flutter) सर्वाङ्ग शोथ, ज्वर, फौफ्फुसीय रक्तस्राव, कास, श्वास, मूत्राघात में आशु लाभकारी औषधि है।

प्रयोज्य अंग–पत्र **मात्रा** सुरासत्व ५-१५ बूंद, चूर्ण ३०-१०० मि० ग्रा०।

विशेष–मस्तिष्क गत रक्त स्राव, महाधमनी विस्फार, मेदापक्रान्ति, तन्त्वापक्रान्ति, हृत्पेशीशोथ, रक्तभाराधिक्य में प्रयोग निषिद्ध है। **विषाक्त लक्षण** अति प्रयोग से छर्दि, अतिसार, मूत्रकृच्छ, शिरः शूल आदि विकार होते हैं।

निवारण–आमाशय शोधन, हृदयोत्तेजक द्रव्य, दुग्ध, घृत, नवनीत, स्नेह द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

जल निम्ब (बंगीय ब्राह्मी)

द्रव्य नाम–हिन्दी : जलनीम, बगीय ब्राह्मी।

लेटिन : Herpestis monniera.

संस्कृत : जलनिम्ब।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र (विशेषतया बंगाल) जलासन्न भूमि में।

वानस्पतिक परिचय–अल्प मांसल, प्रसरी **क्षुप :** काण्ड, मृदु, ग्रन्थि युक्त, प्रत्येक ग्रन्थि से मूलोद्भव, **पत्र** अवृन्त, अभिमुख, आयताकार, अभिलट्वाकार, कुण्ठिताग्र, सूक्ष्म कृष्ण चिन्हांकित **पुष्प** पत्रकोणोद्भूत, बैंगनी, श्वेत, गुलाबी वर्ण, **फल** प्रावर, अण्डाकार ५ मि० मी० दीर्घ, स्निग्ध, नुकीला, **बीज** अनेक होते हैं। **पुष्प काल**–ग्रीष्मान्त वर्षा।

रासायनिक संगठन–इसमें Bramhine क्षाराभ ०·०१–०.०२%, यह Strychine सदृश्य, प्रभावशाली, उड़नशील तैल, सेन्द्रिय अम्ल, राल होते हैं।

गुण कर्म–रस–तिक्त गुण-लघु, स्निग्ध **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफ शामक, मेध्य रक्तशोधक, कफघ्न, मूत्रल।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः वेदना युक्त शोथ, आमवात में पत्र लेप एवं स्वरस अभ्यङ्ग, **आभ्यन्तर** उन्माद, अपस्मार, नाड़ी दौर्बल्य, कृमि, उदर रोग, आम दोष, अर्श, विबन्ध, कास, श्वास, त्वारोग, रक्त विकार, शोथ मूत्रकृच्छ, कष्टार्त्तव में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग–पत्र, पंचांग, **मात्रा** ०·५-१ ग्राम स्वरस ५–१० ग्राम।

विशेष–जल के समीप होने एवं निम्ब सदृश तिक्त होने से जलनीम, संज्ञा। बंगाल में इसका प्रयोग ब्राह्मी के स्थान पर होता है। शिशुओं में कास, कफ, भूयिष्ठ विकारों में अति उपयोगी है। क्षार के अल्प मात्रा में प्रयोग से अनैच्छिक मांसपेशियों एवं गर्भाशय पर उत्तेजित क्रिया होती है।

वट कुल
URTICACEAE FAM.

वट

द्रव्य नाम–हिन्दी : बरगद, बड़, बर।

लेटिन : Ficus bengalensis.

संस्कृत : वृक्षनाथ, वट, महाच्छाय, जटी, बहुपाद, स्कंधरुह, बहुपात, अपुष्पा, वनस्पति।

वर्गीकरण–वटादि, पंचवल्कल, पंचक्षीरी (भा. प्र.) कषाय स्कन्ध, मूत्र संग्रहणीय (च०) न्यग्रोधादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–विशाल छायादार **वृक्ष** ३० मी० तक, ऊँचा **पत्र** विस्तृत, अण्डाकार, स्थूल, कुंठिताग्र, अनुपत्री, **पुष्प** सूक्ष्म हाइपैन्थोडियम, पुष्पकर्णिकान्तर्गत पत्रकोणोद्भूत **फल** अवृत, युग्म, गोल, मांसल, रक्त वर्ण होते हैं। **पुष्प काल** बसंत **फल** ग्रीष्म।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संगठन–त्वक्, शुंग में १०% कषाय, रबर, फल में तैल, कार्बोहाइड्रेट, अलब्युमिनाइड, भस्म ५-६%, तन्तु होते हैं।

गुण कर्म–रस-कषाय, मधुर गुण-रूक्ष, गुरु वि० कटु वी० शीत। पित्तकफ शामक, व्रणशोधन, रोपण, स्तम्भन, शोणितास्थापन, मूत्रसंग्रहणीय, गर्भाशयशोथहर–बल्य, प्रजास्थापन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः नेत्राभिष्यंद, कर्णस्राव में दुग्ध प्रयोग, सद्य व्रण, विसर्प में दुग्ध लेप **आभ्यन्तर**-तृषा, दाह, रक्तार्श-अतिसार प्रवाहिका रक्तपित्त प्रदर (श्वेत-रक्त) गर्भाशय शोथ, तथा गर्भस्त्राव गर्भपात, बन्ध्यत्व, शुक्रदौर्बल्य में मुख्यतः उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–पत्र, क्षीर, त्वक्, फल, शुंग, **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम, दुग्ध १०-२० बूंद, क्वाथ ४०-८० ग्राम। न्यग्रोधादि चूर्ण-क्वाथ-घृत।

विशेष–इस कुल के पुष्प पुष्पकर्णिकान्तर्गत रहते हैं। इसी में गाल वास्प (Gall Wasp) नामक सूक्ष्म जन्तु शनैः शनैः फल को परिपूर्ण करते हैं। बरगद की शाखाएँ काट कर लगा देने से नया वृक्ष लग जाता है। कभी कभी लाक्षा लगती है।

अश्वत्थ

द्रव्य नाम–हिन्दी : पीपल वृक्ष, पीपर।

लेटिन : Ficus Religiosa.

संस्कृत : वृक्षराज, मांगल्य, चैत्यद्रु, बोधिवृक्ष, याज्ञिक, गजाशन, चलपत्र, गुह्य पुष्प, क्षीरद्रुम, अश्वत्थ।

वर्गीकरण–वटादि, पंच क्षीरी एवं पंच वल्कल, (भा० प्र०) कषायस्कन्ध, मूत्र संग्रहणीय (च०) न्यग्रोधादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–विशाल छायादार वृक्ष, काण्ड त्वक् श्वेत धूसर, **पत्र** एकान्तरिक, स्निग्ध, हृदयाकार, तीक्ष्णाग्र, **पुष्प** सूक्ष्म रक्ताभपीत, **फल** अवृंत, गोल, मांसल रक्ताभश्वेत वर्ण, **बीज** अनेक, सूक्ष्म, श्वेताभ गोल होते हैं। **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** ग्रीष्मान्त।

रासायनिक संगठन–त्वक् में विशेषतः टैनिन, मोम (Wax) होता है। फल में शर्करा ३४.९% एलब्युमिनाइड्स ७.९% वसा, रंजक द्रव्य।

गुण कर्म–रस–कषाय-मधुर गुण-रूक्ष, गुरु वि० कटु वी० शीत। कफपित्तशामक, तृषा-छर्दिप्रशमन, स्तम्भन, वर्ण्य, शोणितास्थापन, रक्त-शोधक, मूत्रसंग्रहणीय।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः व्रण, शोथ, त्वग्रोगों में लेप, मुखपाक में गंडूष **आभ्यन्तर**-उरःक्षत, सरक्तकफष्ठीवन में लाक्षा प्रयोग, छर्दि, तृषा, अतिसार, रक्तार्श, रक्तविकार, विषदोष, वातरक्त, मेह, प्रदर, अत्यार्त्तव, गर्भस्राव में त्वक्, फल, पत्र प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–फल, त्वक्, पत्र, लाक्षा, क्षीर, शुंग, **मात्रा** पत्र, त्वक्, फल, चूर्ण ३-५ ग्राम, क्वाथ ४०-८० ग्राम; लाक्षा ३-५ ग्राम, न्यग्रोधादि चूर्ण, क्वाथ।

विशेष–विसूचिका, छर्दि, अतिसार, ज्वर आदि जन्य तृषा में त्वक् भस्म का फाण्ट दैनिक चिकित्सा में प्रयुक्त होता है। पुराने वृक्षों पर लाक्षा लगती है। यह रक्ताभ श्वेत, चित्रित जिसके अनियमिताकृति के टुकड़े, भंगुर होते हैं।

उदुम्बर

द्रव्य नाम–हिन्दी : गूलर, गुल्लर।

लेटिन : Ficus glomerata

संस्कृत : ब्रह्मवृक्ष, यज्ञोदुम्बर, सुचक्षु अपुष्पफलसम्बन्ध, जन्तुफल, मधुसंज्ञ, हेम दुग्ध, उदुम्बर।

वर्गीकरण–वटादि, पंचवल्कल, क्षीरी वृक्ष (भा० प्र०), कषाय स्कन्ध, मूत्र संग्रहणीय (च०) न्यग्रोधादि (सु०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति स्थान–इसके वृक्ष सर्वत्र वन्य प्रदेशों एवं उद्यानों में पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित १०-१५मी. ऊँचा **वृक्ष**, शाखा ऊर्ध्वमुखी, **पत्र** अनुपत्री, स्निग्ध लम्ब गोल, अण्डाकार, किंचित् तीक्ष्णाग्र, **पुष्प** सूक्ष्म पुष्पकर्णिकान्तर्गत, **फल** अवृन्त गुच्छों में, गोल, मांसल, रक्ताभ होते हैं। **पुष्पकाल** बसन्त, **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–त्वक् में कषाय द्रव्य मोम, रबड़, भस्म में सिलिका, फॉसफरिक अम्ल होता है।

गुण कर्म–रस–कषाय, मधुर,. गुण–रूक्ष, गुरु **वि०** कटु **वी०**-शीत। पित्त कफशामक, व्रणशोधक-रोपण, शोथहर, रक्तपित्तहर, वर्ण्य, दाहतृषाप्रशमन स्तम्भन, रक्तस्तम्भन, गर्भाशयशोथहर, बल्य, गर्भ-स्थापन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः मुख दन्त रोगों में त्वक् क्वाथ गण्डूष, नेत्राभिष्यन्द में घन सार का नेत्रबिंदु, व्रण, दुष्टव्रण में घनसार द्रव से धावन एवं व्रणबंधन गण्डमाला एवं वेदनास्थल पर दुग्ध लेप, रक्त श्वेत-प्रदर, गर्भाशय शोथ में त्वक् क्वाथ या घनसार द्रव का उत्तरबस्ति प्रयोग अति लाभकर है।

आभ्यन्तर–प्रयोग वट, अश्वत्थ के समान हैं।

प्रयोज्य अग कल्पनाएँ–फल, त्वक्, पत्र, क्षीर, **मात्रा**, त्वक् फल चूर्ण ३–५ ग्रा०, क्वाथ ४०–८० ग्राम, दुग्ध १०–२० बूँद। उदुम्बर सार, उदुम्ब-रादि तैल।

विशेष–काण्ड, शाखा, त्वक् काटने से श्वेत वर्ण का दुग्ध निकलता है। किन्तु थोड़े काल बाद पीताभ हो जाता है।

प्लक्ष (पाखर)

द्रव्य नाम–हिन्दी : पाखर, पिलखन, पाकर।

लेटिन : Fiaus lacor.

संस्कृत : कपीतन, क्षीरी, गर्दभाण्डक, कमण्डलु, चारुदर्शिनी, प्लक्ष, सुपार्श्व, दृढ़प्ररोह।

वर्गीकरण–वटादि, क्षीरीवृक्ष, पंचवल्कल (भा० प्र०) कषाय स्कन्ध, मूत्र संग्रहणीय (च०) न्यग्रोधादि (सुश्रुत)।

उत्पत्ति स्थान–वृक्ष प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–विस्तृत, शीघ्र वृद्धिशील **वृक्ष** त्वक् स्निग्ध, हरिताभ, धूसर, **पत्र** उदुम्बर सदृश किन्तु छोटे, अनुपत्री, **पुष्प** अत्यन्त सूक्ष्म **फल** गोल, छोटे, मांसल, श्वेत, रक्ताभ चिन्हित होते हैं। **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** वर्षा।

गुणकर्म–रस-कषाय; गुण लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामक व्रणशोधन-रोपण, वर्ण्य, शोणितास्थापन, स्तम्भन, गर्भाशयशोथहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : मुख रोग, व्रण, विसर्प **आभ्यन्तर** मूर्च्छा, भ्रम में फल प्रयोग, प्रवाहिका, अतिसार, रक्तपित्त, दाह रक्तविकार, प्रमेह, योनि-गर्भाशय विकारों में त्वक् पत्र उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग–त्वक्, फल, पत्र **मात्रा** चूर्ण ३–५ ग्राम, क्वाथ ४०–८० ग्राम।

विशेष–मुख रोगों में त्वक्, क्वाथ, गण्डूष, व्रण, विसर्प, शोथ में लेप, प्रदर में त्वक् क्वाथ उत्तर बस्ति तथा वर्ति प्रयोग होता है।

फल्गु (अञ्जीर)

द्रव्यनाम–हिन्दी : अंजीर।

लेटिन : Ficus Carica.

संस्कृत : फल्गु, राजोदुम्बर।

उत्पत्ति स्थान–पंजाब, कश्मीर, गुजरात, महा-राष्ट्र, तमिलनाडु में वृक्ष उद्यानों में लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकृति **वृक्ष** २–३मी० ऊंचा **पत्र** वटपत्र, सदृश, कर्कश, रोमश ३–५ खण्डों से युक्त, **फल** गूलर के समान सवृन्त, शुष्क फल, मांसल रक्त, वर्ण, चिपटा, स्निग्ध, सुषिर। **बीज**–अनेक सूक्ष्म, श्वेताभ गोल होते हैं। **पुष्प फल काल** जनवरी से मई तथा जौलाई से अक्टूबर।

रासायनिक संगठन–आर्द्र फल में ग्लुकोज ६२% निर्यास, वसा, अलब्युमिन, लवण; शुष्क में विशेषतः

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शर्करा, लौह, फॉस्फोरस, सुधा, विटामिन A. B. C. D. होते हैं।

गुण कर्म–रस-मधुर; गुण–गुरु, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, ज्वरघ्न, स्नेहन यकृदुत्तेजक संस्रन, कफोत्सारि,मूत्रल, बल्य,बृंहण।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर आंत्रिक ज्वर, मसूरिका ज्वर, विबंध (रौक्ष्य जन्य) अम्लपित्त, अर्श, कामला, रक्तपित्त, कास (वातज) यकृत्प्लैहिक विकार, रक्त विकार, श्वास मूत्रकृच्छ, दौर्बल्य, शोष में दैनिक चिकित्सोपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–फल **मात्रा** २–४ दाने अंजीर शार्कर।

विशेष–विभिन्न रोगोत्तर दौर्बल्य में बृंहण बल्य होने से इसका दुग्ध के साथ प्रयोग किया जाता है। **जाति**-वन्य, पर्वतीय, देशी, विदेशी; खेती किये हुए भेद से। धूसर, रक्त, वर्ण भेद से विविध जातियाँ होती हैं।

पनस (कटहल)

द्रव्य नाम–हिन्दी : कटहर, कटहल,।

लेटिन : Artocarpus integrifolia.

संस्कृत : पनस, अतिबृहत्फल, कण्टकिफल, फलिन, फलवृक्षक, आमाशयफल।

वर्गीकरण–फलादि वर्ग (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–उष्ण प्रान्तों में वृक्ष लगाये जाते हैं। दक्षिणी भारत, पश्चिमी घाट के वन्य क्षेत्रों में स्वयं उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बड़ा **वृक्ष** १०-१५ मी० ऊँचा, **त्वक्** कृष्णाभ, छेदन से दुग्ध वत् स्रवित **पत्र** श्लेष्मातक सदृश, कर्कश, १००-१२५ मि०मी० दीर्घ **पुष्प** पीताभ गुह्यपुष्प, **फल** दीर्घ २५-७० से० मी०; स्थूल १५-४० से० मी० मृदु कण्टकित, **बीज** अनेक पीताभ मज्जा से आवृत त्रिकोणाकृति होते हैं **पुष्पकाल** हेमन्त, **फल** ग्रीष्म.।

रासायनिक संगठन–पक्व फल में अलब्युमिनायॅड्स २.२५%, कार्बोहाइड्रेड २६.०८%, आर्द्रता ६९.२०%, क्षार ०,११%। बीजों में स्थिर तैल ४१.९५% एवं स्टार्च होता है।

गुणकर्म–रस-मधुर, कषाय; गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, कफवर्धक,।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः व्रण, शोथ ग्रन्थिशोथ, विस्फोट में दुग्ध लेप, **आभ्यन्तर** रक्तातिसार, (मूल) त्वग्रोग, रक्तपित्त, कार्श्य, दौर्बल्य, शुक्र-दौर्बल्य में फल प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग–फल, पत्र **मात्रा** क्वाथ ५०-१०० ग्राम, फल स्वरस १०-२० ग्राम।

विशेष–फल के अधिक प्रयोग से अजीर्ण, अरोचक, छर्दि, अतिसार आदि विकार हो जाते हैं। **उपशम**-इसके भृष्ट बीज या केले का प्रयोग। निरन्नोदर सेवन वर्जित है, तथा गुल्म अग्निमांद्य में भी प्रयोग निषिद्ध है।

लकुच (बड़हल)

द्रव्य नाम–हिन्दी : बड़हर, वडहल,।

लेटिन : Artocarpus lakoocha.

संस्कृत : लकुच, लिकुच, क्षुद्रपनस, ग्रन्थिफल, अम्लक, पीतनाश।

वर्गीकरण–फलादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–उष्ण प्रान्त-कुमायूँ से पूर्व की ओर (उत्तर प्रदेश) बंगाल, आसाम एवं पश्चिमी घाट, गोवा।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष**; त्वक् कृष्ण, खर, छेदन से दुग्ध स्रवित, **पत्र** वट पत्र सदृश क्रमशः नोकदार, खर, **पुष्प** एकलिङ्गी पीत, गोल, **फल** बड़े-बड़े गोल, नारंगी वर्ण, गांठदार, **बीज** कटहल सदृश, छोटे श्वेत होते हैं। **पुष्प काल** बसन्त **फल** वर्षा।

गुण कर्म–रस-मधुर-अम्ल, कषाय; गुण-रूक्ष, गुरु **वि०** अम्ल **वी०** उष्ण। वातपित्तशामक, कफवर्धक।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर–अरोचक अग्निमांद्य, विबन्ध (बीज) उरःक्षत, क्षय (भृष्ट बीज) ज्वर, (त्वक्), दौर्बल्य कार्श्य में फल उपयोगी है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोज्य अङ्ग–फल, बीज, त्वक् **मात्रा** त्वक् क्वाथ ५०-१०० ग्राम। बीज चूर्ण २-५ ग्राम, फल स्वरस १०-२० ग्राम,।

विशेष–इसका फल खाने के बाद दुग्ध या इसके बने पदार्थों का सेवन विरुद्ध संयोग होने से वर्जित है। फलों में यह निकृष्टतम है।

"लकुचं फलानां (अहिततमम्)

तूद (शहतूत)

द्रव्य नाम–हिन्दी : शहतूत, तूंत,।

लेटिन : Morus indica.

संस्कृत : तूद, तूत, तूल, क्रमुक, ब्रह्मकाष्ठ, मधुपिप्पली।

वर्गीकरण–फलादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–उत्तर प्रदेश, बंगाल, आसाम, बिहार, आदि प्रान्तों के उद्यानों में तथा हिमालय की तराई में स्वयं उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष**; काण्ड त्वक् रक्ताभ धूसर **पत्र** सदीर्घवृन्त, अंजीर पत्र सदृश, तीन खण्डों में विभक्त, दंतुरित **पुष्प** catkin क्रम, सूक्ष्म श्वेत वर्ण मंजरियों में **फल** लम्ब गोल सवृन्त मृदु ७०-९५ मि० मी० दीर्घ, गोल-गोल दानेदार पक्व श्वेत हरिताभ, रसयुक्त, मधुर होते हैं। **पुष्पकाल** शीत **फल** बसन्त।

रासायनिक संगठन–फल में शर्करा, पेक्टिन, साइट्रेट, मैलेट आदि द्रव्य होते हैं।

गुण कर्म–रस–मधुर, गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर, **वी०** शीत। वातपित्तशामक, शोथहर, तृषा-दाह प्रशमन, रक्तपित्तशामक, ज्वरघ्न मूत्रजनन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : मुख, कण्ठ रोगों में पत्र क्वाथ गंडूष, शय्या व्रण में पत्र लेप **आभ्यन्तर** दाह, तृषा, अग्निमांद्य, विबंध, रक्तपित्त, रक्तविकार, शोष, दौर्बल्य, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, तज्जन्य उपद्रव-दाह, तृषा में (फल) स्फीत कृमि में त्वक् उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–फल, पत्र, त्वक् **मात्रा** फल स्वरस २०-५० ग्राम, त्वक् क्वाथ ५०-१०० ग्राम; शहतूत शार्कर।

विशेष–**जाति** (क) M. alba-फल पीताभ, दीर्घ, मधुर (ख) M. nigra-फल रक्ताभ धूसर, लम्ब, गोल, मधुराम्ल होता है। तृषा, दाह, रक्त-पित्त, शोष, मूत्रकृच्छ्र, वातपैत्तिक विकारों में एवं ग्रीष्म ऋतु में मुख्यतः प्रयोग होता है।

चिरविल्व

द्रव्य नाम–हिन्दी: चिरविल पापरी।

लेटिन : Holoptelia integrifolia.

संस्कृत : चिरविल्व, करंजी, उदकीर्य, षड्ग्रंथा, मर्कटी, वायसी, हस्तिवारुणी।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०), लेखनीय, भेदनीय (च०)।

उत्पत्ति स्थान–पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, आसाम, गुजरात के पर्वतीय क्षेत्रों में वृक्ष मिलते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार वृक्ष, ८-१२ मी० ऊँचा **शाखाएँ** अवनत, श्वेताभ, प्रसरी, **पत्र** दुर्गन्धि, एकान्तर, २ पंक्तियों में, अण्डाकार, तीक्ष्णाग्र, पारदर्शक बिन्दु (हरित पत्र में) **पुष्प** हरित-श्वेत-पीत छोटे, शाखाग्र गुच्छों में **फल** पीताभ, अण्डाकार, नताग्र, चिपटाकृति, नुकीले **पुष्प काल** बसंत **फल** ग्रीष्म।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कषाय; गुण-रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। पित्तकफशामक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : शोथ दद्रु, पात्रा आमवात, उरुस्तम्भ, श्वित्र, श्लीपद, स्नायुक, अण्ड वृद्धि **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, उदर रोग, शूल, कृमि, अर्श, यकृत्प्लीहोदर, रक्त विकार, कुष्ठ, प्रमेह, मेदोरोग में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग–त्वक्, पत्र **मात्रा** क्वाथ ५०-१०० ग्राम।

विशेष–वेदना युक्त शोथादि में पत्र, त्वक् लेप स्नेहाक्तोष्ण पत्र बंधन; अण्ड वृद्धि में बीज लेप,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यकृत्प्लीहोदर में पत्र शाक, प्रमेह-मेदो रोग में त्वक् क्वाथ उपयोगी है। दद्रु में फल का लेप अत्युपयोगी है।

निर्गुण्डी कुल
VERBENACEAE FAM.

अरणी

द्रव्य नाम–हिन्दी : अरणी, अरनी।

लेटिन : Clerodendron phlomidis.

संस्कृत : अरणी (बृहत्), अग्निमंथ, नादेयी, वैजयंतिका, जया, गंधपुष्पा, श्रीपर्णी गणकारिका, तर्कारी।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि, दशमूल (भा० प्र०) शोथहर, शीत प्रशमन (च०), बृहत् पंचमूल, वातसंशमन, वरुणादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषत : उत्तर प्रदेश, गंगा के मैदान, बंगाल, बिहार, राजस्थान, कर्नाटक के बन्य प्रदेशों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–छोटा **वृक्ष** ६-८ मी० ऊँचा शाखाएँ अवनत **पत्र** मृदु नील हरित, अभिमुख, अण्डाकार, अभिलट्वाकार ७०-१०० मि० मी० दीर्घ, ५०-७५ मि० मी० चौड़े, दंतुर तीक्ष्णाग्र, दुर्गन्धित **पुष्प** छोटे श्वेत बैंगनी, सुगन्धित **फल** करोंदे के समान धूसर, गुच्छों में लगते हैं। **पुष्प काल** अगस्त **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–मूलत्वक् में तिक्त क्षारीय सत्व, कषाय, रालीय द्रव्य (resinous) होते हैं।

गुणकर्म–रस-तिक्त, कषाय, कटु; गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। कफवातशामक, दीपन, वेदनास्थापन, शोथहर, शीतप्रशमन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : अर्श, आमवात, संधिवात, शोथ, ग्रन्थि में लेप, अवगाहन।

आभ्यन्तर–आनाह, अर्श, कास, श्वास, मेह, मेदोरोग, उरुस्तम्भ, आमवात, शोथ, रक्त विकार एवं वेदना प्रधान विकारों में विशेषतः उपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–पत्र, मूलत्वक् **मात्रा** चूर्ण ०.५-१.५ ग्राम, क्वाथ २०-४० ग्राम। दशमूल क्वाथ-अरिष्ट।

विशेष–छोटी जाति 'तर्कारी' क्षुद्राग्निमंथ वृक्ष छोटा, पत्र छोटे, पुष्प श्वेत सुगंधित, इसके गुण कर्म अरणी सदृश हैं। जातियाँ (क) Premna latifolia (ख) P. integrifolia (ग) P. mucronata (घ) P. serratifolia (ङ) P. barbata होती हैं।

गंभारी

द्रव्य नाम–हिन्दी : गंभारी, कासमर।

लेटिन : Gmelina arborea।

संस्कृत : काश्मरी, गंभारी, श्रीपर्णी, सर्वतोभद्रा, मधुमती, कुमुदा, पीत-सुफला।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि, दशमूल (भा० प्र०) शोथहर, दाह प्रशमन (च०) सारिवादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमोत्तर हिमालय, बंगाल, बिहार, मध्यभारत, दक्षिण भारत के वन्य प्रदेशों में वृक्ष प्राप्ति।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष**; बहुशाखी १२ मी० ऊँचा, काण्डत्वक् श्वेत, मसृण **पत्र** अश्वत्थ सदृश, हृदयाकृति, लम्बाग्र **पुष्प** वासा के समान, पीत रक्ताभ मंजरी में, **फल** पीताभ, गोल, अण्डाकार, आयताकार, होते हैं **पुष्प काल** बसंत **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–फल में ब्यूटिरिक, टार्टरिक अम्ल, शर्करा; त्वचा में पीतवर्ण तैलीयांश, बैंजोइक एसिड़, क्षार होते हैं।

गुणकर्म–रस–तिक्त, मधुर, कषाय; गुण–गुरु, स्निग्ध, **वि०** कटु **वी०** उष्ण। त्रिदोषशामक, त्वक्शोथहर, विषघ्न, तिक्त पौष्टिक। फल–रक्तपित्तशामक, शोणितास्थापन।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर-तृषा, दाह, भ्रम, रक्तातिसार, अर्श, रक्तपित्त, उरःक्षत, बाल शोष में फल प्रयोग। कृमि, ज्वर, शोथ, विष विकार,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मूत्रकृच्छ्र, आमवात, वातव्याधि में त्वक् प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–मूलत्वक्, फल; **मात्रा** चूर्ण १-५ ग्राम, रस १०-२० ग्राम, बृहत्पंचमूल क्वाथ, श्रीपर्णी तैल।

विशेष–इसका फल मधुर, कषाय रस, मधुर विपाकी, शीत वीर्य होने से पित्त, रक्त दोष प्रधान व्याधियों में उपयोगी है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा** मूल बाहर से भूरे वर्ण की, किन्तु काष्ठीय भाग पीताभ वर्ण, चर्मवत् भार में हल्की स्वाद में मधुर, कषाय पिच्छिल होती है। **जाति** (G. asiatica) दक्षिण भारत में विशेषतः उत्पन्न। **मिलावट**-उपर्युक्त जाति तथा प्रेम्ना फ्लोवेन्सिस की छाल मिलायी जाती है। ये त्वक् स्वाद में तिक्त, कषाय होती हैं।

निर्गुण्डी

द्रव्य नाम–हिन्दी : सम्भालू, सम्हालू।

लेटिन : Vitex negundo.

संस्कृत : निर्गुण्डी, शेफाली, सुवहा, सिन्दुवार, सिन्दुक।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) विषघ्न, कृमिघ्न, (च०) सुरसादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र वन, उपवन, नदियों के समीप वृक्ष स्वयं उत्पन्न एवं लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–झाड़ीदार **वृक्ष** २-३·७ मी० ऊँचा **पत्र** ३-५ पत्रक, भालाकार, लम्बाग्र, नील हरिताभ, विशिष्ट गंधयुक्त, निम्न पृष्ठ श्वेत वर्ण, रोमश, **पुष्प** छोटे, मञ्जरियों में नील, बैंगनी, श्वेताभ वर्ण, **फल** गोल, कृष्ण, मांसल, अष्ठिफल होते हैं। **पुष्प फल काल**-शरद्, शीत।

रासायनिक संगठन–पत्र में सुगन्धित, उड़नशील तैल, राल; फल में अम्लराल, गैलिक एसिड क्षार होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कटु, कषाय; गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, व्रण शोधन-रोपण, शोथहर, कृमिघ्न, यकृदुत्तेजक, ज्वरघ्न (नियत कालिक) कफघ्न, विषघ्न, कुष्ठघ्न, रसायन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः शोथयुक्त सभी व्याधियों में जैसे आमवात, सन्धिशोथ।

आभ्यन्तर–कृमि, शोथ, यकृच्छोथ, प्लीहावृद्धि, कास, श्वास, फुफ्फुस शोथ त्वग्रोग कुष्ठ, मूत्राघात, कृच्छ्रार्त्तव, विषविकारों में प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं- मूल, पत्र, बीज **मात्रा** मूल चूर्ण १-३ ग्राम, स्वरस १०-२० ग्राम। निर्गुण्डी तैल।

विशेष–**जाति**-श्वेत पुष्पा निर्गुण्डी का नाम सिन्दुवार है। V. trifolia; १-३ पत्रक अवृन्त, आयताकार, पुष्प बैंगनी, श्वेताभ होते हैं। बाह्य प्रयोग में पत्रों का उपनाह, अवगाहन, नेत्ररोगों में आश्च्योतन, कर्ण रोगों में तैल का कर्ण बिन्दु प्रयोग। इसका रसायनार्थ भी प्रयोग होता है। **अनुसंधान कार्य** विभिन्न आयुर्वेदिक अनुसंधान केन्द्रों में निर्गुण्डी का प्रयोग सन्धिवात, आमवात, गृध्रसी में किया जा रहा है। गृध्रसी में गुग्गुल की अपेक्षा इसका प्रयोग अधिक लाभप्रद पाया गया है। निर्गुण्डी का प्रयोग कम्पवात, विश्वाची, खल्ली वात में भी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

भार्ङ्गी

द्रव्यनाम–हिन्दी : भारंगी।

लैटिन : Clerodendron serratum.

संस्कृत : भार्ङ्गी, पद्मा, खरशाक, ब्राह्मणयष्टिका, फञ्जी, भृगुभवा।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०) पिप्पल्यादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के निम्नवर्ती प्रदेश बंगाल, बिहार, हिमाचल प्रदेश, दक्षिण भारत, पश्चिमी घाट में स्वयं जात गुल्म होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षीय **गुल्म** १.५-२.८

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मी० ऊँचा शाखाएँ अत्यल्प **पत्र** काण्ड के चारों ओर, एक ग्रन्थि पर तीन-२ चक्रों में आयताकार, भालाकार, तीक्ष्ण दन्तुरित, ७५-२०० मि० मी० दीर्घ, ४०-६० मि० मी० 'चौड़े **पुष्प** श्वेत या नीलाभ छोटे गुच्छों में अग्रस्थ **फल** गोल, बैंगनी अष्ठिफल एक से तीन गुच्छों में होते हैं, **पुष्प काल** ग्रीष्म **फल** वर्षान्त।

रासायनिक संगठन–मूल में स्टार्च, वसा, तिक्त क्षार तत्त्व, नारंगी वर्ण का रालीय सत्त्व होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कटु, कषाय; गुण-रूक्ष, लघु, **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, दीपन, स्वेदजनन, शोथहर, श्वास-कासहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : गण्डमाला, शोथ, ग्रन्थि में लेप व विद्रधि को पकाने के लिए पत्र लेप, **आभ्यन्तर**-श्वास, कास, प्रतिश्याय, फुफ्फुसावरण-शोथ, श्लैष्मिक ज्वर, शोथ, रक्तविकारों में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल, **मात्रा** १-३ ग्राम, क्वाथ २०-४० ग्राम। भार्ङ्गी गुड़, भार्ङ्गी क्वाथ।

विशेष–इसका मूल श्वेत, धूसर, स्थूल, ग्रन्थि युक्त होता है। इसकी ३-४ जातियों व भिन्न-भिन्न द्रव्यों का भी प्रयोग होता है। **जाति** वामन हाटी, (C. siphomanthus) **शुद्ध द्रव्य परीक्षण** शुष्क मूल के टुकड़े १८ से ३० मि०मी० दीर्घ, बेलनाकार स्निग्ध, बाहर से भूरे वर्ण रक्ताभ, अन्दर से पीताभ विशेष गन्ध, स्वाद रहित होते हैं।

प्रियङ्गु

द्रव्य नाम–हिन्दी : प्रियंगु, फूलप्रियंगु।

लेटिन : Callicarpa macrophylla.

संस्कृत : प्रियंगु, फलिनी, कान्ता, लता, महिलाह्वया, गौरी, महिलाप्रिया, गुन्द्रा, विष्वक्सेनाङ्गना, श्यामा, गंधफला, कंङ्ग।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा०प्र०) मूत्र विरजनीय, पुरीषसंग्रहणीय (च०) प्रियंग्वादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय में ६ हजार फीट की ऊँचाई तक बिहार, बंगाल के वन्य क्षेत्रों में गुल्म उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकृति **गुल्म** प्रायः प्रसरी, गुल्म के प्रत्येक भाग पर श्वेत सघन रोएं होते हैं। शाखा प्रशाखाएं तनु, **पत्र**-अण्डाकृति, आयताकार, दन्तुरित, १२५-२५० मि०मी० दीर्घ ७०-१०० मि०मी० चौड़े अधर पृष्ठ श्वेताभ, रोमश **पुष्प**–बैंगनी, गुलाबी वर्ण छोटे-छोटे गुच्छों में **फल** अष्ठिफल, ज्वार के दाने सदृश गोल, श्वेत, चमकीले, मांसल होते हैं। **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शीत।

गुणकर्म–रस–तिक्त, कषाय; गुण–लघु, रूक्ष, **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, तृष्णादाह छर्दिप्रशमन, शोणितास्थापन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : विसर्प, दाह में पत्र फल लेप, **आभ्यन्तर**-तृषा, दाह, भ्रम, छर्दि, रक्तपित्त, रक्तातिसार, रक्तविकार, विसर्प, त्वग्रोग, ज्वर में फल प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, बीज, **मात्रा** चूर्ण १-२ ग्राम फाण्ट ३०-५० ग्राम। प्रियंग्वादि तैल।

विशेष–संदिग्ध द्रव्य है किन्तु शास्त्रीय विवेचन के आधार पर प्रस्तुत द्रव्य ग्रहण करना उचित प्रतीत है। उत्तर भारत में प्रायः इसी का प्रियंगु के रूप में प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त २-३ द्रव्य और भी लिये जाते हैं। निम्न द्रव्यों का भी प्रयोग (क) Aglaia roxburghiana निम्ब कुल-दक्षिण भारत में उत्पन्न; शुष्क फल भूरे, वर्ण के झुर्रीदार होते हैं। (ख) prunus mahaleb (ग) Myristica horsfieldia (घ) Aglaia priyangu प्रियंगु के स्थान पर किया जाता है।

शाक (सागवान)

द्रव्य नाम—हिन्दी: सागवान, सागौन।

लेटिन : Tectona Grandis.

संस्कृत : शाक, साग, द्वारदास, वरदारु,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

खरच्छद, महापत्र, स्थिरसार, श्रेष्ठ काष्ठ ।'

वर्गीकरण–सालसारादि (सु०) ।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के निम्नवर्ती प्रदेश, उत्तरप्रदेश, बंगाल, आसाम, उड़ीसा तथा मध्य-प्रदेश, द० भारत के जंगलों में प्रचुर वृक्ष पाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–इसका विशाल, सरल, **वृक्ष** ३०-४५ मी० ऊँचा **काण्ड** पाण्डु कपिश वर्ण; शाखाएँ चतुष्कोणीय **पत्र** खर, अभिमुख, अण्डाकार, नुकीले, दीर्घ (०·३ मी०) निम्नपृष्ठ रोमश **पुष्प** श्वेत वर्ण गुच्छों में **फल**–गोल, रोमश ४ कोष्ठीय होता है **पुष्पफल काल**-शीत ।

रासायनिक संगठन–बीजों में एक स्थिर तैल, काष्ठ में राल तथा काष्ठ कोटरों में खनिज द्रव्य केलशियम, फॉस्फेट, मेगनेशियम, फासफॉरस, सिलिका संचित होते हैं ।

गुणकर्म–रस-कषाय; गुण-रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** शीत । पित्तकफशामक, (काष्ठ) वातशामक (बीज), शोथहर, कृमिघ्न, स्तम्भन, शोणिता-स्थापन, मूत्रल ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : त्वग्रोग, खालित्य, पैत्तिकशोथ, दाह, शिरःशूल, भल्लातकविषजशोथ **आभ्यन्तर**–कृमि, प्रवाहिका, अतिसार, अम्लपित्त, दाह, कुष्ठ, मेदोरोग, मेह, प्रदर मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त (पत्रस्वरस) में उपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग–काष्ठ, पत्र, बीज त्वक् **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, क्वाथ ५०-१०० ग्राम ।

विशेष–खालित्य में बीज तैल लेप, पैत्तिक शोथ, दाह, भल्लातक विष में काष्ठ लेप । कृमि, प्रवाहिकादि में (त्वक्), मेह, मेदोरोग, प्रदर में अन्तः काष्ठ; मूत्रकृच्छ्र में बीज प्रयोग होता है । इसका काष्ठ मजबूत, स्निग्ध होने से फर्नीचर बनाने में काम आता है ।

हरीतकी कुल
COMBRETACEAE FAM.
हरीतकी

द्रव्य नाम–हिन्दी : हरडे, हर्रे, हरीतकी ।

लेटिन–Terminalia chebula.

संस्कृत–कायस्था, अमृता, अभया, प्राणदा प्रमथ्या, भिषक्प्रिया, शिवा, रोहिणी, चेतकी ।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि, त्रिफला (भा० प्र०) ज्वरघ्न, कासघ्न, अर्शोघ्न, कुष्ठघ्न, प्रजास्थापन (च०) आमलक्यादि, परुषकादि (सु०) ।

उत्पत्ति स्थान–उत्तरप्रदेश, बंगाल, महाराष्ट्र, कर्नाटक, पंजाब के वन, समतल भूमि एवं पार्वत्य क्षेत्रों में वृक्ष पाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु **वृक्ष** १०-२५ मी० ऊँचा; काण्ड-सरल **पत्र** वासा पत्र सदृश, एकान्तरित या अभिमुख ७५-२०० मि० मी० दीर्घ ५०-६५ मि० मी० चौड़े, तीक्ष्णाग्र । **पुष्प**-आम्र-मंजरी सदृश, श्वेत पीत, संगध **फल**-अष्ठिफल, पक्व, पीताभ धूसर, पंचरेखायुक्त, अनुलम्ब, गोल, पुष्ट, कठिन **बीज** एक रवर फलाकृति सदृश होता है, **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** शीत ।

रासायनिक संगठन–फल में टेनिक एसिड़ २०-४५% गैलिक एसिड़ प्रचुर, पिच्छिल द्रव्य, रंजक द्रव्य, Chebulinic acid होता है ।

गुणकर्म–रस–कषाय, तिक्त, मधुर, कटु, अम्ल, गुण-लघु, रूक्ष, **वि०** मधुर **वी०** उष्ण । त्रिदोषशामक, शोथहर, व्रण शोधन, रोपण, दीपन, अनुलोमन ज्वर-कास-अर्श-कुष्ठघ्न, वयःस्थापन, मेध्य, गर्भस्थापन ।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः शोथ, नेत्राभिष्यंद, गलरोग **आभ्यन्तर** शूल, आनाह, गुल्म, ग्रहणी, अर्श, कामला, प्लीहावृद्धि, पाण्डु, शोष, हृद्रोग, स्वरभङ्ग, पीनस, कास, श्वास, मेह, कुष्ठ, प्रदर, शोथ, त्वग्रोग, शिरोरोग, नेत्रामय, जीर्णज्वरादि विकारों की दैनिक चिकित्सोपयोगी मुख्य औषधि है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोज्यअङ्ग कल्पनाएं–फल **मात्रा** १-३ ग्राम, हरीतकी चूर्ण ३-६ ग्राम, (रेचनार्थ), अभयारिष्ट पथ्यादिचूर्ण, दंतीहरीतकी, अभयादिमोदक, अगस्त हरीतकी।

विशेष–छोटी हरड़, (जवा हरड़), पीली हरड़, बड़ी हरड़, क्रमशः निरस्थिफल, अपक्व, पक्व होती है। **ऋतु हरीतकी**–वंसत में मधु वर्षा में सैंधव, शरद् में शर्करा, हेमन्त में शुंठी शिशिर में पिप्पली, ग्रीष्म में गुड़ के साथ सेवन करना चाहिए। **प्रयोग निषेध**–अजीर्ण, रूक्षान्नसेवी, स्त्री मद्यसेवन से कृश, क्षुधा, प्यास से पीड़ित व्यक्ति को हरीतकी सेवन निषिद्ध है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा** नवीन, स्निग्ध, गुरु (१६ ग्राम) अछिद्र, छोटे बीज की जल में डूबने वाली, बड़े, भारी वक्कल की हरीतकी उत्तम होती है।

विभीतक

द्रव्य नाम–हिन्दी : बहेड़ा, बहेरा।

लेटिन : Terminalia belerica.

संस्कृत : विभीतक, कल्पवृक्ष, कलिवृक्ष अक्ष, कर्षफल, भूतवास, तिलपुष्पक, कासघ्न। कलिद्रुम, तैलबीज।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि, त्रिफला (भा० प्र०) ज्वरहर, विरेचनोपग (च०) मुस्तादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–देश के प्रायः सभी प्रान्तों के जंगलों एवं पार्वत्य क्षेत्रों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–विशाल **वृक्ष** १५-३० मी० ऊंचा, त्वक् श्वेताभधूसर, **पत्र** एकान्तरित, वटपत्र या महुए के पत्र सदृश शाखा के अन्त में सगुच्छ, **पुष्प** पीताभ श्वेत मंजरी सदृश, सुगंधित **फल** धूसर, अण्ड, गोल, **बीज** एक गोल धूसर वर्ण ईषत् पंचकोणीय, मधुर स्निग्ध मज्जा युक्त होता है।

पुष्प काल ग्रीष्म **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–फल में १७% टैनिन, गैलो टेनिक एसिड, सेपोनीन, राल; बीज में २५% पीताभ सान्द्र तैल होता है।

गुण कर्म–रस-कषाय, तिक्त, कटु; गुण-रूक्ष, लघु **वि०** मधुर **वी०** उष्ण। त्रिदोषशामक, विशेषतः कफवातशामक, चक्षुष्य, कण्ठ्य, दीपन, अनुलोमन, ग्राही, श्वासकासहर, रक्तशोधक, बीज मज्जा-मादक, वेदनास्थापन, शोथहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः गलरोग, नेत्ररोग, कास, शोथ, खालित्य, पालित्य, त्वग्रोग, स्वरभंग, **आभ्यन्तर**–तृष्णा, छर्दि, कृमि, विबंध, प्रतिश्याय, कास, श्वास, दौर्बल्य, प्रदर, क्लेब्य, वात-व्याधि में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, क्वाथ ३०-५० ग्राम, त्रिफला–तालीशादि चूर्ण त्रिफलाघृत लवंगादिवटी, फलत्रिकादि क्वाथ।

विशेष–फल की दृष्टि से दो प्रकार का होता है। एक जाति का फल बड़ा व दूसरी जाति का छोटा फल होता है। गलरोगों में फल क्वाथ से गंडूष; कास, श्वास, स्वरभंग में फल चर्बण-धारण; नेत्र विकारों में फाण्ट से धावन, शोथ, त्वग् रोगों में लेप प्रयोग होता है।

अर्जुन

द्रव्यनाम–हिन्दी : अर्जुन, कोह, काइ।

लेटिन - Terminalia arjuna.

संस्कृत : अर्जुननामाख्य, ककुभ, नदीसर्ज, धवल, वीरवृक्ष, वीर, इंद्रदु, पार्थ।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्रकाश), कषायस्कन्ध, उदर्दप्रशमन (च०), न्यग्रोधादि, सालसारादि गण (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–देश के प्रायः सभी प्रांतों में विशेषतः बंगाल, बिहार, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकृति, ऊंचा **वृक्ष** लगभग १०–२० मी०, काण्ड सरल, श्वेताभ, स्निग्ध, अन्तस्त्वक् स्थूल स्निग्ध गुलाबी रक्ताभ वर्ण स्तरयुक्त; **पत्र**-अभिमुख चर्मवत् अमरुद सदृश

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कुण्ठिताग्र अण्डाकार, आयताकार ७५–२०० मि० मी० दीर्घ ५०–७५ मि० मी० चौड़े **पुष्प** श्वेतपीत हरिताभ, गुच्छमय, मंजरी में **फल** कमरख के समान, धूसर, तंतुमय होते हैं। **पुष्प काल** ग्रीष्म **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–त्वक् में टेनिन १६% कैल्शियम कार्बोनेट ३४% सेन्द्रिय, अम्ल, शर्करा, अल्युमिनीयम, मेगनेशियम, रंजक द्रव्य Arjunine मणिभाकार तत्त्व होते हैं।

गुण कर्म–रस-कषाय; गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत। कपपित्तशामक हृदयबल्य-उत्तेजक, शोणितास्थापन, व्रणरोपण, संधानकर।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः अस्थिभग्न, व्रण **आभ्यन्तर**–हृद्रोग (हृद्द्रव, हृद्दौर्बल्य) शोथ, रक्तार्श, अतिसार, क्षयजकास, क्षतक्षय, रक्तविकार, रक्तपित्त, उदर्द, प्रमेह, रक्तप्रदर, मेदोरोग, जीर्ण-ज्वर में दैनिक प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–त्वक् **मात्रा** चूर्ण १–३ ग्राम, क्षीरपाकार्थ ५–१० ग्राम; अर्जुनारिष्ट-घृत, ककुभादि चूर्ण, अर्जुन क्षीरपाक।

विशेष–इसके प्रयोग से रक्तवाहिनियों का संकोच होने से रक्त संवहन का दवाब बढ़ता है। हृदय की संकोच प्रसार क्रिया सम्यक् तथा संख्या नियमित होने से विश्राम काल दीर्घ होता है। रक्त शोधक होने से जीर्ण ज्वर एवं रक्तपित्त में प्रयोग अति लाभकारी होता है। हृद्रोगों में त्वक् का प्रयोग क्षीरपाक विधि से त्वक् स्थित कषाय द्रव्य एवं रूक्षादि गुणों को दूर करने के लिए दैनिक चिकित्सा में होता है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**-त्वक् विभिन्न लम्बाई युक्त, टुकड़े १५० मि० मी० दीर्घ, १०० मि० मी० चौड़े ३–१० मि० मी० स्थूल; बाह्यस्त्वक् खाकस्तरी (Grey) वर्ण अन्तस्त्वक् गुलाबी, अन्तःस्तर सूक्ष्म रेखांकित फीके वर्ण का तोड़ने पर सरलता से भंगुर तथा टूटे स्थान पर गहरा रक्त वर्ण दिखाई देता है।

मिलावट–इसमें उदुम्बर, मधुक एवं साजड़ की छाल मिलायी जाती है अतः शुद्ध द्रव्य परीक्षा वर्णित बिन्दुओं के अनुसार शुद्ध त्वक् लेनी चाहिए।

धव

द्रव्य नाम–हिन्दी : धव, धाय, धावड़ा।

लेटिन : Anogeissus latifolia.

संस्कृत : गौर, धुरन्धर, दृढ़, नन्दितरु, स्थिर, धव।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा०), सालसारादि, मुष्ककादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र ऊंचाई युक्त पार्वत्य प्रदेश।

वानस्पतिक परिचय–सरल **वृक्ष**, १८--२१ मी० ऊंचा त्वक् श्वेत हरिताभ, **पत्र**--एकान्तरित या अभिमुख, अण्डाकार, स्निग्ध, **पुष्प**–यवाकार रक्तपीताभ गुच्छों में **फल** अष्ठिफल–गोल स्निग्ध होता है। **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शीत।

गुण कर्म–रस–कषाय, मधुर, गुण–रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** शीत। कफपित्तशामक, व्रणशोधक, रोपण, कुष्ठघ्न, वेदनास्थापन, रक्त-पित्त शमन, ग्राही, निर्यास-बल्य, विषघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : शोथ, क्षतव्रण में त्वक् क्वाथ लेप, प्रक्षालन **आभ्यन्तर**--प्रमेह, कुष्ठ, रक्तपित्त, पाण्डु, अतिसार, प्रवाहिका, दौर्बल्य में उपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग–त्वक्, निर्यास **मात्रा** निर्यास ०.५–१ ग्राम, त्वक् क्वाथ ३०–५० ग्राम।

विशेष–इसका निर्यास धूसर रक्ताभ, अनियमित आकृति के ढेलों, पपड़ियों क्वचित् गोल–२ दानों के रूप में मिलता है। निर्यास का प्रयोग दौर्बल्य एवं सर्प, वृश्चिकदंश में लाभप्रद है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

असन

द्रव्य नाम–हिन्दी : असन, सइन ।

लेटिन : Terminalia tomentosa.

संस्कृत : असन ।

वर्गीकरण–उदर्द प्रशमन (च०) सालसारादि (सु०) ।

उत्पत्ति स्थान–३–४ हजार फीट की ऊंचाई पर उत्तर प्रदेश, दक्षिण भारत के पर्वतीय वन्य क्षेत्रों में वृक्ष पाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–बड़ा **वृक्ष** २५–३० मी० ऊंचा **पत्र** अण्डाकृति, अभिप्रासवत्, तरंगायित (अश्व कर्ण सदृश्य), **पुष्प** छोटे श्वेत पीताभ, **फल** मांसल, स्निग्ध, ५० मि० मी० व्यास युक्त, अनुलम्ब ५ पक्षवत् दंतुर, उभारयुक्त होता है । **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** शीत ।

रासायनिक संगठन–त्वक् में कषाय द्रव्य २०.२% अविलेय द्रव्य ६४%; सत्व ४.४% भस्म ६.७% होती है ।

गुण कर्म–रस–कषाय, तिक्त, गुण–लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण । त्रिदोषशामक, व्रणशोधन–रोपण, रक्तस्तम्भन, रक्तशोधन, प्रमेहघ्न ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : जीर्ण व्रण, शोथ, **आभ्यन्तर**–अतिसार, प्रवाहिका, प्रमेह, त्वग्रोग, कुष्ठ, रक्तविकार, उदर्द में प्रयोग किया जाता है ।

प्रयोज्य अङ्ग–काण्डसार, त्वक् **मात्रा** क्वाथ ५०–१०० ग्राम ।

विशेष–बाह्य प्रयोगार्थ लेप, परिषेक । बाह्य काष्ठ रक्ताभ श्वेत अन्तःसार कृष्ण धूसर वर्ण होता है ।

पिप्पली कुल
PIPERACEAE FAM.

पिप्पली

द्रव्य नाम–हिन्दी : पीपल, छोटी पीपल ।

लेटिन : Piper longum.

संस्कृत : पिप्पली, मागधी, वैदेही, कणा, शौण्डी, उपकुल्या, चपला, कृष्णा, कोला, उष्णा, कटुबीजा ।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि, त्रिकटु (भा० प्र०), तृप्तिघ्न, वमन, दीपनीय, कासहर, शूल प्रशमन, हिक्का निग्रहण, शिरोविरेचन, (च०) ऊर्ध्वभागहर, शिरोविरेचन । (सु०)

उत्पत्ति स्थान–देश के उष्ण, आर्द्र, प्राँत बंगाल, बिहार, आसाम, केरल में बडे परिमाण में खेती की जाती है ।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षीय ०.६–०.९ मी० तक दीर्घ गुल्मक आरोही प्रसरणशील **लता** शाखाएं मृदु चतुर्दिक प्रसरी **पत्र** पान सदृश, अखण्डित, स्निग्ध, एकान्तर, दूरवर्ती ५०–१२५ मि० मी० दीर्घ, ४०–७५ मि० मी० चौड़े **पुष्प** पत्रकोणोद्भूत एकलिंगी, नरमंजरी ४०–८० मि० मी०, स्त्री-पुष्प मंजरी १२–१८ मि० मी० दीर्घ । **फल** पक्व रक्तवर्ण, शुष्क होने पर कृष्ण शुण्डाकार २० मि० मी० दीर्घ, सघन गोल दानेदार होता है । **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शरद् ।

रासायनिक संगठन–फल में १–२% उड़नशील तैल में ५–६.५% Piperine, piperidine क्षार, वसा, स्टार्च, रालीय सत्व चविकिन होता है ।

गुण कर्म–रस–कटु, गुण–तीक्ष्ण, लघु, स्निग्ध, **वि०** मधुर, **वी०** अनुष्णशीत । कफवात शामक, दीपन, पाचन, शूलप्रशमन, ज्वरघ्न, ऊर्ध्वभाग-दोषहर, शिरोविरेचन, रसायन ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : शोथ, शूल में फल लेप **आभ्यन्तर** तृप्ति, अग्निमांद्य, शूल, गुल्म, उदर-रोग, अर्श, यकृत्प्लीहारोग, पाण्डु, श्वास, कास, हिक्का, हृद्दौर्बल्य, जीर्णज्वर, विषमज्वर, प्रसवोत्तरज्वर, श्लैष्मिकज्वर, गृध्रसी, वातव्याधि, आमवात, कुष्ठ, प्रमेह में दैनिक चिकित्सोपयोगी औषधि है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–फल, मूल **मात्रा** चूर्ण ०.५–१.५ ग्राम, गुड़पिप्पली-खण्ड, पिप्पल्यासव सितोपलादि चूर्ण।

विशेष–जलोदर रोगियों में राज० आयुर्वेद महाविद्यालय, उदयपुर के आतुरालय में पिप्पली-वर्धमान प्रयोग से चमत्कृत लाभ मिला है। गुरु, क्लेदि, उष्ण, योगवाही होने से दीर्घकाल प्रयोग वर्जित है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**–छोटी पीपल (देशी) २०-३७ मि० मी० लम्ब–गोल, छोटे-२ दानों से ठोस भरी हुई, कृष्णाभहरित, चमकदार, बड़ी पिप्पली (लंका-सिंगापुर) कृष्णाभ खाकस्तरी, आकृति एवं दानों में बड़ी, जल से धोने पर दाने भूरे रक्ताभ वर्ण होते हैं। **अनुसंधान कार्य**–सैन्ट्रल रिसर्च इन्स्टीट्यूट चेरुथुरथी में उदरकृमि रोगों में गुड़ पिप्पली प्रयोग से उत्साहवर्धक परिणाम मिले हैं, प्रयोग जारी है।

पिप्पली मूल

द्रव्यनाम–हिन्दी : पिप्पलामूल, पीपरामूल।

लेटिन : Root of the piper longum.

संस्कृत : कणामूल, ग्रन्थिक, चटकाशिर।

वर्गीकरण–पंचकोल, षड्षण, (भा० प्र०)।

द्रव्य परिचय–पिप्पली लता की मूल होती है लता के शुष्क एवं कटे हुए ५-८ मि० मी० स्थूल-कठिन, गांठदार, धूसर, श्वेताभवर्ण, के छोटे–२ टुकड़े बाजार में मिलते हैं।

गुण कर्म–रस-कटु; गुण-लघु, रूक्ष वि. कटु वी. उष्ण। कफवातशामक, पित्तकर, दीपन, पाचन, शूलप्रशमन, भेदन, कृमिघ्न, गर्भाशयसंकोचक, आर्त्तवजनन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : सन्धिवात, शूल, शोथ, में लेप **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, अर्श उदररोग, आनाह, गुल्म, कृमि, शूल, कास, श्वास, क्षय, कष्टार्त्तव प्रसव विकार, विषमज्वर में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग–मूल **मात्रा**–चूर्ण ०.५–२ ग्राम।

विशेष–बाह्य प्रयोगार्थ गोमूत्र में पीसकर लेप, अनिद्रा, एवं कष्टार्त्तव में गुड़ के साथ दैनिक प्रयोग होता है। प्रसवोत्तर, सूतिकाविकारों एवं गर्भाशय-शोधन के लिए प्रयोग होता है।

शुद्ध द्रव्य परीक्षा–दीर्घ मूलों के टुकड़े भूरे वर्ण, खाकस्तरी, कठिन, गांठदार, गुरु, तोड़ने पर श्वेताभ, स्टार्चप्रधान स्वाद में तीक्ष्ण, कटु होते हैं।

मिर्च (कृष्ण)

द्रव्यनाम–हिन्दी : मरिच, कालीमिरच।

लेटिन–Piper nigrum.

संस्कृत : वीर, रेणुज, वृत्तफल, कोल, कृष्ण वेल्लज, कटुक, तीक्ष्ण, धर्मपत्तन।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि, त्रिकटु (भा० प्र०) शूलप्रशमन, कृमिघ्न, दीपनीय, शिरोविरेचन (च०) पिप्पल्यादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–उष्ण एवं आर्द्र प्रान्तों में विशेषतः केरल, आसाम, बिहार में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–सूत्रावरोही, स्थूल **लता** काण्ड बेलनाकार, सपर्व **पत्र** पान सदृश, हृदयाकार, लट्वाकार, क्वचित् आयताकार, अखण्डित, एकान्तर १००-१७५ मि०मी० दीर्घ ५०-१२५ मि०मी० चौड़े; ५-७ उन्नत शिराओं से युक्त, **पुष्प** ग्रीष्म ऋतु में छोटे एक लिंगी, दीर्घ मंजरी में परागण की क्रिया वायु से होती है। **फल**–कृष्ण वर्ण गोल, मि० मी० व्यास युक्त पक्व होने पर रक्त वर्ण, शुष्क होने पर कृष्ण वर्ण झुर्रीदार होता है **पुष्प काल** बसन्त **फल** वर्षा।

रासायनिक संगठन–फल त्वक् में, उड़नशील तैल १–२% वसा ७% piperine, piperidine ५%. क्षार तत्त्व, स्टार्च, ३०% तीक्ष्ण, रालीय सत्व Chavicine. अल्पमात्रा में स्थिर तैल होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण कर्म–रस–कटु; गुण-तीक्ष्ण, लघु वि० कटु वी० उष्ण। कफवातशामक, पित्तवर्धक, रोचन दीपन, अनुलोमन, छेदन, शूलप्रशमन, कृमिघ्न, शिरोविरेचन, ज्वरघ्न, मूत्रल।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : त्वग्रोग, श्वित्र, किलास, शोथ, नेत्र, गल रोग, दन्तकृमि **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, अरोचक, शूल, कृमि, अर्श, कास, श्वास, हृद्रोग, वातव्याधि प्रतिश्याय वातश्लैष्म ज्वर, विषमज्वर रजोरोध मूत्राघात में मुख्यतः दैनिक उपयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल **मात्रा** चूर्ण ०.५-१ ग्राम, मरिच्यादिवटी, तैल, घृत, चूर्ण।

विशेष–त्वग्रोगों एवं शोथ में लेप एवं तैल प्रयोग। नेत्ररोगों में अञ्जन दन्तशूल,-कृमि में मञ्जन प्रयोग किया जाता है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**-फल कृष्णाभ भूरे वर्ण प्रायः गोल ६ मि० मी० व्यास युक्त, बाह्य तल झुर्रीदार, सिराजालयुक्त, फल शीर्ष पर वर्तिकाग्र के अवशेष स्थित, अधः भाग पर छोटा वृन्त, स्वाद में कटु, तीक्ष्ण, सुगन्धि होते है। **संग्रह**-फलों के पक्व रक्ताभ होने पर तोड़ कर शुष्क किया जाता है। **मिलावट एवं परीक्षण** पपीते एवं विडंग के बीज मिलाये जाते हैं, पानी में डालने पर मिर्च फल डूब जाते हैं तथा शेष तैरते हैं। वानस्पतिक रचना से भी पृथक् किये जा सकते हैं।

चव्य

द्रव्यनाम–हिन्दी : चव्य, चाभ, चव।

लेटिन : Piper chaba.

संस्कृत : चविका, कोलवल्ली, कटुका, तीक्ष्णा।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि, पंचकोल (भा० प्र०) दीपनीय, शूलप्रशमन, तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न (च०) पिप्पल्यादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–उष्ण जलवायु प्रधान, बंगाल, आसाम, बिहार, मलाया द्वीप में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–मूल आरोहिणी **लता**, काण्ड किंचित् चतुष्कोणाकार ग्रन्थि युक्त, **पत्र** अनुलम्ब, अण्डाकार, तीक्ष्णाग्र **पुष्प** रक्तवर्ण, गुच्छों में **फल** पिप्पली के समान किन्तु बड़े सगंध ३५-४५ मि० मी० दीर्घ, ६ मि० मी० व्यास युक्त, नीचे अधिक स्थूल, शीर्ष पर कुण्ठिताग्र होते हैं। **पुष्प-फलकाल** शरद्।

रासायनिक संगठन–कालीमिर्च सदृश तत्त्व।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त; गुण-रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। कफवातशामक, पित्तवर्धक, दीपन, वातानुलोमन, शूलहर, कृमिघ्न।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर**-गलरोग, अजीर्ण, शूल, कृमि, अर्श, गुदभ्रंश, कास, श्वास, प्रतिश्याय में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–काण्ड, फल **मात्रा** ०.६-१.५ ग्राम, चव्यादिघृत, पंचकोल, फाण्ट, प्राणदा-वटी, कांकायन वटी।

विशेष–चव्य संदिग्ध द्रव्य होने पर भी Piper chaba नामक द्रव्य का एतदर्थ प्रयोग अधिक होता है। इसके फल को गज पीपल कहते हैं। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा** दीर्घ काण्डों के शुष्कीकृत टुकड़े, धूसर, मट-मैले, लम्ब गोल, पर्व ग्रन्थि युक्त, बहिस्त्वक् स्थूल, विदीर्ण, अन्तर्वस्तु दृढ़, रेशेदार रस्सी की तरह आवेष्टित, स्वाद में कटु, तीक्ष्ण, सुगंधित होते हैं।

ताम्बूल वल्ली

द्रव्य नाम–हिन्दी : पान, नागरवेल।

लेटिन : Piper bettle.

संस्कृत : नागिनी, नागवल्लरी, ताम्बूलवल्ली, ताम्बूली, पर्णलता, मुखभूषण।

उत्पत्ति स्थान–उष्ण एवं आर्द्र प्रांतों में बंगाल, उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, दक्षिण भारत, राज-स्थान (गढ़ मोरा) में लताएँ लगायी जाती हैं।

वानस्पतिक परिचय–मूलारोहिणी, मनोरम **लता**, कांड, दृढ़, काष्ठमय, सग्रंथि, **पत्र** पीपल के

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सदृश हृदयाकृति, तीक्ष्णाग्र **पुष्प** एकलिंगी शूकी spike **फल** मांसल ६ मि० मी० दीर्घ **पुष्पकाल** बसन्त **फल** ग्रीष्म ।

रासायनिक संगठन–पत्तियों में लगभग ४% तीक्ष्ण सगंध उड़नशील तैल इसमें Phenol, terpene तत्त्व स्टार्च, शर्करा, कषाय द्रव्य होते हैं ।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त, कषाय गुण-लघु, तीक्ष्ण, विशद **वि०** कटु **वी०** उष्ण । कफवातशामक, पित्तवर्धक, दीपन, पाचन, शोथघ्न, वेदनास्थापन, पूतिहर, जन्तुघ्न, कफघ्न, हृद्य ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य: कण्ठ रोगों, कण्ठ-रोहिणी में पानस्वरस, उष्णोदक में डालकर गण्डूष, शोथ, ग्रन्थि, स्तनशोथ, ध्वजभङ्ग में कोष्ण पत्र-बन्धन होता है । **आभ्यन्तर** ज्वर, अरुचि, अग्नि-मांद्य, कृमि, प्रतिश्याय, स्वरभेद, कास, श्वास श्वसनिकाशोथ हृद्दौर्बल्य, हृदयावसाद में प्रत्युपयोगी है ।

प्रयोज्यअंग–पत्र, स्वरस, **मात्रा** ५-१० ग्राम ।

विशेष–अनुसंधान कार्य-इसके सुरा निस्सार जल विलेय अंश का प्राणियों में मुख द्वारा प्रयोग किया गया, जिससे यह हृदय की गति को कम करता है, हृदय के संकोच प्रसार काल की वृद्धि कर गति को नियमित करता है । (यह प्रयोग स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र बनारस हिन्दु विश्व-विद्यालय में किया गया है)

कंकोल

द्रव्यनाम–हिन्दी : शीतलचीनी, कवाबचीनी ।

लेटिन : Piper cubeba.

संस्कृत : कंकोल, गंधमरिच, कंकोलक ।

वर्गीकरण–कर्पूर वर्ग (भा० प्र०) ।

उत्पत्ति स्थान–कर्नाटक में खेती की जाती है । जावा, सुमात्रा, मलाया, सिंगापुर में खेती की जाती है एवं यहीं से आयात की जाती है ।

वानस्पतिक परिचय–आरोहिणी लता काण्ड लचीला, गंथियुक्त **पत्र** अण्डाकार, हृदयाकार, स्निग्ध, चर्मवत् तीक्ष्णाग्र **पुष्प** छोटे, गुच्छों में मंजरियों में एकलिंगी **फल** गोल, मरिच सदृश अष्ठिफल आधार पर सवृन्त ४ मि० मी० व्यास युक्त फल में एक बीज होता है ।**पुष्पफलकाल** शरद् ।

रासायनिक संगठन–फल में हरिताभ नील सुगन्धित तैल (Aleum cubeba) १०-१५% राल, ३% जिसमें Cubebine २%, वसा, स्टार्च, तैल । Cubebic acid; केल्शियम आक्जलेट फॉस्फेट्स होते हैं ।

गुणकर्म--रस-कटु,तिक्त गुण-लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण; **वि०** कटु **वी०** उष्ण । कफवातशामक, दीपन, वाता-नुलोमन, दौर्गन्ध्यहर, स्वर्य, मूत्रल, आर्त्तवजनन ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : शोथ पर लेप, मुख गल रोग, स्वर भंग में गण्डूष,फल धारण, **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, उदावर्त्त, अर्श, कास, श्वास श्वसनिका शोथ,रजोरोध,पूयमेह,मूत्रकृच्छ्र, ध्वजभंग, कृच्छ्रार्त्तव में प्रयोग होता है । **प्रयोज्य अंग** फल, तैल **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, तैल ५-२० बूँद ।

विशेष–फल से आसवन विधि से हरित पीत नीलाभ उड़नशील तैल प्राप्ति । **मिलावट**-इसी के शुष्क अपक्व वीर्यहीनफल । **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**–शुष्क फल मिर्चसदृश, गोल,गाढ़े भूरे वर्ण के फल भित्ति झुर्रीदार, आधार पर छोटे वृन्त युक्त, स्वाद में कटु, तिक्त, तीक्ष्णगंधि, खाने के बाद मुख में शैत्य प्रतीति । **परीक्षा**–पानी में डालने पर पक्व पुष्ट फल डूबते हैं; शेष तैरते हैं । फल या चूर्ण पर गंधकाम्ल डालने से बैंगनी वर्ण दिखाई देता है ।

आम्र कुल
ANACARDIACEAE FAM.

भल्लातक

द्रव्यनाम–हिन्दी : भिलावा ।

लेटिन : Semecarpus anacardium.

संस्कृत : भल्लातक, अरुष्कर, वीरवृक्ष,शोफकृत्,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अग्निक, अग्निमुख, भल्ली ।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा०प्र०) दीपनीय, कुष्ठघ्न, मूत्रसंग्रहणीय (च०) ।

उत्पत्ति स्थान–देश के उष्ण प्रांतों में तथा हिमालय के निम्नवर्ती प्रदेश; उत्तर प्रदेश, बंगाल, विहार, आसाम ३५०० फीट ऊँचाई तक एवं तमिलनाडु के वन्य प्रदेशों में वृक्ष पाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष** ६-१२मी० ऊँचा; त्वचा से धूसर सान्द्र स्राव, स्रवित; **पत्र** क्षुद्रशाखाग्र सघन, हरित २५-६० से० मी० दीर्घ १५-३५ से० मी० चौड़े चर्मवत्, अभिलट्वाकार, नीचे की ओर हृदयाकृति, पत्राग्र गोल, स्थूल, **पुष्प** छोटे पीतहरिताभ मंजरी में **फल**-हृदयाकृति, कृष्ण वर्ण, मांसल, २५ मि०मी० दीर्घ चिपटा होता है । **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** शीत ।

रासायनिक संगठन–फल में एक स्फोटोत्पादक तैल ३२%, मज्जा में एक मधुर तैल अल्प मात्रा में होता है ।

गुणकर्म–रस-मधुर, कषाय गुण-तीक्ष्ण, स्निग्ध, लघु **वि०** मधुर **वी०** उष्ण । वातकफशामक, पित्तस्रंसन, नाडीबल्य, दीपन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, अर्शोघ्न, कफोत्सारि, हृद्य, कुष्ठघ्न,बृंहण ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : जीर्णत्वग्रोग, दद्रु, किलास, श्वित्र,चर्मकील, गण्डमाला, अर्श में मक्खन या अन्य तैलों के साथ लेप प्रयोग,**आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, ग्रहणी, गुल्म, कृमि, उदावर्त्त, अर्श, कास, श्वास, शोथ, श्वेतकणापकर्ष, जीर्णज्वर, आमवात, क्लैब्य, गर्भाशय-शोथ-विद्रधि; प्रमेह, दौर्बल्य में विशेष उपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–फल, **मात्रा** कल्क ३-५ ग्राम, तैल १-२ बूंद; स्वरस ६३-२५० मि० ग्रा० अमृत भल्लातक; तैल ।

विशेष–विषाक्त लक्षण-सर्व शरीर में; गुदा, शिश्न पर कण्डू, दाह, तृषा, ज्वर,स्फोट,स्वेदाधिक्य, मूत्राघात । **निवारण** तिल-नारियल तैल-बाह्य आभ्यंतर प्रयोग करना चाहिये । **प्रयोग निषेध**–पैत्तिक प्रकृति, कृश, गर्भिणी, बाल, वृद्ध, वृक्कशोथ में प्रयोग वर्जित है । प्रयोग काल में उष्ण, कटु, अम्ल पदार्थों का सेवन वर्जित है । **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**–फल हृदयाकृति, कृष्ण वर्ण २५ मि०मी० दीर्घ दल्यक्षयुक्त, चिपटाकृति, मांसल, चमकीला, पीड़न करने पर कृष्ण वर्ण मधु सदृश स्राव, जल में डूब जाता है ।

अनुसंधान कार्य– (क) आयुर्वेद स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र(ब०हि०वि०)में इसका तैल पातालयन्त्र विधि से प्राप्त कर अंकुश एवं स्फीत कृमि रोगों में प्रयोग अति लाभकारी सिद्ध हुआ है । (ख) आमवाताभ सन्धिशोथ के रोगियों में अमृत भल्लातक विशेषतः तीव्रावस्था में लाभप्रद सिद्ध हुआ है ।

कर्कटश्रृंगी

द्रव्य नाम–हिन्दी : काकड़ासिंगी ।

लेटिन : Pistacia integerrima.

संस्कृत : कर्कटश्रृंगी, अजश्रृंगी चक्रा, कर्कटाख्या, कुलीर विषाणिका ।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०) कासहर, हिक्का निग्रहण (च०) काकोल्यादि (सु०) ।

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमोत्तर हिमालय के निम्नवर्ती क्षेत्रों में ८ हजार फीट तक पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा आसाम के पर्वतीय भागों में वृक्ष पाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष** श्वेत त्वगावृत, **पत्र** एकान्तर, पत्रक, युग्म या अयुग्म पक्षाकार, स्निग्ध, भालाकार, ४-६ युग्म **पुष्प** एक लिंगी, स्त्री, पुष्प अलग-अलग छोटे-छोटे दलरहित, **फल** अष्ठि, गोल, धूसर, झुर्रीदार होते हैं । **पुष्पकाल** जनवरी, फरवरी **फल** मार्च ।

रासायनिक संगठन–इसमें हल्के पीतहरित वर्ण का उड़नशील तैल १·३ % टैनिन ६०% गोंद ५% राल, रवेदार अम्ल होते हैं ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण कर्म–रस–कषाय, तिक्त गुण-रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, हिक्का-श्वासहर, ग्राही, छर्दिघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : शोथ किलास में लेप, व्रण क्षत पर चूर्ण अवधूलन, **आभ्यन्तर** कास, श्वास, हिक्का, अतिसार, ग्रहणी, प्रवाहिका, ज्वर, छर्दि, पूयमेह, प्रदर में प्रयोग होता है। शिशुओं के दंतोद्-गम जन्य ज्वर-कास, अतिसार, छर्दि में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–कृमि गृह (Galls) श्रृंगाकार कोष; **मात्रा** चूर्ण ०·५-२ ग्राम० श्रृंग्यादि चूर्ण, बालचातुर्भद्र।

विशेष–कफोत्सारि उत्तेजक होने से श्वसन संस्थान के रोगों में प्रमुख प्रयोग होता है। यह वृक्ष की शाखाओं पर Hemipterus कृमि द्वारा निर्मित कृमि गृह (कोष) ५०-७५ मि० मी० दीर्घ २५ मि० मी० चौड़ा श्रृंगाकार, सुषिर, मृदु धूसर रक्त वर्ण, अन्तः पृष्ठ श्वेताभ, इसे तोड़ने पर अन्दर के तल पर धूल के कणपुंज से लगे प्रतीत। स्वाद में कषाय तिक्त विशेषगंध युक्त होता है।

आम्रातक

द्रव्यनाम–हिन्दी : अम्बाड़ा, आमड़ा।

लेटिन : Spondias mangifera.

संस्कृत : आम्रातक, कपीतन, मर्कटाम्र, आम्रात, पीतन।

वर्गीकरण–फलादि (भा० प्र०) हृद्य (च०)।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः वन्य, पर्वतीय प्रदेशों में स्वयं उत्पन्न या उद्यानों में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बड़े **वृक्ष** सुगंधित, स्थूल काण्ड, त्वक् श्वेत स्निग्ध **पत्र** संयुक्त, विषम पिच्छाकार, स्थूल **पत्रक** स्निग्ध चमकीले ९-११ युग्म अमरूद सदृश आयताकार, अण्डाकार **पुष्प**-छोटे मंजरी में हरिताभ श्वेत वर्ण **फल** अंडाकार होते हैं। वृक्ष से एक निर्यास स्रवित होता है। **पुष्प काल** शरद् **फल** बंसत।

गुण कर्म–पक्व फल रस-मधुर, अम्ल, कषाय गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातापित्त-शामक, रुचिकर, दीपन, दाहतृषाशमन, रक्तपित्त-शामक।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर अरोचक, अम्लपित्त दाह, रक्तपित्त, तृषा में फल प्रयोग। प्रवाहिका, पूयमेह, प्रदर में त्वक् प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग–फल, त्वक् **मात्रा** क्वाथ ५०-१०० ग्राम, स्वरस १०-२० ग्राम।

विशेष–पक्व फल मधुर कषाय, अम्ल व मधुर विपाकी व शीतवीर्य से पित्त के तीक्ष्ण, कटु, उष्ण गुणों के विपरीत होने से मुख्यतः पैत्तिक रोगों में उपयोगी है।

तिन्तिडीक

द्रव्य नाम–हिन्दी : समाकदाना, डांसरिया।

लेटिन : Rhus parviflora.

संस्कृत : तिन्तिडीक।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय प्रदेश में २-५ हजार फीट तक नेपाल से कुमाऊँ तक मध्य प्रदेश में पंचमढ़ी के पर्वतीय क्षेत्रों में स्वयं उत्पन्न तथा उद्यानों में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–छोटा **गुल्म**, मृदु शाखाएँ रक्ताभ धूसर रोमावृत, त्वक् स्निग्ध **पत्र** तीन पत्रक अभिलट्वाकार प्रायः खण्डित गोल, दंतुरित, अग्र-स्थ पत्रक दीर्घ; **पुष्प** छोटे-छोटे शाखाग्र मंजरियों में **फल** अष्ठिफल अण्डाकर ५ मि० मी० व्यास युक्त, स्निग्ध, भूरे वर्ण का होता है। **पुष्पकाल** मई जून **फल** अगस्त।

गुण कर्म–रस–अम्ल गुण-लघु, रूक्ष **वि०** अम्ल **वी०** शीत। वातपित्तशामक, दीपन, रुचिकर, तृष्णा, दाह प्रशमन, ग्राही, मूत्र संग्राही, शोणिता-स्थापन।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्यः शोथ में लेप दन्त शूल में फाण्ट, गण्डूष, **आभ्यन्तर**–मुखवैरस्य, छर्दि, तृषा, दाह, अरोचक, अग्निमांद्य, प्रवाहिका, रक्त-पित्त, बहुमूत्र, ज्वर (तज्जन्य छर्दि, तृषारोचकादि उपद्रवों) एवं हृद्दौर्बल्य में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग–फल, **मात्रा** ३–६ ग्राम।

विशेष–शुष्क मसूर के दाना जैसा फल ही, समाकदाना कहलाता है। विदेशी **जाति** R. Coriaria के फल रक्त, चिपटे, मसूर, दाने सदृश्य अम्ल कषाय रस युक्त होते हैं। इसका आयात फारस से होता है। यूनानी में इसके फलावरण का गिर्द सुमाक नाम से प्रयोग होता है।

रूमी मस्तगी

द्रव्य नाम–हिन्दी : रूमी मस्तगी।

लैटिन : Pistacia lentiscus.

उत्पत्ति स्थान–उत्तरी अफ्रीका भूमध्यसागर के समीपवर्ती देशों में छोटे २ गुल्म पाये जाते हैं। इन्हीं देशों से इसका आयात होता है।

वानस्पतिक-परिचय–पिस्ते के समान सर्वदा हरिताभ **गुल्म** होता है। गुल्म के काण्ड शाखाओं पर चीरा देने से प्राप्त शुष्क निर्यास सुगन्धित पीताभ, श्वेत, गोल दानेदार (अश्रुवत्) होता है। खरल में रगड़ते समय चिपक जाता है। वस्त्र की पोटली में बांधकर, जल में भिगोकर, शुष्कीकृत का चूर्ण बनाते हैं।

रासायनिक संगठन–निर्यास में अत्यल्प प्रमाण में उड़नशील तैल, में मैस्टिकोनिक आदि ३ अम्ल तथा मैस्टिकीन १०% होता है।

गुण कर्म–रस-मधुर, कषाय गुण-लघु, **वि०** मधुर **वी०** अनुष्ण। वातश्लेष्मशामक, ग्राही, कफोत्सारि, यकृदुत्तेजक, मूत्रजनन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः शोथ, रक्तस्राव, क्षत-व्रण वेदना में लेप व चूर्णावघूलन **आभ्यन्तर** कास, श्वास, श्वसनिकाप्रदाह, ग्रहणी, रक्तातिसार, यकृत् विकार, रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ्र, कृच्छ्रार्त्तव में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–निर्यास **मात्रा** १–३ ग्राम मस्तंग्यादि चूर्ण, जुवारिस मस्तगी।

विशेष–श्वसन संस्थान व अन्य संस्थानों में मृदु, स्नेहन, शमन क्रिया करने से इसका विविध रोगों में स्नेहनार्थ प्रयोग होता है।

प्रियाल

द्रव्यनाम–हिन्दीः चिरौंजी, चिरौली।

लेटिन : Buchanania latifolia.

संस्कृत : प्रियाल, सन्नकद्रु, धनुषपट, तापसेष्ट, बहुलवल्कल, खरस्कन्ध, स्नेहबीज, राजादन।

वर्गीकरण–फलादि वर्ग (भा० प्र०) उदर्दप्रशमन, श्रमहर (च०) न्यग्रोधादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–उष्ण शुष्क, पार्वत्य भूमि में हिमालय के निम्नवर्ती, उड़ीसा तथा मध्य एवं दक्षिण भारत में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहुशाखी बड़ा **वृक्ष** १३–१५ मी० ऊंचा, त्वग् स्थूल, धूसर, **पत्र** शाखाग्र, सघन, मधूक सदृश, खर, रोमश, श्याम हरित **पुष्प** गोल, छोटे, नीलाभ, श्वेत मंजरी में शाखाग्र, **फल** मांसल, गोल, चिपटाकृति, बैंगनी, धूसर, इसे तोड़ने पर स्निग्ध, मसूर दाल सदृश गिरी, पाण्डु, रक्ताभ-वर्ण इसे चिरौंजी कहते हैं। **पुष्पफल काल** वसन्त।

रासायनिक संगठन–गिरी में स्थिर तैल ५८%, मांस तत्त्व Albuminoids ३०% पिष्टसार २·५% क्षार सूत्र ३·५% होते हैं।

गुण कर्म–रस-मधुर गुण-गुरु, सर, स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, कफवर्धक, वर्ण्य, स्नेहन, कफोत्सारि, उदर्दप्रशमन, श्रमहर, तृषा, दाहप्रशमन, बृंहण, बल्य।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः न्यच्छ, व्यंग, वैवण्य, में लेप पालित्य, त्वग्रोग, शीतपित्त, उदर्द (तैलाभ्यंग) **आभ्यन्तर**-उदर्द, शीतपित्त, पैत्तिक शिर-शूल,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वातव्याधि, दाह, विबन्ध, गुल्म, वातजकास (पेया) हृद्दौर्बल्य, पूयमेह, उष्णवात, मूत्रकृच्छ्र, क्लैब्य, शुक्रदौर्बल्य, दौर्बल्य, कार्श्य में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग–बीजमज्जा, तैल, त्वक् **मात्रा** मज्जा १०–३० ग्राम, तैल १०–२० बूँद, त्वक् क्वाथ ५०–१०० ग्राम।

विशेष–इसकी अन्न-रस-मूत्र-प्राण-शुक्रार्त्तव-स्तन्यवह स्रोतस् में मृदु, स्नेहन क्रिया होती है। मात्राधिक्य प्रयोग से गुरु, विष्टम्भी होने से अजीर्ण, आध्मान, आम, कफदोष की वृद्धि होती है।

श्योनाक कुल
(BIGNONIACEAE FAMILY)

कुल परिचय–वृक्ष या गुल्म **पत्र** अभिमुख, एकान्तर, साधारण या संयुक्त, अनग्रनुपर्णी, **पुष्प क्रम** द्विशाखी ससीमाक्ष, या असीमाक्ष या कक्षीय, अग्रस्थ, सहपत्री; **पुष्प** द्विलिंगी, अनियमित, **बाह्यदलपुंज** नलिकाकार, ५ दंतुरित, **दलपुंज** घण्टाकार, कीपाकार, नलिकाकार ५ संयुक्त दली, कोरछादी विन्यास **पुमंग** दललग्न, पुंकेशर ४ द्विदीर्घी, **जायांग** स्त्रीकेशर एक ऊर्ध्वाण्डाशय, दो अण्डपी, २ कोष्ठीय **फल** कोष्ठीय संपुट, कतिपय जातियों में मांसल अस्फोटी।

रोहीतक

द्रव्य नाम–हिन्दी : रोहिड़ा, रोहेड़ा।

लेटिन : Tecomella undulata.

संस्कृत : रोहीतक, दाड़िमपुष्पक, दाड़िमच्छद, प्लीहघ्न, सदाप्रसून।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–गुजरात, राजस्थान, पंजाब, पश्चिमोत्तर प्रदेश, बंगाल के पर्वतीय, वन्य क्षेत्रों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित **वृक्ष** छोटा ३–५ मी० ऊँचा, काण्डत्वक् रक्ताभ, **पत्र** संयुक्त पत्रक, ४–८ युग्म, आयताकार, कुण्ठिताग्र, तरंगायित, **पुष्प** शाखाग्र, गुच्छों में रक्तपीत, **शिम्बी** वक्र १५०–२०० मि० मी०, दीर्घ १८ मि० मी० स्थूल, नुकीली, **बीज** सपक्ष, स्निग्ध, नुकीले होते हैं। **पुष्पकाल** शीत **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–त्वक् में स्टार्च, रंजक द्रव्य, टैनिन, दो प्रकार के पीत निर्यास, लवण पाये जाते हैं।

गुण कर्म–रस–तिक्त, कटु, कषाय, गुण-स्निग्ध, लघु **विपाक** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामक, अनुलोमन, भेदन, लेखन, विषहर, रक्तशोधक, यकृत्प्लीहोदरघ्न, शोथघ्न।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर**–यकृत्प्लीहावृद्धि, कामला, कृमि, अर्श, विबन्ध, अग्निमांद्य, शोथ (यकृत् प्लीहा जन्य), उपदंश, फिरंग, मेदोरोग, रक्तविकार, बहुमूत्र एवं विष विकारों में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–काण्डत्वक् **मात्रा** क्वाथ ५०–१०० ग्राम, चूर्ण १–४ ग्राम, रोहितकाद्य चूर्ण, रोहीतकारिष्ट, रोहीतक लौह।

विशेष–एक जाति श्वेत पुष्प रोहीतक होती है, इसकी त्वचा यकृत्प्लीहा उत्तेजक, पित्त, मल, रेचन होने से वृद्ध यकृत् प्लीहा की प्रमुख औषध है। निम्न द्रव्यों का भी रोहीतक नाम से प्रयोग (क) बंगीय Aphanamixis polystachya. त्वक् रक्ताभ किन्तु श्वेत रेखांकित (ख) रक्त रोहीतक Rhamnus wightii त्वक् रक्त वर्ण होती है। **अनुसंधान कार्य**–इसके सत्व का चूहों में कृत्रिम विधि से हुए श्वेताणुमयता में प्रयोग उत्साहवर्धक पाया गया है।

श्योनाक

द्रव्य नाम–हिन्दी : अरलू, सोनापाठा, टेंटू।

लेटिन : Oroxylum indicum.

संस्कृत–श्योनाक, अरलुक, पीतांग, पृथुशिम्ब, कटवंग, टुन्टुक, असिफल, पूतिवृक्ष, शोषण, शुकनास।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्गीकरण–गुडूच्यादि, दशमूल (भा०) पुरीष-संग्रहणीय, शोथहर, शीतप्रशमन, अनुवासनोपग (च०)।

उत्पत्ति स्थान–देश के सभी प्रांतों की पर्वतीय निम्न भूमि में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकृति **वृक्ष** ७–११ मी० ऊंचा, काण्ड सरल, त्वक् श्वेताभ, शाखाएं कम तथा ऊर्ध्वमुखी, **पत्र** संयुक्त, अतिदीर्घ, पत्रक अण्डाकृति, स्निग्ध, २–६ युग्म **पुष्प** बड़े, मांसल, पीताभ, जामुनी, वर्ण दुर्गन्धित मंजरी में **शिम्बी** असिसदृश, वक्र, ०.३–०.८ मी० दीर्घ, ५०–७५ मि० मी० चौड़ी **बीज** चपटे, सपक्ष, झिल्लीयुक्त होते हैं। **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–मूल त्वक् में एलाण्टिक एसिड, कटु सत्त्व, ओरोक्साइलिन रवेदार, तिक्त, ग्लुकोसाइड, राल, वसा, मोम एवं कषाय द्रव्य होते हैं।

गुण कर्म–रस–तिक्त, कषाय, कटु गुण–रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफहर, वेदना-स्थापन, स्वेदजनन, स्तम्भन, शोथहर, कफघ्न, मूत्रजनन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–शोथ, व्रण, त्वग्रोगों में पत्र, मूल, त्वक् लेप, क्वाथ से प्रक्षालन **आभ्यन्तर**-अपस्मार, आक्षेप, श्वास, कास, प्रतिश्याय, प्रवाहिका अतिसार, ज्वरातिसार, ग्रहणी, कृमि, शोथ, विषमज्वर, मूत्रकृच्छ्र, वेदनाप्रधान वातविकारों में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूलत्वक्, पत्र **मात्रा** चूर्ण १–३ ग्राम, क्वाथ २०–४० ग्राम, बृहत्पंचमूल, दशमूलक्वाथ, श्योनाक पुटपाक।

विशेष–इसकी एक जाति "अटरुषक" **वृक्ष** सरल, उदग्र, बड़ा, **पत्र** निम्ब सदृश्य, किन्तु बड़े, **शिम्बी** छोटी होती है। तिक्त, कषाय, रस उष्ण-वीर्य होने से मल, द्रव, मूत्र, द्रवकफ, आमदोष शोषक है। शुद्ध **द्रव्य परीक्षा** मूल, त्वक् स्थूल, बाहरी तल भूरे वर्ण का, अन्तःभाग पीत, भंगुर-शील, लम्बाई में झुर्रीदार, काष्ठ भाग से संयुक्त, तोड़ने पर बाहरी भाग अधिकांशतः टूट जाता है। अन्दर का कुछ भाग सूत्राकार, स्वाद में तिक्त, कषाय, गंधरहित होता है।

पाटला

द्रव्य नाम–हिन्दी : पाढ़ल, पाडर, पाडल।

लेटिन : Stereospermum suaveolens.

संस्कृत : पाटला, अम्बुवासा, अमोघा, कुम्भी, मधुदूती, कुवेराक्षी, कर्बुर।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि, दशमूल (भा० प्र०) शोथहर (चरक) अधोभागहर, आरग्वधादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय की तराई में पश्चिम-मोत्तर बंगाल, विहार, केरल में आर्द्र भूमि में स्वयं जात वृक्ष होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहुत ऊँचा ९-१८ मी० मनोरम **वृक्ष**; काण्ड सरल, **पत्र** अभिमुख क्रम में ३०-६० से० मी० दीर्घ संयुक्त विषम पिच्छाकार **पत्रक**–आयताकार, अण्डाकार, चर्मवत् रोमश, ५-९ संख्या में **पुष्प** सुन्दर, सुगन्धित, रक्तवर्ण घण्टाकृति, दीर्घ, **शिम्बी** वेलनाकार, दीर्घ, रोमश, **बीज** १५-३० पिच्छाकार होते हैं **पुष्प काल** ग्रीष्म **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–पुष्प में शर्करा, पिच्छिल द्रव्य (Mucilage) एलब्युमिन, मोम होते हैं।

गुण कर्म–रस-त्वक्-तिक्त, कषाय, पुष्प रस–मधुर, शीत गुण–त्वक् रूक्ष, लघु **वि०** त्वक्-कटु पुष्प-मधुर **वी०** अनुष्ण शीत। त्रिदोषशामक, पुष्प-तृषा, दाह, शमन, हृद्य रक्तपित्तशामक, त्वक्-शोथ-हर, कफघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : अर्धावभेदक में बीज लेप, व्रण, अग्निदग्ध व्रण पर लेप **आभ्यन्तर** तृषा, छर्दि, दाह, अरुचि, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, रक्तविकार, दौर्बल्य, शुक्रदौर्बल्य (पुष्प प्रयोग)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

श्वास-कास, मेह, शोथ में त्वक् प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूलत्वक्, पुष्प, बीज **मात्रा** चूर्ण २-३ ग्राम, स्वरस १०-२० ग्राम। बृहत्पंचमूल क्वाथ, पाटली तैल, दशमूलारिष्ट।

विशेष–इसकी एक जाति "श्वेत पाटला" वृक्ष अधिक ऊँचा, त्वक् पीताभ, धूसर, पुष्प श्वेत ताम्राभ, शिम्बी छोटी। पाटला के पुष्पों में मधु की प्रचुर मात्रा होती है। **मिलावट एवं परीक्षा** इसके सदृश अन्य वृक्षों की छाल मुख्यतः S. chelonoides की छाल मिश्रित की जाती है। असली पाटला की छाल बाहर श्याव धूसर वर्ण एवं अनेक, तनुस्तरीय होती है।

गुडूची कुल
(MENISPERMACEAE FAMILY)

कुल परिचय–काष्ठीय **लता** कभी-कभी गुल्म, वृक्ष **पर्ण** एकान्तर, साधारण, कभी-कभी पाणिवत् या त्रिपर्णक, **पुष्प** एकलिंगी, छोटे-छोटे हरिताभ, त्रिज्या सममित, जायांगाधर, परिदल अनेक चक्रों में। **बाह्यदलपुंज, दलपुंज** प्रायः ६ पृथक्-२। **पुमंग** प्रायः ६ या ३ पृथक् या संयुक्त, परागकोष ४ कोष्ठीय, **जायांग** ३-६ पृथक् स्त्रीकेशर, एकाण्डपी, ऊर्ध्व, एक कोष्ठीय, भित्तिलग्न बीजाण्डान्यास **फल** अष्ठिफल या एकीन (achene)।

अमृता (गिलोय)

द्रव्य नाम–हिन्दी : गिलोय।

लेटिन : Tinospora cordifolia.

संस्कृत : गुडूची, अमृता, छिन्नोद्भवा, चक्रलक्षणिका, मधुपर्णी, सोमवल्ली, वत्सादनी, कुण्डलिनी।

वर्गीकरण-गुडूच्यादि (भा० प्र०) वयःस्थापन, दाहप्रशमन, स्तन्यशो० तृप्तिघ्न, तृष्णानि,० (च०)।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः उष्ण प्रान्तों में भू एवं झाड़ियों पर प्रसरी, एवं निम्बादि वृक्षों पर आरोहित लताएं पायी जाती हैं।

वानस्पतिक परिचय–वर्षानुवर्षी, नीम आदि वृक्षों पर चक्रारोही दीर्घ **लता**, बाह्यस्वक्, विदीर्ण, तनु धूसरश्वेताभ **पत्र** एकान्तर, हृदयाकार, स्निग्ध, **पुष्प** पीत हरिताभ, गुच्छों में छोटे **फल** मटर सदृश अपक्व हरित एवं पक्व रक्तवर्ण होते हैं। **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–इसमें स्टार्च, तीन रवेदार द्रव्य Giloin, Giloinin, Gilosterol तथा बर्बेरिन, होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कषाय; गुण-गुरु, **वि०** मधुर **वी०** उष्ण। त्रिदोषशामक, पित्तसारक, तृष्णादाहशमन, रक्त-स्तन्यशोधन, मूत्रजनन, विषघ्न, रसायन।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर–विषमज्वर, जीर्णज्वर, तृष्णा, छर्दि, अम्लपित्त, पाण्डु, कामला, यकृत्प्लीहाविकार, शोथ, रक्तविकार, कुष्ठ, वातरक्त, विसर्प, आमवात, मेह, पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र, श्वेतप्रदर, स्तन्यविकारों में दैनिक चिकित्सोपयोगी औषधि है।

प्रयोय अंग कल्पनाएं–काण्ड, **मात्रा** सत्व ०.५-१ ग्राम, चूर्ण १-३ ग्राम, क्वाथ ४०-८० ग्राम। गिलोयसत्त्व, गुडूच्यादि चूर्ण, अमृतारिष्ट।

विशेष–इसकी एक जाति T. Malbarica काण्ड, सग्रन्थि, पत्र बड़े त्रि खण्डित होते हैं। यह आमाशयान्त्र, यकृत्प्लीहा; हृदय, रक्त-श्वेतकायाणु, वृक्क उत्तेजक है।

शुद्ध द्रव्य परीक्षा–शुष्क काण्ड के छोटे टुकड़े बेलनाकार, त्वचा भूरे वर्ण की बाह्य स्तर अति तनु, विदीर्ण काष्ठ भाग से पृथक्वत् उत्सेधयुक्त, अनुप्रस्थ कर्तन करने पर चक्रांकित, चक्रांगी, सार्थक पर्याय हैं।

पाठा

द्रव्य नाम–हिन्दी : पाठा, पाढ़, पाढ़ी।

लेटिन : Cissampelos Pareira.

संस्कृत : पाठा, पाठिका, वरतिक्ता, अम्बष्ठा,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पीलुफला, अबिद्धकर्णी, प्राचीना ।

वर्गीकरण– गुडूच्यादि (भा० प्र०) स्तन्य-शोधन, सन्धानीय, (च०) अम्बष्ठादि, मुस्तादि (सु०) ।

उत्पत्ति स्थान–उष्ण समशीतोष्ण, प्रान्तों-(उत्तर प्रदेश, पंजाब, बंगाल गोवा) में जलाशयों के समीप लतायें पायी जाती हैं ।

वानस्पतिक परिचय–आरोही, प्रसरी **लता; शाखाएँ** सरल, तनु, रोमश, **पत्र** वृन्त पृष्ठभाग लग्न, एकान्तर, गिलोय सदृश, वृक्काकार, ऊर्ध्व-पृष्ठ हरित वर्ण, अधर पृष्ठ हल्के हरित वर्ण का होता है । **पुष्प** छोटे एकलिंगी, पीताभ श्वेत मंजरी (स्त्री) गुच्छों (पुं पुष्प) में **फल** मकोय सदृश रक्तवर्ण **बीज** छोटे मुड़े हुए होते हैं ।

पुष्पकाल–वर्षा **फल** शीत ।

रासायनिक संगठन–मूल में Cissampeline क्षाराभ Sepeerine, Beberine, ०·५%, मणि-भीय द्रव्य Deyamettin तथा राल होते हैं ।

गुण कर्म–रस-तिक्त गुण-तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण । त्रिदोषशामक, ग्राही, शोथहर, स्तन्य शोधन, सन्धानीय, मूत्रल, ज्वरघ्न ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य: शोथ, ग्रन्थि, व्रण, नाड़ीव्रण, कुष्ठ, विसर्प, अस्थिभग्न में पत्र मूल लेप सूर्यावर्त में नस्य **आभ्यन्तर** दाह, छर्दि, अतिसार, प्रवाहिका, शूल, अन्तर्विद्रधि, रक्त विकार, अधोग रक्तपित्त, कण्डू, शोथ, प्लीहावृद्धि, कास, श्वास, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, सरक्त मूत्र, बस्ति प्रदाह, स्तन्यदोष, ज्वरातिसार, विषम ज्वर में विशेष उपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल, पत्र **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, क्वाथ, ५०-१०० ग्राम । पाठादिघृत, पाठादि तैल, पाठादि चूर्ण, गंगाधर चूर्ण, कुटजा-ष्टक क्वाथ ।

विशेष–बड़ी जाति राजपाठा, (Cyclea peltata) । **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**–पाठा की शुष्क मूल, लम्ब गोल-अनुलम्ब, झुर्रीदार, बाहर से धूसर, बादामी, अन्दर से काष्ठमय, पीताभ भूरा वर्ण, सुषिर, अपूर्ण चक्राकार रेखाएँ, स्वाद में प्रारम्भ में मधुर बाद में अतिरिक्त, इसमें पातालगरुड़ी मूल का मिश्रण होता है ।

छिलहिण्ट (जलजमनी)

द्रव्य नाम–हिन्दी : जलजमनी, पातालगरुड़ी, ।

लेटिन : Cocculus hirsutus.

संस्कृत : छिलहिण्ट, दीर्घवल्ली, महामूल, वत्सादनी, पातालगरुड़ ।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) ।

उत्पत्ति स्थान– उष्ण समशीतोष्ण प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु, बंगाल, पंजाब में लताएं उत्पन्न होती हैं ।

वानस्पतिक परिचय– प्रतानिनी, दृढ़, स्थूल **लता; मूल** दृढ़ अति दीर्घ, काण्ड श्वेत रोमाच्छादित, **पत्र** एकान्तर, मृदु, श्वेत रोमश, नीचे के लट्वा-कृति, ऊपर के छोटे आयताकार, **पुष्प** सूक्ष्म, हरित पीताभ एकलिंगी, **फल** गुच्छों में छोटे-गोल, चणक सदृश, स्निग्ध होते हैं **पुष्प काल** वर्षा **फल** शीत ।

रासायनिक संगठन–पत्र, मूल में दो क्षार तत्त्व, एक पीताभ हरित मृदु, राल एवं अम्ल पाया जाता है ।

गुण कर्म–रस-तिक्त गुण-पिच्छिल, स्निग्ध, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण । शोथहर, रक्तशोधन, बल्य, विषघ्न, ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : अभिघातजशोथ, शोथ प्रदाही त्वग्रोग, नेत्र विकार, **आभ्यन्तर** उदर शूल, विष्टम्भ, रक्तविकार, आमवात, वातरक्त, उप-दंश, तज्जन्य आमवात–रक्त विकार; पूयमेह, श्वास, कास, दौर्बल्य, प्रदर, सर्प विष, (मूल) में प्रयुक्त होती है ।

प्रयोज्य अंग–पत्र, मूल **मात्रा** पत्र स्वरस १०–

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२० ग्राम, क्वाथ ५०-१०० ग्राम मूल ३-६ ग्राम।

विशेष–जलजमनी सदृश्य द्रव्य (C. Pendulus diels) पत्र कुण्ठिताग्र, स्निग्ध, पुष्प मंजरी में नहीं आते हैं। इसके स्वरस को थोड़े काल तक रखने पर स्वरस सान्द्र पिच्छिल होता है।

मधूक कुल
SAPOTACEAE FAMILY

कुल परिचय–प्रायः वृक्ष कभी गुल्म, पत्र पुष्प फल प्रायः एक कोषीय द्वि भुजी रोएँ से आवृत, त्वक्, मज्जा, पत्र क्षीर युक्त **पर्ण** साधारण, एकान्तर कभी अभिमुख, पूर्ण, अनअनुपर्णी, **पुष्प क्रम** एकल या ससीमाक्षी **पुष्प** प्रायः द्विलिंगी, त्रिज्या सममित, सहपत्री, जायांगाधर **बाह्य दलपुंज** विभिन्न प्रकार का २+२, ३+३, ४+४ या ५ संयुक्त, कोरछादी विन्यास **दलपुंज** बाह्यदल संख्या के समान एवं उनके ही एकान्तर १ या २ चक्रों में स्थित **पुमंग** दललग्न, दलपुंजनलिका पर स्थित, दो या तीन चक्रों में प्रत्येक चक्र में ४-५ पुंकेसर पुंतन्तु छोटे, अनुलम्ब स्फुटी **जायांग** बहु अण्डपी, ऊर्ध्वाण्डाशय, अक्षीय बीजाण्डान्यास **फल** सरसफल (berry)

मधूक

द्रव्य नाम–हिन्दी : महुआ, महुवा।

लेटिन : Bassia latifolia.

संस्कृत : मधूक, मधुस्रव, गुडपुष्प, मधुपुष्प, मधुष्ठील।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः बंगाल, बिहार उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र में वन्य एवं लगाये हुए वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित बहुशाखी बड़ा **वृक्ष** १२-१५ मी० ऊँचा; **पत्र** शाखाग्र गुच्छों में १२५-२०० मि० मी० दीर्घ एवं ७५-१०० मि० मी० चौड़े, चर्मवत्, अण्डाकृति, आयताकार, कुण्ठिताग्र, अधर श्वेताभ **पुष्प** गुच्छों में श्वेत पीताभ, रसदार, मांसल, **फल** पीत मांसल, अण्डाकार, नुकीले बेर सदृश २५-३७ मि० मी दीर्घ **बीज** रक्तवर्ण २-३। **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** वर्षा।

रासायनिक संगठन–पुष्प में किण्वतत्त्व, इक्षु शर्करा २.२%; Invert sugar ५२.६% सेल्युलोज २.४%; बीजों में ५०-५५% स्थिर तैल प्राप्त होता है।

गुण कर्म–रस-मधुर, कषाय गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, तृषा-दाह शमन, कफोत्सारि, स्तम्भन, रक्तपित्तशामक, बल्य, बृहंण, स्तन्यवर्धक।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर** तृषा, दाह, रक्तपित्त, रक्तविकार, ग्रहणी, अतिसार, कास, श्वास, शोथ, क्षय, शुक्रदौर्बल्य, स्तन्याल्पता ज्वर में पुष्प उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–पुष्प, फल, तैल, **मात्रा** पुष्प ५-१५ ग्राम, त्वक् क्वाथ ४०-८० ग्राम, मधूकासव, फाण्ट।

विशेष–महुवे के अपक्व, पक्व, पुष्प, फलों का भोज्य द्रव्यों के प्रतिनिधि के रूप में भी प्रयोग होता है। इसके पुष्प, फल में इक्षु शर्करा, स्नेह अल्ब्यूमिन व खनिज द्रव्य लौह, सुधा होने से शोष, क्षय, दौर्बल्य में भी उपयोगी है। पुष्प में किण्वतत्त्व होने से शर्करा शीघ्र ही मद्य में परिवर्तित होती है। आसवारिष्ट निर्माण एवं देशी मद्य निर्माण में भी प्रचुर प्रयोग होता है। **जाति** (क) Bassia longifolia दक्षिण भारत की आर्द्र भूमि में (ख) Bassia butyraceae हिमालय की तराई में उत्पन्न होती है।

बकुल (मौलसिरी)

द्रव्य नाम–हिन्दी : मौलसिरी, मौरसरी।

लेटिन : Mimusops elengi.

संस्कृत : बकुल, मधुगंध, चिरपुष्प, सिंहकेसरक

वर्गीकरण–पुष्पवर्ग (भा०प्र०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र विशेषतः उत्तरप्रदेश पश्चिमीघाट के वन्य क्षेत्रों में स्वयं उत्पन्न तथा उद्यानों में वृक्ष लगाये जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित सघन बड़ा **वृक्ष** शाखाऐं चतुर्दिक् प्रसरी **पत्र** राजजामुन सदृश ६०-१०० मि० मी० दीर्घ ३५-५० मि० मी० चौड़ै अण्डाकृति, स्निग्ध, तरंगायित, नोंकदार **पुष्प** श्वेत २५ मि० मी० चक्राकार रक्ताभवर्ण, अति सुगन्धित मंजरियों में या एकल **फल** पीत रक्त अण्डाकार नोंकदार **बीज** एक अण्डाकृति **पुष्पकाल** ग्रीष्म-शरद् **फल** शीत ।

रासायनिक संगठन–त्वक् में टैनिन,स्टार्च,रंजक द्रव्य, रबड़, क्षार, पुष्प में उड़नशील तैल **बीज** में स्थिर तैल, मज्जा में शर्करा, सेपोनीन होते हैं।

गुण कर्म–रस–कषाय, कटु गुण-गुरु **वि०** कटु **वी०** अनुष्ण । पित्तकफशामक, रक्तस्तम्भक, ग्राही, रक्तपित्तशामक, गर्भाशयबल्य दन्तदाढ्र्यकर ।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः शीताद, दन्तवेष्ट व अन्य दन्त रोगों में,त्वक् क्वाथ गण्डूष व तनु शाखाओं से दन्तधावन, शिरः शूल में पुष्प रस नस्य **आभ्यन्तर** अतिसार, प्रवाहिका, कृमि में त्वक् प्रयोग, रक्तपित्त हृद्रोग में पुष्प प्रयोग; श्वेतप्रदर,रक्तप्रदर, गर्भाशय, शैथिल्य एवं भ्रंश में त्वक् उपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–त्वक्, पुष्प, फल, **मात्रा** क्वाथ ५०-१०० ग्राम, पुष्प चूर्ण १-३ ग्राम, बकुलाद्य तैल ।

विशेष–स्त्री जाति वृक्ष में पुष्प, फल । पुं जाति वृक्ष में केवल पुष्प । स्त्री जाति के पुष्प पुं जाति की अपेक्षा बड़े एवं रक्ताभ श्वेत होते हैं । **शुद्ध द्रव्य परीक्षा** बाह्यतः त्वक् खाकस्तरी, अन्दर से रक्त, रेखांकित; शुष्क त्वक् आसानी से टूटती है, टूटे हुए तल पर श्वेत बिन्दु दिखाई देते हैं ।

क्षीरिणी (खिरनी)

द्रव्यनाम–हिन्दी : खिरणी, खिरनी ।

लेटिन : Mimusops hexandra.

संस्कृत : क्षीरिणी, राजादन, फलाध्यक्ष, राजकन्या, कपिष्ट, मधुफल, क्षीर शुक्ल, क्षीरिका ।

वर्गीकरण–फलादि वर्ग (भा० प्र०) परुषकादि (सुश्रुत) ।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, बिहार के उद्यानों में वृक्ष लगाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित बड़ा **वृक्ष** अन्तस्त्वक् धूसर दुग्ध युक्त, **पत्र** शाखाग्र, सघन, स्निग्ध, चर्मवत्, अण्डाकार **पुष्प** श्वेत, पीताभ, सुगन्धि, चक्राकार **फल** गुच्छों में पीत, वर्ण नीमफल सदृश सान्द्र दुग्ध युक्त **बीज** एक कठिन, स्निग्ध, कृष्ण वर्ण, अण्डाकार होता है । **पुष्प काल** शीत **फल** वसन्त ।

रासायनिक संगठन–फल में शर्करा ७०% काऊचू, टैनिक, पेक्टिन रंजक द्रव्य, बीज में स्थिर तैल, त्वक् में टैनिन, खनिज द्रव्य, राल, मोम होते हैं ।

गुण कर्म–रस–मधुर कषाय, गुण–स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत । त्रिदोष शामक, वर्ण्य,तृषा दाहशमन, स्तम्भन, रक्तपित्तशामक, बल्य ।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः नेत्रवर्त्म-शुक्ल, न्यच्छ, व्यङ्ग, दन्त–रक्तस्राव, **आभ्यन्तर** मदात्यय, भ्रम, तृषा, छर्दि (फल) अतिसार, प्रवाहिका (त्वक्) रक्तपित्त, रक्त विकार, कास (वातज) पूयमेह, शुक्रमेह, प्रदर (त्वक् पत्र) दौर्बल्य, कार्श्य, ज्वर में फल प्रयोग होता है ।

प्रयोज्य अंग त्वक्, पत्र, फल **मात्रा** फल कल्क १०-२० ग्राम त्वक् क्वाथ ५०-१०० ग्राम ।

विशेष-नेत्र विकारों में बीज घिस कर प्रयोगः न्यच्छ व्यङ्ग में अपक्व फल लेप, दन्त रक्तस्राव में त्वक् चूर्ण का मंजन । बड़ी जाति (M. kauki) दक्षिण भारत में उत्पन्न, वृक्ष, पत्र, फल बड़े होते हैं।

गुग्गुलु कुल
(BURSERACEAE FAMILY)

कुल परिचय–राल युक्त **वृक्ष** या गुल्म **पर्ण** प्रायः

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एकान्तर, त्रिपर्णक, असम पिच्छाकार **पुष्पक्रम** समीमाक्ष, संयुक्त समीमाक्ष **पुष्प** त्रिज्या सममित, छोटे, द्वि लिंगी **बाह्यदल पुंज** बाह्यदल पृथक् २–३–६ भागों में विभक्त, कोर स्पर्शी-छादी विन्यास **दलपुंज** दल ३–६ संयुक्त **पुमंग** पुंकेशर दल संख्या में द्विगुणित, पुंतन्तु पृथक् पृथक् **जायांग** अण्डाशय, ५ कोष्ठीय अक्षीय बीजाण्डान्यास **फल** अष्ठिफल

गुग्गुलु

द्रव्यनाम–हिन्दी : गूगल, गुग्गुलु ।

लेटिन : Balsamodendron mukul.

संस्कृत : गुग्गुलु, महिषाक्ष. उलूखल, देवधूप, जटायु, पुरकौशिक ।

वर्गीकरण-कर्पूरादि (भा० प्र०) एलादि (सु०) । **उत्पत्तिस्थान**-राजस्थान, गुजरात, मध्यभारत, बंगाल कर्नाटक, विशेषतः पर्वत्तीय भूमि में वृक्ष पाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–गुल्माकृति छोटा **वृक्ष** १.३-४ मी० ऊँचा शाखाग्र कंटकित, त्वक्, पीत हरिताभ, तनु विदीर्ण चमकीली **पत्र** एकांतर संयुक्त पत्रक ३-३ लट्वाकार, स्निग्ध, दन्तुरित; **पुष्प** एकलिंगी, गुच्छों में छोटे रक्त वर्ण, पंचदली **फल** अष्ठिफल, रक्त, गोल, मांसल होता है । **पुष्पकाल** बसन्त **फल** ग्रीष्म । **निर्यास काल** शीत ऋतु में **वृक्ष** से निर्यास स्रवित या चीरा लगाने से प्रभूत मात्रा में निर्यास प्राप्त होता है ।

रासायनिक संगठन–निर्यास में एक उड़नशील तैल १.४५% रालयुक्त गोंद तथा एक तिक्त सत्व होता है ।

गुणकर्म–रस-तिक्त, कटु, मधुर, कषाय गुण–तीक्ष्ण, सर, पिच्छिल, सूक्ष्म, स्निग्ध, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण । त्रिदोषशामक, व्रण शोधन-रोपण भग्नसंधानकर, जन्तुघ्न, वेदनास्थापन, नाड़ीबल्य, दीपन (अल्प मात्रा में) सारक, रक्त शोधक, रक्त वर्धक (रक्त-श्वेत कायाणु) मूत्रल, लेखन, रसायन ।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः दुष्टव्रण, गंडमाला, अपची, भग्न, अर्श, वेदनायुक्त शोथ स्थानों में गरम जल में पीसकर लेप **आभ्यन्तर** आमवात, पक्षाघात, संधिवात, ग्रधृसी आदि वातव्याधि, कृमि, यकृद्रोग प्लैहिक विकार, अर्श, मेदोवृद्धि, तज्जन्य हृद्विकार, शोथ, पाण्डु, हृद्रोग, श्वास, कास, पूयमेह, उपदंश, प्रमेह, योनि गर्भाशय व्यापदों में विशेष प्रयोग होता है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–निर्यास **मात्रा** ०.५-३ ग्राम । योगराज, महायोगराज गुग्गुलु, कैशोर गुग्गुलु, गोक्षुरादि गुग्गुलु, चन्द्रप्रभावटी ।

विशेष–गंडमाला, अपची, क्षयज ग्रन्थियों में इसका बाह्याभ्यन्तर प्रयोग अकेले या कांचनार त्वक् कषाय के साथ विशेष लाभप्रद है । जीर्ण आमवात एवं सन्धिवात जन्य सन्धि रोगों में शुण्ठी शिलाजतु के साथ, उपदंश में अनन्त मूल के साथ प्रयोग होता है । जीर्ण पूयमेह एवं बस्ति शोथ में अमृता क्वाथ से, मेदोवृद्धि, जन्य रक्तगत स्नेहांशों की वृद्धि जन्य हृद्रोगों की मुख्यौषधि है । **शुद्ध गुग्गुलु परिचय** उत्तम गुग्गुलु चमकीला, पिच्छिल, स्निग्ध, मृदु, पीताभ, शीघ्र भंगुर; उष्ण जल में घोलने पर श्वेत हरिताभ घोल, अग्नि में डालने पर जलता है । मधुर गन्धि मिट्टी आदि से रहित होता है । वर्ण के अनुसार पांच जातियाँ । वर्तमान में दो मुख्य जातियाँ कण गुग्गुलु, भैंसा गुग्गुलु ।कण गुग्गुलु मारवाड़ में प्राप्त पीत रक्ताभ गोल दानेदार, मृदु होता है । भैंसा गुग्गुलु कच्छ में उत्पन्न एवं पीत हरिताभ होता है ढ़ेलों एवं बेडौल टुकड़ों में प्राप्त होता है ।

बोल

द्रव्यनाम–हिन्दी : हीराबोल, बोल ।

लेटिन : Balsamodendrom myrrha.

संस्कृत : बोल, पिण्ड ।

उत्पत्ति स्थान–उत्तरी-पूर्वी अमेरिका के सोमालीलेण्ड, अरब, फारस, अफ्रीका के अबीसिनिया प्रांत । इसका आयात होता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वानस्पतिक परिचय–गुग्गुलु के समान वृक्ष काण्ड के क्षत करने से प्राप्त निर्यास को बोल कहते हैं। दाने गोल जो मिलकर पिण्ड बनाते हैं। यह रक्ताभ धूसर, श्वेत चिह्नाङ्कित भंगुर, सुगन्धि होता है। टूटा हुआ तल कभी पारदर्शक होता है।

रासायनिक संगठन–निर्यास में १५-४०% राल, ५७–६०% गोंद, उड़नशील तैल २.५–८%, तिक्त सत्व, केल्सियम फॉस्फेट पाये जाते हैं।

गुण कर्म–रस–तिक्त, कटु, कषाय, गुण–रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफघ्न, व्रणशोधन, रोपण, शोथघ्न, पूतिहर, वेदनास्थापन, कफोत्सारि, रक्तस्तम्भन, मूत्रल, गर्भाशयोत्तेजक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : जिह्वा-व्रण-क्षत, मुखदन्त रोगों में गर्म पानी के साथ गण्डूष, व्रण-वेदनायुक्त शोथ में लेप **आभ्यन्तर** आनाह, कृमि, श्वास, सरक्त कफष्ठीवन, पार्श्वशूल, पाण्डु, मूत्र-कृच्छ्र, रक्तरोग। कष्टार्त्तव, रजोरोध में एलुवा और लौहभस्म के साथ शीघ्र लाभकारी है। अत्यार्त्तव, श्वेत एवं रक्तप्रदर में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–निर्यास, **मात्रा** ०.५–१.५ ग्राम बोलबद्ध रस, बोल पर्पटी।

विशेष–जीवाणु नाशक एवं उत्तेजक होने से व्रणों में प्रयोग। श्वेत कायाणुओं की जीवाणु भक्षण क्रिया में वृद्धि करने से आगन्तुज रोग विशेषतः श्वसन संस्थान के रोगों में उपयोगी है। उत्सर्ग के समय त्वचा, मूत्र, फुफ्फुसों की श्लेष्मकला पर उत्तेजक एवं जीवाणु नाशक (Bactercidal) क्रिया करता है।

शल्लकी

द्रव्य नाम–हिन्दी : सलई, सलई गूगल, सालर।

लेटिन : Boswellia serrata.

संस्कृत : शल्लकी, कुन्दरु, सुगन्धवल्लकी, कुन्द, गजभक्षा, सुवहा।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्र०) कषाय स्कन्ध, पुरीष विरजनीय, शिरोविरेचन, (च०) एलादि, रोध्रादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–राजस्थान, मध्यभारत, बिहार, दक्षिण भारत के वन्य प्रदेशों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष** ५–१० मी० ऊंचा, शाखाएं नीचे की ओर झुकी हुई, काण्डत्वक्, तनु, रक्ताभ, हरित सुगन्धित **पत्र** अभिमुख, ८–१६ युग्मपत्रक, शाखाग्र, आयताकार, दन्तुरित, (निम्ब पत्र सदृश) **पुष्प** छोटे श्वेत सुगन्धि, **फल** पीत, त्रिरेखायुक्त, अण्डाकार, स्निग्ध होता है। **पुष्पकाल** बसन्त **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–इसमें गोंद, राल, सुगन्धित तैल पाया जाता है।

गुणकर्म–रस–कषाय, तिक्त, मधुर गुण–लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफहर। वेदना-स्थापन, व्रणशोधन, स्तम्भन, रक्तस्तम्भन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : वेदनायुक्त स्थान, गण्डमाला, अस्थिशोथ में लेप।

आभ्यन्तर–प्रवाहिका, अतिसार, ग्रहणी, रक्तपित्त, रक्तार्श, पूयमेह, प्रदर में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग–निर्यास **मात्रा** १–३ ग्राम।

विशेष–शल्लकी वृक्ष के निर्यास को कुन्दरु कहते हैं। यह आर्द्र पिच्छिल, रक्ताभ पीतवर्ण, सुगन्धि, शीघ्र ज्वलनशील तथा जल में घोलने पर श्वेत घोल हो जाता है।

द्राक्षा कुल
VITACEAE FAMILY

कुल परिचय–वल्ली, आरोही गुल्म, गुल्मस्तम्भ पर उभरी ग्रन्थियां **पर्ण** एकान्तर (नीचे के पत्र कभी कभी अभिमुख) साधारण, संयुक्त, पिच्छाकार, पाणिवत् **पुष्पक्रम** पर्ण के अभिमुख असंख्य, ससी-माक्षी, विविध पुष्प गुच्छक **पुष्प** असंख्य, छोटे छोटे हरिताभ, अदृश, द्विलिंगी या एकलिंगी। **बाह्यदल-पुंज** ४-५ पृथक् **दलपुंज** ४-५ छोटे पृथक्-पृथक्,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

किन्ही जातियों में अण्डाशय के चारों ओर एक कन्दगर्भ (Disk) **पुमंग** ४-५ पुंकेसर, दलों के अभिमुख स्थित संयुक्त या पृथक् **जायांग** उर्ध्वाण्डाशय, द्वि या बहुअण्डपी,दो कोष्ठीय अक्षीय बीजाण्डा न्यास **फल** छोटे सरसफल (Berry) ।

द्राक्षा

द्रव्यनाम–हिन्दी : अंगूर, दाख, मुनक्का ।

लेटिन : Vitis venifera.

संस्कृत : द्राक्षा, मधुरसा, स्वाद्वी, मृद्वीका, गोस्तनी, फलोत्तमा, स्वादुफला।

वर्गीकरण–विरेचनोपग, स्नेहोपग, ज्वरहर, कासहर (च०) परुषकादि (सु०) फलादिवर्ग (भा०प्र०) ।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के समीपवर्ती शीत प्रधान प्रान्त कश्मीर, पंजाब, उत्तरप्रदेश, कुमायूं-देहरादून में लताएँ लगायी जाती हैं ।

वानस्पतिक परिचय–दीर्घ, सूत्रावरोही **लता; पत्र** गोल, खंडित, दंतुरित, रोमश, हरितरक्ताभ, **पुष्प** सुगन्धि गुच्छों में हरित वर्ण **फल** सरसफल (Berry) गुच्छों में, गोल, श्वेत, हरित (पक्व) **बीज** कठिन २-३ गोल, नुकीले होते हैं। **पुष्पकाल** वसंत **फल**-ग्रीष्म-शरद् ।

रासायनिक संगठन–फल में शर्करा १५.६९-१८.६०%; अम्लता ०.२३-०.५३%; आर्द्रता ७२.८-७७.२% ग्लुकोज, कषायद्रव्य, साइट्रिक-मैलिक, टार्टरिक अम्ल; सोडि०, पोटा० क्लो०; अल्ब्युमिन, लौह, मुनक्के में शर्करा, खनिज द्रव्य होते हैं ।

गुण कर्म–रस-मधुर गुण-स्निग्ध, मृदु, गुरु **वि०** मधुर **वीर्य** शीत । वातपित्तशामक, कफवर्धक, तृषादाहशमन, स्नेहन, सर, मूत्रल, रक्तपित्तशामक, हृद्य, कफोत्सारि, ज्वरघ्न, संतर्पण, बल्य ।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर** मूर्च्छा, भ्रम, मदात्यय, मस्तिष्क दौर्बल्य, अरोचक, तृषा, दाह, उदावर्त्त, कामला, रक्तपित्त, वातरक्त, हृद्दौर्बल्य, श्रम, क्षय, उरःक्षत श्वास, कास,मूत्रकृच्छ्र,शुक्रदौर्बल्य, कार्श्य, दौर्बल्य, ज्वर, जीर्णज्वर (तज्जन्यउपद्रव) विषविकारों में दैनिक चिकित्सोपयोगी द्रव्य है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–फल **मात्रा** देश, काल, प्रकृति रोग, आयु, जरणशक्ति के अनुसार मात्रा प्रयोग द्राक्षावलेह, द्राक्षासव,द्राक्षारिष्ट,द्राक्षाद्यघृत ।

विशेष–देश-आकृति, पक्वापक्व भेद से अनेक जातियां । अंगूर के शुष्क फलों को मुनक्का (दीर्घफला, कपिल द्राक्षा-गोस्तनी) कहते हैं । प्राचीनकाल से ही विविध मद्यनिर्माणार्थ प्रयुक्त होता है । नवीन शाखाप्रतानों से टंकणाम्ल प्राप्त होता है ।

अस्थिशृंखला (हड़जोड़)

द्रव्य नाम–हिन्दी : हड़जोड़, हरजोरा ।

लेटिन : Vitis quadrangularis.

संस्कृत : अस्थिशृंखला, ग्रन्थिमान,काण्डवल्ली वज्रवल्ली, अस्थिसंहारी ।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०प्र०)

उत्पत्ति स्थान–दक्षिण भारत के उष्ण प्रान्तों में लताएँ अधिक उत्पन्न होती हैं ।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु, वृक्षावरोही, लटकी हुई **लता; काण्ड** मांसल सान्तर ग्रन्थियुक्त शृंखला सदृश,चतुष्कोणीय, हरित **पत्र** ग्रन्थ्योद्भूत, विरल, एकान्तर, हृदयाकार, दंतुरित, ३–५ भागों में विभक्त पुष्प श्वेत, हरिताभ छोटे छोटे रोमश ४ दली **फल** मटर सदृश, गोल, रक्तवर्ण के, काण्ड छेदन से प्रचुर रस स्राव होता है ।

रासायनिक संगठन–(C. quadrangularis) १०० ग्राम ताजे पौधे में १६७ मि०ग्रा० Carotene, विटामिन C, अल्प मात्रा में सुधा के ऑक्जलेट्स होते हैं ।

गुण कर्म–रस–मधुर गुण-रूक्ष, लघु **वि०**अम्ल **वी०** उष्ण । वातकफशामक, पित्तवर्धक, व्रणशोधक रोपण, नाड़ीबल्य, अस्थितन्तुसन्धानकर ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्य: कर्णस्राव, नासागत रक्तस्राव, विद्रधि, दुष्टव्रण, अस्थिभग्न, अभिघातज शोथ **आभ्यन्तर** अपस्मार, वातव्याधि, आध्मान, कृमि, प्लीहावृद्धि, अर्श, वातरक्त, अस्थिभग्न, तमकश्वास, प्रदर, फिरंग में उपयोगी एवं बाजीकरणार्थ प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–काण्ड, पत्र, **मात्रा** स्वरस १०-२० ग्राम, अस्थिसंहार तैल।

विशेष–काण्ड सान्तर ग्रन्थियों से श्रृंखला सदृश होने से अस्थिश्रृंखला सार्थक नाम है। अस्थिभग्न में बाह्याभ्यन्तर प्रयोग मुख्यतया होता है। **अनुसन्धान कार्य**-अस्थिभग्न की विभिन्नावस्थाओं के रोगियों को सत्व का पेशीगत सूचिकाभरण से अस्थि संधानकर पाया गया है।

काकजंघा ?

द्रव्यनाम–हिन्दी : काकजंघा, मसि।

लेटिन : Leea hirta (aquata)

संस्कृत : काकजंघा, नदीकान्ता, सुलोमशा, पारावतपदी,

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय, आसाम के नागा, खासिया पर्वत, बंगाल आदि प्रान्तों के सजल क्षेत्रों में क्षुप पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–छोटा सर्वदा हरित **क्षुप**, काण्ड खर (काकजंघा सदृश) रेखाकार शाखाएं ग्रन्थि युक्त वक्र, **पत्र** कृष्ण हरित लंब गोल, तीक्ष्णाग्र, दंतुरित अधर पृष्ठ रोमश **पुष्प** छोटे छोटे बैंगनी वर्ण **फल** काले चपटे षट्कोणीय होते हैं।

गुण कर्म–रस–तिक्त, कषाय, गुण–लघु, **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफहर, शोथहर, व्रणघ्न, रक्तशोधन, विषघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : शोथ, व्रण, विसर्प, कुष्ठ, त्वग्रोगों में लेप **आभ्यन्तर**–कृमि, रक्तपित्त, कुष्ठ, विसर्प, कण्डू, पैत्तिक ज्वर, पारदविषमयता में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग–मूल, पंचांग **मात्रा** चूर्ण २–३ ग्राम, क्वाथ ५०–१०० ग्राम, मूलकल्क १–३ ग्राम।

विशेष–संदिग्ध द्रव्य है, प्रस्तुत द्रव्य के अतिरिक्त–Peristrophe bicalyculata; एवं Vitex peduncularis wall. आदि द्रव्यों का प्रयोग होता है।

वरुण कुल
(CAPPARIDECEAE FAMILY)

कुल परिचय–प्रायः क्षुप, गुल्म, वृक्ष **स्तम्भ** शाकीय, काष्ठीय, शाखायुक्त, कभी २ कांटेदार **पर्ण** प्रायः एकान्तर, साधारण या संयुक्त पिच्छाकार, अन-अनुपर्णी छोटे या कांटेदार **पुष्प क्रम** असीमाक्ष, समशिख, पुष्पछत्रक, **पुष्प** त्रिज्या सममित या एक व्यास सममित **बाह्यदल पुंज** बाह्यदल ४ पृथक् दो चक्रों में **दलपुंज** दल ४ पृथक् २ कोर स्पर्शी विन्यास, **पुमंग** पुंकेसर प्रायः अनेक कभी कभी ६, पृथक् २। **जायांग** द्विअण्डपी, युक्ताण्डपी, ऊर्ध्वाण्डाशय एक कोष्ठीय, सीमान्त बीजाण्डान्यास, बीजाण्ड अनेक **फल** संपुट या बदर।

वरुण

द्रव्य नाम–हिन्दी : बरुना, बरना, बर्ना।

लेटिन : Crataeva religiosa.

संस्कृत : वरुण, तिक्तशाक, वरण, सेतु, कुमारक।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्र०) वरुणादि, अश्मरी नाशन (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः मध्य भारत, बंगाल, महाराष्ट्र, हिमालय के निम्नवर्ती प्रदेशों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष** ८-१० मी० ऊँचा त्वक् धूसर अनुलम्ब दरारें युक्त **पत्र** बिल्व सदृश त्रिपत्रक अण्डाकार, लट्वाकार, अधर पृष्ठ फीके वर्ण का, तीक्ष्णाग्र **पुष्प** शाखाग्र मंजरियों में रक्त पित्त, श्वेत नीलाभ ५० मि० मी० व्यास

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

युक्त, सुगंधित **फल** रक्तवर्ण निम्बू सदृश फल मज्जा पीत वर्ण होती है। **पुष्प काल** बसंत **फल** वर्षा।

रासायनिक संगठन–त्वक् में सेपोनीन होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त, मधुर, कषाय गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्त-स्रंनन, अनुलोमन, कृमिघ्न, कोष्ठ वात शमन, मूत्रल, अश्मरीघ्न शोथहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : गंडमाला, अपची, विद्रधि, शोथ में लेप **आभ्यन्तर**-उदर शूल, गुल्म, कृमि, वातरक्त, मूत्रकृच्छ, बस्तिशोथ, अश्मरी, अन्तर्विद्रधि, गण्डमाला में दैनिक चिकित्सोपयोगी द्रव्य है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ–त्वक्, मूल, पत्र **मात्रा** स्वरस १०-२० ग्राम, क्वाथ ५०-१०० ग्राम, वरुणादिक्वाथ, लौह घृत।

विशेष–गंडमाला, अपची, विद्रधि में त्वक् लेप। गंडमाला, अंतर्विद्रधि, गुल्म, बस्ति शोथादि रोगों में इसके क्वाथ का या अन्य रोगोपशम औषधियों के साथ प्रयोग होता है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**-त्वक् स्थूल, बाहर से खाकस्तरी, चौड़ाई में विदीर्ण, दरारेंदार, मध्य स्तर हरिताभ, अन्तर्वस्तु श्वेत, अनुप्रस्थ कर्तन (T. S.) से पीत बिंदु (अश्म कोषाओं के समूह पाये जाते हैं। **अनुसन्धान कार्य**-विभिन्न आयुर्वेदिक अनुसंधान केन्द्रों में परिणाम शूल में वरुण त्वक् क्वाथ का एकाकी तथा सुकुमार कु० घृत के साथ सफल प्रयोग किये गये हैं।

अजगंधा ?

द्रव्य नाम–हिन्दी : हुलहुल, हुरहुर।

लेटिन : Gynandropsis pentaphylla.

संस्कृत : अजगंधा, तिलपर्णी, उग्रगंधा, कर्णस्फोटा, वर्वरी, खरपुष्पा, सुरससंभवा, मण्डूकी, सूर्यावर्ता।

वर्गीकरण–मूलिनी, शिरो विरेचन, शूलप्रशमन (च०)।

उत्पत्ति स्थान–वर्षा ऋतु में सर्वत्र विशेषतः उष्ण प्रदेशों क्षुप में उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु, सघन, रोमश **क्षुप** ०·३-१ मी० **काण्ड** सरल रोमश **पत्र** संयुक्त पत्रक ३-७ पंचकोणयुक्त, मसलने पर उग्रगन्धि **पुष्प** छोटे श्वेत, पीतवर्ण **फल** संपुट दीर्घ **बीज** कृष्ण राजिका सदृश होते हैं। **पुष्प काल** वर्षा **फल** शरद्।

गुणकर्म–रस-कटु गुण-तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्तवर्धक, वेदनास्थापन, कृमिघ्न, शूलप्रशमन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः कर्णशूल में कोष्ण पत्र, स्वरस पूरण (निम्बू स्वरस एवं टंकण मिलाकर) गलगण्ड, श्लीपद, शोथ, सर्प वृश्चिक दंश में पत्र, बीज, लेप **आभ्यन्तर** उदरशूल, कृमि, गुल्म, विषम ज्वर, आमवात, वेदनाप्रधान रोग, शिशुओं के आक्षेपक में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग–पत्र, बीज, पंचांग **मात्रा** पत्र स्वरस १०-२० ग्राम, क्वाथ ३०-८० ग्राम।

विशेष–एक जाति पीत हुलहुल (Cleome Viscasa-तीन पत्रक पुष्प पीत) संदिग्ध द्रव्य है। प्रस्तुत द्रव्य के अतिरिक्त Ocimum canum–तुलसी कुल; सूर्यमुखी-भृंगराज कुल; Malva sylvestris Gynandropis gynandre (तिल्वन) आदि द्रव्यों का प्रयोग होता है। सुरससंभवा, मंडूकी, वर्वरी आदित्यवल्ली, सूर्यावर्ता पर्यायों से संदिग्ध प्रतीत होता है। प्रस्तुत प्रसंग में हुलहुल (सुवर्चला) का ही वर्णन अपेक्षित माना गया है। वास्तविक अजगंधा Carum strictocarpum. अजमोदा की वन्य जाति सम्भावित है।

करीर (कैंर)

द्रव्य नाम–हिन्दी : कैंर, करील, टेंटू।

लेटिन : Capparis aphylla.

संस्कृत : करीर, तीक्ष्णकटंक, क्रकर, निष्पत्रक, गूढ़पत्र, ग्रन्थिल, मरुभूरुह।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–राजस्थान, गुजरात, पूर्वोत्तर प्रदेश की ऊषर, शुष्क भूमि प्रधान वन्य क्षेत्रों में गुल्म स्वयं उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहुशाखी, कण्टकित, छोटा **गुल्म**; शाखाएँ हरित, युग्मकंटक युक्त **पत्र** विहीन या अति सूक्ष्म; **पुष्प** छोटे-छोटे गुच्छों में गुलाबी वर्ण, मधु युक्त **फल** रक्त धूसर, छोटे, मटर सदृश, **बीज** अनेक, छोटे, गोल धूसर वर्ण होते हैं। **पुष्प काल**-वसन्त **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–त्वक् में Cinagin सदृश तिक्त द्रव्य एवं पुष्पकलिकाओं में Capric acid तथा एक Glucoside होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कटु गुण-रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्तसारक, शोथ-हर, वेदनास्थापन, अनुलोमन, गर्भाशयोत्तेजक।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः त्वग् रोग, पोथकी, कृमि-कर्ण-शूल; दंतशूल-कृमि; शोथ, संधिवात **आभ्यन्तर** कृमि, रक्तार्श, उदरशूल, विबंध, आमदोष, यकृत्प्लीहावृद्धि, आमवात, उरुस्तम्भ, शोथ, त्वग्रोग, श्वास, विषविकार, कृच्छ्रार्त्तव, गर्भनिरोधार्थ प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, मूलत्वक्, अंकुर **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम फाण्ट ४०-८० ग्राम।

विशेष–त्वग्रोगों में अंकुर लेप, पोथकी में स्थानीय लेप; दंत विकारों में अंकुर चर्वण, कर्ण-रोगों में शाखारस पूरण; शोथ, आमवातादि में कोष्ण अंकुर लेप। गर्भनिरोधार्थ, मासिक धर्म के बाद अंकुर एवं हरमल समभाग चूर्ण (५ ग्राम) जल के साथ एक सप्ताह प्रयोग परीक्षणीय है।

मुचुकुन्द कुल
(STERCULIACEAE FAMILY)

कुल परिचय–वृक्ष, गुल्म, क्षुप **पर्ण** एकान्तर, साधारण, सांगुल (digitate) अनियमित खण्डित रोमश **पुष्पक्रम** गुच्छक्रम, कक्षीय, एकल, स्तम्भ-पुष्प (Cauliflorous) **पुष्प** द्विलिंगी, पंचतयी, त्रिज्या सममित, एक व्यास सममित, जायांगाधर **बाह्यदलपुंज** ३-५ आधार पर संयुक्त कोरस्पर्शी विन्यास **दलपुंज** दल ५ या० **पुमंग** पुंकेसर ५ या अधिक दो चक्रों में एक नलिका में संयुक्त **जायांग** ऊर्ध्वाण्डाशय, स्त्रीकेसर एक ५ अण्डपी, ४-५ कोष्ठीय, अक्षीय बीजाण्डान्यास **फल** चर्मवत्, मांसल, शुष्क प्रायः स्फोटी।

मुचुकुन्द

द्रव्य नाम–हिन्दी : मुचकुन्द, मेकचन्द।

लेटिन : Pterospermum acerifolium.

संस्कृतः मुचुकुन्द, चित्रक, क्षतवृक्ष, प्रतिविष्णुक।

वर्गीकरण–पुष्पवर्ग (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, गोआ आदि प्रान्तों के वन्य क्षेत्रों में तथा वाटिकाओं में वृक्ष का रोपण किया जाता है।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष** सघन, शाखा, पत्रयुक्त, **पत्र** गोलाकार कुमुद पत्र सदृश्य, २-४ कोणीय खण्डित, चर्मवत्, चमकीले, हरितवर्ण, रवर, रोमश, अधरपृष्ठ, रक्ताभश्वेत, **पुष्प** मधुर गन्धि, मांसल, रक्त पीताभ, कमलपुष्पवत्, १००-१२५ मि० मी० दीर्घ **फल** सेम सदृश सम्पुटफल, पंचकोणीय, पंचकोष्ठीय, **बीज** भूरे वर्ण के पिच्छाकार होते हैं। **पुष्पकाल** वसन्त **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–पुष्पों में उड़नशील तैल होता है।

गुण कर्म–रस-कषाय, तिक्त, कटु गुण-रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। त्रिदोषशामक, शोणितास्थापन, वेदनास्थापन, रक्तपित्तशामक।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः रक्तार्श, दाह, शिरः शूल, अर्धावभेदक व्रण, विसर्प में पुष्प लेप **आभ्यन्तर** त्वग्रोग, विष विकार, शोथ, रक्तपित्त, वातरक्त, विसर्प, रक्तार्श, कास, स्वरभंग, अत्यार्त्तव, गर्भाशय रक्तस्राव एवं गर्भाशय शोथ में उपयोगी है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पुष्प **मात्रा** ०.५-१.५ ग्राम, हिमांशु तैल।

विशेष–पुष्प में स्थित उड़नशील तैल का वेदना-स्थापन होने से वेदनाप्रधान रोगों में बाह्याभ्यन्तर प्रयोग होता है। **संग्रह**-वसन्त ऋतु में विकसित पुष्पों का संचय कर छाया शुष्क कर रखना चाहिए।

पिशाचकार्पास

द्रव्य नाम–हिन्दी : उलटकम्बल।

लेटिन : Abroma augusta.

संस्कृत : पिशाचकार्पास, पीवरी।

उत्पत्ति स्थान–उष्ण क्षेत्र, उत्तर प्रदेश, सिक्किम से लेकर नागा-खासिया पर्वतीय क्षेत्र, (आसाम) बंगाल में गुल्म पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित **गुल्म**, काण्ड त्वक् एवं अन्तस्त्वक् सौत्रिकरचना प्रधान, **पत्र** हृदयाकार, वर्तुलाकृति, खण्डित, सूक्ष्म, दन्तुरित, सघन, रोमश, **पुष्प** सुन्दर, अवनत, बैंगनी वर्ण, गुच्छों में **फल** सम्पुट, रोमश, पंचकोणीय-कोष्ठीय, स्फोटी, कार्पाससूत्रावृत अनेक **बीज** राई के समान होते हैं। **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–मूलत्वक् में प्रचुर मात्रा में पिच्छिल द्रव्य, अमणिभ सत्व, निर्यास, भस्म ११%; मूल में स्थिर तैल, क्षार होते हैं।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, गर्भाशयबल्य, उत्तेजक, गर्भाशय शोथहर एवं वेदनाशमन, आर्त्तवजनन।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर** रजोरोध, कृच्छ्रार्त्तव, नष्टार्त्तव, अनियमित रजः स्राव आदि विकारों में मूल त्वक् का स्वरस, चूर्ण प्रयोग मासिक के १ सप्ताह पूर्व प्रतिदिन अपेक्षित है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल, पत्र **मात्रा** मूल-स्वरस २ ग्राम; चूर्ण १-१.५ ग्राम, उलटकम्बल-एक्स्ट्रेट।

विशेष–इसका प्रयोग आर्त्तवप्रवर्तन (Emmenagogu) तथा गर्भाशय बल्य, (uterine Tonic) के रूप में। श्रोणिगत अंगों में अत्यधिक रक्त संचय से उत्पन्न या नाड़ी विकृति जन्य कष्टार्त्तव में उपयोगी है।

आवर्तनी

द्रव्यनाम–हिन्दी : मरोड़फली।

लेटिन : Helicteres isora.

संस्कृत : आवर्तनी, आवर्तकी, आवर्तफला, मृग शृंगा, रंगलता।

उत्पत्ति स्थान–शुष्क भूमि प्रधान वन्य क्षेत्र, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी द्वीपों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–गुल्माकृति, छोटा, सघन **वृक्ष** २-३ मी० ऊँचा **पत्र** गोल, रवर, रोमश, नुकीले दीर्घ, ७५-१५० मि० मी० एवं ७५-१०० मि० मी० (चौड़े **पुष्प** रक्तवर्ण **फल** गुच्छों में २५-५० मि० मी० दीर्घ धूसर, रस्सी सदृश्य, आवर्तित, बेलनाकार, आगे से नुकीले होते हैं। **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शरद्।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कषाय, कटु गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, स्तम्भन, कृमिघ्न, श्वासकासघ्न, मूत्र संग्रहण, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः कर्णस्राव, शोथ, **आभ्यन्तर** अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, उदरशूल, कृमि, श्वास-कास (कफ लेखन, शमन) बहुमूत्र, प्रमेह, ज्वर में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग–फल, मूल **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम, क्वाथ ४०-८० ग्राम।

विशेष–फल रस्सी के समान आवर्तित, होने से आवर्तनी, आवर्तकी संज्ञा है। कर्णस्राव में फल से सिद्ध तैल पूरण। बच्चों के प्रवाहिका, अतिसार में शुण्ठी के साथ विशेष उपयोगी है।

कर्पूर कुल
(LAURACEAE FAMILY)

कुल परिचय–सर्वदा हरित सुगंधि वृक्ष गुल्म

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पर्ण एकान्तर, साधारण अधिकतर पिच्छाकार सिरा विन्यास युक्त चर्मवत्, अनअनुपर्णी छोटे-छोटे बिन्दु युक्त (Punctate) **पुष्पक्रम** कक्षीय, अग्रस्थसम, संयुक्त अमीमाक्ष, शूकी, छत्रक **पुष्प** द्विलिंगी कभी-कभी एक लिंगी, त्रिज्या सममित छोटे-छोटे हरित पीताभ **बाह्यदलपुंज** बाह्यदल ६ दो चक्रों में **दलपुंज** दल० **पुमंग** ३-४ चक्रयुक्त प्रत्येक चक्र में ३-३ पुंकेसर । **जायांग** ऊर्ध्वाण्डाशय, एक कोष्ठीय, भित्तिलग्न बीजाण्डान्यास **फल** अष्ठिफल, सरसफल (Berry) ।

कर्पूर

द्रव्यनाम–हिन्दी : कपूर ।

लेटिन : Cinnamomum camphora.

संस्कृत : कर्पूर, सिताभ्र, हिमाह्व, घनसार, चन्द्र, हिमनामा, हिमवालुक, चन्द्रसंज्ञ ।

वर्गीकरण–कर्पूरादि वर्ग (भा० प्र०) ।

उत्पत्ति स्थान–इसके देहरादून, कर्नाटक, नीलगिरि पर्वतीय क्षेत्रों में वृक्ष लगाये गये हैं ।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित **वृक्ष** ऊँचे (१०-१५ मी०); काण्डत्वक् धूसर, खर, अन्तस्त्वक् स्निग्ध । **पत्र** एकान्तर, मृदु, स्निग्ध, अण्डाकार, पीताभ हरित, **पुष्प** हरिताभ, पीत गुच्छों में **फल** मटर के समान गुच्छों में **बीज** छोटे कर्पूर गंध युक्त होते हैं । **पुष्पकाल** बसंत **फल** ग्रीष्म ।

रासायनिक संगठन–यह एक प्रकार का घन उड़नशील तैल, जो श्वेत पारदर्शक, रवों, विरूप, कण समूहों में डली, ढ़ेलों में प्राप्त होता है । जल पर तैरता है, किन्तु घुलता नहीं है । मद्यसार ९५% में अधिकांशतः विलेयी, जलाने से शीघ्र जलता है, श्वेत, चमकीली ज्वाला निकलती है, खुला रखने से उड़ता है । तीक्ष्ण गंधि स्वाद में तीक्ष्ण कटु, शैत्यानुभूति होती है ।

गुण कर्म–रस-कटु, मधुर, तिक्त गुण-तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** शीत । त्रिदोषशामक, वेदनास्थापन, आक्षेपशमन, दौर्गन्धहर, जन्तुघ्न, स्वेदजनन दीपन, वातानुलोमन, हृद्य, रक्ताभिसरणोत्तेजन, कफोत्सारि, ज्वरघ्न, वाजीकर, (अल्प मात्रा में) । **आमयिक प्रयोग**–बाह्यः स्थानिक वेदनाशामक होने से ४ भाग तैल मिलाकर, पार्श्वशूल, श्वसनकज्वर, आमवात, संधिवात, त्वग्रोगों में अभ्यङ्ग **आभ्यन्तर** अरोचक, छर्दि, तृषा, आध्मान, कोष्ठ गत वातशूल, विसूचिका, हृदयदौर्बल्य, हृदयावसाद, न्यूनरक्तभार, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, क्लैब्य, आक्षेप, कम्पवात, ज्वर (ताप कम करने के लिए) में दैनिक चिकित्सोपयोगी एवं प्रभावशाली द्रव्य है ।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–सत्व, निर्यास, **मात्रा** १२५-२५० मि० ग्रा०, कर्पूरहिंगुवटिका, कर्पूररस, कर्पूरासव, अमृतधारा, पंचगुण तैल ।

विशेष–जातियाँ-निर्माण भेद से पक्व, अपक्व, देश भेद से (क) भारतीय कपूर (ख) जापानी कपूर (ग) भीमसेनी कपूर, सिनेमोम केम्फोरा वृक्ष के अतिरिक्त कपूर तुलसी, पत्रकपूर-कुकरोंधा जाति के (Blumea balsamifera) के क्षुपों से कर्पूर आसवन विधि से प्राप्त होता । वर्तमान में कृत्रिम विधि से भी कर्पूर बनाया जाता है **विषाक्त लक्षण** मात्राधिक्य प्रयोग से हृल्लास, छर्दि, भ्रम, आक्षेप, शीतस्वेद, अंगघात, मूत्राघात, सन्यास, मृत्यु भी सम्भावित है । **निवारण** आमाशय शोधन, उत्तेजक द्रव्य कस्तूरी, अम्बर, जवाहर मोहरा याकूती, कस्तूरी भैरव का प्रयोग करना चाहिए ।

दारचीनी (दालचीनी)

द्रव्य नाम–हिन्दी : दारचीनी, दालचीनी ।

लेटिन : Cinnamomum Zeylanicum.

संस्कृत : त्वक्, दारचीनी, वर, वरांगक, गुडत्वक्,तनुत्वक् दारुसिता,लाटपर्ण,बहुगन्ध, त्वचिगंध ।

वर्गीकरण–कर्पूरादि, त्रिजात (भा० प्र०) एलादि (सु०) ।

उत्पत्ति स्थान–दक्षिणी भारत केरल, उत्तर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भारत के हिमालय पर्वत के समीपवर्ती प्रदेशों में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित मध्यमाकार वृक्ष; शाखायें चपटी, स्निग्ध, त्वक् तनु रक्ताभ धूसर, सुगन्धि, **पत्र** प्रायः अभिमुख, चर्मवत्, अण्डाकार, लट्वाकृति, पत्राग्र नोंकदार ७५-२०० मि० मी० दीर्घ, ४०-७५ मि० मी० चौड़े, ऊर्ध्व पृष्ठ चमकदार, गहरे वर्ण का **पुष्प** धूसर, श्वेत, सुगन्धित, मंजरियों में **फल** बैंगनी मांसल या शुष्क अण्डाकृति होते हैं। **पुष्पफल काल**-वसन्त।

रासायनिक संगठन–त्वक् में शर्करा, स्टार्च, सिनेमिक अम्ल, पिच्छिल द्रव्य उड़नशील तैल ०.५-२% होता है।

गुण कर्म–रस-मधुर, कटु, तिक्त गुण-तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष वि० कटु वी० उष्ण। वातकफशामक, वेदनास्थापन, दौर्गन्ध्यहर, रोचक दीपन, वातानुलोमन, क्षयहर, हृद्य, मूत्रल, बाजीकर।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः शिरःशूल, दन्तशूल, क्षयज व्रण, ध्वजभङ्ग में तैल प्रयोग **आभ्यन्तर** प्रतिश्याय, पीनस, कास, श्वास, क्षय, छर्दि, तृषा, अग्निमांद्य, अरोचक, कृमि आध्मान, शूल, अर्श, ज्वर (आन्त्रिक) हृत्दौर्बल्य, मूत्राघात, बस्ति विकार, पूयमेह, कृच्छ्रार्त्तव, गर्भाशयशैथिल्य में त्वक् एवं तैल प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–त्वक्, तैल, पत्र **मात्रा** त्वक् चूर्ण ०.५-१ ग्राम, तैल ३-६ बूंद, सितोपलादि चूर्ण।

विशेष–सिंहली दारचीनी से आसवनविधि द्वारा पीत वर्ण तैल प्राप्त होता है। उत्पत्ति स्थान भेद से ३ जातियाँ १, भारतीय २, चीनी, ३ सैंहली, क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ, सिंहली दालचीनी सबसे तनु स्वाद में चीनी से विशेष मधुर; तीक्ष्णता में न्यून होती है। भारतीय जाति तज सबसे स्थूल, स्वाद में अल्प मधुर एवं मुख में रखने या जल में रखने पर पिच्छिल होती है। विशेष परीक्षा लेखक की 'द्रव्य परीक्षा' द्रष्टव्य है। सिनेमिक अम्ल क्षय दण्डाणु रोधक-नाशक होने से क्षय जन्य विकारों में विशेष उपयोगी है।

मेदासक (मैदा लकड़ी)

द्रव्य नाम–हिन्दी : मैदालकड़ी।

लेटिन : Litsea chinensis.

संस्कृत : मेदा, मेदिनी, मणिच्छदा, स्वल्पपर्णी, मेदासक।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के समीपवर्ती प्रान्त, उत्तर प्रदेश, पंजाब, बंगाल तथा मध्य प्रदेश के वन्य क्षेत्रों में स्वयं जात वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित, मध्यमाकार **वृक्ष** ५-१२ मी० ऊंचा, **त्वक्** स्थूल (२० मिलि मी०) मृदु, Corcky, ऊपर से धूसर, अन्दर से रक्ताभ, **पत्र** अभिप्रासवत् दीर्घ ७५-१५० मि० मी० चर्मवत् **पुष्प** छोटे सुगन्धि, गुच्छों में श्वेत पीताभ **फल** मिर्च सदृश गोल होते हैं। **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** वर्षा।

रासायनिक संगठन–त्वक् में पिच्छिल द्रव्य प्रभूत मात्रा में तथा Laurotitanine क्षाराभ, फल में स्थिर तैल होता है।

गुण कर्म–रस-कषाय, तिक्त, कटु, गुण-स्निग्ध, पिच्छिल, वि० कटु वी० उष्ण। वातश्लेष्महर, वेदना स्थापन, शोथ विम्लापन, नाड़ीबल्य, भग्न-सन्धानक, बाजीकर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : अस्थिभग्न, अभिघातज शोथ, वेदना, संधिजाड्य, संधिवात, सद्यव्रण **आभ्यन्तर**-वातव्याधि, कटिशूल, गृध्रसी, आमवात, आक्षेपक, आन्तरिकरक्तस्राव, शोथ, जीर्णकास, अस्थिभग्न, अभिघातज शोथ, क्लैब्य में छाल का प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग–त्वक्, तैल **मात्रा** चूर्ण १–३ ग्राम।

विशेष–बीजों से एक श्वेत वर्ण तैल प्राप्ति।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अस्थिभग्न शोथादि में त्वक् का वाह्याभ्यन्तर प्रयोग शीघ्र लाभप्रद। मांसपेशीसूत्र-नाड़ी-अस्थि-आवरक कला; रक्तकेशिकाओं का प्रवल संकोचक है। इसका प्राचीन निघंटु ग्रन्थों में उल्लेख नहीं है। **जाति** Litsea polyantha juss होती है।

पत्रक (तेजपात)

द्रव्य नाम–हिन्दी : तेजपात, तेजपत्र।

लेटिन : Cinnamomum tamal.

संस्कृत : पत्रज पत्रक, दलाह्वय, छदन, तमालपत्र, हृष्टगंध, गंधजात।

वर्गीकरण–कर्पूरादि, त्रिजात, चतुर्जात (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय में ३-८ हजार फीट तक तथा पूर्वी भाग में सिलहट, नागाखासा की पहाड़ियों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित, सुगन्धि, मध्यमाकार **वृक्ष** शाखाएँ चतुष्कोणीय, भंगुर; **पत्र** प्रायः अभिमुख या एकान्तरित, स्निग्ध, आयताकृति, लट्वाकृति, पत्राग्र नोंकदार १००-१५० मि० मी० दीर्घ ४०-६० मि० मी० चौड़े, आधार से पत्राग्र तक ३ उन्नत सिराएँ। ग्रीष्म में गुलाबी वर्ण **पुष्प** मंजरियों में मृदु, श्वेतपीताभ, **फल** मांसल, अण्डाकृति, कृष्ण वर्ण होते हैं। **पुष्प काल** फरवरी, मार्च **फल** जून से अक्टूबर।

रासायनिक संगठन–पत्रों में एक उड़नशील तैल तथा पत्तों से एक प्रकार का रंग भी निकाला जाता है।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त मधुर, गुण-तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, दीपन, रोचक, वातानुलोमन, हृद्य, मूत्रल।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : शोथ, त्वग्रोग, कण्डू, आमवात, सन्धिवात में लेप, **आभ्यन्तर** प्रतिश्याय, श्वास, कास, हृल्लास, छर्दि, अग्निमांद्य, अरोचक, आध्मान, हृद्दौर्बल्य, मूत्रकृच्छ, गर्भस्राव में पत्रों का प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–पत्र, त्वक् **मात्रा** चूर्ण १-२ ग्राम, सितोपलादि चूर्ण।

विशेष–इसके शुष्क पत्र बाजार में तेजपात के नाम से मिलते हैं। पत्र उड़नशील तैल युक्त होने से लालाग्रन्थियां, आमाशयान्त्र, वृक्क, हृदय, रक्तवाहिनियाँ, गर्भाशय से सम्बन्धित रोगों में प्रयुक्त होता है।

देवदार कुल
CONIFERAE FAM.

कुल परिचय–सपुष्प, द्विबीजीपर्ण, संयुक्तकोश, पत्र-सरल, पतले, संकुचित नोंकदार होते हैं।

देवदार

द्रव्य नाम–हिन्दी : देवदार।

लेटिन : Cedrus deodara.

संस्कृत : देवदारु, दारुभद्र, दारु, मस्तदारु, सुरभूरुह, किलिम।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा० प्र०) कटुकस्कन्ध, स्तन्यशोधन (च०) वातसंशमन (सु०)

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमोत्तर हिमालय में कुमाऊं से पूर्व की ओर ७-९ हजार फीट तक वृक्ष समूहों एवं पंक्ति बद्ध पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–चिरायु बहुत ऊंचा **वृक्ष** ५०–७० मी०; काण्ड सरल अतिस्थूल शाखाएं अवनत, ऊपर की शाखाएँ क्रमशः छोटी **पत्र** सूच्याकार, त्रिकोणाकार, गोल, दीर्घ, तीक्ष्णाग्र, शाखाग्र गुच्छों में **पुष्प** हरित पीत गुच्छों में होते हैं। **फल** गोल कृष्ण वर्ण गुच्छों में होते हैं। **पुष्पकाल** सितम्बर, अक्टूबर **फल** अप्रेल, दूसरे वर्ष में पक्व।

रासायनिक संगठन-काष्ठसार में गहरे वर्ण का तैल केलोन एवं ओलियोरेजिन (Oleo resin) होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कटु कषाय, गुण-स्निग्ध,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफघ्न, वेदनास्थापन, शोथहर, व्रणशोधन, वातानुलोमन, कफोत्सारि, रक्तशोधन, स्वेदजनन, मूत्रल, गर्भाशय शोधन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : संधिवात, शोथ शिरः शूल, जीर्ण व्रण, त्वग्रोग, कुष्ठ, श्लीपद में लेप या तैल प्रयोग **आभ्यन्तर** विबंध, आध्मान, शोथ, जीर्णकास, प्रतिश्याय, हिक्का, शोथ, वातरक्त, रक्तविकार, हृद्द्रव, उपदंश, पूयमेह, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, गर्भाशय शोथ में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–काण्डसार, तैल **मात्रा** चूर्ण १–३ ग्राम; तैल १०–४० बूंद देवदार्वादि चूर्ण–क्वाथ, रास्नादि क्वाथ।

विशेष–जीवाणुरोधक नाशक, उत्तेजक होने से दुष्टव्रण, दुर्गन्धितव्रण त्वग्रोगों में काण्डसार व तैल लेप। शोथघ्न वेदनाशामक होने से वेदनायुक्त शोथ विकारों में उपयोगी है। कर्णशूल में तैल पूरण। शोफोपद्रुतज्वरों में विशेष लाभप्रद है। श्वासमार्ग शोधक, जीवाणुनाशक होने से श्वसन संस्थान के विकारों में उपयोगी है। गर्भाशय शोथ-विद्रधि में इसके क्वाथ का उत्तर बस्ति द्वारा प्रयोग किया जाता है।

तालीस पत्र

द्रव्य नाम–हिन्दी : तालीस पत्र।

लेटिन : Taxus baccata.

संस्कृत : तालीस, पत्राढ्य, धात्रीपत्र, शुकोदर, वनच्छद, ग्रन्थिकापत्र।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा०प्र०) शिरोविरेचन (सुश्रुत)।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय में ६–१० हजार फीट पर कश्मीर, पश्चिमोत्तर प्रदेश, गढ़वाल, खासिया की पहाड़ियों पर वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय—सर्वदा हरितमध्यमाकृति क्वचित् ऊंचे **वृक्ष; पत्र** दो पंक्तियों में उपपत्रावृन्त (Sub–Sessile) रेखाकार, चिपटे, नुकीले २५–३७ मि० मी० दीर्घ २·५ मि० मी० चौड़े, ऊर्ध्वपृष्ठ गहरे हरितवर्ण का, अधर पृष्ठ हल्का पीताभ धूसरवर्ण **पुष्प** एकलिंगी **फल** सरसफल अण्डाकार **बीज** हरे रंग का रक्त कोश से आवृत होता है।

रासायनिक संगठन–पत्रों में एक उड़नशील तैल, रवेदार, क्षार टैक्सिन पाया जाता है।

गुण कर्म–रस, तिक्त, मधुर गुण–तीक्ष्ण, लघु **वि०** मधुर **वी०** उष्ण। वातकफशामक, दीपन, रोचन, वातानुलोमन, श्वासकासघ्न, क्षयहर, ग्राही, ज्वरघ्न, वेदनास्थापन, आर्त्तवजनन।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर–अग्निमांद्य, गुल्म, आध्मान, अतिसार, ग्रहणी, श्वास, हिक्का, कास, स्वरभंग, जीर्णश्वसनिकाशोथ, राजयक्ष्मा, मूत्रकृच्छ्र, बस्तिशोथ, कृच्छ्रार्त्तव, वातश्लेष्मिक ज्वर में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र **मात्रा** चूर्ण १–२ ग्राम, तालीसाद्य चूर्ण, तालीसादि वटी।

विशेष–इसके पत्रों के मात्राधिक्य प्रयोग से भ्रम, मद, छर्दि, आक्षेप, मन्दश्वासगति आदि विकार प्रयोग काल में हो जाते हैं। प्रस्तुत द्रव्य के अतिरिक्त Abies Webbiana (बंगाल में तालीस पत्र के नाम से व्यवहृत) Rhododendron anthopogon, R. Campanulatum. R. Lepidotum आदि वृक्षों के पत्रों का प्रयोग किया जाता है।

सरल (चीड़)

द्रव्यनाम–हिन्दी : चीड़, चीढ़।

लेटिन : Pinus logifolia.

संस्कृत : सरल, सुरभिदारुक, पीतवृक्ष, धूपवृक्ष नमेरु, भद्रदारु, श्रीवेष्ट, सुराह्व।

वर्गीकरण–कर्पूरादि वर्ग (भा० प्र०) पुरीष विरजनीय (च०) एलादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय में ३–६ हजार फीट तक ऊंचाई के प्रदेश, उत्तर प्रदेश, कश्मीर, आसाम के

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जंगलों में स्वयं जात समूहों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहुत ऊंचे (३०-४५ मी०) सरल, सुन्दर **वृक्ष**, स्तम्भ गोल १. ५-४ मी० व्यास युक्त **पत्र** शाखाग्र गुच्छों में सूच्याकार किंचित् त्रिकोणीय, दीर्घ अवनत; **पुष्प** १३ मि० मी० लम्बे गुच्छों में **फल** गोल काष्ठमय होते हैं।

पुष्पकाल–वसन्त **फल** दूसरे वर्ष।

रासायनिक संगठन–काण्ड क्षत से प्राप्त निर्यास को गंधबिरोजा कहते हैं। इसमें २०% तेल; में Pinene: limonene, Carene आदि द्रव्य होते हैं। निर्यास से आसवनविधि द्वारा ८०% गंध बिरोजा एवं २०% तारपीन तैल प्राप्त होता है।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त गुण-स्निग्ध, तीक्ष्ण, लघु, **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, व्रण-शोधन-रोपण, शोथहर, जन्तु-पूयहर, वातानुलोमन, कृमिघ्न, कफोत्सारि, त्वग्दोषहर, रक्तशोधन, मूत्रल, स्वेदजनन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः विद्रधि, शोथ व्रण में लेप; संधिशोथ, पार्श्वशूल, आध्मान में तैलाभ्यङ्ग **आभ्यन्तर** आध्मान, विबंध, शूल, कृमि, पित्ताश्मरी, आंत्र-रक्तस्राव, जीर्णकास, श्वसनिकाशोथ, सरक्त-कफष्ठीवन, पीनस, शोथ, रक्तविकार, कण्डू, प्रमेह पूयमेह, स्तन्यविकार, एवं गर्भाशय शोथ में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–निर्यास, तैल, काष्ठ **मात्रा** निर्यास ०.५-१·५ ग्राम तैल ३-१० बूंद।

विशेष–गंध बिरोजा पहिले श्वेत तनुस्रावयुक्त बाद में सान्द्र, पीत उग्रगंधि, पिच्छिल, मृदु, अनियमित बेड़ौल टुकड़ों में मिलता है। आध्मान में कोष्ण जल के साथ तैलस्वेद, कृमि में बस्ति प्रयोग होता है। जीर्ण बस्ति शोथ, पूयमेह में विशेष लाभप्रद है। कफनिःसारक, पूतिश्लेष्महर, शोथहर होने से जीर्ण कास, श्वसनिका-शोथादि, फुफ्फुसीय विकारों में लाभप्रद। **विषाक्त प्रभाव** छर्दि, हृल्लास, अतिसार, मूत्रदाह, तन्द्रा, मूर्च्छादि विकार होते हैं।

हपुषा

द्रव्य नाम–हिन्दी : हाऊबेर, हाऊवैर।

लेटिन : Juniperus communis.

संस्कृत : हपुषा, हवुषा, विस्रा, अश्वत्थफला, मत्स्यगंधा, प्लीहहन्त्री, विषघ्नी, ध्वांक्षनाशिनी।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के पश्चिमोत्तर भाग में कुमाऊं से पश्चिम की ओर तथा भूटान में स्वयं जात गुल्म पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित सघन छोटा **गुल्म**; **पत्र** रेखाकार, अभिप्रासवत्, आयताकार, नुकीले एक साथ तीन चक्रीय पत्र, ऊर्ध्वपृष्ठनतोदर अधरपृष्ठ उन्नतोदर, गहरे वर्ण का, शाखायें प्रसरी, अवनत **पुष्प** गुच्छों में **फल** गोल, मांसल, छोटे बेर सदृश्य, कृष्ण नीलाभ वर्ण, **बीज** १-३ होते हैं **पुष्पकाल** ग्रीष्मान्त **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–फल में उड़नशील तैल १-२% द्राक्षा शर्करा ५०% एवं अमणिभ तत्त्व जुनिपरीन वसा, मोम होते हैं।

गुणकर्म–रस-कटु, तिक्त, गुण गुरु रूक्ष, तीक्ष्ण **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, शोथहर, दीपन, वातानुलोमन, श्वासकासघ्न, हृद्य, मूत्रल।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः त्वग्रोग, शोथ, व्रण, **आभ्यन्तर** गुल्म, उदरशूल, कृमि, श्वास, कास, जलोदर, प्लीहावृद्धि, हृद्दौर्बल्य, कष्टार्त्तव, पूयमेह, श्वेतप्रदर, मूत्रकृच्छ्र, विष विकारों में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ–फल **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम, प्रवाहीघनसत्व ३०-६० बूंद, हपुषादि चूर्ण।

विशेष–फलाकृति गंध भेद से हपुषा तथा अश्वत्थफला २ जाति। एक जाति (J. macropoda) गुल्म, फल बड़े, बीज २-५ पत्र सूच्याकार, खर होते हैं। हपुषा मुख्यतः वृक्क, प्लीहा, हृदयोत्तेजक। हृदय यकृत् विकार जन्य जलोदर में उपयोगी है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पारिजात कुल
(OLEACEAE FAMILY)

कुलपरिचय–वृक्ष या गुल्म कभी-कभी काष्ठारोही, प्रसरी, **पर्ण** अभिमुख, क्वचित् एकान्तर या चक्रीय, साधारण, पिच्छाकार, संयुक्त अनुपर्णी, दन्तुरित, **पुष्पक्रम**–कक्षीय या अग्रस्थ, असीमाक्ष, **पुष्प** त्रिज्या सममित, द्वि लिंगी, कभी-कभी एक लिंगी, जायांगाधर **बाह्यदलपुंज** छोटे ४ बाह्यदल कोर स्पर्शीविन्यास; कभी-कभी अनुपस्थित । **दलपुंज** ४ या अधिक पृथक् या युक्तदली **पुमंग** पुंकेसर २ क्वचित् ३-५ दललग्न, पुंतन्तु पृथक् । **जायांग** ऊर्ध्वण्डाशय, दो अण्डपी, दो कोष्ठीय, अक्षीय बीजाण्डान्यास **फल** सरसफल, अष्ठिफल, सम्पुट फल, सपक्ष फल, (Samara) ।

पारिजात

द्रव्य नाम–हिन्दी : हारसिंगार, परजाता ।

लेटिन : Nyctanthes arbortristis.

संस्कृत : पारिजात, शेफालिका, रागपुष्पी, मन्दार ।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र उद्यानों में धुप लगाया जाता है ।

वानस्पतिक परिचय–छोटा **वृक्ष** २-५ मी० ऊँचा, **पत्र** अभिमुख, खर सघन रोमश, अण्डाकार, पत्राग्र संकुचित, निम्नपृष्ठ श्वेताभ, **पुष्प** वृन्त रक्ताभ, पुष्प सुगन्धित, श्वेत, रात्रि को विकसित और सूर्योदय काल में पतनशील । **बीजकोष** द्विकोष्ठीय, चपटा, **बीज** २ होते हैं । **पुष्पकाल** शरद् ।

रासायनिक संगठन–पत्र में Nyctanthine क्षार, शर्करा, रंजक द्रव्य, राल, कषाय द्रव्य अल्प मात्रा में, तैलीय द्रव्य, पुष्प में सुगन्धित तैल होता है ।

गुण कर्म–रस-तिक्त, गुण-रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण । वातकफशामक, पित्तसारक वेदनास्थापन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, रक्तशोधक, विषघ्न ।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः नेत्राभिष्यन्द, खालित्य (बीज लेप) **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, विबन्ध, कृमि, पित्तविकार, यकृद्विकार, कास, श्वास, रक्तविकार, त्वग्रोग, जीर्णज्वर, ज्वर, जांगमविष (सर्प) उदकमेह, मूत्रकृच्छ्र में उपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग–पत्र, त्वक्, **मात्रा** चूर्ण ०.२-०.५ ग्राम, स्वरस १०-२० ग्राम ।

विशेष- नेत्राभिष्यन्द-शूल में तैल, कांजी, सैन्धव से सिद्ध तैल का नेत्रबिन्दु । गृध्रसी में पत्रक्वाथ विशेष उपयोगी, ज्वर में पत्र स्वरस एवं शिशुओं के कृमि रोग में विशेष प्रभावशाली द्रव्य है । **अनुसंधान कार्य**-पत्रों में रक्तचाप ह्रासकर प्रभावशाली गुण पाया जाता है ।

जाती (चमेली)

द्रव्य नाम–हिन्दी : चमेली, चम्बेली ।

लेटिन : Jasminum grandiflorum.

संस्कृत : जाती, जाति, सुमना, मालती, चेतिका, राजपुत्रिका, सौमनस्यायनी, हृद्यगंधा ।

वर्गीकरण–कुष्ठघ्न (च०) पुष्पवर्ग (भाव प्रकाश) ।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र उद्यानों में पाई जाती है ।

वानस्पतिक परिचय–अति विस्तृत प्रतानिनी **लता**; शाखाएँ दीर्घ, कठिन, कोणयुक्त, **पत्र** संयुक्त **पत्रक** ३ युगल (अग्रभाग पर एक पत्र) लम्ब गोल, नुकीले, गहरे हरित वर्ण **पुष्प** शाखाग्र, पत्रकोणोद्भूत, सघन, सुगंधित, श्वेत, ५ दली होते हैं **पुष्पकाल**-बसंत-वर्षा ।

रासायनिक संगठन–पत्रों में राल Salicylic acid, Jasminine क्षार तत्त्व एवं कषाय द्रव्य होते हैं ।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कषाय गुण-स्निग्ध, लघु, मृदु **वि०** कटु **वी०** शीत । त्रिदोषहर, वर्ण्य, व्रणशोधन-रोपण, वेदनाशमन, वातानुलोमन, रक्तशोधन, त्वग्दोषहर, गर्भाशयोत्तेजक, विषघ्न ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्य: मुखपाक में पत्रचर्वण, क्वाथगंडूष, कर्णशूल-स्राव में पत्रसिद्ध तैल पूरण, न्यच्छ, व्यङ्ग में कल्कोद्वर्तन; व्रण, दुष्टव्रण (तैल) भ्रम (तेलाभ्यङ्ग) **आभ्यन्तर** उदावर्त्त, गुल्म, शूल, रक्तविकार, विसर्प, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, त्वग्रोग, क्लैब्य, विषविकारों में उपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–पत्र, पुष्प **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, क्वाथ ५०-१०० ग्राम पुष्प क्वाथ २०-३० ग्राम, जात्यादि तैल, जात्यादि घृत।

विशेष–जाति-पीतपुष्पा (स्वर्ण जाति) होती है। जाती का शिर, नेत्र, कर्ण, नासा, मुख, दन्त विकारों में दैनिक चिकित्सा में प्रयोग। व्रण दुष्ट व्रणों के शोधन, रोपणार्थ अद्वितीय है। गर्भ निरोधार्थ मासिक के बाद ३ दिन तक प्रतिदिन ५-५ पुष्पकलिका सगुड़ प्रयोग परीक्षणीय हैं।

जैतून

द्रव्य नाम–हिन्दी : जैतून।

लेटिन : Olea Europaea.

उत्पत्ति स्थान–भूमध्यसागर के तटीय प्रान्तों का आदिवासी वृक्ष; संप्रति हिमाचल प्रान्तों, नीलगिरी पर्वत में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित छोटा **वृक्ष; पत्र** अमरूद पत्र सदृश, किंचित्गोल **पुष्प** छोटे गुच्छों में **फल** अष्ठि, अण्डाकार २०-३० मि० मी० दीर्घ; नीलाभ रक्त (पक्व) फलों से विशेष विधि (शीत प्रपीड़न Cold expression) से तैल प्राप्ति; यह स्वच्छ पीत, हरिताभ, तिक्त, हल्की, गंध युक्त होता है।

रासायनिक संगठन–तैल में Olein जो Oelic acid का ग्लिसराइड होता है ९३%; linolein जो linolic acid का ग्लिसराइड ६%; palmitin स्थिर तैल होता है।

गुण कर्म–रस–तिक्त, गुण–स्निग्ध, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्तनिःसारक, स्नेहन, वेदनास्थापन, त्वग्दोषहर, श्लेष्मकलाप्रदाहशमन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य: दग्धव्रण, वातव्याधि, आमवात-गृध्रसी, पक्षाघात में अभ्यंग (तैल) त्वचा के रौक्ष्य विकार (पामा Psoriasis), कार्श्य **आभ्यन्तर** आमाशयान्त्रशोथ-प्रदाह, मलाशयव्रण, अर्श, भगन्दर, पित्ताश्मरी, पित्ताशयप्रदाह, दौर्बल्य में विशेष प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–तैल, पत्र **मात्रा** आवश्यकतानुसार जैतून का तैल (Olive Oil)।

विशेष–पित्ताशय विकृतियों में तैल विशेष प्रभावशाली है। अप्रत्यक्षतया पित्तरेचक, एवं अश्मरी का प्रमुख कारण द्रव्य Cholesterine का शरीर में विलीनीकरण करने से पित्ताश्मरी में मुख्यतः प्रयोग; एतदर्थ २-५ औंस मात्रा में दैनिक तैल प्रयोग अपेक्षित है।

यूथिका (जूही)

द्रव्य नाम–हिन्दी : जूही, जूई।

लेटिन : Jasminum auriculatum.

संस्कृत : यूथिका, गणिका, हेमपुष्पिका, अम्बष्ठा।

वर्गीकरण–पुष्प वर्ग (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः बंगाल, गुजरात, तमिलनाडु, राजस्थान, कर्नाटक में उद्यानों में पायी जाती है।

वानस्पतिक परिचय–जाति सदृश तनु **लता; पत्र** संयुक्त **पत्रक** ५ अग्र पत्रक, दीर्घ, पार्श्वपत्रक छोटे; निम्नपृष्ठ श्वेत रोमश **पुष्प** छोटे-छोटे गुच्छों में श्वेत ५ दली, सुगंधित **पुष्पकाल**-वर्षा-शरद्।

गुणकर्म–रस-कषाय, तिक्त, मधुर गुण–लघु **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तशामक, वातकफवर्धक, रक्तपित्त शामक, शोणितास्थापन, हृदयोत्तेजक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य: कर्णशूल-स्राव में पत्र स्वरस पूरण, मुखपाक, गल, दन्त रोगों में गंडूष

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आभ्यन्तर उरःक्षत, रक्तपित्त, रक्तविकार, हृद्रोग, हृद्दौर्बल्य, त्वग्रोग, प्रमेह में चिकित्सार्थ प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग–पत्र, पुष्प **मात्रा** स्वरस १०-५० ग्राम, क्वाथ ५०-१०० ग्राम।

विशेष–पीत जाति, पीत-स्वर्ण यूथिका (J. humile) बंगाल, राजस्थान, बिहार में उत्पन्न (पर्वतीय भूमि में) सरल, रोमश **क्षुप**; **पत्र** अण्डाकार ५-७ युग्म **पुष्प** एकाकी या गुच्छों में पीत, तूरी आकार, अवनत होते हैं।

अहिफेन

द्रव्यनाम–हिन्दी : अफीम, आफू।

लेटिन : Papaver somniferum.

Fam. : Papaveraceae अहिफेनकुल

संस्कृत : अहिफेनक, आफूर, खसतिल,खसरस, पोस्तोद्भव, सूक्ष्मबीज, अफेन, तिलभेद।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा०प्र०)।

उत्पत्तिस्थान–मध्यभारत-मालवा, राजस्थान, (कोटा, चित्तौड़गढ़ जिला) उत्तरप्रदेश, बिहार, आदि प्रान्तों में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–अर्धवर्षायु **क्षुप** १ मी० तक ऊँचा, काण्ड मृदु रोमश **पत्र** एकान्तरिक, काण्डलग्न, दीर्घ, लगभग १०० मि० मी० दीर्घ, दन्तुरित, **पुष्प** श्वेत, नीलाभ, बैंगनी, एकल क्रम में कटोरीनुमा, विस्तृत, सुन्दर **फल** सम्पुट संख्या में ५-८ दाड़िम सदृश पीताभ, अनुलम्बरेखाकार, **बीज** छोटे गोल, श्वेत या भूरे वर्ण के होते हैं। **पुष्पकाल** दिसम्बर, जनवरी **फल** मार्च।

रासायनिक संगठन– इसमें मुख्यतः मार्फीन, (०.२-०.३%) कोडीन, नार्कोटीन, पापावरीन, स्युडोमार्फीन अम्लीय द्रव्य, राल, जल, वसा, शर्करा, रंजक द्रव्य Primary alkaloids एपोमार्फीन, एपोकोड़ीन, Secondary alkaloids उदासीन तत्त्व होते हैं। बीजों में ५०% स्थिर तैल पीताभ प्राप्त होता है।

गुणकर्म–रस-तिक्त, कषाय गुण-सूक्ष्म, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक,वेदनास्थापन, निद्राजनन, स्वेदजनन, स्तम्भन, रक्तरोधक,शोथघ्न, शुक्रस्तम्भन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-शोथयुक्त वेदनाविकारों में लेप, नेत्र तथा कर्ण की शोथ-वेदना में, नेत्र-कर्ण-बिन्दु, लेप प्रयोग **आभ्यन्तर**-अनिद्रा,आक्षेप,अपस्मार अपतन्त्रक, शूलप्रधान विकार (पित्ताश्मरी, वृक्काश्मरी, हृच्छूल, पार्श्वशूल, आमाशयान्त्रक्षत, दग्धव्रण, अस्थिभग्न) अतिसार, ग्रहणी, वातश्लैष्मिक कास, फुफ्फुसावरण शोथ, श्वास, विषमज्वर, आन्तरिक रक्तस्राव, (आमाशयान्त्र, फुफ्फुसीय-रक्त स्राव) प्रमेह, मधुमेह, शीघ्रपतन, गर्भपात आदि रोगों की मुख्यौषध है। विभिन्न आत्ययिक अवस्थाओं में प्रभावशाली द्रव्य है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल-निर्यास, बीज, फलत्वक्; **मात्रा** अफीम ३०-१२५ मि०ग्राम, पोस्त चूर्ण १-२ ग्राम,खसखस बीज २-५ ग्राम। कर्पूररस, दुग्धवटी, बृहद्गंगाधर चूर्ण, अहिफेनासव।

विशेष–अपक्व फल से विशेष विधि से प्राप्त निर्यास को अफीम तथा बीज को खसखस कहते हैं, फल के छिलके को पोस्त कहते हैं। **जाति** पुष्प वर्ण भेद से रक्त (P.glabrum) कृष्ण (P.nigrum) होती है, शुद्धाशुद्ध परीक्षा-लेखक की द्रव्य परीक्षा पुस्तक द्रष्टव्य है। **विषाक्त प्रभाव** अधिक मात्रा से तन्द्रा, निद्रा, अवसाद, सन्यास, श्वासगतिमन्द, कनीनिका संकोच, नाड़ी क्षीण एवं श्वासावरोध से ६-१२ घंटे में मृत्यु सम्भावित है। **निवारण**–आमाशय प्रक्षालन, रीठे के पानी एवं पोटेशियम परमेंगनेट के जलीय विलयन से, हिंगु, आमलकी, तेजपत्र, एरण्ड आदि प्रतिविष द्रव्यों का प्रयोग, हृदयोत्तेजक द्रव्य, मकरध्वज, कस्तूरीभैरव, याकूती अम्बर का प्रयोग करना चाहिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वर्णक्षीरी ?

द्रव्य नाम–हिन्दी : सत्यानाशी ।

लेटिन : Argemone mexicana

Fam. Papaveraceae अहिफेन कुल

संस्कृत : स्वर्णक्षीरी, पीतदुग्धा, कटुपर्णी, हेमवती, हेमक्षीरी ।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–क्षुप सर्वत्र शुष्क एवं ऊषर भूमि में उत्पन्न होते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–कण्टकाकीर्ण ०.३-१ मी० ऊंचा **क्षुप** शाखाएँ सघन, **पत्र** दीर्घ (१२५-१५० मि० मी०) खण्डित, श्वेत रेखांकित, **पुष्प** मृदु, पीतवर्ण, कटोरीनुमा, **फल** सम्पुट ४ कोष्ठीय, चतुष्कोणीय, सघन, कांटेदार २५-४० मि० मी० दीर्घ **बीज** अनेक छोटे कृष्ण वर्ण, गोल, राई सदृश होते हैं । **पुष्पकाल** शरद् **फल** बसन्त-ग्रीष्म ।

रासायनिक संगठन–पत्र में बर्बेरिन, प्रोटोपीन क्षार, बीज में पीताभ स्थिर तैल २२%, शर्करा, पाये जाते हैं ।

गुण कर्म–रस-तिक्त गुण-लघु, सर, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत । पित्तकफहर, शोथहर, व्रणशोधक, भेदन, रक्तशोधन, ज्वरघ्न ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-शोथ, त्वग्रोग, व्रण में दुग्ध, बीज, तैल लेप । **आभ्यन्तर**-कृमि, आनाह, शूल में तैल प्रयोग, प्रतिश्याय, श्वास,शोथ, उपदंश, रक्तदोष, पूयमेह, कुष्ठ, विषमज्वर में मूल त्वक् उपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–बीज, क्षीर, तैल मूल **मात्रा** स्वरस ५–१० ग्राम तैल १५–२० बूंद चूर्ण १–२ ग्राम ।

विशेष–संदिग्ध द्रव्य है । वास्तविक स्वर्णक्षीरी (Euphorbia thompsomiana—ह्यावली, हिरवी) संभावित है । डल्हण ने इसका पर्याय हिरवी, ह्यावली लिखा है । इसके मूल को कश्मीरी में चोक कहते हैं । इसके अतिरिक्त कंकुष्ठ (Garcinia morella) रेवन्द चीनी (Rheum emodi) का भी प्रयोग स्वर्णक्षीरी नाम से होता है । जीवाणु नाशक एवं उत्तेजक होने से त्वग्रोगों-शोथ व्रणादि में मुख्यतः प्रयोग होता है । रक्त विकारों में उपदंश, पूयमेह में आभ्यन्तर प्रयोग होता है । इसके तैल मिश्रित सरसों के तैल सेवन से प्रायः बेरी बेरी रोग होने की सम्भावना होती है ।

सूरण

द्रव्य नाम–हिन्दी : सूरनकन्द, सूरणकन्द जमीकन्द ।

लेटिन : Amorphophallus Campanulatus.

Fam. Araceae (सूरण-कुल)

संस्कृत : सूरण, ओल, कन्द, अर्शोघ्न ।

वर्गीकरण–शाकवर्ग (भा० प्र०) ।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र क्षुप लगाये जाते हैं एवं वन्य प्रदेशों में वन्य जाति पायी जाती है ।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **क्षुप** ०.३–०·५ मी० ऊँचा **पत्र** दीर्घ, मांसल, वृत्त छत्राकार दीर्घ (०·३–०·८ मी०) अधोभाग तीन भागों में विभक्त, **पुष्प** उभयलिंगी, **फल** रक्तवर्ण **कन्द** अर्धगोलाकार उपमूलीय सूत्रयुक्त, श्वेत, ऊर्ध्व पृष्ठ खातयुक्त (१५०–२०० मि० मी०) व्यास युक्त होता है **पुष्पकाल** ग्रीष्मान्त **फल** शरद् ।

रासायनिक संगठन–कन्द में एक कटु, तीक्ष्ण दाहक रस, वन्य सूरण में यह अधिक मात्रा में, केल्सियम आक्जलेट होते हैं ।

गुण कर्म–रस-कटु, कषाय गुण-तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण । वातकफ शामक दीपन, कृमिघ्न, अर्शोघ्न, यकृदुत्तेजक ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-अर्बुद, श्लीपद, में कन्द का घृत मधु के साथ लेप **आभ्यन्तर** अर्श (वात

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

श्लेष्मज) कृमि, अग्निमांद्य, यकृत्प्लीहावृद्धि, कास, श्वास, दौर्बल्य, शुक्र दौर्बल्य में प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–कन्द **मात्रा** चूर्ण १–५ ग्राम। बृहच्छूरणमोदक, कांकायन वटी।

विशेष–वन्य जाति सूरण जंगलों में स्वयं उत्पन्न, यह रक्ताभ, श्वेत छोटा, चिकित्सार्थ उपयोगी है। अपक्व सेवन से मुखपाक, कण्ठतालु-प्रदाह, कण्डू. विकार हो जाते हैं। **निवारण** नींबू, तक्र, दाड़िम, अम्ल द्रव्यों एवं घृत, दुग्ध, स्नेह द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

वचा

द्रव्य नाम–हिन्दी: वच, घोड़वच, वछ।

लेटिन: Acorus Calamus.

Fam. Araceae (सूरणकुल)।

संस्कृत: वचा, षड्ग्रन्था, गोलोमी, उग्रगंधा, शतपर्विका, क्षुद्रपत्री, मंगल्या, जटिला, लोमशा।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०), तिक्त-स्कन्ध, संज्ञास्थापन, शिरोविरेचन, लेखनीय, अर्शोघ्न, शीतप्रशमन (च०) वचादि, ऊर्ध्व भागहर, मुस्तादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र विशेषतः दलदल, सजल स्थान, उत्तरप्रदेश, आसाम, कश्मीर, मणिपुर में वचा के क्षुप पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित मृदु **क्षुप** १–१·५ मी० ऊँचा **पत्र** स्निग्ध, हरित वर्ण, तनु, असिसदृश, ०·५–१ मी० दीर्घ १३–२५ मि० मी० चौड़े **पुष्प** पीताभ श्वेत सघन मंजरियों में पत्र-कोशावृत **मूलस्तम्भ** (Rhizome) रक्तवर्ण, तीव्र-गंधि, ५–६ पर्व युक्त सघन, रोमश, झुर्रीदार, रवेदार होता है। बाजार में शुष्कीकृत प्रकन्द के कटे हुए गोल छोटे २ टुकड़े मिलते हैं।

रासायनिक संगठन–मूल त्वचा में एक उड़न-शील तैल १·५–३·५% इसमें असारिल अल्डिहाइड़, कैफीन; एकोरिन, तिक्त ग्लुकोसाइड़, केलामाइन क्षार, स्टार्च, गोंद, कषाय द्रव्य होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त कटु, गुण-तीक्ष्ण, सर, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, मेध्य, वेदनास्थापन, आक्षेपहर, संज्ञास्थापन, शूलप्रशमन, वातानुलोमन, स्वेदजनन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-कर्णक्ष्वेड़, कर्णशूल में स्वरस या फाण्ट द्रव का कर्णबिन्दु प्रयोग, आमवात संधिवात में लेप। **आभ्यन्तर**-अग्निमांद्य, आनाह, शूल, कृमि, हृद्दौर्बल्य, अपतन्त्रक, अपस्मार, उन्माद, कास, श्वास (अधिक मात्रा में वमनार्थ, अल्पमात्रा में शमनार्थ) मेदोरोग, सन्निपात ज्वर में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–मूल, प्रकन्द **मात्रा** औषध प्रयोगार्थ ०·१–०·५ ग्राम; वमनार्थ १–३ ग्राम, सारस्वत चूर्ण, वचादि चूर्ण।

विशेष–स्वर भेद कण्ठशोथ, गलरोगों में वचा के टुकड़ों का आचूषण। कास, श्वास में कफ अधिक होने पर वचाचूर्ण, लवण, उष्णोदक से वमन करवाना चाहिए।

जाति–(क) पारसीक वचा (ख) महाभरी वचा। **शुद्ध द्रव्य परीक्षण** मूल सुगंधि, स्वाद में कटु, तिक्त, तीक्ष्ण, सूत्र एवं शल्क पत्रों के चिन्ह युक्त बाह्यतल, लम्बाई में छोटी २ दरारें, तोड़ने पर अन्तर्वस्तु श्वेत स्पंजी; चूर्ण पीताभ नारंगी वर्ण का होता है।

मुस्तक

द्रव्यनाम–हिन्दी : मोथा, नागरमोथा।

लेटिन : Cyperus Scariosus.

Fam. Cyperaceae. (मुस्तक कुल)

संस्कृत : मुस्तक, वारिदनामकम्, बालेय, अम्बुभूत, कुरुविन्द, गुन्द्रा।

वर्गीकरण–लेखनीय, तृष्णानिग्रहण, कण्डूघ्न (च०) मुस्तादि (सु०)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र आर्द्र एवं जलाशय भूमि में विशेषत : बंगाल, दक्षिण भारत में क्षुप पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–तृण जाति **क्षुप** ०·३–१ मी० ऊंचा, काण्ड स्निग्ध, मांसल, त्रिकोणाकार **मूल** कृष्ण, सुगंधि १२–२५ मि० मी० स्थूल अन्तर्भूमिशायी काण्ड; **पत्र** दीर्घ घास के समान (०·३–०·५ मी०) पुष्पदण्ड दीर्घ क्षुपाग्र शाखा–प्रशाखा युक्त **पुष्प** छोटे हरिताभ श्वेत वर्ण होते हैं। **पुष्पफलकाल**–वर्षा–शरद्।

रासायनिक संगठन–मूल में एक उड़नशील तैल, शर्करा, वसा, निर्यास, अलब्युमिन तन्तु क्षार होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कषाय, कटु; गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामफ, तृषा-दाहशामक, दीपन, स्तम्भन, कृमिघ्न, रक्तशोधन, मूत्रल, स्तन्यशोधन, स्तन्यवर्धक, विषघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–त्वग्रोग, विसर्प, दाह में लेप, स्तन्याल्पता में स्तनों पर लेप। **आभ्यन्तर**–तृषा, छर्दि, अरोचक, संग्रहणी, कृमि, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ, मेह, स्तन्यदोष, ज्वर, विषदोष विकारों में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूलकन्द **मात्रा** चूर्ण १–३ ग्राम, क्वाथ ३०–५० ग्राम, मुस्तादि क्वाथ, फाण्ट, लेह, अरिष्ट, वर्त्ति।

विशेष–स्थान एवं मूलाकृति भेद से (क) भद्रमुस्तक (ख) कैवर्त्तक मुस्तक। ज्वर में आम-पाचक, पित्तशामक होने से फाण्ट या क्वाथ प्रयोग किया जाता है। इससे तृषा, वैचित्य, संतापोपशम होता है।

कसेरुक

द्रव्य नाम–हिन्दी : कसेरु।

लेटिन : Scripus grossus Var. Kysor.

Fam. Cyperaceae (मुस्तक कुल)।

संस्कृत : कसेरुक, असिपत्र, त्रिकोणक, दीर्घ-काण्डक।

वर्गीकरण–शाक वर्ग (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–उष्ण प्रदेशों के सजल, पंक-युक्त स्थान, विशेषतः दक्षिण भारत, गोवा में क्षुप पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु (१·३ मी०) **क्षुप** ऊंचा **स्तम्भ** स्निग्ध, त्रिकोणाकार, हरित कनिष्ठ अंगुलिसदृश स्थूल **पत्र** विरल, दीर्घ, रेखाकार, मुस्तकसदृश **पुष्प** छोटे २ हरिताभ-श्वेत, दीर्घ पुष्प मंजरी में **कन्द** अण्डाकार, सूत्रावृत, धूसर, अन्तः भाग पिष्ट युक्त, श्वेत, सुगंधि होता है। **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–कन्द में पिष्टसार ६३%; प्रोभूजिन ७%; गोंद ७%; भस्म २·५%; काष्ठ भाग ६% होता है।

गुण कर्म–रस-मधुर, कषाय गुण-रूक्ष, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत। पित्तशामक; वातकफवर्धक, तृषादाहशमन, रक्तपित्तशामक, शोणितास्थापन, हृद्य, स्तन्यवर्धक, गर्भाशय बल्य।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–पित्त रक्तज नेत्राभिष्यन्द, विसर्प, दाह, स्फोट में लेप **आभ्यन्तर**–तृषा, छर्दि, रक्तातिसार, हृद्दौर्बल्य; रक्तविकार, पैत्तिक-मेह; मूत्रदाह, सरक्त मूत्र, स्तन्याल्पता, गर्भस्राव-पात, शुक्रदौर्बल्य, ज्वर में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–कन्द **मात्रा** ५–१० ग्राम कसेर्वादि लेप-अवलेह-क्वाथ-क्षीर।

विशेष–वर्णित जाति बड़ा कसेरु 'राजकसेरुक' है। छोटी जाति (S. Tuberosus) क्षुप, पत्र, कन्द छोटा होता है। एक जाति (S. Articulatus.); व Cyperus esculentus तथा अन्य जातियां भी पायी जाती हैं।

सुदर्शन

द्रव्यनाम–हिन्दी : सुदर्शन।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लेटिन : Crinum Zeylanicum.

Fam. Amaryllidaceae. (तालमूली कुल)।

संस्कृत : सुदर्शना, चक्राह्वा, मधुपर्णिका, सोमवल्ली।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र विशेषतः बिहार, बंगाल, उड़ीसा, पूर्वी प्रान्तों में।

वानस्पतिक परिचय–सुरम्य बहुवर्षायु **क्षुप** ०.६-१.३ मी० ऊंचा **पत्र** स्निग्ध, मांसल, हरित, दीर्घ (०.६-१ मी०) विस्तार (७५-१०० मि० मी०) भूमि से निकले हुए; **पुष्प** श्वेत वर्ण, छत्राकार, क्षुप के मध्य से; **फल** गोल, कन्द गोलाकार, १०० मि० मी० व्यास युक्त। **पुपष्काल** वर्षा **फल** शीत।

गुण कर्म–रस-मधुर, तिक्त, गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष **वि०** मधुर **वी०** उष्ण। वातश्लेष्मशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, ज्वरघ्न, रक्तशोधन, विषघ्न वामक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–कर्णशूल, कर्णस्राव आदि कर्ण रोगों में पत्र स्वरस, शोथयुक्त वेदना प्रधान रोगों में पत्रोपनाह, विद्रधि, अर्श पर कन्द का लेप होता है। **आभ्यन्तर**-ज्वर (नियतकालीन) शोथ, रक्तविकार, कफज एवं विष विकारों में पत्र एवं वमनार्थ कन्द का प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–पत्र, कन्द **मात्रा** पत्र-स्वरस ३-५ ग्राम, कंद चूर्ण ०.५-१ ग्राम। सुदर्शन चूर्ण।

विशेष–विविध कर्ण रोगों में कोष्ण पत्र स्वरस पूरण तथा ज्वर में चिकित्सार्थ दैनिक प्रयोग होता है। **जातियाँ** C. asiaticum, C. defixum होती हैं।

तालमूली (कालीमूसली)

द्रव्यनाम–हिन्दी : कालीमूसली, स्याहमूसली।

लेटिन : Curculi go orchiodes.

Fam. Amaryllidaceae (तालमूली कुल)।

संस्कृत : तालमूली, तालपत्री, हेम पुष्पी।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि वर्ग (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–बंगाल, बिहार, आसाम, उत्तर प्रदेश, राजस्थान (आबू पर्वत) पश्चिमीघाट के आर्द्र स्थानों में उत्पन्न।

वानस्पतिक परिचय–तृण जातीय नवीन खजूर सदृश **क्षुप** ०.३-०.५ मी०; **पत्र** ३-५ मूलोद्भूत, अवृन्त, खजूरपत्र सदृश, रेखाकार, भालाकार, ६-१८ दीर्घ **पुष्प** नलिकाकार, पीत वर्ण २ पंक्तियों में **फल** कृष्ण, चमकीला **बीज** १-४ **पुष्पकाल**-वर्षा फल शरद्।

रासायनिक संगठन–कन्द में पिच्छिल द्रव्य २०%, स्टार्च ४३.५%; जल ४.५% कषाय द्रव्य ४%, वसा, पदार्थ। शुष्क कंद की भस्म में सुधांश होता है।

गुणकर्म-रस-मधुर, तिक्त गुण-स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु **वि०** मधुर **वी०** उष्ण। त्रिदोषशामक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-अस्थिभग्न में लेप **आभ्यन्तर** कामला. अर्श, मूत्रदाह, मूत्रकृच्छ्र, बस्तिशोथ-प्रदाह पूयमेह, शुक्रदौर्बल्य, प्रदर, अत्यार्त्तव, कार्श्य, दौर्बल्य में उपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–कन्द **मात्रा** ३-५ ग्राम।

विशेष–कन्द अनुलम्ब, गोल बाहर से कृष्ण धूसर अन्तः भाग श्वेताभ स्टार्च प्रधान। बृंहण, स्नेहन क्रिया हेतु प्रयोग। मूत्र-शुक्रार्त्तववह स्त्रोतस् विकृतियों में मुख्यतः प्रयोग होता है।

लोध्र

द्रव्यनाम–हिन्दी : लोध।

लेटिन : Symplocos racemosa.

Fam. Symplocaceae (लोध्र कुल)।

संस्कृत : लोध्र, तिरीट, शाबर, तिल्व, स्थूल-वल्कल, पट्टिका लोध्र।

वर्गीकरण–हरीतक्वादि (भा० प्र०) पुरीषसंग्रहणीय, संधानीय, शोणितास्थापन, (च०) लोध्रादि, न्यग्रोधादि (सु०)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति स्थान–देश के पूर्वोत्तर प्रांत कुमाऊं से आसाम तक, आसाम, बंगाल, बिहार, मालाबार, आदि प्रांतों के वन्य पर्वतीय क्षेत्रों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय-सर्वदा हरित छोटा **वृक्ष; पत्र** साधारण एकान्तर ७५-१३० मि०मी०, दीर्घ, अण्डाकार, आयताकृति, भालाकार, लम्वाग्र या कुण्ठिताग्र ९ शिरायुग्म **पुष्प** गुच्छों में शाखाग्र, मंजरियों में पीताभश्वेत **फल** अष्ठिफल बैंगनी। त्वक् स्निग्ध, रक्ताभ, धूसर, अन्तः पृष्ठ रक्ताभ भूरे रंग की रेखा या बिन्दु युक्त होती है।

रासायनिक संगठन-त्वक् में Loturine ०.२४% Colloturine ०.०२% Loturidine ०.०६% तीन मुख्य क्षार, रंजक द्रव्य प्रभूत मात्रा में पाया जाता है।

गुण कर्म–रस-कषाय गुण-रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामक, व्रणशोधन, शोथहर, स्तम्भन, शोणितास्थापन, गर्भाशयशोथहर, गर्भाशय बल्य।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-नेत्राभिष्यन्द में जलीय काण्ट का नेत्र बिन्दु, शोथ, रक्तस्त्राव, व्रण में लेप **आभ्यन्तर** रक्तपित्त, शोथ, ग्रहणी, रक्तातिसार में प्रयोग होता है, गर्भाशयशोथ, श्वेत प्रदर-रक्तप्रदर असृग्दर में उत्तर वस्ति एवं आभ्यन्तर प्रयोग अपेक्षित है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–काण्डत्वक् **मात्रा** चूर्ण १-२ ग्राम, क्वाथ ५०-१०० ग्राम, लोध्रासव, पुष्यानुग चूर्ण, लोध्रादि क्वाथ।

विशेष–इसकी एक जाति S. Crataigoides होती है। सूक्ष्म केशिकाओं एवं छोटी रक्तवाहिनियों का संकोची होने से विभिन्न स्रोतों की रक्तस्रावी रोगों की प्रमुख औषधि है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा** अनियमिताकार छाल के टुकड़े नलिकाकार अवनतोदर, बाहर से रक्त श्वेताभ भूरे, चौडाई में दरारे, अन्दर से पीताभ, अन्तः सार रक्त वर्ण तोड़ने पर बाहर से दानेदार, अन्दर से सूत्रवत् टूटती है।

लोबान

द्रव्य नाम–हिन्दी : लोबान, लोभान।

लेटिन : Styrax benzoin.

Fam. Symplocaceae. लोध कुल।

उत्पत्ति स्थान–श्याम, सुमात्रा, द्वीपसमूहों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष**; त्वक् तनु धूसर **पत्र** एकान्तर ७५-१२५ मि० मी० दीर्घ; **पुष्प** गुच्छों में श्वेत रक्ताभ **फल** गोल, चपटे **बीज** १ वृक्ष का निर्यास बादाम या वराटिका सदृश, त्रिपार्श्विक चतुष्कोणीय डलीनुमा, श्वेत, रक्ताभ धूसर, चिन्हांकित; तोड़ने पर अन्तः पृष्ठ श्वेताभ होता है।

रासायनिक संगठन–निर्यास में एक उड़नशील तैल एवं ३ राल Benzoic acid, १२-२०%, cinnamic acid, vanillin पाये जाते हैं।

गुण कर्म–रस–मधुर गुण–तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष, **वि०** मधुर **वी०** उष्ण। वातकफहर, पित्तवर्धक, दुर्गन्धनाशक, स्वेदजनन, वेदनास्थापन, कफोत्सारि, श्लेष्मपूतिहर, मूत्रल, गर्भाशयशोथहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः वातव्याधि, सद्यव्रण, दुराग्रहीव्रण, ग्रन्थि शोथ, त्वग्रोग, Fungal उपसर्ग में लेप, फुफ्फुस विकार, कर्णशूल **आभ्यन्तर** जीर्णप्रतिश्याय, श्वसनिकाशोथ, कास, श्वास, वातव्याधि, बस्तिशोथ, पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र, गर्भाशय शोथ, श्वेतप्रदर, त्वग्रोग, ज्वर में दैनिक चिकित्सोपयोगी द्रव्य है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–निर्यास **मात्रा** ०.३-१ ग्राम, सत्व १२५ मि० ग्राम।

विशेष–फुफ्फुस विकारों में धूम्रपान, आघ्राण, कर्णशूल में सतैल पूरण, श्वेत प्रदर में वर्ति। उत्तम लोबान शीघ्र भंगुर, ताप से मृदु तथा ज्वलनशील

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(श्वेत, सुगंधि धूम्ररहित) इसकी शुद्धाशुद्ध परीक्षा लेखक कृत 'द्रव्य परीक्षा' में दृष्टव्य है। इसकी जीवाणुवृद्धि रोधक, तृणाणुस्तम्भक, आंत्रगत-जीवाणुनाशन, कफनिस्सारक, श्वसनिकाशोधक, मूत्रमार्ग शोधक एवं मूत्रल क्रिया होती है।

नागकेशर

द्रव्य नाम–हिन्दी : नागकेशर, पीलानागकेशर।

लेटिन : Mesua ferrea.

Fam. Guttiferae (नागकेशर कुल)

संस्कृत : कनकाह्वय, पिंजर, केशर, राजपुष्प, महौषध, गजम्, नागकेशर, नागकिञ्जल्क।

वर्गीकरण–कर्पूरादि, चतुर्जात (भा० प्र०), एलादि, प्रियंग्वादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के पूर्वी प्रदेश, आसाम, बंगाल; तथा दक्षिण भारत, कोंकण: एवं अण्डमान के वन्य प्रदेशों में एवं उद्यानों में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित, सुन्दर, मध्यमाकार **वृक्ष**; काण्ड गोल, **पत्र** अभिमुख, चर्मवत् कनेर की आकृति के भालाकार, लम्बाग्र ५०-१५० मि० मी० दीर्घ २५-३७ मि० मी० चौड़े अधरपृष्ठ, श्वेतरजावृत **पुष्प** श्वेत वर्ण गोल बड़े, सुगंधित पुंकेसर दीर्घ, स्वर्णवर्णाभ, गुच्छों में **फल** रक्ताभ धूसर, मौलश्री के समान बीज १-४ धूसर, स्निग्ध होते हैं। **पुष्पकाल** वसन्त **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–बीजों में स्थिर तैल फल में एक तैल जातीय राल, इस राल से हल्के पीत वर्ण का सुगंधि तैल प्राप्त होता है।

गुण कर्म–रस-कषाय, तिक्त गुण-रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** नात्युष्ण। पित्तकफशामक आमपाचन, ग्राही, वर्ण्य, छर्दिघ्न, दौर्गन्ध्यहर, स्वेदहर, उत्तम रक्तस्तम्भन, रक्तशोधन, अर्शोघ्न, मूत्रल।

आमयिक प्रयोग–बाह्य: त्वग्रोग, वैवर्ण्य, व्रण, दुष्टव्रण में लेप व तैल प्रयोग।

आभ्यन्तर–तृषा, दाह, अरोचक, छर्दि, रक्तपित्त, रक्तार्श (नागकेशर चूर्ण मिश्री मक्खन के साथ), रक्तातिसार, वातरक्त कुष्ठ, विसर्प, कण्डू, रक्तप्रदर, अत्यार्त्तव, गर्भस्राव में दैनिक चिकित्सौपयोगी औषधि है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पुंकेसर, केसर चूर्ण **मात्रा** ०.५-२ ग्राम, नाग केशरादि चूर्ण, पुष्यानुग चूर्ण।

विशेष–इसकी एक जाति 'सुरपुन्नाग Ochrocarpus longifolius कोंकण से मालाबार तक उत्पन्न इसके वृक्ष बड़े, पुष्प रक्ताभपीत फल में एक बीज। यह कषाय होने से केशिका-रक्तवाहिनी संकोची एवं रक्तगत स्कंदन वृद्धि से रक्त रोधकर है।

मिलावट–(क) लाल नागकेशर की शुष्क कलिकाऐं भूरे वर्ण की लोंग के बराबर (ख) काला नागकेशर तज, तमालपत्र की निकट जाति के अपक्व फल नागकेशर के नाम से बेचे जाते हैं।

वृक्षाम्ल (कोकम)

द्रव्य नाम–हिन्दी : कोकम, विषांबिल।

लेटिन : Garcinia indica.

Fam. Guttiferae (नागकेशर कुल)।

संस्कृत : वृक्षाम्ल, तिन्तिड़ीक, चुक्र, रक्तपूरक, अम्लबीज, अम्लशाक।

वर्गीकरण–फलादि (भा० प्र०) हृद्य (च०)।

उत्पत्ति स्थान–दक्षिण भारत, महाराष्ट्र, केरल, गोवा के वन्य प्रदेशों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–छोटा सुन्दर **वृक्ष** गुल्माकृति; तनु शाखाऐं अवनत, काण्डत्वक्, कृष्ण, **पत्र** स्निग्ध, भालाकार, या लट्वाकृति **पुष्प** छोटे-२ **फल** मांसल, गोल, रक्तवर्ण, **बीज** चपटे, श्वेत, बड़े। **पुष्पकाल** शीत **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–बीज में ३०% हल्के पीत रंग का स्थिर तैल, इसे कोकम का तैल कहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म–(पक्व फल) रस-मधुर, अम्ल गुण-गुरु, रूक्ष **वि०** अम्ल, **वी०** उष्ण। वातपित्तशामक, दीपन, रुचिकर, ग्राही।

आमयिक प्रयोग–वाह्य-विपादिका, त्वग्रोगों में तैलाभ्यङ्ग **आभ्यन्तर**–अरोचक, तृषा, दाह, अग्नि-मांद्य, प्रवाहिका, ग्रहणी, गुल्म, ज्वर में (फल फाण्ट) विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, तैल **मात्रा** तैल ३-५ ग्राम, फाण्ट १०-३० ग्राम।

विशेष–दक्षिण भारत एवं गुजरात में फल रोचक, मधुराम्ल होने से शाक कल्पना में भी प्रयुक्त होता है। शीत, रौक्ष्य जन्य त्वचा एवं विपादिका में तैलाभ्यङ्ग प्रशस्त है।

निम्ब (नीम)

द्रव्य नाम–हिन्दी : नीम, निम।

लेटिन : Melia azadirachta.

Fam. Meliaceae (निम्ब कुल)।

संस्कृत : निम्ब, तिक्तक, अरिष्ट, प्रभद्र, कैटर्य, पारिभद्र, पिचुमर्द, पिचुमन्द।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०प्र०), तिक्तस्कन्ध, वमन, कण्डूघ्न, (च०) आरग्वधादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–इसके वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सुपरिचित बड़ा **वृक्ष** १२-१५ मी०, ऊंचा **पत्र** संयुक्त, एकान्तर, २००-३७५ मि० मी० दीर्घ, शाखाग्र सघन; **पत्रक**–अभिमुख असमपिच्छाकार ९-१५ वक्र, भालाकार, आरे के समान, दंतुरित, तीक्ष्णाग्र **पुष्प** छोटे गुच्छों में श्वेतवर्ण **फल** गुच्छों में पीत, मांसल, अण्डाकार; **बीज** १ होता है। वृक्ष से रक्ताभ धूसर निर्यास भी निकलता है। **पुष्पकाल** बंसत **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–त्वक् में रालमय सत्व मार्मोसिन, निम्बिन, उड़नशील तैल, (पुष्प में अधिक) कषाय स्टार्च होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कषाय गुण-लघु **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तश्लेष्महर, वर्ण्य, त्वग्रोगहर, व्रणशोधन, रोपण, वामक, शोथहर, वेदनाहर, यकृदुत्तेजक।

आमयिक प्रयोग–वाह्य–त्वग्रोग, दद्रु, कण्डू, विचर्चिका, व्रण, दुष्टव्रण, नाडीव्रण, कुष्ठ, आमवात, संधिवात, अर्श में पत्र, त्वक्लेप, तैल, अभ्यंग, नेत्र रोगों में लेप व रसाश्च्योतन **आभ्यन्तर**-शोथ, रक्तविकार, उपदंश, फिरंग, त्वग्रोग, कुष्ठ, कृमि, अर्श, विषम-ज्वर, मेह, मेदोरोग में सर्वसुलभ एवं दैनिक चिकित्सोपयोगी औषधि है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, त्वक्, पुष्प, फल, तैल **मात्रा** पत्र स्वरस १०-२० ग्राम, त्वक्चूर्ण २–५ ग्राम, निम्बादि चूर्ण, निम्ब तैल।

विशेष–अर्श में निबोली (बीज) की मज्जा प्रतिदिन २० ग्राम तक्रानुपान से २ माह तक प्रयोग से रोगोपशम होता है। इसकी एक जाति महा-निम्ब (बकायन) छोटा वृक्ष; पत्र नीम से छोटे अल्प वक्र, पुष्प श्वेत वैंगनी फल निम्बवत्। निम्ब-काण्ड से पीत–धूसर श्वेत निर्यास निकलता है। एक जाति मिष्ट निम्ब जिसके पत्रों का शाक कल्पना में भी दैनिक प्रयोग होता है।

रोहिणी

द्रव्य नाम–हिन्दी : रोहण, रोहन, रोहिनी।

लेटिन : Soymida febrifuga.

Fam. Meliaceae (निम्ब कुल)।

संस्कृत : मांसरोहिणी, रोहिणी, चर्मकषा, वृत्ता, अतिरुहा, वीरवती, प्रहारवल्ली।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा०प्र०), वल्य (च०), न्यग्रोधादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–केरल, मध्य एवं पश्चिमोत्तर भारत के प्रान्तों के वन्य, पर्वतीय क्षेत्रों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–ऊंचा **वृक्ष** (१०–१५ मी०) त्वक् रक्त, धूसर, **पत्र** संयुक्त, समपिच्छाकार

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पत्रक ३–६ युग्म अण्डाकार, आयताकृति ५०-१०० मि० मी० दीर्घ प्रायः अवृन्त, पत्रक सिराएं एवं वृन्त रक्ताभ, स्निग्ध, तिर्यगाधारयुक्त **पुष्प** हरिताभ, श्वेत मंजरियों में **फल** कृष्ण, धूसर, कठिन, मृदंगाकार। **त्वक्** रक्त वर्ण होती है। **पुष्प फल काल**–बसन्त।

रासायनिक संगठन–त्वक् में रंगहीन, जल में अघुलनशील तिक्त राल; टैनिक एसिड़ प्रचुर मात्रा में; स्टार्च, गैलिक एसिड होता है।

गुण कर्म–रस–कषाय, कटु, मधुर, गुण-रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामक, वर्ण्य, व्रणशोधन, स्तम्भन, शोणित स्तम्भन, सन्धानीय।

आमयिक प्रयोग–बाह्य : व्रणों में सवर्णीकरणार्थ फल लेप, मुख, दंत रोगों में त्वक् क्वाथ गंडूष, प्रदर में बस्ति प्रयोग **आभ्यन्तर**-अस्थिभग्न, जीर्णज्वर, विषमज्वर अतिसार, प्रवाहिका, रक्तपित्त, उरःक्षत में विशेष लाभप्रद है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–त्वक् **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, क्वाथ २०-५० ग्राम।

विशेष–केशिकाओं, संयोजक धातु पर संकोची तथा योजक क्रिया करने से रक्तपित्त, उरःक्षत एवं अस्थिभग्न में मुख्यतः उपयोग होता है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**-त्वक् बाहर से भूरे वर्ण, खाकस्तरी, छोटे-छोटे अंडाकृति चिन्हांकित, लम्बाई में दरारेंदार, अन्दर से रक्तवर्ण, सरल या वक्र नलिकाकार टुकड़े, क्वचित् खातोदर, २५ मि० मी० व्यास युक्त एवं ५ मि० मी० स्थूलत होती है।

दारुहरिद्रा

द्रव्यनाम–हिन्दी : दारुहल्दी, दारुहरदी।

लेटिन : Berberis aristata.

Fam. Berberidaceae (दारुहरिद्राकुल)।

संस्कृत : दारुहरिद्रा, दार्वी, कटकंटेरी, पीतद्रु, पर्जन्या, हरिद्रु, कालीयक।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०) लेखनीय, अर्शोघ्न, कंडूघ्न (चरक) हरिद्रादि, लाक्षादि (सुश्रुत)।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय पर्वत पर ६-१० हजार फीट की ऊँचाई तक एवं नीलगिरि, पर्वतीय क्षेत्रों में पाई जाती है।

वानस्पतिक परिचय–पतनशील, चिरहरित, कांटेदार, **गुल्म** २-३ मी० **शाखाएं** श्वेत पीताभ, अवनत **पत्र** लट्वाकार, चर्मवत्, तीक्ष्ण कंटक युक्त तथा सूक्ष्म दंतुरित, निम्न पृष्ठ श्वेताभ **पुष्प** पीतवर्ण मंजरी में **फल** बेरी बैंगनी। **पुष्प फल काल** बसन्त-ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–काष्ठ, मूल में Berberine Oxycanthine, Berbamine आदि क्षार, गोंद, स्टार्च, कषाय, अम्ल द्रव्य होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कषाय गुण-रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। पित्तश्लेष्महर, लेखन, व्रण शोधन-रोपण, वेदनाशमन, दीपन, यकृदुत्तेजक, पित्तस्रंसन, त्वग्दोषहर, स्वेदजनन, तिक्त पौष्टिक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-नेत्राभिष्यन्द, नेत्रप्रदाहादि विकारों में रसांजनद्रव, कर्णस्राव में कर्ण बिन्दु, मुख गल रोगों में गंडूष, व्रण, दुष्टव्रण, शोथ में लेप, धावन, अर्श में रसोंत का लेप, प्रदर, गर्भाशय शोथ में बस्ति प्रयोग, पूयमेह में उत्तर बस्ति प्रयोग। **आभ्यन्तर**–विषमज्वर, रक्तपित्त, रक्तार्श, शुष्कार्श, यकृत्प्लीहावृद्धि, रक्तविकार, त्वग्रोग, गण्डमाला, अपची, नाड़ीव्रण, भगन्दर, कण्डू, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, फिरंग, पूयमेह, अत्यार्त्तव, श्वेतप्रदर (गर्भाशय शैथिल्य जन्य) से विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल, काष्ठ, फल **मात्रा** क्वाथ ५०-१०० ग्राम, रसांजन ०.५-१ ग्राम, दार्व्यादि क्वाथ, लेह, दार्व्यादि तैल।

विशेष–**जातियाँ** इसकी B. asiatica, B. chitria, B. lycium मुख्य जातियाँ होती हैं। पंचांग क्वाथ एवं सम मात्रा अजा दुग्ध मिलाकर रस-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रिया विधि से प्राप्त द्रव्य रसाँजन। साधारण मात्रा में हृदय पर उत्तेजक, वल्य अधिक मात्रा में अवसादक। श्वेतकायाणु वृद्धि, मलेरिया के निदान में Provocative dosge के रूप में प्रयोग। विषम-ज्वर में १·५ ग्राम रसांजन दिन में तीन बार गरम पानी से देने से क्वनीन सदृश लाभकारी है। इसके फल को भरिष्क कहते हैं यह गोल, रक्तश्याव मधुराम्ल। यह छर्दि तृषा, पैत्तिक विकारों में उपयोगी है। **अनुसंधान कार्य**–इससे प्राप्त क्षाराभ Berberine केशिका प्रवेश्यता का ह्रासकर होने से अतिसार एवं विसूचिका में उत्कृष्ट उपयोगी है।

गिरिपर्पट (बन ककड़ी)

द्रव्य नाम–हिन्दी : वनककड़ी।

लेटिन : Podophyllum emodi

Fam. Berberidaceae (दारुहरिद्रा कुल)।

संस्कृत : गिरिपर्पट, वक्रा, हंसपद, वनवृन्ताक।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के ७ हजार फीट छायादार सघन वन्य क्षेत्र कश्मीर कुल्लू-कांगडा, गढ़वाल, शिमला।

वानस्पतिक परिचय–छोटा क्षुप ०·२-०·३ मी०; **मूल** गोल, वक्र, ग्रन्थिल, २ चपटे तलयुक्त, चिन्हांकित, बाहर से रक्त धूसर; अन्तः पृष्ठ श्वेत धूसर तीव्र गंधि, तिक्त; **स्तंभ** स्थूल **पत्र** विरल, गोल ३-५ भागों में विभक्त, तीक्ष्ण दंतुरित **पुष्प** श्वेत गुलाबी, दीर्घ **फल** वनककड़ी सदृश रक्त वर्ण होता है।

रासायनिक संगठन–मूल में २ रेचक तत्त्व; Podophyllotoxin, Podophylloresin, Podophyllic acid, Qurcetin. होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कटु गुण-तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष **वि० कटु वी०** उष्ण। पित्तकफहर, पित्तरेचन, यकृदुत्तेजक, भेदन।

आमयिक प्रयोग– आभ्यन्तर–यकृद्विकारजन्य, अग्निमांद्य, विबन्ध, आध्मान, गुल्म, जीर्ण पैत्तिक विकार, आमदोष। जलापा, पीतमूला, एलुआ द्रव्यों के साथ प्रयोग करने से अधिक क्रिया शील पाया गया है।

प्रयोज्य-अंग कल्पनाएं–मूल, मूलसत्व, Podophylline **मात्रा** चूर्ण ५० मि० ग्राम से ०.३ ग्राम, सत्व १५-६० मि० ग्रा०।

विशेष–यह तीव्र तरल विरेचक द्रव्य है। रेचन क्रिया Calomel सदृश, लवण संयोग से रेचन कर्म तीव्र; यह यकृत पित्तरेचक, आंत्र पुरः सरण गति-वर्धक; पित्त का शोषण न होने देने से पित्त मल के साथ उत्सर्जित होता है। अधिक प्रयोग से छर्दि, हृल्लास, उद्वेष्टन क्षोभ, विकार हो जाते हैं। अतः इसका प्रयोग शतपुष्पा गुलाब के पुष्प के साथ करना चाहिए।

किरात तिक्त (चिरायता)

द्रव्य नाम–हिन्दी : चिरायता, चिरेता, चिराइता।

लेटिन : Swertia chirata.

Fam. Gentiaceae (भूनिम्ब कुल)।

संस्कृत : किराततिक्त, काँडतिक्त, किरात, भूनिम्ब, कटुतिक्त, अनार्यतिक्त।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०) तिक्त-स्कन्ध, स्तन्यशोधन, तृष्णा निग्रहण, (च०) आरग्वधादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के निम्नवर्ती उष्ण क्षेत्र कश्मीर से भूटान, नागा खासा पर्वतीय ४-५ हजार फीट ऊँचे क्षेत्रों में एवं दक्षिण भारत में क्षुप पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु सरल **क्षुप** ०.३-१ मी० ऊँचा स्तम्भ कृष्ण जामुनी, ऊपर चतुष्कोणीय **पत्र** अभिमुख, भालाकार ७५-१०० मि० मी० दीर्घ ३७ मि० मी० चौड़े, स्निग्ध **पुष्प** बहुशाखी, प्रशाखी पुष्पदण्ड पर हरित पीत बैंगनी छोटे-छोटे; गुच्छों में होते हैं। **फल** संपुट गोल छोटे-छोटे **बीज** अनेक छोटे-छोटे बहुकोणीय, स्निग्ध होते हैं। **पुष्पफल-काल**-शरद्।

रासायनिक संगठन–पंचांग में चिरातीन आफेलिक एसिड़ दो तिक्त द्रव्य १.४२% एक पीत ग्लुकोसाइड़, चिरैटिन, सुधांश राल पाये जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण कर्म–रस-तिक्त गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामक, दीपन, सारक, विषम ज्वरनाशक, दाहप्रशमन, रक्तशोधन, स्तन्यशोधन, कृमिघ्न, तिक्त पौष्टिक।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर**-अग्निमांद्य, अरोचक, ज्वर, विषमज्वर, जीर्णज्वर, दाह, तृषा, कृमि, विबंध, कास, श्वास, शोथ, रक्तविकार, कुष्ठ, रक्तपित्त वातरक्त, अर्श एवं स्तन्य दोषों में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्रा० क्वाथ ५०-१०० ग्राम, किरातादि क्वाथ, सुदर्शन चूर्ण।

विशेष–इसकी लगभग १८० जातियाँ प्राप्त हैं देश में ३७ जातियाँ; चिकित्सोपयोगी जातियों की संख्या अत्यल्प है। आम पाचक, स्रोतोरोध दूर कर, पाचक, पित्तस्रंसन तथा पित्तशामक होने से ज्वर की विशेषतः विषमज्वर एवं जीर्णज्वर की प्रसिद्ध औषध है। **जाति**–(क) S. angustifolia काण्ड चतुष्कोणीय, तिक्त रस रहित, मज्जक भाग कम (ख) S. alata, मज्जक असली चिरायता सदृश किन्तु तिक्त नहीं। कालमेघ के काण्ड, पत्र, मंजिष्ठा की जड़ों की मिलावट की जाती है।

त्रायमाणा ?

द्रव्यनाम–हिन्दी : त्राणमाणा।

लेटिन : Gentiana kurroo.

Fam. Gentiaceae. (भूनिम्ब कुल)।

संस्कृत : त्रायमाणा, गिरिजा, त्रायन्ती, अनुजा, बलभद्रा।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) तिक्तस्कन्ध (च०) लाक्षादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–कश्मीर तथा हिमालय के उत्तरी पश्चिमी प्रदेशों में ५-१० हजार फीट तक क्षुप उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–पर्वत की चट्टानों के मध्य छोटा क्षुप मृदु; **मूल** प्रकन्द पीताभ चतुष्कोणीय **स्तम्भ** १००-२५० मि० मी० ऊँचा शाखारहित **पत्र** संख्या में ३-४ भूप्रसरी मूलोद्भूत ५०-१२५ मि० मी० दीर्घ ५-१२ मि० मी० चौड़े रेखाकार, **पुष्प** क्षुप के मध्य से दीर्घ पुष्प दण्ड पर एकल नीलवर्ण, श्वेत बिंदु चित्रित **फल** संपुट, आयताकृति होता है।

रासायनिक संगठन–मूल, पंचांग में जेन्शियोपिक्रिन (Gentiopicrin) तिक्त, पारदर्शक द्रव्य २०%, जेन्शियेटिक अम्ल, पेक्टिन, शर्करा पाये जाते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त गुण-लघु, सर **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्तस्रंसन, आमपाचन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, रेचन, यकृदुत्तेजक, शोथहर, रक्तशोधन, मूत्रल, स्तन्यशोधन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–त्वग्रोगों में लेप **आभ्यन्तर**-ज्वर, भ्रम, उदरशूल, गुल्म, अग्निमांद्य, यकृद्विकार, कृमि, शोथ, रक्तविकार, कुष्ठ, विसर्प, मूत्रकृच्छ्र, कृच्छ्रार्त्तव, स्तन्यविकारों में मुख्योपयोगी औषधि है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–मूल, पंचांग **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, क्वाथ ३०-५० ग्राम, त्रायमाणाघृत।

विशेष–संदिग्ध द्रव्य है। प्रस्तुत द्रव्य के अतिरिक्त Delphinium Zalil (गाफिस; असबर) Thaleitrum foliolosum (ममीरा), Ficus hetrophylla (बंगीय त्रायमाणा) आदि द्रव्यों का प्रयोग होता है। **मिलावट** उपर्युक्त द्रव्यों के मूल, कुटकी, ममीरा व जेन्शियाना की अन्य जातियों के मूल मिश्रित किये जाते हैं।

चुक्र

द्रव्य नाम–हिन्दी : चूका, खटपालक।

लेटिन : Rumex vesicarius.

Fam. Polygonaceae (चुक्रकुल)।

संस्कृत : चुक्र, शतवेधिनी, चुक्रिका, पत्राम्ला, रोचनी।

वर्गीकरण–शाक वर्ग (भा० प्र०)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र विशेषतः (पंजाब) पर्वतीय प्रदेशों के निम्नवर्ती क्षेत्रों में क्षुप उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु, मांसल-छोटा **क्षुप पत्र** अण्डाकार, त्रिकोणीय, नुकीले, २५-५० मि० मी० दीर्घ; ३-५ सिराओं से युक्त; अम्ल रस युक्त **पुष्प** श्वेत, गोल **फल** गोल, श्वेत पीतरक्ताभ **बीज** छोटे-छोटे त्रिकोणाकार कृष्ण, चमकीले होते हैं।

रासायनिक संगठन–मूल में Rumicin व lopathin क्षार जो क्रायसोफेनिकअम्ल सदृशक्रिया शील, ताजे क्षुप में आर्द्रता ९२%, शुष्क में कार्बो० ५७.८६%, अलब्युमिन १६.२७% इथर एक्स्ट्रेक्ट ४.६२% क्षार १०.७५% होते हैं।

गुण कर्म–रस- अम्ल, मधुर गुण-रूक्ष, लघु **वि०** अम्ल **वी०** उष्ण। वातशामक, पित्तकफ वर्धक, दीपन, रुचिकर, शूलघ्न, अर्शोघ्न, विषघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–दंतशूल (पत्र रस गंडूष), वृश्चिकदंश, दाह, शोथ, शिरःशूल में लेप **आभ्यन्तर**–अरोचक, तृषा, अग्निमांद्य, हृल्लास, उदरशूल, अर्श, गुल्म (पत्र-पंचांग); अतिसार, प्रवाहिका, आन्त्रव्रण, मूत्रकृच्छ्र, मूत्र दाह में (बीज) रक्तप्रदर (मूल) वृश्चिक विष में पंचांग स्वरस उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, पंचांग, बीज **मात्रा** पंचांग, स्वरस १०-२० ग्राम बीज चूर्ण ३-५ ग्राम।

विशेष–अम्लवेतस् के चुक्र, शतवेधि पर्यायों का उल्लेख होने से कतिपय विद्वान चुक्र को ही अम्लवेतस मानते हैं। वस्तुतः दोनों द्रव्य भिन्न हैं। अनेक विद्वान, चांगेरी, चौपतिया को ही चुक्र मानते हैं। एक उप-जाति (R. hastata)। पत्र स्वरस लेप से वृश्चिक बूंटी स्पर्श जन्य वेदनोपशम होता है।

पीतमूला (रेवन्द चीनी)

द्रव्य नाम–हिन्दी : रेवन्द चीनी।

लेटिन : Rheum emodi.

Fam. Polygonaceae. (चुक्र कुल)।

संस्कृत : पीतमूला, अम्लपर्णी।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय में ४ से १२ हजार फीट ऊंचाई तक, कश्मीर से सिक्किम तक क्षुप उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–इसका **क्षुप** १.२-२ मी० ऊंचा **मूल** स्थूल, स्निग्ध, पीत, धूसर। शाखाएं व्यावर्तित हरित, धूसर, अम्ल रसयुक्त, **पत्र** दीर्घ पत्रवृन्त पर हृदयाकार, अम्लरसयुक्त **पुष्प** अर्क-पुष्पवत् मंजरियों में शाखाग्र पत्रकोणोद्भूत छोटे-छोटे पुष्प पीताभ **फल** लंब, गोल, ८ मि० मी० दीर्घ होते हैं। **पुष्प फलकाल**–वर्षा।

रासायनिक संगठन– मूल में क्राइसोफेनिक एसिड, एमोडिन, रिओटैनिक एसिड, राल, शर्करा, स्टार्च, पेक्टिन, पिच्छिल द्रव्य होते हैं।

गुण कर्म–रस–तिक्त, कटु गुण–तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। पित्तकफस्रंसन, वर्ण्य, शोथहर, यकृत्प्लीहोदरघ्न, यकृदुत्तेजक, कफोत्सारि मूत्रल, गर्भाशयोत्तेजक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–शोथ (वेदना युक्त), न्यच्छ, व्यङ्ग, त्वग्रोगों में लेप **आभ्यन्तर**-कामला, जलोदर, अर्श, यकृच्छोथ, प्लीहाशोथ, कास, श्वास, मूत्राघात, रजोरोध में विशेष प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल, भौमिक काण्ड **मात्रा** ०.१-०.४ ग्राम, रेचनार्थ १-२ ग्राम।

विशेष–इसकी अनेक जातियाँ-R. Radix, R. Palmatum, R. officinale, R. baillow. होती हैं। इसकी लालाग्रन्थि–आमाशयान्त्र, यकृत्प्लीहा, फुफ्फुस, वृक्क, गर्भाशय पर उत्तेजक क्रिया होती है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**–अनियमित, हल्के टुकड़े, घन ठौस, बेलनाकार, २५-२०० मि० मी० दीर्घ, २०-८० मि० मी० व्यास युक्त; एक तल उन्नतोदर,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

त्वक् पीताभ भूरे वर्ण का, लम्बाई में उन्नत रेखाएँ, झुर्रिया, मुख में रखने पर लालास्राव पीत वर्ण का होता है।

गोक्षुर

द्रव्यनाम–हिन्दी : गोखरु, छोटा गोखरु।

लेटिन : Tribulus terrestris.

Fam. Zygophyllaceae. (गोक्षुर कुल)।

संस्कृत : गोक्षुर, श्वदंष्ट्रा, स्थलश्रृंगाटक, चणद्रुम, भद्रकण्टक, इक्षुरक, स्वादुकंटक, त्रिकंटक।

वर्गीकरण–मूत्र विरेचन, शोथहर (च०) कण्टक मंचमूल, वीरतर्वादि, अश्मरीभेदन (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–क्षुप, ऊषर, बालूमिट्टी प्रधान भूमि; राजस्थान, उत्तरप्रदेश, विहार, बंगाल, आदि प्रान्तों में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–भूमि पर प्रसरी **क्षुप**; वर्षायु, बहुवर्षायु **पत्र** ४-७ युग्म, अभिमुख चणक-पत्र सदृश, **पुष्प** छोटे, पीत चक्राकृति पत्रकोणोद्भूत या पत्राभिमुख क्रम में **फल** गोल ५ कोष्ठीय इषत्पंच कोणीय प्रत्येक कोण के ऊर्ध्व एवं अधः सिरे पर २-२ मृदु कांटे; प्रत्येक कोष्ठ में अनेक **बीज** होते हैं। **पुष्पकाल** शरद् **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–फल में स्थिर तैल ३.५% उड़नशील तैल, क्षार अत्यल्प, राल तथा नाइट्रेट्स प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

गुण कर्म–रस-मधुर गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, कफवर्धक, स्नेहन, वेदनास्थापन, शोथहर, मूत्र विरेचनीय, बृंहण, बाजीकर, गर्भस्थापन।

आमयिक प्रयोग—**आभ्यन्तर**—श्वास, कास (वातपैत्तिक), अर्श शूल, हृद्रोग, प्रमेह, मूत्राम्लोत्कर्ष सरक्तमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह, अश्मरी, वृक्क शोथ, बस्तिशोथ, गर्भाशयशोथ, गर्भस्राव, श्वेतप्रदर नपुंसकता, शुक्रदौर्बल्य, वातरक्त, रक्तपित्त में दैनिक चिकित्सोपयोगी द्रव्य है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, मूल, पंचांग **मात्रा** फल चूर्ण ३-६ ग्राम क्वाथ ५०-१०० ग्राम गोक्षुरादि गुग्गुलु, चूर्ण, अवलेह, तैल।

विशेष–वृहत् जाति तिक्त गोक्षुर (Pedalium murex) दक्षिण भारत में उत्पन्न इसके पत्र फल, बड़े फल चतुष्कोणीय प्रत्येक कोण पर एक कण्टक, फल २ कोष्ठीय बीज ४ होते हैं। लघु गोक्षुर की जाति (T. alatus) का फल, पिरामिड़ाकृति, कांटे संयुक्त, सपक्ष प्रत्येक कोष्ठ में २ बीज होते हैं। **अनुसंधान कार्य**–केन्द्रीयायुर्वेदानुसंधान केन्द्र चेरूथुरथी में श्वेत प्रदर में गोक्षुरादि मोदक का प्रयोग जारी है।

धन्वयास (धमासा)

द्रव्यनाम–हिन्दी : धमासा, धमहर।

लेटिन : Fagonia arabica.

Fam. Zygophyllaceae. गोक्षुर कुल।

संस्कृत : धन्वयास, दुरालभा, समुद्रान्ता, गंधारी, कच्छुरा, हरिविग्रहा, दुस्पर्शा।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) तृष्णानिग्रह अर्शोघ्न (च०)

उत्पत्ति स्थान–दक्षिण भारत के प्रदेशों, पंजाब, गुजरात, राजस्थान की रेतीली भूमि में होता है।

वानस्पतिक परिचय–हरिताभ वर्ण, बहुशाखी, विस्तृत, छोटा तीक्ष्ण कांटेदार, **क्षुप**; **पत्र** अभिमुख, अखण्ड, रेखाकार, अण्डाकार, सनाय सदृश २५-४० मि० मी० दीर्घ होता है। प्रत्येक पत्र के पास २ तीक्ष्ण कांटे- **पुष्प** पत्रकोणोद्भूत हल्के गुलाबी **फल** पंच कोष्ठीय, तीक्ष्ण कंटकयुक्त। पत्र, पुष्प, फल, कंटक संधिस्थान चक्राकार **मूल** दीर्घ ताम्रवर्ण का होता है। **पुष्पकाल** शरद्।

गुणकर्म–रस-कषाय, तिक्त, मधुर गुण-लघु, रूक्ष, **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामक, व्रणशोधक, रोपण, विस्फोटशामक, नाड़ीबल्य, संज्ञास्थापन तृषादाहशमन, स्तम्भन, कफघ्न, रक्त शोधन, ज्वरघ्न, मूत्रल।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्य-दुष्ट व्रण, शय्याव्रण, दाह, कण्डू, विसर्प, विस्फोट, मुख-गलरोग **आभ्यन्तर** भ्रम, मूर्च्छा, नाड़ी दौर्बल्य, तृषा, छर्दि, अर्श, जलोदर, अतिसार, ग्रहणी, प्रतिश्याय, श्वास, कास, फुफ्फुस-श्वसनिका प्रदाह, वातरक्त, रक्तपित्त, रक्तविकार, कुष्ठ, ज्वर, मसूरिका, प्रलाप, मूत्रकृच्छ्र, दौर्बल्य, विशेषतः अतिसार जन्य में लाभप्रद है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–पंचांग **मात्रा** ४०-८० ग्राम (फाण्ट) दुरालभादि क्वाथ।

विशेष–दुष्ट व्रणादि में फाण्ट से धावन तथा लेप, मुख गल रोगों में क्वाथगंडूष, श्वास में धूम्रपान, अन्तर्विद्रधि में क्वाथ। गुण धर्म साम्यता से धन्वयास को यवासक मान लेते हैं। वस्तुतः दोनों द्रव्य पर्याय, परिचय कुल भिन्नता रखते हैं। बाजार में इसके बारीक टुकड़े हरित वर्ण के मिलते हैं, जल में भिगोने पर पिच्छिलता उत्पन्न होती है।

बदर (बैर)

द्रव्यनाम–हिन्दी : बेर, बैर, बेरी।

लेटिन : Zizyphus Jujuba.

Fam. Rhamnaceae. बदर कुल।

संस्कृत : बदर, अजाप्रिया, कर्कन्धू, राजवद्री, कोली, द्विपर्णी, उभयकटंका, शृगाल कोली।

वर्गीकरण–फलादि (भा०प्र०) श्रमहर, हृद्य, हिक्कानिग्रहण (च०)।

उत्पत्ति स्थान–राजवदर का उद्यानों में रोपण, क्षुद्र बदर के क्षुप सर्वत्र जलासन्न भूमि में उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सघनशाखी, कांटेदार, मध्यमाकार **वृक्ष; पत्र** लम्ब गोल, ऊर्ध्वपृष्ठ, हरित, निम्नपृष्ठ पाण्डु **पुष्प** हरिताभ श्वेत **फल** अण्डाकार, पीत, नारंगी वर्ण **बीज** १ कठिन होता है। **पुष्पकाल**–शरद् **फल** हेमन्त।

रासायनिक संगठन–फलों में शर्करा पिच्छिल द्रव्य, अम्ल, त्वक् एवं पत्र में Zizyphic acid तथा कषाय द्रव्य होते हैं।

गुणकर्म–रस-मधुर, अम्ल, कषाय गुण-पिच्छिल, गुरु, स्निग्ध, **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, कफनिःसारक व्रणशोधक, रोपण, तृषा शमन, रुचिकर, सर (फल), स्तम्भन (त्वक्), रक्तपित्तशामक, हृद्य, श्रमहर, मूत्रल।

आमयिक प्रयोग-बाह्य-मुखपाक, अग्निदग्धव्रण, दुष्टव्रण नाड़ीव्रण,स्फोट, प्रदाह में पत्र लेप **आभ्यन्तर**-तृषा–अरोचक–छर्दि–विबन्ध (फल) अतिसार (त्वक्) रक्तविकार त्वग्रोग, रक्तपित्त, हृद्दौर्बल्य, श्वास, कास (वातज) मूत्रकृच्छ्र, इक्षुमेह (पत्र) दौर्बल्य, श्रम–अंगमर्द (फल) प्रदर (त्वक्) में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, त्वक् **मात्रा** ५-१० दाने, त्वक् क्वाथ ५०-१०० ग्राम।

विशेष–मुखपाक में पत्र क्वाथ, गण्डूष। फलाकृति से जाति (क) राजबदर-सौवीर (बड़ा बैर) (ख) बदर मध्यमाकृति (ग) क्षुद्रबदर Z. Nummularia. सर्वत्र प्राप्त, फल, छोटे, रक्त वर्ण-गोल होते हैं।

उन्नाव

द्रव्य नाम–हिन्दी : उन्नाव।

लेटिन : Zizyphus Vulgaris.

Fam. Rhamnaceae. (बदरकुल)

संस्कृत : सौवीर, सौवीरक, राजबदर, सौवीरबदर।

उत्पत्ति स्थान–अफगानिस्तान, हिमालय के ६ हजार फीट ऊंचे समीपवर्ती प्रान्त पंजाब, उत्तरप्रदेश, बंगाल में गुल्म पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बेर के समान कंटकित **गुल्म** त्वक् काष्ठ रक्तवर्ण **पत्र** बेर के समान किंतु कुछ बड़े गोल, स्थूल, रोमश, भालाकार मृदु **पुष्प** पत्रकोणोद्भूत मुंडकाकार **फल** झड़बेर के समान अष्ठिफल रक्तवर्ण, मांसल होता है।

रासायनिक संगठन–फल में शर्करा, पिच्छिल द्रव्य। त्वक् पत्र में कषाय द्रव्य, काष्ठ के जलीय

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सार में Ziziphotannic acid कषाय, शर्करा होते हैं।

गुण कर्म–रस–मधुर, कषाय गुण–पिच्छिल, गुरु, स्निग्ध, **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्त-शामक, तृष्णा, दाह शमन, स्नेहन, कफनिःसारक, सारक, रक्तपित्तशामक, रक्तशोधन, मूत्रल।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–दाह, नेत्राभिष्यन्द में पत्र लेप, विस्फोट में त्वचा लेप, **आभ्यन्तर** तृषा, दाह, वातजकास, श्वास, प्रतिश्याय, शोथ, क्षय, तृष्णा, अरोचक, विबन्ध, ज्वर, रक्तपित्त, रक्त-विकार, मूत्रकृच्छ्र एवं दौर्बल्य में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, **मात्रा** ५–७ दाने, शर्बत उन्नाव, लउकसपिस्ता।

विशेष–अफगानिस्तान में उत्पन्न उन्नाव उत्तम होता है। मधुर, कषाय, शीतवीर्य होने से वात-पैत्तिक विकारों की मुख्यौषधि है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**–पूर्ण पक्व, फल रक्तवर्ण, बड़ा, मांसल, मृदु, अधिक गूदा युक्त, स्वाद में मधुर, कषाय न्यून।

श्लेष्मातक

द्रव्य नाम–हिन्दी : लिसोड़ा, लहसवा।

लेटिन : Cordia myxa.

Fam. Boraginaceae (श्लेष्मातक कुल)।

संस्कृत : श्लेष्मातक, बहुवार, उद्दाल, पिच्छिल, शैलु, भूतवृक्षक।

वर्गीकरण–फलादि (भाव प्रकाश) विषघ्न (चरक)।

उत्पत्ति स्थान–इसके वृक्ष सर्वत्र मिलते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष**; ८-१० मी० ऊंचा, **काण्ड** वक्र, धूसर **पत्र** गोल, १००–१२५ मि० मी० व्यासयुक्त, लट्वाकार, चर्मवत् ४–६ युग्म सिराऐं; कुण्ठिताग्र, खर, निम्नपृष्ठ पांण्डु **पुष्प** छोटे श्वेत गुच्छों में **फल** पीत, मांसल, गोल, नुकीले, (मौलश्री सदृश) जिसमें पिच्छिल, सान्द्र, मधुरमज्जा होती है। **पुष्प काल** बसन्त **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–फल मज्जा में पिच्छिल द्रव्य Mucilage प्रभूत मात्रा में होता है।

गुण कर्म–फल–रस मधुर, गुण–स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, स्नेहन, कफोत्सारि, श्वासनलिकोद्वेष्टहर, रक्तपित्तशामक, मूत्रल, विषघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-व्रण, विसर्प, विस्फोट में लेप **आभ्यन्तर**-वातज पैत्तिक कास, प्रतिश्याय, श्वसनिका शोथ-प्रदाह; रक्तपित्त, विसर्प, कोष्ठगत रौक्ष्यता, विबंध, मूत्रकृच्छ्र विकारों में दैनिक चिकित्सोपयोगी द्रव्य है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–फल त्वक् **मात्रा** पानक १०-२० ग्राम, त्वक् क्वाथ ३०-५० ग्राम, लउकस-पिस्ता।

विशेष–फल पिच्छिल, स्निग्ध होने से श्वसन संस्थान के रौक्ष्य प्रदाहजन्य कास शोथादि में पानक कल्पना उपयोगी है। त्वक् का प्रयोग विष, कृमि, ग्रहणी, अतिसार में प्रशस्त है।

गावजबाँ

द्रव्यनाम–हिन्दी : गाजवाँ, गाजवाँ।

लेटिन : Onosma bracteatum.

Fam. Boraginaceae. (श्लेष्मातक कुल)

संस्कृत : गोजिह्वा, गोभी, खरपर्णिनी।

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमी हिमालय में कश्मीर से कुमाऊं तक १०-११ हजार फीट तक क्षुप पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहु वर्षायु छोटा **क्षुप** ऊंचा ०.१-०.२ मी०; काण्ड कोणीय श्वेत बिन्दु युक्त **पत्र** मांसल, गोजिह्वाकृति, खर तथा शाखाओं एवं पत्तों पर साबुदाने की तरह चिन्ह होते हैं। **पुष्प** गुच्छों में नील बाद में रक्ताभ, गुलाबी **फल** दृढ़ फल (Nut) होता है।

रासायनिक संगठन–पत्तियों में पिच्छिल द्रव्य प्रभूत मात्रा में तथा सोडियम पोटाशियम, कैल्शि-यम, लौह के लवण होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण कर्म–रस-मधुर, तिक्त गुण–पिच्छिल, गुरु स्निग्ध, **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, स्नेहन, कफोत्सारि, श्वासनलिकामार्दवकर, सारक, हृद्य, मूत्रल, बृंहण।

आमयिक प्रयोग–प्रतिश्याय, कास, पार्श्वशूल, श्वासप्रणाली शोथ एवं प्रदाह, हृद्दौर्बल्य, उपदंश, आमवात, रक्त विकार, कामला, विबंध, मूत्रकृच्छ, ज्वर, दौर्बल्य में दैनिक चिकित्सोपयोगी औषध है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–पत्र पंचांग, पुष्प **मात्रा** पत्र, पंचांग चूर्ण ३–६ ग्राम; गोजिह्वादि क्वाथ, अर्क गावजबां, खमीरा गावजबां।

विशेष–प्राणवह, अन्नवह, रस रक्तवह एवं मूत्रवह स्त्रोतस् में स्नेहन, शामक क्रिया करने से उपर्युक्त स्रोतसों की व्याधियों में मुख्य–उपयोग होता है। उन्माद, हृत्स्पंदन में पुष्प प्रयोग होता है।

कतक (निर्मली)

द्रव्य नाम–हिन्दी : निर्मली।

लेटिन : Strychnos potatorum.

Fam. Loganiaceae (कुपीलु कुल)।

संस्कृत : कतक, पयःप्रसादी।

वर्गीकरण–फलादि (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–बंगाल, बिहार, तमिलनाडु, दक्षिण भारत में विशेषतः वृक्ष उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–कुचला सदृश **वृक्ष** किन्तु अधिक ऊंचा १३ मी० तक; **पत्र** अण्डाकार ५०–६० मि० मी० दीर्घ, २५ मि० मी० विस्तृत **पुष्प** सुगंधि पीत या श्वेत **फल** गोल, तिन्दुक सदृश, कृष्ण वर्ण **बीज** गोल, किंचित् चिपिटाकृति, उन्नतोदर, बादामी धूसर वर्ण होते हैं।

रासायनिक संगठन–बीजों में कुचला सत्व (Strychnine) नहीं; किन्तु कुचले के समान Brucine तथा श्वेतसार होता है।

गुण कर्म–रस-कषाय, मधुर, तिक्त गुण-विशद लघु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातश्लेष्महर, चक्षुष्य, लेखन, कृमिघ्न, वामक (अधिक मात्रा में) स्तम्भन, मूत्रल।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-वातश्लेष्म प्रधान नेत्र विकार (अभिष्यन्द-नेत्रशुक्ल-प्रदाह तिमिर-कंडू-क्लेद) दृष्टिमांद्य **आभ्यन्तर**–आंत्रकृमि, गुल्म, रक्तार्श, अतिसार, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह, इक्षुमेह में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज **मात्रा** बीज चूर्ण १-२ ग्राम वमनार्थ ५ ग्राम।

विशेष–लेखन होने से नेत्रविकारों में मधु के साथ घिसकर अंजन प्रयोग। जल-शुद्धि के लिए जल में घिसकर डालने से गदले द्रव्य तलस्थ होते हैं। अधिक मात्रा में प्रयोग से वामक है।

कुचला

द्रव्य नाम–हिन्दी : कुचला, कुचिला।

लेटिन : Strychnos nuxvomica.

Fam. Loganiaceae. (कुपीलु कुल)।

संस्कृत : कुपीलु, कारस्कर, विषद्रुम, विषतिन्दुक, काकतिन्दुक।

उत्पत्ति स्थान–देश के उष्ण प्रांतों में विशेषतः तमिलनाडु, उड़ीसा, बिहार, कैरल, गोवा के वन्य स्थानों में प्रचुर मात्रा में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–इसका सर्वदा हरित **वृक्ष** १०-१५ मी० ऊंचा; **पत्र** अभिमुख क्रम में लट्वाकृति,कुण्ठिताग्र चमकीला,३-५ उन्नत सिरायें युक्त **पुष्प** श्वेत हरिताभ शाखाग्र **फल** नारंगी वर्ण (पक्व) तिन्दु के समान **बीज** ३-५ कठिन गोल एक पृष्ठ उन्नतोदर एक पृष्ठ नतोदर बटन के समान श्वेत धूसर होते हैं। **पुष्पकाल** बसंत **फल** हेमन्त।

रासायनिक संगठन–बीज मज्जा में २.६-३% तक क्षार तत्त्व; स्ट्रिकनीन (Strychnine) १.२५% ब्रुसीन (Brucine) १.७%, लोगानिन (Loganine) ग्लुकोसाइड, प्रोटीड ११%, स्नेह गोंद पाये जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण कर्म–रस-तिक्त कटु, गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, वेदना-स्थापन, नाड़ीबल्य, दीपन, पाचन, शूलहर, हृद्य, श्वसोच्छ्वास केन्द्रोत्तेजक, स्वेदहर, ज्वरघ्न, (नियत-कालिक) कामोत्तेजक, तिक्तपौष्टिक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-वातव्याधि में बीज लेप **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य ग्रहणी, अर्श, उदरशूल, कृमि, हृद्रोग, कास, श्वास, पक्षाघात, अर्दित, आमवात, गृध्रसी, वातव्याधि, कुष्ठ, रक्तविकार, ध्वजभङ्ग, क्लैब्य, शय्यामूत्र, विषम ज्वर में दैनिक चिकित्सो-पयोगी एवं आत्ययिकावस्था में प्रभावशाली औषधि है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीजमज्जा **मात्रा** ६०-२४० मि० ग्रा० विषतिंदुक वटी, कृमिमुद्गर रस, अग्नितुण्डी वटी, लक्ष्मी विलास रस।

विशेष–हृत्कोष्ठ, हृत्कपाटों के जीर्ण रोगों में हृत्शैथिल्य, हृद्विस्तृति, शोथ, यकृत्वृद्धि, मूत्रा-ल्पाता में इसका सत्व अन्य हृद्य औषधियों के साथ विशेष लाभप्रद है। न्युरेस्थेनियाँ में भी इसका प्रयोग हितावह है। श्वसनिका प्रदाह, फुफ्फुस प्रदाह, श्वास में उत्तेजक, श्लेष्मघ्न औषधियों के साथ प्रयोग होता है। यक्ष्मा में रात्रि स्वेद में इससे स्वेद नहीं आता है। कुचला वातव्याधियों की मुख्यौषधि हैं। **विषाक्त लक्षण** अशुद्ध या मात्राधिक्य प्रयोग से आक्षेप, धनुर्वात के समान लक्षण, द्रुत आक्षेप काल में श्वास एवं नाड़ी गति मन्द, ५-६ आक्षेप आने के बाद श्वासारोध से मृत्यु। **निवारण** आमाशय शोधन मदनफल, जिंकसल्फेट द्वारा वमन करवाकर प्रति-विष द्रव्य कपूर, अफीम, बेलाडोना एवं घृत, दुग्ध एवं, अण्डे का प्रयोग करना चाहिए।

शुद्र द्रव्य परीक्षा–२५ मी० मी० व्यास युक्त, गोल, चिपिटाकृति, अतिकठिन, बाहर से खाकस्तरी हरिताभ, बीजावरण पर मृदु सघन रोमश, पृष्ठतल पर थोड़ा उन्नतोदर, ऊपरी तल पर अवनतोदर, गोल किनारा, तनु, द्विदलों के मध्य जीभी होती है। स्वाद में अतितिक्त। **जाति** S. blanda अल्प तिक्त बीजाकृति कुचला सदृश होती है।

मायाफल (माजूफल)

द्रव्यनाम–हिन्दी : माजूफल।

लेटिन : Quercus infectoria

Fam. Cupuliferae (मायाफल कुल)।

संस्कृत : मायाफल, छिद्रफल, केशरंजन, शिशुभैषज।

उत्पत्ति स्थान–ईरान, सीरिया, फारस में उत्पन्न एवं इन देशों से आयात होता है।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकृति वृक्ष **पत्र** दीर्घ आयताकार, दंतुरित **फल** छोटे गोल। वृक्ष की शाखाओं पर Cynips Gallae tinctoria नामक कीट से उत्पन्न (गृह) ग्रन्थि को माजूफल कहते हैं।

रासायनिक सगठन–इसमें प्रचुर मात्रा में कषाय द्रव्य गैलो टैनिक एसिड ५०-५७%, टैनिक एसिड ३% होता है।

गुण कर्म–रस-कषाय गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामक, लेखन, व्रणरोपण, स्तम्भन, शोणितास्थापन, मूत्रस्तम्भन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-व्रण, रक्तस्राव में चूर्ण अवधूलन, गुदभ्रंश, योनिभ्रंश, रक्तार्श में चूर्ण, पोट्टली धारण एवं लेप प्रयोग; श्वेत प्रदर में उत्तर वस्ति प्रयोग। मुख दन्तरोगों में गंडूष, **आभ्यन्तर** अतिसार, ग्रहणी रक्तपित्त, पूयमेह, बहु मूत्र, श्वेतप्रदर रक्त प्रदर में उपयोगी है।

प्रयज्यो अंग कल्पनाएं—कीट गृह **मात्रा** १-३ ग्राम।

विशेष–सूक्ष्म केशिकाओं तथा श्लेष्मल कला संकोची होने से विभिन्न रक्त पूय, स्रावी रोगों में में प्रमुखतया प्रयोग होता है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षण** उन्नाव सदृश, बाहर से हरित वर्ण, नीलाभ, अन्दर से पीत-श्वेताभ भूरे वर्ण का, बाह्यतल छोटे-छोटे

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उभार युक्त, गुरु, लम्बाई में समकर्तन से एक छोटा खात, जिसमें कीट स्थित, कीट के निकलने पर आधार पर छिद्र युक्त होता है। चिकित्सार्थ छिद्र-रहित माजूफल ग्रहणीय है।

भोजपत्र

द्रव्यनाम–हिन्दी : भोजपत्र, भूजपत्र।

लेटिन : Betula bhojapattra.

Fam. cupuliferae. (मायाफलकुल)।

संस्कृत : भूर्जपत्र, चर्मी, बहुवल्कल, चित्रपत्र, विन्दुपत्र, लेख्यपत्रक, बहुपुट, भूतघ्न।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्र०)।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय में कश्मीर से सिक्किम भूटान तक ७-१३ हजार फीट तक वृक्ष पाये जाते है।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार **वृक्ष**; त्वक् कागज के समान तनु, अनेक स्तर युक्त, स्निग्ध, चमकीली, श्वेत या श्वेत रक्ताभ; **पत्र** लट्वाकार, आयताकार, लम्बाग्र, दंतुरित, बिन्दुयुक्त **पुष्प** छोटे -छोटे मंजरी में आते हैं। **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल**-शरद्।

रासायनिक संगठन–त्वक् में Betulin क्षार एवं एक उड़नशील तैल होता है।

गुण कर्म–रस-कषाय गुण-स्निग्ध, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। त्रिदोषशामक, पूतिघ्न, जीवाणुघ्न, व्रणशोधन-रोपण, वेदनास्थापन,, आक्षेपहर, विष-घ्न प्रधान कर्म हैं।

आमयिक प्रयोग–बाह्य:-कर्णशूल कर्ण स्राव में क्वाथ से प्रक्षालन एवं कर्ण बिन्दु प्रयोग; व्रण में प्रक्षा-लन-धूपन प्रयोग **आभ्यन्तर**-अपस्मार, योषापस्मार, उन्माद, आक्षेपक, अतिसार, प्रवाहिका, रक्तपित्त, कास, मेदोरोग एवं विषविकारों में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ–त्वक् **मात्रा** क्वाथ ५०-१०० ग्राम, चूर्ण १-३ ग्राम।

विशेष–मेध्य, आक्षेपहर, वातशामक होने से उन्माद, अपस्मार, आक्षेपप्रधान रोगों में मुख्यतया प्रयोग होता है। कीटाणुनाशक, पूतिघ्न, होने से विभिन्न व्रणों में उपयोगी है।

कुंकुम (केशर)

द्रव्यनाम–हिन्दी : केसर, केशर।

लेटिन : Crocus sativus.

Fam. Iridaceae (केशर कुल)।

संस्कृत : कुङ्कुम, काश्मीरज, वाह्लीक, शोणिताभिध, घुसृण, रक्त, पीतक।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा० प्र०), शोणिता-स्थापन (चरक) एलादि (सुश्रुत)

उत्पत्ति स्थान–कश्मीर के पम्पूर ४३०० फीट ऊँचाई पर तथा जम्मू के किश्तवाई में खेती की जाती है। इसका आयात स्पेन, फ्रांस, ईरान, इटली आदि देशों से होता है।

वानस्पतिक परिचय–वहुवर्षायु **क्षुप** ०.५ मी० तक ऊँचा; **मूल** के नीचे प्याज के समान कन्द **पत्र** मूलपत्र घास के समान लम्बे, नीचे की ओर सघन **पुष्प** सुन्दर नील लोहित गुच्छों में या एकाकी, पुंकेशर पीतवर्ण, स्त्रीकेशर रक्तवर्ण २५ मि० मी० दीर्घ होते हैं। **फल** संपुट (Capsule) **पुष्पकाल** अक्टूबर, नवम्बर।

रासायनिक संगठन–केशर में उड़नशील तैल ८-१३% तीन रवेदार द्रव्य, प्रिकोकोसीन, तिक्त सत्व, क्रोसीन, ग्लुकोसाइड, मोम, शर्करा एवं आर्द्रता होती है।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त गुण-लघु, स्निग्ध, **वि०** कटु **वी०** उष्ण। त्रिदोषहर, वर्ण्य, मनः प्रसादकर, रुचिकर, लेखन, वेदनास्थापन, नाड़ीबल्य, शोणितास्थापन, हृद्य, मूत्रजनन, आर्त्तवजनन, तिक्तपौष्टिक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-शिरःशूल, त्वग्वैवर्ण्य विकारों में लेप होता है।

आभ्यन्तर–अरोचक, अग्निमांद्य, छर्दि, यकृद्वि-कार, हृद्दौर्बल्य, त्वग्रोग, कास मूत्राघात, रजोरोध,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कष्ट प्रसव सूतिकाविकार, ध्वजभंग, दौर्बल्य एवं वातव्याधि में विशेष प्रयोग होता है। आत्ययिक चिकित्सा में भी विशेषोपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–स्त्रीकेशर के शुष्क वर्तिकाग्र **मात्रा** १२५-५०० मि० ग्राम०, कुंकुमादि घृत, केशरादि वटी, कुंकुमादि तैल।

विशेष–पुष्प के स्त्रीकेशरों को विशेष विधि द्वारा शुष्क करते हैं। इनके अग्रभाग वर्तिकाग्र ही केसर हैं। वर्तिकाग्र में ३ छत्राकार सूत्र २५ मि० दीर्घ गहरे रक्त वर्ण, रक्ताभ भूरे वर्ण, किनारे दंतुरित, लहरदार, कुक्षिवृन्त १० मि० मी० ठौस, बेलनाकार, पीताभ, नारंगी वर्ण होते हैं। केशर को स्प्रीट में डालने पर विलयन रंगीन किंतु केसर तंतु प्राकृत वर्ण में रहते हैं। गंधकाम्ल में डालने से केशर तन्तु अविलम्ब नील वर्ण हो जाते हैं। विशेष शुद्धाशुद्ध परीक्षण के लिए लेखक कृत 'द्रव्य परीक्षा' पुस्तक दृष्टव्य है। **मिलावट**–अन्य अंग कुक्षिवृन्त, दलपुंज के सूत्राकार टुकड़े, पुंकेसर पलाश एवं कुसुम्भ के पुं एवं स्त्रीकेशर पुराने केशर भारवृद्धि हेतु स्थिर तैल, ग्लिसरीन, ग्लुकोज मिश्रित किये जाते हैं।

पुष्कर मूल

द्रव्यनाम–हिन्दी : पोखर मूल, पोहकर मूल।

लेटिन : Inula racemosa.

Fam. Compositae (भृंगराज कुल)।

संस्कृत : पुष्करमूल, पौष्कर, पद्मपत्र, कश्मीर, कुष्ठभेद।

उत्पत्ति स्थान–कश्मीर में प्रायः कुष्ठ के साथ क्षुप उत्पन्न होते हैं तथा कश्मीर सरकार द्वारा खेती भी की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–इसके **क्षुप** आकृति में बड़े, कुष्ठ के समान लगभग ०.५-१.५ मी० ऊँचे **स्तम्भ** रोमश नलिकाकृति (Fistular) **पत्र** सदीर्घवृन्त बड़े २०-४० से० मी० दीर्घ; १२-२० से० मी० चौड़े अण्डाकृति, आयताकृति, गहरे खण्डित, **पुष्प** सूर्यमुखी सदृश होते हैं। **मूल** कुष्ठ सदृश गहरा धूसरवर्ण, चिपटा, कठोर, झुर्रीदार, भग्न उपमूल चिन्हाँकित कर्पूर सदृश गंध युक्त होता है।

रासायनिक संगठन–मूल में एक प्रकार का कर्पूर सदृश पदार्थ तथा राल के समान द्रव्य एक किंचित् तिक्त सत्व पाया जाता है।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त गुण-तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, वेदनास्थापन, नाड़ीबल्य, शोथहर-स्वेदजनन, दीपन, पित्तसारक, शूलशमन, हिक्का-श्वासहर, गर्भाशयोत्तेजक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-आभ्यन्तर प्रयोग कुष्ठ के समान हैं। विशेषतः ज्वर, शोथ, पार्श्वशूल, श्वास, कास, हिक्का, अरोचक, पित्ताशय विकृतियों एवं अनार्त्तव में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल **मात्रा** चूर्ण ०-३-१.५ ग्राम, पुष्करादि चूर्ण, पुष्करमूल हिंगुल।

विशेष–कुष्ठ एवं पुष्कर मूल में वानस्पतिक एवं गुण कर्मसाम्यता होने से इसे कुष्ठ भेद कहा गया है। वस्तुत दोनों द्रव्य पृथक् २ हैं। वर्णित पुष्कर मूल में Irisgermanica, Iris versicolor costus speciosus. जड़ों की आकृति साम्य से मिलावट की जाती है।

मदयन्तिका (मेंहदी)

द्रव्य नाम–हिन्दी : मेंहदी।

लेटिन : Lawsonia inermis.

Fam. Lythraceae (मदयन्तिका कुल)।

संस्कृत : मदयन्तिका, रक्तरंगा, रंजका, नखरंजनी।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र उद्यानों में क्षुप लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–गुल्माकृति **क्षुप**; **पत्र** अभिमुख, सनाय सदृश, स्निग्ध, मध्यसिरासमुन्नत, पीसने पर रक्त वर्ण, **पुष्प** शाखाग्र गुच्छों में श्वेत,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सुगंधि निदल-दल ४ पुंकेशर ८ **फल** गोल, मटर सदृश, स्निग्ध, चमकीले, जामुनी वर्ण ४ कोष्ठीय; **पुष्पकाल** वर्षा **फल** शरद् ।

रासायनिक संगठन–पत्रों में रंजक द्रव्य १२-१५%, Hennotannie acid, कषाय द्रव्य, हरिताभ वर्ण, एकराल, पुष्पों में सुगन्धित तैल, बीजों में स्थिर तैल होता है ।

गुण कर्म–रस–तिक्त, कषाय गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत । पित्तकफशामक, व्रणरोपण, केशरंजन, दाहशमन, (बाह्य प्रयोग से) स्तम्भन, रक्तशोधन ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-पालित्य, मुखपाक, शोथ-क्षतव्रण, कुष्ठ, त्वग्रोगों में लेप । पैत्तिक शिरःशूल हस्तपादतल दाह में पत्र का लेप प्रयोग **आभ्यन्तर**–प्रवाहिका, रक्तातिसार, शोथ, पूयमेह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, उपदंश, त्वग्रोग, कुष्ठ (पत्र) अनिद्रा, नाड़ी दौर्बल्य–हृद्रोग, ज्वर में (पुष्प फाण्ट) प्रयोग होता है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, पुष्प, बीज **मात्रा** पत्र, पुष्प स्वरस ५-१० ग्राम ।

विशेष–जाति विलायती मेंहदी (Myrtus Communis) लवंग कुल का ऊंचा गुल्म, पत्र, पुष्प, फल, मेंहदी सदृश होते हैं । यह विशेषतया अपस्मार, फुफ्फुस, वृक्क विकारों में उपयोगी । पत्र, पुष्प से Myrtal oil प्राप्ति । मेंहदी का पालित्य में नील पत्र के साथ लेप; मुख पाक में गंडूष करवाना चाहिए ।

धातकी (धाय)

द्रव्य नाम–हिन्दी : धाय, धाय के फूल ।

लेटिन : Woodfordia fruticosa.

Fam. Lythraceae. मदयंतिका कुल ।

संस्कृत : धातकी, ताम्रपुष्पी, वन्हिज्वाला, बहुपुष्पी, धातुपुष्पी, पार्वती ।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०) संधानीय, पुरीष संग्रहणीय, मूत्रविरजनीय (च०) प्रियंग्वादि (सुश्रुत) ।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र पर्वतीय क्षेत्रों में ५ हजार फीट की ऊंचाई तक क्षुप पाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–गुल्म जातीय सघनशाखी **क्षुप** ३–४ मी० ऊंचा; नवीन शाखाओं पर कृष्ण बिन्दु चिन्हांकित **पत्र** अवृन्त, अभिमुख २ या ३ चक्रों में भालाकृति, पत्राग्र दीर्घ नुकीला, ५०-१०० मि० मी० दीर्घ; २०–३० मि० मी० चौड़े पीताभ हरित वर्ण (फीके वर्ण के) निम्न पृष्ठ रोमशः **पुष्प** ६ दली, चमकीले, रक्तवर्ण, कीपाकृति गुच्छों में बाह्यदल पुंज स्थायी **फल** संपुट, अण्डाकार **बीज** अनेक होते हैं । **पुष्पकाल** शीत **फल** वर्षा ।

रासायनिक संगठन–पुष्पों में टेनिक एसिड २०%; क्षुप से एक प्रकार का गोंद प्राप्त होता है । पुष्पों से लाल रंग प्राप्त होता है ।

गुण कर्म–रस-कषाय, कटु; गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत । पित्तकफशामक ज्वरघ्न, दाह शमन, स्तम्भन, सन्धानीय, शोणितस्तम्भन, मूत्र-विरजनीय ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-रक्तस्राव, दुर्गन्धित व्रण, दाह में लेप एवं चूर्ण अवधूलन, दग्धव्रण में तैल के साथ लेप **आभ्यन्तर**-रक्तातिसार, प्रवाहिका, रक्तार्श, रक्तपित्त, विसर्प, श्वेत रक्तप्रदर में दैनिक चिकित्सोपयोगी औषधि है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–पुष्प **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम, धातक्यादि तैल, चूर्ण, धातक्यादि क्वाथ ।

विशेष–पुष्प कषाय, शीत होने से सूक्ष्म रक्त वाहिनी (केशिकाएँ) संकोची एवं रक्त स्कन्दन (Coagulant) से रक्त, पूय, लसीका स्रावी रोगों में इसका मुख्यतः प्रयोग होता है । आसवारिष्ट में शीघ्र किण्वीकरण हेतु पुष्पों का प्रयोग किया जाता है ।

मांसी (जटामांसी)

द्रव्यनाम–हिन्दी : जटामांसी, बालछड़ ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लेटिन : Nardostachys jatamansi.

Fam. valerianaceae. (मांसी कुल)।

संस्कृत : जटामांसी, तपस्विनी, भूतजटा, नलदा, सुलोमशा, मांसी।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा० प्र०) संज्ञास्थापन (चरक)

उत्पत्ति स्थान–कश्मीर, हिमालय के वन्य क्षेत्रों में कुमाऊं, गढ़वाल से सिक्किम तक ६-१७ हजार फीट तक क्षुप स्वयं उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु गुल्माकृत्ति **क्षुप** ०.२-०.५ मी० ऊंचा; मूल से अनेक शाखाएँ ०.४ मी० दीर्घ, तनु रोमावृत्त, **पत्र** मृदु रोमशः लम्बे, काण्ड पत्र १-२ युग्म अवृन्त आयताकार मूलपत्र अभिलट्वाकृति, आयताकृति १५०-१७५ मि० मी० दीर्घ २५ मि० मी० चौड़े, अनुलम्ब शिराएँ युक्त **पुष्प** शाखाग्र, श्वेत गुलाबी, मुण्डाकार गुच्छों में **फल** छोटे गोल श्वेत रोमश होते हैं।

रासायनिक संगठन–मूल में पीताभ, हरित वर्ण उड़नशील तैल जिसकी मात्रा २%; कर्पूरगंध सदृश, तिक्त; एक मणिभीय जल में अघुलनशील अम्ल द्रव्य, रालसदृश द्रव्य ६% होता है।

गुण कर्म-रस-तिक्त, कषाय, मधुर गुण-तीक्ष्ण, लघु, स्निग्ध **वि०** कटु **वी०** शीत। त्रिदोषशामक, मेध्य, संज्ञास्थापन, मनः प्रसादकर, आक्षेपहर, वेदना-स्थापन, स्वेदहर, हृद्बल्य, रससंहवनोत्तेजक, शोथहर, मूत्रल।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-शोथ, दाह, वेदना में लेप, स्वेदाधिक्य में चूर्ण अवधूलन **आभ्यन्तर**–अनिद्रा, क्लान्तावस्था, न्यूरेस्थेनिया, मूर्च्छा, अपस्मार, आक्षेप, हृद्द्रव, हृद्दौर्बल्य, कामला, उदरशूल, यकृत्वृद्धि, सर्वांगशोथ, गर्भाशय शोथ, पीड़ितार्त्तव, ज्वर (सान्निपातिक) में यह विशेष प्रभावशाली औषधि है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल, भौमिक, काण्ड

मात्रा चूर्ण १-३ ग्राम फाण्ट २०-३० ग्राम, मांस्यादि क्वाथ, सारस्वतघृत।

विशेष–मूल धूसर कृष्ण जटासदृश दीर्घ, सघन रोमावृत, ग्रन्थियुक्त, तीव्रगंधि। अनुप्रस्थकर्त्तन से काष्ठीय भाग भूरे वर्ण रक्ताभ, कोणाकृति, काष्ठ भाग ४ Madullary bands द्वारा त्वचा से संसक्त होता है। **मिलावट** अन्य जातियों के मूल मिश्रित किये जाते हैं। सन्निपात ज्वरमें तापहर, हृदयोत्तेजक, वातनाड़ीसंस्थान शामक, पोषक होने से मुख्यतः प्रयुक्त होती है। **अनुसंधान कार्य** (१) क्षेत्रीय आयुर्वेदीय अनुसंधान केन्द्र जयपुर में तमकश्वास के वेग काल में जटामांसी का प्रयोग वेग शमन के लिए किया गया है। (२) फाण्टविधि से इसका प्रयोग शंखपुष्पी के समान रक्तदबाव को कम करता है। (३) यह स्वल्प मात्रा में उत्तेजक तथा अधिक मात्रा में बिना विषाक्त प्रभाव के अवसादक है।

तगर

द्रव्य नाम–हिन्दी : तगर।

लेटिन : Valeriana wallichii

Fam. valerianaceae. (मांसी कुल)

संस्कृत : तगर, कुटिल, पिण्डतगर, कालानुसार्य, नत, दण्डहस्ती, नहुष।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा० प्र०) तिक्तस्कन्ध शीतप्रशमन (च०) एलादिगण (सु०)

उत्पत्ति स्थान–हिमालय में कश्मीर से भूटान तक ४-१२ हजार फीट तक; नागा, खासिया की पहाड़ियां आसाम में स्वयंजात क्षुप पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहु वर्षायु रोमश **क्षुप** स्तम्भ छोटा गुच्छेदार **पत्र** मूलपत्र लट्वाकार, तीक्ष्णाग्र, दंतुर, तरंगायित रोमश स्तम्भ पत्र छोटे एवं अल्प **पुष्प** दीर्घ पुष्पवृन्त पर श्वेत, गुलाबी, मुण्डाकृति होते हैं। **पुष्पकाल** जौलाई **फल** अक्टूबर।

रासायनिक संगठन–मूल में उड़नशील तैल ०.५-२.१२%, पीत द्रव्य, तिक्त सत्व, राल, ग्लुकोसाइड़ होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण कर्म–रस-तिक्त, कटु, मधुर, कषाय, गुण-लघु, स्निग्ध **वि०** कटु **वी०** शीत। त्रिदोषशामक, वेदनास्थापन, संज्ञास्थापन, हृद्य, रससंवहनोत्तेजक अल्प मात्रा में, अधिक मात्रा में हृद्गति एवं रस संवहनावसादक; श्वासहर, रक्तशोधक, शीतप्रशमन, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-व्रण अस्थिभग्न, शोथ, आमवात में लेप **आभ्यन्तर** अपस्मार, आक्षेप, वातव्याधि, विसर्प, रक्तविकार, यकृच्छोथ, कामला तमकश्वास, श्वसनिकासंकोचजन्यश्वास, कुक्कुरकास, हृद्दौर्बल्य, क्लैब्य, कष्टार्त्तव, जीर्णज्वर एवं अस्थि भग्न में विशेष प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल (मूल स्तम्भ) **मात्रा** चूर्ण ०·५-१ ग्राम, फाण्ट १०-३० ग्राम, मांस्यादि क्वाथ, तगरादि फाण्ट।

विशेष–विषाक्त लक्षण–अधिक सेवन से भ्रम, छर्दि, हिक्का उत्क्लेशादि विकार होते हैं।

निवारण–द्राक्षा, दुग्ध, घृत स्नेह द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**–मूल बेलना कृति दोनों तल चपटे, उपमूल या इनके चिन्हांकित, तोड़ने पर खट से टूटता है। अनुप्रस्थ कर्तन (T.S.) से कटे तल पर मज्जक चक्र सदृश्य Xyllum के १२–१५ बंडल होते हैं। **मिलावट**–(V. harduickii) के मूल मिश्रित होते हैं। **अनुसंधान कार्य**–केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान केन्द्र चेरूथुरथि में तगर में मध्य नाड़ीतन्त्र पर अवसादक तथा मांसपेशियों पर शैथिल्यकर तत्त्व प्राप्त किया गया है।

अपामार्ग

द्रव्यनाम–हिन्दी : चिरचिरा, आँधीझाड़ा।

लेटिन : Achyranthes Aspera.

Fam. Amaranthaceae. (अपामार्ग कुल)

संस्कृत : अपामार्ग, प्रत्यक्पुष्पा, अधःशल्य, शिखरी, किराही, खरमंजरी, दुर्ग्रहा।

वर्गीकरण–कृमिघ्न, शिरोविरेचन, (च०) अर्कादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र शुष्क एवं ऊपर भूमि में प्रायः समूहवद्ध स्वयं जात क्षुप पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **क्षुप** ०.३–१ मी० ऊंचा स्तंभ शाखाएँ रेखाकार सपर्व; **पत्र** अभिमुख, अभिलट्वाकार, नुकीले, अधर पृष्ठ श्वेत, रोमशः **पुष्प** दीर्घ पुष्पदंड पर अधोमुख मंजरी में हरिताभ रक्त श्वेत वर्ण **फल** धूसर लम्बे तीक्ष्ण रोमश **बीज** चांवल सदृश होते हैं। **पुष्पकाल** शरद् **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–पंचांग में क्षार विशेषतः पत्र में २१.५% शाखाओं में ३८% मूल में २८·५% तथा लौह, सुधांश, गंधक, लवण होते हैं।

गुण कर्म–रस–कटु, तिक्त, गुण–तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष, **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्तस्रंसन, लेखन, वामक,स्वेदजनन, अम्लतानाशक, मूत्रल, अश्मरीघ्न, शोथहर, विषघ्न, कटुपौष्टिक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-वेदनायुक्तशोथ, अपची, में लेप; नेत्ररोगों अर्म, शुक्ल दृष्टिमान्द्य में मधु के साथ मूल का अन्जन; कर्णशूल कर्णस्राव में पंचांग सिद्ध तैल का कर्णबिन्दु प्रयोग। **आभ्यन्तर**-अग्निमांद्य, उदररोग, पित्ताश्मरी, यकृत्प्लीहावृद्धि, कृमि, जलोदर, अर्श, शोथ, कास, श्वास, हिक्का, रक्तविकार, कुष्ठ, आमवात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, जाङ्गम विष में प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–मूल, पंचांग, **मात्रा** क्वाथ ४०–८० ग्राम, स्वरस १०–२० ग्राम, क्षार ०·५–१ ग्राम, अपामार्ग क्षार, तैल।

विशेष–जाति रक्त अपामार्ग Achyranthes rubrofusea. शाखाएँ रक्त, पत्र-रक्त चिन्हांकित, पुष्प फल रक्ताभ वर्ण होते हैं। रोगियों पर परीक्षणानुसार कुष्ठ में इसके पंचांग का क्वाथ अति उपयोगी सिद्ध हुआ है।

तन्डुलीय (चौलाई)

द्रव्य नाम–हिन्दी : चौलाई, चवलाई।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लेटिन : Amaranthus spinosus.

Fam. Amaranthaceae. (अपामार्ग कुल)

संस्कृत : तण्डुलीय, मेघनाद, विषघ्न, भण्डीर, काण्डेर, तंडुली बीज ।

वर्गीकरण–शाकवर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–उष्ण प्रान्तों में क्षुप स्वयं उत्पन्न एवं उद्यानों में रोपण होता है ।

वानस्पतिक परिचय–बहुशाखी वर्षायु रक्ताभ **क्षुप** ०·३–०·६ मी० ऊंचा **पत्र** मृदु, भालाकार, नोंकरहित, २५–४० मि०मी० दीर्घ, पत्रमूलसकण्टक **पुष्प** क्रम रेसीम, शाखाग्र, मंजरी में, एक लिङ्गी **बीज** गोल, चमकीले, छोटे २ श्वेत या धूसर वर्ण के होते हैं । **पुष्प फल काल**-शरद् ।

गुण कर्म–रस–मधुर, गुण–लघु, रूक्ष **वि०** मधुर **वी०** शीत । पित्तश्लेष्महर, शोथ, ग्रन्थिहर, विषघ्न, (बाह्य प्रयोग) वातानुलोमन, शीतग्राही, यकृदुत्तेजक, मूत्रल, विषघ्न ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–ग्रन्थि, विद्रधि, शोथ (पत्रोपनाह) दाह, व्रण, लूता–वृश्चिक दंश (पत्र-मूल लेप) **आभ्यन्तर**–भ्रम, उन्माद, विबंध, अर्श, ग्रहणी, रक्तातिसार, दाह, रक्तपित्त, त्वग्रोग, यकृद्विकार, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह, प्रदर (श्वेत-रक्त) प्रसवविकार, विषदोष, जीर्ण ज्वर में उपयोगी हैं ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–मूल, पत्र, बीज **मात्रा** चूर्ण ३-५ ग्राम, स्वरस १०-२० ग्राम ।

विशेष–जाति पत्र वर्ण भेद से हरित, रक्त कण्टक भेद से सकंटक, अकंटक (A.Gangeticus; A. Polygamous; A. Paniculatus.) जल-जाति-जल तन्डुलीय । लूता–वृश्चिक विषविकारों में बाह्याभ्यन्तर प्रयोग होता हैं ।

जातीफल

द्रव्यनाम–हिन्दी : जायफल, जायफर ।

लेटिन : Myristica fragrans.

Fam. Myristicaceae (जातीफल कुल)

संस्कृत : जातीफल, मालतीफल, जातिकोश, सुमनफल, राजभोग्या ।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–सिंगापुर, मलाया, श्री लंका, सुमात्राद्वीप; देश में दक्षिण भारत विशेषतः नील-गिरि पर्वत पर वृक्ष लगाये गये हैं ।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार मनोरम **वृक्ष**; शाखाऐ, सम दूरवर्त्ती, अवनत, **पत्र** चर्मवत् सुगंधि आयताकार (जामुन सदृश) पीताभ धूसर, ५०-१२५ मि० मी० दीर्घ **पुष्प** छोटे, गोल, पीतवर्ण, सुगंधित, **फल** गोल, अंडाकार (४० से ५० मि० मी० व्यास युक्त) रक्ताभ पीत, स्फोटी, फल मज्जा में अंडाकार, कठिन, धूसर वर्ण **बीज** के कठिनावरण को अलग करने पर जायफल प्राप्त होता है । **पुष्पफलकाल** शरद्, शीत ।

रासायनिक संगठन–फल में उड़नशील तैल ५-१५% पीताभ, स्थिर तैल २४से४०% इसमें मिरि-स्टिन मिरिस्टिक एसिड, वसा, स्टार्च, क्षार होते हैं ।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त, कषाय गुण-तीक्ष्ण, स्निग्ध, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण वातकफशामक, मुखदौर्गन्ध्यहर, शोथहर, वेदनास्थापन, स्वापजनन, उत्तेजक, अधिक मात्रा में मादक, दीपन, रुचिकर, वातानुलोमन, ग्राही, शूलहर, हृद्य, कफघ्न, बाजीकर, गर्भाशयोत्तेजक, कटुपौष्टिक ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-वेदनायुक्त शोथ विकार, संधिशोथ, शिरःशूल, त्वग्रोग, ध्वजभंग में लेप व तैल प्रयोग **आभ्यन्तर**-अरोचक, आस्यवैरस्य, अग्नि-मांद्य, आध्मान, अतिसार, ग्रहणी, शूल, कृमि, तृषा, छर्दि, विसूचिका, हृदयावसाद, हृद्दौर्बल्य, प्रतिश्याय, पीनस, श्वास, अनिद्रा, शिरःशूल, आक्षेप, वातव्याधि, प्रमेह, शीघ्रपतन, शुक्रतारल्य, दौर्बल्य में विशेष प्रयोग होता है ।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ–बीजगिरी (जायफल) कोष (जावित्री) **मात्रा** चूर्ण ०.२-१ ग्राम, तैल २-५ बूंद । जातीफलादि वटी, जातीफलादि चूर्ण ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विशेष–बीजों की शुष्क गिरी को जायफल कहते हैं। फलमज्जा एवं बीजों के मध्य तनु कोषावरण स्तरीय बीजों के ऊपर बाह्य वृद्धि को जो शुष्क होने पर पृथक्, रक्तपीताभ वर्ण तंतुमय को जावित्री कहते हैं। **शुद्धाशुद्ध परीक्षा एवं मिलावट**–चिकित्सा में उपयोगार्थ सुगन्धि, नया, तैल युक्त, भारी जायफल लेना चाहिए। इसकी एक निर्गन्ध जाति जंगली जायफल, रामफल (M. Malabarica) इस जाति का कोष देशी जावित्री (रामपत्री) होती है। यह असली जायफल से अधिक दीर्घ, चौड़ा कम, निर्गन्ध होता है। फल देखने में असली सदृश किन्तु उड़नशील तैल बहुत कम, जलाने पर भस्म अधिक होती है। जावित्री में रामपत्री तथा हरिद्रा से रंजित विभिन्न सूत्रों की मिलावट की जाती है। विशेष परीक्षा लेखक की 'द्रव्य परीक्षा' पुस्तक में दृष्टव्य है।

कट्फल (कायफल)

द्रव्य नाम–हिन्दी : कायफल, कायफर।

लेटिन : Myrica nagi.

Fam. Myricaceae. (कट्फल कुल)

संस्कृत : कट्फल, श्रीपर्णिका, कुंभिका, भद्रा, रोहिणी, सोमवल्क, महावल्कल।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०) वेदनास्थापन, संधानीय, शुक्रशोधन (च०) लोध्रादि, सुरसादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के साधारण उष्ण प्रदेशों में पश्चिमोत्तर उत्तरप्रदेश के कुमाऊँ, गढ़वाल, आसाम में खासिया सिलहट पर्वत में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित **वृक्ष** सुगंधित, मध्यमाकार, **पत्र** शाखाग्र गुच्छों में भालाकार, लट्वाकार, ७५-२०० मि० मी० दीर्घ, ३६-५० मि० मी० चौड़े रक्ताभ, **पुष्प** रक्त, सुगंधित, मंजरी में **फल** मधुराम्ल, रक्ताभ, अण्डाकार, फलावरण दानेदार; १०-१२ मि० मी० दीर्घ; **त्वक्** रक्तकृष्णाभ, गुरु, सुगंधि, खर, ८-१० मि० मी० स्थूल, अनुलम्ब धूसर चिन्हांकित, जल में घोलने पर गाढ़े रक्तवर्ण का विलयन होता है। **पुष्प काल** शरद् **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–त्वक् में अल्प मात्रा में टेनिन, शर्करा, लवण। चूर्ण से माय्रिसेटिन रंजक द्रव्य की प्राप्ति होती है।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त, कषाय, गुण-तीक्ष्ण, लघु वि० कटु वी० उष्ण। वातकफशामक, वेदनास्थापन, नाड़ीबल्य, उत्तेजक, शिरोविरेचन, संज्ञास्थापन, ग्राही, दीपन, कफघ्न, गर्भाशयोत्तेजक, व्रणशोधक, कोथप्रशमन।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः व्रण, मूर्च्छा, अपस्मार, प्रतिश्याय, शिरःशूल, स्वेदातियोग व अवसादजन्य शैत्य, दंतशूल, वातव्याधि, **आभ्यन्तर**–अग्निमांद्य, शूल, अर्श, प्रतिश्याय, कास, श्वास, शोथ, पक्षाघात, अर्दित, वातव्याधि, रजोरोध, कृच्छ्रार्त्तव में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–त्वक् **मात्रा** मधु के साथ कट्फल चूर्ण १-२ ग्राम, कट्फलादि नस्य, चूर्ण, क्वाथ।

विशेष–व्रणों पर चूर्ण अवधूलन, शैत्यावस्था में चूर्ण का शरीर पर अवघर्षण, शिरः शूल, मूर्च्छा में चूर्ण का प्रधमन नस्य, दंतरोगों में क्वाथ गंडूष, वात व्याधियों में तैल के साथ अभ्यंग किया जाता हैं। चूर्ण की पोट्टली को योनि, गर्भाशय में रखने से सम्यक् आर्त्तव आता है।

भंगा

द्रव्यनाम–हिन्दी : भांग, भंग।

लेटिन : Cannabis sativa

Fam. Cannabinaceae (भंगा कुल)

संस्कृत : भंगा, मादनी, गञ्जा, विजया, मातुलानी।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा० प्र०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र विशेषतः हिमालय की तराई के प्रदेशों में उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, पंजाब, में स्वयंजात क्षुप एवं सरकार द्वारा नियंत्रित खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–सरल **क्षुप** १-२ या ३ मी० ऊँचा, स्त्री एवं पुं. क्षुप पृथक् २ तनु शाखा युक्त **पत्र** एकान्तर या अभिमुख, नीम के समान किन्तु छोटे, एक पत्र वृन्त पर ३-५ उप पत्र समूहों में **पुष्प** छोटे एक लिंगी, गुच्छेदार, पीतहरिताभ, **फल** छोटे एकीन (Achene) **पुष्प फल काल**–शरद् बसंत।

रासायनिक संगठन–केनेबिनोन नामक क्षार उड़नशील तैल, राल, मोम, वसा, शर्करा, पोटेशियम नाइट्रेट एवं निर्यास होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कषाय गुण-तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष, व्यवायि **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक मादक, स्वापजनन, वेदनास्थापन, आक्षेपहर, दीपन, ग्राही, शूलप्रशमन, बाजीकर, शुक्रस्तम्भन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-आमवात, संधिवात में बीज तैलाभ्यंग, अर्श में पत्र लेप या दुग्ध में पकाकर कल्क बन्धन, श्वास में धूम्रपान, **आभ्यन्तर** निद्रानाश, आक्षेप, शिरः शूल, अग्निमांद्य, ग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका, शूल प्रधान रोग, श्वास, कास, (वेग प्रधान) कुक्कुर कास, रजोरोध, शीघ्रपतन में विशेषोपयोगी औषधि है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं– भांग, गांजा, चरस **मात्रा** भांग १२५-५०० मि० ग्रा० गांजा ६२-१२५ मि० ग्रा० विजयावटिका, जातीफलादि चूर्ण, लाई चूर्ण।

विशेष–पत्र, बीज, मृदु शाखाओं को भांग कहते हैं। स्त्री जाति का क्षुप जो कि पुं जाति से अधिक ऊंचा, बहुपत्री, पत्र गहरे वर्ण के रालयुक्त पुष्पमंजरी को गांजा व शाखा पर जमे हुए निर्यास को चरस कहते हैं। **विषाक्तलक्षण** रक्त नेत्रता, भ्रम, प्रलाप, तन्द्रा, क्वचित् हृदयावसाद से मृत्यु **निवारण** आमाशय शोधन, घृत, दुग्ध, स्नेह द्रव्यों का प्रयोग अपेक्षित है।

चन्दन (श्वेत)

द्रव्यनाम–हिन्दी : चन्दन, सफेद चन्दन।

लेटिन : Santalum album.

Fam. Santalaceae. (चन्दन कुल)

संस्कृत : चन्दन, श्वेत चन्दन, श्रीखंड, तैल पर्णिका, गंधसार, भद्रश्री।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा० प्र०) दाह प्रशमन, तृष्णा निग्रहण, वर्ण्य, कण्डूघ्न, विषघ्न (च०) पित्त संशमन, प्रियंग्वादि, सारिवादि (सु०)।

उत्पत्ति स्थान–कर्नाटक के वन्य क्षेत्रों में समूह बद्ध वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित ६-१० मी० ऊंचा बहुशाखी **वृक्ष**; त्वक् कृष्ण धूसर, फटी हुई, काण्डसार पीताभश्वेत, कठिन अति सुगंधि **पत्र** मृदु, अंडाकार, भालाकार, २५-५० मि० मी० लम्बे तीक्ष्णाग्र, **पुष्प** छोटे गुच्छों में बैंगनी, वर्ण निर्गन्ध **फल** मांसल गोल, छोटे कृष्णाभ होते हैं। **पुष्पकाल** वर्षा से शीत, **फल** वसंत।

रासायनिक संगठन–काष्ठसार, मूल में ३-६% उड़नशील तैल, इसमें ९०% सैण्टलोल, इसके अतिरिक्त राल, टैंनिक एसिड पाये जाते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त, मधुर गुण-लघु, रूक्ष, **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामक, मनःप्रसादकर, दाह-तृषा-अंगमर्दप्रशमन, शीत ग्राही, रक्तप्रसादन कण्डूघ्न, हृद्य, मूत्रजनन, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-दाह, विसर्प, त्वग्रोग, वैवर्ण्य, पैतिकशिरः शूल, अतिस्वेद में लेप **आभ्यन्तर** तृषा, छर्दि, दाह, रक्तातिसार, अतिसार, पैतिक रक्तपित्त, विसर्प, कण्डू, हृत्कम्प, हृद्दौर्बल्य, बस्तिशोथ, रक्तमेह, पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रप्रदाह, प्रदर, ज्वर (पैतिक, तीव्रज्वर) बस्तिशोथ-प्रदाह -मूत्र-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मार्ग प्रदाह में चन्दन तैल चिकित्सा में भूरिशः प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–काण्डसार, तैल **मात्रा** तैल ५-२० बूंद, चूर्ण ३-५ ग्राम। चन्दनादि-चूर्ण चन्दनासव।

विशेष–श्रेष्ठ चन्दन-"स्वादे तिक्तं कषे पीतं छेदे रक्तं तनौसितम्। ग्रन्थिकोटर संयुक्तं चन्दनं श्रेष्ठमुच्यते॥ (भा० प्र०) मूल एवं कांडसार से परिस्रवण विधि से प्राप्त चन्दन तैल तीक्ष्णगंधि, पीताभ सान्द्र द्रव होता है। **काष्ठ सार परीक्षा**–बेलनाकृति, पीताभ, टुकड़े विशिष्ट सुगंधि, कटे हुए तल पर पीताभ, रक्ताभ, भूरे वर्ण के अनेक वार्षिक चक्र युक्त। इसका चूर्ण भी काष्ठ सार वर्ण सदृश होता है।

अगुरु (अगर)

द्रव्य नाम–हिन्दी : अगर, काला अगर।

लेटिन : Auilaria agallocha.

Fam. Thymelaeaceae. (अगुरु कुल)

संस्कृत : अगुरु, लौह, प्रवर, राजार्ह, कृमिज, कृमिजग्ध, वंशिक, अनार्यक।

वर्गीकरण–श्वासहर, शीतप्रशमन, शिरोविरेचन (चरक) श्लेष्मसंशमन, एलादि, सालसारादि (सुश्रुत)

उत्पत्ति स्थान–पूर्वी हिमालय प्रान्त, आसाम के नागा खासिया पर्वत, भूटान एवं केरल में स्वयं उत्पन्न वृक्ष मिलते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित ऊँचा छोटी-छोटी मृदु शाखा युक्त **वृक्ष** त्वक्–अत्यन्त तनु (बहिस्त्वक्) पुराने वृक्षों का काष्ठ दृढ़ कृष्ण वर्ण मधुगंधि, **पत्र** चर्मवत् अण्डाकार, भालाकार ५०-७५ मि० मी० लम्बे एवं २५-३६ मि० मी० चौड़े **पुष्प** श्वेत गुच्छों में आते हैं। **पुष्प काल**–ग्रीष्म **फल**-वर्षा।

रासायनिक संगठन–काण्डसार में एक उडन शील तैल जो ईथर में घुलनशील तथा राल मद्य-सार में भी घुलन शील होता है।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त, गुण–तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफ शामक, व्रणरोपण, वेदनास्थापन, शिरोविरेचन, शीतप्रशमन, रक्तशोधन श्वासहर, हृद्य।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–संधिशोथ, आमवात, शोथ, त्वग्रोग, दुष्टव्रण में लेप **आभ्यन्तर**-छर्दि, अरोचक, अतिसार, हिक्का, श्वास में (तैल) रक्त रोग, वातरक्त, शय्यामूत्र, शैत्य, ज्वर में काण्डसार एवं तैल उपयोगी हैं।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–काण्डसार, तैल **मात्रा** तैल १-३ बूंद चूर्ण ०.५-२ ग्राम, अगुर्वाद्यतैल।

विशेष–उत्तम अगुरु परी०–मज्जा भागीय काष्ठ कृष्ण धूसर वर्ण का गुरु, जल में डालने पर डूब जाये, चर्वण से पिच्छिलानुभूति, सुगंधि जलाने पर शीघ्र ज्वलन शील होता है।

जातियाँ–मंगल्यागुरु कृष्णागुरु-काष्ठागुरु, दाहागुरु, में प्रथम सर्व श्रेष्ठ होता है।

मिलावट–रक्त चन्दन, अन्य सस्ती सुगंधित काष्ठ मिश्रित की जाती हैं।

पाषाण भेद

द्रव्य नाम–हिन्दी : पखान भेद, पाषाण भेद सिलफडा।

लेटिन : Saxifraga ligulata.

Fam. Saxifragaceae. (पाषाण भेद कुल)

संस्कृत : पाषाणभेद, गिरिभिद्, अश्मघ्न, भिन्नयोजिनी।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) मूत्रविरेचनीय (च०) वीरतर्वादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–कश्मीर, हिमालय के मध्य भाग में ५ हजार फीट तक तथा देहरादून, मंसूरी, टिहरी, गढवाल के समीपवर्ती क्षेत्रों में स्वयं जात क्षुप होते हैं॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वानस्पतिक परिचय–वर्षानुवर्षी सर्वदा हरित छोटा **क्षुप**, चट्टानों की दरारों के मध्य में; मूल-स्तम्भ २५ मि० मी० स्थूल, बाह्य स्तर रक्ताभ अन्तः भाग श्वेताभ **पत्र** मांसल, स्निग्ध,, गोल, लट्वाकृति, वर्तुलसम मांसल, किनारे सघन शूकावृत, दंतुरित अधः पृष्ठ रक्ताभ, **पुष्प** श्वेत रक्ताभ नील, व्यास में ३० मि० मी० असीमाक्षी, गुच्छवत् मंजरियों में होते हैं। **पुष्पकाल** ग्रीष्मान्त।

रासायनिक संगठन–मूल में सुधा ११.५% टैनिक तथा गैलिक एसिड १५.५% स्टार्च १९% ग्लुकोज ५.५% अलब्युमिन ७.७% पिच्छिल द्रव्य २.२५% भस्म १२.८७% होती है।

गुण कर्म–रस-कषाय, तिक्त गुण–तीक्ष्ण, स्निग्ध **वि०** कटु **वी०** शीत। त्रिदोषहर, भेदन, मूत्रल, अश्मरीघ्न, रक्तपित्तशामक, ज्वर एवं विषघ्न है।

आमयिक प्रयोग–व्रणशोथ, नेत्राभिष्यन्द में लेप **आभ्यन्तर**-मूत्र कृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, शर्करा वृक्कशूल, वृक्कशोथ, बस्तिशूल, गुल्म, प्लीहावृद्धि, रक्तपित्त, प्रमेह एवं विषविकारों में (भेदन मूत्रल क्रिया से विष का बहि निः सरण होने से) प्रयोग होता है। अश्मरी एवं मूत्रवह स्रोतों के विकारों की प्रभावशाली औषध है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल भोमिक कांड **मात्रा** चूर्ण ०.५-२ ग्राम। क्वाथ ३०-४० ग्राम, पाषाणभेदादि क्वाथ।

विशेष–प्रस्तुत पाषाणभेद के अतिरिक्त (१) Aerva lanata (२) Bryophyllum calycinum (३) coleus aromatics (४) Bridelia retusa (५) Iris pseudoachorus, आदि द्रव्यों का प्रयोग होता है।

शुद्ध द्रव्य परीक्षा–बाहर से भूरे वर्ण के झुर्रीदार, उपमूल चिन्हांकित, २५-५० मि० मी० दीर्घ, १०-२५ मि० मी० स्थूल शुष्कीकृत कर्तित टुकड़े होते हैं। अन्तर्वस्तु रक्ताभ श्वेत वर्ण पिष्टकण पुञ्ज युक्त ठोस होता है।

पर्णबीज (पथर चूर)

द्रव्यनाम–हिन्दी : पथरचूर।

लेटिन : Bryophyllum calycinum.

Fam. Crassulaceae (पर्ण बीज कुल)

संस्कृत : पर्णबीज।

उत्पत्ति स्थान–उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र विशेषतः दक्षिण भारत बंगाल में क्षुप पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु ०.३-१ मी० ऊँचा **क्षुप**, कांड मांसल रक्त, **पत्र** अभिमुख, गोल, अभिलट्वाकृति, दंतुरित, स्निग्ध, मांसल **पुष्प** नलिकाकार, रक्त, अवनत, **फल** शिम्बी आकृति सदृश ४ कोष्ठीय अनेक बीज युक्त होते हैं। **पुष्प काल** शीत **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–पत्र में केल्शियम सल्फेट, के ऑक्जलेट, एसिड टार्टरेट आफ पोटाशियम पाये जाते हैं।

गुण कर्म–रस-कषाय, अम्ल गुण-लघु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक। अश्मरीघ्न, शोणितास्थापन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-अभिघातज, क्षतज व्रण, रक्तस्राव में पत्र लेप होता है।

आभ्यन्तर–अश्मरी, मूत्राघात, रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तप्रदर, आभ्यन्तर रक्तस्राव में स्वरस प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग–पत्र **मात्रा** २.५-५ ग्राम।

विशेष–पत्र रक्तवाहिनी एवं केशिकाओं का संकोच करने से बाह्य आभ्यन्तर रक्तस्राव में उपयोगी है। यह पाषाणभेद का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है।

पुनर्नवा

द्रव्यनाम–हिन्दी : लाल पुनर्नवा, लाल सांठी।

लेटिन : Boerhavia diffusa.

Fam. Nyctaginaceae. (पुनर्नवा कुल)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

संस्कृत : पुनर्नवा, रक्तपुष्पा, शोथघ्नी, क्षुद्र-वर्षाभू, वृषकेतु, शिलाटिका ।

वर्गीकरण-गुडूच्यादि (भा० प्र०) कासहर, स्वेदोपग, वयःस्थापन, (च०) विदारिगंधादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र उष्ण प्रदेशों की रेतीली तथा ऊषर भूमि में वर्षा ऋतु में पुनः अंकुरित क्षुप पाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–वर्षानुवर्षी दीर्घ प्रसरी रक्ताभ रोमश **लता**; शाखाएं रक्त **पत्र** पर्व सन्धि पर अभिमुख क्रम में लट्वाकार, रक्ताभ, युगल (एक पत्र छोटा दूसरा बड़ा) अधर पृष्ठ श्वेताभ **पुष्प** पत्रकोण से निकले दीर्घ वृन्त पर छोटे गुलाबी, श्वेत वर्ण **फल** लम्ब गोल ६ मि० मी० दीर्घ ५ रेखांकित होते हैं। **पुष्प फल काल** शरद्, शीत ।

रासायनिक संगठन– मूल पत्रों में Punarnavine तिक्त क्षार ०.०१%; पोटाशियम नाइट्रेट-क्लोराइड ६.५% स्नेह द्रव्य पाये जाते हैं ।

गुण कर्म–रस-तिक्त गुण-लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण । पित्तश्लेष्महर, चक्षुष्य, शोथहर, दीपन, विरेचन, वामक, द्रवापकर्षण, मूत्रविरेचन, रक्तप्रसादन, रक्तवर्धक, बिषघ्न, वयःस्थापन ।

आमयिक प्रयोग–बाह्यः नेत्राभिष्यन्द, नेत्र-पिड़िका, दृष्टिमांद्य, शुक्ल आदि में स्वरस प्रयोग । शोथ में उपनाह, लेप, स्वेदन **आभ्यन्तर**-शोथ (हृदय-यकृत्-वृक्क-विकृति जन्य) पांडु, कामला, जलोदर, यकृत्प्लीहावृद्धि, मूत्राघात, वृक्कशोथ, पूयमेह, उरःक्षत श्वास, कास, (वमनार्थ) रक्त प्रदर में एवं रसायनार्थ विशेष उपयोगी औषधि है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग, मूल **मात्रा** स्वरस १०-२० ग्राम, क्वाथ ४०-५० ग्राम, वामक-मूलचूर्ण ५-१० ग्राम । पुनर्नवादि क्वाथ, चूर्ण, अरिष्ट, मंडूर, अर्क ।

विशेष–श्वेत पुनर्नवा (विषखपरा Trianthema partulacastrum की लता छोटी, द्विधा विभक्त शाखा पुष्पदंड, पुष्प श्वेत । मूत्रल क्रिया पुनर्नवीन तथा पोटाशियम नाइट्रेट के कारण मूत्र नलिकाओं से द्रव का पुनः शोषण न होने से होती है । शोथघ्नकर्म–हृत्संकोच वृद्धि से धमनियों में रक्ताभिसरण वृद्धि, सिराओं द्वारा हृदय को अधिक मात्रा में रक्त प्रत्यागमन एवं वृक्कगत रक्ताभिसरण वृद्धि से मूत्रजनन से शोथ में विशेष उपयोगी है ।

शाल (साखु)

द्रव्यनाम–हिन्दी : साल, साखु, शाल ।

लेटिन : Shorea robusta.

Fam. Dipterocarpaceae. (शाल कुल)

संस्कृत : शाल, धूपवृक्ष, सर्ज, कार्श्य, शक्रदु, अश्वकर्णिक, शस्यशम्बर ।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्र०) वेदना-स्थापन, कषायस्कन्ध (च०) सालसारादि, रोध्रादि (सुश्रुत) ।

उत्पत्ति स्थान–हिमालय की तराई वाले प्रदेश, उत्तर प्रदेश से आसाम तक, मध्य प्रदेश में वृक्ष पाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–अति ऊँचा पर्णपाती सरल **वृक्ष**, **पत्र** एकान्तर क्रम में, लट्वाकृति, लम्बाग्र आयताकृति, पत्राधार हृदयाकृति, उर्ध्वपृष्ठ हरित स्निग्ध चमकीला, अधःपृष्ठ श्वेताभ खर **पुष्प** शाखाग्र श्वेत पीत गुच्छों में **फल** अंडाकृति या गोल, अस्फोटी, धूसरवर्ण बाह्य दल युक्त होता है । **पुष्पकाल** मार्च **फल** मई, जून ।

रासायनिक संगठन–निर्यास ताजा अवस्था में पारदर्शक रंगहीन बाद में श्याव पीताभ एवं तैल में घुलनशील । त्वक् में कषाय द्रव्य पाये जाते हैं ।

गुण कर्म–त्वक्-रस-कषाय, तिक्त गुण-रूक्ष, **वी०** शीत निर्यास-रस-मधुर, कषाय, गुण-लघु-रूक्ष **वि०** कटु **वी०** शीत । पूतिहर, जन्तुघ्न, व्रणरोपण-शोधन, भग्नसन्धानकर, स्तम्भन, शूलहर, कफोत्सारि, मूत्रल ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्य–व्रण, दुष्टव्रण, भगन्दर, कण्डू, शोथ, विद्रधि, अग्निदग्धव्रण, पामा में राल मरहम प्रयोग, विपादिका में घी या मक्खन में मिलाकर लेप, कर्णपूय में मद्यसारीय विलयन (कर्ण-बिन्दु) नेत्रामय में नेत्रबिन्दु। पूयमेह, श्वेतप्रदर में उत्तरबस्ति प्रयोग। **आभ्यन्तर**-अतिसार, प्रवाहिका, श्वास, कास, अस्थिभग्न, कुष्ठ, रक्तविकार, मेदो-रोग, पूयमेह, प्रदर में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–त्वक्, निर्यास, राल, **मात्रा** राल १-३ ग्राम, त्वक् क्वाथ ५०-१०० ग्राम। सर्जरसादि मरहम।

विशेष–जीवाणु नाशक, पूतिहर, स्थानीय, रक्तप्रवाह वृद्धि करने से व्रण, विद्रधि, शोथ, एवं त्वग्रोगों में मलहम कल्पना का मुख्य द्रव्य है। वेदनाशामक होने से वेदना विकारों में त्वक् प्रयोग होता है। **शुद्ध द्रव्य परीक्षा**–रासायनिक संगठन में वर्णित स्वरुप के अतिरिक्त; राल जलाने पर धूप की तरह ज्वलनशील, मद्यसार में अंशतः ईथर, स्थिर तैलों व तारपीन के तैल में पूर्णतः विलेय। गंधकाम्ल में घोलने पर रक्त वर्ण का विलयन बनता है।

सिल्हक (शिलारस)

द्रव्य नाम–हिन्दी : सिलारस, शिलारस।

लेटिन : Altingia excelsa.

Fam. Hamamelidaceae (सिल्हक कुल)

संस्कृत : सिल्हक, तुरुष्क, कपितैल।

वर्गीकरण–कर्पूरादि (भा० प्र०) एलादि (सुश्रुत)।

उत्पत्ति स्थान–अरब, मलाया, जावा, बंगाल, आसाम के वन्य प्रदेशों में वृक्ष पाये जाते हैं।

द्रव्य परिचय–वृक्ष के काण्ड क्षत से प्राप्त निर्यास; यह मधु के सदृश सान्द्र अपारदर्शक, गुरु, कृष्ण धूसर, पिच्छिल (सुगंधित) विशेष गंधयुक्त होता है। नवीनावस्था में पेट्रोलियम जैसी गंध आती है। पुराना होने पर सुगंधित हो जाता है।

रासायनिक संगठन–एक उड़नशील तैल, राल, बेंजोइक एसिड, सिनेमिक अम्ल होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कटु, मधुर, गुण-लघु, स्निग्ध, **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफहर, व्रण-रोपण, पूतिहर, स्वेदहर, वेदनास्थापन, कण्ठ्य, कफोत्सारि, कफघ्न, कुष्ठघ्न, मूत्रल, गर्भाशयोत्तेजक है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–त्वग्रोग, कंडू, पामा, क्षयजव्रण, शोथ, अंडकोषवृद्धि में लेप। गल, कण्ठ रोगों में गरम पानी में डालकर गण्डूष **आभ्यन्तर**–दाह, ज्वर, जीर्णश्वास, श्वसनिकाप्रदाह, कास, क्षय, जीर्णपूयमेह, मूत्राघात, अश्मरी, रजोरोध, दौर्बल्य में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–निर्यास **मात्रा** ०·५-१·५ ग्राम। पंचगुण तैल।

विशेष–जीर्ण फुफ्फुस विकारों में मधुयष्टी चूर्ण एवं मधु के अनुपान से प्रयोग होता है। पूयमेह में भी इसी विधि से विशेष लाभप्रद है। चिकित्सा प्रयोग के पूर्व शिलारस से त्वक्, पत्र मिट्टी आदि को पृथक् करने के लिए जलीयांश को कम करने के लिए मद्यसार में घोल कर तलस्थ द्रव्य को गरम कर ग्रहणीय है।

सोम

द्रव्य नाम–हिन्दी : सोम, टूटगंढा।

लेटिन : Ephedra vulgaris.

Fam. Gnetaceae (सोमादि कुल)

उत्पत्ति स्थान–पूर्वोत्तर हिमालय में ८ से १४ हजार फीट तक नेपाल सिक्किम से कश्मीर तक स्वयं जात क्षुप पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–छोटा गुल्माकृति क्षुप; ०·२ से १ मी० तक ऊँचा; स्तम्भ तनु, कठिन सपर्व अनेक मूलोद्भूत; प्रत्येक स्तम्भ ग्रन्थि से अभिमुख

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दो या चक्रीय सरल स्निग्ध, सूक्ष्म उन्नतरेखाएं युक्त **पत्र** अत्यल्प छोटे शल्कपत्र सदृश जो ग्रन्थियों पर अभिमुख दो दो (कभी ३-४) चक्रों में चतुर्पंक्तिक **पुष्प** मञ्जरी में **फल** गोल, रक्त मांसल २ काले **बीज** युक्त होता है। बाजार में इसका शुष्क पंचांग मिलता है।

रासायनिक संगठन–इसमें मुख्यतः एफेड्रिन ०.२८-२.८% स्युडोएफेड्रिन नामक क्षारोद् १.२५-२% होता है। एफेड्रिन की अधिक मात्रा हरित वर्ण शाखाओं में होती है।

गुण कर्म–रस-तिक्त गुण-रूक्ष लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक। अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, श्वासवेगहर है।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर तमकश्वास, शीतपित्त, प्रमीलक द्रव्य जन्य विषमयता, गम्भीर पेशयवसन्नता, शय्यामूत्र, ज्वर आमवात में उपयोगी है। तमक श्वास का वेग कम करने के लिए यह उत्तम प्रभावशाली आशुलाभकर औषध है। आमवात (तरुणावस्था) में क्वाथ देने से शोथ, ज्वर वेदना कम होती है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–पंचांग सत्व **मात्रा** चूर्ण ०.५ से १.२५ ग्राम; सत्व १६ से ६० मि० ग्राम; प्रवाही घनसत्व २-३ मि० ली०।

विशेष–हृद्विकार, रक्तभाराधिक्य एवं हृच्छूल में सावधानी पूर्वक प्रयोग अपेक्षित है। मात्रातियोग से भ्रम, कम्प हृत्स्पंदन, उत्क्लेश, बस्तिक्षोभ आदि विकार होते हैं।

जाति–E. sinica एवं E. equisetina मुख्य जातियां होती हैं।

वाराहीकन्द

द्रव्यनाम–हिन्दी : बाराहिकन्द, वाराहकन्द, गेठी।

लेटिन : Doiscorea bulbifera.

Fam. Dioscroreaceae (वराहकन्द कुल)

संस्कृत : वाराहीकन्द, वाराहवदना, गृष्टि, चर्मकारालुक।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्तिस्थान–हिमालय पर्वत में ५ हजार फीट तक देहरादून, सहारनपुर के वन्य पर्वतीय क्षेत्र, मध्य भारत, गोवा।

वानस्पतिक परिचय–वामावर्त दीर्घ आरोही लता स्तम्भ स्निग्ध, दूरवर्ती कन्दसदृश उभार २० मि० मी० व्यासयुक्त **पत्र** एकान्तर, स्निग्ध पान के समान किन्तु बड़े हृदयाकृति **पुष्प** पत्रकोणोद्भूत स्त्रीपुष्पमंजरी १००-२५० मि० मी० दीर्घ, नर पुष्प मंजरी ५०-१०० मि० मी० दीर्घ अवनत होती है।

रासायनिक संगठन–लता में विषाक्त ग्लुकोसाइड व कन्द में स्टार्च प्रभूत मात्रा में होता है।

गुण कर्म–रस-मधुर, तिक्त, कटु गुण-स्निग्ध, लघु, **वि०** कटु **वी०** उष्ण, त्रिदोषहर, कृमिघ्न, प्रमेहघ्न, रक्तशोधन, बल्य, वृष्य, रसायन है।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर-अग्निमांद्य, शूल, कृमि, कुष्ठ, उपदंश, रक्तविकार, गंडमाला, प्रमेह, शुक्रदौर्बल्य, कार्श्य में प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–कन्द **मात्रा** चूर्ण ३-६ ग्राम।

विशेष–कन्द, धूसर, छोटे, आकार का गोल, सघन वराहरोमसदृश रोमावृत अंतः पृष्ठ पीताभ श्वेत होता है। जाति Tacca aspera. लता, पत्र, वर्णित वराहीकंद सदृश। कंद लम्बगोल कृष्ण, वराह रोमसदृश रोमश स्वाद में तिक्त होता है।

इसबगोल

द्रव्यनाम–हिन्दी : इसबगोल।

लेटिन : Plantago avata.

Fam. Plantaginaceae (ईषदगोल कुल)

संस्कृत : ईषद्गोल, स्निग्ध जीरक, स्निग्धबीज।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति स्थान–पंजाब, बंगाल, गुजरात, कर्नाटक में खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **क्षुप** ०.२-१ मी० ऊँचा; कांड रोमावृत कठिन, शाखाएं तनु **पत्र** धान के पत्तों के समान दीर्घ रेखाकार तीन उन्नत सिराएं, दंतुरित **पुष्प** शाखाग्र, शूकी मजंरियों में **फल** संपुट, लम्ब गोल ८ मि० मी० दीर्घ जिसमें अनेक छोटे-छोटे नोकाकृति, नोंकदार, गुलाबी, रक्त वर्ण, तनु श्वेत बीजावरण युक्त **बीज** होते हैं।

रासायनिक संगठन–बीजों में एक स्थिर तैल अलब्युमिन तथा पिच्छिल (Mucilage) प्रचुर प्रमाण में। १ भाग बीज २० भाग जल में शीघ्र ही जैली में परिवर्तित होते हैं।

गुण कर्म–रस-मधुर गुण-पिच्छिल, गुरु स्निग्ध **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, शोथहर (बाह्य प्रयोग) स्नेहन, सर, संग्राही।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-विसर्प, प्रदाह में लेप शोथ युक्त वेदना स्थान पर उपनाह प्रयोग **आभ्यन्तर** तृषा, प्रवाहिका, अतिसार, रक्तातिसार, रक्तार्श, विबन्ध, वातजकास श्वसनिकाप्रदाह, गलप्रदाह, दाह, ज्वर, मूत्रकृच्छ्र पूयमेह में दैनिक उपयोगी औषधि है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज, बीजावरण (इसबगोल भुस्सी) **मात्रा** ३-१० ग्राम।

विशेष–चिकित्सार्थ रक्त श्वेत बीज जाति का प्रयोग होता है। बीजों या भुस्सी को पानी में भिगोकर लुआव बनाकर अतिसार प्रवाहिका में प्रयोग या बीजों को घृत के साथ भृष्ट करके भी प्रयोग होता है। दधि, तक्रानुपान से भी प्रयोग होता है। विबन्ध में बीजों या भुस्सी का उष्ण दुग्ध के साथ प्रयोग होता है।

अरिष्टक (रीठा)

द्रव्य नाम–हिन्दी : रीठा।

लेटिन : Sapindus trifoliatus.

Fam. Sapindaceae (अरिष्टक कुल)

संस्कृत : अरिष्टक, फेनिल, कृष्णवर्ण, मङ्गल्य, रक्तबीज, पीतफेन, फेनिल, गर्भपातन, अर्थ साधन।

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा० प्र०)

उत्पत्ति स्थान–महाराष्ट्र बंगाल, आसाम, पंजाब, बिहार आदि प्रांतों के ग्राम्य एवं वन्य क्षेत्रों में वृक्ष उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सघन सुन्दर **वृक्ष** ८-१० मी० ऊँचा त्वक् धूसर, **पत्र** एकान्तरक्रम संयुक्त, पत्रक दीर्घ पत्रवृन्त पर ५-८ युगल ७५-१५० मि० मी० दीर्घ अण्डाकार आयताकार, **पुष्प** श्वेत हरिताभ रक्ताभ मंजरियों में **फल** गुच्छों में गोल १२-२५ मि० मी० व्यासयुक्त कृष्ण धूसर तीन रेखायुक्त **बीज** प्रत्येक फल में एक बीज स्निग्ध चमकदार कठिन कृष्ण वर्ण होता है।

रासायनिक संगठन–फल में ११.५% सेपोनीन (Saponin) शर्करा १०% पिच्छिल द्रव्य, बीजों में स्थिर तैल ३०% होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कटु गुण-स्निग्ध, तीक्ष्ण, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातशामक पित्तकफ संशोधन, लेखन, वामक, रेचन, वेदनास्थापन कफनिःसारक, विषघ्न, गर्भाशयोत्तेजक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-शिरःशूल में फल के क्वाथ का नस्य प्रयोग, खालित्य पालित्य, बाह्य कृमि में फलफाण्ट से शिरका प्रक्षालन। आमवात, सन्धिवात, वेदना युक्त शोथविकार, कुष्ठ, कण्डू विस्फोट, गण्डमाला सविष प्राणियों के दंश में फल का लेप **आभ्यन्तर**–रक्तविकार, कण्डू, कास, श्वास, कृमि, रजोरोध, अहिफेनविष एवं जांगम विष विकारों में विशेष प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–फल; त्वक् **मात्रा** चिकित्सार्थ फल ०.५-१ ग्राम, वमनार्थ ३-६ ग्राम, रेचनार्थ ४-८ ग्राम।

विशेष–**जाति** बड़ा और छोटा रीठा (S. mukorossi)। वेदनायुक्त, शोथ विकारों में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वेदनास्थापन शोथघ्न होने से त्वक् प्रयोग होता है। वामक, रेचक होने से कफ पित्त आम दोष संचय प्रधान विकारों में उपयोगी है। गर्भाशय उत्तेजक होने से रजोरोध कृच्छ्रार्त्तव में क्वाथ से भावित गॉज या कार्पास वर्तिका योनि में धारण की जाती है।

तुवरक (चाल मोगरा)

द्रव्य नाम–हिन्दी : चालमोगरा।

लेटिन : Hydnocarpus wightiana.

Fam. Bixineae (तुवरक कुल)

संस्कृत : तुवरक, कुष्ठवैरी, कटुकपित्थ।

उत्पत्ति स्थान–दक्षिण भारत में पश्चिमी घाट के पर्वतीय क्षेत्र, गोवा, मालाबार ट्रावनकोर में स्वयं उत्पन्न वृक्ष तथा लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यमाकार सुन्दर **वृक्ष** १०-१३ मी० ऊँचा पत्र स्निग्ध चर्मवत् लट्वाकृति भालाकार, दीर्घ दंतुरित सीताफल सदृश **पुष्प** गुच्छों में श्वेत वर्ण **फल** गोल १००-१३० मि० मी० व्यासयुक्त कपित्थ के समान **बीज** अनेक २० मि० मी० दीर्घ पीत बादाम सदृश होते हैं।

रासायनिक संगठन–बीजों में प्राप्त तैल चालमोगरा तैल ४४% जिसमें चाल मोगरिक एसिड २६.९% हिडनोकार्पिक एसिड ४८.९% पामिटिक एसिड, स्नेहाम्ल, ग्लिसराइड्स होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कटु, कषाय, गुण-तीक्ष्ण, स्निग्ध, गुरु, **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक। व्रणशोधन, रोपण, कुष्ठघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य कुष्ठ वेदनायुक्त शोथ एवं जीर्ण त्वग्रोगों में तैल का लेप प्रयोग, क्षयज व्रण, नाडीव्रण, अस्थिव्रण गण्डमाला में तैल लगाया जाता है। **आभ्यन्तर**-कुष्ठ, त्वग्रोग क्षुद्रकुष्ठ, महाकुष्ठ, रक्त विकार, प्रमेह, वातव्याधि, क्षयज गण्डमाला, नाडीव्रण में विशेष प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–बीज, बीज तैल **मात्रा** बीज चूर्ण १-३ ग्राम। तैल शोधनार्थ १० ग्राम, तैल ५-१० बूंद। तुवरकादि तैल।

विशेष–कुष्ठ रोग की अद्वितीय औषधि है। सुश्रुत संहिता में कुष्ठ रोग चिकित्सा क्रम में इसका उल्लेखनीय प्रयोग है। स्थानिक प्रयोग से स्थानिक रक्त प्रवाह एवं नाड़ियों पर उत्तेजक व रक्तिमोत्पादन क्रिया से कुष्ठादि में लाभकारी है। पक्व बीजों से शीत प्रपीडन द्वारा Oleum Hydno Carpi प्राप्त होता है। यह जमने वाला स्थिर तैल होता है। **जाति** (क) H. kurzii उत्तम प्रतिनिधि (ख) Gynocardia odorata होती हैं।

इंगुदी (हिंगोट)

द्रव्य नाम–हिन्दी : हिंगोट, इगुन, इगुंदी

लेटिन : Balanites aegyptica.

Fam. Simarubaceae (इंगुदी कुल)

संस्कृत : इंगुदी, अङ्गार वृक्ष, तित्तक, तापसद्रुम

वर्गीकरण–वटादि वर्ग (भा०) शिरोविरेचन (चरक)

उत्पत्ति स्थान–राजस्थान, बिहार, मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तों के वन-उपवनों में स्वयं जात वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–गुल्माकृति कण्टकित छोटा **वृक्ष** ३-७ मी० ऊंचा; शाखाएं कम, सरल, तीक्ष्ण, कांटेदार, **पत्र** संयुक्त, युगल पत्रक अभिलट्वाकृति, अण्डाकृति, नोंकदार, २०-३० मि० मी० दीर्घ; दृढ़-कण्टक पत्रपार्श्वस्थित **पुष्प** गुच्छों में पीत नीम के समान **फल** अष्ठिफल अण्डाकार ३० मि० मी० दीर्घ ३७ मि० मी० चौड़े, पंचकोणीय **बीज** एक कठिन पंच कोणीय होता है। **पुष्पकाल** बसंत **फल** वर्षा।

रासायनिक संगठन–फल मज्जा में $1\frac{1}{3}$% साबुन, अम्ल द्रव्य १%, शर्करा, पिच्छिल द्रव्य। त्वक् में सेपोनीन; बीजों में स्थिर तैल ४३% होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कटु गुण-स्निग्ध, लघ

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वि० कटु वी० उष्ण । वातकफहर केश्य,व्रणशोधन कृमिघ्न,सारक, कफोत्सारि, मूत्रल, विषघ्न, शिरोविरेचन (त्वक्)

आमयिक प्रयोग–बाह्य-व्रण, अग्निदग्धव्रण, पर बीज,तैल का लेप; बाह्य शोथ कृमियों पर तैल प्रयोग । खालित्य में क्वाथ फाण्ट से शिरःप्रक्षालन **आभ्यन्तर** कृमि, उदरशूल, कास, श्वास कुष्ठ, श्वित्र, विषविकार में उपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फलमज्जा, तैल, मात्रा मज्जा ०.५-१.५ ग्राम बीज तैल ५-२० बूंद ।

विशेष–फल में सेपोनीन होने से बालों को धोने में प्रयुक्त होता है । बीज-तैल केश्य होने से शिर पर तैलाभ्यङ्ग । जीर्ण कफ रोगों में फलामज्जा विशेष लाभप्रद है । इसको बादाम के तैल, मिश्री मिलाकर पानी के साथ पीसकर देने से कफ पतला होकर निस्सरित होता है ।

विडङ्ग (वाय विडङ्ग)

द्रव्य नाम–हिन्दी : बायविडङ्ग, वायविडङ्ग ।

लेटिन : Embelia ribes.

Fam. Myrsinaceae (विडङ्ग कुल)

संस्कृत : विडङ्ग, कृमिघ्न,अमोघा, चित्रतंडुला, चित्रबीजा ।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा०प्र०) कृमिघ्न, कुष्ठघ्न, शिरोविरेचन (च०)पिप्पल्यादि, सुरसादि (सुश्रुत)

उत्पत्ति स्थान–जांगल एवं पार्वत्य प्रदेशों में विशेषतः आसाम, उत्तरप्रदेश, कैरल के वन्य प्रदेशों में गुल्म उत्पन्न होते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु आरोही **गुल्म** शाखाएं बेलनाकार तनु दूरवर्ती पर्वयुक्त **पत्र** अण्डाकृति, भालाकृति, चर्मवत् तीक्ष्णाग्र अधर पृष्ठ श्वेताभ रक्त बिन्दु युक्त **पुष्प** शाखाग्र, गुच्छों में हरित, पीत, श्वेत **फल** गुच्छों में रक्ताभ धूसर कृष्ण मरिच के समान **बीज** एक श्वेत धूसर मज्जा में श्वेत चित्रित होता है ।

रासायनिक संगठन–फल में एम्बेलिक अम्ल २.५-३.१% एम्बेलिन पीतवर्ण रवेदार द्रव्य, उड़नशील तैल, स्थिरतैल कषाय द्रव्य पाये जाते हैं ।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त गुण-तीक्ष्ण, लघु,रूक्ष वि० कटु वी० उष्ण । वातकफहर, नाड़ीबल्य, उदरकृमिहर, रक्तशोधक, शिरोविरेचन ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-शिरः शूल, पीनस में तैल नस्य, दन्तकृमि में क्वाथगंडूष **आभ्यन्तर** कृमि, विशेषतः स्फीत कृमि, अग्निमांद्य ग्रहणी, शूल,नाड़ी दौर्बल्य, वातव्याधि, प्रमेह, कुष्ठ, रक्तविकारों में विशेष उपयोगी औषधि है । महर्षि चरक ने विडङ्ग रसायन का भी उल्लेख किया है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–फल **मात्रा १-२** ग्राम कृमि में ३-६ ग्राम । विडङ्गादि-चूर्ण-अवलेह-लौह, तैल, अरिष्ट ।

विशेष–इसका एक भेद E. robusta गुल्म,पत्र, छोटे, फल भी छोटे एवं धूसर वर्ण होते हैं । कृमि में इसके प्रयोग के बाद एरण्ड स्नेहादि रेचन द्रव्यों का प्रयोग अपेक्षित है । इसके सतत प्रयोग से मूत्र का वर्ण रक्ताभ व मूत्राम्लता की वृद्धि होती है ।

चित्रक

द्रव्य नाम–हिन्दी : चित्रक, चित्ता, चितरक ।

लेटिन : Plumbago zeylanica.

Fam. Plumbaginaceac (चित्रक कुल)

संस्कृत : चित्रक, अग्नि, अनलनामा, चित्राङ्ग, पाठी, दहन, दाहक, हुतभुक्, उषण ।

वर्गीकरण–पंचकोल, हरीतक्यादि (भा०प्र०) कटुकस्कन्ध, अर्शोघ्न, शूलप्रशमन, दीपनीय,तृप्तिघ्न, (च०) पिप्पल्यादि, वरुणादि, आमलक्यादि (सु०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र विशेषतः उष्णप्रांत–बंगाल, बिहार, पूर्वोत्तर उत्तर प्रदेश, दक्षिण भारत के वन्य क्षेत्रों में क्षुप उत्पन्न होते हैं ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वानस्पतिक परिचय–बहुवर्षायु गुल्मक०.५-१.३ मी० ऊंचा, **काण्ड** स्निग्ध ग्रन्थियुक्त; शाखाएं अनेक मूलोद्भूत, रेखाकृति, **पत्र** एकान्तर, स्निग्ध, अखण्डित, अण्डाकार, मोगरे के समान ३५-१०० मि० मी० दीर्घ २० से ५० मि० मी० चौड़े। **पुष्प** श्वेत, जातीवत् लसदार मंजरी में शाखाग्र **फल** संपुट, आयताकार, अग्रभाग नुकीला। **पुष्पकाल** शरद् **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–मूल में पीत वर्ण दाहक, कटु सत्व Plumbagin ०.९-८% तक, पुराने एवं शुष्क भूमि में उत्पन्न गुल्म में अधिक मात्रा में होता है।

गुण कर्म–रस-कटु गुण-तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्तवर्धक,लेखन, दीपन, पाचन, शूलप्रशमन, अर्शोघ्न, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, गर्भाशय तीव्र संकोचक, गर्भपातकर; दाह-स्फोटकर, (स्थानिक प्रयोग से)

आमयिक प्रयोग–बाह्य-श्वित्र, खालित्य, आमवात, संधिवात, शोथ, त्वग्रोगों में मूल लेप **आभ्यन्तर**-अग्निमांद्य, ग्रहणी, शूल, अर्श, गुदशोथ, कृमि, जलोदर, उदररोग, यकृत्प्लीहावृद्धि,रजोरोध, सूतिकादोष, सूतिकाज्वर, ज्वर (नियतकालिक) जीर्णज्वर, मेदोरोग, वातव्याधि में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ–मूलत्वक् **मात्रा**०.५-२ ग्राम, चित्रकादिवटी-चूर्ण, घृत, चित्रकहरीतकी।

विशेष–चित्रक अल्पमात्रा में अन्नवह स्रोत, उत्तरगुद उत्तेजक एवं बल्य जिससे पाचन क्रिया नियमित होकर अन्नरस एवं मलों का विभजन सम्यक् होता है। अधिक मात्रा प्रयोग से इसकी गर्भाशय पर तीव्र संकोचन क्रिया होती है जिसके कारण गर्भाशय से रक्तस्राव प्रारम्भ हो जाता है। गर्भावस्था में गर्भपात निश्चित सम्भावित है। अतिमात्रा से आमाशयान्त्रप्रदाह, छर्दि, मद, शोष मूत्राघातादि विकार होते हैं। **निवारण** पित्तशामक द्रव्य घृत, नवनीत, दुग्ध, द्राक्षा प्रयोग। **जाति** रक्त चित्रक (P.indica) नीलचित्रक (P.Capensis)

शुद्ध द्रव्य परीक्षा–मूल ६-२५ मि० मी० स्थूल, त्वक् गाढे भूरे वर्ण रक्ताभ, इतस्ततः ग्रन्थि सदृश उत्सेध, अन्दर से भूरे वर्ण का रेखांकित; तोड़ने पर शीघ्र टूटता है। काष्ठभाग हल्का गुलाबी, स्वाद में कटु तीक्ष्ण एवं लाला स्रावजनक, अधिक काल तक रखने से जिह्वा प्रदाह हो जाता है। **अनुसंधान कार्य**–प्राणियों की गर्भाशय की मांसपेशियों पर वंशपत्र रस, कपास मूलत्वक् की अपेक्षा चित्रक मूल स्वरस का अधिक प्रत्यक्ष उत्तेजक प्रभाव पाया गया है।

बनफशा

द्रव्य नाम–हिन्दी : बनफशा, बनफ़शा।

लेटिन : Viola odorata.

Fam. Violaceae (बनफ़शाकुल)

उत्पत्ति स्थान–कश्मीर और अनुष्णशीत, पश्चिमी हिमालय में ५ हजार फीट तक स्वयं उत्पन्न तथा खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–छोटा सघन **क्षुप** १००-१५० मि० मी० ऊंचा, **पत्र** गोल (अठन्नी सदृश) हृदयाकृति, सूक्ष्म दन्तुरित, अधरपृष्ठ रोमश **पुष्प** गुच्छों में नील बैंगनी सुगन्धित। क्षुप पंचांग का वनफ़सा एवं पुष्प का गुल वनफ़सा नाम से प्रयोग होता है।

रासायनिक संगठन–मूल, पुष्प में उड़नशील तैल, पीतद्रव्य, रंजकद्रव्य, शर्करा व Violine नामक क्षार इमेटीन सदृश गुणधर्म युक्त होता है।

गुण कर्म–रस-मधुर, तिक्त गुण-स्निग्ध, लघु, पिच्छिल, **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, कफहर, स्नेहन, अनुलोमन, अधिक मात्रा में वामक, स्रंसन, कफोत्सारि, रक्तस्तम्भन, रक्तप्रसादन, ज्वरघ्न है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-अनिद्रा एवं शिरः शूल में इसके पुष्पों एवं बादाम गिरी का प्रपीडन विधि

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

से प्राप्त तैल का अभ्यंग शीघ्र लाभप्रद है। **आभ्यन्तर**-प्रतिश्याय, कास, श्वसनिका-प्रदाह, फुफ्फुसप्रदाह, कण्ठप्रदाह, तृष्णा, ज्वर, विबंध, रक्तपित्त, रक्तार्श, रक्तप्रदर में विशेष उपयोगी औषधि है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–पुष्प- 'गुलबनफ़सा', पंचांग, बनफ्सा; स्वरस ५-१० ग्राम; चूर्ण १-२ ग्राम, बनफ़सा शर्बत-क्वाथ।

विशेष–मात्राधिक्य से Violine नामक क्षाराभ की उपस्थिति से वमन, विरेचन क्रिया होती है। स्निग्ध, लघु, पिच्छिल, कफोत्सारि होने से श्वसन संस्थान के प्रदाह, शोथयुक्त विकारों में विशेष उपयोगी है। **प्रतिनिधि**(V.cinerea boiss)पंजाब गुजरात, पश्चिमी राजस्थान के पर्वतीय क्षेत्रों में उत्पन्न होता है। V. serpens wall सर्वत्र पर्वतीय भूमि में उत्पन्न होता है।

ज्योतिष्मती (मालकांगनी)

द्रव्य नाम–हिन्दी : मालकांगनी, कंगुनी।

लेटिन : Celastrus paniculata.

Fam. Celastraceae (ज्योतिष्मती कुल)

संस्कृत : ज्योतिष्मती, कंगुणिका, काकाण्डकी, पारावतपदी, कटभी, पीततैला।

वर्गीकरण–हरीतक्यादि (भा०प्र०) शिरोविरेचन (च०) अधोभागहर, शिरोविरेचन (सुश्रुत)

उ० स्थान लताएं प्रायः सर्वत्र मिलती हैं।

वानस्पतिक परिचय विस्तृत काष्ठमय, आरोहिणी **लता**; नवीन शाखाओं पर श्वेत बिन्दु होते हैं। **पत्र** लट्वाकार ५०-१०० मि० मी० दीर्घ, एवं ३५-७५ मि० मी० चौड़े चर्मवत्, तीक्ष्णाग्र, पर्णधार दन्तुरित **पुष्प** पीत नीलाभ गुच्छों में **फल** गुच्छों में रक्त पीतवर्ण मटर सदृश तीन कोष्ठीय **बीज** प्रत्येक कोष्ठ में एक एक बीज पीत-धूसर वर्ण के त्रिकोणाकृति होते हैं। **पुष्पकाल** ग्रीष्मान्त **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–बीजों में सान्द्र रक्ताभ तिक्त स्थिर तैल ३०% तिक्त राल, कषाय क्षार ५% एवं रंजक द्रव्य होते हैं।

गुणकर्म–रस-कटु, तिक्त गुण-तीक्ष्ण, सर, स्निग्ध, **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातश्लेष्महर। मेध्य, शिरोविरेचन, नाड़ीबल्य, वेदनास्थापन, सारक, दीपन, कोष्ठवातहर, कफघ्न, रक्तशोधक, स्वेदजनन, मूत्रल, बाजीकर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–संधिवात, पक्षाघात, अर्दित, गृध्रसी, कटिशूल, वातव्याधि में तैलाभ्यंग, व्रण, ग्रन्थि पर बीज लेप **आभ्यन्तर**–अपस्मार, स्मृतिदौर्बल्य, उन्माद, पक्षाघात, वातव्याधि, त्वग्रोग, कुष्ठ, बेरी बेरी, शोथ, अग्निमांद्य, कोष्ठगतवात, श्लैष्मिक कास, श्वास, मूत्राघात, क्लैब्य में विशेष उपयोगी औषधि है। स्मृतिदौर्बल्य में इसका तैल गौघृत में मिलाकर दिया जाता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–बीज, बीज तैल **मात्रा** बीज ०·५–१·५ ग्राम, तैल ५–१० बूंद, (रोगानुसार मात्रा न्यूनाधिक) ज्योतिष्मती तैल।

विशेष–बीजों से पातालयन्त्र या कोल्हू में दबाकर तैल प्राप्ति होती है। पातालयन्त्र से प्राप्त तैल कृष्णवर्ण एवं कोल्हू से प्राप्त पीत रक्ताभ सान्द्र जो कुछ समय बाद अधिक सान्द्र हो जाता है तथा कुछ भाग तलछट के रूप में भी रहता है।

अनुसंधान कार्य–इसके तैल के अल्प मात्रा में प्रयोग से केन्द्रीय वातनाडीतंत्र पर शामक (Tranqueiliser) प्रभाव मिला है। अधिक मात्रा में यह उत्तेजक है।

अङ्कोल

द्रव्य नाम–हिन्दी : अंकोल, ढेरा, ढेला।

लेटिन : Alangium lamarckii.

Fam. Cornaceae (अंकोल कुल)

संस्कृत : अंकोल, अंकोट, गंधपुष्प, ताम्रफल, पीतसार, दीर्घकाल, रेची, निकोचक, गुप्तस्नेह, दृढकण्टक।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति स्थान–बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गोवा, दक्षिण भारत के प्रान्तों में पार्वत्य एवं जांगल प्रदेशों में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सुन्दर कांटेदार छोटा **वृक्ष** ३–६ मी० ऊँचा; शाखाएँ श्वेताभ कंटकित **पत्र** आम्रपत्र सदृश किन्तु मृदु या भिन्न २ आकृतियों के, एकान्तर क्रम में ७५–१५० मि०मी० दीर्घ २५ से ५० मि०मी० चौड़े; शुष्क पत्र ग्रन्थियुक्त **पुष्प** श्वेत गुच्छों में **फल** रक्त नीलाभ, लीची के सदृश, स्निग्ध १५ मि०मी० दीर्घ होता है। **पुष्पकाल** वसत **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–मूल त्वक् में ॲलेन्जाइन (Alangine) नामक तिक्त क्षाराभ ०·८%; पोटाशियम क्लोराइड पाया जाता है।

गुण कर्म–रस–कटु, तिक्त, कषाय गुण-स्निग्ध, सर, तीक्ष्ण **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्तस्रंसन, विषघ्न, स्वेदजनन, उभयमार्ग दोषहर (रेचक, वामक) शोथघ्न, वेदनास्थापन, यकृदुत्तेजक, मूत्रजनन होता है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–सविषप्राणि के दंश पर त्वक्लेप, वातव्याधि में तैलाभ्यंग **आभ्यन्तर**–रक्तभाराधिक्य, रक्तविकार, त्वग्रोग, शोथ, विसर्प, जलोदर, अर्श, कृमि, विषदोष, (सर्प-मूषिका विष) शोथ, (यकृद्विकार तथा वृक्कशोथजन्य) ज्वर विशेषतः शोफोपद्रुत-आमवात, डेंग्यु में मूलत्वक् के क्वाथ से ज्वर निवृत्ति एवं शोथ–वेदना में शीघ्र लाभ होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–मूलत्वक्, बीज, बीज तैल **मात्रा** मूलत्वक् २५०-५०० मि० ग्रा० वमनार्थ २ ग्राम। अंकोल तैल।

विशेष–पुष्प वर्ण भेद से श्वेत, कृष्ण, रक्त ३ जातियां होती हैं। स्वेदजनन, शोथघ्न, वेदनाशामक होने से ज्वर विशेषतः शोफोपद्रुत ज्वर डेंग्यु, आमवात आदि में उपयोगी है। विषविकार, त्वग्रोग, वातव्याधि, रक्तभाराधिक्य आदि विकारों में मुख्यतया प्रयोग होता है। मूलत्वक् के मुख्य-कार्यकारी क्षार Alangine की हृदय पर अवसादक क्रिया होने से रक्तभार न्यून होता है।

पर्पट ?

द्रव्यनाम–हिन्दी : पित्तपापडा, शाहतरा।

लेटिन : Fumaria parviflora.

Fam. Fumariaceae (पर्पट कुल)

संस्कृत : पर्पट, वरतिक्त, सूक्ष्मपत्र, पांशुपर्याय, कवच, शीतप्रित कृशशाख, चरक, पित्तारि।

वर्गीकरण–तृष्णानिग्रह (चरक)

उत्पत्ति स्थान–राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब आदि प्रान्तों में गेहूँ जौ के खेतों में शिशिर में क्षुप उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बहुशाखी छत्राकार **क्षुप** ०·३ मी० ऊँचा; **पत्र** गाजर के या धनियां के सदृश खंडित मृदु **पुष्प** रक्तवर्ण छोटे २ शाखाग्र **फल** छोटे गोल अग्रभाग में चपटे होते हैं। **पुष्प फल काल** वसन्त।

रासायनिक संगठन–पंचांग में फ्युमेरिक अम्ल (Fumaric acid) तथा फ्युमेरिन (Fumarine) क्षाराभ ६% होता है।

गुण कर्म–रस–अतितिक्त, गुण–लघु **वि०** कटु **वी०** शीत। पित्तकफशामक, दाह-तृष्णाशमन, यकृदुत्तेजक, रक्तपित्तशामक, मूत्रल, रक्तशोधन।

आमयिक प्रयोग–**आभ्यन्तर**–ज्वर, दाह, तृषा, कामला, यकृद्विकार, वातरक्त, रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ्र, भ्रम, मूर्च्छा, मदात्यय, रक्तविकार, गंडमाला, कुष्ठ में पंचांग का प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–पंचांग **मात्रा** चूर्ण ४–५ ग्राम क्वाथ ५०–१०० ग्राम; पर्पटादि क्वाथ।

विशेष–पर्पटक नाम से ही इसकी अन्य जातियों व द्रव्यों का भी प्रयोग होता है। (१) **जाति** Oldenlandia Corymbosa. (२)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मंजिष्ठा कुल का Rungia repens. (३) Justicia procumbens-वासाकुल (४) Glasso cardia. sennreyfolia-महाराष्ट्रीय पर्पटक (५) Mallugo nadicaulis. मालाबारी, केरल में प्रयोग होता है (६) Polycarpaea corymbosa बिहार में प्रयोग होता है। प्रस्तुत द्रव्यों की अपेक्षा F. Parviflora शाहतरा में शास्त्रानुसार पर्पट का परिचय एवं गुणकर्म मिलने से इसका पर्पट के रूप में प्रयोग उचित है।

शोभाञ्जन

द्रव्य नाम–हिन्दी : सैंजना, सहिजना।

लेटिन : Moringa pterygosperma.

Fam. Moringaceae, (शोभांजन कुल)

संस्कृत : शोभांजन, शिग्रु, तीक्ष्णगंधा, मोचक, अक्षीव।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भा० प्र०) कटुकस्कन्ध, कृमिघ्न, स्वेदोपग, शिरोविरेचनोपग (चरक)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र वृक्ष मिलते हैं।

वानस्पतिक परिचय–छोटा **वृक्ष** ६-८ मी० ऊँचा; कांड सरल श्वेताभ, स्निग्ध **पत्र** संयुक्त त्रिपिच्छाकारवत् (३-Pinnate) पत्रक मृदु अभिमुख, अण्डाकार, ६-९ युग्म **पुष्प** नीलाभ श्वेत गुच्छों में **फल** सम्पुट १५-५० से० मी० दीर्घ, गोल त्रिकोणाकार **बीज** धूसर सपक्ष त्रिकोणीय २५ मि० मी० दीर्घ अनेक होते हैं। **पुष्पकाल** फरवरी **फल** मार्च, अप्रेल।

रासायनिक संगठन–बीजों में निर्गन्ध स्वच्छ तैल ३६%; मूल में Spirochine, pterygospermine जीवाणु नाशक तत्त्व, क्षार पाये जाते हैं।

गुण कर्म–रस-कटु गुण-रूक्ष, तीक्ष्ण, सर, लघु **वि०** कटु **वी०** उष्ण। वातकफशामक, पित्तवर्धक, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, शोथहर, वेदनास्थापन, दीपन, सर, कृमिघ्न, शूलप्रशमन, हृद्य, मूत्रल, गर्भाशयोत्तेजक, विषघ्न, शिरोविरेचन (बीज) है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-आमवात, गृध्रसी, संधिवात, वेदनायुक्त शोथ, विकारों में तैलाभ्यंग तथा पत्र त्वक् क्वाथ से स्वेदन किया जाता है। **आभ्यन्तर**-अपस्मार, वातव्याधि, आमवात, गृध्रसी, पक्षाघात, अग्निमांद्य, उदररोग, गुल्म, शूल, कृमि, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रगत-अम्लवृद्धि, कृच्छ्रार्त्तव' नष्टार्त्तव, विषविकार, ज्वर (वातश्लैष्मिक) में विशेषोपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–त्वक्, पत्र, बीज, तैल **मात्रा** स्वरस २०-३० ग्राम, क्वाथ ३०-५० ग्राम।

विशेष–पुष्प वर्ण भेद से श्वेत, रक्त, जाति होती है। एक जाति कटु तिक्त M. concanensis होती है। इसका क्षार स्पाइरोचिन, ग्रामग्राही विशेषतः स्तवक गोलाणु मालागोलाणु जन्य उपसर्गों में उपयोगी है। प्टेरिगोस्पर्मिन अनेक प्रकार के छत्राणुओं की वृद्धि को रोकता है।

उपोदिका (पोई)

द्रव्य नाम–हिन्दी : पोई, पोयसाग।

लेटिन : Basella alba.

Fam. Chemopodiaceae (वास्तुक कुल)

संस्कृत : उपोदिका, मृदुशाका, पिच्छिला, पोतकी, पूतिका, वल्लिमोदकी, अमृतवल्लरी।

वर्गीकरण–शाक वर्ग (भाव प्रकाश)

उत्पत्ति स्थान–समशीतोष्ण प्रान्तों की आर्द्र भूमि में उद्यानों में लताएं लगायी जाती हैं।

वानस्पतिक परिचय–स्निग्ध, प्रशाखी, दीर्घ, आरोही **लता**; **पत्र** हरित, मांसल, हृदयाकार **पुष्प** असीमाक्ष क्रम में दीर्घ पुष्पदण्ड पर छोटे, रक्ताभश्वेत **फल** गोल, मटर सदृश, बैंगनी वर्ण होते हैं। **पुष्पफलकाल**-शीत।

रासायनिक संगठन–इसमें प्रभूत मात्रा में पिच्छिल द्रव्य एवं अयस् होता है।

गुण कर्म–रस-मधुर; गुण-स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु **वी०** शीत **वि०** मधुर। वातपित्तशामक, कफ-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्धक, दाह-विस्फोटशमन, स्नेहन, कफोत्सारि, सारक, रक्तपित्तशामक, स्वापजनन ।

आमयिक प्रयोग–वाह्य-अनिद्रा, पैत्तिक शिरः-शूल, दाह, अग्निदग्ध, विस्फोट (पत्र लेप) ग्रंथि, शोथ **आभ्यन्तर**-श्वास कास (वात पैत्तिक) पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र-प्रदाह, छर्दि, विबंध कोष्ठगतरौक्ष्य, रक्तार्श रक्तपित्त, अनिद्रा, भ्रम, दौर्बल्य, शुक्रदौर्बल्य में प्रयोग होता है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र **मात्रा** स्वरस १०-३० ग्राम; पानक ३०-५० ग्राम ।

विशेष- ग्रंथि शोथादि में पत्रोपनाह । आभ्यन्तर प्रयोगों में पत्रस्वरस, शाक, पानक दिया जाता है । **जाति** श्वेत पोई की एक जाति–वनपोई (B. cordifolia) रक्त जाति (B. rubra) शाखा, पत्र रक्त वर्ण, फल श्वेत जाति सदृश होते हैं ।

पीलु

द्रव्य नाम–हिन्दी : पीलु, पीलू ।

लेटिन : Salvadora persica.

Fam. Salvadoraceae (पीलु कुल) ।

संस्कृत : पीलु, गुड़फल, श्यामा, स्रंसी, विरेचनफल, शीतसह ।

वर्गीकरण–फलादि (भाव प्रकाश) ज्वरहर, शिरोविरेचन, विरेचन, कटुकस्कन्ध (चरक) ।

उत्पत्ति स्थान–रूक्ष उष्ण क्षार युक्त भूमि में राजस्थान, गुजरात, बिहार, गोवा में स्वयं जात वृक्ष पाये जाते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित छोटा **वृक्ष** २-३ मी० ऊँचा **काण्ड** वक्र, **शाखाएं** अनेक, दुर्बल, अवनत **पत्र** अभिमुख, मांसल, अण्डाकार २५-५० मि० मी० दीर्घ **पुष्प** शाखाग्र छोटे-छोटे हरिताभ पीत **फल** रसदार गोल, मिर्च सदृश, मांसल, चमकीले रक्त, बैंगनी वर्ण **बीज** एक गोल होता है । **पुष्पकाल** बसंत **फल** ग्रीष्म ।

रासायनिक संगठन–फल में शर्करा, रंजक द्रव्य, वसा, क्षारतत्त्व, मूल में Salvadorine क्षार, Trimethylanine में Chlorine प्रभूत, मात्रा में राल, रंजक द्रव्य होते हैं ।

गुण कर्म–रस-कटु, मधुर, तिक्त, **गुण** तीक्ष्ण, स्निग्ध, लघु **वी०** अनुष्ण **वि०** कटु । त्रिदोषशामक शोथ-ग्रन्थि विम्लापन, **फल** सारक, शूलहर अर्शोघ्न, ज्वरघ्न । त्वक् कफघ्न, मूत्रल, आर्त्तवजनन ।

आमयिक प्रयोग–वाह्य-दन्तरोग, पामा, गंडमाला, जीर्ण सन्धिशोथ, अर्श, पाददारी, सर्पदंश **आभ्यन्तर**–कृमि, अर्श, गुल्म, उदर, विबंध, रक्तपित्त, रक्तविकारों, ज्वर में फल प्रयोग; कास-श्वास-प्रतिश्याय में (पत्र) मूत्रकृच्छ्र रजोरोध (त्वक्) में उपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, पत्र, मूलत्वक् **मात्रा** पत्र चूर्ण १-३ ग्राम; फलस्वरस ५-१० ग्राम त्वक् क्वाथ ४०-५० ग्राम, पील्वासव ।

विशेष–दन्तरोगों में नवीन शाखा से दन्तधावन, पामा-सन्धिशोथादि में तैल लेप, अर्श में तैल-वर्ति, सर्पदंश में त्वक् बीज लेप । बड़ी जाति (वृद्ध पीलु S. aleoides) वृक्ष पीलु सदृश, पत्र दीर्घ, अल्प कटु, फल बड़े, बीजतैल (Oleoides) युक्त होते हैं ।

तिल

द्रव्य नाम–हिन्दी : तिल, तिली ।

लेटिन : Sesamum indicum.

Fam. Pedaliaceae (तिलकुल) ।

संस्कृत : तिल, स्नेहफल, होमधान्य, पूतधान्य ।

वर्गीकरण–धान्यवर्ग (भाव प्रकाश) ।

उत्पत्ति स्थान–देश के सभी प्रदेशों में विशेषतः उष्ण प्रदेशों में खेती की जाती है ।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु **क्षुप** ०.३-१ मी० ऊँचा **पत्र** अभिमुख, विविधाकृति, नीचे के पत्र डिम्बाकृति, ऊपर के दीर्घपत्र आयताकृति **पुष्प** घण्टाकार, मृदु, रोमश श्वेत नीलाभ, रक्तपीत

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चिन्हांकित **फल** द्विकोष्ठीय, चतुष्कोणीय **बीज** स्निग्ध, छोटे, चिपटे, अण्डाकार नुकीले, श्वेत, कृष्ण होते हैं।

रासायनिक संगठन–बीजों में स्थिर तैल ५०-६०%, प्रोटीड्स २२%, कार्बोहाइड्रेट १८%, पिच्छिल द्रव ४%, शाकतत्त्व १.८%, अनेक खनिज द्रव्य, सिसेमिन क्षार होते हैं।

गुण कर्म–रस-मधुर, कषाय, तिक्त, गुण स्निग्ध गुरु **वी०**उष्ण **वि०**मधुर वातशामक पित्तकफवर्धक, केश्य, नाड़ीबल्य, दीपन, शूलहर, मूत्रसंग्रहणीय, आर्त्तवजनन बल्य बृंहण तथा स्नेहन।

आमयिक प्रयोग–बाह्य - खालित्य, पालित्य, वातव्याधि में (तैलाभ्यङ्ग) अर्श, स्नायुक, लूताविष, मुखदूषिका में (लेप) **आभ्यन्तर** नाड़ी दौर्बल्य, गुल्म, ग्रहणी, रक्तार्श, रक्तातिसार, प्रमेह, उदकमेह, शुक्रमेह, रजोरोध, दौर्बल्य, कार्श्य में बीज या बीज तैल का दैनिक प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–बीज, बीजतैल **मात्रा** बीज चूर्ण ३-५ ग्राम, तिलादिगुड़िका, लेप।

विशेष–श्वेत तिल में स्नेह की मात्रा अधिक होती है। कृष्ण तिल (Guizojia abyssynica) भृंगराजकुल की खेती दक्षिणी भारत, बंगाल में की जाती है। क्षुपमृदु पुष्प ५ दली हरित श्वेताभ श्वेत बीज कृष्ण वर्ण होते हैं।

अतसी (अलसी)

द्रव्य नाम–हिन्दी : अलसी, तिसी।

लेटिन : Linum usitatissimum

Fam. Linaceae (अतसी कुल)।

संस्कृत : अतसी, उमा, पिच्छिल, नीलपुष्पी।

वर्गीकरण–धान्यवर्ग (भाव प्रकाश)।

उत्पत्ति स्थान–मध्यप्रदेश, बंगाल, उड़ीसा, बिहार, महाराष्ट्र में विशेषतः खेती की जाती है।

वानस्पतिक परिचय–वर्षायु-मृदु क्षुप ०.६-१.३ मी० ऊंचा, **शाखाएं** विरल, छोटी, **पत्र** अन-अनुपर्णी एकान्तर २५-७० मि० मी० दीर्घ तनु, नुकीले **पुष्प** शाखाग्र, सुन्दर, चक्राकार छोटे नीलवर्ण के **फल** गोल, घुण्डीदार, नुकीला ५ कोष्ठीय, **बीज** प्रत्येक कोष्ठ में २-२ स्निग्ध सर्षप सदृश रक्ताभ धूसर, चपटे होते हैं।

रासायनिक संगठन–बीजों में स्थिर तैल ३०-४०% प्रोभूजिन, राल, शर्करा, पिच्छिल द्रव्य १५% भस्म में पोटाशियम, केल्शियम, मेगनेशियम के सल्फेट, क्लोराइड्स होते हैं।

गुण कर्म–**रस** तिक्त, मधुर **गुण** स्निग्ध, पिच्छिल गुरु **वी०** उष्ण **वि०** कटु। वातशामक कफपित-वर्धक बाह्य प्रयोग-शोथहर, वेदनाशामक व्रणशोथ (पाचनार्थ) आभ्यन्तर–वेदनास्थापन, सारक, कासहर मूत्रल मुख्य कर्म हैं।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-अग्निदग्धव्रण, त्वग्रोग व्रणशोथ, (पुल्टिस बंधन किया जाता है) **आभ्यन्तर** शोथ, पार्श्व-हृच्छूल हृदयावरण शोथ श्वसनकज्वर में लेप **आभ्यन्तर** विबंध, अर्श, आनाह (तैल) ग्रहणी अतिसार (भृष्टबीज) कास, श्वास, प्रतिश्याय, मूत्रकृच्छ्र, बस्तिशोथ, पूयमेह (बीज फाण्ट) में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–बीज, तैल, पुष्प **मात्रा** बीजचूर्ण ३-६ ग्राम, तैल १०-५० ग्राम, अत्स्यादि लेप।

विशेष–व्रणशोथ में बीजों को पीसकर पानी के साथ लेह जैसा पकाकर उपनाह (पुल्टिस) बंधन दैनिक चिकित्सा में प्रयुक्त होता है। अग्निदग्ध व्रण में चूने के निथरे हुए जल में इसका तैल मिला-कर लेप उपयोगी है। तैल मृदुकर (Emollient) अन्न, पुरीष, प्राण, मूत्रवह स्रोतस में स्नेहन क्रिया करता है।

दाड़िम

द्रव्य नाम–हिन्दी : दाडम, अनार।

लेटिन : Punica granatum

Fam : Punicaceae (दाड़िमकुल)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

संस्कृत : दाडिम, दन्तवीज, लोहितपुष्पक ।

वर्गीकरण–फलादि (भा०) हृद्य, छर्दिनिग्रहण (चरक) ।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र उद्यानों में वृक्ष मिलते हैं। उत्तम दाडिम पश्चिमी हिमालय-कश्मीर में प्राप्त होता है ।

वानस्पतिक परिचय–बहुशाखी मध्यमाकार **वृक्ष** शाखाएं स्निग्ध गोल, त्वक्-तनु, धूसर **पत्र** अभिमुख, आयताकृति, प्रतिभालाकार ५०-७५ मि०मी० दीर्घ स्निग्ध, कुण्ठिताग्र **पुष्प** मनोरम रक्तवर्ण नलिकाकार ५-७ दली पृथक् **फल** गोल ५०-७५ मि० मीटर व्यासयुक्त आधार पर पुटपत्रावशेष गुच्छक **बीज** रक्त, श्वेत, गुलाबी, दन्ताकार बहुसंख्यक, स्पंजवत्, बहुपार्श्वीय होते हैं। **पुष्प** ग्रीष्म **फल** वर्षा ।

रासायनिक संगठन–फल में शर्करा १५% पेक्टीनमनाइट (मधुर रवेदार मिश्रण) । फलत्वक् में टैनिन २२-२५%, मूल त्वक् में Punico tannic acid २०-२५% मूल में Pelletierine क्षार होता है ।

गुण कर्म–रस-मधुर, अम्ल कषाय **गुण** स्निग्ध लघु **वी०** अनुष्ण **वि०**मधुर । त्रिदोषशामक,रोचक, दीपन, ग्राही रक्तपित्तशामक, हृद्य, कफोत्सारि बल्य; कृमिघ्न (मूलत्वक्) है ।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-नेत्राभिष्यन्द, कर्णरोग, इन्द्रलुप्त (पत्र, मूलत्वक् लेप) गल एवं कंठ रोगों में त्वक्क्वाथ गंडूष, प्रदर **आभ्यन्तर**-अरोचक, अग्निमांद्य, अतिसार ग्रहणी, अम्लपित्त, कृमि (त्वक्) पाण्डु, रक्तपित्त, हृद्रोग, वातज कास, ज्वर दौर्बल्य में उपयोगी है ।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, पुष्प, फल, मूलत्वक्, **मात्रा** फलस्वरस २०-५० ग्राम । त्वक्क्वाथ ४०-८० ग्राम । दाडिमाष्टक चूर्ण, दाडिमाद्य घृत, दाडिमाद्य तैल ।

विशेष–प्रदर में त्वक् क्वाथ का उतर बस्ति प्रयोग । देश भेद से अनेक जातियाँ निघण्टुओं में वर्णित हैं (क) मधुर (ख) अम्ल (ग) मधुराम्ल वर्तमान में सबसे उत्तम बेदाना काबुली होता है । अनार के शुष्क बीज अनारदाना नाम से बाजार में मिलते हैं । स्फीत कृमि एवं चूर्णकृमि में निरन्नोदर, मूलत्वक् क्वाथ का या इसके सत्व Punicine sulphate का प्रयोग १२५-५०० मि० ग्राम की मात्रा में विशेष लाभकारी होता है ।

अनन्नास

द्रव्य नाम–हिन्दी : अनानास ।

लेटिन : Ananas sativus ।

Fam. Bromeliaceae (अनानास कुल) ।

संस्कृत : अनन्नास ।

उत्पत्ति स्थान–अमरीका का आदिवासी क्षुप; संप्रति दक्षिण-पूर्वी प्रान्त बंगाल, महाराष्ट्र गोवा में उत्पन्न होते हैं ।

वानस्पतिक परिचय–कांटेदार, पत्रमय **क्षुप** ०.६-१.३ मी० ऊंचा **पत्र** केतकी सदृश, दीर्घ गहरे दंतुरित, कंटकित **पुष्प** काण्ड के मध्यभागोद्भूत, लघु, काण्ड के अग्रस्थ, नीलवर्ण **फल** कटहल सदृशाकृति, रक्तपीताभ, ग्रंथियुक्त **बीज** अनेक, अण्डाकार, चपटे होते हैं । **पुष्पकाल** वर्षा ।

रासायनिक संगठन–फल में Bromelin तत्त्व, फलस्वरस में प्रोटीड पाचक एक किण्व तत्त्व, भस्म में सिलिका, लौह, मेगनेशियम, पोटेशियम क्लोराइड, गन्धकाम्ल होते हैं ।

गुण कर्म–रस-पक्व फल मधुर, अपक्व-अम्ल, गुण स्निग्ध, गुरु, **वि०** शीत **वीपाक** मधुर । वातपित्तशामक, रोचक, सारक रक्तपित्तशामक, हृद्य, मूत्रल । अपक्व फल गर्भाशय तीव्र संकोचक होता है ।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर–अरोचक, अम्लपित्त, कामला, विबंध, रक्तार्श (फल स्वरस) रक्तपित्त, हृद्रोग, मेह, अश्मरी, मूत्राघात, रजोरोध,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कृच्छ्रार्त्तव, ज्वर में (फल) आंत्रकृमि–हिक्का (पत्र-रस) में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, पत्र **मात्रा** फल-स्वरस २०–५० ग्राम; पानक ५०-१०० ग्राम, पत्रस्वरस १०–२० ग्राम; अनन्नास पानक।

विशेष–फल के मध्य भाग का सेवन, एवं निरन्नोदर उपवासावधि में प्रयोग वर्जित है। अपक्वफल गर्भाशय संकोची होने से गर्भकाल में सेवन निषिद्ध है। कण्ठरोहिणी में फलस्वरस का आभ्यन्तर प्रयोग एवं कोष्ण जल में रस डालकर गंडूष प्रयोग विशेष लाभकारी है।

परूषक (फालसा)

द्रव्य नाम–हिन्दी : फालसा।

लेटिन : Grewia asiatica.

Fam. Tiliaceae (परूषक कुल)

संस्कृत : परूषक, अल्पास्थि, मृदुफला।

वर्गीकरण–फलादि (भा० प्र०) ज्वरहर, श्रमहर, विरेचनोपग (चरक)

उत्पत्ति स्थान–देश के पूर्वी प्रान्त बिहार बंगाल, आसाम उड़ीसा में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मध्यामाकार **वृक्ष** ५-८ मी० ऊँचा **पत्र** त्रिपत्रक, गोल, खर, दंतुरित **पुष्प** गुच्छों में पीतवर्ण, छोटे–छोटे ५ दली **फल** मटर सदृश, मांसल, बैंगनी, मधुराम्ल (पक्व) **पुष्पकाल**-बसन्त, **फल**-ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–फल में अम्ल, शर्करा आदि द्रव्य; त्वक् में पिच्छल सत्व होता है।

गुण कर्म–रस-मधुर, अम्ल, कषाय गुण-स्निग्ध, लघु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातपित्तशामक, रोचक, दीपन, छर्दि-तृष्णा-दाहप्रशमन, सर, रक्तपित्तशामक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-पूययुक्त स्फोटों में पत्र, कलिका लेप, शोथ-वेदना में त्वक् लेप **आभ्यन्तर**-अरोचक, तृष्णा, दाह, छर्दि, विबंध, रक्तपित, हृद्रोग, वातरक्त, दौर्बल्य (पक्व फल) आमवात, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह, इक्षुमेह, रक्तमूत्र, रजोरोध में (त्वक् फाण्ट) उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, त्वक् **मात्रा** फलस्वरस १०-२० ग्रा०; पानक २०-४० ग्राम त्वक् फाण्ट ३०-५० ग्राम। फालसा शार्कर।

विशेष–विरेचन द्रव्यों के साथ पक्व फल, रुचिकर तथा विरेचन कर्म जनित रौक्ष्यता, शोष, तृषा आन्त्रोद्वेष्टन, दौर्बल्य विकारोपशामक है। ज्वर एवं तज्जन्य वातपैत्तिकोपद्रवों में विशेष लाभकारी है।

तिन्दुक (तेंदू)

द्रव्य नाम–हिन्दी : तिंदु, तेंदू।

लेटिन : Diospyros embryopteris.

Fam. Ebenaceae (तिन्दुक कुल)

संस्कृत : तिन्दुक, कालस्कंध, दंतशठ।

वर्गीकरण–फलादि (भा० प्र०) उदर्दप्रशमन (चरक)।

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र पार्वत्यभूमि में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित, बहु शाखी, मध्यमाकार सघन **वृक्ष**, काण्डत्वक् कृष्ण एवं धूसर **पत्र** स्निग्ध, चमकीले, आयताकार, अण्डाकार दो पंक्तियों में क्रमबद्ध, श्याम हरित **पुष्प** सुगंधित श्वेत रक्ताभ गुच्छों में **फल** गोल २५-५० मि० मी० व्यासयुक्त पीत रक्ताभ ५ बाह्यदल युक्त **बीज** २-४ स्निग्ध, कृष्ण अण्डाकार वृक्काकार **पुष्पकाल** बसंत **फल** ग्रीष्म।

रासायनिक संगठन–अपक्व फल, त्वक्, पुष्प में कषाय द्रव्य प्रचुर मात्रा में, पक्व फलो में कषाय द्रव्य, ग्लुकोज, पेक्टीन, गैलोटेनिक सदृश कषायाम्ल १२.८% होता है।

गुण कर्म–रस-फल मधुर, कषाय त्वक्-कषाय **गुण** लघु, रूक्ष **वी०** शीत **वि०** कटु। पित्तकफशामक,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शोथहर, स्तम्भन, रक्तशोधन, रक्तस्तम्भक, मूत्रसंग्रहणीय।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-सद्यव्रण एवं ग्रन्थि स्फोट अग्निदग्ध में त्वक् लेप; मुखपाक, गलशुण्डिका। **आभ्यन्तर**–अतिसार-प्रवाहिका-कास-उदर्द-शीतपित्त, कुष्ठ-प्रमेह में (त्वक्) रक्तपित्त, रक्तरोग; प्रदर (श्वेत-रक्त) शीघ्रपतन-शुक्रमेह (फल) में प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएं–फल, बीज, त्वक् **मात्रा** त्वक् क्वाथ ४०-८० ग्राम, फलमज्जा २०-५० ग्राम।

विशेष–मुख रोगों में फल क्वाथ गंडूष, योनि रोग-गर्भाशय शोथ में फल क्वाथ की उत्तर बस्ति। एक जाति (D. Tomentosa) बंगाल, उत्तर प्रदेश में उत्पन्न, वृक्ष पत्र, फल तिन्दुक सदृश होते हैं। त्वचा का प्रयोग चर्मरंजन में भी होता है।

अक्षोट (अखरोट)

द्रव्य नाम–हिन्दी : अखरोट।

लेटिन : Juglans regia.

Fam. Juglandaceae (अक्षोट कुल)।

संस्कृत : अक्षोट, मदनाभफल, फलस्नेह, रेखाफल, पार्वतीय।

वर्गीकरण–फलादि वर्ग (भाव प्रकाश)

उत्पत्ति स्थान–हिमालय प्रदेश में ५-१० हजार फीट तक कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब एवं आसाम में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–बड़ा **वृक्ष** २०-२५ मी० ऊँचा; काण्ड अतिस्थूल **त्वक्** स्थूल (४० मि० मी०) अनुलम्ब विदीर्ण, **काष्ठ** दृढ, कृष्ण चिन्हांकित, रेखाकार **पत्र** संयुक्त पत्रक ५-११ युगल, दीर्घ-अंडाकार, चर्मवत्, स्थूल **पुष्प** एक लिंगी छोटे, श्वेत गुच्छों में **फल** मदनफल सदृश, द्विकोष्ठी, रेखाकार, दृढावरणयुक्त। मज्जा रक्ताभ धूसर वृहन्मस्तिष्क-सदृश, उत्सेधखात युक्त **पुष्पकाल**-वसंत फल-शरद्।

रासायनिक संगठन–फल मज्जा में ४०-४५% स्थिर तैल, कार्बोहाइड्रेट ११%, प्रोटीन १५.६%, खनिज द्रव्य (लोहा, फोसफॉरस, केल्शियम) Juglandic acid राल होता है।

गुण कर्म–रस-मधुर गुण-गुरु, स्निग्ध **वी०** उष्ण **वि०** मधुर। वातशामक, कफपित्तवर्धक, स्नेहन, मस्तिष्क-नाड़ीबल्य, सारक, कोष्ठगतवातशामक, बृंहण बल्य, स्तन्यजनन, स्थावरविषघ्न।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-मुख-गलरोग (त्वक् क्वाथ गंडूष) शोथ, स्नायुक में कोष्ण त्वक् कल्क लेप, **आभ्यन्तर**-वातव्याधि मस्तिष्क-दौर्बल्य-विबंध-कोष्ठगतरौक्ष्यता-वातगुल्म में (तैल) कृमि, कफज-कास (त्वक्), शुक्रदौर्बल्य, कार्श्य, क्षय, स्तन्याल्पता, स्थावरविष में मज्जा प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फलमज्जा, तैल, त्वक् **मात्रा** मज्जा १०-४० ग्राम; तैल १०-३० ग्राम।

विशेष–जाति–वन्य अखरोट-स्वयं उत्पन्न, वृक्ष अति बड़ा, फलत्वक् अति कठिन, स्थूल होती है। यह वातव्याधि, मस्तिष्कदौर्बल्य जनित विकारों में विशेष उपयोगी। प्रोटीन-वसा, कार्बोहाइड्रेट खनिज द्रव्ययुक्त होने से कार्श्य, क्षय-दौर्बल्य में लाभप्रद है। अहिफेन-भल्लातक जन्य विषविकारों में उपयोगी है।

भव्य (चालता)

द्रव्यनाम–हिन्दी : चालटा, चिलता।

लेटिन : Dillenia indica.

Fam. Dilleniaceae (भव्य कुल)।

संस्कृत : भव्य।

उत्पत्ति स्थान–दक्षिण भारत, गोवा में वृक्ष स्वयं उत्पन्न तथा बंगाल, बिहार, आसाम, उत्तर प्रदेश के उद्यानों में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित मनोरम मध्यमाकार **वृक्ष**, त्वक् तनु धूसर **पत्र** सघन दीर्घ २०-३० से० मी० दीर्घ एवं ५-१० से० मी० चौड़े आयताकृति, भालाकृति, पत्रधार आरा के समान तीक्ष्ण दंतुरित, स्थूल **पुष्प** श्वेत, सुन्दर, सुगंधित, दीर्घ गोल **फल** नतोदर पुटपत्रों से आच्छादित,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गोल, ऊर्ध्व तथा अधः भाग नतोदर, कठिन, हरित (अपक्व) पक्व धूसर वर्ण का होता है। **बीज** सेम सदृश अनेक होते हैं। **पुष्पकाल** ग्रीष्म **फल** शीत।

रासायनिक संगठन–फल में टैनिन, ग्लुकोज, गैलिक एसिड तथा बीजों में प्रचुर पिच्छिल द्रव्य होता है।

गुण कर्म–रस-अम्ल, मधुर, कषाय गुण-गुरु वी० शीत वि० अम्ल। वातशामक, पित्तकफवर्धक, फल-रुचिकर, तृषा-दाहशमन, दीपन, ज्वरघ्न पुष्प-हृद्य होता है।

आमयिक प्रयोग–आभ्यन्तर–तृषा, अरोचक पैत्तिकविकारों में फल पानक, हृद्दौर्बल्य, कास में पुष्प स्वरस (कफोत्सारि होने से) अतिसार (पत्र स्वरस) ज्वर तथा तज्जन्य (तृषा दाह) उपद्रवों में फलस्वरस या पानक प्रयोग लाभकारी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–फल, पत्र, त्वक् पुष्प **मात्रा** फल पत्र स्वरस २०-४० ग्राम।

विशेष–इसके पुष्प भव्य (स्वच्छ) श्वेत होने से भव्य नाम सार्थक है। चरक, सुश्रुत में उल्लेख मिलने पर भी निघण्टुग्रन्थों में विशेषोल्लेख नहीं है। कुछ विद्वान कर्मरंग को ही भव्य मानते हैं, किन्तु दोनों द्रव्य शास्त्रीय एवं प्रायोगिक दृष्टिकोण से भिन्न हैं। गुरु होने से अतिमात्रा प्रयोग से अजीर्ण, अतिसार, अग्निमांद्य विकार संभावित हैं।

चांगेरी

द्रव्य नाम–हिन्दीः चांगेरी, तिपतिया।

लेटिन : Oxalis Corniculata.

Fam. Geraniaceae (चांगेरी कुल)।

संस्कृत : चांगेरी, दन्तशठा, क्षुद्राम्ला, अम्ल-पत्रिका, अम्लशठा।

उत्पत्ति स्थान–क्षुप प्रायः सर्वत्र आर्द्रभूमि में होते हैं।

वानस्पतिक परिचय–भू प्रसरी छोटा क्षुप; **काण्ड** गोल हरित-पीताभ **पत्र** मृदु, गोल, तीनपत्र संयुक्त; स्वाद में अम्ल **पुष्प** छोटे पीतवर्ण **फल** २५-४० मि० मी० दीर्घ गोपुच्छाकार होता है। **पुष्पफल काल** शरद्।

रासायनिक संगठन–पंचांग में पोटाशियम तथा Oxalate acid होता है।

गुण कर्म–रस- अम्ल, कषाय गुण-रूक्ष, लघु वी० उष्ण वि० अम्ल। वातकफशामक, पित्तवर्धक स्थानिक प्रयोग से शोथहर, चक्षुष्य, गुदसंकोचक, रोचक, शूलहर, विषघ्न **आभ्यन्तर**-दीपन, वेदना-शमन, यकृदुत्तेजक, ग्राही, विषघ्न है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-नेत्र विकार (अर्म-शुक्ल) में रसाश्च्योतन, लेप, शिरः शूल, व्रणशोथ, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र में लेप **आभ्यन्तर** उन्माद,दाह, अग्निमांद्य, अरोचक, उदरशूल, ग्रहणी, अतिसार, अर्श, गुदभ्रंश, शीतपित्त, विषमज्वर स्थावरविष (धत्तूर एवं अहिफेन) में विशेष प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग **मात्रा** स्वरस ५-१० ग्राम, पानक २०-४० ग्राम चांगेरीघृत।

विशेष–बड़ी जाति (O. acetoselia) काण्ड रक्ताभ, सग्रन्थि, पत्र बड़े पुष्पदल श्वेत या गुलाबी। शिरःशूल में कोष्णस्वरस में प्याज का रस डालकर ललाट पर लेप। गुदभ्रंश में पंचांग-कल्क से सिद्ध-घृत का लेप एवं आभ्यन्तर प्रयोग विशेष लाभ-कारी है।

ईश्वरी (इसरमूल)

द्रव्यनाम–हिन्दी : इसरमूल, कालीपाठ।

लेटिन : Aristolochia indica.

Fam. Aristolochiaceaea (ईश्वरी कुल)

संस्कृत : प्रसरी, अर्कपत्रिका, नाकुली, रुद्रजटा, विषापहा, अहिगंध, सुनन्दा।

उत्पत्ति स्थान–बंगाल, आसाम, महाराष्ट्र, पश्चिमी घाट, गोवा अन्यत्र भी वन्य एवं पर्वतीय स्थान में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिकपरिचय–बहुवर्षायु **लता मूल** कृष्णाभ, तनु, तीव्रगंधि (कर्पूर सदृश) **स्तम्भ** आवर्तित,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

काष्ठीय, नलिकाकृति **त्वक्** स्थूल, तिक्त, रेखाकार, ग्रन्थियुक्त, तीव्रगंधि, **पत्र** दूरवर्ती, आकपत्र सदृश, विविधाकृति ५०-१०० मि० मी० दीर्घ, २५-५० मि० मी०चौड़े, अग्रभाग में चौडे,मसलने पर विशेष तीव्रगंधि, **पुष्प** धूसर बैंगनी, बाह्यदल रहित, तूरी आकार के **फल** गोल, षट्रेखाकार, त्रिकोष्ठी स्फुटित होने पर छत्राकार **बीज** अनेक चपटे भूरे, त्रिकोणाकार या सर्पफणाकार होते हैं। पुष्पकाल-वर्षा **फल** शरद्।

रासायनिक संगठन–मूल में उड़नशील तैल, Aristolochine सत्व, रंजक द्रव्य, स्टार्च तथा क्षार होते हैं।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त, कषाय गुण–तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु **वी०** उष्ण **वि०** कटु। त्रिदोषशामक, स्थानिक प्रयोग-जाङ्गमविषघ्न, आभ्यन्तर-दीपन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, कफोत्सारि,रक्तशोधक,गर्भाशय-तीव्रोत्तेजक, जांगमविषघ्न, तिक्तपौष्टिक।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-सर्प, वृश्चिक,लूतामूषक जांगमविषों में पत्र, मूल लेप; शोथ आमवात में (मूल) **आभ्यन्तर**-उदरशूल, कृमि जलोदर, अर्श, विसूचिका शोथ, रक्तविकार, आमवात, हृद्दौर्बल्य, श्वास, कास, त्वग्रोग, कुष्ठ, रजोरोध, कष्टप्रसव, प्रसूतिज्वर, नियतकालिकज्वर, जांगम विषों में विशेष उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, मूल,काण्ड **मात्रा** पत्र स्वरस १–३ ग्राम, मूल चूर्ण ०.५-१.५ ग्राम।

विशेष–विविध प्रकार के सर्पदंशों में इसका बाह्याभ्यन्तर प्रयोग विश्वसनीय लाभप्रद है। मूल, पौष्टिक, उत्तेजक, आर्तवजनन, संधिवातहर एवं विष प्रतिबंधक, (Alexiteric) होता है। गर्भावस्था में प्रयोग निषिद्ध है। इसका प्रयोग स्वरस-चूर्ण कल्प में ही करना चाहिए। क्वाथ से क्रियाशील तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। शिशुओं के दंतोद्गम काल जन्य विकारों में अति उपयोगी है।

वेतस (बेदमुश्क) ?

द्रव्यनाम–हिन्दी : वेदमुश्क।

लेटिन : Salix Caprea.

Fam. Salicaceae (वेतसकुल)

संस्कृत : वेतस, वानोर, अभ्रपुष्प, वञ्जुल, नम्रक, शीत।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भावप्रकाश)

उत्पत्ति स्थान–पश्चिमोत्तर प्रांत-पंजाब,कश्मीर पश्चिमोत्तर प्रदेश में वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–मनोरम, गुल्माकार,छोटा **वृक्ष** ५-८ मी० ऊंचा, त्वक्-तनु तिक्त शाखाएं अभिमुख **पत्र** एकान्तर, हरित, अण्डाकार,दन्तुरित, नुकीले, स्निग्ध, ५०-१०० मि० मी० दीर्घ **पुष्पक्रम** असीमाक्ष, **पुष्प** पीत वर्ण, सुगंधित **बीज** रोमश पुष्पों को बेदमुश्क कहते हैं। शुष्क निर्यास को "बेद अंगवीन" कहते हैं।

रासायनिक संगठन–त्वक् में टेनिक एसिड ४-१०% एक तिक्त रवेदार ग्लुकोसाइड Salicine २-७% वसा, मोम, गोंद, पत्रों पर एक मधुर निर्यास स्रवित होता है जिसे बेदअङ्गवीन कहते हैं।

गुण कर्म–रस-कटु तिक्त, कषाय गुण-स्निग्ध **वी०** शीत **वि०** कटु। त्रिदोषशामक, मस्तिष्कबल्य, वेदनास्थापन, रक्तपित्तशामक, शोणितास्थापन, हृद्य, मूत्रल, ज्वरघ्न है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-रक्तार्श (त्वक् क्वाथ परिषेक) नेत्राभिष्यंद-दाह पैत्तिक शिरःशूल में इसका अर्कासिक्त वस्त्र धारण **आभ्यन्तर**-मस्तिष्क दौर्बल्य, भ्रम, ग्रहणी, यकृद्विकार, रक्तपित्त, विसर्प, हृद्दौर्बल्य, हृच्छूल-हृद्द्रव, उरःक्षत,सरक्तकफष्ठीवन, मूत्रकृच्छ्र-दाह, जीर्णज्वर, वेदनाप्रधान विकारों, एवं स्वप्नदोष में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अंङ्ग कल्पनाएं–त्वक्, पुष्प, पत्र, बेद अंगवीन, अर्क **मात्रा** अर्क ५०-१०० ग्राम; स्वरस २०-५० ग्राम क्वाथ ५०-१०० ग्राम।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विशेष–संदिग्ध द्रव्य है। प्रस्तुत द्रव्य के अतिरिक्त Calamus rotang, C.enuis; C. Tenuis roxb. Salix alba, S. Tetrsperma.; S. acmophylla आदि द्रव्यों का प्रयोग होता है। हृद्रोगों (हृच्छूल-हृत्द्रव) में तरल सत्व प्रयोग। स्वप्न दोष में (तरल सत्व २० बूंद शयन के पूर्व) रक्तपैत्तिक विकारों में विशेष लाभप्रद है।

वन्दाक (बांदा)

द्रव्यनाम–हिन्दी : बांदा, वन्दा।

लेटिन : Loranthus-Longiflorus.

Fam. Loranthaceae (बन्दाकुल)

संस्कृत : वृक्षादनी, वन्दाक,वृक्षरुहा,वृक्षभक्ष्या।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भावप्रकाश) मूत्र विरेचनीय, हिक्का निग्रहण (चरक)

उत्पत्ति स्थान–हिमालय के उष्ण समशीतोष्ण प्रदेश ३-७ हजार फीट तक बंगाल,बिहार, आसाम, उत्तर प्रदेश, तथा पंजाब, गुजरात, तमिलनाडु में क्षुप पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–पराश्रयी काष्ठीय **क्षुप** आम-बबूल-महुवा आदि वृक्षों पर उत्पन्न; शाखाएं लता सदृश १-१.५ मी० दीर्घ, सरल, तनु, धूसर **पत्र** स्निग्ध, स्थूल, श्लेष्मातक सदृश, अण्डाकार, लम्ब गोल ७५-१५० मि० मी० दीर्घ २५-५० मि० मी० चौड़े विविधाकृति **पुष्प**-पीत, नारंगी श्वेत ५ दली, दीर्घ नलिकाकार **फल** मांसल, अण्डाकार, श्वेत पीत हरिताभ पक्व-रक्ताभ गुच्छों में होते हैं।

रासायनिक संगठन–बीजों में स्थिर तैल, पिच्छिल, राल, शर्करा, स्टार्च होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त, कषाय, मधुर गुण-रूक्ष, लघु वी० शीत वि० कटु। त्रिदोषशामक, आक्षेपहर, रक्तपित्तशामक, स्तम्भन, शोणितास्थापन, मूत्रल, ज्वरघ्न, विषघ्न है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य शोथ में पत्र पुष्प कोष्ण लेप, कर्णशूल में कोष्णरसपूरण (कर्णबिन्दु) **आभ्यन्तर**-हृद्रोगजन्य श्वास, फुफ्फुस-प्रदाह, कास, श्वास, सरक्तकफष्ठीवन, शोथ, उन्माद अपस्मार, आक्षेपप्रधान रोग; रक्तपित्त, रक्तातिसार,प्रवाहिका, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, तज्जन्य भ्रम, प्रलाप वैचित्य में विशेष प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पत्र, पुष्प,**मात्रा** स्वरस १०-२० ग्राम, क्वाथ (पत्र,पुष्प) ४०-५० ग्राम

विशेष–अनेक जातियां-छोटा बांदा- L. Globusus; Viscum album; बंगाल, आसाम में उत्पन्न, तरुणी कुल के वृक्षों पर आरोही हरित क्षुप; शाखा द्विविभक्त **पत्र** अवृन्त भालाकार **पुष्प** ३-५ प्रत्येक गुच्छ में **फल** छोटे, मांसल, गोल, श्वेत पारदर्शक होते हैं।

शृंगाटक (सिंघाड़ा)

द्रव्य नाम–हिन्दी : सिंघाड़ा

लेटिन : Trapa bispinosa.

Fam. Onagraceae (शृंगाटक कुल)

संस्कृत : शृंगाटक, त्रिकोणफला, जलफल, जलकंटक।

वर्गीकरण–फलादि वर्ग (भावप्रकाश)

उत्पत्ति स्थान–अनेक प्रान्तों के छोटे, बड़े, तालाबों में लताएं उत्पन्न होती हैं।

वानस्पतिक परिचय–जल के ऊपर प्रसरणशील **लता, पत्र** वृन्त दीर्घ रक्तवर्ण, पत्र एकान्तर प्रायः गोल त्रिकोणाकार, दन्तुरित, रक्त सिराएं युक्त **पुष्प** पत्र कोणोद्भूत, श्वेत वर्ण **फल** हरित वर्ण त्रिकोणाकार, मांसल, पार्श्वकोणों में दो कांटे युक्त फलमज्जा श्वेत-स्टार्च प्रधान होती है। **पुष्पकाल** शरद् **फल** हेमंत।

रासायनिक संगठन–फल में स्टार्च एवं मैंगनीज प्रचुर मात्रा में होता है।

गुण कर्म–रस-मधुर, कषाय गुण-गुरु, रूक्ष **वी०** शीत **वि०** मधुर। पित्तशामक वातकफवर्धक, तृषाशामक, स्तम्भन; रक्तपित्तशामक, बल्य, बृंहण, शुक्रवर्धक है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्य–प्रदाही त्वग्रोगों में फल लेप **आभ्यन्तर**-तृषा, अतिसार, ग्रहणी, रक्त-विकार, रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ्र, शुक्र दौर्बल्य, रक्त-प्रदर, श्रम, शोष, दौर्बल्य, कार्श्य, ज्वर (पेया) में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग–फल मज्जा **मात्रा** १०-२० ग्राम

विशेष–एक जाति (T. indica) फल चतुष्कोणीय, प्रत्येक कोण पर एक-एक कांटे। अधिक मात्रा में प्रयोग करने से विष्टम्भी, शीत, गुरु, रूक्ष, होने से वातकफवर्धक है।

केतक

द्रव्यनाम–हिन्दी : केवड़ा, केतकी

लेटिन : Pandanus tectorius.

Fam. Pandanaceae (केतक कुल)

संस्कृत : केतक, गंधपुष्पा, धूलिपुष्पिका, सूचीपुष्प, क्रकच्छद, सुवर्ण केतकी, तृणशून्य, नृप-प्रिया।

वर्गीकरण–पुष्प वर्ग (भा०प्र०)

उत्पत्ति स्थान–प्रायः सर्वत्र जलाशयों के समीप उद्यानों में विशेषतः दक्षिण भारत में होता है।

वानस्पतिक परिचय–छोटा वृक्ष १-२ मी० ऊंचा **काण्ड** बहुशाखी वक्र **मूल** काण्डोद्भूत वायवीय मूल भूप्रवेशी **पत्र** अवृन्त, सघन ०.६–१.५ मी० दीर्घ, संकुचित, अवनत, हरित, पत्रपार्श्व, तीक्ष्ण कण्टकित; **पुष्प** (पुं०) श्वेत वर्ण, सुगन्धित, दीर्घ, नलिकाकार, मृदु पुष्प-पत्रस्तरों से युक्त; पराग को "गगन धूल" कहते हैं। स्त्री पुष्प छोटा पीत, अधिक सुगंधित होता है। **पुष्पकाल** वर्षा।

रासायनिक संगठन–पुष्पों में एक सुगंधित उड़नशील तैल होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त, मधुर, कटु, गुण-स्निग्ध, लघु **वी०** अनुष्ण **वि०** कटु। त्रिदोषशामक मस्तिष्क नाड़ी-बल्य, वेदनास्थापन, श्रमहर, दाहशमन, रक्तपित्तशामक, हृद्य, गर्भस्थापक है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–कर्णशूल-कर्णस्राव, वातव्याधि, अपस्मार, पैत्तिक शिरःशूल **आभ्यन्तर**–दाह, मस्तिष्कनाड़ीदौर्बल्य-जन्य विकार; अर्श, हृत्द्रव, हृद्दौर्बल्य, रक्तपित्त, रक्त विकार, रक्त प्रदर, गर्भपात, वन्ध्यत्व (मूल क्षीरपाक विधि से) मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, मसूरिका में अर्क एवं शार्कर का प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पुष्प मूल **मात्रा** अर्क ४०-५० ग्राम; शार्कर २०-४० ग्राम।

विशेष–स्त्री पुष्प वृक्ष को 'स्वर्ण केतकी' तथा पुंपुष्प वृक्ष को 'केतक' कहते हैं। अपस्मार में पराग एवं पुष्परस नस्य उपयोगी है। वातव्याधि, पैत्तिक शिरःशूल में तैलाभ्यङ्ग प्रयोग। इसके पुष्प आघ्राणन से क्लम, श्रम से निवृत्ति एवं मन प्रसन्न होता है।

झावुक (झाऊ)

द्रव्य नाम–हिन्दी : झाऊ, झडवा, फरास

लेटिन : Tamarix Gallica

Fam. Tamariscinae (झावुक कुल)

संस्कृत : झावुक।

उत्पत्ति स्थान–समुद्र तटवर्तीय प्रदेश-गुजरात तथा बिहार, बंगाल, पंजाब उत्तर प्रदेश के वन्य क्षेत्रों में प्राप्त होता है।

वानस्पतिक परिचय–सर्वदा हरित, गुल्माकार छोटा **वृक्ष** २-३ मी० ऊंचा शाखाएं अनेक, मृदु हरित रक्ताभ, धूसर **पत्र** अति तनु, दीर्घ सर पत्र सदृश चमकीले, सूक्ष्मचिन्हांकित; **पुष्प** शाखाग्र श्वेत रक्ताभ गुच्छों में। शाखाओं पर एक जाति के कीट के दंश से उसके चारों ओर हरिताभ, पीत, धूसर वर्ण, मटर–रीठा सदृश त्रिकोण आकृतिवत् सुषिर (Gall) ग्रन्थि (मांई) बन जाती है। शाखाओं से स्रवित शर्करा गजंगबीन T. manna कहते हैं। देर तक रखने पर मधु सदृश होती है।

रासायनिक संगठन–शर्करा (गजंगबीन) में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ग्लुकोज, इक्षुशर्करा, स्टार्च, निर्यास; मांई में टैनिक एसिड़ प्रचुर मात्रा में होता है।

गुण कर्म–रस-कषाय गुण-रूक्ष, लघु **वी०** शीत **वि०** कटु। पित्तकफशामक स्थानिकप्रयोग से शोथहर, संकोचक आभ्यन्तर-कण्ठ्य, लेखन, स्तम्भन, शोणितास्थापन, विभिन्न स्राव शोषक है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य शीताद दन्तपूय; कण्ठ प्रदाह, गलशुण्डिका में क्वाथ गंडूष, गुदभ्रंश योनि-भ्रंश; प्लीहावृद्धि शोथ में पत्र लेप, नासा-रक्त-स्राव, व्रण **आभ्यन्तर**–ग्रहणी, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, स्वरयन्त्रप्रदाह, सरक्त कफष्ठीवन, प्लीहावृद्धि, प्रदर (श्वेत-रक्त) शुक्रतारल्य में उपयोगी है।

प्रयोज्य अङ्ग कल्पनाएँ–मांई, पत्र, शर्करा **मात्रा** मांई चूर्ण ३-४ ग्राम, शर्करा ५-१० ग्राम० क्वाथ ५०-१०० ग्राम।

विशेष–दन्तपूय में मांई क्वाथ से गंडूष-मंजन; गुद भ्रंश में लेप; योनिभ्रंश-प्रदर में उत्तर बस्ति एवं क्वाथावगाहन। नासागत रक्तस्राव में (नक-सीर) मांई चूर्ण प्रधमन नस्य देना चाहिये। एक छोटी जाति (लाल झाऊ) T. aphylla–वृक्ष बड़े पुष्प रक्त, बैंगनी, ग्रंथि छोटी चणक सदृश होती है। एक जाति (T. Dioca) महा झाऊ होती है।

लोणिका (कुल्फा)

द्रव्य नाम–हिन्दी : कुल्फा

लेटिन : Portulacea oleracea.

Fam. Portulaceae (लोणिका कुल)

संस्कृत : लोणिका, (बृहत्) लूणक (लघु-लोणिका)।

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र आर्द्र भूमि में सर्वदा विशेषतः शीत ऋतु में पौधे पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय–छोटा **क्षुप** सीधा या भू प्रसरी **पत्र** एकान्तर, क्वचित् अभिमुख माँसल, कुंठिताग्र **पुष्प** शाखाग्र गुच्छों में छोटे-छोटे पीत वर्ण, बाह्यदलपुंज हरिताभ या रक्ताभ वर्ण **बीज** कृष्ण वर्ण, छोटे-छोटे ७ की आकृति के समान एवं स्निग्ध होते हैं।

गुण कर्म–रस-लवण, कटु, मधुर, **गुण** रूक्ष, गुरु **वि०** मधुर **वी०** शीत। वातकफशामक, पित्तस्रंसन दीपन, पाचन, सर, रक्तस्तम्भन, कफोत्सारि, मूत्रल, ज्वरघ्न है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-त्वग्रोग, दाह, व्रण, विसर्प में पंचांग लेप। **आभ्यन्तर** अग्निमांद्य, अरोचक, ग्रहणी, अतिसार, गुल्म, अर्श, शोथ, श्वास, कास, रक्तष्ठीवन, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशयप्रदाह, रक्तमेह, पूयमेह ज्वर (तृषादाहोपद्रुत) में प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–पंचांग, बीज **मात्रा** पंचांग स्वरस १०-२० ग्राम, बीज चूर्ण ३ ग्राम।

विशेष–इसकी एक जाति लघु लोणिका-नोनी P. quadrifida) होती है। विसर्प, व्रणा, दाह युक्त त्वग्रोगों में पंचांग लेप किया जाता है। मूत्रकृच्छ, रक्तमूत्रता, पूयमेह एवं दाहयुक्त ज्वर में पंचांग स्वरस देने में शीघ्र रोगोपशमन होता है।

एरण्डकर्कटी (पपीता)

द्रव्यनाम–हिन्दी : अरण्ड काकड़ी, पपीता

लेटिन : Carica papaya.

Fam. passiloraceae (एरण्ड कर्कटी कुल)

संस्कृत : एरण्ड कर्कटी

उत्पत्ति स्थान–आदिवासी देश ब्राजील प्रदेश (अमरीका); संप्रति सर्वत्र उद्यानों में वृक्ष लगाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय—मध्यमाकार, अल्पायु, शीघ्रवृद्धि शील **वृक्ष**; शाखाएं अत्यल्प, शाखा-पत्रवृन्त सुषिर **पत्र** काण्ड शिखर पर सदीर्घ वृन्त, छत्राकार, दीर्घ विस्तृत, एरण्ड पत्र सदृशाकृति ७ खंडों में विभक्त **पुष्प** एक लिंगी, स्त्रीवृक्ष में पुष्प फल दोनों होते हैं। **फल** लम्बे गोल, पुष्प पीत हरि-ताभ वर्ण। अपक्वफलों से सान्द्र, दुग्ध स्राव स्रवित होता है। **बीज** अनेक, स्निग्ध, गोल कृष्ण वर्ण के होते हैं। **पुष्प** शीत **फल** ग्रीष्म।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संगठन–पत्रों में carpaine क्षार; carposide ग्लुकोसाइड, फल मज्जा में वसा, पीतराल, शर्करा, पेक्टीन, अलब्युमिन Malic-cilric अम्ल; दुग्ध में पाचक तत्त्व Papain; बीजों में Papayà oil होता है।

गुण कर्म–अपक्वफल रस-कटु तिक्त, पक्वफल मधुर तिक्त **गुण** स्निग्ध लघु **वी०** उष्ण **वि०** मधुर त्रिदोषशामक; दुग्ध-वर्ण्य, त्वग्रोगहर, अम्लपित्त-शामक, मूत्रल। पक्वापक्व **फल** दीपन, यकृत्लीहोत्तेजक, बल्य, बृंहण, पत्र-हृद्य, **बीज** अश्मरीघ्न, मूत्रल है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य न्यच्छ, व्यङ्ग, शोथ, ग्रन्थि, वातव्याधि, श्लीपद में पत्र कल्क कोष्ण लेप। विचर्चिका, दद्रु, चर्मकील, कण्ठरोहिणी, उपदंश व्रण में दुग्ध लेप **आभ्यन्तर**-अग्निमांद्य, ग्रहणी, आन्त्रशोथ, गुल्म, यकृत्प्लीहावृद्धि (अपक्व फल शाक) शोथ, हृद्रोग (पत्रफाण्ट) अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, कृच्छ्रार्त्तव (दुग्ध, बीज) दौर्बल्य (फल) ज्वर (पत्रफाण्ट) में उपयोगी है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं—**दुग्ध फल** (पक्व, अपक्व) पत्र, बीज, सत्त्व **मात्रा** दुग्ध ५-१० ग्राम सत्व (Papain) १२५ मि० ग्राम से ०.५ ग्राम पत्रफाण्ट ४०-८० ग्रा०; बीज ०-५-१ ग्राम

विशेष–न्यच्छ व्यङ्ग में फल मज्जा लेप; अपक्व फल से विशेष विधि से दुग्ध प्राप्ति एवं सत्व निर्मित होता है। Papain की क्रिया पेप्सीन सदृश, मांस जातिय आहार पाचन में विशेष क्रिया शील (आमाशयांत्र अम्ल-क्षारीय माध्यम में) आमाशयिक व्रण, अम्लपित्त, आंत्रशोथ में (दुग्ध सत्व) पत्रफाण्ट हृद्रोगों में डेजिटेलिस सदृश लाभप्रद है।

सप्तचक्रा (चिल्ला)

द्रव्यनाम–हिन्दी : चिल्ला, सप्तरंगी

लेटिन : Casearia esculenta.

Fam, samydaceae (सप्तचक्रा कुल)

संस्कृत : सप्तचक्रा, स्वर्णमूला।

उत्पत्ति स्थान–महाराष्ट्र, कैरल, एवं गोवा में उत्पन्न होता है।

वानस्पतिक परिचय–गुल्माकृति क्षुप; **मूल** बाह्य त्वक् पीत, स्वर्ण वर्ण, छेदन करने से सप्त चक्र दिखाई देते हैं। काण्ड पीताभ, श्वेत **पत्र** एकान्तर भालाकार, दंतुरित **पुष्प** गुच्छाकार, हरिताभ श्वेत **फल** २५-५० मि० मी० दीर्घ अण्डाकार, नारंगी वर्ण **बीज** अनेक, रक्त वर्ण स्तरयुक्त होते हैं।

रासायनिक संगठन–मूल में टैनिक एसिड, रंजक द्रव्य, राल, स्टार्च, त्वक् में टैनिन Cathartic acid के सदृश तत्त्व होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त कषाय, गुण-तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु **वी०** उष्ण **वि०** कटु। वातकफशामक पित्त-निःसारक, सर, यकृदुत्तेजक, शोथहर, अर्शोघ्न याकृतीय शर्करा विनिमय क्रिया नियामक, स्वेदहर।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-वेदनायुक्त शोथ, अर्श में लेप **आभ्यन्तर**-विबंध, आमदोष यकृद्वृद्धि, पैत्तिकविकार, अर्श, शोथ, प्रमेह, मधुमेह, रक्त विकार अतिस्वेद में विशेष उपयोग होता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–मूल, त्वचा, **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम क्वाथ २०-५० ग्राम

विशेष–यकृदुत्तेजक, यकृत् की मधुरक क्रिया (Glycogenisis) सम्यक् करने से रक्त धातु में वृद्ध शर्करा पर नियंत्रण करने से यकृत् विकृति जन्य इक्षुमेह (मधुमेह) में विश्वसनीय एवं उपयोगी द्रव्य है।

अन्नामय (अर्गट)

द्रव्य नाम–हिन्दी : अर्गट।

लेटिन : claviceps Purpurea.

Fam. Fungi (छत्रक कुल)

संस्कृत : अन्नामय।

उत्पत्ति स्थान–देश के गेहूँ, जौ, धान्य विशेषतः मक्का उत्पादक प्रान्त।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिचय–मक्का, गेहूँ, जौ आदि धान्यों में होने वाला एक प्रकार का रोग विशेष है। यह रक्त कपिश, दुर्गन्धित, किंचित् वक्र, त्रिकोणाकार, गोपुच्छाकार या चतुष्कोणीय होता है। प्रत्येक पार्श्वमध्य अनुलम्ब रेखायुक्त एवं अनुप्रस्थ अवस्था में दरारें युक्त अन्तः पृष्ठ धूसर श्वेत या गुलाबी श्वेत वर्ण, भगुर होता है।

रासायनिक संगठन–जल विलेय क्षाराभ Ergometrine, जल अविलेय क्षाराभ Ergotamine, Ergotoxine, Ergosine, स्थिर तैल ३०%, रंजक द्रव्य होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त गुण तीक्ष्ण, लघु **वी०** उष्ण **वि०** कटु, पित्तकफशामक सूक्ष्मरक्तप्रणाली संकोचक, गर्भाशय तीव्रसंकोचक है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-ध्वजभंग में लेप; रक्त वाहिनियों का संकोची होने से स्वेद-लाला-मूत्र-स्तन्य स्रावरोधक; अर्धावभेदक, शीतपित्त, Herpes Zoster, रक्तप्रदर-गुल्म, कष्टप्रसव, प्रसवोत्तर रक्तस्राव, गर्भस्राव, गर्भपातोत्तर रक्तस्राव, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, क्लैब्य में आशु लाभप्रद तथा अद्वितीय द्रव्य है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएं–संपूर्ण छत्रक **मात्रा** १-२ ग्राम Liq. Ext. of Ergot **मात्रा** १०-२० बूंद। इसका फाण्ट विधि से प्रयोग करना चाहिये।

विशेष–चिकित्सोपयोगार्थ निवारिका घास (Rye) के बीज कोष से प्राप्ति ; Ergotoxine की मुख्य क्रिया अनैच्छिक पेशी सूत्रों (गर्भाशय-रक्तवाहिनियों के अनैच्छिक पेशी सूत्र) पर संकोचन; परिसरीय धमनिकाओं का संकोची होने से विभिन्न स्रावरोधक प्रमुख द्रव्य है। ध्वजभंग में जल से पीसकर लेप। स्वप्नदोष, पूयमेह, शीघ्रपतन में आभ्यन्तर प्रयोग शीघ्र लाभकारी है। प्रसव के बाद ५-६ दिन तक प्रातः सायं इसका प्रयोग करना चाहिये। गर्भस्रावोत्तर अनियमित रक्तस्राव गर्भाशय शैथिल्य, कटि शूल में इसका प्रयोग अपेक्षित है। **प्रयोग निषेध**–कष्टप्रसव में गर्भाशय का मुख विकसित नहीं होने पर प्रयोग निषिद्ध है।

हंसपदी (हंसराज)

द्रव्य नाम–हिन्दी : हंसराज।

लेटिन : Adiantum lunulatum.

Fam. Polypodiaceae. (हंसराज कुल)।

संस्कृत : हंसपदी, हंसपादी, त्रिपादिका, रक्तपादी, कीटमारी, गोधापदी।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि (भाव प्रकाश) कण्ठ्य, मधुर स्कन्ध (चरक)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र जलासन्न एवं शीत, पार्वत्य भूमि में उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–मनोरम, छोटा क्षुप; **काण्ड** अन्तर्भूमिशायी, इसके केवल पत्र बाहर निकलते हैं। पत्रवृन्त रक्त, बैंगनी, चमकीला **पत्र** पक्षाकार **पत्रक** मृदु छोटे-छोटे आयताकार, अण्डाकार, किनारे कुछ गोल और कटे हुए; अधरपृष्ठ श्वेत रज से आवृत। पत्र के अधर पृष्ठ पर ही प्रजननांग (बीजाणु कोष Sporagic) होते हैं।

गुण कर्म–रस-मधुर, तिक्त, कषाय गुण-स्निग्ध, गुरु **वि०** मधुर **वी०** अनुष्णशीत। पित्तकफशामक, शोथहर, ग्राही, कफोत्सारि, कण्ठ्य, मूत्रल, गर्भाशयोत्तेजक, विषघ्न है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-लूता विष, विसर्प, त्वग्रोग, शोथ (प्रदाही) में लेप।

आभ्यन्तर–कृमि, अतिसार, रक्तविकार, रक्तपित्त, स्वरभेद, प्रतिश्याय, कास, श्वास, फुफ्फुस प्रदाह, पार्श्वशूल, मूत्रकृच्छ्र, नष्टार्त्तव (अपरा पातनार्थ) विषविकारों में प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग कल्पनाएँ–पंचांग **मात्रा** चूर्ण १-३ ग्राम स्वरस ५-१० ग्राम, हंसपदीपानक।

विशेष–अपुष्पोद्भिद वर्ग की औषधि होने से पुष्पफल विहीन होती है। इसकी देशभेदानुसार

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अनेक जातियाँ होती हैं। बच्चों के कासादि रोगों में इसका पानक विशेष लाभकारी है। मात्राधिक्य से वमन हो जाता है।

मयूरशिखा

द्रव्य नाम–हिन्दी : मोरशिखा।

लेटिन : Actinopteris dichotoma.

Fam. Polypodiaceae (हंसराज कुल)।

संस्कृत : मयूरशिखा, सहस्राक्षि, मधुच्छदा, मयूराध्वशिखा।

वर्गीकरण–गुडूच्यादि वर्ग (भाव प्रकाश)

उत्पत्ति स्थान–सर्वत्र शुष्क पर्वतीय प्रदेशों में ४ हजार फीट तक तथा नीलगिरी पर २ हजार फीट तक कुमाऊँ में विशेषतः उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय–तृण जाति, मनोरम, छोटे ताड़ सदृश, छोटा ५०-१५० मि० मी० तक ऊँचा क्षुप; मूल से ही अनेक शाखोद्भव हरित वर्ण पत्र शाखाग्र तालपत्र एवं मयूर शिखासदृश, तनु हरित, नील वर्ण (जीर्ण पत्र) होते हैं।

गुण कर्म–रस-तिक्त, मधुर, कषाय गुण-लघु, रूक्ष वि० कटु वी० शीत। पित्तकफशामक, कृमिघ्न, स्तम्भन ज्वरघ्न, रक्तपित्तहर है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-त्वग्रोग (लेप) आभ्यन्तर-कृमि, अतिसार, रक्तपित्त, रक्तविकार, कुष्ठ कास, इक्षुमेह, ज्वर में पंचांग क्वाथ या स्वरस प्रयोग किया जाता है।

प्रयोज्य अंग–पंचांग **मात्रा** स्वरस १०-२० ग्राम।

विशेष–अनेक वनस्पतियों की आकृति मयूरशिखा सदृश होने से, विभिन्न जातियों का भी प्रयोग होता है। इनमें मुख्य (क) Adiantum caudatum (हंसपदी कुल) (ख) Celosia cristata (अपामार्ग कुल) राजस्थान, बंगाल बिहार, उत्तर प्रदेश में उत्पन्न। (ग) Elephantopus scaber भृंगराज कुल (Compositae Family) की है।

———

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्यगुण हस्तामलक

व्दितीय खण्ड

जांगमद्रव्य

तृतीय परिच्छेद

कस्तूरी

द्रव्य नाम–हिन्दी : कस्तूरी, मृगनाभि

लेटिन : Moskus अं० Musk

संस्कृत : मृगमद, मृगनाभि, सहस्रभिद, कस्तूरिका, कस्तूरी, वेघमुख्या ।

कस्तूरी मृग परिचय–नर कस्तूरी मृग (कस्तूरी मृग) लेटिन : Moschus moschiferous विशेष हिरन जाति मध्य एशिया, हिमालय में उत्तरीभारत आसाम, कश्मीर, नेपाल, भूटान, चीन, तिब्बत, रूस आदि के घने जंगलों में ८ से १२ हजार फीट की ऊंचाई पर पर्वतीय क्षेत्रों में पायी जाती है ।

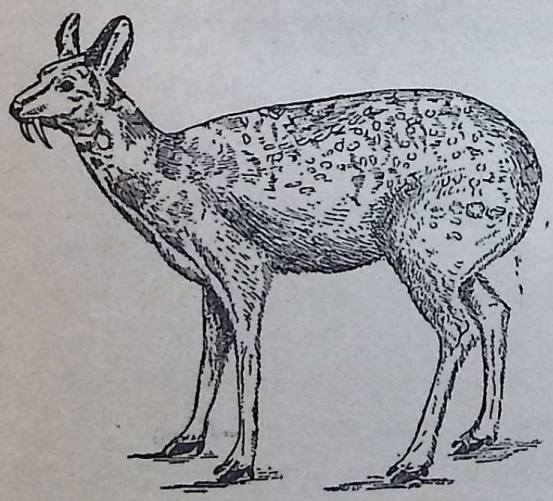

नर कस्तूरीमृग

यह मृग सुन्दर एवं मनोहर होता है । यह लगभग २० इंच ऊंचा, बाल घने, लम्बे, शूकिकीय वर्ण में धूसर भूरे वर्ण का, पीठ पर धूसर धब्बे होते हैं । इसके सींग नहीं होते हैं । पूंछ बहुत छोटी जो बालों से ही आवृत रहती है । पिछले पैर आगे की अपेक्षा अधिक लम्बे जिससे चलने में ये मुड़े रहते हैं । चारों लम्बे नुकीले खुर जमीन को छूते रहते हैं । इसके कान लम्बे होते हैं । ऊपरी जबड़े में दो से तीन इंच लम्बे नीचे की ओर निकले हुए हुक के आकार के दंष्ट (रदनक) होते हैं ।

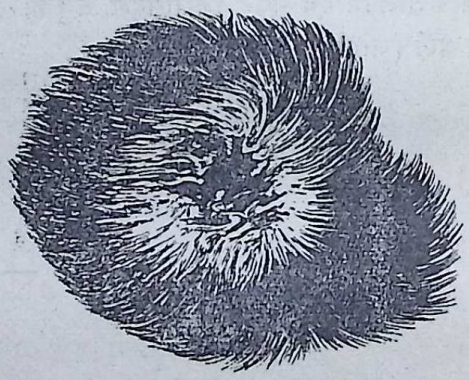

कस्तूरी मृग का कस्तूरी कोष्ठ (नाफा)

यह हिरण अत्यन्त शंकित स्वभाव का होता है । लिंगेन्द्रिय की मणि को आवृत करने बाली त्वचा के प्रवर्घन से निर्मित एक कस्तूरी कोष्ठ (थैली-नाफा) होता है । जो नाभि के समीप शिश्नावरण एवं नाभि के मध्य होता है । थैली के अग्रभाग में एक सघन, श्वेत, धूसर केशों से आवृत छिद्र होता है । थैली के अन्दर अनेक स्निग्ध अपूर्ण स्तर होते हैं ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

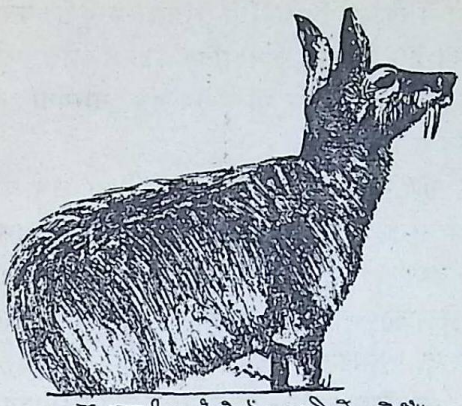

नर- कस्तूरी मृग के दो दांत बाहर निकले रहते हैं।

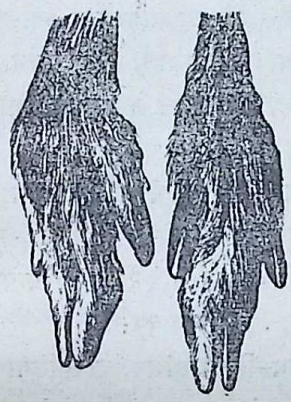

कस्तूरी मृग के लम्बे लम्बे खुरों की लेखनी भी बनाई जाती है।

हिरण की युवावस्था में मदकाल में (Rutting seasion) इसी थैली में कस्तूरी स्राव बनना प्रारम्भ होता है। इस काल में उसमें कस्तूरी की गंध आती है। वह मृग अन्य पदार्थ की गंध समझ कर जंगल में इधर उधर घूमकर झाड़ियों एवं वृक्षों को सूंघता रहता है। इसी अवस्था में शिकारी लोग मृग को मारकर या कभी जीवित को ही पकड़ कर कस्तूरी कोष्ठ (नाफा) को निकाल कर शुष्क किया जाता है। इसके बाद कस्तूरी खुरचकर अलग की जाती है। कस्तूरी १–२ वर्ष के मृग की आयु में श्वेत वर्ण की पेस्ट के रूप में होती है; किन्तु धीरे-धीरे रक्ताभ, श्याम गोल बड़े बड़े दानों के रूप में एवं तीव्र सुगन्धित हो जाती है। स्वस्थ एवं तरुण कामातुर हिरन से २० से ३० ग्राम तक उत्तम तीव्रगंधि कस्तूरी मिल जाती है। बाल, वृद्ध, क्षीण अस्वस्थ मृग से कस्तूरी अल्प मात्रा में एवं अल्प गंध वाली प्राप्त होती है।

कस्तूरी के भेद–भावमिश्र ने उत्पत्ति स्थान की दृष्टि से ३ जातियों का उल्लेख किया है। १. नेपाली कस्तूरी-नेपाल देश की नील वर्ण। २. कामरूपीय कामरूं (आसाम) प्रान्त की कृष्ण वर्ण की सर्वश्रेष्ठ होती है। ३. कश्मीरी-कश्मीर में उत्पन्न कपिल वर्ण की निकृष्ट मानी गई है।

शुद्ध कस्तूरी का परिचय–असली कस्तूरी रक्ताभ श्याम वर्ण, पिङ्गलाभ कृष्ण, पीताभवर्ण की मृदु हल्की, गोल बड़े दाने वाली, झिल्ली रहित तथा केवड़े के समान तीक्ष्ण सुगंधित होती है। मर्दन करने से मृदु चिकनी हो जाती है। स्वाद में तिक्त कटु होती है।

रासायनिक संगठन–कस्तूरी में कोलेस्टरीन, अमोनिया, वसा, मोम, आल्डीन, जिलेटीन। अलब्यूमिन द्रव्य एवं भस्म होती है। कस्तूरी से आसवन विधि से एक सान्द्र वर्ण हीन तैल (Muskone) प्राप्त किया जाता है। यह तीव्रगंधि होता है।

मिलावट–वर्तमान में बाजार में शुद्ध कस्तूरी का प्राप्त होना अतिकठिन हो गया है। कस्तूरी में भार वृद्धि के लिये शुष्क मृत्तिका, शुष्क रक्त, जौ, गेहूँ, दालों के टुकड़े मिश्रित किये जाते हैं। मिश्रित किये गये द्रव्य भी कस्तूरी की तीव्र गंध से सुगन्धित हो जाते हैं। अतः गंध परीक्षण से ही शुद्ध कस्तूरी का निर्णय सम्भव नहीं है।

शुद्धाशुद्ध कस्तूरी का परीक्षण–(१) शुद्ध कस्तूरी जल में अविलेय होती है। जल के वर्ण में किसी प्रकार का वर्ण परिवर्तन नहीं होता है। जल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वच्छ रहता है। कस्तूरी में अन्य द्रव्यों की मिलावट होने पर जल गदला हो जाता है। (२) कस्तूरी के दानों को पानी में डालने पर यदि दानें प्राकृत स्वरूप में रहें तो शुद्ध यदि वे घुल जायें तो परीक्षित कस्तूरी अशुद्ध है। (३) कस्तूरी को जल में ३ दिन तक रखें तत्पश्चात् सूंघने पर यदि कस्तूरी सुगन्ध एवं तीव्र गंध युक्त रहे तो शुद्ध है। यदि सूंघने पर दुर्गन्धि प्रतीत हो तो मिलावटी समझनी चाहिये। (४) कस्तूरी को जलाने पर चमड़े के जलने की तरह आवाज हो सुकड़ती जाय, भस्म न हो और अन्त में चमड़े के समान गन्ध आये वह उत्तम होती है। (५) लकड़ी के जलते अंगारे पर कस्तूरी को डालने पर यदि पिघल कर उसमें बुद्बुद् निकले तो असली यदि वह अति कठिन होकर कोयला बन जाये तो नकली समझनी चाहिये। (६) कस्तूरी में शुष्क रक्त, मिट्टी व अन्य द्रव्यों की मिलावट होने पर अणुवीक्षणयन्त्र से परीक्षा कर इन्हें असली कस्तूरी से पृथक करना चाहिये।

कृत्रिम कस्तूरी—वर्तमान में रासायनिक विधि से कृत्रिम कस्तूरी (Synthetic musk) भी बनाई जाती है। जो वर्ण में पीताभ श्वेत, रवेदार तीव्र स्थायी गन्ध युक्त होती है। जो शुद्ध प्राकृतिक के समान होते हुए भी गंध भिन्न प्रतीत होती है। कृत्रिम कस्तूरी के मुख्य प्रकार (क) Musk xylone (ख) Musk keton इसकी गंध प्राकृतिक कस्तूरी के के समान होती है। (ग) cyno musk (घ) Aldehyde musk (ङ) Musk ambrehe कृत्रिम कस्तूरी में सर्वोत्तम मानी जाती है। रासायनिक विधि के अतिरिक्त कस्तूरी के सदृश गंध वाले विभिन्न हिरन जाति के गंधमार्जार Viverra civetta एवं oribos moschatus बैल जाति ऊदबिलाव crocodilus vulgaris मगर जाति, विभिन्न प्रकार के समुद्रीय कछुवों से भिन्न भिन्न देशों में विविध विधियों से कृत्रिम कस्तूरी बनाई जाती है। विभिन्न वानस्पतिक द्रव्यों जैसे लता कस्तूरी के बीजों का भी प्रयोग गंध साम्यता की दृष्टि से किया जाता है।

गुण कर्म—रस-कटु-तिक्त गुण-तीक्ष्ण लघु, रूक्ष **वीर्य** उष्ण, **विपाक** कटु। वातकफशामक, शीतप्रशमन दौर्गन्ध्यहर, बल्य, तिक्त पौष्टिक, दीपन, हृद्य, श्वासहर, नाड़ी-मस्तिष्कबल्य, आक्षेपहर, वेदनास्थापन, विषघ्न, बाजीकरण मुख्य कर्म हैं।

आमयिक प्रयोग—हृद्दौर्बल्य, हृत्द्रव, हृदयावसाद, सन्निपात ज्वर, आन्त्रिक ज्वर, श्वसनकज्वर, शीर्ष सौष्मुनिक ज्वर, शीतांग सन्निपात, प्रलाप, सन्यास, मूर्च्छा, वातिक उन्माद, अपस्मार, अपतन्त्रक, आक्षेप पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात, स्वाप, सामान्य दौर्बल्य, एवं ध्वजभंग, शीघ्रपतन में बाजीकरणार्थ मुख्यतः प्रयोग होता है।

कल्पनाएं—कस्तूरी भैरव रस, मृग नाभ्यादि-वटी, चतुर्भुज रस, हिङ्ग कर्पूरवटी, मृगमदासव, **मात्रा** ६२ मि० ग्रा० से १२५ मि० ग्राम

मृग शृंग

द्रव्यनाम—हिन्दी-सांभर, बारहसिंगा

संस्कृत-शृंग, शम्बर, बहुशृंग भारशृङ्ग, विषाण।

उत्तम शृंग का परिचय—मृग शृंग नाम से हिरन की जाति विशेष बारहसिंगा (सांभर) के शृंगों का प्रयोग होता है। सांभर हिरण प्रसिद्ध एवं सुपरिचित प्राणी है।

जो शृंग बजन में भारी, स्थूल, ठौस, दृढ़, स्निग्ध, छिद्र रहित हो वह औषधि प्रयोगार्थ उत्तम होता है।

गुण कर्म—**रस** मधुर **गुण** स्निग्ध **वीर्य** उष्ण **विपाक**-मधुर। वातकफशामक, दीपन, ग्राही, वेदनास्थापन, शोणितास्थापन, शोथहर, लेखन, श्वास-कासनाशक, हृद्य, वर्ण्य होता है

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्य-पार्श्वशूल, फुफ्फुसावरण प्रदाह-उरस्तोय, फोफ्फुसीयपाक में श्रृंग को जल से घिसकर लेप प्रयोग होता है। ग्रन्थि, एकांग शोथ न्यच्छ, नीलिका, सिध्म में सिरका (शुक्त) के साथ

बारह सिंगा हिरण (सांभर हिरन)

पीसकर लेप किया जाता है। दन्त शूल एवं शीताद में मन्जन प्रयोग होता है।

आभ्यन्तर प्रयोग–श्वास, कास, पार्श्वशूल, फुफ्फुसावरणप्रदाह, वातश्लैष्मिक ज्वर, फौफ्फुसीय-पाक, जीर्णज्वर प्रतिश्याय, राजयक्ष्मा, हृच्छूल, संधिवात, गृध्रसी, कटिशूल, अस्थिमज्जाप्रदाह, वेदना प्रधान विकार, बालशोष, फक्क आदि रोगों में चिकित्सार्थ दैनिक उपयोग होता है।

कल्पनाएं–विषाणभस्म, बालार्क गुटिका, क्षय-केसरी रस **मात्रा** भस्म २५० से ५०० मि.ग्राम

अग्निजार (अम्बर)

द्रव्य नाम–हिन्दी-अम्बर।

लेटिन-Ambergris.

संस्कृत-अग्निजार, तुन्दामय।

प्राप्ति स्थान–यह हिन्द महासागर में श्रीलंका निकोबार द्वीप, लक्ष द्वीप, जंजीबार तथा अफ्रीका के लामू-मोम्बासा आदि समुद्रीय तटों पर पाया जाता है।

अग्निजार का परिचय–अम्बर स्पर्म ह्वेल या कैचलॉट नामक मत्स्य जाति द्वारा एक विशेष प्रकार की श्रृंगाकार वनस्पति के भक्षण से आन्त्र में एक विकार जन्य ग्रन्थि होती है। ग्रन्थि बनने के पूर्व आन्त्र क्षोम होने से अन्त्र रस के विभिन्न स्राव इस वनस्पति के चारों और एकत्रित होते हैं। इस ग्रन्थि से मछली दुर्बल होकर मर जाती है। तब वह ग्रन्थि मृत जन्तु के शरीर से बाहर निकलकर जल में अविलेय होने से तैरती हुई समुद्र के तटवर्ती क्षेत्रों में आ जाती है। इसी ग्रन्थि का संग्रह कर लिया जाता है। वर्तमान में मत्स्य का शिकार कर उसकी आन्त्र का भेदन करके भी संग्रह किया जाता है।

रसेन्द्र चूड़ामणि एवं रसरत्नसमुच्चय ग्रन्थकारों ने नक्र विशेष समुद्रीय जन्तु के जरायु को अम्बर लिखा है। जो प्रात्यक्षिक ज्ञान एवं वर्तमान उपलब्धि के अनुसार सही प्रतीत नहीं होता है। राज निघण्टुकार ने अम्बर को "तुन्दामय" लिखा है। जो परिचयान्तर्गत वर्णन के अनुसार उचित है।

शुद्ध अम्बर का स्वरूप–शुद्ध अम्बर बाहर से श्याम वर्ण या भस्म वर्ण का एवं कृष्ण वर्ण के बिन्दु युक्त होता है। अन्दर से श्यामाभ श्वेत बीच बीच में खस खस के समान सूक्ष्म दानेदार; भार में बहुत हल्का, अपारदर्शक, घनाकृति होता है। इसमें विशेष प्रकार की भीनी सुगन्ध होती है। १४५ अंश फारनहाइट पर गरम करने पर मोम के जैसा द्रव्य हो जाता है। २१२° फा० ताप पर गरम करने से श्वेत वर्ण, वाष्पी भूत होकर उड़ जाता है। यह जल में अविलेय है, किन्तु उष्ण मद्यसार में विलयन बनाने पर श्वेत वर्ण के दानेदार सत्व (Amberine) ८५% तक प्राप्त होता है। अम्बर की ताजी अवस्था में पुरीष सदृश गन्ध आती है, किन्तु

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

धूप में सूखने पर इसमें हल्की भीनी सुगन्ध आती है।

मिलावट—यह महंगा द्रव्य होने से बाजार में में अधिकतर विभिन्न अपद्रव्यों की मिलावट के रूप में मिलता है। इसमें मुख्यतया सुगन्धित हल्के रवेदार रालीय द्रव्यों तथा भार बढ़ाने के लिए वसा, मोम, स्थिर तैलों की मिलावट की जाती है।

शुद्ध अम्बर का परीक्षण—(१) शुद्ध अम्बर ईथर एवं गरम मद्यसार (एल्कोहल Alchohol) तैल में पूर्ण विलेय होता है। इस विलयन में गोंद जैसी बूदें (गोल रवे) नहीं दिखाई देती हैं। इसका रंग हल्का पीला होता है। (२) शुद्ध अम्बर रगड़ने पर बारीक हो जाता है। इसमें विभिन्न रालीय द्रव्यों की मिलावट होने पर बारीक नही होता है। (३) असली अम्बर में एक विशेष प्रकार की सुगन्धि पायी जाती है। अम्बर के ३ प्रतिशत मद्यसारीय विलयन की एक बून्द कागज पर लगा दी जावे तो इसकी सुगन्ध महिनों रहती है। (४) गरम की हुई सुई अम्बर की ड़ली में शीघ्र अन्दर चली जाती है, और अम्बर के अन्दर की कोई वस्तु सुई से नहीं लगती है, तथा एक विशेष प्रकार की सुगन्ध फैल जाती है। यदि सुई को तुरन्त निकाल ली जावे तो अम्बर के पिघले हुए बिन्दु दिखाई देते हैं।

गुण-कर्म-रस-कटु, **गुण**-लघु, रूक्ष **वीर्य**-उष्ण **विपाक**-कटु। वातकफशामक, दीपन, अनुलोमन, मस्तिष्क-नाड़ीबल्य एवं शामक, आक्षेपशमन, शीतप्रशमन, हृद्य, कटुपौष्टिक है।

आमयिक प्रयोग—पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात, धनुस्तम्भ, उन्माद, मूर्च्छा, अपतन्त्रक, आक्षेप, मस्तिष्क-दौर्बल्य, हृद्दौर्बल्य, हृद्द्रव, हृदयावसाद, न्यून रक्तभार में उत्तम हृत्बल्य के रूप में प्रयोग होता है। सान्निपातिक ज्वर, तज्जन्य-प्रलाप, शैत्याङ्ग, स्वाप (सुन्नता) में अति उपयोगी है। ध्वजभङ्ग, नपुंसकता के विभिन्न बाजीकर योगों में भी यह प्रमुख घटक के रूप में प्रयुक्त होता है।

कल्पनाएं—बृहद् ब्राह्मी वटी, अम्बरादि वटी खमीरा गावजवां अम्बरी **मात्रा**-१२५ से ३७५ मि० ग्राम।

विशेष—समुद्र के क्षारीय जल में बहुत समय तक पड़ा रहने से इसमें कोई अशुद्धि नहीं पाई जाती है। अतः इसके शोधन की आवश्यकता नहीं है।

समुद्रफेन

द्रव्यनाम—हिन्दी-समुद्रफेन, समुद्र झाग।

लेटिन—Sepiae officinalis.

संस्कृत—समुद्रफेन, फेन, अब्धिकफ, अर्णवफेन

जन्तु परिचय—समुद्र फेन एक मत्स्य जाति मसि मत्स्य (cuttle fish) का अस्थिपंजर या कवच का रूपान्तरित द्रव्य है। यह समुद्र में पाया जाता है।

इस जन्तु का शरीर (१) कोमल दीर्घ द्विपार्श्व सम्मितीय होता है। इसका शरीर-शिर, ग्रीवा और मध्य शरीर तीन भागों में विभक्त होता है। धड़ (मध्य शरीर) पर दोनों ओर चपटे पक्ष होते हैं। (२) शिर पर बड़े-बड़े नेत्र बीच में मुख होता है। (३) इसका शिर पाद से संयुक्त और पाद-मुख के चारों ओर दस अंगकों (Arms) में विभाजित होता है। अंगकों पर सवृन्त चूषाङ्ग होते हैं। शरीर के अन्दर चूने का विकसित खोल होता है। इस जन्तु के शरीर में मसि (रोशनाई) की ग्रन्थियाँ होती हैं। जिनसे यह पानी को रंजित कर अपनी रक्षा करता है।

समुद्र फेन परिचय—इसके १२५ से २५० मि० मी० लम्बे एवं २५ से ७५ मि० मी० चौड़े आयताकार अण्डाकार चिपटे टुकड़े होते हैं। वर्ण में श्वेत भार में हल्के स्पर्श में रूक्ष कठोर, शीघ्र भंगुर, सुषिराकृति होते हैं। बाह्य पृष्ठ अनेक सूक्ष्म स्तरों से निर्मित तथा आभ्यन्तर रचना सुषिर, कठोर एवं सहज भंगुर होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

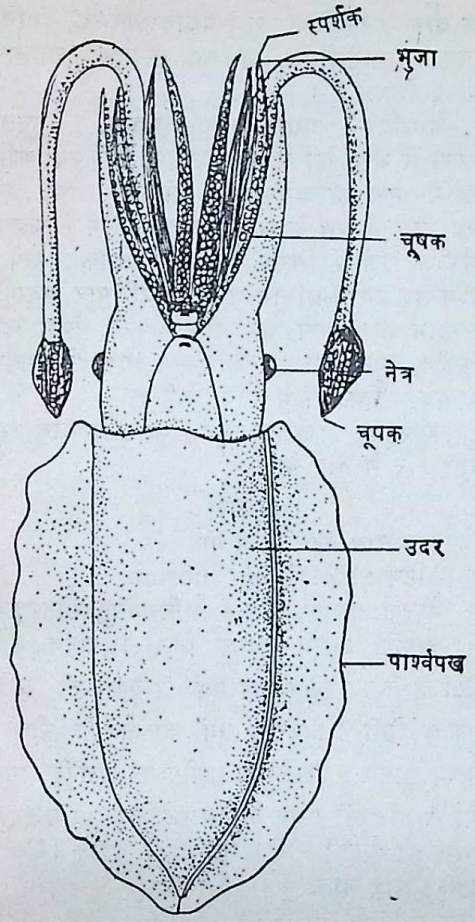

मसि मत्स्य (Cuttle fish)

रासायनिक संगठन–इसमें केल्सियम कार्बोनेट ८०-८५% एवं सिलिका, केल्सियम फॉस्फेट, सल्फेट होते हैं।

गुण कर्म–**रस**-कषाय **गुण**-रूक्ष, लघु **वी०** शीत **वि०** कटु। वातपित्तशामक दीपन, अनुलोमन, शूल एवं गुल्मघ्न, शोथहर, स्तम्भन, रक्तपित्तशामक इसका मुख्य कर्म लेखन है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-न्यच्छ, व्यङ्ग त्वग्रोगों में निम्बु रस के साथ लेप, शीताद, दन्तवेष्ट एवं दन्तविकारों में मंजन प्रयोग। कर्णस्राव, कर्णशूल में चूर्ण प्रधमन या जलीय विलयन का कर्ण बिन्दु प्रयोग। नेत्राभिष्यन्द पोथकी, अर्म, काच, लिंगनाश (प्रारम्भिक अवस्था) में इसके सूक्ष्म चूर्ण का अंजन प्रयोग तथा नेत्र बिन्दु प्रयोग होता है। **आभ्यन्तर**-अग्निमांद्य, शूल, उदावर्त्त, गुल्म, प्लीहोदर, रक्त-पित्त, विषविकारों में प्रयोग होता है।

कल्पनाएं–अर्द्धनारी नटेश्वर, समुद्रफेनादि वर्ति; सुखावती वर्ति। **मात्रा** १ से २ ग्राम।

शंख

द्रव्यनाम–हिन्दी–शंख।

अंग्रेजी–conch.

संस्कृत–शङ्ख, कम्बु, सुनाद, समुद्रज, त्रिरेख,

शंख का परिचय–शंख एक समुद्रीय कीट का कठोर अस्थिमय कोश (खोल) है। यह सर्व सुपरिचित द्रव्य है।

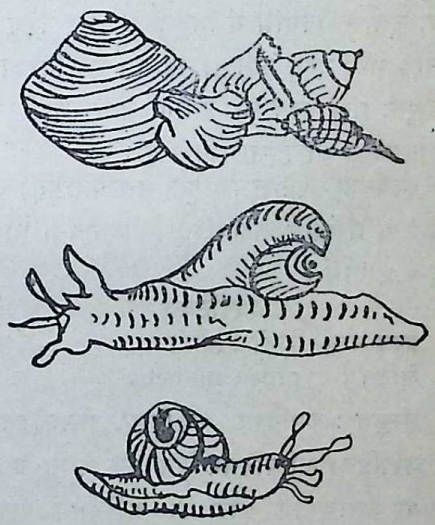

शंख कीट अपने कोश (खोल) सहित

जो शंख गोलाकार, बृहदाकार, बड़ा, स्निग्ध, सूक्ष्ममुख, छिद्ररहित; चमकदार श्वेत वर्ण, भार में गुरु हो वह शंख उत्तम एवं चिकित्सोपयोगी है। रसशास्त्रकारों ने दक्षिणावर्त्त एवं वामावर्त्त दो भेद माने हैं। दक्षिणावर्त्त शंख दुष्प्राप्य त्रिदोषहर, दरिद्रतानाशक, बहुमूल्य होता है। वामावर्त्त शंख

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रायः सर्वत्र सुलभ एवं चिकित्सा में प्रयुक्त होता है।

गुण कर्म–रस-कटु गुण-लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष वी० उष्ण वि० कटु। वातकफशामक त्वच्य, दीपन, पाचन, (आमदोष पाचन) ग्राही, शूलघ्न, गुल्मघ्न है।

आमयिक प्रयोग-बाह्य-नेत्र व्रण, शुक्ल, तिमिर, पोथकी, अर्म में शंख नाभि जल में घिसकर लेप या भस्म का मधु में मिलाकर अंजन प्रयोग। तारुण्य-पिटिकाओं, नीलिमा झांई में शंख को जल में या सिरका में घिसकर लेप। **आभ्यन्तर**–अजीर्ण, छर्दि, अग्निमांद्य, अतिसार (विशेषतः पक्वातिसार) ग्रहणी शूल, गुल्म, उदररोग, अम्लपित्त, यकृत्प्लीहावृद्धि, कास, श्वास, हिक्का, आमवात में दैनिक चिकित्सोपयोगी द्रव्य है।

अनुपान भेद से प्रयोग–अतिसार, संग्रहणी में निम्बुस्वरस से; अम्लपित्त में आमलकी चूर्ण के साथ गुल्म, शूल, अग्निमांद्य में त्रिकटु, यवक्षार हिंगु चूर्ण के साथ शंख भस्म प्रयोग। श्वास एवं हिक्का में पुनः पुनः शंख भस्म का प्रयोग तथा शुण्ठी चूर्ण आघ्राणन से शीघ्र लाभकारी है।

कल्पनाएं–प्रवाल पंचामृत, मुक्तापंचामृत; लोक नाथ रस, शंखद्राव, शंखवटी, चन्द्रोदयावर्ती **मात्रा**–०.३-०.५ ग्राम।

वराटिका

द्रव्य नाम–हिन्दी : कौड़ी
लेटिन : cyproea moneta.
संस्कृत : कपर्दिका, वराटिका, बालक्रीड़नक।

वराटिका का परिचय–यह एक जाति के समुद्रीय या जलाशयीय कीट का अस्थिमय बाह्यावरण (खोल) है। यह सर्व सुपरिचित द्रव्य है। यह वर्ण भेद से धूसर, श्वेत, पीत क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होती है। जो वराटिका पीताभ वर्ण; लम्बे वृन्त की (डंठल के आकार) पृष्ठ भाग पर छोटी २ ग्रन्थियुक्त, जिसके मुख पर १२ रेखाएं या दन्तुर हों, भार में ३ से ४.५ ग्राम की हो वह औषधि प्रयोगार्थ उत्तम होती है।

गुण कर्म–रस-कटु, तिक्त, गुण-लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष वी० उष्ण वि० कटु। वातकफशामक, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, शूलघ्न, गुल्मघ्न, शोथहर एवं त्वग्रोगहर है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य–नेत्रव्रण, शुक्ल, पोथकी में भस्म का अँजन प्रयोग, कर्ण पूय कर्ण-स्राव में भस्म का अवधूलन। श्लैष्मिक शोथ, एवं सद्रव शोथ में जल के साथ पीसकर लेप। न्यच्छ, चर्मकील, अर्श में सिरके के साथ पीसकर लेप। **आभ्यन्तर प्रयोग**-अग्निमांद्य, छर्दि, अतिसार, ग्रहणी, परिणाम शूल, गुल्म, आन्त्रक्षय, अपची, गण्डमाला, विस्फोट, कास, श्वास, बालशोष एवं केल्सियम अभावजन्य विकारों में उपयोगी है।

कल्पनाएं–प्रवालपंचामृत, बृहत्लोकनाथ रस, **मात्रा** ०.३ से ०.५ ग्राम।

प्रवाल

द्रव्य नाम–हिन्दी : मूंगा
लेटिन : Corallium rubrum.
संस्कृतः प्रवाल, विद्रुम, अब्धिजन्तु, रक्ताङ्गम्।

उत्पत्ति स्थान–प्रवाल निर्माण करने वाले कीटों के लिए विशेष जल एवं उष्णता की आवश्यकता होती है। यूरोप एवं अफ्रीका के बीच के भूमध्य सागर। ईटली के समीप का उत्तरी समुद्र, वर्मा के दक्षिणी समुद्र एवं आस्ट्रेलिया के उत्तर में प्रवाल की सैकड़ों मील लम्बी चौड़ी चट्टानें (Coral reefs) पाई जाती हैं।

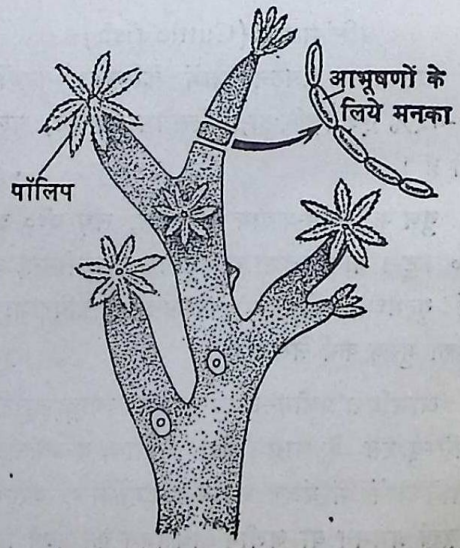

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जन्तु परिचय एवं प्रवालोत्पत्ति–प्रवालोत्पादक जल जन्तु अनेक प्रकार के होते हैं। इनमें Anthazon polyps जाति के Hydrozoa वर्ग के Milliopora जाति के जन्तु मुख्य हैं। ये जन्तु आकृति में गोल तथा बीच में छिद्र युक्त होते हैं। सामान्यतः देखने में अंगूठी के आकार के होते हैं। ये कीट बहुपादी होते हैं। स्त्री जाति जन्तु एक समय में करोड़ों अण्डे देता है। शनैः शनैः ये अण्डे पूर्ण जन्तु बनकर समुद्र तल में किसी अनुकूल स्थान में एक दूसरे के पैरों से गुथे हुए सटे हुये रहते हैं; तथा उत्तरोत्तर जन्तुओं की परतें जमती जाती हैं। जिससे ये कीट वृक्ष का स्वरूप ले लेते हैं। इन जन्तुओं में पहले के जन्तुओं के छिद्र तथा अन्तिम जन्तुओं के छिद्र परस्पर प्रणालियों द्वारा मिले रहते हैं। इन प्रणालियों द्वारा समुद्रीय जल से ये जन्तु अपना पोषण लेते हैं। चूर्ण योगिक प्रधान जल से इन जन्तुओं का शरीर कठिन हो जाता है एवम् कुछ समय के बाद मरते रहते हैं। नीचे के जन्तु पहले मरते हैं। ऊपर की ओर नवीन जन्तु उत्पन्न होते हैं तथा बढ़ते रहते हैं। यह सृष्टि क्रम अनन्त काल से चला आ रहा है तथा वर्तमान में इनके द्वारा निर्मित बड़ी-बड़ी चट्टानें एवं बड़े-बड़े पर्वत उत्पत्ति-स्थान प्रसंग में वर्णित समुद्रों में पाये जाते हैं। इन मृत जन्तुओं के अस्थ्यवशेष की ही प्रवाल संज्ञा है।

विशेष भौगोलिक अन्तर एवं पोषण तत्त्वों के के भेद से भिन्न-भिन्न वर्णों में प्रायः श्वेत, रक्त, कृष्ण, धूसर वर्ण का प्रवाल उत्पन्न होता है। रक्त वर्ण एवं गुलाबी वर्ण का प्रवाल ईटली भूमध्य सागर के छोटे २ द्वीपों में पाया जाता है। ईरान की खाड़ी में कृष्ण वर्ण प्रवाल प्राप्त होता है। औषधि एवम् रत्नों की दृष्टि से रक्त वर्ण का प्रवाल उत्तम होता है।

उत्तम प्रवाल का परिचय–जो प्रवाल गोलाकार व्रणहीन (छिद्र रहित) विम्बी फल के सदृश चमकदार रक्तवर्ण, अवक्र, स्निग्ध, गुरु होता है। वह औषध्यर्थ ग्राही है।

हीन प्रवाल का स्वरूप–जो प्रवाल भार में हल्का वर्ण में पाण्डु,पीत, धूसर,कृष्ण, सव्रण (छिद्र सहित) रूक्ष, भगुंर, दीर्घ एवं दीर्घ रेखाकार हो वह औषधि प्रयोग के लिए अग्राह्य है।

रासायनिक संगठन–प्रवाल में केल्सियम एवं मेग्नेशियम कार्बोनेट अल्प मात्रा में, सीलिका एवं अयस् तत्त्व होते हैं।

गुण कर्म–रस-मधुर, अम्ल, **गुण** लघु, रूक्ष **वि०** मधुर **वी०** शीत। त्रिदोषशामक, वर्ण्य, चक्षुष्य मस्तिष्क-नाड़ी पोषक, दीपन, पाचन, सारक रक्तपित्तशामक, तृषादाहशामक, क्षय-शोषहर शोणितास्थापन, हृद्य, विषघ्न, स्वेदहर, ज्वरघ्न है।

आमयिक प्रयोग—बाह्य-नेत्रस्राव, नेत्रकण्डू, पोथकी, दृष्टिमांद्य में अंजन प्रयोग होता है।

आभ्यन्तर–अग्निमांद्य, अरोचक, तृषा, दाह, छर्दि, अम्लपित्त, परिणाम शूल, श्वास, जीर्ण प्रतिश्याय, सरक्तकफष्ठीवन, क्षतज एवं क्षयजकास, राजयक्ष्मा, क्षय उरःक्षत, रक्तार्श, रक्तपित्त, कामला, हृद्दौर्बल्य, मस्तिष्क-नाड़ीदौर्बल्य, वातव्याधि, प्रमेह, अश्मरी, रक्त प्रदर, स्वेदाधिक्य, रात्रिस्वेद, जीर्णज्वर, शिरोरोग एवं नेत्र विकारों में विशेष प्रयोग होता है।

कल्पनाएं–प्रवालपिष्टी एवं भस्म, प्रवालपंचामृत, मुक्तापंचामृत, कामदुधारस **मात्रा** २५० से ५०० मि० ग्राम।

मुक्ता

द्रव्यनाम–हिन्दी : मोती

लेटिन : Margarita.

अंग्रेजी : Pearl.

संस्कृत : मुक्ता, मौक्तिक, शुक्तिज।

उत्पत्ति स्थान–मोती फारस (ईरान) की

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

खाड़ी, गुजरात, (जाम नगर) रामेश्वरम्, श्रीलंका के समीप समुद्र के छिछले किनारों में एकत्रित किये जाते हैं।

मुक्ता का निर्माण एवं परिचय—मुक्ता (मोती) मुक्ताशुक्ति में बनते हैं। सागर तल में एक जाति कीट बड़ी बड़ी सींपों के अन्दर मोती बनाते हैं। शुक्ति के अन्दर जो कीट रहता है। उसकी बाह्य त्वचा से एक प्रकार का स्राव निकलता है। इस स्राव के द्वारा प्याज के समान अनेक स्तरों (पटलों) से युक्त श्वेत पारदर्शक बड़े मोतियों का निर्माण होता रहता है। इन पटलों के मध्य कहीं कहीं पर किसी अपारदर्शक द्रव्य के आ जाने से मोती अपारदर्शक एवं टेढ़ामेढ़ा होकर दोष युक्त हो जाता है।

वर्तमान में जापान में कल्चर मोती भी बनाये जाते हैं। इस विधि में पूर्व में ही सीप को खोलकर बाहर से सीप के कुछ कण प्रविष्ट किये जाते हैं। तथा सीप को बन्द कर पुनः समुद्र में छोड़ दिया जाता है। कुछ समय में ही शुक्ति में प्रविष्ट रज कणों पर कीट अपने स्राव से अनेक पटलों का निर्माण कर मोती बना देता है। इस विधि से निर्मित मोती भी उत्तम होते हैं; एवं अल्प समय में ही बन जाते हैं।

उत्तम मुक्ता का परिचय—जो मोती श्वेत वर्ण चमकीला, पानीदार, वजनदार, बड़ा गोल, छिद्र रहित, अनबिध एवं स्पर्श में स्निग्ध हो वह उत्तम एवं चिकित्सोपयोगी है।

हीन मुक्ता के लक्षण—जो रूक्ष, अपारदर्शक, अर्धशुभ्र, धूसर, ताम्राभ, लवण के समान दृश्यमान ग्रन्थियुक्त, टेढ़ा मेढ़ा, बेडोल, सछिद्र बिंधा हुआ मोती हीन माना जाता है।

रासायनिक संगठन—मोती में केल्सियम कार्बोनेट ९६.३%; एल्बुमिनियम आक्साइड ०.८%; सेन्द्रिय द्रव्य २.१८%; केल्सियम फॉस्फेट, मेग्नीज आक्साइड; अम्ल एवं जल में घुलनशील द्रव्य होते है।

गुण कर्म—**रस** मधुर, **गुण** लघु, रूक्ष, **विपाक** मधुर **वीर्य** शीत त्रिदोषशामक। मस्तिष्क नाड़ी-बल्य, चक्षुष्य, संग्राही, रक्तस्तम्भन, दाह शमन, रक्तपित्त शामक, हृद्य, आयुष्य विषघ्न, बल्य बाजीकरण है।

आमयिक प्रयोग—दाह, सर्वाङ्ग दाह, तृष्णा, छर्दि, अम्लपित्त, अग्निमांद्य, ग्रहणी, रक्तार्श, रक्तपित्त, रक्तचाप, भ्रम मूर्च्छा, हृद्दौर्बल्य हृद्द्रव, श्वास, क्षयज-क्षतज कास, राजयक्ष्मा, उरःक्षत, शोष उन्माद, मस्तिष्क-नाड़ी दौर्बल्य, वातव्याधि, तीव्र सन्तापीज्वर, तज्जन्य प्रलाप, आन्त्रिक ज्वर, विभिन्न विषविकारों, शुक्रमेह, श्वेत एवं रक्त प्रदर में विशेष प्रभावशाली औषधि है।

कल्पनाएं—मुक्तापंचामृत, प्रवालपंचामृत, बसन्त कुसुमाकर, कामदुधा रस, जवाहरमोहरा, याकूती, त्रैलोक्यचिन्तामणि, बृहद्वातचिंतामणि।

मात्रा—१२५ से ५०० मि० ग्राम।

मुक्ता शुक्ति

द्रव्यनाम—हिन्दी : मोती की सीप, सीप।

अंग्रेजी : Mother of pearl.

संस्कृत : मुक्ता शुक्ति, शुक्ति।

शुक्ति का परिचय—जिस शुक्ति (सूप के आकार वत्) में विशेष कीट द्वारा मोती बनाये जाते हैं। उसको मुक्ता शुक्ति कहते हैं। यह कीट द्वारा निर्मित बाह्य कोष है। इसका प्राप्ति स्थान एवं विशेष विवरण मुक्ता के वर्णन में किया गया है।

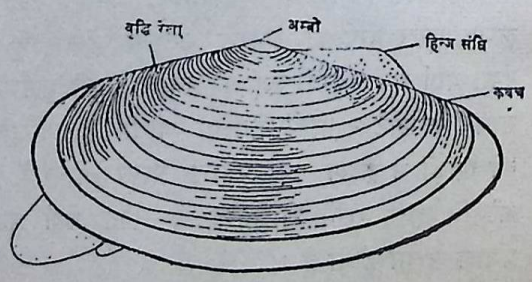

जलसीप

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एक जाति सामान्य शुक्ति जिसमें मोती नहीं बनते हैं। उसको जलसीप कहते हैं। यह समुद्र तथा साधारण जलाशयों में भी पायी जाती है।

जो शुक्ति आकृति में बड़ी श्वेत वर्ण, स्निग्ध, अछिद्र, अन्दर की ओर चमकदार हो वह उत्तम एवं औषध्यर्थ ग्राही है।

रासायनिक संगठन-इसमें केल्सियम कार्बोनेट ८६% मेग्नेशियम ५% सेन्द्रिय द्रव्य ९% होते हैं।

गुणकर्म-रस-मधुर गुण-लघु विपाक मधुर वीर्य-शीत।

आमयिक प्रयोग-इसके आमयिक प्रयोग मुक्ता के समान हैं। किन्तु मुक्ता की अपेक्षा न्यून गुण कर्म पाये जाते हैं। मुक्ता के अभाव में मुक्ता शुक्ति का प्रयोग भी किया जाता है।

कल्पनाएं-मुक्ता शुक्ति भस्म एवं पिष्टी, प्रवाल पंचामृत एवं मुक्ता पंचामृत **मात्रा** २५० से ५०० मिली ग्राम।

कच्छप पृष्ठ

द्रव्यनाम-हिन्दी : कछुवा।

अंग्रेजी : Tortoise.

संस्कृत : कच्छप, कूर्म, गूढ़-पाद, दृढ़-पृष्ठक।

कच्छप का परिचय-यह सुपरिचित जलचर प्राणी है। यह chordata समुदाय एवं chelonia गण का जन्तु है।

इस प्राणी का शरीर चतुष्पाद युक्त एवं कठिन आवरण द्वारा ढका रहता है। इसका शरीर कोमल होता है। कठिन आवरण में इसका शरीर सुरक्षित रहता है। इस जन्तु की पूँछ छोटी होती है। तथा भुजायें चपटी होती हैं। जो पतवार का कार्य करती हैं। इसमें एक ही नासिका रन्ध्र होता है। यह अण्डज प्राणी है। कच्छप के पृष्ठ भाग को पृष्ठवर्म कहते हैं। चिकित्सा में इसी भाग का प्रयोग होता है।

गुण कर्म-रस-मधुर गुण-स्निग्ध विपाक मधुर वीर्य शीत। वातपित्त शामक श्लेष्मवर्धक, बृंहण, बल्य, रक्तपित्तशामक, क्षयहर, शोणितास्थापन मुख्य कर्म हैं।

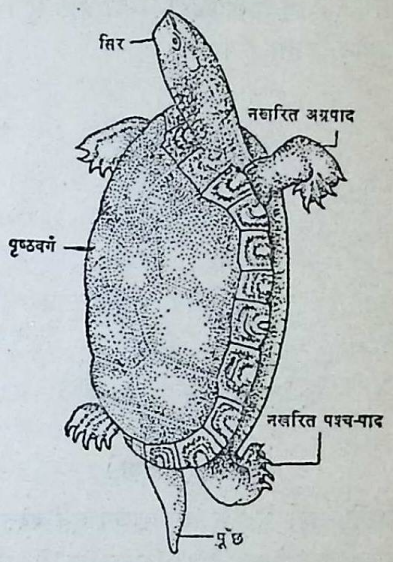

कूर्म (कच्छप)

आमयिक प्रयोग-रक्तपित्त, श्वास, क्षतज एवं क्षयजकास, उरःक्षत, राजयक्ष्मा, बालशोष फक्क रोग, बाल मृदवस्थि, अस्थिक्षय, एवं केल्सियम अभाव जन्य विकारों में कच्छप भस्म उपयोगी है। इन विकारों में इसका मांस भी प्रयुक्त होता है।

कल्पनाएं-कच्छपपृष्ठ भस्म; **मात्रा** ०.३ से १ ग्राम।

कर्कटक

द्रव्य नाम-हिन्दी : केकड़ा अं० Crab.

लेटिन : Seilla seirata.

संस्कृत : कर्कटक, कुलीर।

कर्कटक का परिचय-यह Arthropoda समुदाय एवं Decapoda गण का जन्तु है। यह जन्तु समुद्र, नदियों, झरनों एवं कीचड़ में पाया जाता है।

१.इस प्राणी का शरीर द्विपार्श्व सममित होता है। शरीर दो भागों में विभक्त (क) अग्र शिरोवक्ष- Cephalo thorax तथा (ख) पश्च उदर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(Abdomen) २. शिरोवक्ष पूर्णरूप से कवच में आवृत रहता है। जो बाह्य कंकाल बनाता है। उदर छोटा एवं शिरोवक्ष से संयुक्त होता है। इसमें ५ उपांग (Appendages) युगल होते हैं। जिनमें प्रथम चोड़ा होता है।

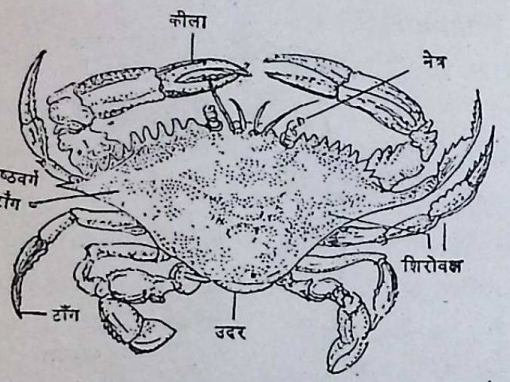

कर्कटक (केकड़ा)

जाति–वर्ण भेद से यह कृष्ण एवं श्वेत जाति दो प्रकार का होता है। चिकित्सा में उपयोग दृष्ट्या बहते हुए मीठे पानी में रहने वाला एवं बड़ा केकड़ा उत्तम होता है।

रासायनिक संगठन–कर्कट भस्म में केल्सियम एवं फॉस्फोरस मुख्यतया होते हैं।

गुण कर्म–रस- मधुर **गुण**–स्निग्ध, गुरु **विपाक** मधुर **वीर्य** शीत। वातपित्तशामक, कफ वर्धक बल्य, बृंहण, सन्धानीय, रक्तपित्तशामक, कफोत्सारि, अनुलोमन, मृदुरेचन, मूत्रल है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-वातिक शिरोरोगों में इससे सिद्ध तैल का नस्य प्रयोग **आभ्यन्तर**–उरःक्षत, जीर्णकास, क्षयजकास, राजयक्ष्मा, सरक्तकफष्ठीवन आन्त्रक्षय, अस्थिक्षय, अस्थिमज्जा शोथ, रक्तपित्त, वातरक्त, दौर्बल्य, बालशोष एवं शुक्र दौर्बल्य में कर्कटक भस्म विशेष उपयोगी है।

कल्पनाएं–कर्कटक भस्म **मात्रा** ०.५ से १ ग्राम। यूनानीऔषधि विक्रेताओं के पास यह सरतान मुहरक नाम से मिलता है।

नख

द्रव्य नाम–हिन्दी : नख अंग्रेजी : Land snail.

लेटिन : Helixaspera

संस्कृत : नख, नखी व्याघ्रनख।

नख का परिचय–नख वस्तुतः किसी जन्तु का नख नहीं है। यह एक प्रकार की शुक्ति जाति के समुद्रीय जन्तु के मुख के ऊपर का आवरण है। इसकी आकृति नख के समान होने से इसको नख कहा जाता है।

नख या नखी गहरे भूरे, वर्ण का अपार दर्शक, नखाकृति सदृश्य अनेक पटलों से निर्मित कठोर होता है। इसके उन्नतोदर पृष्ठ तल पर ये पटल (स्तर) स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसको जलाने पर चर्मवत् दुर्गन्ध आती है; किन्तु तैल के साथ पक्व करने से तैल सुगन्धित हो जाता है।

जाति–भावमिश्र ने बड़ी जाति को नख या व्याघ्रनख, व्याघ्रायुध तथा छोटी जाति को नखी हनु, हट्टविलासनी लिखा है। अन्य ग्रन्थकारों ने कमल दल, बदर पत्र सदृश, अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण, आकृति बोधक जातियों का उल्लेख किया है।

गुण कर्म–**रस**-कटु, मधुर, गुण-लघु, रूक्ष, **विपाक** कटु **वीर्य** उष्ण। वातकफशामक, वर्ण्य, शोथहर, आक्षेपशमन, दीपन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, कुष्ठघ्न, विषघ्न, मूत्रल, शुक्रल, आर्त्तवजनन है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-व्रण, शोथ, न्यच्छ, व्यंग में, लेपप्रयोग। अपस्मार में धूम्राघ्राणन **आभ्यन्तर**–अग्निमांद्य, उदावर्त्त, यकृद्विकार, रक्त विकार, वातरक्त, कुष्ठ, उन्माद, अपस्मार, आक्षेप, मूत्रकृच्छ्र नष्टार्त्तव, गर्भाशय शोथ, वेदना एवं विषविकारों में उपयोगी है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तैल कल्पनाओं में तैलों को सुगन्धित करने के लिये भी नख का प्रयोग किया जाता है।

कल्पनाएं–शैलेयकादि तैल, अमृतादि तैल, शत पुष्पादि तैल, धूम्रपानवर्ती। **मात्रा** ३ ग्राम।

शम्बूक

द्रव्य नाम–हिन्दी : घोंघा।

अंग्रेजी : Small conch, Pila.

संस्कृत : शम्बूक, क्षुद्रशङ्ख।

शम्बूक का परिचय–यह एक जलीय कीट का आवरण (कोश) होता है। जो नदी तालाब समुद्र में पाया जाता है। यह कीट पानी से निकल कर शुष्क जमीन पर रेंगता हुआ पाया जाता है।

इसकी आकृति शंख के समान किन्तु छोटा बाहर से धूसर वर्ण, कठिन, रेखाकार होता है।

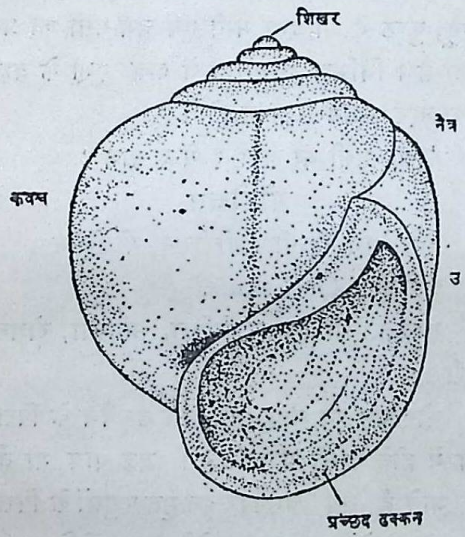

पाइला

(शम्बूक घोंघा)

जन्तु परिचय–यह शाकाहारी स्वभाव का जन्तु होता है। इस प्राणी का शरीर कोमल होता है। जो एक अनियमित व्यावर्तित चूने के बने बाह्य आवरण से ढ़का रहता है। कचव के चौड़े मुख पर एक ढ़क्कन (Operculum) होता है। जन्तु का सिर विकसित होता है। उस पर दो नेत्र तथा दो स्पर्शक युगल होते हैं। इसका पैर चपटा एवं मांसल होता है।

रासायनिक संगठन–इसमें केल्सियम कार्बोनेट ९६.७% मेग्नेशियम आक्साइड १.२१% अम्ल विलेय ०.७५% जल विलेय द्रव्य १.९६% होते हैं।

गुण कर्म–**रस**-कषाय **गुण**-लघु, रूक्ष, **विपाक** कटु **वीर्य** शीत। पित्तकफशामक, दीपन, पाचन, ग्राही, शूलहर, ज्वरघ्न (नियतकालिक) शोथहर है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-कण्डू, पिड़िका, दद्रु, शोथ ग्रन्थि पर जल के साथ पीसकर लेप या इसकी भस्म का तैल में मिलाकर लेप प्रयोग। **आभ्यन्तर**-अग्निमांद्य, अजीर्ण, अतिसार, आध्मान, ग्रहणी, शूल, केल्सियम अभाव जन्य विकारों में एवं बाल-शोष में विशेष उपयोगी है।

कल्पनाएँ–शम्बूक भस्म, शम्बूकादिवटी, शम्बूकाद्य तैल **मात्रा** भस्म ०.३ से ०.५ ग्राम।

इन्द्र गोप

द्रव्यनाम–हिन्दी : वीर बहूटी श्रावणकीट।

लेटिन : Mutella occidentalis.

संस्कृत : इन्द्रगोप, इन्द्रवधू।

इन्द्रगोप का परिचय–वर्षाऋतु में रेतीली भूमि एवं उद्यानों की लताओं में रेंगने वाला सुपरिचित कीट है। वर्षाऋतु में उत्पन्न होने एवं स्पर्श से संकुचित (वधू के समान संकोचीशील) होने से इन्द्रवधू संज्ञा है।

यह मखमल के समान मृदु सूक्ष्म रवेदार चमकदार, रक्तवर्ण का मनोरम १२ मि० मी० लम्बा होता है। शुष्क होने पर यह केसरिया वर्ण का हो जाता है। शुष्क कीट ही यूनानी दवा विक्रेताओं के पास वीरबहूटी या किर्मे मखमल नाम से मिलता है।

गुण कर्म–**रस**-तिक्त, कषाय, **गुण** रूक्ष **विपाक** कटु **वीर्य** उष्ण। वातकफशामक, नाड़ीबल्य, आक्षेप शमन, संकोचक, श्वासकासहर, ज्वरघ्न, बाजीकर।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्य-शिथिल स्तन में दूध के साथ पीसकर लेप, शोथ में मधुच्छिष्ट (मोम) के साथ पकाकर लेप। ध्वजभंग, शिथिल लिङ्गेन्द्रिय पर इससे सिद्ध तैल या तिला का अभ्यंग के रूप में प्रचुर प्रयोग होता है। **आभ्यन्तर**-पक्षाघात, अर्दित, सन्धिवात, अपतन्त्रक, आक्षेप, श्वास कास, मसूरिका ज्वर, ध्वजभंग, शीघ्रपतन, क्लैब्य एवं बालशोष में उपयोगी है। **मात्रा**-आधा से १ नग।

भूनाग (केंचुवा)

द्रव्य नाम–हिन्दी : केंचुवा।

लेटिन : Pheretima postturne.

संस्कृत : गण्डूपद, भूनाग।

भूनाग का परिचय–प्रायः सर्वत्र वर्षा ऋतु में आनूप प्रदेशों की मिट्टी में रेंगते हुये पाये जाते हैं। वर्षा के बाद जमीन में दो तीन फीट तक नीचे भूमि रन्ध्रों में रहता है। यह उभय लिङ्गी पूर्ण युवा केंचुवा लगभग २० से० मी० लम्बा, १२० वल्याकार विखण्डों से युक्त होता है। त्वचा स्निग्ध, मृदु, एवं श्वेत नीलाभ रक्त होती है।

रासायनिक संगठन–इसमें मुख्यतः ताम्र होता है। जो सत्वपातन विधि द्वारा पृथक् किया जाता है।

गुण कर्म–रस-अम्ल, लवण गुण-स्निग्ध वी० उष्ण। शोथहर, मूत्रजनन, अश्मरीनाशक, बल्य, शोषहर, बाजीकर है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-इससे सिद्ध तैल का वातव्याधि आमवात, बालशोष में अभ्यंग किया जाता है। केंचुवे, वीरबहुटी को सुअर के वसा में पक्व कर ध्वजभंग एवं नपुंसकता में लेप प्रयोग अति उपयोगी है। **आभ्यन्तर**-प्रयोग शोथ, मूत्राघात मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, क्षय, शोष, बालशोष, क्लैब्य में प्रयोग होता है।

कल्पनाएँ–भूनाग चूर्ण, बालशोषहर तैल, **मात्रा** चूर्ण १ से ३ ग्राम, सत्व १२५ से २५० मि० ग्रा०।

हस्तिदन्त

द्रव्य नाम–हिन्दी : हाथीदांत।

अंग्रेजी : Ivory.

संस्कृत : हस्तिदन्त।

परिचय–यह एक सुपरिचित द्रव्य है। औषध प्रयोग के अतिरिक्त इसका प्रयोग विविध कला वस्तुओं के निर्माण में तथा स्त्रियों की चूड़ियाँ बनाने में भी प्रयुक्त होता है।

गुण कर्म–रोम संजनन, शोथघ्न, कण्डूघ्न, कुष्ठहर, शोणितास्थापन है।

आमयिक प्रयोग–इन्द्रलुप्त (गंजापन) में हस्तिदन्तमसी (कोयले) का चूर्ण करके रसाजंन के साथ बकरी के दूध में मिलाकर लेप किया जाता है। अर्श में इसको घिसकर लगाने में रक्तस्राव एवं वेदना कम होती है। श्वित्र में चर्म मसी का लेप एवं शोथ-कण्डू, कुष्ठ में भी दन्त मसी एवं चर्म मसी का प्रयोग होता है। विभिन्न रक्तस्रावों में दन्त चूर्ण के बाह्य आभ्यन्तर प्रयोग से लाभ होता है।

मात्रा–मसी या चूर्ण १ से ३ ग्राम।

गोरोचन

द्रव्य नाम–हिन्दी : गोरोचन, गोलोचन।

अंग्रेजी : Gall stone.

संस्कृत : गोरोचना, गोपित्त, मंगल्या, रोचना, गौरी।

गोरोचन का संग्रह–यह गाय या बैल के पित्ताशय में होने वाली अश्मरी है। जब गाय या बैल मर जाते हैं तब चर्मकार इन मृत पशुओं के पित्ताशय से गोरोचन निकाल लेते हैं। जीवित गाय, बैल, के पित्ताशय से भी छेदन करके गोरोचन निकाला जाता है। नेपाल एवं गोरखपुर में गोरोचन का अधिक संचय किया जाता है।

शुद्ध गोरोचन का परिचय–आकृति में अश्मरी (पथरी) के समान छोटे बेर या सुपारी से लेकर निम्बू के आकार का गोल या गोलाई लिये त्रिकोणाकृति होता है। यह कठिन न होकर किंचित्

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मृदु होता है। बाहर से इसका वर्ण किंचित् मट-मैला पीत या धूसरपीत होता है। किसी किसी गोरोचन का वर्ण रक्ताभ नारङ्गी भी होता है। इसके अन्तः भाग का वर्ण चमकीला पीत होता है। इसमें मृदु सुगन्ध होती है। स्वाद में तिक्त होता है।

मिलावट–गोरोचन महंगा होने एवं स्वल्प मात्रा में प्राप्त होने से वर्तमान में नकली गोरोचन भी बाजार में मिलता है। गोपित्त में केल्सियम, लवण, रञ्जक जैसे पदार्थों का मिश्रण कर नकली गोरोचन बनाया जाता है।

परीक्षण–यदि चूने के हल्के जलीय विलयन के साथ गोरोचन को घिसने पर गोरोचन यथावत् रहे, वर्ण परिवर्तन नहीं हो तो शुद्ध समझना चाहिये। किन्तु यदि वह (रक्त वर्ण) या भिन्न वर्ण का हो जाये तो अशुद्ध समझना चाहिये। (२) शुद्ध गोरोचन को तोड़ने पर अन्दर से चमकदार पीत वर्ण एवं प्याज के समान अनेक पर्त्तदार होता है। ये पर्त्त (Layers) सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से भलीभांति देखे जा सकते हैं। नकली गोरोचन में इन पर्त्तों का अभाव होता है।

गुण कर्म–रस-तिक्त, गुण-लघु, रूक्ष, वि० कटु वी० उष्ण। वातकफशामक, पित्तसारक, मेध्य, संज्ञा प्रबोधन, आक्षेपशमन, दीपन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, पित्तस्रंसन, लेखन, शोथघ्न, अश्मरीघ्न, तिक्त पौष्टिक होता है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-श्वित्र, नीलिका, न्यच्छ, वैवर्ण्य, शुष्कार्श में लेप प्रयोग।

आभ्यन्तर–उन्माद, अपस्मार, आक्षेप, अपतन्त्रक, मूर्च्छा, शिरोरोग, अग्निमान्द्य, यकृद्विकार, पित्ताश्मरी, शोथ, पाण्डु, कामला, जीर्ण ज्वर, मसूरिका, रोमान्तिका ज्वर, विषविकार, मूत्राघात, वृक्काश्मरी, अल्पार्त्तव में प्रयोग होता है। तिक्त पौष्टिक एवं यकृत् उत्तेजक होने से सामान्य दौर्बल्य, बालशोष, क्षय बालयकृत्विकारों में एवं अन्य बाल रोगों में विशेष उपयोगी है। अपस्मार में स्थायी लाभ के लिये प्रतिदिन $2\frac{1}{4}$ ग्राम गोरोचन अर्क गुलाब में पीसकर पिलाने का विशेष उल्लेख पूज्य यादवजी त्रिकमजी ने किया है।

कल्पनाएं–बालार्क, मृतसंजीवन अगद, तिक्तेक्ष्वाकु तैल; मुक्तादिवटी। **मात्रा**-१२५ से ५०० मि० ग्राम।

गन्धमार्जार वीर्य

द्रव्य नाम–हिन्दी : जवाद कस्तूरी, मुश्कबिलाव।

लेटिन : Viveerra gibetho.

अंग्रेजी : civret cat.

संस्कृत : गन्धमार्जार वीर्य।

परिचय–यह गन्ध मार्जार नामक एक प्रकार की बिल्ली की पूंछ के नीचे स्थित एक कोश (थैली) से प्राप्त द्रव्य है। इसका कद बिल्ली के समान किंतु पूंछ दीर्घ होती है। इसके शरीर पर गहरे वर्ण के धब्बे होते हैं। इसकी जननेन्द्रिय एवं गुदा के मध्य पूंछ के नीचे एक कोश होता है। इसमें जो द्रव बनता है। उसे ही गंध मार्जार वीर्य कहते हैं।

उत्पत्ति स्थान–गंध मार्जार प्राणी विशेष देश में केरल प्रान्त में पाया जाया हैं।

संग्रह विधि–गंध मार्जार को किसी पिंजरें में बन्द कर कोश (थैली) से सुगंधित द्रव को निचोड़ कर प्राप्त किया जाता है।

स्वरूप–ताजा होने पर मधु के समान सान्द्र पीताभ श्वेत वर्ण पुराना होने पर श्यामाभ वर्ण हो जाता है।

रासायनिक संगठन–इसमें उड़नशील तैल, वसा, राल एवं अमोनिया पाया जाता है।

गुणकर्म–**रस**-कटु तिक्त **गुण** लघु रूक्ष, **विपाक** कटु **वीर्य** उष्ण। वातकफशामक शोथहर, दौर्गन्ध्य घ्न उत्तेजक, दीपन, शोथहर, शूलप्रशमन, हृद्य, श्वासघ्न, बाजीकर, आर्त्तवजनन होता हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आमयिक प्रयोग–बाह्य-प्रतिश्याय, शिरः शूल, अर्धावभेदक, श्वास, हृदयावसाद में नस्य प्रयोग। शोथ, कण्डू, त्वग्विकारों में लेप प्रयोग, बाजीकरण एवं स्तम्भन के लिये शिश्न पर लेप। **आभ्यन्तर** शिरोरोग, अर्धावभेदक शिरःशूल, प्रतिश्याय, श्वास, हृद्दौर्बल्य, अग्निमांद्य उदरशूल, त्वग्रोग, कृच्छ्रार्त्तव, ध्वजभंग, शीघ्रपतन में उपयोगी है।

मात्रा–१ से २ ग्राम

गंधमार्जार (खट्टाशी)

द्रव्यनाम–हिन्दी : खट्टाशी। अं० Beaver.

लेटिन : Castorium.

अरबी : जुन्दबेदस्तर।

संस्कृत : गंधमार्जार।

परिचय–यह हरिण जाति का (Castor fiber या Beaver) नामक ऊद बिलाव प्राणी की त्वचाविहीन दो वृषण ग्रन्थियाँ होती हैं। यह स्थलचर प्राणी उत्तरी भारत, यूरोप, उत्तरी अमेरिका में पाया जाता है। ये वृषण ६२ से ७५ मिलि मी० दीर्घ भारी, गहरे भूरे या श्याम वर्ण या पीताभ रक्त वर्ण राल सदृश कस्तूरी के समान तीव्र सुगन्धित होते है। ईथर एवं एल्कोहल में घुलनशील होते हैं। खट्टाशी रक्त, पीत, कृष्ण वर्ण भेद से तीन प्रकार की होती है।

रासायनिक संगठन–इसमें उड़नशील तैल; एक राल १५ से ४०% तथा Castorine नामक सत्व होता है।

गुण कर्म–**रस**-कटु-तिक्त **गुण** लघु रूक्ष, **विपाक** कटु **वीर्य** उष्ण। वातकफशामक, वेदनास्थापन, नाड़ीबल्य, आक्षेप शमन, शोथहर, शीतप्रशमन, आर्त्तव जनन, मूत्रल, विषघ्न है।

आमयिक प्रयोग—आभ्यन्तर–नाड़ीदौर्बल्य, पक्षाघात, अर्दित, अपस्मार, योषापस्मार, अपतन्त्रक श्वास कास विशेषतः कुकुरकास, शीतांग सन्निपात, मूत्राघात, नष्टार्त्तव, कृच्छ्रार्त्तव, ध्वजभंग, नपुंसकता में (बाह्य प्रयोग लेप के रूप में भी) विशेष उपयोगी है।

मात्रा–२५०-से ५०० मि० ग्राम

पित्त पंचक

द्रव्यनाम–हिन्दी : पित्त।

अंग्रेजी : Bile

संस्कृत : पित्त, मायु।

पित्त का परिचय—पित्त की गणना चरक ने कटुकस्कन्ध में की है। जो मुख्यतः भैंसा, जगंली सुअर, छाग, मयूर, रोहू मछली, बिल्ली के यकृत् पित्त कोश में संचित होता है, तथा ये ही पित्त प्राप्ति के मुख्य जन्तु हैं। यह क्षारीय स्वाद में तिक्त होता है। जल एवं मद्यसार में ९०% घुलनशील होता है।

पित्त का रासायनिक सगंठन—पित्त में रजक द्रव्य Biliverdin, bilirubin कोलेस्ट्रीन लवण, ग्लायीकोकालिक (Glycocholic acid) टारोकोलिक अम्ल (Taurochoclic) होते है।

पित्त पंचक–मछली, गाय, घोड़ा, मनुष्य, और मयूर के पित्त को पित्त पंचक कहते है। "पित्तं पञ्चविधं मत्स्यगवाश्वनरबर्हिजम। रसार्णव।

गुण कर्म—**रस** कटु **गुण** तीक्ष्ण, सर, द्रव, स्निग्ध **विपाक** कटु **वीर्य** उष्ण वातकफशामक, पित्तवर्धक, पित्तनिःसारक, जीवाणु नाशक, मृदुविरेचक, कफघ्न, सूत्रजनन, विषघ्न, कटु पौष्टिक।

आमयिक प्रयोग—बाह्य-उन्माद, अपस्मार, बालग्रहों में पित्तवर्ग से सिद्ध तैल का अंजन, नस्य, अभ्यङ्ग प्रयोग होता है। अर्श, कुष्ठ, श्वित्र, विचर्चिका, त्वग्रोगों में लेप। **आभ्यन्तर** उन्माद अपस्मार, में पित्तवर्ग से सिद्ध घृत प्रयोग। अजीर्ण, विबन्ध, सहजविबन्ध, अग्मिांद्य, यकृद्विकार, ग्रहणी शूल, मूत्रकृच्छ्र, कष्टार्त्तव में उपयोगी है।

कल्पनाएं मांस्यादि लेप (च० चि अ० ७) मृत संजीवन अगद (च० कि० अ० २३) ऋषभागद (सु० क० अ० ५) ज्वरनाग मयूर चूर्ण।

मात्रा–१-३ ग्राम, सत्व ०-३ से १ ग्राम

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कोश

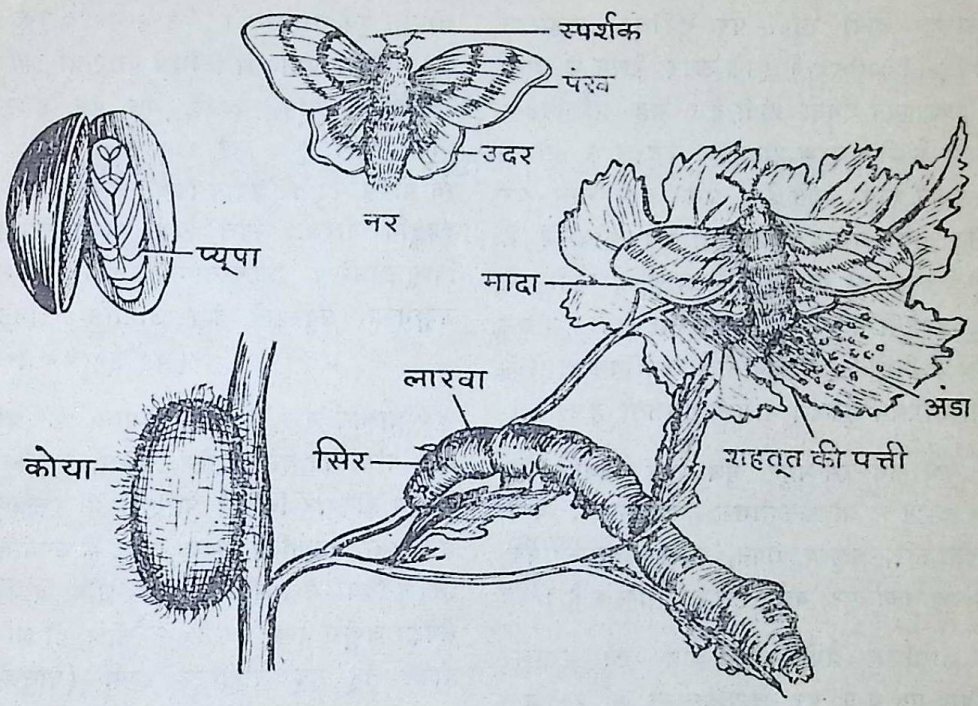

कोशकार कीट का क्रमिक विकास एवं आवास

द्रव्य नाम–हिन्दी : रेशम का कोया ।

अंग्रेजी : Silk pod.

संस्कृत : कोश ।

अरबी : आबरेशम ।

उत्पत्ति स्थान–देश में कश्मीर, बंगाल, बिहार कर्नाटक आदि प्रान्तों में रेशम के कीट शहतूत के वृक्षों पर पाले जाते हैं ।

कोशकार (Silk worm रेशम का कीड़ा) का परिचय–यह शहतूत की पत्तियों पर निर्भर रहता है। यह जन्तु आर्थोपोडा समुदाय की इन्सेक्टा श्रेणी में आता है । जिसका मुख्य लक्षण तीन युगल पाद है । इस कीट की आकृति तितली के समान होती है । यह लगभग २५ मि० मी० लम्बा व भूरे वर्ण का होता है । इस पर हल्के भूरे रंग की रेखायें होती हैं । इसका शरीर शिर, वक्ष और उदर तीन भागों में विभक्त होता है ।

जननसम्भोग के बाद मादा कीट शहतूत की कोमल पत्तियों पर एक बार में लगभग ३०० अण्डे देती है । अण्डे में से ८-१० दिन बाद शिशु कीट (Larva) निकल जाता है । यह धीरे धीरे वृद्धि प्राप्त कर १ से० मी० लम्बा होने पर शिर, वक्ष, उदर तीन भागों में विभक्त हो जाता है । इस युवा कीट के मुख के नीचे दो पतली व दीर्घ कोष्ठ के आकार की नलिकाकार ग्रन्थियां होती हैं । जो रेशम की ग्रन्थियां कहलाती हैं । इन ग्रन्थियों से एक तरल द्रव्य निकलता है । जो वायु के सम्पर्क से शीघ्र ही रेशम के सूत्र में परिवर्तित हो जाता है । लगभग ६ सप्ताह बाद यह शिशु कीट १.५ से० मी० दीर्घ होकर प्यूपा में बदल जाता है । रेशम के सूत्र से धीरे-धीरे पूर्ण कीट आवृत हो जाता है । रेशम के कोष में कुछ समय कीट अन्दर रहता है । वह कोया कहलाता है । पूर्ण कीट (Imago) तितली के आकार का होता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कोश का परिचय–यह पीताभ, श्वेत, हल्का, अण्डाकार दोनों भागों पर नुकीला, बाह्यस्तर चर्मवत् (Leathery) इसके ऊपर रेशम के सूत्रों की गुच्छाकृति रचना होती है। यह आकृति में कटहल के बीज सदृश होता है। कटहल के बीजावरण को कोया कहते हैं। अतः इसी नाम पर इसका कोया नाम प्रचलित हुआ है। कोष में से कीड़े निकाल कर या पानी में उबालकर प्यूपा को मारकर कैंची से काटकर चूर्ण किया जाता है। इस विधि से निर्मित चूर्ण यूनानी औषध विक्रेताओं के पास अबरेशम मुकरर्ज नाम से मिलता है।

गुण कर्म–रस-मधुर, **गुण** रूक्ष **विषाक** कटु **वीर्य** उष्ण। वातकफशामक, व्रणरोपण, वर्ण्य, रक्तस्रावहर, चक्षुष्य, दीपन, मस्तिष्कबल्य-शामक, हृद्य, श्वासकासहर, यकृदुत्तेजक, पौष्टिक है।

आमयिक प्रयोग–बाह्य-कोश को जलाकर सद्यव्रण एवं व्रण पर चूर्णावधूलन से रक्तस्राव बन्द होता है। व्रण का शीघ्र रोपण होता है। इस भस्म चूर्ण का नेत्रकण्डू, नेत्रव्रण, नेत्रस्राव में अंजन प्रयोग होता है। **आभ्यन्तर प्रयोग**-हृद्दौर्बल्य, हृत्व, हृदयावसाद, मस्तिष्क एवं नाड़ीदौर्बल्य, उन्माद एवं सन्निपात ज्वर में मुख्यतः प्रयोग होता है।

कल्पनाएं–खमीरा अबरेशम, खमीरगावजवा अम्बरी, दीवालमुश्क **मात्रा** चूर्ण १.५ से ३ ग्राम प्रयोग करना चाहिए।

जाङ्गम द्रव्य विमर्श

जाङ्गम या प्राणिज द्रव्यों की परिभाषा के सम्बन्ध में प्रथम खण्ड में लिखा गया है। द्रव्यों के तीन वर्गों औद्भिद, जाङ्गम पार्थिव में इस वर्ग का औषधि एवं आहार की दृष्टि से महत्त्व पूर्ण स्थान है। औषध प्रयोग में विभिन्न प्राणियों की वसा, रक्त, पित्त. मांस, मज्जा, मल, मूत्र, शुक्र, चर्म, अस्थि, शृंग, खुर, नख, रोम, केश, दन्त, स्नायु एवं गोरस मधु का प्रयोग किया जाता है।

"मधूनि गोरसाः पित्तं वसा मज्जासृगामिषम्।
विण्मूत्रचर्मरेतो ऽस्थिस्नायुशृङ्गनखाः खुराः।
जङ्गमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केश लोमानि रोचनाः॥
(च० सू० अ० १–६९)

आचार्य चरक ने द्रव्य सामान्य के अनुसार रक्त, मांस, मेद वसा, अस्थि, मज्जा, शुक्र धातुओं के क्षय होने पर विभिन्न प्राणियों के रक्त, मांस, मेद, वसा, तरुणास्थि, मज्जा, शुक्र के उपयोग का निर्देश दिया है। औद्भिद एवं भौम द्रव्यों की अपेक्षा जङ्गम द्रव्य शरीर में शीघ्र ही आचूषित होकर तद् तद् शारीरिक द्रव्यों (धातुओं) में परिवर्तित होकर उनकी वृद्धि करते हैं।

संहिता ग्रन्थों में प्रायः सभी व्याधियों में विभिन्न प्राणिज द्रव्यों के प्रयोगों का प्रचुर वर्णन मिलता है किन्तु वर्तमान में आयुर्वेदिक चिकित्सा में प्राणिज द्रव्यों के प्रयोग का सर्वथा अभाव मिलता है। शीघ्र एवं प्रभावी चिकित्सा के लिए जङ्गम द्रव्यों के प्रयोग पक्ष की ओर भी हमें समुचित ध्यान देना चाहिए।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में भी विभिन्न हार्मोन्स, एण्जाइम्स (किण्व तत्त्वों) रक्तादान के रूप में प्राणिज द्रव्यों का प्रचुर प्रयोग होता है।

———

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अनुक्रमणिका

द्रव्य गुण हस्तामलक में वर्णित द्रव्यों की संस्कृत हिन्दी वर्णानुक्रमणिका

द्रव्य नाम	पृष्ठ	द्रव्य नाम	पृष्ठ
(अ)		अतीस	३३
अङ्कोल	२०४	अधः शल्य	१९१
अङ्गूर	१५८	अनन्तमूल	१०४
अञ्जीर	१३४	अनन्नास	२०९
अकरकरा	६२	अनानास	२०९
अर्क कुल	२१, १०३	अनार	२०८
अर्क	१०३	अन्नामय	२१७
अक्षोट	२११	अपामार्ग	१९१
अक्ष	१४१	अपराजितादि कुल	७, ३८
अखरोट	२११	अपराजिता	४४
अगथिया	४०	अफीम	१७०
अगर	१९५	अभया	१४०
अगरु	१९५	अम्बष्ठा	१५२
अगस्त्य	४०	अम्बाड़ा	१४८
अग्निजार	२२३	अम्बर	२२३
अग्निमन्थ	१३७	अमरबेल	८९
अजगन्धा	१६०	अमलतास	५०
अजमोद	५८	अम्लवेतस	१११
अजमोदा	५८	अम्लवेत	१११
अजमोदिका	६०	अमृता	१५२
अजवाइन	६०	अम्लपर्णी	१८१
अजाजी	५९	अम्लिका	५१
अडूसा	१२५	अयापान	६४
अटरूषक	१२५	अरणी	१३७
अतसी	२०८	अरलु	१५०
अतिबला	७२	अरण्यजीरक	६५
अतिविषा	३३	अरण्ड	९८

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ
अरविन्द	१२४
अरिष्ट	१७७
अरिष्टक	२००
अर्गट	२१७
अर्जुन	१४१
अलसी	२०८
अशोक	४९
अश्मघ्न	१९५
अश्वगंधा	७९
अश्वत्थ	१३३
अश्वमारक	७०.
असगंध	७९
असन	१४३
अस्थिसंहारी	१५८
अस्थिशृंखला	१५८
अहिफेन	१७०
(आ)	
आंवला	९८
आक	१०३
आकारकरभ	६२
आकाशवल्ली	८९
आत्मगुप्ता	४६
आबरेशम	२३५
आमड़ा	१४८
आमलकी	९८
आम्बा हल्दी	९७
आम्र कुल	३२, १४६
आम्रगंधिहरिद्रा	९७
आम्रातक	१४८
आरग्वध	५०
आरुक	१२२
आर्द्रक कुल	१९, ९४
आर्द्रक	९५
आर्द्रज	९५
आलूबोखारा	१२२
आवर्तकी	५२, १६२
आवर्त्तनी	१६२
आस्फोता	४४
(इ)	
इंगुदी	२०१
इक्षु	१०८
इक्षुरक	१२७
इक्ष्वाकु	९१
इन्द्रयव	६९
इन्द्रवारुणी	९०
इन्द्रायण	९०
इमली	५१
इरिमेद	५६
इसबगोल	१९९
इसर मूल	२१२
(ई)	
ईख	१०८
ईश्वरी	२१२
ईषद्गोल	१९९
(उ)	
उदीच्य	७४
उदुम्बर	१३३
उन्मत	७६
उन्नाव	१८३
उपोदिका	२०६
उमा	२०८
उलटकम्बल	१६२
उशबा	८६
उशीर	१०७
उस्तरवूदूस	११६

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ
(ए)	
एरण्ड कुल	२०, ९८
एरण्ड	९८
एरण्ड कर्कटी	२१६
एला	९५
(क)	
कंकोल	१४६
कंघी	७२
कंट करंज	५२
कच्छप पृष्ठ	२२९
कचनार	५०
कचूर	९६
कछुवा	२२९
कटहल	१३५
कटुका कुल	१३०
कटुका	१३१
कटेरी छोटी	७८
कटेरी वड़ी	७७
कटुतुम्बी	९१
कट्फल	१९३
कड़वी तरोई	९२
कड़वी लौकी	९१
कणजा	४१
कणा	१४३
कण्टकारी कुल	१४, ७६
कण्टकारी	७८
कण्टकी करंज	५२
कतक	१८५
कत्तृण	१०९
कदम्ब	३६
कनेर	७०
कर्पादिका	२२६
कपास	७५
कपिकच्छु	४६
कपित्थ	१११
कर्पूर कुल	१६२
कपूर	१६३
कपूर कचरी	९६
कबीला	१००
कमल कुल	१२४
कमल	१२४
कम्पिल्लक	१००
करञ्ज	४१
करञ्जी	१३६
करमर्द	७१
करवीर	७०
करीर	१६०
करील	१६०
करौंदा	७१
कर्कटक	२२९
कर्कटक शृङ्गी	१४७
कर्चूर	९६
कर्पूर	१६३
कर्पूर कुल	१६२
कर्पूर हल्दी	९७
कर्षफल	१४१
कलिहारी	८२
कलौंजी	३४
कवाब चीनी	१४६
कस्तूरी	२२०
कस्तूरी दाना	७५
कसेरु	१७३
कसौंदी	५२
कसेरुक	१७३
काकड़ा सिंगी	१४७
काक जंघा	१५९

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ	द्रव्य नाम	पृष्ठ
कान्दा	८६	कुचन्दन	४१, ५३
काकमाची	७८	कुटकी	१३१
काक नासा	१०३	कुटज	६९
कागजी निम्बू	११३	कुटज कुल	१२, ६९
काञ्चनार	५०	कुड़ा	६९
कायफल	१९३	कुनैन	३७
कार्पासी	७५	कुन्दरु	१५७
कार्पास कुल	१३, ७२	कुपीलु	१८५
कारस्कर	१८५	कुमारी	८४
कालमेघ	१२८	कुमुद	१२५
कालाजाजी	३४	कुरण्ट	१२६
कालाजीरा	५९	कुलथी	४९
काली जीरी	६५	कुलत्थ	४९
काला दाना	८८	कुलञ्जन	९७
काली पाढ़	२१२	कुल्फा	२१६
काली मिर्च	१४४	कुश	१०६
काली मूसली	१७४	कुष्ठ	६३
काश्मरी	१३७	कुस्तुम्बुरु	६०
कास	१०६	कूठ	६३
कासनी	६७	कूष्माण्ड	९३
कासमर्द	५२	कृतमाल	५०
किंशुक	३८	कृतवेधन	९२
किरमाला	६६	कृमिघ्न	२०२
किरमानी अजवाइन	६६	कृष्णजीरक	५९
किरात	१७९	कृष्णबीज	८८
किरात तिक्त	१७९	केंवाच	४६
कीकर	५४	केंकड़ा	२२९
कीटमारीयवानी	६६	केतक	२१५
कुई	१२५	केर	१६०
कुङ्कुम	१८७	केवड़ा	२१५
कुचला	१८५	केशर	१८७
कुकरोंदा	६८	केंचुवा	२३२
कुकुन्दर	६८	केंथ	१११

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ	द्रव्य नाम	पृष्ठ
कोकम	१७६	गण्डूपद	२३२
कोकिलाक्ष	१२७	गंधर्वहस्त	९८
कोयल	४४	गंभारी	१३७
कोल	१४४	गंधप्रसारिणी	३७
कोलकन्द	८५	गंध प्रियंगु	१३९
कोवाठौड़ी	१०३	गृंजन	६१
कोश	२३५	गंध विरोजा	१६६
कोशातकी	९२	गन्धमार्जार वीर्य	२३३
कोशातकी कुल	१८,९०	गन्ना	१०८
कौंच	४६	गर्जर	६१
कौड़ी	२२६	गांजा	१९४
क्रमुक	१२०	गाजवाँ	१८४
(ख)		गाजर	६१
खजूर	११९	गावजबां	१८४
खट्टाशी	२३४	गिरिपर्पट	१७९
खत्मी	७६	गिलोय	१५२
खदिर	५४	गुग्गुलु	१५६
खरटी	७२	गुड़हल	७५
खर्जूर	११९	गुञ्जा	४६
खस	१०७	गुड़मार	१०५
खसखस	१७०	गुडूची	१५२
खाखर	३८	गुडूची कुल	१५२
खिरणी	१५५	गुलाब	१२१
खिरैंटी	७२	गुग्गुलु कुल	१५५
खीरा	९३	गूगल	१५६
खुरासानी अजवाइन	७७	गूमा	११६
खून खराबा	८७	गूलर	१३३
खूब कला	८२	गृहकन्या	८४
खैर	५४	गेंदा	६८
खोपरा	११८	गोखरू	१८२
(ग)		गोजिह्वा	१८४
गंगेरन	७३	गोरखमुण्डी	६३
गंजा	१९३	गोरोचन	२३२

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ	द्रव्य नाम	पृष्ठ
गोलोमी	१७२	चिरौंजी	१४९
गोलोचन	२३२	चिरायता	१७९
गोक्षुर	१८२	चिल्ला	२१७
ग्वारा पाठा	८४	चित्रक	२०२
(घ)		चीड़	१६६
घण्टारवा	४८	चुक्र	१८०
घीकुंआर	८४	चूका	१८०
घुंघची	४६	चोपचीनी	८५
घृत करंज	४१	चौलाई	१९१
घृत कुमारी	८४	चौहार	६६
घृतपूर	४१	(छ)	
घनसार	१६३	छिकनी	६७
घोड़बच	१७२	छितवन	७०
घोंघा	२३१	छिलहिण्ट	१५३
(च)		छुईमुई	५५
चक्रमर्द	५१	छोटी इलायची	९५
चतुरङ्गुल	५०	छोटी कटेरी	७८
चन्दन श्वेत	१९४	छोटी पीपल	१४३
चनसुर	८०	(ज)	
चन्द्रशूर	८०	जंगली उड़द	४३
चमेली	१६८	जंगली कांदा	८५
चर्मरङ्गा	५२	जंतु फल	१३३
चव्य	१४५	जंबीरी नीम्बू	११४
चांगेरी	२१२	जम्बीर कुल	२३,११०
चाल्टा	२११	जंगली मूंग	४३
चाभ	१४५	जटामांसी	१८९
चालमोगरा	२०१	जदवार	३५
चिञ्चा	५१	जपा	७५
चित्ता	२०२	जमाल गोटा	१००
चिरबिल्व	१३६	जमीकन्द	१७१
चिरबिल	१३६	जम्बीर	११४
चिरमी	४६	जम्बू	१३०
चिरचिरा	१९१	जयन्ती	४८

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ
जयपाल	१००
जलजमनी	१५३
जल निम्ब	१३२
जलनीम	१३२
जलापा	८९
जवासा	४७
जाती	१६८
जातीफल	१९२
जामुन	१३०
जायफल	१९२
जावित्री	१९३
जीमूतक	९१
जियापोता	१०२
जीरक	५९
जीरा	५९
जीवन्ती	१०४
जूई	१६९
जूफा	११७
जूही	१२७,१६९
जूही पालक	१२७
जैत	४८
जैतून	१६९
ज्योतिष्मती	२०४
(झ)	
झण्डु	६८
झुनझुनियाँ	४८
झावुक	२१५
झाऊ	२१५
(ट)	
टेंटु	१६०
(ड)	
डिकामाली	३७
डिजिटेलिस	१३१
(ढ)	
ढाक	३८
ढ़ेरा	२०४
(त)	
तगर	१९०
तण्डुलीय	१९१
तमाल पत्र	१६५
तरवर	५२
तरुणी	१२१
तरुणी कुल	२६,१२१
त्वक्	१६३
ताड़	११९
ताम्बूल वल्ली	१४५
ताम्रचूड़	६८
ताल	११९
तालमखाना	१२७
तालमूली	१७४
तालीशपत्र	१६६
तिक्तालाबू	९१
तिक्त गलतोरई	९२
तिन्तिडिका	५१
तिन्तिडीक	१४८
तिन्दुक	२१०
तिपतिया	२१२
तिल	२०७
तिलपुष्पी	१३१
तुम्बुरु	११२
तुलसी	११५
तुलसी कुल	२४,११५
तुवरक	२०१
तूत	१३६
तूद	१३६
तेंदू	२१०

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ
तेजपत्र	१६५
तेजपात	१६५
तेजबल	११२
तैलपर्णी	१२९
तोदरी	८२
(थ)	
थूहर	९९
(द)	
दद्रुघ्न	५१
दन्ती	१०१
दन्ती बीज	१००
दमनक	६६
दरियाई नारियल	१२१
दर्भ	१०६
दाख	१५८
दाडिम	२०८
दानामेथी	४२
दाभ	१०६
दारचीनी	१६३
दाल चीनी	१६३
दारु हरिद्रा	१७८
दारु हल्दी	१७८
दुग्धफेनी	६८
दुग्धिका	१०१
दुघली	६८
दुःस्पर्शा	७८, १८२
दुरालभा	१८२
दुष्प्रधर्षिणी	७७
दूधी	१०१
दूर्वा	१०८
देवकुसुम	१२८
देवदार	१६५
देवदार कुल	१६५
देवदारु	१६५
देवदाली	९१
दौना	६६
दोब	१०८
द्राक्षा	१५८
द्राक्षा कुल	१५७
द्रोणपुष्पी	११६
द्वीपान्तर वचा	८५
(ध)	
धत्तूर	७६
धनियां	६०
धन्वयास	१८२
धमासा	१८२
धव	१४२
धातकी	१८९
धान्यक	६०
धामाव	९२
धाय के फूल	१८९
धावड़ा	१४२
धात्री	९८
(न)	
नकछिकनी	६७
नख	२३०
नखी	२३०
नक्तमाल	४१
नमस्कारी	५५
नरसल	१०७
नल	१०७
नागकेशर	१७६
नागबला	७३
नागर	९५
नागरमोथा	१७२

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ	द्रव्य नाम	पृष्ठ
नाड़ी हिंगु	३७	परवल	९२
नारिकेल	११८	परूषक	२१०
नारिकेल कुल	२५, ११८	पर्णबीज	१९६
नारियल	११८	पर्पट	२०५
निम्ब	१७७	पलंकष	१५६
निम्बूक	११३	पलाण्डु	८६
निर्गुण्डी	१३८	पलाश	३८
निर्गुण्डी कुल	२९, १३७	पवांड	५१
निर्विषी	३५	पसरन	३७
निर्मली	१८५	पत्रज	१६५
निशा	९४	पाकर	१३४
निशोथ	८८	पाखर	१३४
नीप	३६	पाटला	१५१
नीम	१७७	पाढा	१५२
नील	४५	पाड़ल	१५१
नीलिनी	४५	पाढल	१५१
नीलोफर	१२५	पाताल गरुड़ी	१५३
नेनुआ	९२	पान	१४५
नेपाली धनियाँ	११२	पापरी	१३६
न्यग्रोध	१३२	पारसीक यवानी	७७
नेत्रबाला	७४	पारसपीपल	७३
(प)		पारावतपदी	२०४
पञ्चागुल	९८	पारीष	७३
पंच पित्त	२३४	पारिजात	१६८
पटोल	९२	पारिजात कुल	१६८
पतंग	५३	पारिभद्र	४०
पथरचूर	१९६	पाषाण भेद	१९५
पद्म	१२४	पिठवन	४२
पद्मक	१२२	पिण्डखर्जूर	११९
पद्मकाष्ठ	१२२	पित्तपापड़ा	२०५
पद्माख	१२२	पिप्पली	१४३
पनस	१३५	पिप्पली कुल	३१, १४३
पपीता	२१६	पिपपली मूल	१४४

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ	द्रव्य नाम	पृष्ठ
पिया बासा	१२६	(फ)	
पिलखन	१३४	फरहद	४०
पिशाच कार्पास	१६२	फरोद बूटी	७३
पीतमूला	१८१	फल्गु	१३४
पीतसार	२०४	फालसा	२१०
पीपल	१३३, १४३	फूल प्रियङ्गु	१३९
पीपला मूल	१४४	(ब)	
पीलु	२०७	बंगीय ब्राह्मी	१३२
पुदिना	११७	बकुल	१५४
पुदीना	११७	बच	१७२
पुनर्नवा	१९६	बछनाग	३३
पुष्कर मूल	१८८	बड	१३२
पुत्रजीवक	१०२	बडहल	१३५
पूग	१२०	बड़ी कटेरी	७७
पूगीफल	१२०	बदर	१८३
पूतिकरञ्जादि कुल	८, ४९	बनककड़ी	१७९
पूतिकंरज	५२	बनतुलसी	११५
पूतिहा	११७	बनफसा	२०३
पृश्निपर्णी	४२	बन्दाक	२१४
पेठा	९३	बन्दाल	९१
पोई	२०६	बनभण्टा	७७
पोखरमूल	१८८	बब्बूलादि कुल	९, ५४
प्याज	८६	बब्बूल	५४
प्रत्यक्पुष्पा	१९१	बबूल	५४
प्रपुन्नाट	५१	बरगद	१३२
प्रसारिणी	३७	बरना	१५९
प्रवाल	२२६	बला	७२
प्रियङ्गु	१३९	बहुसुता	८४
प्रियाल	१४९	बहेड़ा	१४१
प्लक्ष	१३४	बांस	१०९
प्लीहघ्न	४५	बाकुची	३८
प्लीहशत्रु	४५	बादाम	१२३

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ	द्रव्य नाम	पृष्ठ
वान्दा	२१४	भूम्यामलकी	१०२
बायविडङ्ग	२०२	भूर्ज पत्र	१८७
बारहसिंगा	२२२	भूनाग	२३२
बालमखीरा	९३	भृंगराज	६२
बावची	३८	भृङ्गराज कुल	११, ६२
बिजयसार	३९	भोज पत्र	१८७
बिदारीकन्द	४७	(म)	
बिधारा	९०	मंगरेला	३४
बिल्व	११०	मंजिष्ठा	३५
बिही	१२३	मंजिष्ठा कुल	६, ३५
बिहीदाना	१२३	मंजीठ	३५
बीजक	३९	मकोय	७८
बीजपूरक	११३	मरवान्न	१२५
बीर बहूटी	२३१	मखाना	१२५
बेद मुश्क	२१३	मण्ड्क पर्णी	५७
बेर	१८३	मदन फल	३६
बेल	११०	मदयन्तिका	१८८
बेलाडोना	७९	मदार	१०३
बोल	१५६	मधुक	४४
बृहती	७७	मधुनाशिनी	१०५
ब्राह्मी	५७	मधुयष्टी	४४
(भ)		मधूक	१५४
भंगा	१९३	मधूक कुल	१५४
भल्लातक	१४६	ममीरा	३४
भव्य	२११	मयूरशिखा	२१८
भांग	१९३	मरुवा	११८
भांगरा	६२	मरुबक	११८
भांरगी	१३८	मरोड़फली	१६२
भार्ङ्गी	१३८	मषवन	४३
भिलावा	१४६	मस्तगी	१४९
भुई आंवला	१०२	महाकोशातकी	९२
भूनिम्ब	१७९	महाबला	७३
भूमिबला	७३	महाभरीबचा	९७

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ	द्रव्य नाम	पृष्ठ
महुवा	१५४	मृगश्रृंग	२२२
महोत्पल	१२४	मृद्वीका	१५८
मांई	२१५	मृगनाभि	२२०
मागधी	१४३	मृगमद	२२०
माजूफल	१८६	मेंहदी	१८८
मातुलुङ्ग	११३	मेघनाद	१९२
मार्कण्डिका	५३	मेथी	४२
माया फल	१८६	मेथिका	४२
मालकांगनी	२०४	मेदा लकड़ी	१६४
माषपर्णी	४३	मैदासक	१६४
मांसरोहिणी	१७७	मेषश्रृंगी	१०५
मांसी	१८९	मैनफल	३६
मिर्च	१४४	मोती	२२७
मिसि	५७, ५८	मोती की सीप	२२८
मिश्रेया	५८	मोथा	१७२
मीठा विष	३३	मोचरस	७४
मुंगवन	४३	मोरशिखा	२१८
मुचुकुन्द कुल	१६१	मौलसिरी	१५४
मुचुकुन्द	१६१	(य)	
मुञ्ज	१०६	यवकुल	२२, १०६
मुग्दपर्णी	४३	यवतिक्ता	१२८
मुण्डी	६३	यवनेष्ट	८६
मुनक्का	१५८	यवानी	६०
मुलेठी	४४	यवासक	४७
मुश्क विलाव	२३३	यष्टीमधु	४४
मुशली	८७	युकेलिप्टस	१२९
मुस्तक	१७२	यूथिका	१६९
मुक्ता	२२७	यूथिकपर्णी	१२७
मुक्ता शुक्ति	२२८	(र)	
मूलक	८१	रक्त चन्दन	४१
मूंगा	२२६	रक्त निर्यास	८७
मूला	८१	रक्तिका	४६
मूली	८१	रत्ती	४६

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ
रसोन	८३
रसोन कुल	१६, ८२
राई	८०
राई डोडी	१०४
राजादन	१५५
राजिका कुल	१५, ८०
राजिका	८०
रामठ	६१
राल	१९७
रास्ना	६५
रीठा	२००
रूई	७५
रुमी मस्तगी	१४९
रुसा घास	१०९
रेवन्द चीनी	१८१
रेशम का कोया	२३५
रोहिड़ा	१५०
रोहिणी	१७७
रोहीतक	१५०
रोहिष तृण	१०९
(ल)	
लकुच	१३५
लज्जालु	५५
लजवन्ती	५५
लताकस्तूरी	७५
लवङ्ग	१२८
लवङ्ग कुल	१२८
लशुन	८३
लहसवा	१८४
लहसुन	८३
लांगली	८२
लालचन्दन	४१
लिसोड़ा	१८४
लोणिका	२१६
लोध	१७४
लोध्र	१७४
लोवान	१७५
लौंग	१२८
(व)	
वंजुल	४९
वंश	१०९
वंशलोचन	१०९
वच	१७२
वचा	१७२
वट	१३२
वट कुल	२८, १३२
वत्सनाभ कुल	५, ३३
वत्सनाभ	३३
वन ककड़ी	१७९
वन जीरक	६५
वनतुलसी	११५
वन पलाण्डु	८५
वन मूंग	४३
वरतिक्त	२०५
वराटिका	२२६
वरुण	१५९
वरुण कुल	१५९
वर्वरी	११५, १६०
वाताद	१२३
वायसुरई	६५
वाराहीकन्द	१९९
वासा कुल	२७, १२५
वासा	१२५
विजया	१९३
विजयसार	३९
विट्खदिर	५६

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ
विडङ्ग	२०२
विधारा	९०
विदारी	४७
विदारीकन्द	४७
विशल्या	८२
विभीतक	१४१
विश्वभेषज	९५
विषतिन्दुक	१८५
वृक्षादनी	२१४
वृद्धदारुक	९०
वृक्षाम्ल	१७६
वेतस	२१३
(श)	
शंख	२२४
शंखपुष्पी	८७
शंखाहुली	८७
शठी	९६
शण पुष्पी	४८
शतपत्री	१२१
शतपुष्पा	५७
शतपुष्पा कुल	१०, ५७
शतमूली	८४
शतावरी	८४
शर	१०६
शरपुंखा	४५
शल्लकी	१५७
शहतूत	१३६
शाक	१३९
शाल	१९७
शालपर्णी	४१
शाल्मली	७४
शिंशपा	३९
शिकाकाई	५६
शिगु	२०६
शिरीष	५५
शिलारस	१९८
शीतल चीनी	१४६
शीशम	३९
शुण्ठी	९५
शृंग	२२२
शृंगाटक	२१४
शेफालिका	१६८
शोभांजन	२०६
शम्बूक	२३१
श्यामा	१३९, ८८
श्योनाक	१५०
श्योनाक कुल	१५०
श्लेष्मातक	१८४
श्वदंष्ट्रा	१८२
(स)	
सतावर	८४
सतावरि	८४
सत्यानासी	१७१
सनाय	५३
स्वर्णपत्री	५३
सप्त चक्रा	२१७
सप्तपर्ण	७०
सप्तरंगी	२१७
सप्तला	५६
सफेद चन्दन	१९४
सफेद जीरा	५९
सफेद मुसली	८७
समाक दाना	१४८
समुद्र झाग	२२४
समुद्र शोष	९०
समुद्र फेन	२२४

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ	द्रव्य नाम	पृष्ठ
समुद्र फल	१२९	सूची	७९
सम्भालू	१३८	सूरण	१७१
सरपोंखा	४५	सेन्टोनीन	६५
सरल	१६६	सेम्हल	७४
सरसों	८१	सैंजना	२०६
सरविन	४१	सेहुण्ड	९९
सर्पगन्धा	७१	सैरेयक	१२६
सर्षप	८१	सोंठ	९५
सलई गूगल	१५७	सौंफ	५७
सहदेई	६४	सोनापाठा	१५०
सहचर	१२६	सोमराजी	३८
सहदेवी	६४, ७३	सोम	१९८
सांठी लाल	१९६	सोया	५८
साखु	१९७	स्नुही	९९
सागवान	१३९	स्याह मूसली	१७४
सांभर	२२२	स्वर्णक्षीरी	१७१
सारिवा	१०४	स्वादु कण्टक	१८२
साल	१९७	(ह)	
सिंगीमोरा	३३	हंसपदी	२१७
सिंघाड़ा	२१४	हंसराज	२१७
सिंहास्य	१२५	हड़जोड़	१५८
सिताब	११४	हपुषा	१६७
सिन्कोना	३७	हरड़	१४०
सिन्दुवार	१३८	हरदी	९४
सिरिस	५५	हल्दी	९४
सिल्हक	१९८	हरमल	११२
सिलारस	१९८	हरिद्रा	९४
सीसम	३९	हरीतकी	१४०
सुगन्धबाला	७४	हरीतकी कुल	३०,१४०
सुदर्शन	१७४	हाथी दांत	२३२
सुदाब	११४	हस्ति दन्त	२३२
सुपारी	१२०	हाऊबेर	१६७
सूर्यावर्त्ता	१६०	हारसिंगार	१६८

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्य नाम	पृष्ठ	द्रव्य नाम	पृष्ठ
हालों	८०	हुलहुल	१६०
हिङ्गु	६१	हेम पुष्प	४९
हिंगोट	२०१	(क्ष)	
हिज्जल	१२९	क्षवक	६७
हिमाह्व	१६३	क्षीरिणी	१५५
हींग	६१	क्षुद्रेला	९५
हीबेर	७४	(त्र)	
हीरा बोल	१५६	त्रपुष	९३
हृत्पत्री	१३१	त्रायमाणा	१८०
हुरहुर	१६०	त्रिवृत्त्कुल	१७,८७
		त्रिवृत्	८८

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

INDEX OF LATIN (BOTANICAL) NAMES

A

Abies Webbiana 166
Abroma augusta 162
Abrus precatorius 46
Abutilon indicum 72
Abutilon hirtum 72
Acacia arabica 54
Acacia catechu 54
Acanthaceae Fam. 27,125
Acasia Farnesiana 56
Acasia rugata 56
Acasia senegal wild 54
Achyranthes aspera 191
Achyranthes rubrofusca 191
Acidozeyfolia 111
Aconitum ferox 33
Aconitum heterophyllum 33
Acorus calamus 172
Actinopteris dichotoma 219
Adhatoda vasica 125
Adiantum lunulatum 218
Aegle marmelos 110
Aglaia roxburghiana 139
Alangium lamarckii 204
Albizzia lebbeck 55
Alhagi camelorum 47
Allium cepa 86
Allium sativum 83
Aloe barbadensis 84
Alpinia galanga 97
Alstonia scholaris 70
Althoea officinalis 76
Altingia excelsa 198
Ambergris 223
Amaranthus gpinosus 192
Amorphophallus campanulatus 171
Amygdalus amarars 124
Anacardiaceae Fam. 32,146
Anacyclus pyrethrum 62
Ananas sativus 209
Andrographis paniculata 128
Andrographis echioides 128
Anogeissus latifolia 142
Aphanamixis polystachya 150
Apocynaceae Fam. 12,69
Anthocephalus cadamba 36
Aquilar'a agallocha 195
Argemone mexicana 171
Argyreia speciosa 90
Areca catechu 120
Aristolochia indica 65,212
Artemisia cina berg 65
Artemisia maritima 66
Artemisia sieversiana 66
Artocarpus integrifolia 135
Artocarpus lakoocha 135
Arundo donax 107
Asclepias curassavica 103

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Asclepiadaceae Fam. 21,103
Asparagus adscendens 87
Asparagus racemosus 84
Asparagus sarmentosa 85
Asteracantha longifolia 127
Atropa balladonna 79

B

Balanites aegyptica 201
Baliospermum montanum 101
Balsamodendron mukul 156
Balsamodendron myrrha 156
Bambusa arundinacea 109
Barleria cacrulea 126
Barleria Cristata 126
Barleria prionitis 126
Barleria strigosa 126
Barringtonia acutangula 129
Basella alba 206
Basella rubra 207
Basella cordifolia 207
Bassia butyraceae 154
Bassia latifolia 154
Bassia longifolia 154
Bauhinia purpurea 51
Bauhinia variegata 50
Benincassa hispida 93
Berberis aristata 178
Betula bhojpattra 187
Bignoniaceae Fam. 150
Blumea balsamifera 69
Blumea erientha 69
Blumea lacera 68
Boerhavia diffusa 196
Bombax malabaricum 74
Borassus flabellifera 119
Boswellia serrata 157
Brassica campestris 81
Brassica juncea 80
Brassica nigra 80, 81
Bryophyllum calycinum 196
Buchanania latifolia 149
Burseraceae Fam. 155
Butea frondosa 38

C

Caesalpiniaceae Fam. 8
Caesalpinia bonducella 52
Caesalpinia sappan 53
Callicarpa macrophylla 139
Calotropis gigantea 103
Calotropis procera 103
Cannabis sativa 193
Capparidaceae Fam. 159
Capparis aphylla 160
Carica papaya 216
Carissa carandus 71
Carum carvi 59
Carum copticum 60
Carum roxburghianum 58
Carum strictocarpum 160,59
Caryophyllus aromaticus 128
Casearia esculenta 217
Cassia angustifolia 53
Cassia auriculata 53
Cassia fistula 50
Cassia occidentalis 52
Cassia tora 51
Castorium 234
Cedrus deodara 165

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Celastrus panniculata 204
Centipeda orbicularis 67
Cichorium endivia 68
Cichorium intybus 67
Cinchona calisaya 37
Cinnamomum camphora 163
Cinnamomum tamal 165
Cinnamomum zeylanicum 163
Cissampelos pareira 152
Citrullus colocynthis 90
Citrus medica var. acida 113
Citrus medica var typica 113
Citrus medica var limonium 114
Claviceps purpurea 217
Clerodendron phlomidis 137
Clerodendron serratum 138
Clerodendron siphomanthus 139
Clitoria ternatea 44
Cocculus hirsutus 153
Cocculus pendulus diels 154
Cocos nucifera 118
Combretaceae Fam. 30,140
Coniferae Fam. 165
Compositae Fam. 11,62
Convolvulaceae Fam. 17,87
Convolvulus pluricaulis 87
Coptis teeta 34
Corallium rubrum 226
Cordia myxa 184
Coriandrum sativum 60
Crataeva religiosa 159
Crinum zeylanicum 174
Crocus sativus 187
Crotalaria verrucosa 48
Croton tiglium 100
Cruciferae Fam 15,80
Cryptolepis buchananiroem, 104
Cryptocoryne spiradis 34
Cucurbita ceae Fam. 18,90
Cuminum cyminum 59
Curculigo orchioides 174
Curcuma aromatica 97
Curcuma caesia roxb. 96
Curcuma longa 94
Curcuma zedoria 96
Cucumis sativus 93
Cuscuta reflexa 89
Cymbopogon martini 109
Cynodon dactylon 108
Cyperus scariosus 172
Cyproea moneta 226

D

Dalbergia sissoo 39
Datura alba 77
Datura fastuosa 77
Datura stramonium 76
Doucas carota 61
Delphinium denudatum 35
Delphinium zalil 180
Dendrobrium macraei 105
Desmodium gangeticum 42
Desmodium diffisum 42
Desmodium semilata 42
Desmostachya bipinata 106
Digitalis purpurea 131
Dillenia indica 211
Dioscorea bulbifera 199
Diospyros tomentosa 211

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Diospyros embryopteris 210
Dolichos biflorus 49
Dracaena cinnabari 87

E

Eclipta alba 62
Elettaria cardamomum 95
Embelia ribes 202
Embelia robusta 202
Ephedra vulgaris 198
Erythrina indica 40
Eucalyptus globu 129
Eugenia jambolana 130
Eupatorium ayapana 64
Euphorbiaceae Fam. 20,98
Euphorbia microphylla 101
Euphorbia neriifolia 99
Euphorbia thompsomiana 69
Euryale ferox 125
Evolvulus alsinoides 88

F

Fagonia arabica 182
Feronia elephantum 111
Ferula narthex 61
Ficus bengalensis 132
Ficus carica 134
Ficus glomerata 133
Ficus lacor 134
Ficus religiosa 133
Foeniculum capillaecum 57
Fumeria parviflora 205

G

Garcinia indica 176
Gardenia gummifera 37
Gentiana kurro 180
Gloriosa superba 82
Glycyrrhiza glabra 44
Gmelina arborea 137
Gmelina asiatica 138
Gossypium herbaceum 75
Graminae Fam. 22,106
Grewia asiatica 210
Guizojia abyssynica 208
Gymnema sylvestre 105
Gynandropsis pentaphylla 160

H

Hedychium spicatum 96
Helicteres isora 162
Helix aspera 230
Hemidesmus indicus 104
Herpestis monniera 132
Hibiscus abelmoschus 75
Hibiscus rosa-sinensis 75
Holarrhena anti dysenterica 69
Holoptelia integrifolia 136
Hydnocarpus wightiana 201
Hydrocotyle asiatica 57
Hyoscyamus niger 77
Hyoscpamus reticulata 77
Hyssopus officinalis 117

I

Indigofera tinctoria 45
Inula racemosa 65,188
Ipomoea convolvulus 89
Ipomoea hederacea 89
Ipomoea muricata 89
Iris germanica 188

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Iris versicolor 188
Ivory 232

J

Jasminum auriculatum 169
Jasminum grandiflorum 168
Juglans regia 211
Juniperus communis 167
Juniperus macropoda 167

L

Labiatae Fam. 24,115
Lagenaria vulgaris 91
Lauraceae Fam. 162
Lavendula stoechas 116
Leea hirta (aquata) 159
Lawsonia inermis 188
Lepidium cherianthus 82
Lepidium iberis 82
Lepidium sativum 80
Lcptadenia reticulata 104
Leucas cephalotes 116
Liliaceae Fam. 16,82
Linum usitatissimum 208
Litsea chinensis 164
Lobelia nicotainfolia 107
Lodoicea seychellarum 121
Loranthus longifolius 214
Loranthus viscum album 82,214
Luffa aegyptiaca 92
Luffa amara 92
Luffa echinata 91
Luffa graveolens 91

M

Mallotus philippinensis 100
Malvaceae Fam. 13
Melia azadirachta 177
Menispermaceae Fam. 152
Mentha aquatica 118
Mentha sativa 118
Mentha viridis 117
Mesua ferrea 176
Mimosaceae Fam. 9,54
Mimosa pudica 55
Mimusops elengi 154
Mimusops hexandra 155
Mimasops kauki 155
Moringa concanensis 206
Moringa pterygosperma 206
Morus indica 136
Morus alba 136
Morus nigra 136
Moschus moschiferous 220
Mucuna pruriens 46
Mutella occidentalis 231
Myrica nagi 193
Myristica fragrans 192
Myristica malabarica 193
Myrtaceae Fam. 128

N

Nardostachys jatamansi 190
Nelumbium speciosum 124
Nerium odorum 70
Nigella sativa 34
Nyctanthes arbortrisris 168
Nymphala lotus 125
Nymphaeaceae Fam. 124

O

Ochrocarpus longifolius 176

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Ocimum basilicum 115
Ocimum sanctum 115
Oleaceae Fam. 168
Olea Europaea 169
Onosma bracteatum 184
Operculina turpethum 88
Origanum marjorana 118
Oroxylum indicum 150
Oxalis acetoselia 212
Oxalis corniculata 212

P

Paederia foetida 37
Palmae Fam. 25,118
Pandanus tectorius 215
Papaver glabrum 170
Papaver nigrum 170
Papaver somniferum 170
Papilionaceae Fam. 7,38
Pearl 227
Pavonia odorata 74
Peganum harmal 112
Pedalium murex 182
Peucedanum sowa 58
Phaseolus trilobus 43
Phaeretima postturne 232
Phoenix dactylifera 119
Phoenix sylvestris 119
Phyllanthus emblica 98
Phyllanthus niruri 102
Picrorrhiza kurroa 131
Pinus longifolia 166
Piper bettle 145
Piper chaba 145
Piper cubeba 146
Piper longum 143
Piper nigrum 144
Piperaceae Fam. 31,143
Pistacia integerrima 147
Pistacia lentiscus 149
Plantago ovata 199
Pluchea lanceolata 65
Plumbago capensis 203
Plumbago indica 203
Plumbago zeylanica 202
Podophyllum emodi 179
Polyalthia longiless folia 49
Pongamia glabra 41
Portulacea quadrifida 216
Portulacea oleracea 216
Premna barbata 137
Premna integrifolia 137
Premna latifolia 137
Prunus amygdalus 123
Prunus communis 122
Prunus mahaleb 139
Prunus pudum 122
Psoralia eorylifolia 38
Pterospermum acerifolium 161
Pterocarpus marsupium 39
Pterocarpus santalinus 41
Punica granatum 208
Pueraria tuberosa 47
Putronjiva roxburghii 102
Pyrus cydonia 123

Q

Quercus infectoria 186

R

Randia dumetorum 36

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Ranunculaceae Fam. 5,33
Raphanus sativus 81
Rauwolfia serpentina 71
Rheum emodi 181
Rhinacanthus communis 127
Rhus parviflora 148
Ricinus communis 98
Rosaceae Fam. 26,121
Rosa centifolia 121
Root of the piper longum 144
Rubia cordifolia 35
Rubiaceae Fam. 6,110
Rumex vesicarius 180
Ruta graveolens 114
Rutaceae Fam. 23

S

Saccharum munj 106
Saccharum officinarum 108
Saccharum spontaneum 106
Salix carprea 213
Salvadora oleoides 207
Salvadora persica 207
Salvia lanata 63
Santalum album 194
Spindus trifoliatus 200
Sapotaceae Fam. 154
Saussurea lappa 63
Saraca indica 49
Saxifraga ligulata 195
Scripus grossus var kysoor 173
Scripus tuberous 173
Scrophulariaceae Fam. 130
Seilla serrata 22P
Semecarpus anacardium 146
Sepiae officinalis 224
Sesamum indicum 207
Sesbania aegyptiaca 48
Sesbania grandiflora 40
Shorea robusta 197
Sida cordifolia 72
Sida humilis 73
Sida rhombifolia 73
Sida spinosa 73
Sida veronicaeolia 73
Silk worm or pod 235
Sisymbrium irio 82
Smilax glabra 85
Smilax zeylanica 86
Solanaceae Fam. 14, 76
Solanum indicum 77
Solanum nigrum 78
Solanum xanthocarpum 78
Soymida febrifuga 177
Sphaeranthus africans 64
Sphaeranthus indicus 63
Spondias mangefera 148
Sterculia ceae Fam. 161
Stereospermum chelonoides 152
Stereospermum suaveolens 151
Strychnos nuxvomica 185
Strychnos potatorum 185
Styrax benzoin 175
Swertia chirata 179
Symplocos racemosa 174

T

Tacca aspera 199
Tagetes erecta 68

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Tamarindus indica 51
Tamarix aphylla 216
Tamarix gallica 215
Taraxacum officinale 68
Taxus baccata 166
Tecomella undulata 150
Tectona grandis 139
Tephrosia petrosa 45
Tephrosia purpurea 45
Tephrosia villosa 45
Teramnus labialis 43
Terminalia arjuna 141
Terminalia belerica 141
Terminalia chebula 140
Terminalia tomentosa 143
Thevetia nerrifolia 70
Thalictrum foliolosum 180
Thespesia populnea 73
Tinospora cordifolia 152
Tinospora malbarica 152
Trapa bispinosa 214
Trapa indica 215
Tribulus terrestris 182
Trianthema portulacastrum 197
Trichosanthes cucumeriana 92
Trichosanthes dioica 93
Trigonella foenum-graecum 42

U

Umbelliferae Fam 10,57
Uraria hamosa 42
Uraria picta 42
Urginea indica 85
Urticaceae Fam. 28,132

V

Valeriana wallichii 190
Vanda roxburghii 65
Verbenaceae Fam. 29,137
Vernonia anthelmintica 65
Vernonia cineria 64
Vetiveria zizanioides 107
Viola odorata 203
Vitex negundo 138
Vitex trifolia 138
Vitaceae Fam. 157
Vitis quadrangularis 158
Vitis vinifera 158
Viveerra gibetho 233

W

Wedelia calendulacea 62
Withania somnifera 79
Woodfordia fructicosa 189

Z

Zanthoxylum alatum 112
Zanthoxylum budrunga 112
Zingiberaceae Fam. 19,94
Zingiber officinale 95
Zizyphus jujuba 183
Zizyphus nummularia 183
Zizyphus vulgaris 183

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अति शीघ्र प्रकाशित होगी

नवीन

* शालाक्य–विज्ञान *

(नेत्र, कर्ण, नासा, मुख, शिरोरोगों का अध्ययन ग्रन्थ)

[पूर्णतया पाठ्यक्रम पर आधारित]

लेखक—डॉ० श्रीकृष्ण शर्मा भिषगाचार्य, एम. बी. बी. एस.
प्राध्यापक शालाक्य विभाग, गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज, जयपुर।

आयुर्वेद महाविद्यालयों में अब तक शालाक्य-शास्त्र के अध्ययन पर कम ध्यान दिया गया है। धीरे-धीरे महाविद्यालयों के विभागों के विकास के साथ-साथ शालाक्य-शास्त्र का भी विस्तृत अध्ययन प्रारम्भ हो चुका है। किन्तु सैन्ट्रल कौन्सिल एवं अन्य विश्व विद्यालयों के पाठ्यक्रम के अनुकूल हिन्दी में अभी तक कोई ऐसा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं, जो आयुर्वेद के मौलिक एवं सम्पूर्ण ज्ञान के साथ-साथ आधुनिक शालाक्य विज्ञान का पूर्ण दिग्दर्शन करा सके।

प्रस्तुत पुस्तक उपर्युक्त कठिनाई को दूर करने के लिए ही तैयार की गई है। इसमें शालाक्य विज्ञान का सचित्र वर्णन पूर्ण निर्विवाद एवं सुलझे हुये तरीके से किया गया है। जिसमें शालाक्य-विज्ञान से सम्बन्धित कई संदिग्ध एवं अस्पष्ट विषयों को भी सरली–करणकरके स्नातक स्तर के छात्रों के लिये बोधगम्य कर दिया हैं।

इस ग्रन्थ की जानकारी पूर्ण प्रामाणिक एवं प्रायोगिक है। डा. शर्मा स्वयं शालाक्य तंत्र के सफल प्राध्यापक हैं। एवं उनको शालाक्य-शास्त्र के अध्यापन में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है उनका प्रस्तुत पुस्तक में निराकरण करने का पूर्ण एवं सफल प्रयास किया गया है।

—प्रेस में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आयुर्वेदीय

विष विज्ञान एवं व्यवहार आयुर्वेद

लेखक—मुकुट बिहारी शर्मा भिषगाचार्य, एम. एस. ए. एम. (जामनगर)
काय चिकित्सा विभाग, राज. आयुर्वेद महाविद्यालय, ज य पु र ।

आयुर्वेद वांगमय में अद्यावधि उपलब्ध विष विज्ञान एवं व्यवहार आयुर्वेद का साहित्य अभीप्सित परिमाण में उपलब्ध नहीं होता, एतद् स्वरूप अन्य पद्धतियों के समक्ष आयुर्वेदीय विधिवेत्ता द्वारा दी गई साक्षी को प्रामाणिक नहीं माना जाता है । इसका कारण लेखक को विष विज्ञान व व्यवहार आयुर्वेद के साहित्य की अपूर्णता ही प्रतीत होती है, जिससे कि छात्र भी पूर्ण सन्तुष्ट नहीं रहते, व इस विषय में पूर्ण अभिरूचि भी नहीं ले पाते, प्रस्तुत पुस्तक का इसी व्यवहारिक बाधा के निराकरणार्थ एवं विषय सम्बन्धी विस्तृत जानकारी देने हेतु लेखन किया गया है । विभिन्न विश्व विद्यालयीय एवं सैन्ट्रल कौंसिल के निर्धारित पाठ्यक्रम को केन्द्रित करते हुये इस विषय के लगभग ७ वर्षों के अनुभवी अध्यापक ने पुस्तक का लेखन कार्य किया है, तथा इस विषय के अध्यापन काल में छात्रों द्वारा जो कठिनाइयाँ अनुभव की गई उन सभी के निराकरण का भी पूर्ण सफल प्रयास किया गया है ।

—प्रेस में

पुस्तक मंगवाने के लिये सम्पर्क करें ।

शरण बुक डिपो

चिकित्सा साहित्य के प्रकाशक व विक्रेता

चौपड़ रामगंज मल्ला मार्ग जयपुर–302003

Vaidya Raj Zada Lal Ji
National Ayurvedic Library
Call No. .....
Book No. .....
Acc No. 000064

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C). Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection